प्रकाशक—
चतुरसेन गुप्त,
प्रबन्धक—
महाभारत प्रकाशक मण्डल,
देहली।



मुद्रक—
मुरारीलाल गार्ग्या,
गार्ग्या प्रिंटिंग वर्क्स, दरियागञ्ज,
देहली।

दो पुरुष

विदुर वाक्यः—

द्वाविमौ पुरुषौ राजन्स्वर्गस्योपरितिष्ठतः ।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥

महा० उद्योगपर्व अ० ३३।५८

हे राजन ! दो पुरुष संसार में स्वर्ग से भी ऊपर स्थित होते हैं, जो शक्तिशाली होकर क्षमा करता है तथा जो दरिद्री होकर कुछ दान देता रहता है ॥

* * * * *

द्वावंभसि निवेष्टव्यौ गले बध्वा दृढां शिलाम् ।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥

महा० उद्योग पर्व अ० ३३।६०

इन दो को गले में पत्थर बांध कर जल में डुबा देना चाहिए, जो धनवान होकर दान न दे और दरिद्री होकर कष्ट सहिष्णु न होवे ।

—:—::o::—:—

धन्यवाद

परमात्मा की महान् कृपा से इस समय महाभारत के प्रकाशन का कार्य जिस तीव्र वेग से सुसम्पन्न हो रहा है, उसका सारा श्रेय आप कृपालु पाठकों को ही है। गत पांच मासमें तीन भाग आपकी सेवामें जा चुके हैं अतः अब विश्वास है कि सम्पूर्ण महाभारत शीघ्र ही छप जावेगा मुझे यह सूचित करते हुये बड़ा हर्ष होता है कि मेरी प्रार्थना पर बहुत से श्रीमानों ने अपने बहुत से मित्रों को महाभारत का ग्राहक बनाकर "मण्डल" की भारी सहायता की है। उनमें बड़ोदा राज्य के राज पण्डित काशी निवासी राजरत्न पण्डित महादेवप्रसाद जी शर्म्मा शास्त्री, व्याकरणाचार्य पण्डित रामेश्वरदयालु जी त्रिपाठी चित्रकूट, पण्डित कल्याणदत्त जी सुपरिन्टेन्ट लैण्ड रिकार्डस किशनगढ़ स्टेट और पण्डित मदनमोहन जी शर्मा M. A. LL. B., वकील चीफ कोर्ट जयपुर आदि महानुभावों का हार्दिक धन्यवाद करता हूं, जिन्होंने समय समय पर महाभारत के नवीन ग्राहक बनाकर मण्डल की सहायता की है।

भवत्कृपाकांक्षी—

चतुरसेन,

महाभारत भाग ७

विराटपर्व अ० ३५ से उद्योगपर्व अध्याय ७१ तक

की

विषयानुक्रमणिका

गोहरणपर्व

विषय	पृष्ठ
कौरवों का विराट की गायों का अपहरण करना और गोपाध्यक्ष सहदेव का विराट पुत्र उत्तरको यह समाचार सुनाना।	१—६
बृहन्नला को सारथी बनाकर उत्तर का कौरवों के सन्मुख युद्ध के लिए यात्रा करना।	७—२०
कौरवों को देख कर उत्तर का कातर होना बृहन्नला का आश्वासन देना और उत्तर का अर्जुन के अस्त्रों को शमी वृक्ष से उतार कर उनका परिचय प्राप्त करना।	२१—६०
उत्तर का अर्जुन को सारथि बनाना, अर्जुन की शङ्खध्वनि सुन कर कौरवों का अर्जुन को	

अनुमान द्वारा जान लेना, कौरवों का पाण्डवों को फिर वनवास देने या कर्ण का युद्ध करने का प्रस्ताव करना, अन्य कौरव वीरों का कर्ण के डींग मारने की निन्दा करना ।	६१—१११
भीष्म का युद्ध के लिए व्यूह रचना करना, गायों का विराट नगर में भाग आना, अर्जुन का कर्ण विकर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा, दुर्योधन आदि से युद्ध और विजय ।	११२—२३६
त्रिगर्तों को जीत कर विराटराज का नगर में आना, कौरवों के प्रति युद्ध यात्रा की तय्यारी करना, विराटराज को उत्तर के दूतों द्वारा विजय समाचार सुनना, विजय में बृहन्नला का हाथ बताने से विराट राज का युधिष्ठिर के पासे मारदेना। रक्त भाजन तक युधिष्ठिर का अर्जुन को वहां न आने देना। अर्जुन द्वार उत्तर को सारे पाण्डवों का परिचय प्राप्त होना	२४०—२६६

वैवाहिक पर्व

विराटराज के सम्मुख पाण्डवों का प्रकट होना, विराटराज का उत्तरा को अर्जुन के लिए प्रदान करने का प्रस्ताव, अर्जुन का अपने पुत्र अभिमन्यु के लिए उसका ग्रहण करना, अभिमन्यु और उत्तरा का विवाह ,	२७०—२६५

भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च कृपश्च परमास्त्रवित् ।
द्रौणिश्च सौबलश्चैव तथा दुःशासनः प्रभो ॥ २ ॥
विविंशतिर्विकर्णश्च चित्रसेनश्च वीर्यवान् ।
दुर्मुखो दुःसहश्चैव ये चैवान्ये महारथाः ॥ ३ ॥
एते मत्स्या नुपागम्य विराटस्य महीपतेः ।
घोषान् विद्राव्य तरसा गोधनं जह्रुरोजसा ॥ ४ ॥

हे राजन् ! उत्तम २ अस्त्र-विद्या के ज्ञाता, भीष्म, द्रोण, कर्ण कृप, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, सुबल-पुत्र शकुनि, दुःशासन, विविंशति, विकर्ण, वीर्यवान् चित्रसेन, दुर्मुख, दुःशल तथा अन्य महारथी, राजा विराट के मत्स्य देश में पहुंचे। इन्होंने अपने वेग से छोटे २ गांवों में उपद्रव मचाकर बल-पूर्वक विराट के गोधन को छीन लिया ॥२-४॥

षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति च ।
महता रथवंशेन परिवार्य समन्ततः ॥ ५ ॥

कुरुवंशोत्पन्न दुर्योधनादि, बहुत से रथ समूहों द्वारा सब ओर से गौओं को घेर कर साठ हजार गौओं को हांक ले गए ॥५॥

गोपालानान्तु घोषस्य हन्यतां तैर्महारथैः ।
आरावः सुमहानासीत् सम्प्रहारे भयङ्करे ॥ ६ ॥

उन महारथियों के प्रहार से पीड़ित गोपालों के चिल्लाने का शब्द, इस महा भयङ्कर युद्ध में बहुत ही बढ़ गया ॥६॥

हे राज-पुत्र ! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो- तो तुम स्वयं युद्ध के लिए चलो। राजा ने तो तुमको शून्यपाल (नगर रक्षक) बना रखा है। ११॥

त्वया परिषदां मध्ये श्लाघते स नराधिपः
पुत्रो ममानुरूपश्च शूरश्चेति कुलोद्वहः ॥१२॥

राजा विराट, सभा के मध्य में तुम्हारी इस प्रकार प्रशंसा करता रहता है, कि मेरा पुत्र, मेरे अनुरूप, शूरवीर और कुल की धुर का धारण करने वाला है ॥१२॥

इष्वस्त्रे निपुणो योधः सदा वीरश्च मे सुतः।
तस्य तत्सत्यमेवास्तु मनुष्येन्द्रस्य भाषितम् ॥१३॥
आवर्त्तय कुरून् जित्वा पशून् पशुमताम्वर।
निर्दहैषामनीकानि भीमेन शरतेजसा ॥१४॥

उत्तम २ पशु रखने वालों में श्रेष्ठ, उत्तरकुमार ! तुम कौरवों को जीत कर पशुओं को लौटाइये और अपने भयानक शर के तेज से कौरवों की सेना को जला डालिए ॥१४॥

धनुश्च्युतैरुक्मपुङ्खैः शरैः सन्नतपर्वभिः।
द्विषतां भिन्ध्यनीकानि गजानामिव यूथपः ॥१५॥

तुम धनुष से निकले हुए, सुवर्ण के पुङ्ख (मूल) वाले, अच्छी तरह झुकी पर्व के धारी, तीक्ष्ण बाणों से साधारण हाथियों को गन्ध-हस्ती की भांति शत्रुओं की सेनाओं को विध्वंस कर डालो।

पक्षोपधानां ज्यातन्त्रीश्चापदण्डां महास्वनाम्।
शरवर्णां धनुर्वीणां शत्रुमध्ये प्रवादय॥१६॥

धनुष की डोरी बांधने के प्रान्त जिसके उपधान (वीणा की खूंटी) है। प्रत्यञ्चा (धनुष की डोर) ही जिसके तार हैं, धनुष, जिसका दण्ड है, शर जिसके वर्ण हैं, ऐसी धनुष रूपी वीणा को आप शत्रुओं के मध्य में बजाओ ॥१६॥

श्वेता रजतसङ्काशा रथे युज्यन्तु ते हयाः।
ध्वजश्च सिंहसौवर्णमुच्छ्रयन्तु तव प्रभो ॥१७॥

हे प्रभो! चांदी के सदृश श्वेत-वर्ण-धारी अश्वों को रथ में जोड़ लो और सुवर्ण की सिंह रूप ध्वजा आप रथ पर चढ़ा ले।

रुक्मपुङ्खाः प्रसन्नाग्रा मुक्ता हस्तवता त्वया।
छादयन्तु शराः सूर्यं राज्ञां मार्गनिरोधकाः॥ १८॥

सुवर्ण की पुङ्ख वाले, चमकते हुए अग्र-भाग धारी, शक्तिशाली हाथों से निकले हुए आपके बाण, राजाओं का मार्ग रोक कर सूर्य को जा ढके ॥१८॥

रणे जित्वा कुरून सर्वान् वज्रपाणिरिवासुरान्।
यशो महदवाप्य त्वं प्रविशेदं पुरं पुनः ॥१९॥

अब तुम असुरों को वज्रपाणि, इन्द्र की तरह रण में कौरवों को जीत कर और बहुत यश प्राप्त करके फिर इस पुर में प्रविष्ट होना ॥१९॥

त्वं हि राष्ट्रस्य परमा गतिर्मत्स्यपतेः सुतः।
यथा हि पाण्डुपुत्राणामर्जुनो जयतां वरः ॥२०॥

एवमेव गतिर्नूनं भवान् विषयवासिनाम् ।
गतिमन्तो भवन्त्वद्य सर्वे विषयवासिनः ॥२१॥

हे मत्स्यराजात्मज ! आप ही इस राष्ट्र के परम रक्षक हो— जैसे पाण्डु पुत्रों में विजयशील अर्जुन है, उसी तरह आप ही इस विराट देश निवासी जनों के आश्रय है । इनसे ही तो हम सारे इस देश निवासी आश्रयवान हैं ॥२०-२१॥

वैशम्पायन उवाच—

स्त्रीमध्य उक्तस्तेनासौ तद्वाक्यमभयङ्करम् ।
अन्तःपुरे श्लाघमान इदं वचनमब्रवीत् ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
उत्तरप्रशंसायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

वैशम्पायन बोले—गोपाध्यक्ष ने ये वचन स्त्रियों के मध्य में कहे थे । अन्तःपुर में प्रशंसा प्राप्त करने के कारण इसने भी अभय करने वाले वचन कहे । यह गोपाध्यक्ष से इस प्रकार कहने लगा ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में गौओं के अपहरण में गोपवाक्य का पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

छत्तीसवां अध्याय

उत्तर उवाच—

अद्याहमनुगच्छेयं दृढधन्वा गवां पदम् ।
यदि मे सारथिः कश्चिद्भवेदश्वेषु कोविदः ॥१॥

उत्तर ने कहा—हे गोपाल ! आज में दृढ़ धनुष, लेकर अभी गायों के पीछे दौड़ता हूं, परन्तु मेरा सारथि कोई बड़ा ही अश्व हांकने में कुशल होना चाहिए ॥१॥

तन्त्वहं नावगच्छामि यो मे यन्ता भवेन्नरः ।
पश्यध्वं सारथिं क्षिप्रं मम युक्तं प्रयास्यतः ॥२॥

इस समय कोन उचित सारथि होगा—मुझे इसका कुछ भी पता नहीं चल रहा है । मेरी इस युद्ध यात्रा के लिए तुम कोई अच्छा सा सारथि शीघ्र विचार लाओ ॥२॥

अष्टाविंशतिरात्रं वा मासं वा नूनमन्ततः ।
यत्तदासीन्महद्युद्धं तत्र मे सारथिर्हतः ॥३॥

जो पहिला (त्रिगर्तों से) युद्ध अट्ठाइस या तीस दिन तक हुआ था । उस युद्ध में मेरा एक बड़ा अच्छा सारथि मारा गया ।

स लभेयं यदा त्वन्यं हययानविदं नरम् ।
त्वरावानद्य यात्वाहं समुच्छ्रितमहाध्वजम् ॥४॥
विगाह्य तत्परानीकं गजवाजिरथाकुलम् ।
शस्त्रप्रतापनिर्वीर्यान् कूरून् जित्वानये पशून् ॥५॥

यदि मुझे अश्वयान में कुशल सारथि मिल गया, तो बड़ी शीघ्रता से अपनी ध्वजा को खड़ी करके अभी चला जाता हूँ और हाथी घोड़ों से व्याप्त शत्रु-सेना का आलोडन करके शस्त्र के प्रताप से हीन कौरवों को जीत कर मैं अपनी गायों को लौटा लाता हूं ॥ ४-५ ॥

दुर्य्योधनं शान्तनवं कर्णं वैकर्त्तनं कृपम् ।
द्रोणञ्च सहपुत्रेण महेष्वासान् समागतान् ॥६॥
वित्रासयित्वा संग्रामे दानवानिव वज्रभृत् ।
अनेनैव मुहूर्त्तेन पुनः प्रत्यानये पशून् ॥७॥

राजा दुर्योधन, शान्तनु-पुत्र भीष्म, सूर्य-पुत्र कर्ण, कृप, अपने पुत्र अश्वत्थामा सहित द्रोण तथा अन्य महाधनुर्धरों को रण में भयभीत करके इसी क्षण गायों को लौटा कर लाता हूं ॥ ६-७ ॥

शून्यमासाद्य कुरवः प्रयान्त्यादाय गोधनम् ।
किन्नु शक्यं मया कर्त्तुं यदहं तत्र नाभवम् ॥८॥

कौरवगण, शून्य पाकर गोधन को ले जा रहे हैं, जब मैं उस समय वहां था ही नहीं, तो फिर कर भी क्या सकता था ॥८॥

पश्येयुरद्य मे वार्य्यं कुरवस्ते समागताः ।
किन्नु पार्थोऽर्जुनः साक्षादयमस्मान् प्रबाधते ॥९॥

आये हुए कौरव, आज मेरा पराक्रम देखेंगे। कौरव ही क्या? यदि कुन्ती-पुत्र अर्जुन भी हमको पीड़ा पहुँचावे, तो आज मैं उसको भी अपना पराक्रम दिखाए बिना न रहूँगा ॥९॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा तदर्जुनो वाक्यं राज्ञः पुत्रस्य भाषतः ।
अतीतः समये काले प्रियां भार्य्यामनिन्दिताम् ॥१०॥
द्रुपदस्य सुतान्तन्वीं पाञ्चालीं पावकात्मजाम् ।
सत्यार्जवगुणोपेतां भर्त्तुः प्रियहिते रताम् ॥११॥
उवाच रहसि प्रीतः कृष्णां सर्वार्थकोविदः ।
उत्तरं ब्रूहि कल्याणि क्षिप्रं मद्वचनादिदम् ॥१२॥
अयं वै पाण्डवस्यासीत् सारथिः सम्मतो दृढः ।
महायुद्धेषु संसिद्धः स ते यन्ता भविष्यति ॥१३॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! स्त्रियों के मध्य में इस प्रकार कहते हुए उत्तर के कथन को अर्जुन भी सुन रहा था । इनका अज्ञात वास का समय पूरा हो चुका था, इस समय सर्व-गुण-सम्पन्न अपनी प्रिय भार्य्या, अग्नि से उत्पन्न, सत्य, सरलता आदि गुणों से समन्वित, पति के हित में तत्पर, द्रुपद-पुत्री, पाञ्चाली कृष्णा से सब नीतियों में कुशल, अर्जुन, प्रेम पूर्वक एकान्त में कहने लगा । हे कल्याणि ! तुम मेरे कहने से राज-पुत्र उत्तर से यह कह दो, कि यह बृहन्नला, अर्जुन का बड़ा माना हुआ दृढ़ सारथि है । इसने बड़े २ युद्ध देख रखे हैं । यह तेरा सारथि बन जावेगा ॥१०१३॥

वैशम्पायन उवाच—

तस्य तद्वचनं स्त्रीषु भाषतश्च पुनः पुनः ।
न सामर्षत पाञ्चाली बीभत्सोः परिकीर्त्तनम् ॥१४॥

अथैनमुपसङ्गम्य स्त्रीमध्यात् सा तपस्विनी ।
व्रीड़मानेव शनकैरिदं वचनमब्रवीत् ॥१५॥

वैशम्पायन बोले—राजकुमार, स्त्रियों में बार २ यही वचन कह रहा था। इस समय द्रौपदी अर्जुन को सारथि बनाने की अपनी भावना को नहीं रोक सकी। यह दुबली पतली द्रौपदी लज्जित की हुई स्त्रियों के मध्य से निकली और कुमार के पास पहुँच कर धीरे २ कहने लगी ॥१४-१५॥

योऽसौ बृहद्वारणाभो युवा सुप्रियदर्शनः ।
बृहन्नलेति विख्यातः पार्थस्यासीत् स सारथिः ॥१६
धनुष्यनवरश्चासीत्तस्य शिष्यो महात्मनः ।
दृष्टपूर्वो मया वीर चरन्त्या पाण्डवान् प्रति ॥१७॥

यह विशाल हाथी के आकार वाला, सुन्दर, युवा, बृहन्नला है। यह अर्जुन का बड़ा विख्यात सारथि रह चुका है। यह अर्जुन का हीं शिष्य है, उससे धनुष चलाने में भी कम नहीं है। हे वीर! इसे पाण्डवों के अन्तःपुर में सेवा करती हुई मैंने स्वयं देखा है ॥१६-१७॥

यदा तत्पावको दावमदहत् खाण्डवं वनम् ।
अर्जुनस्य तदानेन संगृहीता हयोत्तमाः ॥१८॥

जिस समय अर्जुन की सहायता से अग्नि ने खाण्डव वन को जलाया, उस समय अर्जुन के उत्तम अश्वों का इसी ने सञ्चालन किया था ॥१८॥

तेन सारथिना पार्थः सर्वभूतानि सर्वशः ।
अजयत् खाण्डवप्रस्थे न हि यन्तास्ति तादृशः ॥१९॥

इसी सारथि के कारण, अर्जुन ने खाण्डव-प्रस्थ में सारे प्राणियों को जीत लिया था । इसके बराबर मेरी दृष्टि में तो अन्य कोई सारथि नहीं है ॥१९॥

उत्तर उवाच—

सैरिन्ध्रि जानामि तथा युवानं नपुंसको नैव भवेद्यथासौ ।
अहं न शक्नोमि बृहन्नलां शुभे वक्तुं स्वयं यच्छ हयान्ममेति वै

उत्तर ने कहा—हे सैरिन्ध्री ! मैं जानता हूं, कि जैसा यह पुरुष युवा है, ऐसा युवा नपुंसक नहीं हो सकता है, परन्तु मैं तो संकोच वश बृहन्नला से यह कह नहीं सकता हूं, कि बृहन्नले ! तुम मेरे अश्वों को हांको ॥२०॥

द्रौपद्युवाच—

येयं कुमारी सुश्रोणी भगिनी ते यवीयसी ।
अस्याः स वीर वचनं करिष्यति न संशयः ॥२१॥

द्रौपदी बोली—हे वीर ! यह जो तुम्हारी छोटी सुन्दरी कुमारी बहिन है, इसके वचन को वह निश्चय मान लेगा—इसमें सन्देह नहीं है ॥२१॥

यदि वै सारथिः स स्यात् कुरून् सर्वान्न संशयः ।
जित्वा गाश्च समादाय ध्रुवमागमनं भवेत् ॥२२॥

यदि यह सारथि हो गया- तो निःसन्देह सारे कौरवों को जीतकर तुम्हारी सारी गायें लेकर ही लौटेगा ॥२२॥

एवमुक्तः स सैरिन्ध्या भगिनीं प्रत्यभाषत ।
गच्छ त्वमनवद्याङ्गि तामानय बृहन्नलाम् ॥२३॥

जब सैरिन्ध्री ने इतना कहा-तो उत्तर, अपनी बहिन से बोला, हे अनवद्याङ्गि ! तुम शीघ्र जाओ और बृहन्नला को ले आओ ।२३॥

सा भ्राता प्रेषिता शीघ्रमगच्छन्नर्त्तनागृहम् ।
यत्रास्ते स महाबाहुश्छन्नः सत्रेण पाण्डवः ॥२४॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि बृहन्नला-सारथ्यकथने षट्त्रिंशोऽध्याय ॥३६॥

भाई के भेजने पर उत्तर की बहिन उत्तरा, शीघ्र नर्तन-शाला में पहुंची, जहां पर कपट-वेष-धारी पाण्डु-पुत्र अर्जुन, रह रहा था।

इति श्रीमहाभारत विराटपर्व में गोहरण पर्व में बृहन्नला के सारथि बनने के कथन का छत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

सैंतीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

साभ्राद्रवत्काञ्चनमाल्यधारिणीज्येष्ठेन भ्रात्रा प्रहिता यशस्विनी
सुदक्षिणावेदिविलग्नमध्यासा पद्मपत्राभनिभा शिखण्डिनी ॥
तन्वी शुभाङ्गी मणिचित्रमेखला मत्स्यस्य राज्ञो दुहिता श्रिया वृता
तन्नर्त्तनागारमरालपक्ष्मा शतह्रदा मेघमिवाभ्यपद्यत ॥२॥

वैशम्पायन बोले—सुवर्ण की माला पहनने वाली, अपने बड़े भाई से भेजी हुई, यशस्विनी, अपने भाई की इच्छा के अनुकूल चलने वाली, वेदी के मध्य भाग के सदृश, कृश कटि वाली, कमल के नवीन पत्र के तुल्य, कोमल, विशाल मस्तक वाली, सर्वाङ्ग-सुन्दरी, मणियों से विचित्र मेखला (तगड़ी) पहिने हुए, कान्ति-मती, टेढ़ी चितवन वाली, मत्स्यराज की सुन्दरी कन्या, मेघ में बिजली की तरह नर्तन-शाला में जा चमकी ॥१–२॥

सा हस्तिहस्तोपमसंहतोरूरनिन्दिता चारुदती सुमध्यमा।
आसाद्यतंवैवरमाल्यधारिणीपार्थंशुभानागवधूरिवद्विपम्॥३

सर्व-गुण-सम्पन्न, चमकीले दांतों वाली, उत्तम पुष्प माला धारिणी, सुमध्यमा, हथिनी जैसे हाथी के पास जाती है, इसी तरह हाथी की सूंड के सदृश चूड़ी उतार जंघा वाली, उत्तरा अर्जुन के पास पहुंची ॥३॥

सारत्नभूतामनसःप्रियार्चितासुताविराटस्ययथेन्द्रलक्ष्मीः
सुदर्शनीयाप्रमुखेयशस्विनीप्रीत्याब्रवीदर्जुनमायतेक्षणा॥४॥

स्त्रियों में रत्न, सब के मन को प्रिय, इन्द्र की लक्ष्मी के समान पूज्य, मनोहर, यशस्विनी, विशाल नेत्रों वाली, विराट-पुत्री, अर्जुन के सम्मुख आकर प्रेम से यह वचन बोली ॥४॥

सुसंहतोरुं कनकोज्वलत्वचंपार्थःकुमारीं स तदाभ्यभाषत ।
किमागमःकाञ्चनमाल्यधारिणिमृगाक्षिकिन्त्वंत्वरितेवभाविनि
किं ते मुखं सुन्दरिनप्रसन्नमाचक्ष्वतत्वंममशीघ्रमङ्गने ॥५॥

गोल-जंघावाली, सुवर्ण की कान्ति-धारिणी, कुमारी उत्तरा से अर्जुन कहने लगा—हे सुवर्ण की माला धारिणी! मृगाक्षि! तुम कैसे आई और सटपटाई सी कैसे हो रही हो। हे सुन्दरि! आज तुम्हारा मुख कैसे प्रसन्न नहीं है। हे अङ्गने! इन सब बातों का रहस्य मुझे समझाइए ॥५॥

वैशम्पायन उवाच—

स तां दृष्ट्वा विशालाक्षीं राजपुत्रीं सखीं सखा।
प्रहसन्नब्रवीद्राजन् किमागमनमित्युत ॥६॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! विशाल नेत्रों वाली, सहचरी राजपुत्री से सहचर, अर्जुन, हंसता २ कहने लगा, हे भद्रे! तुम कैसे आई हो, प्रथम यह तो बताओ ॥६॥

तमब्रवीद्राजपुत्री समुपेत्य नरर्षभम्।
प्रणयम्भावयन्ती सा सखीमध्य इदं वचः ॥७॥

राजपुत्री, अपने प्रेम को प्रकट करती हुई, नर-श्रेष्ठ अर्जुन से सखियों के मध्य में यह वचन बोली ॥७॥

गावो राष्ट्रस्य कुरुभिः काल्यन्ते नो बृहन्नले।
तान् विजेतुं मम भ्राता प्रयास्यति धनुर्द्धरः ॥८॥

हे बृहन्नले! हमारे राष्ट्रकी गायों को कुरु लोग हांक कर ले जा रहे हैं, उनके जीतनेके लिए धनुर्धर मेरा भाई उत्तर जा रहा है ॥८

न चिरं निहतस्तस्य संग्रामे रथ सारथिः।
तेन नास्ति समः सूतो योऽस्य सारथ्यमाचरेत् ॥९॥

इसका बहुत थोड़े दिन हुए जब युद्ध में सारथि मारा गया। इससे अब कोई ऐसा सारथि दृष्टि-गोचर नहीं हो रहा है; जो इसका सारथि-पन कर दे ॥९॥

तस्मै प्रयतमानाय सारथ्यार्थं बृहन्नले ।
आचचक्षे हयज्ञाने सैरन्ध्री कौशलं तव ॥१०॥

हे बृहन्नले! यह किसी सारथि की खोज में प्रयत्न कर रहा था, कि सैरन्ध्री ने तुम्हारे अश्व हांकने के कौशल की प्रशंसा कर दी ॥१०॥

अर्जुनस्य किलासीस्त्वं सारथिर्दयितः पुरा।
त्वयाजयत् सहायेन पृथिवीं पाण्डवर्षभः ।
सा सारथ्यं मम भ्रातुः कुरु साधु बृहन्नले ॥११॥
दूराद्रतरं गावो ह्रियन्ते कुरुभिर्हि नः ।

सुना गया है, तुम पहिले अर्जुन के बड़े प्रिय सारथि रह चुके हो। तुम्हारी ही सहायता से पाण्डव-श्रेष्ठ, अर्जुन ने सारी पृथिवी को जीता है। हे बृहन्नले! इससे आज तुम मेरे भाई का सारथि-पन करो क्योंकि कौरव लोग, हमारी गायों को बहुत दूर हांक ले गए हैं ॥११॥

अथतद्वचनं मेऽद्य नियुक्तो न करिष्यसि ॥१२॥
प्रणयादुच्यमाना त्वं परित्यक्ष्यामि जीवितम् ।

यदि इस कार्य में नियुक्त किये हुए तुम मेरे वचन को पूरा नहीं करोगे, तो प्रेम हीन हुई मैं अपने प्राण छोड़ दूंगी ॥१२॥

एवमुक्तस्तु सुश्रोण्या तया सख्या परन्तपः ॥१३॥
जगाम राजपुत्रस्य सकाशममितौजसः ।

पुष्ट नितम्बों वाली, अपनी सहचरी राजपुत्री के इतना कहते ही शत्रु-विजयी, अर्जुन अत्यन्त-ओजस्वी राजपुत्र उत्तर के पास पहुँचा ॥१३॥

तमाव्रजन्तन्त्वरितं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् ॥१४॥
अन्वगच्छद्विशालाक्षी शिशुं गजवधूरिव ।

मद टपकाने वाले हाथी की तरह शीघ्रता से आते हुए, अर्जुन के पीछे, हाथी के बच्चे के पीछे हथिनी की तरह विशाल लोचनों वाली राजपुत्री भी आई ॥१४॥

दूरादेव तु तां प्रेक्ष्य राजपुत्रोऽभ्यभाषत ॥१५॥
त्वया सारथिना पार्थः खाण्डवेऽग्निमतर्पयत् ।
पृथिवीमजयत् कृत्स्नां कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥१६॥
सैरन्ध्रीत्वां समाचष्टे सा जानाति पाण्डवान् ।
संयच्छ मामकानश्वांस्तथैव त्वं बृहन्नले ॥१७॥
कुरुभिर्योत्स्यमानस्य गोधनानि परीप्सतः ।

राजकुमार इसको दूर से ही देख कर बोला—हे बृहन्नले ! तुम्हारे सारथि होने पर ही कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने खाण्डव वन में अग्नि को तृप्त और सारी पृथिवी का विजय किया है—यह बात सैरन्ध्री ने कही है। वही पाण्डवों को जानती भी है। आज तुम उसी तरह मेरे अश्वों का भी संयमन (हांकना) कर दो हूं। मैं अपनी गायें छुड़ाने के लिए कौरवों से युद्ध करने जा रहा हूँ ॥१५-१७॥

अर्जुनस्य किलासीस्त्वं सारथिर्दयितः पुरा ॥१८॥
त्वयाजयत्सहायेन पृथिवीं पाण्डवर्षभः ।

तुम तो पूर्वकाल में अर्जुन के सारथि बन चुके हो, उस पाण्डवर्षभ अर्जुन ने तुम्हारी ही सहायता से तो सारी पृथिवी जीती है ॥१८॥

एवमुक्ता प्रत्युवाच राजपुत्रं बृहन्नला ॥१९॥
का शक्तिर्मम सारथ्यं कर्त्तुं संग्राममूर्द्धनि ।
गीतं वा यदि वा नृत्यं वादित्रं वा पृथग्विधम् ।
तत्करिष्यामि भद्रन्ते सारथ्यं तु कुतो मम ॥२०॥

ऐसा कहने पर बृहन्नला राजकुमारी से कहने लगी—इस घोर संग्राम में सारथिपन करने की मुझ में शक्ति कहां से हो सकती है । मैं तो गाना, नाचना, भिन्न २ बाजे बजाना, जानती हूं । यह सब कुछ मैं अभी कर सकती हूं, परन्तु मुझ से सारथिपन कैसे किया जा सकता है ॥ १९-२० ॥

उत्तर उवाच —

बृहन्नले गायनो वा नर्त्तनो वा पुनर्भव ।
क्षिप्रं मे रथमास्थाय निगृह्णीष्व हयोत्तमान् ॥२१॥

उत्तर ने कहा—बृहन्नले ! गाना, नाचना, पीछे करना । अब जरा मेरे रथ के आसन पर बैठ कर मेरे अश्वों को हाँक दो ॥२१॥—

वैशम्पायन उवाच

स तत्र नर्मसंयुक्तमकरोत् पाण्डवो बहु ।
उत्तरायाः प्रमुखतः सर्वं जानन्नरिन्दमः ॥२२॥

ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य कवचं शरीरे प्रत्यमुञ्चत ।
कुमार्यस्तत्र तं दृष्ट्वा प्राहसन् पृथुलोचनाः ॥२३॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! पाण्डु-पुत्र, अरिमर्दन अर्जुन ने सब कुछ जानते हुए भी उत्तरा के सम्मुख, बहुत सी उपहासमयी चेष्टाएँ की। इसने उलटा करके शरीर पर कवच पहिना, जिस को देख कर विशालाक्षी, कन्याएँ हंसने लगी ॥ २२-२३ ॥

स तु दृष्ट्वा विमुह्यन्तं स्वयमेवोत्तरस्ततः ।
कवचेन महार्हेण समनह्यद् बृहन्नलाम् ॥२४॥

उत्तर ने इस तरह की बनावटी भूल करते हुए बृहन्नला रूप-धारी अर्जुन को देख कर हंसते २ आपने ही बृहन्नला को अमूल्य कवच पहिना दिया ॥२४॥

स बिभ्रत् कवचञ्चाग्र्यं स्वयमप्यंशुमत्तरम् ।
ध्वजञ्च सिंहमुच्छ्रित्य सारथ्यं समकल्पयत् ॥२५॥

इस समय सर्व-श्रेष्ठ, चमकीले कवच के पहनने में बृहन्नला ने भी उचित चेष्टा की। इसने रथ पर सिंह की ध्वजा फहरा कर अपने को सारथिपन के योग्य बना लिया ॥२५॥

धनूंषि च महार्हाणि बाणांश्च रुचिरान् बहून् ।
आदाय प्रययौ वीरः स बृहन्नलसारथिः ॥२६॥

वीर श्रेष्ठ राजकुमार, उत्तर, अमूल्य धनुष और बहुत से तीक्ष्ण बाण लेकर एवं बृहन्नला को सारथि बना कर युद्ध के लिए निकला ॥२६॥

अथोत्तरा च कन्याश्च सख्यस्तामब्रुवंस्तदा।
बृहन्नले आनयेथा वासांसि रुचिराणि च ॥२७॥
पाञ्चालिकार्थं चित्राणि सूक्ष्माणि च मृदूनि च।
विजित्य संग्रामगतान् भीष्मद्रोणमुखान् कुरून्॥ २८॥

अब उत्तरा और उसी की सखी कन्याएं बोलीं—हे बृहन्नले! देखो? तुम संग्राम में आये हुए भीष्म आदि कौरवों को जीत कर पाञ्चाली (सैरन्ध्री) के लिए सूक्ष्म (बारीक़) कोमल, वस्त्र लाना ॥ २७-२८ ॥

एवं ता ब्रुवतीः कन्याः सहिताः पाण्डुनन्दनः।
प्रत्युवाच हसन् पार्थो मेघदुन्दुभिनिस्वनः ॥२९॥

सारी इकट्ठी, कन्याओं के इतना कहने पर हंसता हुआ, पाण्डु नन्दन, अर्जुन, मेघ-ध्वनि के समान स्वर से कहने लगा ॥ २९ ॥

बृहन्नलोवाच—

यद्युत्तरोऽयं संग्रामे विजेष्यति महारथान्।
अथाहरिष्ये वासांसि दिव्यानि रुचिराणि च ॥३०॥

बृहन्नला बोली—यदि यह राजपुत्र उत्तर संग्राम में उन कौरव महारथियों को जीत लेगा, तो मैं उनके रुचिर मनोहर, कपड़े अवश्य छीन लाऊंगा ॥३०॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा तु बीभत्सुस्ततः प्राचोदयद्धयान्।
कुरूनभिमुखः शूरो नानाध्वजपताकिनः ॥३१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इतना कहकर शूर, अर्जुन ने कौरवों की ओर अनेक ध्वजा पताकाओं से मण्डित अश्वों को हांक दिया ॥३१॥

तमुत्तरंवीक्ष्य रथोत्तमेस्थितं बृहन्नलायासहितंमहाभुजम्।
स्त्रियश्चकन्याश्चद्विजाश्चसुव्रताः प्रदक्षिणंचक्रुरथोचुरङ्गनाः३२

उत्तम रथ में बृहन्नला के साथ में स्थित महाभुजाधारी, उत्तर को देखकर सारी स्त्री, कन्या और व्रतशील ब्राह्मणों ने उस रथ की परिक्रमा की और इस समय सारी स्त्रियां कहने लगीं ३२

यदर्जुनस्यर्षभतुल्यगामिनः पुराभवत्खाण्डवदाहमङ्गलम्।
कुरून् समासाद्यरणेबृहन्नले सहोत्तरेणाद्यतदस्तुमङ्गलम्३३

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
उत्तरनिर्याणे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

वृषभ की तरह गमन करने वाले, अर्जुन को खाण्डव वन के दाह के समय जिस मङ्गल विजय की प्राप्ति हुई—हे बृहन्नले! रण में आज उत्तर कुमार के साथ कौरवों को प्राप्त करके उसी मङ्गल विजय की प्राप्ति करो ॥३३॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में उत्तर के युद्धयात्रा का सैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

—:※:—

अड़तीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

स राजधान्या निर्याय वैराटिरकुतोभयः ।
प्रयाहीत्यब्रवीत् सूतं यत्र ते कुरवो गताः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! अपनी राजधानी से निकल कर निर्भीक विराट-पुत्र, सारथि से बोला, कि तुम उधर ही चलो, जिधर कौरव गए हैं ॥१॥

समवेतान् कुरून् सर्वान् जिगीषूनवजित्य वै ।
गास्तेषां क्षिप्रमादाय पुनरेष्याम्यहं पुरम् ॥२॥

जीतने की इच्छा वाले, सारे इकट्ठे ही कौरवों को जीत कर और उनसे शीघ्र गाएँ छीन कर फिर मैं पुर में लौटूँगा ॥२॥

ततस्तांश्चोदयामास सदश्वान् पाण्डुनन्दनः ।
ते हया नरसिंहेन चोदिता वातरंहसः ॥३॥
आलिखन्त इवाकाशमूहुः काञ्चनमालिनः ।

पाण्डु-नन्दन अर्जुन ने अब वेग से उत्तम अश्वों को चलाया । नर-श्रेष्ठ अर्जुन से हांके हुए वायु-वेग-शील सुवर्ण की माला धारण किये हुए अश्व आकाश में उड़ जाना चाहते थे ॥३॥

नातिदूरमथो गत्वा मत्स्यपुत्रधनञ्जयौ ॥४॥
अवेक्षेताममित्रघ्नौ कुरूणाम्बलिनां बलम् ।
श्मशानमभितो गत्वा आससाद कुरूनथ ॥५॥

शत्रु-विजयी, मत्स्य-पुत्र और धनञ्जय ने थोड़ी दूर जाकर महाबली कौरवों की सेना देखी। अर्जुन, प्रथम श्मशान की ओर गया और फिर कौरवों को जा घेरा ॥४-५॥

तां शमीमन्ववीक्षेतां व्यूढानीकांश्च सर्वशः।
तदनीकं महत्तेषां विबभौ सागरोपमम् ॥६॥

इन्होंने श्मशान में खड़े हुए उस शमी वृक्ष और व्यूह बना कर खड़ी हुई सेना को देखा। कौरव की यह महा-सेना समुद्र की तरह उछल रही थी ॥६॥

सर्पमाणमिवाकाशे वनं बहुलपादपम्।
ददृशे पार्थिवो रेणुर्जनितस्तेन सर्पता ॥७॥
दृष्टिप्रणाशो भूतानां दिवस्पृक्कुरु सत्तम।

इस उछलती हुई सेना से उठायी हुई भूमि की धूलि, आकाश को उड़ी जा रही थी, मानो अनेक वृक्षों से संकुल वन आकाश को उड़ा जा रहा हो। हे कुरु-वंश-श्रेष्ठ! जनमेजय! इस आकाशचारी धूलि से सब की दृष्टि के सामने अन्धेरी छा गई ॥७॥

तदनीकं महद्दृष्ट्वा गजाश्वरथसङ्कुलम् ॥८॥
कर्णदुर्योधनकृपैर्गुप्तं शान्तनवेन च।
द्रोणेन च सपुत्रेण महेष्वासेन धीमता।
हृष्टरोमा भयोद्विग्नः पार्थं वैराटिरब्रवीत् ॥९॥

गज, अश्व, रथों से व्याप्त, कर्ण, दुर्योधन, कृप, शान्तनु-पुत्र, भीष्म, अश्वत्थामा सहित रण कुशल, महा- धनुर्धर

द्रोणाचार्य से सुरक्षित, कौरवों की विशाल सेना को देख कर विराट-पुत्र उत्तर, के रोमाञ्च खड़े हो गए और यह भयभीत होकर अर्जुन से बोला ॥८-९॥

उत्तर उवाच—

नोत्सहे कुरुभिर्योद्धुं रोमहर्षं हि पश्य मे ।
बहुप्रवीरमत्युग्रं देवैरपि दुरासदम् ॥१०॥
प्रतियोद्धुं न शक्ष्यामि कुरुसैन्यमनन्तकम् ।

हे सारथिन ! मैं इन कौरवों से युद्ध नहीं कर सकता हूं, तुम मेरे रोमाञ्चों को देखो। इन कौरवों की विशाल-प्रचण्ड सेना में बहुत से उत्तम २ वीर हैं। यह तो देवों से भी नहीं जीती जा सकती है। मैं इस कुरुसेना से कभी युद्ध नहीं कर सकूंगा ॥१०॥

नाशंसे भारतीं सेनां प्रवेष्टुं भीमकार्मुकाम् ॥११॥
रथनागाश्वकलिलां पत्तिध्वजसमाकुलाम् ।
दृष्ट्वैव हि परानाजौ मनः प्रव्यथतीव मे ॥१२॥

भयानक धनुष हाथ में लिए हुए, वीरों से समन्वित, रथ, हाथी, अश्वों से परिपूर्ण, पैदल सैनिक और ध्वजाओं से युक्त इस भरतवंशियों की सेना में घुस जाने की मुझे आशा नहीं है। इस युद्ध में शत्रुओं को देखकर मेरा मन पीड़ित सा हो रहा है।

यत्र द्रोणश्च भीष्मश्च कृपः कर्णो विविंशतिः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तश्च बाह्लिकः ॥१३॥
दुर्योधनस्तथा वीरो राजा च रथिनां वरः ।
द्युतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥१४॥

जिस सेना में द्रोण, भीष्म, कृप, कर्ण, विविंशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाल्हिक, महारथी वीर राजा दुर्योधन हैं। जो सारे तेजस्वी, महा धनुर्धर और युद्ध विशारद हैं ॥१३-१४

दृष्ट्वैव हि कुरूनेतान् व्यूढानीकान् प्रहारिणः ।
हृषितानि च रोमाणि कश्मलश्चागतं मम ॥१५॥

इन दृढ़ सेना वाले, उत्तम प्रहार कर्त्ता, कुरुवीरों को देख कर मेरे रोमांच खड़े हो गए और मेरे चित्त में कायरता का सञ्चार हो उठा है ॥१५॥

वैशम्पायन उवाच—

अविजातो विजातस्य मौर्ख्याद्धूर्त्तस्य पश्यतः ।
परिदेवयते मन्दः सकाशे सव्यसाचिनः ॥१६॥

वैशम्पायन बोले—साधारण कोटि का अज्ञानी मनुष्य, उत्तर असाधारण, कपटवेशधारी अर्जुन के सामने ही देखते २ रोने चिल्लाने लगा ॥१६॥

त्रिगर्त्तान्मे पिता यातः शून्ये सम्प्रणिधाय माम् ।
सर्वां सेनामुपादाय न मे सन्तीह सैनिकाः ॥१७॥

मेरे पिता विराटेश्वर, सारी सेना लेकर त्रिगर्तों के सम्मुख चले गए और मुझे इस गहन अन्धकार में धकेल दिया है। मेरे पास कोई अच्छे सैनिक भी नहीं हैं ॥१७॥

सोऽहमेको बहून् बालः कृतास्त्रानकृतश्रमः ।
प्रतियोद्धुं न शक्ष्यामि निवर्तस्व बृहन्नले ॥१८॥

युद्ध-विद्या में अभी अकुशल मुझ बालक से इन शस्त्र विद्या के पण्डितों के सम्मुख नहीं लड़ा जा सकता है। हे बृहन्नले! तुम लौट चलो ॥१८॥

बृहन्नलोवाच—

भयेन दीनरूपोऽसि द्विषतां हर्षवर्द्धनः।
न च तावत् कृतं कर्म परैः किञ्चित् रणाजिरे॥१९॥

बृहन्नला बोली—हे कुमार! तुम तो भय से ही बड़े कातर हो गए हो। शत्रुओं ने तो रणाङ्गण में अभी तक कोई काम भी नहीं किया है। इस तरह तो तुम शत्रुओं के हर्ष के बढ़ाने वाले हो रहे हो ॥१९॥

स्वयमेव च मामात्थ वह मां कौरवान् प्रति।
सोऽहं त्वां तत्र नेष्यामि यत्र ते बहुला ध्वजाः॥२०॥

तुमने तो स्वयं कहा था, कि मुझे कौरवों के पास ले चलो। अब मैं तो तुमको वहीं ले जाकर खड़ा कर दूंगा, जहां ये बड़ी २ ध्वजा फहराते हुए कौरव खड़े हैं ॥२०॥

मध्यमामिषगृध्राणां कुरूणामाततायिनाम्।
नेष्यामि त्वां महाबाहो पृथिव्यामपि युध्यताम्॥२१

हे महाबाहो! मांस-लोलुप गीध की तरह झपटने वाले, पृथिवी पर बड़े युद्ध करने वाले, इन आततायी (धनापहारी) कौरवों के मध्य में तुमको अवश्य ले चलूंगा ॥२१॥

तथा स्त्रीषु प्रतिश्रुत्य पौरुषं पुरुषेषु च।
कत्थमानोऽभिनिर्याय किमर्थं न युयुत्ससे॥२२॥

तुम रनिवास की स्त्रियों में प्रतिज्ञा करके और प्रजा-जनों में अपने पौरुष की डींग मार कर आए हो, अब क्यों नहीं युद्ध करते हो? ॥२२॥

न चेद्विजित्य गास्तास्त्वं गृहान् वै प्रतियास्यसि ।
प्रहसिष्यन्ति वीर त्वां नरा नार्य्यश्च सङ्गताः ॥२३॥

हे वीर! यदि तुम गायों को जीत कर घर नहीं चलोगे, तो सारे नर नारी इकट्ठे होकर तुम्हारी हँसी करेंगे ॥२३॥

अहमप्यत्र सैरिन्ध्र्या ख्यातः सारथ्यकर्मणि ।
न च शक्याम्यनिर्जित्य गाः प्रयातुं पुरं प्रति ॥

मेरी तो सब लोगों से सैरिन्ध्री ने सारथिपन की प्रशंसा कर दी है। अब मैं तो गायों को विना लौटाए नहीं चल सकती हूं। इस तरह तो लोग, तेरी इस कायरता का दोष मेरे माथे मढ़ देंगे ॥२४॥

स्तोत्रेण चैव सैरिन्ध्र्यास्तव वाक्येन तेन च ।
कथं न युध्येयमहं कुरून् सर्वान् स्थिरो भव ॥२५॥

मैं तो सैरिन्ध्री की प्रशंसा और तेरे उन वाक्यों के बल पर चली आई। अब इन सारे कौरवों से मैं कैसे न लड़ूंगी। तुम जरा धैर्य रखो ॥२५॥

उत्तर उवाच—

कामं हरन्तु मत्स्यानां भूयांसः कुरवो धनम् ।
प्रहसन्तु च मां नार्य्यो नरा चापि बृहन्नले ॥२६॥
संग्रामे न च कार्य्यं मे गावो गच्छन्तु चापि मे ।
शून्यं मे नगरञ्चापि पितुश्चैव बिभेम्यहम् ॥२७॥

उत्तर ने कहा—हे बृहन्नले! कौरवों की इच्छा हो जितना मत्स्यों का धन छीन ले जावें तथा नर या नारी कितने ही इकट्ठे होकर हँसी करें, मैं तो युद्ध नहीं कर सकता हूं। गायों को ले जावें, तो ले जाने दो। मेरा तो नगर सूना पड़ा है, मैं तो पिताजी से डरता हूं, कि कहीं वे यह न कह दें, कि तुम नगर को सूना क्यों छोड़ गए ॥२६-२७॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्युक्त्वा प्राद्रवद्भीतो रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली।
त्यक्त्वा मानं च दर्पञ्च निसृज्य सशरन्धनुः ॥२८॥

वैशम्पायन ने कहा—कुण्डल धारण किए हुए, राजपुत्र उत्तर इतना कहकर और अपने मान तथा गर्व की कुछ भी परवाह न करके एवं बाणों सहित धनुष को वहीं छोड़कर भयभीत हुआ रथ से नीचे कूद पड़ा ॥२८॥

बृहन्नलोवाच—

नैष शूरैः स्मृतो धर्मः क्षत्रियस्य पलायनम्।
श्रेयस्तु मरणं युद्धे न भीतस्य पलायनम् ॥२९॥

बृहन्नला बोली—हे उत्तर! शूरवीरों ने क्षत्रियों का युद्ध से भाग निकलना धर्म नहीं माना है। युद्ध में मर जाना अच्छा है, परन्तु कातर होकर भागना ठीक नहीं है ॥२९॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा तु कौन्तेयः सोऽवप्लुत्य रथोत्तमात्।
तमन्वधावद्धावन्तं राजपुत्रं धनञ्जयः ॥३०॥
दीर्घां वेणीं विधुन्वानः साधु शुक्ले च वाससी।

वैशम्पायन कहने लगे—हे राजन्! इतना कह कर कुन्ती-पुत्र अर्जुन रथ से कूद पड़ा और भागते हुए राजपुत्र उत्तर के पीछे भागने लगा। इस समय बृहन्नला की लम्बी वेणी और उसके उज्ज्वल श्वेत वस्त्र फहरा रहे थे ॥३०॥

विधूय वेणीं धावन्तमजानन्तोऽर्जुनं तदा ॥३१॥
सैनिकाः प्राहसन् केचित्तथारूपमवेक्ष्य तम् ।

अपनी वेणी को हिलाकर दौड़ते हुए, अर्जुन को कोई सैनिक नहीं पहिचानता था। इन सैनिकों में कुछ सैनिक इस दृश्य को देख कर हंसने लगे ॥३१॥

तं शीघ्रमभिधावन्तं सम्प्रेक्ष्य कुरवोऽब्रुवन ॥३२॥
क एष वेशसंच्छन्नो भस्मन्येव हुताशनः ।

बृहन्नला को इस शीघ्रता से दौड़ता हुआ देखकर कौरव आपस में कहने लगे। यह भस्म में छुपी हुई आग की तरह स्त्री-वेष में छुपा हुआ कौन वीर है ॥३२॥

किञ्चिदस्य यथा पुंसः किञ्चिदस्य यथा स्त्रियः ३३
सारूप्यमर्जुनस्येव क्लीबरूपं बिभर्त्ति च ।

इसके कुछ लक्षण तो पुरुष के तुल्य और कुछ वेष आदि स्त्री के सदृश हैं। यह तो अर्जुन जैसा दिखाई देता है। सम्भव है, नपुंसक वेष अर्जुन ने ही बना रखा हो ॥३३॥

तदेवैतच्छिरोग्रीवं तौ बाहू परिघोपमौ ॥३४॥
तद्वदेवास्य विक्रान्तं नायमन्यो धनञ्जयात् ।

अर्जुन का सा ही विशाल शिर और कण्ठ है और वैसी ही अर्गला के सदृश बाहु हैं तथा उसी के सदृश पराक्रम है। यह तो अर्जुन के सिवा अन्य मनुष्य नहीं है ॥३४॥

अमरेष्विव देवेन्द्रो मानुषेषु धनञ्जयः ॥३५॥
एकः कोऽस्मानुपायायादन्यो लोके धनञ्जयात् ।

देवों में इन्द्र और मनुष्यों में अर्जुन है। अर्जुन को छोड़ कर कौन अकेला हमसे युद्ध करने आ सकता था ॥३५॥

एकः पुत्रो विराटस्य शून्ये सन्निहितः पुरे ॥३६॥
स एष किल निर्य्यातो बालभावान्न पौरुषात् ।

विराट का एक मात्र यह पुत्र, तो शून्य राजधानी की रक्षा पर नियुक्त था। वह अकेला ही युद्ध को निकल पड़ा, यह तो इसके बचपन का स्वभाव है, यह कोई वीरता से युद्ध के लिए नहीं आया है ॥३६॥

सत्रेण नूनं छन्नं हि चरन्तं पार्थमर्जुनम् ॥३७॥
उत्तरः सारथिं कृत्वा निर्यातो नगराद्बहिः ।
स नो मन्यामहे दृष्ट्वा भीत एष पलायते ।
तन्नूनमेष धावन्तं जिघृक्षति धनञ्जयः ॥३८॥

यह राजपुत्र उत्तर, वेष में अपने को छुपाकर फिरते हुए, अर्जुन को अपना सारथि बनाकर नगर से बाहर निकल आया है। अब यह हम लोगों को देखकर भयभीत हुआ भागता है और भाग कर जाते हुए को निश्चय अर्जुन ही पकड़ रहा है।

वैशम्पायन उवाच—

इति स्म कुरवः सर्वे विमृशन्तः पृथक् पृथक् ।
न च व्यवसितुं किञ्चिदुत्तरं शक्नुवन्ति ते ॥३९॥
छन्नं तथा तं सत्रेण पाण्डवं प्रेक्ष्य भारत ।

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! सारे कौरव, पृथक् २ इस तरह विचार कर रहे थे, परन्तु उत्तर के विषय में कपट वेषधारी अर्जुन को देखकर कुछ निश्चय नहीं कर पाते थे ॥३९॥

उत्तरन्तु प्रधावन्तमभिद्रुत्य धनञ्जयः ॥४०॥
गत्वा पदशतं तूर्णं केशपक्षे परामृशत् ।

भागकर जाते हुए उत्तर को देखकर धनञ्जय ने सौ पैंड (कदम) पर ही शीघ्र दौड़कर उत्तर के बाल पकड़ लिए ॥४०॥

सोऽर्जुनेन परामृष्टः पर्य्यदेवयदार्त्तवत् ।
बहुलं कृपणञ्चैव विराटस्य सुतस्तदा ॥४१॥

राजा विराट का पुत्र, अर्जुन के बाल पकड़ते ही, हीन और दुःखी की तरह बड़ी कातरता से रोने चिल्लाने लगा ॥४१॥

उत्तर उवाच—

शृणुयास्त्वं हि कल्याणि बृहन्नले सुमध्यमे ।
निवर्त्तय रथं क्षिप्रं जीवन् भद्राणि पश्यति ॥४२॥

उत्तर बोला—हे सुन्दर कटिवाली कल्याणि ! बृहन्नले ! तुम मेरी एक बात सुनो। तुम मेरे रथ को शीघ्र लौटा ले चलो। यदि मनुष्य जीता रहेगा, तो अनेक कल्याण देख लेगा ॥४२॥

शातकुम्भस्य शुद्धस्य शतं निष्कान् ददामि ते ।
मणीनष्टौ च वैदूर्य्यान् हेमबद्धान्महाप्रभान् ॥४३॥

हेमदण्डप्रतिच्छन्नं रथं युक्तञ्च सुव्रतैः ।

मत्तांश्च दश मातङ्गान् मुञ्च मान्त्वं बृहन्नले ॥४४॥

हे बृहन्नले ! मैं तुमको शुद्ध सुवर्ण के सौ निष्क (मुंहरें) तथा सुवर्ण में जड़ी हुई आठ नीली, चमकीली मणि, सुन्दर अश्वों से युक्त, सुवर्ण के दण्ड से भूषित, रथ और दश हाथी दूंगा, परन्तु तू इस समय मुझे छोड़ दे ॥४३-४४॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमादीनि वाक्यानि विलपन्तमचेतसम् ।

प्रहस्य पुरुषव्याघ्रो रथस्यान्तिकमानयत् ॥४५॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इस प्रकार कातर होकर दीनता से रोते चिल्लाते हुए राजपुत्र को समझा कर हंसतेर पुरुष-श्रेष्ठ, अर्जुन-रथ के पास लाया ॥४५॥

अथैनमब्रवीत् पार्थो भयार्त्तं नष्टचेतसम् ।

यदि नोत्सहसे योद्धुं शत्रुभिः शत्रुकर्षण ॥४६॥

एहि मे त्वं हयान् यच्छ युध्यमानस्य शत्रुभिः ।

प्रयाह्येतद्रथानीकं मद्बाहुबलरक्षितः ॥४७॥

अप्रधृष्यतमङ्घोरं गुप्तम्वीरैर्महारथैः ।

माभैस्त्वं राजपुत्राग्रय क्षत्रियोऽसि परन्तप ॥४८॥

कथं पुरुषशार्दूल शत्रुमध्ये विषीदसि ।

अहं वै कुरुभिर्योत्स्ये विजेष्यामि च ते पशून् ॥४९॥

अब इस भयातुर अज्ञानी उत्तर से अर्जुन कहने लगा, हे शत्रुकर्षण ! यदि तुम इन महाबली, शत्रुओं से युद्ध करने में

असमर्थ हो, तो आओ, मैं इन शत्रुओं से युद्ध करता हूं, तुम जरा मेरे अश्वों को हांक दो। तुम मेरे बाहुबल से सुरक्षित रह कर वीर महारथियों से सुरक्षित, किसी तरह आक्रमण के अयोग्य, इस घोर रथ पूर्ण सेना की ओर बढ़ चलो। हे परन्तप! तुम राजपुत्र और क्षत्रिय हो— तुमको इस तरह डरना नहीं चाहिए।

प्रविश्यैतद्रथानीकमप्रधृष्यं दुरासदम्।
यत्तो भव नरश्रेष्ठ योत्स्येऽहं कुरुभिः सह ॥५०॥

हे नर-श्रेष्ठ! तुम दुराधर्ष और दुर्गम इस रथ की सेना में घुस चलो और सावधान रहो- मैं इन कौरवों से स्वयं लड़ूंगा।

एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्वैराटिमपराजितः।
समाश्वास्य मुहूर्त्तन्तमुत्तरं भरतर्षभ ॥५१॥
तत एनं विचेष्टन्तमकामं भयपीड़ितम्।
रथमारोपयामास पार्थः प्रहरताम्वरः ॥५२॥
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
उत्तराश्वासने अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

हे भरतर्षभ! किसी से पराजित नहीं होने वाले, शस्त्र-धारियों में श्रेष्ठ, अर्जुन ने थोड़ी देर आश्वासन देकर निषेध करने की चेष्टा करते हुए भय-पीड़ित, रथ पर सारथिपन नहीं करने की इच्छा वाले विराटपुत्र उत्तर को ही रथ के आसन पर बैठा दिया ॥५१-५२॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में उत्तर को आश्वासन देने का अड़तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

उनतालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तं दृष्ट्वा क्लीबवेशेन रथस्थं नरपुङ्गवम्।
शमीमभिमुखं यान्तं रथमारोप्य चोत्तरम् ॥१॥
भीष्मद्रोणमुखास्तत्र कुरवो रथिसत्तमाः।
वित्रस्तमनसः सर्वे धनञ्जयकृताद्भयात् ॥२॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! क्लीब (नपुंसक) वेष में वीर-श्रेष्ठ अर्जुन को रथ में बैठा हुआ तथा उत्तर को रथ में बैठा कर शमी वृक्ष की ओर जाता हुआ देख कर भीष्म, द्रोण आदि कौरवों के महारथी, अर्जुन के भय से शङ्कित से हो गए॥१-२॥

तानवेक्ष्य हतोत्साहानुत्पातानपि चाद्भुतान्।
गुरुः शस्त्रभृतां श्रेष्ठो भारद्वाजोऽभ्यभाषत ॥३॥

कौरवों के सेनापतियों को हत उत्साह और अद्भुत उत्पातों को देख कर शस्त्र-धारियों का सर्वोत्तम गुरु, भरद्वाज वंशोत्पन्न द्रोणाचार्य यह वचन बोला ॥३॥

चण्डाश्च वाताः संवान्ति रूक्षाः शर्करवर्षिणः।
भस्मवर्णप्रकाशेन तमसा सम्भृतं नभः ॥४॥

रूक्षवर्णाश्च जलदा दृश्यन्तेऽद्भुतदर्शनाः ।
निःसरन्ति च कोशेभ्यः शस्त्राणि विविधानि च ॥

आज भयानक रूखी, मिट्टी धूल बरसाने वाली, पवन चल पड़ी और भस्म के वर्ण के समान अन्धकार ने सारा आकाश घेर लिया है। बादलों का वर्ण भी रूखा सा दिखाई देता है तथा अपने २ कोश (म्यान) से बहुत से शस्त्र निकल २ कर पड़ रहे हैं ॥४-५॥

शिवाश्च विनदन्त्येता दीप्तायां दिशि दारुणाः ।
हयाश्चाश्रूणि मुञ्चन्ति ध्वजाः कम्पन्त्यकम्पिताः ॥६

चारों ओर प्रदीप्त हुई दिशाओं में शृगाली दारुण शब्द कर रही है। अश्वों की आखों से पानी पड़ रहा है और ध्वजा विना कंपाए ही कांपती हैं ॥६॥

यादृशान्यत्र रूपाणि सन्दृश्यन्ते बहूनि च ।
यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु सांध्वसं समुपस्थितम् ॥७॥

ये जो बहुत से ढंग दिखाई दे रहे हैं, इनसे तो यही ज्ञात हो रहा है, कि वड़ा भय उपस्थित हो गया है, अब तुम लोग तनिक सावधान हो जाओ ॥७॥

रक्षध्वमपि चात्मानं व्यूहध्वं वाहिनीमपि ।
वैशसं च प्रतीक्षध्वं रक्षध्वंश्चापि गोधनम् ॥८॥

अब तुम अपनी रक्षा करो और सेना का व्यूह बना लो, क्योंकि वड़ा भारी घोर संग्राम होना है। तुम इस गोधन की भी रक्षा करते रहना ॥८॥

एष वीरो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृताम्वरः ।
आगतः क्लीववेशेन पार्थो नास्त्यत्र संशयः ॥९॥

आज शस्त्र-धारियों श्रेष्ठ, महाधनुर्धर वीरवर अर्जुन, क्लीव (हिजड़े) के वेष में सामने आ पहुँचा है—इसमें संशय नहीं है ॥९॥

नदीज लङ्केशवनारिकेतुर्नगाह्वयो नाम नगारिसूनुः ।
एषोऽङ्गनावेशधरः किरीटी जित्वाऽद्य यं नेष्यति चाद्य गावः

हे गङ्गा नदी के पुत्र श्रेष्ठ! भीष्म! रावण के बगीचे के शत्रु हनुमान् के चिन्ह वाली ध्वजा का धारण करने वाला, अर्जुन वृक्ष के नाम से साम्य रखने वाला, इन्द्र-पुत्र, वीरश्रेष्ठ मुकुटधारी अर्जुन आज स्त्री वेष में सामने आया है। यह जिसको जीत कर गायें ले जाता प्रतीत होता है, तुम प्रथम उस दुर्योधन की इस से रक्षा करते रहना ॥१०॥

स एष पार्थो विक्रान्तः सव्यसाची परन्तपः ।
नायुद्धेन निवर्त्तेत सर्वैरपि सुरासुरैः ॥११

यह सव्यसाची, शत्रु-तापी, अर्जुन बड़ा पराक्रमी है। यह बिना युद्ध किए देव दानवों से भी पीछे नहीं हटता है ॥११॥

क्लेशितश्च वने शूरो वासवेनापि शिक्षितः ।
अमर्षवशमापन्नो वासवप्रतिमो युधि ॥१२॥
नेहास्य प्रतियोद्धारमहम्पश्यामि कौरवाः ।

इस शूर को वन में बड़े क्लेश प्राप्त हुए हैं, जिससे यह क्रोध में भर रहा है। इसने इन्द्र से भी युद्ध की शिक्षा पाई है।

यह स्वयं युद्ध में इन्द्र के समान है। हे कौरवों ! मैं तो इसकी जोट का कोई योद्धा देखता ही नहीं हूं ॥१२॥

महादेवोऽपि पार्थेन श्रूयते युधि तोषितः ।
किरातवेशप्रच्छन्नो गिरौ हिमवति प्रभुः ॥१३॥

सुना जाता है, कि इस ने किरात-वेष-धारी भगवान् शंकर को भी अपने युद्ध-कौशल से युद्ध में हिमालय पर्वत पर सन्तुष्ट किया है ॥१३॥

कर्ण उवाच —

सदा भवान् फाल्गुनस्य गुणैरस्मान्विकत्थते ।
न चार्जुनः कलापूर्णो मम दुर्योधनस्य च ॥१४॥

कर्ण बोला—हे आचार्य ! आप सदा अर्जुन के गुण गा कर हमारी निन्दा प्रकट करते रहते हो परन्तु अर्जुन, मेरी या राजा दुर्योधन की कला (सोलहवां भाग) भी नहीं पा सकता है

दुर्य्योधन उवाच —

यद्येषपार्थो राधेय कृतं कार्यं भवेन्मम ।
ज्ञाताः पुनश्चरिष्यन्ति द्वादशाब्दान्विशाम्पते ॥१५॥

दुर्योधन ने कहा—हे राधा-पुत्र ! कर्ण ! यदि यह अर्जुन है, तो हमारा काम सिद्ध हो गया। हे विशाम्पते ! ये पहिचाने हुए पाण्डव फिर बारह वर्ष को वन में चले जावेंगे ॥१५॥

अथैष कश्चिदेवान्यः क्लीबवेशेन मानवः ।
शरैरेनं सुनिशितैः पातयिष्यामि भूतले ॥१६॥

यदि यह स्त्रीवेश में अन्य कोई पुरुष हुआ, तो हम तीक्ष्ण बाणों से इसको भूतल पर गिरा देंगे ॥१६॥

वैशम्पायन उवाच—

तस्मिन् ब्रुवति तद्वाक्यं धार्त्तराष्ट्रे परन्तप ।
भीष्मो द्रोणः कृपो द्रौणिः पौरुषन्तदपूजयन्॥१७॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
अर्जुनप्रशंसायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

हे परन्तप ! धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन के इतना कहने पर भीष्म द्रोण, कृप और अश्वत्थामा ने इनके उत्साह की बड़ी प्रशंसा की।

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में अर्जुन प्रशंसा का उनतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

—:※:—

चालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तां शमीमुपसङ्गम्य पार्थो वैराटिमब्रवीत् ।
कुमारं समाज्ञाय संग्रामे नातिकोविदम् ॥१॥

समादिष्टो मया क्षिप्रं धनूंष्यवहरोत्तर ।
नेमानि हि त्वदीयानि सोढुं शक्ष्यन्ति मे बलम् ॥२

भारश्चापि गुरु वोढुं कुञ्जराश्वान् प्रमर्दतः ।
मम वा बाहुविक्षेपं शत्रूनिह विजेष्यतः ॥३॥

वैशम्पायन बोले-हे भारत! अर्जुन, उस शमी वृक्ष के पास जाकर सुकुमार विराट-पुत्र को संग्राम में कच्चा जानकर कहने लगा—हे उत्तर! मैंने तुमको कह दिया, कि तुम अपने धनुष बाण उतार लो। ये तेरे धनुष, मेरे बल, इस भारी बोझे, शत्रुओं को जीतने के समय मेरी भुजाओं के आघातों को नहीं सह सकेंगे और न ये इन हाथियों के प्रमर्दन की शक्ति रखते हैं ॥१-३॥

तस्माद्भूमिञ्जयारोह शमीमेतां पलाशिनीम् ।
अस्यां हि पाण्डुपुत्राणां धनूंषि निहितान्युत ॥४॥
युधिष्ठिरस्य भीमस्य बीभत्सोर्यमयोस्तथा ।
ध्वजाः शराश्च शूराणां दिव्याणि कवचानि च ॥५॥
अत्र चैतन्महावीर्यं धनुः पार्थस्य गाण्डिवम् ।

हे भूमिञ्जय! पत्तों से भरी हुई इस शमी में पाण्डु-पुत्र शूर-वीर, राजा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव के धनुष, ध्वजा, बाण और दिव्य कवच रखे हैं। इसी में अर्जुन का गाण्डव धनुष है ॥३-५॥

एकं शतसहस्रेण सम्मितं राष्ट्रवर्द्धनम् ॥६॥
व्यायामसहमत्यर्थं तृणराजसमं महत् ।
सर्वायुधमहामात्रं शत्रुसम्बाधकारकम् ॥७॥

सुवर्णविकृतं दिव्यं श्लक्ष्णमायसमव्रणम् ।
अलम्भारं गुरुं वोढुं दारुणं चारुदर्शनम् ॥८॥

यह अकेला ही गाण्डीव सैकड़ों हज़ारों धनुषों के समान राष्ट्र की वृद्धि करने वाला है। इस पर जितना भी बल लगाया जावे-वह सबको सह लेता है, जो ताल वृक्ष के तुल्य विशाल है। यह सम्पूर्ण शस्त्रों से बड़ा और शत्रु का विध्वंस उड़ा देने वाला है, जो शुद्ध सुवर्ण से बना हुआ, दिव्य, लम्बा, चौड़ा, साफ, सुथरा, है। यह सारे भार को सह लेने में समर्थ है ॥६-८॥

तादृशान्येव सर्वाणि बलवन्ति दृढानि च ।
युधिष्ठिरस्य भीमस्य बीभत्सोर्यमयोस्तथा ॥९॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
अर्जुनास्त्रकथने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

इस धनुष के समान ही राजा युधिष्ठिर, भीम अर्जुन, नकुल सहदेव के अन्य युद्ध के परिकर कवचादि दृढ़ और बलशील हैं।

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में अर्जुन के अस्त्रों के कथन का चालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



इकतालीसवां अध्याय

उत्तर उवाच—

अस्मिन् वृक्षे किलोद्बद्धं शरीरमिति नः श्रुतम् ।
तदहं राजपुत्रः सन् स्पृशेयं पाणिना कथम् ॥१॥

उत्तर ने कहा—हे बृहन्नले ! इस वृक्ष में तो कोई मृतक शरीर बँधा हुआ पड़ा था-यह मैंने भी सुना है । मैं क्षत्रिय होकर फिर इस वृक्ष को हाथ से कैसे छू सकता हूं ॥१॥

नैवंविधं मया युक्तमालब्धुं क्षत्रयोनिना ।
महता राजपुत्रेण मन्त्रव्रतविदा सदा ॥२॥

क्षत्रिय होकर मुझे ऐसे वृक्ष को छूना नहीं चाहिए । इसके सिवा मैं एक बड़ा राजपुत्र और वेदमन्त्रों की विधि का जानने वाला हूं ॥२॥

स्पृष्टवन्तं शरीरं मां शववाहमिवाशुचिम् ।
कथं वा व्यवहार्य्यं वै कुर्वीथास्त्वं बृहन्नले ॥३॥

यदि मैंने इस मृतक शरीर को छू लिया, तो मैं मृतक ले जाने वालों के तुल्य ही अपवित्र हो जाऊंगा । हे बृहन्नले ! फिर तुम मेरे साथ कैसे व्यवहार करते रहोगे ॥३॥

बृहन्नलोवाच—

व्यवहार्य्यश्च राजेन्द्र शुचिश्चैव भविष्यसि ।
धनूंष्येतानि मा भैस्त्वं शरीरं नात्र विद्यते ॥४॥

बृहन्नला बोली—हे राजेन्द्र! तुम सब व्यवहार के योग्य और शुचि रहोगे। तुम डरो नहीं, यह मृतक शरीर नहीं है-यह तो सारे धनुषों का पुलन्दा है ॥४॥

दायादं मत्स्यराजस्य कुले जातं मनस्विनाम्।
त्वां कथं निन्दितं कर्म कारयेऽहं नृपात्मज ॥५॥

हे नृपात्मज! तुम मत्स्यराज के ज्येष्ठ-पुत्र और मनस्वी क्षत्रियों के वंशज हो। तुमसे मैं इस समय निन्दित कर्म कैसे करा सकती हूं ॥५॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तः स पार्थेन रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली।
आरुरोह शमीवृक्षं वैराटिरवशस्तदा ॥६॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! अर्जुन के इतना कहते ही कुण्डल-धारी विराट-पुत्र उत्तर, रथ से कूद पड़ा और अर्जुन की आज्ञा के आधीन उस शमी वृक्ष पर चढ़ गया ॥६॥

तमन्वशासत् शत्रुघ्नो रथे तिष्ठन् धनञ्जयः।
अवरोपय वृक्षाग्रात् धनूंष्येतानि मा चिरम् ॥७॥
परिवेष्टनमेतेषां क्षिप्रं चैव व्यपोनुद।

शत्रु-विजयी अर्जुन ने रथ में बैठे २ ही उसको समझा दिया और कहा-तुम शीघ्र इस वृक्ष से धनुषों को उतार लाओ, देर न करो और इनका ऊपर वेष्टन जल्दी दूर फेंक दो ॥७॥

सोऽपहृत्य महार्हाणि धनूंषि पृथुवक्षसाम् ॥८॥
परिवेष्टनपत्राणि विमुच्य समुपानयत ।
तथा सन्नहनान्येषां परिमुच्य समन्ततः ॥९॥

उत्तर भी, विशाल वक्षःस्थलधारी पाण्डवों के इन अमूल्य, धनुषों को वृक्ष से नीचे उतार कर तथा उनके ऊपर के वेष्टन को दूर फेंक कर अर्जुन के सामने लाया और इसने इनके अन्य बन्धन भी तोड़ ताड़ कर फैंक दिए ॥८-९॥

अपश्यद् गाण्डिवं तत्र चतुर्भिरपरैः सह ।
तेषां विमुच्यमानानां धनुषामर्कवर्चसाम् ॥१०॥
विनिश्चेरुः प्रभादिव्या ग्रहाणामुदयेष्विव ।

उत्तर ने अन्य चार धनुषों के साथ गाण्डीव धनुष के दर्शन किए। ऊपर का लपेटन खोल देने पर सूर्य के समान चमकीले उन धनुषों की दिव्य कान्ति, ग्रहों के उदय के समान फैलने लगी ॥१०॥

स तेषां रूपमालोक्य भोगिनामिव जृम्भताम् ॥११॥
हृष्टरोमा भयोद्विग्नः क्षणेन समपद्यत ।

अपने फन को उठा कर खड़े होते हुए भुजङ्ग-राजों के तुल्य इन धनुषों का आकार देख कर उत्तर क्षण भर में भय से उद्विग्न हो उठा और इसके रोमाञ्च खड़े हो गए ॥११॥

संस्पृश्य तानि चापानि भानुमन्ति बृहन्ति च ।
वैराटिरर्जुनं राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥१२॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
अस्त्रावरोपणे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

हे राजन् ! इन चमकीले विशाल धनुषों को उठा कर विराट-पुत्र. उत्तर, अर्जुन से यह वचन बोला ॥१२॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में अस्त्रों के वृक्ष से उतारने का इकतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

—:※:—

बयालीसवां अध्याय

उत्तर उवाच—

बिन्दवो जातरूपस्य शतं यस्मिन्निपातिताः ।
सहस्रकोटिसौवर्णाः कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥१॥

उत्तर कहने लगा—हे बृहन्नले ! जिस में सुवर्ण के सैकड़ों बिन्दु (घूंघरू) लगे हैं और जिसकी दोनों कोटि (सिरे) बड़ी दीप्तिमती हैं– यह किस कीर्तिशाली का धनुष है ॥१॥

वारणा यत्र सौवर्णाः पृष्ठे भासन्ति दंशिताः ।
सुपार्श्वं सुग्रहञ्चैव कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥२॥

जिस में सुवर्ण के हाथी खोदे हुए चमक रहे हैं तथा जिसके पार्श्व और पकड़ने का स्थान बड़ा सुचारु है, यह किस महाभाग का धनुष है ॥२॥

तपनीयश्च शुद्धस्य षष्टिर्यस्येन्द्रगोपकाः।
पृष्ठे विभक्ताः शोभन्ते कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥३॥

शुद्ध सुवर्ण से रचित, धनुष में साठ इन्द्रगोप (बीर बहूटी) बनाई हुई है, वे धनुष की पीठ पर खोदी हुई बड़ी ही शोभित हो रही हैं- यह धनुष किसका है ॥३॥

सूर्या यत्र च सौवर्णास्त्रयो भासन्ति दंशिताः।
तेजसा प्रज्वलन्तो हि कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥४॥

जिस धनुष में तीन सुवर्ण के सूर्य जड़ रखे हैं और जो चमकीले सूर्य, अपने तेज से देदीप्यमान हो रहे हैं, यह धनुष किसका है ॥४॥

शलभा यत्र सौवर्णास्तपनीयविभूषिताः।
सुवर्णमणिचित्रश्च कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥५॥

जिस धनुष में सुवर्ण के पानो से शलभ (पत्तो) जड़ रखे हैं और जिसमें सुन्दर वर्ण की मणियाँ जटित हैं- यह धनुष किसका है ॥५॥

इमे च कस्य नाराचाः सहस्रा लोमवाहिनः।
समन्तात् कलधौताग्र्या उपासङ्गे हिरण्मये ॥६॥

ये सहस्रों की संख्या में कङ्क-पत्तो के पत्रधारी, बाण किसके हैं, जिनके अग्र भाग में सुवर्ण लगा है और जो सुवर्ण के ही तूणीर में रखे हैं ॥६॥

विपाठाः पृथवः कस्य गार्द्ध्रपत्राः शिलाशिताः ।
हारिद्रवर्णाः सुसमाः पीताः सर्वायसाः शराः ॥७॥

स्थूल दण्डवाले, मोटे २ गृध्र के पक्ष धारी शिला (सिल्ली) पर तीक्ष्ण किये हुए, तेजाब से बुझे हुए, सब ओर से सुघटित, लोहे के बाण किसके हैं ॥७॥

कस्यायमसितश्चापः पञ्चशार्दूललक्षणः ।
वराहकर्णव्यामिश्रान् शरान् धारयते दश ॥८॥

पांच सिंहों के आकारों से चिन्हित, कृष्ण वर्ण वाला धनुष किसका है, जिस पर वराह के कान के समान दश बाण एक बार में ही चढ़ाए जाते हैं ॥८॥

कस्येमे पृथवो दीर्घाश्चन्द्रबिम्बार्द्धदर्शनाः ।
शतानि सप्त तिष्ठन्ति नाराचा रुधिराशनाः ॥९॥

ये मोटे, बड़े लम्बे, आधे चन्द्र के आकार के धारण करने वाले, रक्त-लोलुप सात सौ बाण किसके हैं ॥९॥

कस्येमे शुकपत्राभैः पूर्वैरर्द्धैः सुवाससः ।
उत्तरैरायसैः पीतैर्हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥१०॥

ऊपर के अर्ध भाग में शुक के पक्ष के समान हरित वर्ण और सुन्दर पत्रधारी, उत्तरके अर्ध भाग में सुवर्ण जटित पुङ्ख (बाण मूल) वाले, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए, सुवर्ण जटित लोहे के बाण किस के हैं ॥१०॥

गुरुभारसहो दिव्यः शात्रवाणां भयङ्करः ।
कस्यायं सायको दीर्घः शिलीपृष्ठः शिलीमुखः॥११॥

भारी भार के सह लेने में समर्थ, शत्रुओं को भयङ्कर, मेंडकी के पृष्ठ के समान चित्र विचित्र, और मेंडकी के मुख के समान लपलपाती हुई यह लम्बी तलवार किसकी है ॥११॥

वैयाघ्रकोशे निहतो हेमचित्रत्सरुरमहान् ।
पृथुलश्चित्रकोशश्च किङ्कणीसायको महान् ॥१२॥

व्याघ्र के चर्म के बने कोश (म्यान) में रखी हुई, सुवर्ण से चमकीली मूठ वाली, लम्बी, मोटी, चित्र विचित्र कोश वाली, किङ्किणी-युक्त, विशाल तलवार (खडग) किसकी है ॥१२॥

कस्य हेमत्सरुर्दिव्यः खड्गः परमनिर्मलः ।
कस्यायं विमलः खड्गो गव्ये कोशे समर्पितः॥१३॥

सुवर्ण की मूंढ़धारी, दिव्य, अत्यन्त चमकीला, साफ, गाय के चर्म के बने कोश में सुरक्षित खड्ग (तलवार) किस का है ॥

हेमत्सरुरनाधृष्यो नैषध्यो भारसाधनः ।
कस्य पाञ्चनखे कोशे सायको हेमविग्रहः ॥१४॥

सुवर्ण की मूँढ़ वाला, निषध देश में बना हुआ सारे भार को सह लेने मे समर्थ, सुवर्ण जटित, अज के चर्म के कोश में रखा हुआ, सारे भार को सह लेने में समर्थ, सुवर्ण जटित, अज के चर्म के कोश में रखा हुआ खड्ग (तलवार) किसका है ॥१४॥

प्रमाणरूपसम्पन्नः पीत आकाशसन्निभः ।
कस्य हेममये कोशे सुतप्ते पावकप्रभे ॥१५॥

प्रमाण (लम्बे चौड़ेपन) और रूप से सम्पन्न, सुवर्ण से जटित, आकाश के सदृश चमकीला कृष्ण वर्णधारी, तपे हुए, अग्नि के समान कान्तिधारी, तीक्ष्ण, जल में बुझा हुआ सुवर्ण के कोश में जो सुरक्षित है, यह किसका खड्ग है ॥१५॥

निस्त्रिंशोऽयं गुरुः पीतः सायकः परनिर्व्रणः ।
कस्यायमसितः खड्गो हेमबिन्दुभिरावृतः ॥१६॥

सात अङ्गुल प्रमाण से अधिक, भारी, (तेजाब) में तीक्ष्ण हुआ, शत्रुओं के शस्त्र से अधिक व्रण कारी, सुवर्ण के बिन्दुओं से समन्वित, यह कृष्ण खड्ग किसका है ॥१६॥

आशीविषसमस्पर्शः परकायप्रभेदनः ।
गुरुभारसहो दिव्यः सपत्नानां भयप्रदः ॥१७॥

सर्प के समान स्पर्श में भयङ्कर, शत्रु की काय के भेदन करने वाला, बड़े भार के सह लेने में समर्थ, शत्रुओं को भयदायी, खड्ग किसका है ।

निर्दिशस्व यथातत्त्वं यथा पृष्टा बृहन्नले ।
विस्मयो मे परो जातो दृष्ट्वा सर्वमिदं महत् ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
उत्तरस्यास्त्रदर्शने द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

हे बृहन्नले ! मैंने जिस क्रम से पूछा है—तुम उसी तरह मुझे बताओ। इन सब विशाल धनुष और खड्गधारियों को देख कर मुझे बड़ा ही विस्मय हो रहा है ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत विराट पर्वान्तर्गत गोहरण पर्व में उत्तर के अस्त्र देखने का बयालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

—:*:—

तैतालीसवां अध्याय

बृहन्नलोवाच —

यन्मां पूर्वमिहापृच्छः शत्रुसेनापहारिणम् ।
गाण्डीवमेतत् पार्थस्य लोकेषु विदितं धनुः ॥१॥

बृहन्नला बोली—हे उत्तर ! जो तुमने शत्रु सेना के नाशक धनुष को सर्व प्रथम पूछा है, यह अर्जुन का लोक प्रसिद्ध सबसे विशाल गाण्डीव धनुष है ॥१॥

सर्वायुधमहामात्रं शातकुम्भपरिष्कृतम् ।
एतत्तदर्जुनस्यासीत् गाण्डीवं परमायुधम् ॥२॥

सारे संसारके शस्त्रों से विशाल, शुद्ध सुवर्ण से देदीप्यमान, यह अर्जुन का महान गाण्डीव धनुष है ॥२॥

यत्तच्छतसहस्रेण सम्मितः राष्ट्रवर्द्धनम् ।
येन देवान् मनुष्यांश्च पार्थो विजयते मृधे ॥३॥

इसका गौरव लाखों धनुषों से अधिक माना जाता है और यह राष्ट्र को अत्यन्त वृद्धि करने वाला है। इसी से युद्ध में अर्जुन ने देव और मनुष्य का विजय किया है ॥३॥

चित्रमुच्चावचैर्वर्णैः श्लक्ष्णमायतमव्रणम् ।
देवदानवगन्धर्वैः पूजितं शाश्वतीः समाः ॥४॥

यह ऊँचे नीचे लगने वाले बाणों से विचित्र, शुद्ध, विशाल और व्रणहीन है। बहुत से वर्षों से देव, दानव और गन्धर्व इस धनुषपर श्रद्धा प्रकट करते आए हैं ॥४॥

एतद्वर्षसहस्रन्तु ब्रह्मा पूर्वमधारयत् ।
ततोऽनन्तरमेवाथ प्रजापतिरधारयत् ॥५॥
त्रीणि पञ्चशतं चैव शक्रोऽशीर्ति च पञ्च च ।
सोमः पञ्चशतं राजा तथैव वरुणः शतम् ॥६॥

इसको एक सहस्र वर्ष पर्यन्त ब्रह्माजी ने धारण किया था। इसके अनन्तर इस गाण्डीव को प्रजापति ने डेड हज़ार वर्ष तक अपने पास रखा और इन्द्र ने चार सौ वर्ष, राजा सोम ने पाँच सौ और इसी तरह वरुण ने सौ वर्ष तक इसको धारण किया है ॥५-६॥

पार्थः पञ्च च षष्टिश्च वर्षाणि श्वेतवाहनः ।
महावीर्यं महादिव्यमेतद्धनुरुत्तमम् ॥७॥
एतत् पार्थमनुप्राप्तं वरुणाच्चारुदर्शनम् ।
पूजितं सुरमर्त्येषु बिभर्ति परमं वपुः ॥८॥

श्वेत अश्वों को वाहन वाले, अर्जुन ने इस महाशक्तिशाली, उत्तम, सुन्दर, महादिव्य धनुष को साढ़े बत्तीस वर्ष (या पैंसठ) हुए, तब वरुण से प्राप्त किया है। यह सारे देव मनुष्यों में पूजित है, जो बड़ा विशाल आकार रखता है ॥७-८॥

सुपार्श्वं भीमसेनस्य जातरूपग्रहं धनुः ।
येन पार्थोऽजयत् कृत्स्नां दिशं प्राचीं परन्तपः ॥९।

जिसकी पार्श्व (बगलें) बड़ी सुन्दर है और जिसका पकड़ने का स्थान सुवर्ण का बना है—यह भीमसेन का धनुष है। इसी से कुन्ती-पुत्र शत्रुतापी भीमसेन ने पूर्व दिशा को जीता था ॥९॥

इन्द्रगोपकचित्रञ्च यदेतच्चारुदर्शनम् ।
राज्ञो युधिष्ठिरस्यैतत् वैराटे धनुरुत्तमम् ॥१०॥

हे विराटात्मज ! इन्द्रगोप (बीर-बहूटी) जन्तु के आकार से चित्रित, बड़ा दर्शनीय महाउत्तम-यह राजा युधिष्ठिर का धनुष है ॥१०॥

सूर्य्या यस्मिंस्तु सौवर्णाः प्रकाशन्ते प्रकाशिनः ।
तेजसा प्रज्वलन्तो वै नकुलस्यैतदायुधम् ॥११॥

जिस धनुष में सोने के जड़े हुए सूर्य प्रकाशित हो रहे हैं और जो अपनी चमक से चमचमाहट कर रहे हैं—यह तेजस्वी नकुल का धनुष है ॥११॥

शलभा यत्र सौवर्णास्तपनीयविचित्रिताः ।
एतन्माद्रीसुतस्यापि सहदेवस्य कार्मुकम् ॥१२

जिसमें सुवर्ण के शलभ पक्षी, शुद्ध सुवर्ण से विचित्र बना दिए गए हैं—यह माद्री-पुत्र वीर सहदेव का धनुष है ॥१२॥

ये त्विमे क्षुरसङ्काशाः सहस्रा लोमवाहिनः ।
एतेऽर्जुनस्य वैराटे शराः सर्पविषोपमाः ॥१३॥

ये जो क्षुर की धार के सदृश तीक्ष्ण, लोमों तक के काट देने में समर्थ, सहस्र बाण हैं— हे विराट-पुत्र ! ये सर्प विष के समान भीषण अर्जुन के बाण हैं ॥१३॥

एते ज्वलन्तः संग्रामे तेजसा शीघ्रगामिनः ।
भवन्ति वीरस्याक्षय्या व्यूहतः समरेरिपून् ॥१४॥

ये संग्राम में जलते रहते हैं और अपने तेज से बड़े शीघ्र जाते हैं। युद्ध में शत्रुओं पर प्रहार करते हुए महारथी के लिए ये बाण अक्षय हो जाते हैं ॥१४॥

ये चेमे पृथवो दीर्घाश्चन्द्रबिम्बार्द्धदर्शनाः ।
एते भीमस्य निशिता रिपुक्षयकराः शराः ॥१५॥

जो ये मोटे, लम्बे अर्थ-चन्द्राकार बाण हैं, ये रिपु के क्षय-कारी, भीम के तीव्र, बाण हैं ॥१५॥

हारिद्रवर्णा ये त्वेते हेमपुङ्खाः शिलाशिताः ।
नकुलस्य कलापोऽयं पञ्चशार्दूललक्षणः ॥१६॥

हरिद्रा के समान पीतवर्ण, सुवर्ण से जटित पुङ्ख (बाण-मूल) वाले, शिला पर तीक्ष्ण किए हुए, पांच सिंहों के चिन्हों से चिन्हित, यह महारथी नकुल के बाणों का समूह है ॥१६॥

येनासौ व्यजयत् कृत्स्नां प्रतीचीं दिशमाहवे ।
कलापो ह्येष तस्यासीन्माद्रीपुत्रस्य धीमतः ॥१७॥

जिसने जिस बाण-कलाप (समूह) से सारी पश्चिम दिशा को जीता है, यह वही बाण-कलाप, उसी बुद्धिमान, माद्री-पुत्र वीर नकुल का है ॥१७॥

ये त्विमे भास्कराकाराः सर्वपारसवाः शराः ।
एते चित्रक्रियोपेताः सहदेवस्य धीमतः ॥१८॥

ये सूर्य के आकारधारी, शत्रु के शरीर में प्रविष्ट हो जाने वाले, अनेक विचित्र क्रिया करने वाले बुद्धिमान वीर-श्रेष्ठ सहदेव के बाण हैं ॥१८॥

ये त्विमे निशिताः पीताः पृथवो दीर्घवाससः ।
हेमपुङ्खास्त्रिपर्वाणो राज्ञ एते महाशराः ॥१९॥

जो ये तीक्ष्ण, तेजाब के पानी में बुझे हुए, विशाल, दीर्घ पक्षधारी, सुवर्ण की मूल वाले, तीन पर्वों के बड़े २ बाण हैं, ये राजा युधिष्ठिर के दिव्य बाण हैं ॥१९॥

यस्त्वयं सायको दीर्घः शिलीपृष्ठः शिलीमुखः ।
अर्जुनस्यैष संग्रामे गुरुभारसहो दृढः ॥२०॥

मेंडकी के पीठ के सदृश चित्र विचित्र, मेंडकी के मुख के समान लपलपाता हुआ जो खड्ग है यह सङ्ग्राम में सारे भारों का सहन करने वाला दृढ़ अर्जुन का खड्ग है ॥२०॥

वैयाघ्रकोशः सुमहान् भीमसेनस्य सायकः।
गुरुभारसहो दिव्यः शात्रवाणां भयङ्करः ॥२१॥

व्याघ्र-चर्म के कोश में सुरक्षित, युद्ध में सारे भारों का धारी, शत्रुओं को भयभीत बना देने वाला, यह भीमसेन का दिव्य खड्ग है ॥२१॥

सुफलश्चित्रकोशश्च हेमत्सरुरनुत्तमः।
निस्त्रिंशः कौरवस्यैव धर्मराजस्य धीमतः ॥२२॥

सुन्दर धार वाला, अद्भुत कोश से समन्वित, सुवर्ण की मूंठ से सुशोभित, तीस अंगुल से भी विशाल, यह जो सर्वोत्तम खड्ग है- यह राजा युधिष्ठिर का खड्ग है ॥२२॥

यस्तु पाश्वनखे कोशे निहितश्चित्रयोधने।
नकुलस्यैष निस्त्रिंशो गुरुभारसहो दृढः ॥२३॥

जो अज कंचर्म के कोश में सुरक्षित, अद्भुत, युद्ध के समय सारे भार का सह लेने वाला दृढ़ खड्ग है- यह नकुल का है ॥२२॥

यस्त्वयं विपुलः खड्गो गव्ये कोशे समर्पितः।
सहदेवस्य विद्ध्येनं सर्वभारसहं दृढम् ॥२४॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरस्यास्त्रदर्शने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

जो यह विशाल, खड्ग गो चर्म के कोश में रखा है और सारे युद्ध के भार को सह लेने वाला है-यह सहदेव का दृढ़ खड्ग है॥२४

इति श्री महाभारत गोहरण पर्व में उत्तर को अस्त्र परिचय कराने का तेतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

चवालीसवां अध्याय

उत्तर उवाच—

सुवर्णविकृतानीमान्यायुधानि महात्मनाम् ।
रुचिराणि प्रकाशन्ते पार्थानामाशुकारिणाम् ॥१॥

उत्तर ने कहा—हे महाभागे ! सुवर्ण से बने हुए, बड़े सुन्दर, युद्ध में शीघ्रता दिखाने वाले, महात्मा पाण्डवों के ये दिव्य शस्त्र हैं ॥१॥

क नु स्विदर्जुनः पार्थः कौरव्यो वा युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पाण्डवः ॥२॥

आजकल, कुन्ती-पुत्र अर्जुन, कुरुवंश-श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर, नकुल सहदेव और पाण्डु-पुत्र भीम कहां हैं ॥२॥

सर्व एव महात्मानः सर्वामित्रविनाशनाः ।
राज्यमक्षैः पराकीर्य न श्रूयन्ते कथञ्चन ॥३॥

ये सारे ही महावीर, शत्रुओं के नाश करने वाले हैं । जब से इन्होंने पासे फेंक कर राज्य को हारा है, तभी से सुने नहीं जाते हैं, कि वे कहां हैं ॥३॥

द्रौपदी क च पाञ्चाली स्त्रीरत्नमिति विश्रुता ।
जितानक्षैस्तदा कृष्णा तानेवान्वगमद्वनम् ॥४॥

पाञ्चाल-पुत्री, द्रौपदी भी स्त्री रत्न है - यह सब जानते हैं । जब धृतराष्ट्र पुत्रों ने पाण्डवों को जीता, तभी से यह कृष्णा भी उन के साथ ही वन को चली गई हैं ॥४॥

अर्जुन उवाच—

अहमस्म्यर्जुनः पार्थः सभास्तारो युधिष्ठिरः ।
वल्लवो भीमसेनस्तु पितुस्ते रसपाचकः ॥५॥

अर्जुन ने कहा-हे राज-पुत्र ! मैं तो कुन्ती-पुत्र, अर्जुन हूं और सभासद् बना हुआ राजा युधिष्ठिर है । जो यह तेरे पिता को रसोई बनाता है, यह वल्लभ ही भीमसेन है ।

अश्वबन्धोऽथ नकुलः सहदेवस्तु गोकुले ।
सैरिन्ध्रीं द्रौपदीं विद्धि यत्कृते कीचका हताः ॥६॥

अश्वों का पालक नकुल और गो समूह में रहने वाला सहदेव है तथा जिस के कारण कीचक मारे गए यह सैरिन्ध्री ही द्रौपदी है ॥६॥

उत्तर उवाच—

दश पार्थस्य नामानि यानि पूर्वं श्रुतानि ते ।
प्रब्रूयास्तानि यदि मे श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ॥७॥

उत्तर ने कहा—मैं ने पूर्व में अर्जुन के दश नाम सुन रखे है । तुम प्रथम उन को सुनाओं, जिस से तुम्हारे वचनों पर मुझे श्रद्धा होवे ॥७॥

अर्जुन उवाच—

हन्त तेऽहं समाचक्षे दश नामानि यानि वै ।
वैराटे शृणु तानि त्वं यानि पूर्वं श्रुतानि ते ॥८॥
एकाग्रमानसो भूत्वा शृणु सर्वं समाहितः ।

अर्जुन बोला—हे विराट-पुत्र ! मैं तुम को अपने दश नाम सुनाता हूं, जिन को तुम ने पहिले से सुन रखा है। तुम जरा एकाग्र मन हो कर सावधान हो जाओ, मैं तुम को वे नाम सुनाता हूं ॥८॥

अर्जुनः फाल्गुना जिष्णुः किरीटी श्वेतवाहनः
बीभत्सुर्विजयः कृष्णः सव्यसाची धनञ्जयः ॥९॥

अर्जुन, फाल्गुन, जिष्णु, किरीटी, श्वेतवाहन, बीभत्सु, विजय, कृष्ण, सव्यसाची, धनञ्जय ये दश मेरे नाम हैं ॥९॥

उत्तर उवाच—

केनासि विजयो नाम केनासि श्वेतवाहनः ।
किरीटी नाम केनासि सव्यसाची कथं भवान् ॥१०॥
अर्जुनः फाल्गुनो जिष्णुः कृष्णो बीभत्सुरेव च ।
धनञ्जयश्च केनासि ब्रूहि तन्मम तत्त्वतः ११
श्रुता मे तस्य वीरस्य केवला नामहेतवः ।
तत्सर्वं यदि मां ब्रूयाः श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ॥१२॥

उत्तर ने कहा—आपके विजय, श्वेतवाहन किरीटी, सव्यसाची, अर्जुन, फाल्गुन, जिष्णु, कृष्ण, बीभत्सु, धनञ्जय, ये नाम कैसे पड़े—यह तुम मुझे ठीक २ समझाओ। मैं ने केवल अभी तक यही सुना है, कि उस वीर के इन नामों के विख्यात होने में कारण हैं। यदि तुम इन हेतुओं का कुछ वर्णन कर दोगे—तो मुझे आपके वचन पर बड़ी श्रद्धा होगी ॥१०-१२॥

अर्जुन उवाच—

सर्वान् जनपदान् जित्वा वित्तमादाय केवलम् ।

मध्ये धनस्य तिष्ठामि तेनाहुर्मां धनञ्जयम् ॥१३॥

अर्जुन कहने लगा—मैंने सारे देशों को जीतकर बहुत सा धन अर्जन किया था और मैं सदा धन के मध्य में रहता हूं, इसी से मेरा नाम धनञ्जय है ॥१३॥

अभिप्रयामि संग्रामे यदहं युद्धदुर्मदान् ।

नाजित्वा विनिवर्त्तामि तेन मां विजयं विदुः ॥१४॥

मैं युद्ध में दुर्मद, शत्रुओं का सग्राम में पीछा नहीं छोड़ता हूं और न उनके विना जीते लौटता हूं, इससे मेरा नाम विजय है।

श्वेताः काञ्चनसन्नाहा रथे युज्यति मे हयाः ।

संग्रामे युध्यमानस्य तेनाहं श्वेतवाहनः ॥१५॥

सुवर्ण के कवचधारी, श्वेत अश्व, युद्ध-समय में मेरे रथ में जोड़े जाते हैं, जिससे मैं श्वेत-वाहन हूं ॥१५॥

उत्तराभ्यां फल्गुनीभ्यां नक्षत्राभ्यामहं दिवा ।

जातो हिमवतः पृष्ठे तेन मां फाल्गुनं विदुः ॥१६॥

मैं हिमालय पर्वत पर उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में दिन के समय उत्पन्न हुआ हूं, इससे मुझे लोग, फाल्गुन कहते हैं ॥१६॥

पुरा शक्रेण मे दत्तं युध्यतो दानवर्षभैः ।

किरीटं मूर्ध्नि सूर्याभं तेनाहुर्मां किरीटिनम्॥१७॥

पूर्व काल में दानवों के साथ युद्ध करने पर मुझे उपहार में इन्द्र ने सूर्य के समान चमकीला, मस्तक पर धारण करने योग्य किरीट (मुकट) प्रदान किया था, जिससे लोग, मुझे किरीटी कहते हैं ॥१७॥

न कुर्य्यां कर्म बीभत्सं युध्यमानः कथञ्चन ।
तेन देवमनुष्येषु बीभत्सुरिति विश्रुतः ॥१८॥

मैं युद्ध के समय कभी बीभत्स कर्म नहीं करता हूं, इससे मैं देव और मनुष्यों में बीभत्सु नाम से प्रसिद्ध हूं ॥१८॥

उभौ मे दक्षिणौ पाणी गाण्डीवस्य विकर्षणे ।
तेन देवमनुष्येषु सव्यसाचीति मां विदुः ॥१९॥

मेरे दोनों हाथ, गाण्डवी धनुष के खैचने में कुशल हैं, इससे मैं देव और मनुष्यों में सव्यसाची कहलाता हूं ॥१९॥

पृथिव्यां चतुरन्तायां वर्णो दुर्लभः समः ।
करोमि कर्म शुक्लञ्च तेन मामर्जुनं विदुः ॥२०॥

चारों समुद्र की परिधि वाली, पृथिवी पर मेरे समान तेजस्वी कोई पुरुष नहीं है और मैं सब तरह से शुक्ल कर्म करता हूं, इससे मुझे लोग, अर्जुन नाम से पुकारते हैं ॥२०॥

अहं दुरापो दुर्द्धर्षो दमनः पाकशासनिः ।
तेन देवमनुष्येषु जिष्णुर्नामास्मि विश्रुतः ॥२१॥

मैं युद्ध में बड़ा दुर्धर्ष, दुर्लभ, शत्रु का दमन करने वाला और इन्द्र का पुत्र हूं, इससे देव मनुष्यों में जिष्णु नाम से विख्यात हूं ॥२१॥

कृष्ण इत्येव दशमं नाम चक्रे पिता मम।
कृष्णावदातस्य सतः प्रियत्वाद् बालकस्य वै ॥२२॥

मेरे पिता ने बड़े प्रेम से मेरा नाम कृष्ण रखा था, क्योंकि उज्ज्वल कृष्ण वर्णधारी बालक बड़ा ही सुन्दर प्रतीत होता है २२

वैशम्पायन उवाच—

ततः स पार्थं वैराटिरभ्यवादयदन्तिकात्।
अहं भूमिञ्जयो नाम नाम्नाहमपि चोत्तरः ॥२३॥

वैशम्पायन बोले—इतना सुन कर विराट-पुत्र ने पास जा कर अर्जुन को प्रणाम किया और कहा—मेरा नाम भी भूमिञ्जय इसी तरह प्रसिद्ध हुआ है और पिता ने उत्तर नाम रखा है।

दिष्ट्या त्वां पार्थ पश्यामि स्वागतं ते धनञ्जयः।
लोहिताक्ष महाबाहो नागराजकरोपम ॥२४॥
यदज्ञानादवोचं त्वां क्षन्तुमर्हसि तन्मम।
यतस्त्वया कृतं पूर्वं चित्रं कर्म सुदुष्करम्।
अतो भयं व्यतीतं मे प्रीतिश्च परमा त्वयि ॥२५॥
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
अर्जुनपरिचये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

हे पार्थ! मैं ने तुम्हारे दर्शन किए। इसका मुझे बड़ा हर्ष है। हे धनञ्जय! आपका स्वागत हो। हे लोहित-चक्षुधारी! महाबाहो! नागराज के समान भुजाओं से सुशोभित! कुन्ती पुत्र! यदि मैंने कुछ अज्ञान से कह दिया है, तो आप उस को

क्षमा करें। आपने पूर्वकाल में अनेक दुष्कर कर्म कर रखे हैं, इस से मेरा भय नष्ट हो गया है और आप में बड़ी प्रीति हो गई है।

इति श्री महाभारत विराटपर्वन्तर्गत गोहरणपर्व में अर्जुन के परिचय का चवांलीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

—:*:—

पैंतालीसवां अध्याय

उत्तर उवाच—

आस्थाय रुचिरं वीर रथं सारथिना मया।
कतमं यास्यसेऽनीकमुक्तो यास्याम्यहं त्वया ॥१॥

उत्तर ने कहा—हे वीर! अब आप, देदीप्यमान रथ में बैठ कर मुझ सारथि के साथ, कौन सी सेना में चल रहे हो। आप जब मुझे आज्ञा दोगे—मैं तभी उधर को चल दूँगा ॥१॥

अर्जुन उवाच—

प्रीतोऽस्मि पुरुषव्याघ्र न भयं विद्यते तव।
सर्वान्नुदामि ते शत्रून् रणे रणविशारद ॥२॥

अर्जुन ने कहा—हे पुरुष-व्याघ्र! तुम्हें अब भय नहीं रहा है, इस से मैं बड़ा प्रसन्न हो गया हूं। हे रण-कोविद! मैं अब तुम्हारे सारे शत्रुओं को दूर कर देता हूं ॥२॥

स्वस्थो भव महाबाहो पश्य मां शत्रुभिः सह ।
युध्यमानं विमर्देऽस्मिन् कुर्वाणं भैरवं महत् ॥३॥

हे महाबाहो ! अब तुम निशङ्क हो जाओ और इस महाघोर संग्राम में शत्रुओं के साथ युद्ध करते हुए तथा भयानक कर्म करके दिखाते हुए मुझे देखते रहो ॥३॥

एतान् सर्वानुपासङ्गान् क्षिप्रं बध्नीहि मे रथे ।
एकञ्चाहर निस्त्रिंशं जातरूपपरिष्कृतम् ॥४॥

तुम इन सारे तूणीरों को मेरे रथ में बांध दो और सुवर्ण से उज्ज्वल एक खड्ग इन में से ले लो ॥४॥

वैशम्पायन उवाच—

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा त्वरावानुत्तरस्तदा ।
अर्जुनस्यायुधान् गृह्य शीघ्रेणावतरत्ततः ॥५॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! अर्जुन के वचन सुन कर वेगशाली उत्तर, अर्जुन के शस्त्रों को ले कर बड़ी शीघ्रता से उस शमी वृक्ष से नीचे उतरा ॥५॥

अर्जुन उवाच—

अहं वै कुरुभिर्योत्स्याम्यवजेष्यामि ते पशून् ।
सङ्कल्पपक्षविक्षेप बाहुप्राकारतोरणम् ॥६॥
त्रिदण्डतूणसम्बाधमनेकध्वजसङ्कुलम् ।
ज्याक्षेपणं क्रोधकृतं नेमीनिनददुन्दुभिम् ॥७॥
नगरं ते मया गुप्तं रथोपस्थं भविष्यति ।

अर्जुन बोला—मैं तुम्हारे शत्रु कौरवों से युद्ध करूँगा और तुम्हारे पशुओं को लौटा लाऊँगा। मुझ से सुरक्षित यह रथ का ऊपरका भाग, तुम्हारी नगर की तरह रक्षा करेगा। इस रथ के चक्र धुरे, ध्वजा, युग (जूड़े) आदि नगर की गली, मेरी भुजाएँ, नगर के प्राकार (नगर-भित्ति) और तोरण (द्वार), रथ के तीन दण्ड, तीन प्रकार (रथ, हाथी और अश्वों) की शस्त्रधारिणी सेना, नगर की रक्षक सेना, अनेक प्रकार की रथ में लगी हुई ध्वजाएँ, नगर की ध्वजा पताका, क्रोध पूर्वक धनुष की डोरी फेंकना, सेना के पड़े रहने के नगर के गोल आसन (बुर्ज), रथ को नेमिका शब्द, दुन्दुभि की ध्वनि है। इस प्रकार यह रथ रूपी नगर तेरी रक्षा करता रहेगा॥ ६-७॥

अधिष्ठितो मया सङ्ख्ये रथो गाण्डीवधन्वना।
अजेयः शत्रुसैन्यानां वैराटे व्येतु ते भयम्॥८॥

हे विराट—पुत्र ! जब मैं गाण्डीव धनुष को धारण करके युद्ध में इस रथ पर महारथी के रूप में बैठ जाऊँगा। तब सारी शत्रु सेना को अजेय हो जाऊँगा। हे राजकुमार ! तुम अपना भय निकाल डालो॥८॥

उत्तर उवाच—

बिभेमि नाहमेतेषां जानामि त्वां स्थिरं युधि।
केशवेनापि संग्रामे साक्षादिन्द्रेण वा समम्॥९॥

उत्तर ने कहा—हे महाभाग ! अब मैं इन से नहीं डरता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप युद्ध में बड़े स्थिर हो। आप संग्राम में भगवान् विष्णु और देवराज इन्द्र के तुल्य हो॥९॥

इदन्तु चिन्तयन्नेवं परिमुह्यामि केवलम् ।
निश्चयञ्चापि दुर्मेधा न गच्छामि कथञ्चन ॥१०॥

यह सब कुछ सोच कर भी मुझे मोह हो ही जाता है। मुझ मूर्ख को इस समय कुछ भी निश्चय नहीं होता है ॥१०॥

एवं युक्ताङ्गरूपस्य लक्षणैः सूचितस्य च ।
केन कर्मविपाकेन क्लीवत्वमिदमागतम् ॥११॥

इस प्रकार समीचीन अङ्गों से युक्त और शुभ लक्षणों से सूचित होने वाले आप को किस कर्म विपाक से यह क्लीवत्व (नपुंसकपन) प्राप्त हुआ है ॥११॥

मन्ये त्वां क्लीववेशेन चरन्तं शूलपाणिनम् ।
गन्धर्वराजप्रतिमं देवं वापि शतक्रतुम् ॥१२॥

मैं तो क्लीव वेष में घूमते हुए आप को साक्षात् शूलपाणि शंकर, गन्धर्वराज या शत-क्रतु इन्द्र के सदृश पराक्रमी, समझता रहा हूं ॥१२॥

अर्जुन उवाच—

भ्रातुर्नियोगात् ज्येष्ठस्य सम्वत्सरमिदं व्रतम् ।
चरामि व्रतचर्यञ्च सत्यमेतत् ब्रवीमि ते ॥१३॥

अर्जुन ने कहा—हे उत्तर! मैं ने अपने ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा से एक सम्वत्सर तक इस कठिन व्रत को धारण किया था। यह तुम से मैं सत्य कह रहा हूं ॥१३॥

नास्मि क्लीबो महाबाहो परवान् धर्मसंयुतः।
समाप्तव्रतमुत्तीर्णं विद्धि मां त्वं नृपात्मज ॥१४॥

हे महाबाहो ! मैं सचमुच क्लीब नहीं हूं, मैं तो धर्म के परतन्त्र हो रहा हूं। हे नृपात्मज ! अब मैं उस कठिन व्रत को समाप्त कर चुका—तुम यह समझ लो ॥

उत्तर उवाच—

परमोऽनुग्रहो मेऽद्य यतस्तर्को न मे वृथा।
न हीदृशाः क्लीबरूपा भवन्ति तु नरोत्तमाः ॥१५॥

उत्तर ने कहा—हे महानुभाव ! आप ने मुझ पर बड़ी कृपा की। मेरा तर्क (खयाल) वृथा नहीं निकला। हे नरोत्तम ! क्या कहीं ऐसे उत्तम रूपधारी क्लीब (नपुंसक) हो सकते हैं ॥१५॥

सहायवानस्मि रणे युध्येयममरैरपि।
साध्वसं हि प्रनष्टं मे किं करोमि ब्रवीहि मे ॥१६॥

मुझे आज आप से बड़ी सहायता प्राप्त हुई है। अब तो मैं देवों से भी युद्ध कर सकता हूं। मेरा साध्वस नष्ट हो चुका है—अब बताओ क्या करूँ ॥१६॥

अहन्ते संग्रहीष्यामि हयान् शत्रुरथारुजान्।
शिक्षितो ह्यस्मि सारथ्ये तीर्थतः पुरुषर्षभ ॥१७॥

मैं तो शत्रु के रथों को तोड़ देने वाले तुम्हारे अश्वों को हांकता रहूंगा। हे पुरुषर्षभ ! मैंने रथ का हांकना गुरु से सीखा है ॥१७॥

महाभारत चित्र संख्याः—५४



राजकुमार उत्तर का बृहन्नला (अर्जुन) द्वारा कौरवों के सन्मुख रण में ले जाना और रथ का सारथि बनाना:—

महाभारत विराटपर्व अ० ३७। १। पृष्ठ १७

दारुको वासुदेवस्य यथा शक्रस्य मातलिः ।
तथा मां विद्धि सारथ्ये शिक्षितं नरपुङ्गव ॥१८॥

हे नर-पुङ्गव ! श्रीकृष्ण का दारुक, इन्द्र का मातलि, जैसा उत्तम सारथि है, वैसा ही मैं सारथिपन में सुशिक्षित हूं ॥१८॥

यस्य याते न पश्यन्ति भूमौ क्षिप्तं पदं पदम् ।
दक्षिणां यो धुरं युक्तः सुग्रीवसदृशो हयः ॥१९॥

गमन के समय भूमि पर जिसके चरणों को कोई नहीं देख पाता है और जो दांई धुर को धारण करता है, वह मेरा यह अश्व, श्रीकृष्ण के सुग्रीव अश्व के सदृश उत्तम है ॥१९॥

योऽयं धुरं धुर्य्यवरो वामं वहति शोभनः ।
तं मन्ये मेघपुष्पस्य जवने सदृशं हयम् ॥२०॥

जो यह बांई ओर की धुर को धारण करने वाला सुन्दर अश्व है, इसको मेघ-पुष्प अश्व के समान वेगशील मानता हूं ॥२०॥

योऽयं काञ्चनसन्नाहः पार्ष्णिं वहति शोभनः ।
समं शैब्यस्य तं मन्ये जवेन बलवत्तरम् ॥२१॥

जो यह सुवर्ण का कवचधारी, अगले अश्व के पीछे बांई ओर चलता है, इसको श्रीकृष्ण के शैब्य अश्व के समान वेग में बलवान् मानता हूं ॥२१॥

योऽयं वहति ते पार्ष्णिं दक्षिणामभितः स्थितः ।
बलाहकादभिमतः स जवे वीर्य्यवत्तरः ॥२२॥

जो यह दांई ओर दूसरे अश्व के पीछे जुड़ा हुआ मेरा अश्व है, इसको मैं श्रीकृष्ण के चौथे अश्व, बलाहक के समान वेगशील और बलवान् समझता हूं ॥२२॥

त्वामेवायं रथो वोढुं संग्रामेऽर्हति धन्विनम् ।
तच्चेमं रथमास्थाय योद्धुमर्हो मतो मम ॥२३॥

यह रथ, संग्राम में आप जैसे धनुषधारी का भी वाहन बन सकेगा। आप इस रथ में बैठ कर मेरे खयाल से तो अच्छी तरह युद्ध कर सकते हैं ॥२३॥

वैशम्पायन उवाच—

ततो विमुच्य बाहुभ्यां बलयानि स वीर्य्यवान् ।
चित्रे काञ्चनसन्नाहे प्रत्यमुञ्चत्तदा तले ॥२४॥
कृष्णान् भङ्गिमतः केशान् श्वेतेनोद्ग्रथ्य वाससा ।

वैशम्पायन बोले-हे राजन्! इतना कहकर वीर्यवान् अर्जुन ने अपनी भुजाओं से कङ्कण खोल दिए तथा करतल में सुवर्ण के जटित, अङ्गुलि-त्राण पहन लिए और अपनी टेढ़ी मांग वाले केशों को श्वेत-वस्त्र से कस लिया ॥२४॥

अथासौ प्राङ्मुखो भूत्वा शुचिः प्रयतमानसः ॥२५॥
अभि दध्यौ महाबाहुः सर्वास्त्राणि रथोत्तमे ।
ऊचुश्च पार्थं सर्वाणि प्राञ्जलीनि नृपात्मजम् ॥२६॥
इमे स्म परमोदाराः किङ्कराः पाण्डुनन्दन ।

अब इन महाबाहु शुद्धता से युक्त, अर्जुन ने पूर्व दिशा को मुख करके एकाग्र मन से रथ में ही सारे शस्त्रों का ध्यान किया। वे सारे शस्त्र, हाथ जोड़कर राज-पुत्र अर्जुन के सन्मुख आकर और हाथ जोड़कर कहने लगे। हे पाण्डु-नन्दन! हम सब भांति से आज्ञा में तत्पर, किङ्कर रूप से आपकी सेवा में उपस्थित हैं।

प्रणिपत्य ततः पार्थः समालभ्य च पाणिना ॥२७॥
सर्वाणि मानसानीह भवतेत्यभ्यभाषत ।

अर्जुन ने उनको नमस्कार की तथा अपने हाथ में उठाया और कहा आपको जब स्मरण किया जावे, तब शीघ्र उपस्थित हो जाना ॥२७॥

प्रतिगृह्य ततोऽस्त्राणि प्रहृष्टवदनोऽभवत् ॥२८॥
अधिज्यन्तरसा कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद्धनुः ।

अर्जुन, शस्त्र उठा कर खिल उठा और गाण्डीव धनुष को डोरी पर चढ़ा कर उसको बजाने लगा ॥२८॥

तस्य विक्षिप्यमाणस्य धनुषोऽभून्महाध्वनिः ॥२९॥
यथा शैलस्य महता शैलेनैवाभिजघ्नतः ।

गाण्डीव धनुष की डोरी के खैंचते ही महाध्वनि होने लगी—जैसे बड़े भारी पर्वत से दूसरा महापर्वत टकरा रहा हो ॥२९॥

सनिर्घातोऽभवद्भूमिर्दिक्षु वायुर्ववौ भृशम् ॥३०॥
पपात महती चोल्का दिशो न प्रचकाशिरे ।
भ्रान्तद्विजं खन्तदासीत् प्रकम्पितमहाद्रुमम् ॥३१॥

इस धनुष की महाध्वनि ने भूमि को कम्पायमान कर दिया और दिशाओं में अत्यन्त वेग से वायु चलने लगा। चारों ओर उल्कापात (तारे से टूटना) होने तथा सब ओर अन्धेरा छा जाने से दिशाओं में कुछ भी दिखाई नहीं देने लगा। इस से सारे पक्षियों में खलबली पड़ गई और वे वृक्ष को कम्पित करते हुए आकाश को उड़ गए ॥३०-३१॥

तं शब्दं कुरवाऽजानन् विस्फोटमशनेरिव ।
यदर्जुनो धनुश्रेष्ठं बाहुभ्यामाक्षिपद्रथे ॥३२॥

रथ में बैठे हुए अर्जुन ने जब अपनी भुजाओं से गाण्डीव धनुष को इधर-उधर खैंच कर बजाया, तो कौरवों ने उस शब्द को जाना, कि कहीं बिजली गिरी है ॥३२॥

वैशम्पायन उवाच—

एकस्त्वं पाण्डवश्रेष्ठ बहूनेतान्महारथान् ।
कथं जेष्यसि संग्रामे सर्वशस्त्रास्त्रपारगान् ॥३३॥

उत्तर ने कहा—हे पाण्डव-श्रेष्ठ ! तुम अकेले ही इन बहुत से सारे शस्त्र अस्त्र विद्या में कुशल महारथियों को संग्राम में कैसे जीत लोगे ॥३३॥

असहायोऽसि कौन्तेय ससहायाश्च कौरवाः ।
अत एव महाबाहो भीतस्तिष्ठामि तेऽग्रतः ॥३४॥

हे कौन्तेय ! तुम तो असहाय और कौरव सहायता से युक्त हैं। हे महाबाहो ! मुझे इस बात का बड़ा डर है ॥३४॥

उवाच पार्थो मा भैषीः प्रहस्य स्वनवत्तदा।
युध्यमानस्य मे वीर गन्धर्वैः सुमहाबलैः॥३५॥
सहायो घोषयात्रायां कस्तदासीत् सखा मम।

अर्जुन ने हंस कर गम्भीर ध्वनि से कहा—हे राजकुमार! तुम किसी बात की चिन्ता न करो। हे वीर! जब दुर्योधन ने घोषयात्रा की थी और मेरा महाबली गन्धर्वों से युद्ध छिड़ा था, उस समय मेरा कौन सहायक और कौन सखा था॥३५॥

तथा प्रतिभये तस्मिन् देवदानवसङ्कुले॥३६॥
खाण्डवे युध्यमानस्य कस्तदासीत् सखा मम।

देव दानवों से व्याप्त, बड़े संकट के समय खाण्डव बन में युद्ध छिड़ जाने पर मेरा कौन सहायक था॥३६॥

निवातकवचैः सार्द्धं पौलोमैश्च महाबलैः॥३७॥
युध्यतो देवराजार्थे कः सहायस्तदाभवत्।

स्वर्ग में देवराज इन्द्र की सहायता के लिए निवातकवच और महाबली पौलोमों के साथ युद्ध करने के समय मेरा कौन साथी था॥३७॥

स्वयम्वरे तु पाञ्चाल्या राजभिः सह संयुगे॥३८॥
युध्यतो बहुभिस्तात कः सहायस्तदाभवत्।

हे तात! द्रौपदी के स्वयम्वर में युद्ध उपस्थित होजाने पर अनेक राजाओं से युद्ध करने के समय मेरा कौन सहायक था॥३८

उपजीव्य गुरुं द्रोणं शक्रं वैश्रवणं यमम् ॥३६॥
वरुणं पावकञ्चैव कृपं कृष्णं च माधवम् ।
पिनाकपाणिनं चैव कथमेतान्न योधये ॥४०॥
रथं वाहय मे शीघ्रं व्येतु ते मानसो ज्वरः ।
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
अर्जुनयुद्धारम्भे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

गुरुवर द्रोणाचार्य, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, कृपाचार्य, लक्ष्मीवान श्रीकृष्ण, पिनाक धनुषधारी भगवान् शङ्कर की कृपा से मैं इन कौरवों से क्यों नहीं लड़ सकूंगा। अब तुम मेरा रथ शीघ्र चला दो। तुम अपने मनमें कुछ चिन्ता न करो।३६-४०

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में अर्जुन के युद्ध का पैंतालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

—:*:—

छियालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

उत्तरं सारथिं कृत्वा शमीं कृत्वा प्रदक्षिणाम् ।
आयुधं सर्वमादाय प्रययौ पाण्डुनन्दनः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन! पाण्डु-नन्दन, अर्जुन, उत्तर को सारथि बनाकर और उस शमी वृक्ष की प्रदक्षिणा करके एवं सारे अस्त्र लेकर युद्ध के लिए चल दिया ॥१॥

ध्वजं सिंहं रथात्तस्मादपनीय महारथः ।
प्रणिधाय शमीमूले प्रायादुत्तरसारथिः ॥२॥

महारथि अर्जुन ने अब उत्तर के रथ की सिंहाकार ध्वजा को रथ से उतार दिया और उसको शमी वृक्ष के मूल में रख कर उत्तर को सारथि बनाए हुए आगे बढ़ चला ॥२॥

दैवीं मायां रथे युक्त्वा विहितां विश्वकर्मणा ।
काञ्चनं सिंहलाङ्गूलं ध्वजं वानरलक्षणम् ॥३॥

अर्जुन ने विश्वकर्मा से बनायी हुई, दैवीमाया के समान अद्भुत, सिंह की पूंछ के समान सुवर्ण के दण्ड में लगी हुई, वानर की ध्वजा, रथ में लगाली ॥३॥

मनसा चिन्तयामास प्रसादं पावकस्य च ।
स च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा ध्वजे भूतान्यदेशयत् ॥४॥

अग्नि की कृपा से प्राप्त हुई, इस ध्वजा का अर्जुन ने मन से ध्यान किया। अग्नि ने इसके इस चिन्तन को जान कर ध्वजा में सब देवों को प्रविष्ट होजाने की प्रेरणा की ॥४॥

सपताकं विचित्राङ्गं सोपासङ्गं हिरण्मयम् ।
खात्पपात रथन्तूर्णं दिव्यरूपं मनोरमम् ॥५॥
रथं तमागतं दृष्ट्वा दक्षिणं प्राकरोत्तदा ।

पताकाओं से युक्त, विचित्र चक्र आदि अङ्गों से समन्वित, तूणीर सहित, सुवर्णमय, दिव्य, मनोहर, रथ, अचानक आकाश से उतर आया। इस आये हुए रथ को देखकर अर्जुन ने इसकी प्रदक्षिणा की ॥५॥

रथमास्थाय बीभत्सुः कौन्तेयः श्वेतवाहनः ॥६॥

बद्धगोधाङ्गुलित्राणः प्रगृहीतशरासनः ।

ततः प्रायादुदीचीं च कपिप्रवरकेतनः ॥७॥

कुन्ती-पुत्र, श्वेत अश्वों का वाहन वाला, अर्जुन, गोधा के चर्म के अङ्गुलित्राण पहन कर और धनुष उठाकर इस रथ में बैठ गया। यह कपि की ध्वजा को अपने रथ में लगा कर युद्ध भूमि में उत्तर दिशा को चल पड़ा ॥६-७॥

स्वनवन्तं महाशङ्खं बलवानरिमर्दनः ।

प्राधमद् बलमास्थाय द्विषतां लोमहर्षणम् ॥८॥

अब अरिमर्दन, बलवान् अर्जुन ने शत्रुओं के लोम खड़े कर देने वाला, महाध्वनि से युक्त, बड़े भारी शङ्ख को बड़े बल के साथ बजाया ॥८॥

ततस्ते जवना धुर्य्या जानुभ्यामगमन्महीम् ।

उत्तरश्चापि सन्त्रस्तो रथोपस्थ उपाविशत् ॥९॥

रथ की धुर वहन करने वाले वेगशील अश्व, अपने जानुओं (टांगों) के बल से भूमि पर भागने लगे। उत्तर भी, कुछ चिन्तातुर सा होकर रथ पर बैठ ही गया ॥९॥

संस्थाप्य चाश्वान् कौन्तेयः समुद्यम्य च रश्मिभिः ।

उत्तरं च परिष्वज्य समाश्वासयदर्जुनः ॥१०॥

कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने रस्सी खींचकर अश्वों को ठहराया और राजपुत्र उत्तर का आलिङ्गन करके उसको आश्वासन (तसल्ली) दिया ॥१०॥

अर्जुन उवाच—

मा भैस्त्वं राजपुत्राग्र्य क्षत्रियोऽसि परन्तप ।
कथं पुरुषशार्दूल शत्रुमध्ये विषीदसि ॥११॥

अर्जुन कहने लगा—हे शत्रुविजयी ! राजपुत्र ! डरो नहीं, तुम तो क्षत्रिय-श्रेष्ठ हो । हे पुरुष-शार्दूल ! शत्रु के मध्य में तुमको इस तरह चिन्तातुर नहीं होना चाहिए ॥११॥

श्रुतास्ते शङ्खशब्दाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः ।
कुञ्जराणां च नदतां व्यूढानीकेषु तिष्ठताम् ॥१२॥
स त्वं कथमिहानेन शङ्खशब्देन भीषितः ।
विषण्णरूपो वित्रस्तः पुरुषः प्राकृतो यथा ॥१३॥

तुमने शङ्ख और भेरियों के तथा दृढ़ सेना में स्थित गर्जते हुए हाथियों के शब्द सुन रखे हैं, फिर इस युद्ध में होने वाले इस शङ्ख शब्द को सुनकर कैसे घबरा गए हो । तुम तो साधारण पुरुष की तरह कातर और व्याकुल हुए जा रहे हो ॥१२-१३॥

उत्तर उवाच—

श्रुता मे शङ्खशब्दाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः ।
कुञ्जराणां च नदतां व्यूढानीकेषु तिष्ठताम् ॥१४॥
नैवंविधः शङ्खशब्दः पुरा जातु मया श्रुतः ।
ध्वजस्य चापि रूपं मे दृष्टपूर्वं न हीदृशम् ॥१५॥
धनुषश्चापि निर्घोषः श्रुतपूर्वो न मे क्वचित् ।

उत्तर कहने लगा—इसमें सन्देह नहीं, कि मैंने शङ्ख भेरियों तथा दृढ़ सेना में गर्जते हुए हाथियों के बहुत से शब्द सुन रखे हैं, परन्तु इस तरह शङ्ख शब्द, मैंने तो कभी सुना नहीं। इसके सिवा ध्वजा का रूप भी इस ढंग का मैंने तो पूर्व में कभी देखा नहीं और न ऐसा धनुष का घोष कभी मेरे कान में आया है१४-१५

अस्य शङ्खस्य शब्देन धनुषो निःस्वनेन च ॥१६॥
अमानुषेण शब्देन भूतानां ध्वजवासिनाम्।
रथस्य च निनादेन मनो मुह्यति मे भृशम् ॥१७॥

इस शङ्ख के शब्द, धनुष की ध्वनि, ध्वजाओं पर आ कर रहे हुए भूतों के मनुष्यातिशायी, कोलाहल एवं रथ के नाद से मेरा मन अत्यन्त मोहित सा हुआ जा रहा है ॥१६-१७॥

व्याकुलाश्च दिशः सर्वा हृदयं व्यथतीव मे।
ध्वजेन पिहिताः सर्वा दिशो न प्रतिभान्ति मे।
गाण्डीवस्य च शब्देन कर्णौ मे बधिरीकृतौ ॥१८॥

सारी दिशायें व्याकुल (अन्धेरे आदि से आच्छन्न) हो रही हैं, मेरा हृदय फटा जा रहा है। इस ध्वजा से ढकी हुई सारी दिशायें सूझती ही नहीं है। और गाण्डीव के शब्द ने तो मेरे कान बहरे कर दिए॥१ ॥

अर्जुन उवाच—

एकान्तं रथमास्थाय पद्भ्यां त्वमवपीडय।
दृढं च रश्मीन् संयच्छ शङ्खं ध्मास्याम्यहं पुनः ॥१६

अर्जुन ने कहा—हे राजकुमार! अब तुम इस सुदृढ़ रथ पर बैठकर पैरों से अच्छी तरह अण्टो लगा कर रथ के आसन को पकड़ लो, और अश्वों की रस्सी (बाग) को खैंच लो, मैं फिर शङ्ख बजाता हूं ॥१६॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः शङ्खमुपाध्मासीद्दारयन्निव पर्वतान्।
द्विषतां दुःखजननं सुहृदां हर्षवर्द्धनम् ॥२०॥
गुहा गिरीणां च तदा दिशः शैलास्तथैव च।
उत्तरश्चापि संलीनो रथोपस्थ उपाविशत् ॥२१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! अब अर्जुन ने पर्वतों को चीरता हुआ सा, शत्रुओं के दुःख का बढ़ाने वाला और मित्रों का हर्षवर्द्धक, शङ्ख बजाया। इस शब्द ने पर्वतों की गुफाएँ, दिशा और पर्वतों को भी कम्पायमान कर दिया। उत्तर भी इस शब्द को सुनकर रथ के चिपक कर बैठ गया ॥२१॥

तस्य शङ्खस्य शब्देन रथनेमिस्वनेन च।
गाण्डीवस्य च शब्देन पृथिवी समकम्पत।
तं समाश्वासयामास पुनरेव धनञ्जयः ॥२२॥

इस शङ्ख के शब्द और रथ की नेमि की ध्वनि एवं गाण्डीव की टङ्कार से पृथिवी कांपने लगी। धनञ्जय ने फिर राजपुत्र उत्तर को सान्त्वना दी ॥२२॥

द्रोण उवाच—

तथा रथस्य निर्घोषो यथा मेघ उदीर्य्यते ।
प्रकम्पते यथा भूमिर्नैषोऽन्यः सव्यसाचिनः ॥२३॥

द्रोण बोला—रथ का घोष इस तरह का प्रतीत हो रहा है, जैसे मेघ गर्ज रहा है। भूमि इस ढंग से कांप रही है, जिससे पता लग रहा है, कि यह अर्जुन है। अर्जुन के सिवा यह कोई अन्य वीर नहीं हो सकता है ॥२३॥

शस्त्राणि न प्रकाशन्ते न प्रहृष्यन्ति वाजिनः ।
अग्नयश्च न भासन्ते समिद्धास्तन्न शोभनम् ॥२४॥

आज न तो शस्त्रों में तेज दिखाई देता है और न अश्व उत्साह प्रकट कर रहे हैं। अग्नि प्रज्वलित किया हुआ प्रकाश नहीं दे रहा है। ये सब लक्षण अच्छे नहीं प्रतीत होते हैं ॥२४॥

प्रत्यादित्यं च नः सर्वे मृगा घोरप्रवादिनः ।
ध्वजेषु च निलीयन्ते वायसास्तन्न शोभनम् ॥२५॥
शकुनाश्चापसव्या नो वेदयन्ति महद्भयम् ।

वन के जीव-जन्तु सूर्य की ओर मुख कर बुरी तरह शब्द कहरहे हैं और कव्वे ध्वजाओं में छुपते जा रहे हैं। ये लक्षण भी अच्छे नहीं हैं ॥२५॥

गोमायुरेष सेनायां रुवन्मध्ये प्रधावति ॥२६॥
अनाहतश्च निष्क्रान्तो महद्वेदयते भयम् ।
भवतां रोमकूपानि प्रहृष्टान्युपलक्षये ॥२७॥

अनेक पक्षी बांई ओर आकर बोलते हैं, जो आगे आने वाले महा-भय की सूचना देते हैं। यह शृगाल भी चीखता चिल्लाता

हुआ सेना के मध्य में इधर उधर दौड़ जाता है। यह गीदड़ भी (बिना पिटे ही) साफ निकल गया, यह बात तो अवश्य भय की ही सूचना करने वाली है। मुझे तो आपलोगों के भी रोमांच खड़े हुए से दिखाई दे रहे हैं ॥२७॥

ध्रुवं विनाशो युद्धेषु क्षत्रियाणां प्रदृश्यते।
ज्योतींषि न प्रकाशन्ते दारुणा मृगपक्षिणः ॥२८॥

आज इस युद्ध में निश्चय क्षत्रियों का विनाश होगा। सारे सूर्यादिग्रह, नक्षत्र, कुछ भी चमक नहीं दिखा रहे हैं और मृग, पक्षी बड़े अशुभ शकुनों को प्रकट कर रहे हैं ॥२८॥

उत्पाता विविधा घोरा दृश्यन्ते क्षत्रनाशनाः।
विशेषत इहास्माकं निमित्तानि विनाशने ॥२९॥

क्षत्रियों के विनाश के अनेक घोर उत्पात दिखलाई दे रहे हैं, परन्तु विशेष करके तो ये हमारे पक्ष के नाशक, शकुन हैं ॥२९॥

उल्काभिश्च प्रदीप्ताभिर्बाध्यन्ते पृतना तव।
वाहनान्यप्रहृष्टानि रुदन्तीव विशाम्पते ॥३०॥

हे विशाम्पते! प्रदीप्त होकर गिरते हुए उल्कापातों से तुम्हारी सेना में बड़ी खलबली मच गई है और अश्वादि सारे वाहन उदास होकर रोदन कर रहे हैं ॥३०॥

उपासते च सैन्यानि गृद्धास्तव समन्ततः।
तप्स्यसे वाहिनीं दृष्ट्वा पार्थबाणप्रपीड़िताम् ॥३१॥

हे राजन ! तुम्हारी सेना में चारों ओर से आकर गीध-पक्षी झपट रहे हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि अर्जुन के बाणों से छिन्न-भिन्न हुई अपनी सेना को देखकर तुम अभी सन्तापित होने वाले हो ॥३१॥

पराभूता च नः सेना न कश्चिद्योद्धुमिच्छति।
विवर्णमुखभूयिष्ठाः सर्वे योधा विचेतसः।
गाश्च प्रस्थाप्य तिष्ठामो व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥३२

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
उत्पातदर्शने षट्चत्वरिंशोऽध्यायः ॥४६॥

हमारी सेना का उत्साह मर सा गया है और कोई भी सैनिक युद्ध करना नहीं चाहता है। सारे योद्धाओं के मुख का वर्ण उड़ गया है और वे अचेत से हो रहे हैं। हम लोगों ने गायें तो आगे को चलती करदी हैं और अब हम युद्ध की आशङ्का से यहां सेना का व्यूह बना कर खड़े हैं ॥३२॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में उत्पात दर्शन का छियालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



सैंतालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

अथ दुर्योधनो राजा समरे भीष्ममब्रवीत् ।
द्रोणं च रथशार्दूलं कृपं च सुमहारथम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! इतना सुन कर राजा दुर्योधन, युद्ध के मध्य में ही भीष्म-पितामह, महारथियों में सिंह के समान पराक्रमी, द्रोणाचार्य और महारथी श्रेष्ठ, कृपाचार्य से कहने लगा

उक्तोऽयमर्थ आचार्यो मया कर्णेन चासकृत् ।
पुनरेव च वक्ष्यामि न हि तृप्यामि तं ब्रुवन् ॥२॥

हे महाभागो ! मैंने और कर्ण ने आचार्य द्रोण से यह बात बार २ कह दी है और मैं फिर उसी बात को कहता हूं, क्योंकि परिणाम के निकले विना उसको मुझे बार २ कहना ही चाहिए ॥२॥

पराजितैर्हि वस्तव्यं तैश्च द्वादशवत्सरान् ।
वने जनपदेऽज्ञातैरेष एव पणो हि नः ॥३॥

हमारा और पाण्डवों का यह पण (द्यूत की शर्त) हो गया था, कि यदि हम हार गए, तो बारह वर्ष तक वन में निवास करेंगे । तेरहवाँ वर्ष, वन में अज्ञात रूप से छुप कर कहीं काटेंगे ॥३॥

तेषां न तावन्निर्वृत्तं वर्त्तते तु त्रयोदशम् ।
अज्ञातवासो बीभत्सुरथास्माभिः समागतः ॥४॥

वे लोग, अपने इस कथन का निर्वाह नहीं कर सके, क्योंकि यह तेरहवाँ वर्ष व्यतीत हो रहा है। अर्जुन इस तेरहवें वर्ष में अज्ञातवास करता हुआ ही हमारे सामने आगया है ॥४॥

अनिवृत्तेऽपि निर्वासे यदि बीभत्सुरागतः ।
पुनर्द्वादशवर्षाणि वने वत्स्यन्ति पाण्डवाः ॥५॥

अज्ञातवास का समय पूरा न होने पर जो यह अर्जुन युद्ध के लिए सम्मुख आया है, इस से इन पाण्डवों को फिर बारह वर्ष तक वन में निवास करना पड़ेगा ॥५॥

लोभाद्वा ते न जानीयुरस्मान् वा मोह आविशत् ।
हीनातिरिक्तमेतेषां भीष्मो वेदितुमर्हति ॥६॥

पाण्डवों को भी राज्य-प्राप्ति का लोभ लगा है और हम भी राज्य के लालच में फँसे हुए समझे जा सकते हैं, परन्तु हम दोनों को समान मानने वाले भीष्म पितामह, इस अज्ञातवास की अवधि को पूर्णता अपूर्णता का निर्णय कर सकते हैं ॥६॥

अर्थानां हि पुनर्द्वैधे नित्यं भवति संशयः ।
अन्यथा चिन्तितो ह्यर्थः पुनर्भवति चान्यथा ॥७॥
स्वार्थे सर्वे विमुह्यन्ति येऽपि धर्मविदो जनाः ।

जब किसी बात के निश्चय करने के समय उन विषयों में मत-भेद खड़ा हो जाता है, तो ऐसे समय में संशय ही रहता है। किसी बात को अन्य प्रकार से निर्णीत कर लेने पर भी सम्भव है, वह अन्य प्रकार से न्याय युक्त हो सकती हो, क्योंकि जो धर्म के जानने वाले पुरुष हैं, वे भी स्वार्थ के आ पड़ने पर मोहित से हो जाते हैं ॥७॥

उत्तरं मार्गमाणानां मत्स्यानाञ्च युयुत्सताम् ॥८॥
यदि बीभत्सुरायातस्तदा कस्यापराध्नुमः ।

इस समय मत्स्य-राज के साथ युद्ध ठना है। हम लोगों को उत्तर के सम्मुख युद्ध में खड़ा होना था। इस दशा में यदि बीच में अर्जुन आ खड़ा हुआ तो बताओ किस का अपराध है ॥८॥

त्रिगर्त्तानां वयं हेतोर्मत्स्यान् योद्धुमिहागताः ॥९॥
मत्स्यानां विप्रकारांस्ते बहूनस्मास्वकीर्त्तयन् ।
तेषां भयाभिभूतानां तदस्माभिः प्रतिश्रुतम् ॥१०॥

हम तो त्रिगर्तों का पक्ष लेकर मत्स्य-देश में युद्ध करने आए हैं। मत्स्य-देश के निवासी योद्धा या मत्स्यराज के बहुत से अनुचित व्यवहारों का त्रिगर्तों ने हमारी सभा में कथन किया था। उन निरपराधी भयभीत त्रिगर्तों की सहायता करने का हमने वचन दे दिया है ॥ ९-१० ॥

प्रथमं तैर्गृहीतव्यं मत्स्यानां गोधनं महत् ।
सप्तम्यामपराह्णे वै तथा नस्तैः समाहितम् ॥११॥
अष्टम्यां पुनरस्माभिरादित्यस्योदयं प्रति ।
इमा गावो गृहीतव्या गते मत्स्ये गवाम्पदम् ॥१२॥

उस समय निश्चित होगया था, कि (ग्रीष्मकाल की) चैत्र कृष्ण-पक्ष की सप्तमी को दोपहर के अनन्तर वे विराट की गायें घेर लें

नोट—पूर्व भाग में मार्गशीर्ष की सप्तमी, ऐसा छप गया है

उन्होंने भी हमको ऐसा करने का वचन दे दिया। चैत्र की अष्टमी के प्रातःकाल सूर्य के उदय होने पर गायों का पीछा छोड़कर मत्स्य वीरों के चले जाने पर हम लोग, इन गायों को ले आवेंगे ॥१२॥

ते वा गाश्चानयिष्यन्ति यदि वा स्युः पराजिताः ।
अस्मान् वा ह्युपसन्धाय कुर्य्युर्मत्स्येन सङ्गतम् ॥१३

यदि त्रिगर्त लोग, गायों को ले आवेंगे, तो ठीक ही है और यदि त्रिगर्तों का पराभव होगया, तो वे हमारे साथ मिलकर मत्स्यों से युद्ध करें ॥१३॥

अथवा तानपाहाय मत्स्यो जनपदैः सह ।
सर्वथा सेनया सार्द्धं संवृतो भीमरूपया ॥१४॥
आयातः केवलां रात्रिमस्मान् योद्धुमुपागतः ।
तेषामेव महावीर्य्यः कश्चिदेष पुरःसरः ॥१५॥

यह देखो ? कि मत्स्यराज उन त्रिगर्तों को छोड़कर अपने राष्ट्र के वीर और अपनी सारी भयङ्कर रूप धारण करने वाली सेना से युक्त होकर केवल एक रात में ही हमारे सम्मुख युद्ध करने को आ डटा है। उनमें ही यह कोई महावीर (अर्जुन) सबसे आगे चला आ रहा है ॥१४-१५॥

अस्मान् योद्धुमुपायातो मत्स्यो वा हि स्वयं भवेत्
यद्येष राजा मत्स्यानां यदि बीभत्सुरागतः ॥१६॥
सर्वैर्योद्धव्यमस्माभिरिति नः समयः कृतः ।

इस समय हमसे युद्ध करने को मत्स्य-देश की प्रजा का स्वामी मत्स्यराज स्वयं अर्जुन या कोई भी क्यों न आया हो, हम को तो सबसे युद्ध करना है, क्योंकि हमने त्रिगर्तों से यही समय (शर्त) निश्चित किया है ॥१६॥

अथ कस्मात् स्थिता ह्येते रथेषु नरसत्तमाः ॥१७॥
भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव विकर्णो द्रौणिरेव च।
सम्भ्रान्तमनसः सर्वे काले ह्यस्मिन्महारथाः ॥१८॥

क्या बात है, जो ये सारे वीर-श्रेष्ठ, महारथी, भीष्म, द्रोण, कृप, विकर्ण, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, चौकन्ने होकर रथों में चुप चाप बैठे हैं ॥१७-१८॥

नान्यत्र युद्धाच्छ्रेयोऽस्ति तथात्मा प्रणिधीयताम्।
आच्छिन्द्याद्गोधनेऽस्माकमपि देवेन वज्रिणा ॥१९॥
यमेन वापि संग्रामे को हास्तिनपुरं व्रजेत्।

इस समय तो इन लोगों को युद्ध करने के सिवा अन्य कोई मार्ग कल्याणकारी, प्रतीत नहीं होता है। जो वज्रधारी इन्द्र, यमराज भी आकर इस युद्ध में हमसे इन गायों को छीन ले, तो कौन ऐसा है, जो लौट कर हस्तिनापुर जा सकेगा, इस लिए तुम सारे वीर अपने मन को युद्ध की ओर प्रेरित करो ॥१९॥

शरैरभिः प्रणुन्नानां भग्नानां गहने वने ॥२०॥
को हि जीवेत् पदातीनां भवेदश्वेषु संशयः।

इन हमारे बाणों से बींध लेने और गहन वन में भाग जाने पर भी कौन पैदल सैनिक बच सकता है, किन्तु अश्वों के भी बच निकलने में संशय ही है ॥२०॥

आचार्य्यं पृष्ठतः कृत्वा तथा नीतिर्विधीयताम् ॥२१॥
जानाति हि मतं तेषां मनस्त्रासयतीव नः।
अर्जुने चास्य सम्प्रीतिमधिकामुपलक्षये ॥२२॥
तथाहि दृष्ट्वा बीभत्सुमुपायान्तं प्रशंसति ॥२३॥

अब आप लोग द्रोणाचार्य को पीछे करके युद्ध की नीति का ही निश्चय करो। तुम लोग आचार्य के मत को जानते हो, कि वे सदा हमारे मन को भयभीत करते रहते हैं। मैं तो इनका प्रेम अर्जुन पर अधिक देखता हूं। इन्होंने युद्ध में अर्जुन को आया हुआ देख कर उसकी प्रशंसा के पुल बांधने आरंभ कर दिए हैं।

यथा सेना न भज्येत तथा नीतिर्विधीयताम्।
हेषितं ह्युपश्रृण्वाने द्रोणे सर्वं विघट्टितम् ॥२४॥
अदेशिका महारण्ये ग्रीष्मे शत्रुवशङ्गता।
यथा न विभ्रमेत्सेना तथा नीतिर्विधीयताम् ॥२५॥

अब तो तुम लोग इस तरह की नीति (ढंग) स्वीकार करो, जिससे सेना भाग न निकले। अश्वों का हिनहिनाना द्रोणाचार्य सुनते ही सारी सेना में खलबली मच गई है। अपने देश को छोड़ कर इस महावन में ग्रीष्मकाल में हम शत्रु के वश में पड़ गए हैं। अब जिस तरह यह सेना बिखर न जावे, ऐसी नीति का विधान करो ॥२४-२५॥

इष्टा हि पाण्डवा नित्यमाचार्य्यस्य विशेषतः।
आसयन्परार्थांश्च कथ्यते स्म स्वयं तथा ॥२६॥

आचार्य्य को पाण्डव लोग, बड़े प्रिय हैं। स्वार्थ सिद्धि के ढंगों को जानने वाले पाण्डवों ने अपने प्रेमी द्रोण को हमारे यहां छोड़ रक्खा है। यह कोई छुपी बात नहीं है, वे स्वयं ऐसा कहते रहते हैं ॥२६।

अश्वानां हेषितं श्रुत्वा कः प्रशंसापरो भवेत्
स्थाने वापि व्रजन्तो वा सदा हेषन्ति वाजिनः॥२७॥

अश्वों के हिनहिनाते ही अन्य कौन ऐसा प्रशंसक (भांड) होगा—जो अर्जुन की प्रशंसा करने ल । अश्व तो अपने घर को जाते हुए भी सदा हिनहिनाया ही करते हैं ॥२७॥

सदा च वायवो वान्ति नित्यं वर्षति वासवः ।
स्तनयित्नोश्च निर्घोषः श्रूयते बहुशस्तथा ॥२८॥
किमत्र कार्य्यं पार्थस्य कथं वा स प्रशस्यते ।
अन्यत्र कामद्वेषाद्वा रोषाद्वास्मासु केवलात् ॥२९॥

सदा पवन चलता रहता है और मेघ बरसते हैं तथा बिजली की कड़क हुआ ही करती है। इस में अर्जुन क्या घुस बैठा, उसकी प्रशंसा की कौन बात है। इस में तो केवल पाण्डवों से प्रेम और हम से द्वेष या हम पर क्रोध ही प्रकट होता है।

आचार्य्या वै कारुणिकाः प्राज्ञाश्चोपायदर्शिनः ।
नैते महाभये प्राप्ते संप्रष्टव्याः कथञ्चन ॥३०॥

आचार्य, बड़े बुद्धिमान् और उपाय बताने वाले हैं, परन्तु ये बड़े ही दयालु हैं। इस तरह युद्ध के उपस्थित हो जाने पर तो इन अहिंसा प्रेमी महात्मा से पूछना ही नहीं चाहिए ॥३०॥

प्रासादेषु विचित्रेषु गोष्ठीषूपवनेषु च।
कथा विचित्राः कुर्वाणाः पण्डितास्तत्र शोभनाः॥३१॥

पण्डित लोग तो उत्तम २ महल, गोष्ठी, उपवनों में कथा करते हुए ही सुन्दर प्रतीत होते हैं॥३१॥

बहून्याश्चर्य्यरूपाणि कुर्वन्तो जनसंसदि।
इज्यास्त्रे चोपसंधाने पण्डितास्तत्र शोभनाः॥३२॥

मनुष्यों की सभा में अनेक आश्चर्य मय दृष्टान्त देते हुए अथवा यज्ञ-रूपी युद्ध के समय में यज्ञ के साधन कपालादि के धोने पोंछने में ही पण्डित लोग शोभा पाते हैं॥३२॥

परेषां विवरज्ञाने मनुष्यचरितेषु च।
हस्त्यश्वरथचर्य्यासु खरोष्ट्राजाविकर्मणि॥३३॥
गोधनेषु प्रतोलीषु वरद्वारमुखेषु च।
अन्नसंस्कारदोषेषु पण्डितास्तत्र शोभनाः॥३४॥

शत्रुओं के छिद्रों के पता लगाने, मनुष्यों के व्यवहारों के अनुशीलन, हाथी, अश्व, रथ, गुजराती अश्व, ऊँट, बकरी, भेड़ गायों, की पड़ताल या आँगन तथा द्वार की रक्षा एवं रसोई बनाने में ही ब्राह्मण शोभा पाते हैं॥३३-३४॥

पण्डितान् पृष्ठतः कृत्वा परेषां गुणवादिनः।
विधीयतां तथा नीतिर्यथा वध्येत वै परः॥३५॥

शत्रुओं की प्रशंसा करने वाले पण्डितों को पीछे करके तुम ऐसा ढंग स्वीकार करो, जिससे शत्रु मारा जावे॥३५॥

गावश्च सम्प्रतिष्ठाप्य सेनां व्यूह्य समन्ततः ।
आरक्षाश्च विधीयन्तां यत्र योत्स्यामहे परान् ॥३६॥
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
दुर्योधनवाक्ये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

गायों को बीच में लेकर चारों ओर से सेना का व्यूह बना लो और जिस स्थान पर हम शत्रुओं से युद्ध करेंगे, उस स्थान पर रक्षकों की नियुक्ति कर दो ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में दुर्योधन वाक्य का सैंतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

—:*:—

अड़तालीसवां अध्याय

कर्ण उवाच—

सर्वानायुष्मतो भीतान् सन्त्रस्तानिव लक्षये ।
अयुद्धमनसश्चैव सर्वांश्चैवानवस्थितान् ॥१॥

कर्ण कहने लगा—हे राजन् ! मैं इस समय सारे वीरों को भयभीत और कातर देख रहा हूं । तथा ये सारे ही युद्ध करना नहीं चाहते हैं और चौकन्ने हुए चुपचाप खड़े देख रहे हैं ॥१॥

यद्येषां राजा मत्स्यानां यदि बीभत्सुरागतः ।
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥२॥

यदि यह स्वयं मत्स्यराज आ गया या अर्जुन चला आया है, चला आने दो। मैं समुद्र को वेला (मर्यादा) के समान इसको वहीं रोक दूँगा ॥२॥

मम चापप्रयुक्तानां शराणां नतपर्वणाम् ।
नावृत्तिर्गच्छतामस्ति सर्पाणामिव सर्पताम् ॥३॥

मेरे धनुष पर चढ़ कर निकले हुए, झुकी पर्व वाले, सर्प के समान लपलपाते हुए, वेग में जाने वाले मेरे बाणों से कभी लक्ष्य नहीं बच सकेगा ॥३॥

रुक्मपुङ्खाः सुतीक्ष्णाग्रा मुक्ता हस्तवता मया ।
छादयन्तु शराः पार्थं शलभा इव पादपम् ॥४॥

सुवर्ण के मूल वाले, अत्यन्त तीक्ष्ण, मेरी भुजाओं से छोड़े गए बाण, इस तरह अर्जुन को ढ़क लेंगे, जैसे शलभ पक्षी वृक्ष पर छा जाते हैं ॥४॥

शराणां पुङ्खसक्तानां मौर्व्याभिहतया दृढम् ।
श्रूयतां तलयोः शब्दो भेर्योराहतयोरिव ॥५॥
समाहितो हि बीभत्सुर्वर्षाण्यष्टौ च पञ्च च ।
जातस्नेहश्च युद्धेऽस्मिन् मयि सम्प्रहरिष्यति ॥६॥

मौर्वी (धनुष की डोरी) से बड़ी दृढ़ता के साथ अपने मूल में अच्छी तरह लगे हुए बाणों के छोड़ने के समय हथेलियों की ध्वनि बजाई हुई नगाड़े की ध्वनि के समान सुन पड़ेगी। अर्जुन भी तेरह वर्ष में युद्ध विद्या में बड़ा सावधान हो गया है। इस युद्ध में उसका बड़ा प्रेम है, इस से वह भी मुझ पर खुल कर प्रहार करेगा ॥६॥

पात्रीभूतश्च कौन्तेयो ब्राह्मणो गुणवानिव ।
शरौघान् प्रतिगृह्णातु मयामुक्तान् सहस्रशः ॥७॥

दान के लिए प्राप्त हुए गुणवान् ब्राह्मण की तरह अर्जुन इस समय युद्ध-दक्षिणा का पात्र है। अब वह मेरे छोड़े हुए, सहस्रों शरों के समूहों को ग्रहण करे ॥७॥

एष चैव महेष्वासस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
अहं चापि नरश्रेष्ठादर्जुनान्नावरः क्वचित् ॥८॥

अर्जुन, तीनों लोकों में प्रसिद्ध धनुर्धर है और मैं भी इस वीर-श्रेष्ठ अर्जुन से किसी भी युद्ध कला में कम नहीं हूं ॥८॥

इतश्चेतश्च निर्मुक्तैः काञ्चनैर्गार्द्ध वाजितैः ।
दृश्यतामद्य वै व्योम शलभैरिव संवृतम् ॥९॥

गृद्ध पक्षी के पक्षों से युक्त, सुवर्ण जटित, इधर उधर फैंके हुए, बाणों से आकाश इस तरह भर जावेगा-जैसे शलभ पक्षियों से भर जाता है ॥९॥

अद्याहमृणमक्षय्यं पुरा वाचा प्रतिश्रुतम् ।
धार्तराष्ट्रस्य दास्यामि निहत्य समरेऽर्जुनम् ॥१०॥

जिस ऋण को कोई चुका नहीं सकता था, उसो को आज युद्ध में अर्जुन को मारकर राजा दुर्योधन को चुका दूंगा। इस ऋण के चुकाने की मैंने उससे प्रतिज्ञा कर रखी है ॥१०॥

मत्कार्मुकविमुक्तानां शराणां नतपर्वणाम् ।
कः सहेताग्रतः स्थातुमपि सर्वैः सुरासुरैः

अन्तराच्छिद्यमानानां पुङ्खानां व्यतिशीर्यताम् ।
शलभानामिवाकाशे प्रचारः सम्प्रदृश्यताम् ॥११॥

झुकी पर्व वाले, मेरे धनुष से निकले हुए बाणों के सम्मुख सुर और असुरों में से कौन ठहर सकता है। भीतर तक छेद देने वाले उत्तम मूलधारी सनसन चलते हुए बाणों से उड़ते हुए शलभ पक्षियों से भरे हुए आकाश के समान दृश्य दिखाई देगा।

इन्द्राशनिसमस्पर्शं महेन्द्रसमतेजसम् ।
अर्दयिष्याम्यहं पार्थमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥१२॥

इन्द्र के वज्र के समान दृढ़ आकारधारी, महेन्द्र के समान तेजस्वी, अर्जुन को उल्काओं (अग्नि के पलीतों) से हाथी के व्याकुल करने के सदृश व्याकुल कर दूंगा ॥१२॥

रथादतिरथं शूरं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
विवशं पार्थमादास्ये गरुत्मानिव पन्नगम् ॥१३॥

मैं रथ से उतर कर, सब शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ, महारथी शूरवीर अर्जुन को परवश करके सर्प को गरुड़ की तरह बल-पूर्वक पकड़ लूंगा ॥१३॥

तमग्निमिव दुर्द्धर्षमसिशक्तिशरेन्धनम् ।
पाण्डवाग्निमहं दीप्तं प्रदहन्तमिवाहितान् ॥१४॥
अश्ववेगपुरोवातो रथौघस्तनयित्नुमान् ।
शरधारो महामेघः शमयिष्यामि पाण्डवम् ॥१५॥

असि, शक्ति, शर रूपी इन्धन वाले, शत्रुओं को दग्ध करते हुए, प्रदीप्त, दुर्धर्ष, अर्जुन रूपी अग्नि को अश्व वेग रूपी भीषण वायु, रथ समूह रूपी मेघ और बाणों रूपी धारा धारी, मैं महा मेघ, क्षण भर में बुझा दूंगा ॥१४-१५॥

मत्कार्मुकविनिर्मुक्ताः पर्माशीविषोपमाः ।
शराः समभिसर्पन्तां बल्मीकमिव पन्नगाः ॥१६॥

मेरे धनुष से निकले हुए सर्प सदृश बाण, अर्जुन की ओर ऐसे लपकेंगे, जैसे सर्प अपने बाल्मीक की ओर लपकता है ॥१६॥

सुतेजनैरुक्मपुङ्खैः सुपीतैर्नतपर्वभिः ।
आचितं पश्य कौन्तेयं कर्णिकारैरिवाचलम् ॥१७॥

अत्यन्त तीक्ष्ण, सुवर्ण के मूलधारी, विष आदि में बुझे हुए झुकी पर्व वाले, बाणों से अर्जुन को इस तरह ढका हुआ देख लेना, जैसे कर्णिकार वृक्षों से पर्वत ढका रहता है ॥१७॥

जामदग्न्यान्मया ह्यस्त्रं सम्प्राप्तमृषिसत्तमात् ।
तदुपाश्रित्य वीर्यंश्च युध्येयममरैरपि ॥१७॥

मैंने जमदग्नि के पुत्र ऋषि श्रेष्ठ, परशुराम से अस्त्र विद्या सीखी है। उस पराक्रम का अवलम्ब लेकर मैं देवों तक से लड़ सकता हूं ॥१८॥

ध्वजाग्रे वानरस्तिष्ठन् भल्लेन निहतो मया ।
अद्यैव पततां भूमौ विनदन् भैरवान् रवान् ॥१९॥

यह जो ध्वजा के ऊपर वानर बैठा है, वह मेरे बाण से घकर चीखता चिल्लाता हुआ आज ही भूमि पर गिर जावेगा।

शत्रोर्मया विपन्न तानां ध्वजवासिनाम् ।
दिशः प्रतिष्ठमानानामस्तु शब्दो दिवङ्गमः ॥२०॥

ध्वजाओं पर रहने वाले प्राणियों के विपत्ति में फंस जाने और इधर उधर दिशाओं को भाग जाने पर शत्रुओं का भयान्वित शब्द आकाश तक पहुंच जावेगा ॥२०॥

अद्य दुर्य्योधनस्याहं शल्यं हृदि चिरस्थितम् ।
समूलमुद्धरिष्यामि बीभत्सुं पातयन् रथात् ॥२१॥

आज मैं अर्जुन को रथ से गिराकर राजा दुर्योधन के हृदय में गड़े हुए बहुत दिन के बाण को निकाल कर फेंक दूंगा ॥२१॥

हताश्वं विरथं पार्थं पौरुपे पर्य्यवस्थितम् ।
निश्वसन्तं यथा नागमद्य पश्यन्तु कौरवाः ॥२२॥

आज कौरव यह देख लेंगे कि अर्जुन के अश्व मारे गये और वह, रथहीन, पुरुषार्थ करता हुआ, परतन्त्र सर्प की तरह श्वास ले रहा ॥२२॥

कामं गच्छन्तु कुरवो धनमादाय केवलम् ।
रथेषु वापि तिष्ठन्तो युद्धं पश्यन्तु मामकम् ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
कर्णविकत्थने अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

अब कौरव चाहें तो इन गौओं को घेर कर अपनी राजधानी को चले जावे अथवा यहीं पर रथ में खड़े २ मेरे युद्ध का तमाशा देखते रहें ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में कर्ण के अपनी प्रशंसा करने का अड़तालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

—:*:—

उनचासवां अध्याय

कृप उवाच—

सदैव तव राधेय युद्धे क्रूरतरा मतिः।
अर्थानां प्रकृतिं वेत्सि नानुबन्धमवेक्षसे ॥१॥

कृपाचार्य बोले—हे कर्ण! तेरी बुद्धि बड़ी क्रूर है, जो सदा युद्ध की ही ओर प्रेरित करती रहती है और तू भी, केवल धन प्राप्ति की ओर ही दृष्टि डालता है ॥१॥

नया हि बहवःसन्ति शास्त्रमाश्रित्य चिन्तिताः।
तेषां युद्धन्तु पापिष्ठं वेदयन्ति पुराविदः ॥२॥

मैंने भी बहुत से शास्त्रों का अध्ययन करके बहुत सी नीतियों पर विचार किया है, उन में युद्ध को विद्वानों ने पाप ही बताया है ॥२॥

देशकालेन संयुक्तं युद्धं विजयदं भवेत्।
हीनकालं तदेवेह फलं न लभते पुनः ॥३॥

यदि युद्ध का देशकाल उपस्थित हो जावे, तो युद्ध में विजय और कल्याण की प्राप्ति होजाती है। यदि काल के विना सोचे युद्ध कर बैठे, तो वह फल नहीं मिलता, किन्तु विपरीत फल की प्राप्ति होती है ॥३॥

देशे काले च विक्रान्तं कल्याणाय विधीयते।
आनुकूल्येन कार्य्याणामन्तरं संविधीयते ॥४॥

यदि देशकाल को देख कर युद्ध का आरम्भ किया, हो तो कल्याण मिलता है और समय की अनुकूलता पर कार्य करने से ही कार्य में सिद्धि मिलती है ॥४॥

भारं हि रथकारस्य न व्यवसन्ति पण्डिताः।
परिचिन्त्य तु पार्थेन सन्निपातो न नः क्षमः ॥५॥

रथकार की मिथ्या की हुई रथ की प्रशंसा का आश्रय लेकर ही समझदार योद्धा, उस रथ से युद्ध करने नहीं चल देता है। इन सब देशकालादि पर विचार करने से यही प्रतीत होता है कि अर्जुन के साथ युद्ध नहीं करना चाहिए ॥५॥

एकः कुरूनभ्यरक्षदेकश्चाग्निमतर्पयत्।
एकश्च पञ्चवर्षाणि ब्रह्मचर्य्यमधारयत् ६॥
एकः सुभद्रामारोप्य द्वैरथे कृष्णमाह्वयत्।
एकः किरातरूपेण स्थितं रुद्रमयोधयत् ॥७॥

यह अर्जुन बड़ा ही बली है, जो अकेला ही कौरवों से लड़ने चला आया है। इस अकेलेने ही खाण्डव वन में अग्नि को तृप्त किया था। इसने पांच वर्ष तक अखण्ड-ब्रह्मचर्य धारण किया

है। इस अकेलेने ही सुभद्रा को रथ में बैठा कर युद्ध के लिए श्रीकृष्ण आदि यादवों को ललकारा और किरातरूप में स्थित भगवान् शङ्कर से इस अकेले ही अर्जुन ने बड़ा घोर युद्ध किया था ॥६-७॥

अस्मिन्नेव वने पार्थो हृतां कृष्णामवाजयत्।
एकश्च पञ्चवर्षाणि शक्रादस्त्राण्यशिक्षत ॥८॥

इसी वन में जयद्रथ ने द्रौपदी का अपहरण किया, परन्तु अकेले अर्जुन ने जयद्रथ को हरा कर द्रौपदी को लौटा लिया। इसने पूर्वोक्त पांच वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करके इन्द्र से अस्त्र विद्या सीखी है ॥८॥

एकः सोऽयमरिं जित्वा कुरूणामकरोद्यशः।
एको गन्धर्वराजानं चित्रसेनमरिन्दमम् ॥९॥
विजिग्ये तरसा सङ्ख्ये सेनां प्राप्य सुदुर्जयाम्।

यह अकेला ही शत्रु को जीत कर कौरवों में अपना यश बढ़ा लेता है। इस अरिमर्दन ने अत्यन्त दुर्जय गन्धर्व-सेना तथा गन्धर्वराज चित्रसेन को बड़े वेग से युद्ध में जीत लिया है॥९॥

तथा निवातकवचा कालखञ्जाश्च दानवाः ॥१०॥
दैवतैरप्यवध्यास्ते एकेन युधि पातिताः।

इसी तरह निवात-कवच और कालखञ्ज दानव "जो देवों से भी अवध्य थे" इस अकेले ने ही अर्जुन ने युद्ध में नष्ट भ्रष्ट कर दिए थे ॥१०॥

एकेन हि त्वया कर्ण किं नामेह कृतं पुरा ॥११॥
एकैकेन यथा तेषां भूमिपाला वशे कृताः।

हे कर्ण! आज तक तुमने अकेले ही कौनसा ऐसा कार्य कर दिखाया, जिस तरह अकेले ही अर्जुन ने द्रौपदी के स्वयम्वर या दिग्विजय के समय बहुत से राजा जीत कर अपने वश में कर लिए हैं ॥११॥

इन्द्रोऽपि न हि पार्थेन संयुगे योद्धुमर्हति ॥१२॥
यस्तेनाशंसते योद्धुं कर्त्तव्यं तस्य भेषजम्।

अर्जुन के साथ तो रण में इन्द्र भी युद्ध नहीं कर सकता है। तुम उस अर्जुन के साथ युद्ध करने की अभिलाषा रखते हो। तुमको तो अपने इस उन्माद की औषध करानी चाहिए ॥१२॥

आशीविषस्य क्रुद्धस्य पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् ॥१३॥
अवमुच्य प्रदेशिन्या दंष्ट्रामादातुमिच्छसि।

क्रुद्ध हुए विषैले सर्प के सम्मुख दायां हाथ उठाकर और उसके मुख में तर्जनी अङ्गुली डाल कर तुम उसकी दाढ़ उखाड़ लेने की निष्फल चेष्टा कर रहे हो ॥१३॥

अथवा कुञ्जरं मत्तमेक एव चरन्वने ॥१४॥
अनङ्कुशः समारुह्य नगरं गन्तुमिच्छसि।

तुम तो वन में मदोन्मत्त घूमते हुए हाथी पर बिना अङ्कुश ही चढ़कर अकेले ही नगर में घूम आना चाहते हो ॥१४॥

समिद्धं पावकं वापि घृतमेदोवसाहुतम् ॥१५॥
घृताक्तश्चीरवासास्त्वं मध्येनोत्सर्त्तुमिच्छसि।

हे कर्ण! तुम तो घृत, मेद, वसा (चर्बी) के डालने से प्रदीप्त हुई आग में अपने शरीर में घी से भीगे हुए फटे कपड़े लपेट कर निकल जाना चाहते हो ॥१५॥

आत्मानं कः समुद्बुध्य कण्ठे बध्वा महाशिलाम् १६
समुद्रं प्रतरेद्दोर्भ्यां तत्र किं नाम पौरुषम् ।

अपने आपको रस्सियों से जकड़ कर और गले में पत्थर बांधकर क्या किसी में शक्ति है, कि फिर भुजाओं से समुद्र को पार कर जावे ॥१६॥

अकृतास्त्रः कृतास्त्रं वै बलवन्तं सुदुर्बलः ॥१७॥
तादृशं कर्ण यः पार्थं योद्धुमिच्छेत् स दुर्मतिः ।

हे कर्ण ! अस्त्र-विद्या में पूर्ण पण्डित न होकर, बल हीन, ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो शस्त्र-विद्या में कुशल, महाबली अर्जुन से लड़ने की इच्छा करेगा ॥१७॥

अस्माभिर्ह्येष निकृतो वर्षाणीह त्रयोदश ॥१८॥
सिंहः पाशविनिर्मुक्तो न नः शेषं करिष्यति ।

हम ने छल से तेरह वर्ष के लिए वन में भेज कर इस को बड़ा अपमानित और क्लेशित किया है, अब यह रस्सो से खुले हुए सिंह के समान हम में से एक को भी शेष नहीं रहने देगा ॥१८॥

एकान्ते पार्थमासीनं कूपेऽग्निमिव संवृतम् ॥१९॥
अज्ञानादभ्यवस्कन्द्य प्राप्ताः स्मो भयमुत्तमम् ।

जैसे सूखे कूप में अग्नि पड़ी हो, इसी तरह अर्जुन, एकान्त में यहाँ छुपा पड़ा था । हम ने अज्ञान से इस कूप में कूद कर बड़ा भय खड़ा कर लिया है ॥१९॥

सहयुध्यामहे पार्थमागतं युद्धदुर्मदम् ॥२०॥
सैन्यास्तिष्ठन्तु सन्नद्धा व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
द्रोणो दुर्योधनो भीष्मो भवान् द्रौणिस्तथा वयम् २१
सर्वे युध्यामहे पार्थं कर्ण मा साहसं कृथाः ।

हे कर्ण ! अब तो युद्ध में दुर्मद, आये हुए अर्जुन से हम सब मिल कर युद्ध करेंगे। हमारी छटे २ योद्धाओं की प्रहार करने वाली सेना, बड़ी सावधानी से तय्यार हो जावे। द्रोण, राजा दुर्योधन, भीष्म, तुम, अश्वत्थामा, और मैं सब मिल कर ही अर्जुन से लड़ेंगे, कहीं तुम अकेले लड़ने का साहस न कर बैठना ॥२० २१ ॥

वयं व्यवसिताः पार्थं वज्रपाणिमिवोद्धतम् ॥२२॥
षड्रथाः प्रतियुध्येम तिष्ठेम संहता यदि ।
व्यूढानीकानि सैन्यानि यत्ताः परमधन्विनः ।
युध्यामहेऽर्जुनं सङ्ख्ये दानवा इव वासवम् ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
कृपवाक्ये एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥४९॥

सब तरह से युद्ध के लिए सन्नद्ध, (तय्यार) इन्द्र के समान उठे हुए अर्जुन से हम छःओं महारथी, इकट्ठे होकर ही युद्ध कर सकेंगे। सारी सेनाएँ व्यूह रचना करले और हम धनुर्धर

भी बड़े सावधान हो जावें, आज तो इन्द्र से दानवों के घोर संग्राम की भांति हमारा अर्जुन से घोर संग्राम होगा ॥२२-२३॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में कृपाचार्य के कथन का उनचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

पचासवां अध्याय

अश्वत्थामोवाच—

न च तावज्जिता गावो न च सीमान्तरङ्गताः।
न हास्तिनपुरं प्राप्तास्त्वन्तु कर्ण विकत्थसे ॥१॥

अश्वत्थामा कहने लगे—हे कर्ण! अभी तक हमने विराट की गायोंका अच्छी तरह अपहरण करके उनको अधिकार में नहीं किया है और न हम विराट की सीमा से ही बाहर हुए हैं एवं न हम अपने नगर हस्तिनापुर के प्राकार के भीतर पहुँच कर सुरक्षित हो सके हैं, फिर तुम अभी से ऐसी डींग कैसे मार रहे हो ॥१॥

संग्रामान् सुबहून् जित्वा लब्ध्वा च विपुलं धनम्।
विजित्य च परां सेनां नाहुः किञ्चन पौरुषम् ॥२॥

वीर लोग, अनेक संग्राम जीत कर और बहुत सा धन पा कर तथा शत्रुओं की सेनाओं को जीत कर भी अपने बल की ऐसी प्रशंसा नहीं करते हैं ॥२॥

दहत्यग्निरवाक्यस्तु तूष्णीं भाति दिवाकरः।
तूष्णीं धारयते लोकान् वसुधा सचराचरान् ॥३॥

देखो ! अग्नि चुपचाप सब को भस्म कर देता है और सूर्य, चुपचाप ही अपने तेज से चमकता रहता है एवं यह भूमि भी चराचर लोकों को चुपचाप ही धारण किए हुए है ।।३।।

चातुर्वर्ण्यस्य कर्माणि विहितानि स्वयम्भुवा ।
धनं यैरधिगन्तव्यं यच्च कुर्वन्न दुष्यति ।।४।।

स्वयम्भू ब्रह्मा ने चारों वर्णों के पृथक् २ कर्म बना दिए हैं, जिन से इनको धन भी प्राप्त कर लेना चाहिए। इन कामों को करके धन अर्जन कर लेने में कोई दोष नहीं माना है ।।४।।

अधीत्य ब्राह्मणो वेदान् याजयेत यजेत च ।
क्षत्रियो धनुराश्रित्य यजेच्चैव न याजयेत् ।।५।।
वैश्योऽधिगम्य वित्तानि ब्रह्मकर्माणि कारयेत् ।
शूद्रः शुश्रूषणं कुर्य्यात् त्रिषु वर्णेषु नित्यशः ।
वन्दनायोगविधिभिर्वैतसीं वृत्तिमाश्रिताः ।।६।।

ब्राह्मण, वेदों का अध्ययन करके यज्ञ करे और करा सकता है। क्षत्रिय, धनुष का आश्रय लेकर राज्य-व्यवस्था करे और यज्ञ कर सकता है, उसको यज्ञ कराने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसी तरह वैश्य भी धन इकट्ठा करके धर्म के कार्य में उसका उपयोग करता रहे तथा शूद्र भी शिल्प आदि से चारों वर्णों की सेवा में तत्पर हो जावे। यह वन्दना आदि व्यवहार से सब से निरभिमान हो कर मिले ।।५. ६।।

वर्त्तमाना यथाशास्त्रं प्राप्य चापि महीमिमाम् ।
सत्कुर्वन्ति महाभागा गुरून् सुविगुणानपि ।।७।।

प्राप्य द्यूतेन को राज्यं क्षत्रियस्तोष्टु मर्हति ।
तथा नृशंसरूपोऽयं धार्त्तराष्ट्रश्च निघृ णः ॥८॥

इस प्रकार शास्त्र के अनुकूल चलते हुए, महाभाग, क्षत्रिय, इस सारी पृथिवी को प्राप्त करके अपने इष्ट हुए पूज्य की भी सेवा में तत्पर होते हैं, परन्तु द्यूत में राज्य पाकर कौन ऐसा क्षत्रिय हो सकता है जो प्रशंसा का पात्र माना जावे । इसी तरह यह धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन, लज्जा छोड़े हुए निन्दा का पात्र बना हुआ है ॥७-८॥

तथाभिगम्य वित्तानि को विकत्थेद्विचक्षणः ।
निकृत्या वञ्चनायोगैश्चरन्वै तंसिको यथा ॥९।

छल और ठगी से धन पाकर व्याध की आचरण करता हुआ कौन ऐसा समझदार क्षत्रिय होगा, जो फिर भी अपनी प्रशंसा की डींग मारता रहे ॥९॥

कतमत् द्वैरथं युद्धं यत्राजैषीर्द्धनञ्जयम् ।
नकुलं सहदेवं वा धनं येषां त्वया हृतम् ॥१०

तुम्हारा कोई ऐसा द्वैरथ (मुकाबिले पर) युद्ध हुआ है, जिसमें तुमने धनञ्जय को जीता हो अथवा जिनका तुमने छल से धन छीन रखा, उन नकुल सहदेव को ही जीता हो ॥१०॥

युधिष्ठिरो जितः कस्मिन् भीमो व बलिनां वरः
इन्द्रप्रस्थं त्वया कस्मिन् संग्रामे विजितं पुरा ॥११॥

किस युद्ध में राजा युधिष्ठिर को जीता और किस रण में बलवानों में श्रेष्ठ, महाबली, भीमसेन को जीता है एवं तुमने

किस युद्ध में यह युधिष्ठिर की राजधानी इन्द्रप्रस्थ नगरी को जीत लिया है ॥११॥

तथैव कतमद्युद्धं यस्मिन् कृष्णा जिता पुरा।
एकवस्त्रा सभां नीता दुष्टकर्मन्रजस्वला ॥१२॥

हे दुष्ट-कर्म-कारिन! वह कौन सा युद्ध था, जिसमें तूने द्रौपदी को जीता और जिस से एक धोती धारण की हुई उस रजस्वला को ही तू सभा में ले आया ॥१२॥

मूलं कृत्वा महत् क्रूरं सारार्थी चन्दनं यथा।
कर्म कारयथाः सूत तत्र किं विदुरोऽब्रवीत् ॥१३॥

हे सूत-पुत्र! धन की इच्छा वाला जैसे चन्दन के वृक्ष को छेद डालता है, वैसे ही धृतराष्ट्र पुत्र ने धर्म के मूलका ही छेदन कर दिया है। तुम लोगों ने जब यह द्यूत रूप अनुचित कर्म किया, तो विदुर ने उसी समय क्या कहा था, क्या तुमको स्मरण नहीं, कि यह द्यूत, नाश का कारण होगा ॥१३॥

यथाशक्ति मनुष्याणां शममालक्षयामहे।
अन्येषां चैव सत्त्वानामपि कीटपिपीलिके ॥१४॥

हम तो यथाशक्ति मनुष्यों की शान्ति को देखते हैं और उनकी ही प्रशंसा करते हैं। मनुष्य ही क्या? कीटपिपीलिका आदि जन्तुओं की भी शान्ति देखी जाती है। जिसमें शान्ति है, उसका कोई वध नहीं करता है ॥१४॥

द्रौपद्यास्तं परिक्लेशं न क्षन्तुं पाण्डवोऽर्हति।
क्षयाय धार्त्तराष्ट्राणां प्रादुर्भूतो धनञ्जयः ॥१५॥

पाण्डव, द्रौपदी के क्लेश को कभी क्षमा नहीं कर सकते हैं। इस तरह तो यही प्रतीत होता है, कि धृतराष्ट्र वंश के क्षय के लिए ही धनञ्जय का प्रादुर्भाव है ॥१५॥

त्वं पुनः पण्डितो भूत्वा वाचं वक्तुमिहेच्छसि ।
वैरान्तकरणो जिष्णुर्न नः शेषं करिष्यति ॥१६॥

हे कर्ण! तुम तो पण्डित-मन्य बन कर इस समय व्याख्यान झाड़ रहे हो, परन्तु वैर का अन्त (बदला) तो अर्जुन लेकर छोड़ेगा और वह हम में से किसी को भी शेष नहीं रहने देगा।

नैव देवान्न गन्धर्वान्नासुरान्न च राक्षसान् ।
भयादिह न युध्येत कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥१७॥

संसार में कोई ऐसा देव, गन्धर्व, सुर, असुर नहीं है, जिससे भय खाकर कुन्ती-पुत्र धनञ्जय युद्ध न कर सकता हो।

यं यमेषोऽभिसंक्रुद्धः संग्रामे निपतिष्यति ।
वृक्षं गरुत्मान् वेगेन विनिहत्य तमेष्यति ॥१८॥

अत्यन्त क्रुद्ध हुआ अर्जुन, जिस २ पर युद्ध में झपटेगा, वृक्ष पर झपटे हुए गरुड़ के समान उसका नाश करके ही वह वापिस लौट सकेगा ॥१८॥

त्वत्तो विशिष्टं वीर्येण धनुष्यमरराट्समम् ।
वासुदेवसमं युद्धे पार्थं को वा न पूजयेत् ॥१९॥

अर्जुन, पराक्रम में तुमसे तो अधिक ही दिखाई देता है। यह तो धनुर्विद्या में इन्द्र के समान पराक्रमी है और रण में श्रीकृष्ण के सदृश वीर है। ऐसे अर्जुन को कौन प्रशंसा नहीं करेगा ॥१९॥

देवेन देवं युध्येत मानुषेण च मानुषम् ।
अस्त्रं ह्यस्त्रेण यो हन्यात् कोऽर्जुनेन समः पुमान् ॥

देव, देवों से और मनुष्य, मनुष्यों से युद्ध कर सकता है, परन्तु कौन ऐसा अर्जुन के तुल्य मनुष्य होगा, जो अपने अस्त्र से अर्जुन के अस्त्र को नष्ट कर सकेगा ॥२०॥

पुत्रादनन्तरः शिष्य इति धर्मविदो विदुः ।
एतेनापि निमित्तेन प्रियो द्रोणस्य पाण्डवः ॥२१॥

पुत्र के अनन्तर शिष्य का अधिकार है—यह धर्म के जानने वाले मनुष्यों की व्यवस्था है। यही कारण है, कि मेरे पिता द्रोण का अर्जुन से भी कुछ प्रेम है ॥२१॥

यथा द्यूतमकरोर्धूर्तमिन्द्रप्रस्थं यथाहरः ।
यथानैषीः सभां कृष्णां तथा युध्यस्व पाण्डवम् ॥२२

जिस तरह तुम लोगों ने द्यूत रचा और इन्द्रप्रस्थ को छीना तथा द्रौपदी को सभा में लाए, उसी तरह अब पाण्डवों से लड़ने को भी तय्यार हो जाओ ॥२२॥

अयं ते मातुलः प्राज्ञः क्षात्रधर्मस्य कोविदः ।
दुर्द्यूतदेवी गान्धारः शकुनिर्युध्यतामिह ॥२३॥

हे राजन्! यह तेरा मातुल, क्षात्रधर्म की व्यवस्था का जानने वाला, बड़ा बुद्धिमान, छल से जुआ खेलने वाला, गान्धारराज शकुनि खड़ा है, इससे कहो, कि यह युद्ध करे ॥२३॥

नाक्षान् क्षिपति गाण्डीवं न कृतं द्वापरं न च ।
ज्वलतो निशितान् बाणांस्तीक्ष्णान् क्षिपति गाण्डिवम्

यह गाण्डीव धनुष, पासे नहीं फैंकता है और न द्यूत में होने वाले दो या चार अङ्कों को यह निकालता है। यह तो जलते हुए तीक्ष्ण बाणों को ही बड़ी शीघ्रता से फैंकने वाला है ॥२४॥

न हि गाण्डीवनिर्मुक्ता गार्द्धपत्राः सुतेजनाः ।
अन्तरेष्ववतिष्ठन्ते गिरीणामपि दारुणाः ॥२५॥

गाण्डीव से निकलते हुए गृद्ध-पक्षी के पांखों से युक्त, बड़े तीक्ष्ण, अर्जुन के बाण, पर्वतों के भी भेदन कर जाने वाले हैं, ये बीच में कहीं नहीं रुक सकते हैं ॥२५॥

अन्तकः पवनो मृत्युस्तथाग्निर्वड़वामुखः ।
कुर्य्युरेते क्वचिच्छिेषं न तु क्रुद्धो धनञ्जयः ॥२६॥

यम, पवन, मृत्यु, अग्नि, समुद्र इनसे कुछ बच सकता है, परन्तु क्रुद्ध हुए अर्जुन से कोई नहीं बच सकेगा ॥२६॥

यथा सभायां द्यूतं त्वं मातुलेन सहाकरोः ।
तथा युद्धस्व संग्रामे सौबलेन सुरक्षितः ॥२७॥

जब तुमने अपने मामा शकुनि की सहायता से सभा में द्यूत मचाया, अब तुम उसी सुबल-पुत्र शकुनि को सहायक बनाकर संग्राम में लड़ाई करो ॥२८॥

युध्यन्तां कामतो योधा नाहं योत्से धनञ्जयम् ।
मत्स्यो ह्यस्माभिरायोध्यो यद्यागच्छेद्गवां पदम् ॥२८

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
अश्वत्थामाभर्त्सनवाक्ये पञ्चाशोऽध्यायः ॥५०

योद्धाओं की इच्छा हो, तो युद्ध करो, मैं तो धनञ्जय से लडूंगा नहीं यदि गौवों की रक्षा में स्वयं विराटराज भी आया होगा, तो मैं उससे लड़ने को तय्यार हूं ॥१८॥

इति श्री महाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में अश्वत्थामा के वाक्य का पचासवां अध्याय पूरा हुआ।

इक्यावनवां अध्याय

भीष्म उवाच—

साधु पश्यति वै द्रोणिः कृपश्च साधु पश्यति ।
कर्णस्तु क्षात्रधर्मेण केवलं योद्धुमिच्छति ॥१॥

भीष्म बोले—हे राजन ! अश्वत्थामा ने ठीक कहा है और कृपाचार्य ने भी ठीक ही समझा है। केवल कर्ण ही क्षात्र-धर्म का अवलम्ब ले कर युद्ध करना चाहता है ॥१॥

आचार्यो नाभिवक्तव्यः पुरुषेण विजानता ।
देशकालौ तु सम्प्रेक्ष्य योद्धव्यमिति मे मतिः ॥२॥

समझदार मनुष्य को आचार्य द्रोण पर कोई आक्षेप नहीं करना चाहिए, यही मेरा मत है ॥२॥

यस्य सूर्य्यसमाः पञ्च सपत्नाः सुप्रहारिणः ।
कथमभ्युदये तेषां न प्रमुह्येत पण्डितः ॥३॥

जिस के सूर्य के समान पांच तेजस्वी शत्रु प्रहार करने वाले सम्मुख खड़े हों, उस व्यक्ति के विजय में किस अस्त्र-विद्या के पण्डित को सन्देह नहीं हो सकता है ॥३॥

स्वार्थे सर्वे विमुह्यन्ति येऽपि धर्मविदो जनाः ।
तस्माद्राजन् ब्रवीम्येतद्वाक्यं ते यदि रोचते ॥४॥

हे राजन्! जो धर्म के जानने वाले मनुष्य हैं, वे भी स्वार्थ आ पड़ने पर मोहित हो जाते हैं। हे राजन्! मैं तुम को इसीलिए एक बात कहता हूं, तुम को अच्छी लगे तो सुनना ॥४॥

कर्णो हि यदवोचत्त्वां तेजः संजननाय तत् ।
आचार्य्यपुत्रः क्षमतां महत् कार्य्यमुपस्थितम् ॥५॥
नायं कालो विरोधस्य कौन्तेये समुपस्थिते ।

हे राजन्! कर्ण ने तेज उत्पन्न करने वाला कथन किया है और आचार्य पुत्र, अश्वत्थामा ने युद्ध के टलाने की बात कही है। इस संशयात्मक कार्य के आ जाने पर मेरी सम्मति में भी युद्ध नहीं होना चाहिए, क्योंकि सामने अर्जुन आ डटा है ॥५॥

क्षन्तव्यं भवता सर्वमाचार्य्येण कृपेण च ॥६॥
भवतां हि कृतास्त्रत्वं यथादित्ये प्रभा तथा ।
यथा चन्द्रमसो लक्ष्मीः सर्वथा नापकृष्यते ७॥
एवं भवत्सु ब्राह्मण्यं ब्रह्मास्त्रञ्च प्रतिष्ठितम् ।

आप द्रोण और कृप को सबके लिए क्षमा करदेनी चाहिए। आप लोग में अस्त्र-विद्या इस तरह चमक रही है—जैसे सूर्य में

प्रभा चमकती है, चन्द्रमा से जैसे चांदनी कभी दूर नहीं होती है, ऐसे ही तुम में ब्राह्मण्य और ब्रह्मास्त्र विद्यमान है ॥६-७॥

चत्वार एकतो वेद क्षात्रमेकत्र दृश्यते ॥८॥
नैतत्समस्तमुभयं कस्मिंश्चिदनुशुश्रुमः ।
अन्यत्र भारताचार्य्यात् सपुत्रादिति मे मतिः ॥९॥

एक ओर तो चारों वेद और एक ओर क्षात्र-धर्म का विकास दिखाई देरहा है। ये दोनों केवल भरत वंश के आचार्य आप द्रोण और आपके पुत्र अश्वत्थामा में ही विद्यमान हैं-ऐसा मेरा मत है

ब्रह्मास्त्रं ब्रह्म वेदाश्च नैतदन्यत्र दृश्यते ।
अन्यत्र भारताचार्य्यात् द्रोणात् पुरुषसत्तमात् ॥१०॥

ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मज्ञान और वेद, अन्य किसी व्यक्ति में इक_ नहीं हैं। ये तो पुरुषश्रेष्ठ, भरत वंश के आचार्य द्रोण में ही हैं।

वेदान्ताश्च पुराणानि इतिहासं पुरातनम् ।
जामदग्न्यमृते राजन् को द्रोणादधिको भवेत् ॥११॥

हे राजन् ! वेदान्त, पुराण, पुराने इतिहास, जमदग्नि-पुत्र, परशुराम को छोड़ कर द्रोण से अधिक अन्य किसी में नहीं हैं।

आचार्य्यपुत्रः क्षमतां नायं कालश्च भेदने ।
सर्वे संहत्य युध्यामः पाकशासनिमागतम् ॥१२॥

हे आचार्यपुत्र ! क्षमा करो, यह समय झगड़ा करने का नहीं है। अब तो इन्द्र-पुत्र, अर्जुन सम्मुख आगया है, इस से हम सब लोग मिलकर ही युद्ध करेंगे ॥१२॥

बलस्य व्यसनानीह यान्युक्तानि मनीषिभिः।
मुख्यो भेदो हि तेषान्तु पापिष्ठो विदुषां मतः॥१३॥

युद्ध विद्या के जानने वालों ने सेना के जो दोष बताए हैं, उन में सब से अधिक विनाशकारी यह भेद (फूट) है—ऐसा विद्वानों का मत है ॥१३॥

द्रौणिरुवाच —

नैवं न्याय्यमिदं वाक्यमस्माकं पुरुषर्षभ।
किन्तु रोषपरीतेन गुरुणा भाषिता गुणाः १४

अश्वत्थामा बोला—हे पुरुषर्षभ! हमारा वाक्य, यद्यपि ठीक नहीं है, तो भी पिता जी ने रोष में अर्जुन के गुणों का कीर्तन कर दिया है ॥१४॥

शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि।
सर्वथा सर्वयत्नेन पुत्रे शिष्ये हितं वदेत् १५

बात तो यह है, कि शत्रु के भी गुण कहने चाहिए और पूज्यों के भी दोष बताने में नहीं हिचकना चाहिए। सब तरह से सब यत्न पूर्वक पुत्र और शिष्य का हित कहना ही उचित है ॥१५

दुर्य्योधन उवाच —

आचार्य एष क्षमतां शान्तिरस्मिन् विधीयताम्।
अभिद्यमाने तु गुरौ तद्वृत्तं शेषकारितम् ॥१६॥

दुर्योधन बोला—हे आचार्य! आप क्षमा करें, इस कर्ण के विषय में शान्ति करें। यदि आप पूज्य रुष्ट न हुए, तो शेष कार्य की पूर्ति हो जावेगी ॥१६॥

वैशम्पायन उवाच—

ततो दुर्योधनो द्रोणं क्षमयामास भारत ।

सह कर्णेन भीष्मेण कृपेण च महात्मना ॥१७॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! राजा दुर्योधन ने कर्ण, भीष्म, महात्मा कृप को साथ लेकर द्रोण को सब तरह शान्त कर दिया।

द्रोण उवाच—

यदेतत् प्रथमं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ।

तेनैवाहं प्रसन्नो वै नीतिरत्र विधीयताम् ॥१८॥

द्रोण ने कहा—शान्तनु-पुत्र भीष्म ने, जो प्रथम वचन कहा है; मैं तो उससे ही प्रसन्न हो चुका हूं। अब तुम लोग, भीष्म के कथनानुसार नीति का अवलम्बन करो ॥१८॥

यथा दुर्योधनं पार्थो नोपसर्पति सङ्गरे ।

यथा दुर्योधनो राजा न गच्छेद् द्विषतां वशम् ॥१९

साहसाद्यदि वा मोहात्तथा नीतिर्विधीयताम् ।

युद्ध में अर्जुन, जिस तरह हो सके, राजा दुर्योधन के समीप न पहुंच सके और राजा दुर्योधन, साहस या मोह से जिस तरह शत्रु-वश में न हो सके तुम वैसी ही नीति का अवलम्बन करो।

वनवासे ह्यनिर्वृत्ते दर्शयेन्न स्वमर्जुनः ॥२०॥

धनञ्चालभमानोऽत्र नाद्य तत् क्षन्तुमर्हति ।

वनवास का समय पूरा हुए बिना अर्जुन अपने को प्रकट नहीं करेगा, परन्तु गोधन के यहां न पाने से भी उसको शान्ति नहीं है ॥२०॥

यथा नायं समायुञ्ज्याद्धार्त्तराष्ट्रं कथञ्चन ॥२१॥
न च सेना पराजय्यात्तथा नीतिर्विधीयताम् ।

यह अर्जुन, जिस तरह धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन से न भिड़ जावे और सारी सेना को खण्ड खण्ड न कर दे, ऐसी ही नीति का प्रयोग करो ॥२१॥

उक्तं दुर्योधनेनापि पुरस्ताद्वाक्यमीदृशम् ।
तदनुस्मृत्य गाङ्गेयो यथावद्वक्तुमर्हति ॥२२॥
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
द्रोणवाक्ये एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥५१॥

हे गङ्गा-पुत्र भीष्म ! राजा दुर्योधन ने भी पूर्व में ऐसा ही सबके सामने वाक्य कहा था, कि अभी तेरह वर्ष पूरे नहीं हुए हैं। तुम इसको विचार कर इसके विषय में ठीक २ विवेचन करो ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में द्रोण-वाक्य का इक्यावनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



बावनवां अध्याय

भीष्म उवाच —

कलाकाष्ठाश्च युज्यन्ते मुहूर्त्ताश्च दिनानि च ।
अर्द्धमासाश्च मासाश्च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥१॥
ऋतवश्चापि युज्यन्ते तथा सम्वत्सरो अपि ।
एवं कालविभागेन कालचक्रं प्रवर्त्तते ॥२॥

भीष्म कहने लगे—पल, घड़ी, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, नक्षत्र, ग्रह, ऋतु, और सम्वत्सर आदि विभाग से यह काल-चक्र चलता रहता है ॥१-२॥

तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषाञ्च व्यतिक्रमात् ।
पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः ॥३॥
एषामप्यधिका मासाः पञ्च च द्वादश क्षपाः ।
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्त्तते मतिः ॥४॥

उपर्युक्त काल के गमन के अनुसार और सूर्य तथा चन्द्रमा के नक्षत्रों के लङ्घन करने से पांच वर्ष में दो मास अधिक होजाते हैं। इनके तेरह वर्ष में पांच मास और बारह रात्रि अधिक हो गई हैं- मेरा तो ऐसा मत है ॥४॥

सर्वं यथावच्चरितं यद्यदेभिः परिश्रुतम् ।
एवमेतद् ध्रुवं ज्ञात्वा ततो बीभत्सुरागतः ॥५॥

इन्होंने जो २ प्रतिज्ञाएँ की थी, वे सारी ज्यों की त्यों निभा दी है। इन्होंने भी ऐसा ही निश्चय किया होगा। यही कारण है, कि जो आज अर्जुन सामने आया है ॥५॥

सर्वे चैव महात्मानः सर्वे धर्मार्थकोविदाः ।
येषां युधिष्ठिरो राजा कस्माद्धर्मेऽपराध्नुयुः ॥६॥

पाण्डव सारे ही महात्मा और धर्म का व्यवहार जानने वाले हैं। जिनका नेता राजा युधिष्ठिर है, वे धर्म के व्यवहार में कैसे चूक सकते हैं ॥६॥

अलुब्धाश्चैव कौन्तेयाः कृतवन्तश्च दुष्करम् ।
न चापि केवलं राज्यमिच्छेयुस्तेऽनुपायतः ॥७॥

कुन्ती-पुत्र, पाण्डव, लोभी लालची नहीं हैं। इन्होंने बड़ा दुष्कर कार्य कर दिखाया है। ये अधर्म निश्रित उपाय करके राज्य प्राप्त करना नहीं चाहते हैं ॥७॥

तदैव ते हि विक्रान्तुमीषुः कौरवनन्दनाः ।
धर्मपाशनिबद्धास्ते न चेलुः क्षत्रियव्रतात् ॥८॥

द्यूत के समय ही परिस्थिति ऐसी खड़ी हो गई थी, कि इन कुरु-वंश-श्रेष्ठों ने उसी समय पराक्रम कर दिखाना चाहा, परन्तु धर्म की पाश में बंधे रहने के कारण, क्षत्रियों के व्रत से एक पद (कदम) भी पीछे नहीं हटे ॥८॥

यच्चानृत इति ख्यायाद्यः स गच्छेत्पराभवम् ।
वृणुयुर्मरणं पार्था नानृतत्वं कथञ्चन ॥९॥

जो मिथ्या व्यवहार करता है, उसका अवश्य पराभव होता है। पाण्डव, मर जाना स्वीकार कर लेंगे, परन्तु मिथ्या व्यवहार को स्वीकार नहीं करेंगे ॥९॥

प्राप्ते काले तु प्राप्तव्यं नोत्सृजेयुर्नरर्षभाः ।
अपि वज्रभृता गुप्तं तथावीर्य्या हि पाण्डवाः ॥१०॥
प्रतियुध्याम समरे सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।

ये नर-श्रेष्ठ, अपने प्राप्त करने योग्य भाग को समय पर प्राप्त करके ही छोड़ेंगे—चाहे इन्द्र ही उनके विरुद्ध उनके भाग को क्यों न दबा बैठा हो। पाण्डव इसी ढंग के पराक्रमी हैं। हम को अब सर्व-शस्त्र-धारियों में श्रेष्ठ अर्जुन से लड़ना ही होगा ॥१०॥

तस्माद्यदत्र कल्याणं लोके सद्भिरनुष्ठितम् ॥११॥
तत्संविधीयतां शीघ्रं मा नो ह्यर्थोऽभ्यगात्परम् ।

तुमको उचित है, कि तुम सज्जनों से स्वीकार किए हुए मार्ग से लोक में जिससे कल्याण प्राप्त हो वैसा शीघ्र करो। कहीं हमारा स्वार्थ नष्ट होकर अन्य पक्ष की सिद्धि न हो जावे ॥११॥

न हि पश्यामि संग्रामे कदाचिदपि कौरव ॥१२॥
एकान्तसिद्धिं राजेन्द्र सम्प्राप्तश्च धनञ्जयः ।

हे कौरव ! राजेन्द्र ! युद्ध में अवश्य ही विजय होगा, ऐसा मुझे तो किसी भी युद्ध में होता दिखाई नहीं देता। जिस पर तो इस युद्ध में सम्मुख अर्जुन खड़ा है ॥१२॥

सम्प्रवृत्ते तु संग्रामे भावाभावौ जयाजयौ ।
अवश्यमेकं स्पृशतो दृष्टमेतदसंशयम् ॥१३॥

युद्ध के छिड़ जाने पर मरना या जीना तथा जय या पराजय एक को अवश्य प्राप्त होंगे, इसमें संशय नहीं है।

तस्माद्युद्धोचितं कर्म कर्म वा धर्मसंहितम् ।
क्रियतामाशु राजेन्द्र सम्प्राप्तो हि धनञ्जयः ॥१४॥

हे राजेन्द्र ! अब तुम या तो युद्ध करने को तय्यार हो जाओ या धर्मानुसार उनका भाग देकर धर्म के कार्य का शीघ्र सम्पादन करो, क्योंकि धनुष लेकर सामने अर्जुन आ डटा है ॥१४॥

दुर्योधन उवाच—

नाहं राज्यं प्रदास्यामि पाण्डवानां पितामह ।
युद्धोपचारिकं यत्तु तच्छीघ्रं संविधीयताम् ॥१५॥

दुर्योधन बोला—हे पितामह ! मैं पाण्डवों को सीधी तरह राज्य नहीं सौंप दूंगा । अब तो जो युद्ध के मार्ग हैं, आप उनको शीघ्र स्वीकार करो ॥१५॥

भीष्म उवाच—

अत्र या मामिका बुद्धिः श्रूयतां यदि रोचते ।
सर्वथा हि मया श्रेयो वक्तव्यं कुरुनन्दन ॥१६॥

भीष्म ने कहा—हे कुरुनन्दन ! यदि ऐसा ही है, तो जो तुमको अच्छा लगे, तो मेरी बात सुनलो, क्योंकि मुझे तो तुम्हारे हित की बात कहनी ही है ॥१६॥

क्षिप्रं बलं चतुर्भागं गृह्य गच्छ पुरं प्रति ।
ततो अपरश्चतुर्भागो गाः समादाय गच्छतु ॥१७॥

आप सेना का चतुर्थांश लेकर शीघ्र अपने नगर की रक्षा के लिए चल दो और दूसरा सेना का चतुर्थ भाग, गौओं को लेकर चलता बने ॥१७॥

वयं त्वर्द्धेन सैन्येन प्रतियोत्स्याम पाण्डवम् ।
अहं द्रोणश्च कर्णश्च द्रौणिः शारद्वतस्तथा ॥१८॥
प्रतियोत्स्याम बीभत्सुमागतं कृतनिश्चयम् ।

आधी सेना से हम लोग अर्जुन से लड़ेंगे। मैं द्रोण, कर्ण, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य युद्ध के निश्चय से आये हुए अर्जुन से निबट लेंगे ॥१८॥

मत्स्यं वा पुनरायातमागतं वा शतक्रतुम् ।
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥१९॥

यदि इस समय तुम्हारे नगर को जाते हुए मत्स्यराज भी आ जावेगा या स्वयं शतक्रतु इन्द्र चला आवेगा, तो भी मैं समुद्र को वेला की तरह सब को रोक दूंगा ॥१९॥

वैशम्पायन उवाच—

तद्वाक्यं रुरुचे तेषां भीष्मेणोक्तं महात्मना ।
तथैव कृतवान् राजा कौरवाणामनन्तरम् ॥२०॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! महात्मा भीष्म की यह युक्ति उनकी समझ में आ गई। कौरवोंके राजा दुर्योधन ने बहुत शीघ्र ऐसा कर डाला ॥२०॥

भीष्मः प्रस्थाप्य राजानं गोधनं तदनन्तरम् ।
सेनामुख्यान् व्यवस्थाप्य व्यूहितुं सम्प्रचक्रमे ॥२१॥

भीष्म ने राजा दुर्योधन को चलता करके उसके पीछे गायों को चलती कर दिया और यह फिर सेना के मुख्य वीरों को इकट्ठा करके व्यूह बनाने लगा ॥२१॥

भीष्म उवाच—

आचार्य्य मध्ये तिष्ठ त्वमश्वत्थामा तु सव्यतः ।
कृपः शारद्वतो धीमान् पार्श्वं रक्षतु दक्षिणम् ॥२२॥
अग्रतः सूतपुत्रस्तु कर्णस्तिष्ठतु दंशितः ।
अहं सर्वस्य सैन्यस्य पश्चात् स्थास्यामि पालयन् २३

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
भीष्मसैन्यव्यूहे द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥५२॥

भीष्म बोला—हे आचार्य ! तुम तो मध्य में और अश्वत्थामा बाईं ओर खड़ा हो जावे। शरद्वान्-पुत्र बुद्धिमान कृपाचार्य दांई पार्श्व की रक्षा करे। सब तरह सावधान होकर आगे सूत-पुत्र कर्ण खड़ा रहे और मैं सारी सेना की रक्षा करता हुआ पीछे खड़ा होता हूं ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में भीष्म के व्यूह रचने का बावनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

तरेपनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तथा व्यूढेष्वनीकेषु कौरवाणां महारथैः ।
उपायादर्जुनस्तूर्णं रथघोषेण नादयन् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! कौरवों के महारथियों द्वारा सेना का व्यूह (किले-बन्दी) कर लेने पर रथ घोष से दिशाओंको शब्दायमान करता हुआ अर्जुन भी, शीघ्र ही वहां आ पहुँचा ॥२

ददृशुस्ते ध्वजाग्रं वै शुश्रुवुश्च रथस्वनम् ।
दोधूयमानस्य भृशं गाण्डीवस्य च निःस्वनम् ॥२॥

कौरव सेनापतियों ने अर्जुनकी ध्वजाका अग्रभाग देखा और रथ की ध्वनि सुनी तथा बार २ बजाते हुए गाण्डीव धनुषकी टङ्कार को भी सुना ॥२॥

ततः सर्वं समालोक्य द्रोणो वचनमब्रवीत् ।
महारथमनुप्राप्तं दृष्ट्वा गाण्डीवधन्विनम् ॥३॥

गाण्डीव धनुषधारी महारथी अर्जुन को आया हुआ देख कर द्रोण ने सबकी ओर देखा और कहा ॥३॥

द्रोण उवाच —

एतद्ध्वजाग्रं पार्थस्य दूरतः संप्रकाशते ।
एष घोषः स रथजो रोरवीति च वानरः ॥४॥

यह ध्वजा अर्जुन की ही है, जो दूरसे ही चमक रही है और यह ध्वनि भी अर्जुन के ही रथ की है। यह ध्वजा पर बैठा हुआ वानर ही, किल-कार रहा है ॥४॥

वानरः सर्वसेनायां करोति भयमुत्तमम् ।
एष तिष्ठन्रथश्रेष्ठे रथे च रथिनाम्वरः ॥५॥
उत्कर्षति धनुः श्रेष्ठं गाण्डीवमशनिस्वनम् ।
इमौ हि बाणौ सहितौ पादयोर्मे व्यवस्थितौ ॥६॥
अपरौ चाप्यतिक्रान्तौ कर्णौ संस्पृश्य मे शरौ ।

यह रथ पर बैठा हुआ वानर ही सारी सेना में भय उत्पन्न कर रहा है। रथ के भीतर बैठा हुआ महारथी अर्जुन, वज्र के सदृश ध्वनि करने वाले धनुःश्रेष्ठ गाण्डीव को बार २ खैंच रहा है। ये दो बाण एक दम ही मेरे दोनों चरणों के पास आकर पड़े हैं। अन्य दो बाण, मेरे कानों को छू कर निकल गए ॥६॥

निवर्त्त्य हि वने वासं कृत्वा कर्मातिमानुषम् ॥७॥
अभिवादयते पार्थः श्रोत्रे च परिपृच्छति ।

दुष्कर कर्म पूरा करके और वनवास से लौट कर अर्जुन, आज बाणों द्वारा मेरे चरणों में प्रणाम करता है और कान के पास बाण फैंक कर आनन्द मङ्गल पूछ रहा है ॥७॥

चिरदृष्टोऽयमस्माभिः प्रज्ञावान् बान्धवप्रियः ।
अतीव ज्वलितो लक्ष्म्या पाण्डुपुत्रो धनञ्जयः ॥८॥

हमने भी आज बहुत दिन में अपना बुद्धिमान् प्रिय शिष्य देखा है। यह पाण्डु-पुत्र धनञ्जय, आज अत्यन्त ही ऐश्वर्य से देदीप्यमान हो रहा है ॥८॥

रथी शरी चारुतली निषङ्गी शङ्खी पताकी कवची किरीटी
खड्गीचधन्वीविराजपार्थः शिखी घृतस्रु गिभरिवावसिक्तः

आज रथ, बाण, उत्तम करतल-त्राण, तूणीर, शङ्ख, पताका, कवच, मुकुट, खड्ग, धनुष धारण किये हुए, अर्जुन, ऐसा प्रदीप्त हो रहा है—जैसा स्रुवे के घृत से प्रज्वलित अग्नि देदीप्यमान होता है ॥९॥

वैशम्पायन उवाच—

ततोऽर्जुनः कुरून् दृष्ट्वा संग्रामे समवस्थितान् ।
तत्कालसदृशं वाक्यं मत्स्यपुत्रमभाषत ॥१४॥

वैशम्पायन कहने लगे—हे राजन् ! अब अर्जुन ने संग्राम में सम्मुख खड़े हुए कौरवों को देख कर मत्स्य-पुत्र से उस समय के उपयोगी वचन कहा ॥१०॥

अर्जुन उवाच—

इषुपाते च सेनायां हयान् संयच्छ सारथे ।
यावत्समीक्षे सैन्येऽस्मिन् क्वासौ कुरुकुलाधमः ॥११॥

हे सारथे ! जहां बाण फैंके जावेंगे, तुम सेना के उसी स्थान पर अश्वों को ले चलकर खड़ा कर दो। मै इस सेना में दृष्टि फैंकता हूं, कि वह कुरुकुलाधम दुर्योधन इस सेना में किधर है।

सर्वानेताननादृत्य दृष्ट्वा तमतिमानिनम् ।
तस्य मूर्द्ध्नि पतिष्यामि तत एते पराजिताः ॥१२॥

मैं इन सबको छोड़कर और उस अत्यन्त घमण्डी दुर्योधन को देख कर उसके मस्तक पर ही टूट पड़ूंगा, क्योंकि उसके पराजित होने से ये सारे पराजित हो जावेंगे ॥१२॥

एष व्यवस्थितो द्रोणो द्रौणिश्च तदनन्तरः ।
भीष्मः कृपश्च कर्णश्च महेष्वासा व्यवस्थिताः ॥१३॥

यह सामने ही द्रोणाचार्य और उसके पास ही उनका पुत्र अश्वत्थामा खड़े हैं ॥१३॥

राजानं नात्र पश्यामि गाः समादाय गच्छति ।
दक्षिणं मार्गमास्थाय शङ्के जीवपरायणः ॥१४॥

मैं तो इस समय सेना में राजा दुर्योधन को देख ही नहीं रहा हूं । वह तो गायें लेकर दक्षिण मार्ग से चल दिया प्रतीत होता है, क्योंकि वह युद्ध से अपना जीव भी छिपता फिरता है ॥१४॥

उत्सृज्यैतद्रथानीकं गच्छ यत्र सुयोधनः ।
तत्रैव योत्स्ये वैराटे नास्ति युद्धं निरामिषम् ।
तं जित्वा विनिवर्त्तिष्ये गाः समादाय सर्वशः ॥१५॥

अब तुम इस सेना को छोड़ो और जिधर दुर्योधन जा रहा है, उधर चलो । हे विराट-पुत्र ! मैं वहीं युद्ध करूंगा । बिना लाभ के यहां युद्ध करना निरर्थक है । उससे युद्ध करके प्रथम गायें तो लौटा लूँ ॥१५॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तः स वैराटिर्हयान् संयम्य यत्नतः ।
नियम्य च ततो रश्मीन् यत्र ते कुरुपुङ्गवाः ॥१६॥
अचोदयत्ततो वाहान् यतो राजा सुयोधनः ।

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! अर्जुन के इतना कहते ही विराट्-पुत्र ने अश्वों को यत्न-पूर्वक उधर से रस्सी (वाग) खैंच कर रोक लिया, जिधर कुरुसेनापति, खड़े थे और अश्वों को उधर हांक दिया, जिधर राजा दुर्योधन गया था ॥१६॥

उत्सृज्य रथवंशन्तु प्रयाते श्वेतवाहने ॥१७॥
अभिप्रायं विदित्वा तं कृपो वचनमब्रवीत् ।

इन कौरव सेनापतियों के रथ समूह को छोड़कर श्वेत अश्वों वाले अर्जुन के उधर जाने के अभिप्राय को समझ कर कृपाचार्य यह वचन बोला ॥१७॥

नैषोऽन्तरेण राजानं बीभत्सुः स्थातुमिच्छति ॥१८॥
तस्य पार्ष्णिं गृहीष्यामो जवेनाभिप्रयास्यतः ।
न ह्येनमतिसंक्रुद्धमेको युध्येत संयुगे ॥१९॥
अन्यो देवात् सहस्राक्षात् कृष्णाद्वा देवकीसुतात् ।
आचार्य्याच्च सपुत्राद्वा भारद्वाजान्महारथात् ॥२०॥

यह अर्जुन, थोड़ी दूरी पर ही राजा दुर्योधन को पकड़ लेना चाहता है। यह वेग से चला जा रहा है, हम भी इसकी एड़ी दबाए पीछे २ चल दें। इस अत्यन्त कुपित अर्जुन से युद्ध में अकेला दुर्योधन नहीं लड़ सकेगा हां ? देवराज इन्द्र, देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण, भरद्वाजवंशोत्पन्न, महारथी द्रोणाचार्य तथा अश्वत्थामा तो अकेले इससे लड़ सकते हैं ॥१९-२०॥

किं नो गावः करिष्यन्ति धनं वा विपुलं तथा ।
दुर्योधनः पार्थजले पुरा नौरिव मज्जति ॥२१॥

ये गायें या बहुत से धन के प्राप्त हो जाने पर भी उसका हम क्या करेंगे, जो इससे प्रथम ही अर्जुन रूपी जल में दुर्योधन नौका की तरह डूब जावेगा ॥२१॥

तथैव गत्वा बीभत्सुर्नाम विश्राव्य चात्मनः ।
शलभैरिव तां सेनां शरैः शीघ्रमवाकिरत् ॥२२॥

लो ! यह अर्जुन, वहां पहुंच गया और इसने अपना नाम घोषितकर के आकाश को शलभ पक्षियों की तरह बाणों से सारी सेना को ढक दिया ॥२२॥

कीर्यमाणाः शरौघैस्तु योधास्ते पार्थचोदितैः ।
नापश्यन्नावृतां भूमिमन्तरीक्षञ्च पत्रिभिः ॥२३॥

अर्जुन के फैंके हुए बाणों के समूह से छिदे हुए योद्धाओं ने सारी भूमि और आकाश को बाणों से भरा हुआ देखा ॥२३॥

तेषामापतता युद्धे नापयानेऽभवन्मतिः ।
शीघ्रत्वमेव पार्थस्य पूजयन्ति स्म चेतसा ॥२४॥

कौरव सेनापतियों को आता देखकर योद्धा भागते २ रुक गए। ये सारे कौरव योद्धा, मन ही मन अर्जुन की शीघ्रता (फुर्ती) की प्रशंसा कर रहे थे ॥२४॥

ततः शङ्खं प्रदध्मौ स द्विषतां लोमहर्षणम् ।
विस्फार्य च धनुःश्रेष्ठं ध्वजे भूतान्यचोदयत्॥२५॥

अर्जुन ने शत्रुओं के लोम खड़ा कर देने वाला शङ्ख बजाया और धनु-श्रेष्ठ गाण्डीव को बजाकर ध्वजा-निवासी भूतों को प्रेरित किया ॥२५॥

तस्य शङ्खस्य शब्देन रथनेमिस्वनेन च ।

गाण्डीवस्य च घोषेण पृथिवी समकम्पत ॥२६॥

इस शंख के शब्द, रथ की नेमि की ध्वनि और गाण्डीव के के घोष से सारी पृथिवी काम्पने लगी ॥२६॥

अमानुषाणां सर्वेषां भूतानां ध्वजवासिनाम् ।

ऊर्ध्वं पुच्छान्विधुन्वाना धावमानाः समन्ततः ।

गावः प्रतिन्यवर्त्तन्त दिशमास्थाय दक्षिणाम् ॥२७॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि

गोनिवर्त्तने त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥५३॥

मनुष्यों से अधिक शक्तिशाली, ध्वजा निवासी भूतों के शब्द सुनकर पूँछ ऊपर को उठाकर सारी गायें चारों ओर भाग पड़ी और दक्षिण दिशा में स्थित विराट-नगर को लक्ष्य करके चल दी।

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में गायों के लौटाने का तरेपनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



चावनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

स शत्रुसेनां तरसा प्रणुद्य गास्ता विजित्याथ धनुर्द्धराग्र्यः।
दुर्य्योधनायाभिमुखः प्रयातो भूयो रणं सोऽभिचिकीर्षमाणः॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत! धनुर्धरों में श्रेष्ठ, अर्जुन, बड़े वेग से शत्रु सेना को दबा कर और गायों को जीत कर युद्ध करने की अभिलाषा से दुर्योधन की ओर चल दिया॥१॥

गोषु प्रयातासु जवेन मत्स्यान् किरीटिनं कार्य्यकृतञ्च मत्वा
दुर्य्योधनायाभिमुखं प्रयातं कुरुप्रवीराः सहसाभिपेतुः॥२॥

गायों के वेग से मत्स्य नगर को भाग निकलने पर अर्जुन को अपने कार्य में सफल देख कर तथा राजा दुर्योधन की ओर लपकते देख कर सारे कुरु-वीर भी बड़ी शीघ्रता से उधर ही दौड़े॥२॥

तेषामनीकानि बहूनि गाढं व्यूढानि दृष्ट्वा बहुलध्वजानि
मत्स्यस्यपुत्रं द्विषतां निहन्ता वैराटिमामन्त्र्य ततोऽभ्युवाच।

शत्रुनाशक अर्जुन, इन कौरव वीरों की अनेक ध्वजाओं से युक्त, गाढ़ी तरह व्यूह बना कर खड़ी हुई सेना को देख कर मत्स्यराज-पुत्र उत्तर को अपनी ओर प्रवृत्त करके कहने लगा।३।

एतेन तूर्णं प्रतिपादयेमान् श्वेतान् हयान् काञ्चनरश्मियुक्तान्
जवेन सर्वेण कुरु प्रयत्नमासादयेयं कुरुसिंहवृन्दम्॥४॥

हे राज-पुत्र ! तुम इस मार्ग से बड़ी शीघ्रता से सुवर्णमयी रस्सी से बंधे हुए, श्वेत अश्वों को बड़े वेग से हांको। मैं इस सारे कुरु-योद्धाओं के समूह तक पहुंच जाना चाहता हूं ॥४॥

गजो गजेनेव मया दुरात्मा यो योद्धुमाकाङ्क्षति सूतपुत्रः
तमेव मां प्रापय राजपुत्र दुर्योधनापाश्रयजातदर्पम् ॥५॥

हे राजपुत्र ! हाथी से लड़ने की इच्छा वाले दूसरे हाथी की तरह दुरात्मा सूत-पुत्र कर्ण, मुझसे लड़ना चाहता है। यह दुर्योधन का आश्रय पाकर बड़ा उन्मत्त हो रहा है, तुम प्रथम मुझे उसके पास ले चलो ॥५॥

स तैर्हयैर्वातजवैर्बृहद्भिः पुत्रो विराटस्य सुवर्णकक्षैः ।
व्यध्वंसयत्तद्रथिनामनीकं ततोऽवहत्पाण्डवमाजिमध्ये ॥६॥

विराट-पुत्र उत्तर ने, वायु के समान वेगशील, सुवर्णके भूषण (जींद) धारी, रथ में जुते हुए बड़े २ अश्वों से महारथियों की सेना का मर्दन करके अर्जुन को युद्ध के मध्य प्रदेश में ले जाकर खड़ा कर दिया ॥६॥

तं चित्रसेनो विशिखैर्विपाठैः संग्रामजिच्छत्रुसहो जयश्च ।
प्रत्युद्ययुर्भारतमापतन्तं महारथाः कर्णमभीप्समानाः ॥७॥

अर्जुन को आता हुआ देखकर चित्रसेन, अपने तीक्ष्ण बाणों को लेकर तथा संग्राम विजयी, शत्रु का सामना सह लेने वाला, जय नामक महारथी, सामने आया। ये महारथी, कर्ण को सब आघातों से बचाए रखना चाहते थे ॥७॥

ततः स तेषां पुरुषप्रवीरः शरासनार्चिःशरवेगतापः ।
व्रातं रथानामदहत्समन्युर्वनं यथाग्निः कुरुपुङ्गवानाम् ॥८॥

अब पुरुष-श्रेष्ठ अर्जुन ने, अग्नि के तुल्य रूप धारण किया इसका धनुष, अग्नि का लपटे और बाणों का वेग, अग्नि का संताप था। क्रोध में भरे हुए अर्जुन ने कौरवों के रथ समूह को इस तरह जला दिया जैसे अग्नि, वन को जला डालता है॥८॥

तस्मिंस्तु युद्धे तुमुले प्रवृत्ते पार्थं विकर्णोऽतिरथंरथेन ।
विपाटवर्षेण कुरुप्रवीरो भीमेन भीमानुजमाससाद ॥९॥

इस प्रकार घोर युद्ध के छिड़ जाने पर महारथी, भीमसेन के छोटे भाई, अर्जुन की ओर अपने वेगशील भीषण रथ से कुरु-प्रवीर, विकर्ण, बड़े वेग से झपटा ॥९॥

ततो विकर्णस्य धनुर्विकृष्य जाम्बूनदाग्र्योपचितं दृढज्यम्
अपातयत्तं ध्वजमस्य मथ्य छिन्नध्वजः सोऽभ्यपयाज्जवेन

अर्जुन ने इस के सुवर्ण से मंढे हुए, दृढ़ प्रत्यञ्चाधारी, धनुष को काट डाला और इसकी ध्वजा को काट कर भूमि पर गिरा दिया ध्वजाके कट जाने पर यह विकर्ण, बड़े वेग से सामने आया

तं शात्रवाणां गणबाधितारं कर्माणि कुर्वन्तममानुषाणि ।
शत्रुन्तपः कोपममृष्यमाणः समार्दयत्कौरवो... पार्थम् ११

शत्रु समूह को पीड़ित और मनुष्यों से अधिक काम कराने वाले अर्जुन को, शत्रुओं को सन्ताप देने और क्रोध को नहीं सहने वाले विकर्ण ने बाण वर्षा से ढक दिया ॥११॥

स तेन राज्ञातिरथेन विद्धो विगाहमानो ध्वजिनीं कुरूणाम् ।
शत्रुन्तपं पञ्चभिराशु विध्वा ततोऽस्य सूतं दशभिर्जघान ॥

इस कुरुराज के महारथी विकर्ण से बिंधे हुए, कौरवों की सेना का आलोडन करने वाले, अर्जुन ने इस शत्रु-तापी विकर्ण को पांच बाणों से बींध कर दश बाण से इसके सारथि को मार डाला ॥१२॥

ततः स विद्धो भरतर्षभेण बाणेन गात्रावरणातिगेन ।
गतासुराजौ निपपात भूमौ नगो नगाग्रादिव वातरुग्नः ॥

कवच के बींध लेने वाले बाणसे, भरत वंश-श्रेष्ठ अर्जुन द्वारा बींधा हुआ, विकर्ण, अचेत होकर भूमिपर गिर पड़ा—जैसे पर्वत के सामने वायु से उखाड़ कर वृक्ष गिरा दिया गया हो ॥१३

नरर्षभास्तेन नरर्षभेण वीरा रणे वीरतरेण भग्ना ।
चकम्पिरे वातवशेन काले प्रकम्पितानीव महावनानि॥१४॥

कौरववीर, वीर-श्रेष्ठ, अत्यन्त वीर, नर-श्रेष्ठ अर्जुनसे रण में परास्त कर दिए गए । ये आंधी से कंपाए हुए महावन की तरह काँपने लगे ॥१४॥

हतास्तु पार्थेन नरप्रवीरा गतासवोर्व्यां सुषुपुः सुवेशाः
वसुप्रदा वासवतुल्यवीर्याः पराजिता वासवजेन सङ्ख्ये १५

अर्जुन से हत होकर मरे हुए, कुरु-वीरों से पृथिवी भरगई। ये सुन्दर वेशधारी योद्धा, भूमि पर पड़े हुए सोते से दिखाई दे रहे थे। बड़े दानदेने वाले, इन्द्र के तुल्य पराक्रमी इन योद्धाओं को युद्ध में इन्द्र-पुत्र अर्जुन ने परास्त कर दिया ॥१५॥

सुवर्णकार्ष्णायसवर्मनद्धा नागा यथा हैमवताः प्रवृद्धाः।
तथा स शत्रून् समरे विनिघ्नन् गाण्डीवधन्वा पुरुषप्रवीरः

यह गाण्डीवधारी, योधाओं में श्रेष्ठ, अर्जुन, सुवर्ण जटित लोहे के कवच धारी, हिमालय में बढ़े हुए हाथियों के सदृश शत्रु वीरों को युद्ध में मार २ कर बिछाने लगा ॥१६॥

चचार सङ्ख्ये विदिशो दिशश्च दहन्निवाग्निर्वनमातपान्ते।
प्रकीर्णपर्णानि यथा वसन्ते विशातयित्वा पवनोऽम्बुदांश्च

ग्रीष्म ऋतु में वन को जलाते हुए अग्नि के तुल्य, अर्जुन, युद्ध में दिशा विदिशाओं को जलाने लगा। वसन्त में पके हुए पत्तों को तोड़ २ कर और हलके २ बादलों को पवन, जैसे उड़ा देता है, वैसे ही अर्जुन, शत्रुओं को उड़ाने लगा ॥१७॥

तथा सपत्नान्विकिरन् किरीटी चचार सङ्ख्येऽतिरथो रथेन
शोणाश्ववाहस्य हयान्निहत्य वैकर्त्तनभ्रातुरदीनसत्त्वः॥१८॥

इस प्रकार शत्रुओं को इधर उधर भगा कर महाबली महारथी अर्जुन, युद्ध भूमि में विचरने लगा। इस ने सूर्य- पुत्र कर्ण के भाई (सूत-पुत्र) के रथ के लाल अश्वों को मार डाला।

एकेन संग्रामजितः शरेण शिरो जहाराशु किरीटमाली।
तस्मिन् हते भ्रातरि सूतपुत्रो वैकर्त्तनो वीर्य्यमथाददानः१६

मुकुटधारी अर्जुन ने एक बाण में ही, बड़े २ संग्राम जीतने वाले कर्ण के भ्राता का शिर काट डाला। अपने भाई के मारे जाने पर सूत-पुत्र, कर्ण, अपने पराक्रम का आश्रय लेकर सामने आया ॥१६॥

प्रगृह्य दन्ताविव नागराजौ महर्षभं व्याघ्र इवाभ्यधावत् ।
स पाण्डवं द्वादशभिः पृषत्कैर्वैकर्त्तनः शीघ्रमथोजघान
कर्ण, बड़े आग्रह से पर्वत के तुल्य हाथियों के समान, अर्जुन और उत्तर तथा बड़े भारी वृषभ के तुल्य अर्जुन पर सिंह की तरह झपटा। इस सूर्य-पुत्र कर्ण ने आते ही अर्जुन को बारह बाणों से बींध डाला ॥२०॥

विव्याध गात्रेषु हयांश्च सर्वान् विराटपुत्रञ्च करे निजघ्ने ।
तमापतन्तं सहसा किरीटी वैकर्त्तनं वै तरसाभिपत्य ॥२१॥
इस ने सारे अश्वों के शरीरों को छेद डाला और विराट-पुत्र के भी हाथों में बाण गड़ा दिए। इस प्रकार झपटते हुए कर्ण पर बड़े वेग से अर्जुन झपटा ॥२१॥

प्रगृह्य वेगं न्यपतज्जवेन नागं गरुत्मानिव चित्रपक्षः ।
तावुत्तमौ सर्वधनुर्द्धराणां महाबलौ सर्वसपत्नसाहौ॥२२॥
कर्णस्य पार्थस्य निशम्य युद्धं दिदृक्षमाणाः कुरवोऽवतस्थुः
बड़े भारी सर्प पर विचित्र पक्षधारी गरुड़ के तुल्य, अर्जुन, दौड़ा। अर्जुन ने अपने वेग से कर्ण के वेग को रोक दिया। ये दोनों सारे धनुष-धारियों में उत्तम हैं और सारे शत्रुओं के प्रहारों को सह लेने वाले महाबली वीर हैं। कर्ण और अर्जुन के युद्ध को सुनकर सारे कौरव वीर देखनेकी इच्छा से ज्यों के त्यों खड़े रह गए ॥ २॥

स पाण्डवस्तूर्णमुदीर्णकोपः कृतागसं कर्णमुदीक्ष्य हर्षात्२३
क्षणेन साश्वं सरथं ससूतमन्तर्दधे घोरशरौघवृष्ट्या ।

अर्जुन भी बड़े कोप में भर गया, उसने बार २ अपराध करने वाले कर्ण को सामने ही खड़ा हुआ देखा, जिससे इसको बड़ा हर्ष और उत्साह हुआ। अर्जुन ने क्षणभर में घोर बाण वृष्टि से अश्व, रथ और सारथि सहित कर्ण को ढक दिया।२३।

ततः सुविद्धाः सरथाः सनागा योधा विनेदुर्भरतर्षभाणाम्
अन्तर्हिता भीष्ममुखाः सहाश्वाः किरीटिनाकीर्णरथाःपृषत्कैः

इसके अनन्तर रथ, हाथियों सहित बिंधे हुए भरतवंश-श्रेष्ठ कौरवों के योद्धाओं में हाहाकार मच गया। जिनके रथ छिन्न भिन्न हो गए, ऐसे भीष्म आदि कुरुप्रवीरों को भी अश्वों के साथ २ बाणों से अर्जुन ने ढक दिया।।२४।।

स चापि तानर्जुनबाहुमुक्तान् शराञ्छरौघैः प्रतिहत्य वीरः
तस्थौ महात्मा सधनुः सबाणः सविस्फुलिङ्गाग्निरिवाशुकर्णः

अर्जुन की बाहुओं से निकले हुए बाणों को अपने बाण समूह से काटकर, धनुष बाण लिए हुए महावीर, महात्मा कर्ण, चिनगारी उड़ाने वाले अग्नि की तरह देदीप्यमान हुआ वहीं डटा रहा।।२५।।

ततस्त्वभूद्वै तलतालशब्दः सशङ्खभेरीपणवप्रणादः ।।२६।।
प्रक्ष्वेडितज्या तलनिस्वनन्तं वैकर्त्तनं पूजयतां कुरूणाम् ।

धनुष की डोरी के खैंचने से डोरी और करतल की ध्वनि को छोड़ने वाले कर्ण का गौरव करते हुए कौरवों की ताली का शब्द, शंख, भेरी और पणव आदि वाद्यों के साथ २ बहुत ही बढ़ गया।।२६।।

उद्धूतलाङ्गूलमहापताकध्वजोत्तमांसाकुलभीषणान्तम् २७
गाण्डीवनिर्घोषकृतप्रणादं किरीटिनं प्रेक्ष्य ननाद कर्णः ।

ऊपर उठाई हुई पूंछ के तुल्य महापताका वाली ध्वजा के उत्तम दोनों भागों पर बैठे हुए, भीषण, भूतों के नाद के साथ २ गाण्डीव के नाद को करने वाले अर्जुन को देखकर कर्ण, भी गर्जना करने लगा ॥२७॥

स चापि वैकर्त्तनमर्दयित्वा साश्वं ससूतं सरथं पृषत्कैः २८
तमाववर्ष प्रसभं किरीटी पितामहं द्रोणकृपौ च दृष्ट्वा ।

इस प्रकार अर्जुन, अपने बाणों से अश्व, सारथि और रथ सहित कर्ण को बींधकर दूसरी ओर झुका । यहां भीष्म-पितामह और द्रोण तथा कृप को देखकर उन पर बाण वर्षा करने लगा ।

स चापि पार्थं बहुभिः पृषत्कैर्वैकर्त्तनो मेघ इवाभ्यवर्षत् २९
तथैव कर्णश्च किरीटमाली संच्छादयामास शितैः पृषत्कैः

सूर्य-पुत्र कर्ण ने, अनेक बाणों द्वारा अर्जुन पर मेघ की तरह झड़ी लगा दी । किरीट-धारी अर्जुन ने भी तीक्ष्ण बाणों से कर्ण को बुरी तरह ढक दिया ॥२९॥

तयोःसुतीक्ष्णान्सृजतोःशरौघान्महाशरौघास्त्रविवर्द्धने रणे
रथे विलग्नाविव चन्द्रसूर्यौ घनान्तरेणानुददर्श लोकः ।

बड़े २ शरों के समूह द्वारा मारकाट से बढ़े हुए रण में तीक्ष्ण बाण समूहों को छोड़ने वाले उन दोनों वीर कर्ण और अर्जुन

के रथ के पास लगे हुए और बादलों में ढके हुए से सूर्य चन्द्र, लोगों को प्रतीत होने लगे ॥३०॥

अथाशुकारी चतुरो हयांश्च पार्थस्य विव्याधशरैस्तु कर्णः ३१
त्रिभिस्तु यन्तारममृष्यमाणो विव्याध तूर्णं त्रिभिरेव केतुम्

अब शीघ्र । करने वाले (फुर्तीले) कर्ण ने क्रोध में भरकर चार बाणों से अर्जुन के चारों अश्वों को और तीन २ बाणों से सारथि एवं ध्वजा को बींध दिया ॥३१॥

ततोऽभिविद्धः समरावमर्दी प्रबोधितः सिंह इव प्रसुप्तः ३२
गाण्डीवधन्वा प्रवरः कुरूणामजिह्मगैः कर्णमियाय जिष्णुः

संग्राम में विध्वंस मचा देने वाला, अर्जुन, बाणों से बिंधने के कारण सोते हुए सिंह के समान जाग उठा। अब कुरुवंश श्रेष्ठ, गाण्डीव धनुषधारी, विजयी अर्जुन, बड़े बांके जाने वाले बाणों से कर्ण पर झपटा ॥३२॥

शरास्त्रवृष्ट्या निहतो महात्मा प्रादुश्चकारातिमनुष्यकर्म ३३
प्राच्छादयत् कर्णरथं पृषत्कैर्लोकानिमान् सूर्य्य इवांशुजालैः

कर्ण के शरों की वर्षा से बिंधकर महात्मा अर्जुन ने मनुष्यातिशायी कर्म कर डाला। इसने किरणों के जाल से सूर्य द्वारा लोकों से ढक देने के सदृश, बाणों से कर्ण के रथ को पाट दिया ॥३३॥

स हस्तिनेवाभिहतो गजेन्द्रः प्रगृह्य भल्लान्निशितान्निषङ्गात्
आकर्णपूर्णञ्च धनुर्विकृष्य विव्याध गात्रेष्वथ सूतपुत्रम्।

हाथी से टक्कर दिए हुए यूथपति गजराज के समान अर्जुन ने अपने तूणीर से तीक्ष्ण बाण निकाले और कान तक धनुष खींच कर सूत-पुत्र कर्ण के शरीर में बुरी तरह से प्रविष्ट कर दिए।

अथास्य बाहूरुशिरोललाटं ग्रीवां वराङ्गानि परावमर्दी ।
शितैश्च बाणैर्युधि निर्बिभेद गाण्डीवमुक्तैरशनिप्रकाशैः ।

शत्रु का मर्दन कर देने वाले अर्जुन ने [illegible] की भाँति चमकीले, तीक्ष्ण, गाण्डीव से छोड़े हुए [illegible] के बाहु, जंघा, शिर, ललाट, ग्रीवा आदि [illegible] को बींध डाला ॥३५॥

स पार्थमुक्तैर्विशिखैः प्रणुन्नो गजो गजेनेव जितस्तरस्वी ।
विहाय संग्रामशिरः प्रयातो वैकर्तनः पाण्डवबाणतप्तः ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
कर्णापयाने चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥५४॥

अर्जुन के छोड़े हुए बाणों का निशाना हुआ, वेगवान कर्ण, मदोन्मत्त हाथी से जीते हुए हाथी की भाँति, अर्जुन के बाणों से वेदना युक्त होकर रण के शिर (मैदान) को छोड़कर चल दिया,

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में कर्ण के युद्ध भूमि से चले जाने का चौवनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

पचपनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

[illegible]याते तु राधेये दुर्योधनपुरोगमाः ।

[illegible] स्वेन शनैरार्च्छन्त पाण्डवम् ॥१॥

[illegible] ! [illegible] कर्ण के युद्ध-भूमि से [illegible], अपनी २ सेना लेकर साथ [illegible] ॥१॥

[illegible] व्यूढस्यापततः शरैः ।

[illegible] तु महोदधेः ॥२॥

[illegible] बाणों से आक्रमण करती हुई, [illegible] वेला (मर्यादा) के [illegible] था ॥२॥

[illegible] कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।

दिव्यमस्त्रं [illegible] रथसत्तमः ॥३॥

श्वेत अश्वों के वाहन वाले, कुन्ती-पुत्र, महारथी-श्रेष्ठ, अर्जुन ने अब हंस कर दिव्य-अस्त्र का प्रयोग किया ॥३॥

यथा रश्मिभिरादित्यः प्रच्छादयति मेदिनीम् ।

तथा गाण्डीवनिर्मुक्तैः शरैः पार्थो दिशो दश ॥४॥

जैसे किरण जाल से सूर्य पृथिवी को व्याप्त कर देता है, इसी तरह अर्जुन ने गाण्डीव से छोड़े हुए बाणों से दशों दिशाओं को ढक दिया ॥४॥

न रथानां न चाश्वानां न गजानां न वर्मणाम् ।
अनिर्विद्धं शितैर्बाणैरासीद्‌द्व्यङ्गुलमन्तरम् ॥५॥

रथ, अश्व, हाथी, कवच आदि कोई भी सेना में ऐसी वस्तु नहीं बची, जिसको दो २ अङ्गुल पर अर्जुन ने नहीं वेंध दिया है।

दिव्ययोगाच्च पार्थस्य हयानामुत्तरस्य च ।
शिक्षाशिल्पोपपन्नत्वादस्त्राणाञ्च परिक्रमात् ॥६॥
वीर्य्यवत्त्वं द्रुतं चाग्र्यं दृष्ट्वा जिष्णोरपूजयन् ।

अर्जुन के इस दिव्य प्रयोग अश्व और उत्तर की युद्ध-शिक्षा, अस्त्रों के चलाने के क्रम तथा अर्जुन के सर्व-श्रेष्ठ पराक्रम और शीघ्रता (फुर्ती) को देखकर सब लोग अर्जुन की बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥६॥

कालाग्निमिव बीभत्सुनिर्दहन्तमिव प्रजाः ॥७॥
नारयः प्रेक्षितुं शेकुर्ज्वलन्तमिव पावकम् ।

प्रजा को दग्ध करते हुए कालाग्नि के सदृश तथा प्रज्वलित अग्नि के तुल्य, अर्जुन को शत्रु देख भी नहीं सकते थे ॥७॥

तानि ग्रस्तान्यनीकानि रेजुरर्जुनमार्गणैः ॥८॥
शैलं प्रति नवाभ्राणि व्याप्तानीवार्करश्मिभिः ।

अर्जुन के बाणों से छिदी हुई, शत्रु सेना, सूर्य किरणों से व्याप्त पर्वत की चोटी पर फैले हुए नवीन मेघों (लाल बादलों) के तुल्य प्रतीत होती थी ॥८॥

अशोकानां वनानीव फुल्लानि कुसुमैः शुभैः ॥९॥
रेजुः पार्थशरैस्तद्वत्तदा सैन्यानि भारत ।

हे भारत ! अर्जुन के बाणों से बिंधी हुई शत्रु सेना, खिले हुए सुन्दर पुष्पों से युक्त, अशोक के वन के समान (लाल) दिखाई दे रही थी ॥९॥

स्रजोऽर्जुनशरैः शीर्णं शुष्यत् पुष्पं हिरण्मयम् ॥१०।
छत्राणि च पताकाश्च खे दधार सदागतिः ।

सुनहरी पुष्पों की माला, अर्जुन के बाणों से बिखर कर सूख गई और वायु बाणों से काटे हुए छत्र तथा पताकाओं को आकाश में उड़ाने लगा ॥१०॥

स्वबलत्रासनात्त्रस्ताः परिपेतुर्दिशो दश ॥११॥
रथाङ्गदेशनादाय पार्थच्छिन्नयुगा हयाः ।

अपनी सेना के छिन्न भिन्न हो जाने से व्याकुल हुए घोड़े, अर्जुन द्वारा युगों (जूड़ों) के काट डालने पर रथों के अवशिष्ट भागों को लेकर दशों दिशाओं में भाग रहे थे ॥११॥

कर्णकक्षविषाणेषु अन्तरोष्ठेषु चैव ह ॥१२॥
मर्मस्वङ्गेषु चाहत्यापातयत् समरे गजान् ।

कान, करमूल, विषाण, नीचे के ओष्ठ तथा मर्म स्थानों में बाण मार २ कर अर्जुन, युद्ध में हाथियों को गिराने लगा ॥१२॥

कौरवाग्र्यगजानान्तु शरीरैर्गतचेतसाम् ॥१३॥
क्षणेन संवृता भूमिर्मेघैरिव नभस्तलम् ।

कौरव सेना के उत्तम २ मरे हुए हाथियों के शरीरों से मेघों से आकाश के सदृश क्षण भर में भूमि भर गई ॥१३॥

युगान्तसमये सर्वं यथा स्थावरजङ्गमम् ॥१४॥
कालक्षयस्वरूपेण दहत्युग्रशिखः शिखी ।
तद्वत् पार्थो महाराज ददाह समरे रिपून् ॥१५॥

हे महाराज ! प्रलय काल में उग्र लपटों वाला प्रचण्ड अग्नि, सारे काल से क्षीण हुए स्थावर जङ्गम जगत को क्षण भर में जला डालता है, उसी तरह अर्जुन ने युद्ध-भूमि में सारे रिपुओं को नष्ट कर डाला ॥१४-१५।

ततः सर्वास्त्रतेजोभिर्धनुषो [illegible] च ।
शब्देनामानुषाणां च भूतानां ध्वजवासिनाम् ॥१६॥
भैरवं [illegible] वानरस्य च कुर्वतः ।
[illegible] ॥१७॥
भयमुत्पादयामास बलवानरिमर्दनः ।

अब सारे अस्त्रों के तेज, धनुष के निनाद, ध्वजावासी, देव-योनि-विशेष भूतों के घोष तथा महा भयानक ध्वजा-स्थित वानर के भैरव शब्द एवं शङ्खध्वनि से बलवान् अरिमर्दन अर्जुन ने दुर्योधन की सेना में बड़ा भारी भय खड़ा कर दिया ॥१६-१७॥

रथशक्तिममित्राणां प्रागेव निपतद्भुवि ॥१८॥
सोऽपयात्सहसा पश्चात् साहसाच्चाभ्युपेयिवान् ।

शत्रुओं का रथ शक्ति को अर्जुन ने पहिले से ही भूमि पर गिरा दिया था । इस समय एक वार तो दुर्योधन, सहसा रण-भूमि से चल दिया, परन्तु फिर साहस करके लौट आया ॥१८॥

शरव्रातैः सुतीक्ष्णाग्रैः समादिष्टैः खगैरिव ॥१९॥

अर्जुनस्तु शराकाशं लोहितप्राशनैः खगैः ।

तब अर्जुन ने अत्यन्त तीक्ष्ण नोक वाले, धनुष से छोड़े हुए, पक्षियों की तरह उड़ने वाले रक्तलोलुप, बाण समूह से सारे आकाश को भर दिया ॥१९॥

आमात्रस्थे यथादित्य रश्मयस्तिग्मतेजसः ॥२०॥

दिशासु च तथा राजन्नसंख्याताः शरास्तदा ।

हे राजन् ! चमकीले पात्र में जैसे अत्यन्त तेजस्वी सूर्य की किरणें चमकती हैं, इसी तरह प्रत्येक दिशा में अर्जुन के बाण चमक रहे थे ॥२०॥

सकृदेवानतं शेकूरथमभ्यसितुं परे ॥२१॥

अलब्धः पुनरश्वैस्तु रथात् सोऽतिप्रपादयेत् ।

शत्रु लोग, एक बार तो समीप आये हुए अर्जुन के रथ को पहिचानते थे, परन्तु फिर अर्जुन अश्वों के द्वारा उस रथ से बड़ी दूर पड़ जाता था ॥२१॥

ते शरा द्विट् शरीरेषु यथैव न ससज्जिरे ॥२२॥

द्विडनीकेषु बीभत्सोर्न ससज्जे रथस्तदा ।

शत्रुओं के शरीर में वाण पार होकर जैसे आगे निकल जाते थे, वैसे ही अर्जुन का रथ शत्रुओं में पहुँच कर पार हो जाता था ॥२२॥

स तद्विक्षोभयामास ह्यरातिबलमञ्जसा ॥२३॥
अनन्तभोगो भुजगः क्रीड़न्निव महार्णवे ।

अर्जुन ने शत्रु की सेना को क्षण भर में विक्षोभित कर दिया। समुद्र में अनेक फन वाले सर्प की तरह अर्जुन रण-समुद्र में चक्कर लगा रहा था ॥२३॥

अस्यतो नित्यमत्यर्थं सर्वमेवातिगस्तथा ॥२४॥
अश्रुतः श्रूयते भूतैर्धनुर्घोषः किरीटिनः ।

लगातार बाणों को फेंकते हुए, सब प्रकार के शब्दों को दबा लेने वाला, अर्जुन के धनुष के घोष को सब लोग सुन रहे थे। ऐसा धनुर्घोष पूर्व में उन्होंने कभी नहीं सुना था ॥२४॥

सन्ततास्तत्र मातङ्गा बाणैरल्पान्तरान्तरे ॥२५॥
संवृतास्तेन दृश्यन्ते मेघा इव गभस्तिभिः ।

थोड़े २ अन्तर (फासले) पर बाणों से बिंधे हुए हाथी, सूर्य किरणों से व्याप्त, मेघों के सदृश दिखाई देते थे ॥२५॥

दिशोऽनुभ्रमतः सर्वाः सव्यदक्षिणमस्यतः ॥२६॥
सततं दृश्यते युद्धे सायकासनमण्डलम् ।

दायें बायें बाण फैंकते और चारों दिशाओं में चक्कर लगाते हुए, अर्जुन के धनुष का मण्डल, युद्ध भूमि में दिखाई देने लगा ॥२६॥

पतन्त्यरूपेषु यथा चक्षूंषि न कदाचन ॥२७॥
नालक्ष्येषु शराः पेतुस्तथा गाण्डीवधन्वनः ।

रूप रहित वस्तु पर जैसे कभी नेत्र नहीं पड़ते हैं, वैसे ही गाण्डीव-धारी अर्जुन के बाण लक्ष्यहीन स्थान पर नहीं पड़ते थे।

मार्गो गजसहस्रस्य युगपद् गच्छतो वने ॥२८॥
यथा भवेत्तथा जज्ञे रथमार्गः किरीटिनः ।

वन में गमन करते हुए सहस्रों हाथियों को जैसे मार्ग बन जाता है, वैसे ही अर्जुन के रथ को इस सेना में मार्ग बन जाता था ॥२८॥

नूनं पार्थजयैषित्वाच्छक्रः सर्वामरैः सह ॥२९॥
हन्त्यस्मानित्यमन्यन्त पार्थेन निहताः परे ।

शत्रु लोग, अर्जुन के प्रहारों को देखकर यही खयाल कर रहे थे, कि अर्जुन की जीत करने को सारे देवों के साथ, इन्द्र ही हम पर प्रहार कर रहा है ॥२९॥

घ्नन्तमत्यर्थमहितान्विजयन्तत्र मेनिरे ॥३०॥
कालमर्जुनरूपेण संहरन्तमिव प्रजाः ।

शत्रुओं को अत्यन्त मारते हुए, अर्जुन को सैनिक यही समझ रहे थे, कि अर्जुन के रूप से काल सारी प्रजा का संहार कर रहा है ॥३०॥

कुरुसेनाशरीराणि पार्थेनैवाहतान्यपि ॥३१॥
सेदुः पार्थहतानीव पार्थकर्मानुशासनात् ।

अर्जुन से छिन्न-भिन्न किये हुए, कुरु सैनिकोंके शरीर अर्जुन के छिन्न-भिन्न करने के समान ही पड़े थे, क्योंकि अर्जुन के कर्म तो अर्जुन के समान ही हैं। इसको अन्य किस से उपमा दी जा सकती है ॥३१॥

ओषधीनां शिरांसीव द्विषच्छीर्षाणि सोऽन्वयात्॥३२॥
अवनेशुः कुरूणां हि वीर्य्याण्यर्जुनजाद्भयात् ।

अर्जुन ने व्रीहि आदि की बालों के सदृश शत्रुओं के शिर काट डाले। कौरवों के पराक्रम तो अर्जुन के भय से ही ढ़ीले पड़ गए ॥३२॥

अर्जुनानिलभिन्नानि वनान्यर्जुनविद्विषाम् ॥३३॥
चक्रुर्लोहितधाराभिर्धरणीं लोहितान्तराम् ।

अर्जुन रूपी वायु ने अर्जुन के शत्रुओं के शरीर रूपी वन को उखाड़ कर फैंक दिया। इसने रक्त की धारा से भूमि को लाल कर दिया॥३३॥

लोहितेन समायुक्तैः पांशुभिः पवनोद्धतैः ॥३४॥
बभूवुर्लोहितास्तत्र भृशमादित्यरश्मयः ।

रक्त से युक्त, पवन से उड़ाई धूलि से सूर्य की किरणें और भी लाल २ प्रतीत होने लगी ॥३४॥

सार्कं खन्तत् क्षणेनासीत् सन्ध्यायामिव लोहितम् ३५
अप्यस्तं प्राप्य सूर्य्योऽपि निवर्त्तेत न पाण्डवः ।

इस समय सूर्य सहित आकाश, सन्ध्या काल में लाल हो जाने के सदृश लाल दिखाई देने लगा। अब सूर्य भी अस्त हो गया, परन्तु पाण्डु-पुत्र, अर्जुन, युद्ध से निवृत्त नहीं हुआ ॥३५॥

तान् सर्वान् समरे शूर पौरुषे समवस्थितान् ॥३६॥
दिव्यैरस्त्रैरचिन्त्यात्मा सर्वानार्च्छद्धनुर्धरान्।

जिसका पराक्रम विचार में नहीं आ सकता है, ऐसे शूरवीर अर्जुन ने युद्ध में पराक्रम दिखाने वाले सारे शत्रुओं के धनुर्धरों को अपने दिव्य अस्त्रों से व्याकुल कर दिया ॥३६॥

स तु द्रोणं त्रिसप्तत्या क्षुरप्राणां समार्पयत् ॥३७॥
दुःसहं दशभिर्बाणैर्द्रौणिमष्टाभिरेव च।
दुःशासनं द्वादशभिः कृपं शारद्वतं त्रिभिः ॥३८॥
भीष्मं शान्तनवं षष्ट्या राजानं च शतेन ह।
कर्णश्च कर्णिना कर्णे विव्याध परवीरहा ॥३९॥

अर्जुन ने द्रोण को इक्कीस, दुःसह को दश, अश्वत्थामा को आठ, दुःशासन को बारह, शरद्वान-पुत्र कृप को तीन, शान्तनु-पुत्र को साठ और राजा दुर्योधन को सौ बाणों से बींधा एवं कान तक खैंचे हुए एक बाण से कर्ण के कान में छेद कर डाला ॥३७-३८॥

तस्मिन् विद्धे महेष्वासे कर्णे सर्वास्त्रकोविदे।
हताश्वसूते विरथे ततोऽनीकमभज्यत ॥४०॥

सब अस्त्रों के ज्ञाता, महाधनुर्धर कर्ण के बिंध जाने पर और अश्व तथा सारथि के मरने से रथहीन हो जाने पर सारी सेना भाग निकली ॥४०॥

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा पार्थमाजिस्थितं पुरः ।
अभिप्रायं समाज्ञाय वैराटिः पार्थमब्रवीत् ॥४१॥

इस प्रकार सेना को भागती हुई और अर्जुन को युद्ध में सम्मुख खड़ा देखकर एवं अर्जुन का अभिप्राय पहिचान कर, विराट-पुत्र, उत्तर, अर्जुन से कहने लगा ॥४१॥

उत्तर उवाच—

आस्थाय रुचिरं पार्थ रथं सारथिना मया ।
कतमद्यास्यसेऽनीकमुक्तो यास्याम्यहं त्वया ॥४२॥

हे पार्थ ! मैं सारथि रूपसे आपके रथ पर बैठा हूं । अब तुम बताओ, मैं कौनसे मार्ग से चलूं । जब आप कहोगे—मैं उधर ही अपने रथ को हाँक दूंगा ॥४२॥

अर्जुन उवाच—

लोहिताश्वमरिष्टं यं वैयाघ्रमनुपश्यसि ।
नीलां पताकामाश्रित्य रथे तिष्ठन्तमुत्तर ॥४३॥
कृपस्यैतदनीकाग्रं प्रापयस्वैतदेव माम् ।
एतस्य दर्शयिष्यामि शीघ्रास्त्रं दृढधन्विनः ॥४४॥

अर्जुन ने कहा-हे उत्तर ! लाल अश्वों के रथ से युक्त, व्याघ्र-चर्म-धारी, शुभ्र-वर्ण और नीली पताका वाले रथ में स्थित,

महाभारत चित्र संख्या ५६



महाराजा विराट का कुपित होकर युधिष्ठिर (कङ्कशर्मा) के मुह पर पासे फैंकना और नाक से खून बहना तथा द्रौपदी का खून धोना।

महाभारत विराटपर्व अ० ६८ । ४५ पृष्ठ २४७

कृपाचार्य है और यही इसकी सेना का अग्रभाग है; मुझे अब तुम वहां पहुँचा दो। मैं इस दृढ़ धनुषधारी को अपने धनुष का कौशल दिखाऊँगा ॥४४॥

कमण्डलुर्ध्वजे यस्य शातकुम्भमयः शुभः।
आचार्य एष हि द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥४५॥

जिसकी सुवर्ण की ध्वजा में कमण्डलु का चिन्ह है, यह सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, गुरुवर द्रोणाचार्य हैं ॥४५॥

सदा ममैष मान्यस्तु सर्वशस्त्रभृतामपि।
सुप्रसन्नं महावीरं कुरुष्वेनं प्रदक्षिणम् ॥४६॥
अत्रैव चावरोहैनमेष धर्मः सनातनः।

मेरे हृदय में इन की बड़ी प्रतिष्ठा है। ये अन्य भी सारे शस्त्रधारियों के पूज्य, प्रसन्न-चित्त बड़े वीर महात्मा हैं। तू प्रथम इनकी प्रदक्षिणा और यहीं पर इनके मान प्रदर्शन के नियम का निर्वाह कर, क्योंकि सनातन से यही धर्म चला आता है ॥४६॥

यदि मे प्रथमं द्रोणः शरीरे प्रहरिष्यति ॥४७॥
ततोऽस्य प्रहरिष्यामि नास्य कोपो भवेदिति।

यदि मेरे शरीर पर आचार्य द्रोण ने प्रथम प्रहार कर दिया, तो फिर मैं इन पर प्रहार करूंगा। इस तरह ये कुपित नहीं होंगे ॥४७॥

अस्याविदूरे च धनुर्ध्वजाग्रं यस्य दृश्यते ॥४८॥
आचार्यस्यैष पुत्रो वै अश्वत्थामा महारथः।

सदा ममैष मान्यश्च सर्वशस्त्रभृतामपि ॥४९॥
एतस्य त्वं रथं प्राप्य निवर्तेथाः पुनः पुनः ।

इस के पास ही जिस की ध्वजा में धनुष का चिन्ह दिखाई देता है, यह आचार्य का पुत्र, महारथी अश्वत्थामा है। यह मेरा तथा अन्य सारे शस्त्रधारियों का पूज्य है। तुम इस के पास पहुँच कर भी मेरे रथ को बार २ प्रदक्षिणा के रूप में घुमाना ॥४८-४९॥

य एष तु रथानीके सुवर्णकवचावृतः ॥५०॥
सेनाग्रे्यच्च तृतीयेन व्यवहार्येण तिष्ठति ।
यस्य नागो ध्वजाग्रे वै हेमकेतनसंवृतः ॥५१॥
धृतराष्ट्रसुतः श्रीमानेष राजा सुयोधनः ।

जो रथों की सेना में सुवर्ण का कवच पहिने हुए, सर्व-श्रेष्ठ, युद्ध के योग्य, तीसरी सेना के साथ खड़ा है, जिस की ध्वजा में हाथी का चिन्ह है, जो सुवर्ण की अन्य पताकाओं से युक्त है, यह धतराष्ट्र-पुत्र, श्रीमान् राजा दुर्योधन है ॥५०-५१॥

एतस्याभिमुखं वीर रथं पररथारुजम् ॥५२॥
प्रापयस्वैष राजा हि प्रमाथी युद्धदुर्मदः ।

हे वीर! शत्रु के रथ को पीड़ा पहुँचा देने वाले मेरे इस रथ को अब इस दुर्योधन के सम्मुख ले चलो। यह राजा दुर्योधन, बड़ा शत्रु विजयी और युद्ध में दुर्मद है ॥५२॥

एष द्रोणस्य शिष्याणां शीघ्रास्त्रे प्रथमो मतः ॥५३॥
एतस्य दर्शयिष्यामि शीघ्रास्त्रं विपुलं रणे ।

यही द्रोणाचार्य के शिष्यों में शीघ्र-शस्त्र फैंकने में प्रथम माना जाता है। अब मैं इस रण में इस को अपने शीघ्र बाण फेंकने के कौशल को दिखाऊँगा ॥५३॥

नागकक्षा तु रुचिरा ध्वजाग्रे यस्य तिष्ठति ॥५४॥
एष वैकर्त्तनः कर्णो विदितः पूर्वमेव ते।

हाथी की सुन्दर शृङ्खला जिस की ध्वजा में दिखाई दे रही है—यह सूर्य-पुत्र कर्ण है। इस को तो तू पूर्व से ही जानता है ॥५४॥

एतस्य रथमासाद्य राधेयस्य दुरात्मनः ॥५५॥
यत्तो भवेथाः संग्रामे स्पर्द्धते हि सदा मया।

तुम इस राधा-पुत्र कर्ण के सम्मुख रथ को फिर खड़ा करके सावधान हो जाओ। यह सदा युद्ध में मेरे साथ स्पर्धा (बराबरी) करता रहता है ॥५५॥

यस्तु नीलानुसारेण पञ्चतारेण केतुना ॥५६॥
हस्तावापी बृहद्धन्वा रथे तिष्ठति वीर्य्यवान्।
यस्य तारार्कचित्रोऽसौ रथे ध्वजवरः स्थितः ॥५७॥
यस्यैतत्पाण्डुरं छत्रं विमलं मूर्द्ध्नि तिष्ठति।
महतो रथवंशस्य नानाध्वजपताकिनः ॥५८॥
बलाहकाग्रे सूर्य्यो वा य एष प्रमुखे स्थितः।
हैमचन्द्रार्कसङ्काशं कवचं यस्य दृश्यते ॥५९॥

जातरूपशिरस्त्राणं मनस्तापयतीव मे ।
एष शान्तनवो भीष्मः सर्वेषां नः पितामहः ॥६०॥

यह जो नील रंगकी पांच सुवर्ण के मण्डल वाली ध्वजा से सुशोभित, हस्त-त्राणधारी, बृहत् धनुष-वाला, वीर्यवान् रथ में बैठा है, जिस की ग्रह और सूर्य के सदृश चित्र विचित्र ध्वजा है, श्वेत, निर्मल छत्र, जिस के मस्तक पर विराजमान है, जो अनेक ध्वजा पताका वाले रथ समूह में प्रमुख रथ पर बैठा है, जो बादलों में सूर्य के तुल्य चमक रहा है, सुवर्ण, चन्द्र और सूर्य के सदृश जिसका कवच चमकता है, जिस का सुवर्ण का शिरस्त्राण है, जो मेरे मन में भी उद्वेग उत्पन्न कर रहा है, यह शान्तनु-पुत्र, भीष्म, हम सब कौरवों का पितामह है ॥५९-६०॥

राजश्रियाभिवृद्धश्च दुर्योधनवशानुगः ।
पश्चादेष प्रयातव्यो न मे विघ्नकरो भवेत् ॥६१॥
एतेन युध्यमानस्य यत्तः संयच्छ मे हयान् ।

यह राज्य-लक्ष्मी से सुशोभित हो कर दुर्योधन के वश में है। तुम सब से पीछे इसके पास पहुँचना। यह कहीं मेरे इस विजय में विघ्न न कर डाले। जब इस से युद्ध होने लगे, तब बड़े सावधान हो कर मेरे रथ को चलाना ॥६१॥

ततोऽभ्यवहद्व्यग्रो वैराटिः सव्यसाचिनम् ।
यत्रातिष्ठत् कृपो राजन् योत्स्यमानो धनञ्जयम् ॥६२

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरं प्रति कृपाचार्यादीनां परिचयदाने पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥५५॥

हे राजन! इसके अनन्तर विराट-पुत्र उत्तर ने बड़ी निर्द्वन्द्वता से सव्यसाची अर्जुन को वहाँ ले जा कर खड़ा कर दिया, जहां कृपाचार्य युद्ध कर रहा था ॥६२॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में उत्तर को कृप आदि महारथियों के परिचय कराने का पचपनवां अध्याय समाप्त हो गया।

******

छप्पनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तान्यनीकान्यदृश्यन्त कुरूणामुग्रधन्विनाम् ।
संसर्पन्तो यथा मेघा घर्मान्ते मन्दमारुताः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! अब उग्र-धनुष-धारी, कौरवों की सेनाएँ, मन्द वायु से वर्षा ऋतु में चलाये हुए मेघों के सदृश दिखाई देने लगी ॥१॥

अभ्यासे वाजिनस्तस्थुः समारूढाः प्रहारिणः ।
भीमरूपाश्च मातङ्गास्तोमराङ्कुशचोदिताः ॥२॥
महामात्रैः समारूढा विचित्रकवचोज्ज्वलाः ।

इस सेना में पास में हीं अश्व खड़े थे, जिन पर प्रहार करने वाले सवार आरूढ़ थे। तोमर तथा अङ्कुश से चलाए हुए, भीम

रूप वाले, इस में हाथी थे, जिन पर महावत चढ़ रहे थे और जो विचित्र कवचों से उज्ज्वल थे ॥२॥

ततः शक्रः सुरगणैः समारुह्य सुदर्शनम् ॥३॥
सहोपायात्तदा राजन् विश्वाश्विमरुतां गणैः ।

हे राजन् ! अब इन्द्र, सुदर्शन हाथी पर चढ़ कर विश्व, अश्वि और मरुतों के गण तथा देवों के साथ उस युद्ध के देखने को आया ॥३॥

तद्देवयक्षगन्धर्वमहोरगसमाकुलम् ॥४॥
शुशुभेऽभ्रविनिर्मुक्तं ग्रहाणामिव मण्डलम् ।

इस समय यह भूमि भाग, देव, यक्ष, गन्धर्व, महोरग आदि देवयोनियों से व्याप्त हो कर मेघ रहित ग्रहों के मण्डल की तरह देदीप्यमान हो रहा था ॥४॥

अस्त्राणाञ्च बलं तेषां मनुष्येषु प्रयुञ्जताम् ॥५॥
तच्च घोरं महद्युद्धं कृपार्जुनसमागमे ।
द्रष्टमभ्यागता देवा विमानैः स्वैः पृथक् पृथक् ॥६॥

कृपाचार्य और अर्जुन के भिड़ जाने के समय मनुष्यों में प्रयुक्त हुए देवों के अस्त्रों के बल और इस घोर महायुद्ध को देखने की इच्छा से देवता, पृथक् २ अपने २ विमानों पर बैठ कर आए ॥५-६॥

शतं शतसहस्राणां यत्र स्थूणा हिरण्मयी ।
मणिरत्नमयी चान्या प्रासादमुपधारयत् ॥७॥

जिस संख्या में सैकड़ों लाखों की सुवर्ण की थूनी लगी हुई थी और एक मध्य में मणि-रत्नों से जटित स्थूणा (थूनी) थी। इनके आधार पर इन्द्र का प्रासाद (विमान) सुशोभित हो रहा था ॥ ॥

ततः कामगमं दिव्यं सर्वरत्नविभूषितम् ।
विमानं देवराजस्य शुशुभे खेचरं शुभम् ॥८॥

कामना के अनुसार गमन करने वाला, सब रत्नों से विभूषित, देवराज इन्द्र का विमान, आकाश में घूमता हुआ बड़ा ही मनोहर दिखाई देता था ॥८॥

तत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत्तिष्ठन्ति सहवासवाः ।
गन्धर्वा राक्षसाः सर्पाः पितरश्च महर्षिभिः ॥९॥
तथा राजा वसुमना बलाक्षः सुप्रतर्दनः ।
अष्टकश्च शिबिश्चैव ययातिर्नहुषो गयः ॥१०॥
मनुः पूरूरघुर्भानुः कृशाश्वः सगरो नलः ।
विमानन्देवराजस्य समदृश्यन्त सुप्रभाः ॥११॥

उस समय अन्तरीक्ष में इन्द्र के साथ तेतीसों देवता थे तथा महर्षियों के साथ, गन्धर्व, राक्षस, सर्प, पितर भी विद्यमान थे। इस समय राजा वसुमना, बलाक्ष, सुप्रतर्दन, अष्टक, शिबि, ययाति, नहुष, गय, मनु, पुरु, रघु, भानु, कृशाश्व, सगर, नल भी वहीं थे। अब देवराज इन्द्र का अत्यन्त-कान्ति-धारी, विमान, बहुत ही समीप दिखाई देने लगा ॥९-११॥

अग्नेरीशस्य सोमस्य वरुणस्य प्रजापतेः ।
तथा धातुर्विधातुश्च कुबेरस्य यमस्य च ॥१२॥
अलम्बुषोग्रसेनानां गन्धर्वस्य च तुम्बुरोः ।
यथाभागं यथोद्देशं विमानानि चकाशिरे ॥१३॥

अग्नि, ईश, सोम, वरुण, प्रजापति, धाता, विधाता, कुबेर यम, अलम्बुष, तुम्बरु आदि गन्धर्वों के अपने २ स्थान और क्रम से विमान चमकने लगे ॥१२-१३॥

सर्वदेवनिकायाश्च सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अर्जुनस्य कुरूणाञ्च युद्धं द्रष्टुमुपागताः ॥१४॥

सारे देवों का समूह, सिद्ध, बड़े २ ऋषि, अर्जुन और कौरवों का युद्ध देखने को वहां आए ॥१४॥

दिव्यानां तत्र माल्यानां गन्धः पुण्योऽथ सर्वशः ।
प्रससार वसन्तादौ वृक्षाणामिव पुष्पिणाम् ॥१५॥

उन देवों की दिव्य मालाओं का दिव्य गन्ध, वसन्त में फूलों से लदे हुए वृक्षों से फैलते हुए गन्ध के तुल्य फैल रहा था ॥१५॥

आतपत्राणि वासांसि ध्वजाश्च व्यजनानि च ।
तत्र रत्नादिदेवानां समदृश्यन्त तिष्ठताम् ॥१६॥

अन्तरीक्ष में स्थित देवों के छत्र, वस्त्र, ध्वजा, चिन्ह और रत्न दूर से ही चमक रहे थे ॥१६॥

उपाशाम्यद्रजो भौमं सर्वं व्याप्तं मरीचिभिः ।
दिव्यान् गन्धानुपादाय वायुर्योधानसेवत ॥१७॥

भूमि से उठा हुआ रज, शान्त हो गया और सारा युद्ध-स्थल देवों के किरण समूह से व्याप्त हो गया। वायु, दिव्य गन्ध को धारण करके योद्धाओं की सेवा करने लगा ॥१७॥

प्रभासितमिवाकाशं चित्ररूपमलङ्कृतम् ।
सम्पतद्भिः स्थितैश्चापि नानारत्नावभासितैः ॥१८॥

अनेक रत्नों से जाज्वल्यमान, खड़े हुए या इधर उधर विमानों से उड़ते हुए देवों से आकाश बड़ा चमकीला, चित्र-विचित्र और अलंकृत हो रहा था ॥१८॥

विमानैर्विविधैश्चित्रैरुपानीतैः सुरोत्तमैः ।
वज्रभृच्छुशुभे तत्र विमानस्थः सुरैर्वृतः ॥१९॥

अनेक प्रकार के चित्र विचित्र, देवों से लाए हुए, अनेक विमान और देवों से युक्त, विमान में स्थित, वज्रधारी, इन्द्र बड़ा ही सुशोभित हो रहा था ॥१९॥

बिभ्रन् मालां महातेजाः पद्मोत्पलसमायुताम् ।
विप्रेक्षमाणो बहुभिर्नातृप्यत् सुमहाहवम् ॥२०॥
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
देवागमने षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥५६॥

महातेजस्वी, पद्म और उत्पलों से युक्त, माला को पहिने हुए, देवराज इन्द्र, बहुत से देवों के साथ इस युद्ध को देखता हुआ तृप्त नहीं होता था ॥ २०॥

इति श्रीमहारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में देवों के आगमन का छप्पनवां अध्याय समाप्त हुआ

सत्तावनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

दृष्ट्वा व्यूढान्यनीकानि कुरूणां पाण्डुनन्दनः ।
तत्र वैराटिमामन्त्र्य पार्थो वचनमब्रवीत् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! कौरवों की व्यूह रचना करके खड़ी हुई सेना को देखकर पाण्डु-नन्दन, अर्जुन, विराट-पुत्र उत्तर को अपनी ओर सम्बोधित करके बोला ॥१॥

जाम्बूनदमयी वेदी ध्वजे यस्य प्रदृश्यते ।
तस्य दक्षिणतो याहि कृपः शारद्वतो यतः ॥२॥

जिसकी ध्वजा में सुवर्ण की वेदी चमक रही है, तुम इसके दांई ओर से चलो, क्योंकि कृपाचार्य इधर ही हैं ॥२॥

वैशम्पायन उवाच—

धनञ्जयवचः श्रुत्वा वैराटिस्त्वरितस्तदा ।
हयान् रजतसङ्काशान् हेमभाण्डानचोदयत् ॥३॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत! धनञ्जय के वचन सुनकर विराट-पुत्र उत्तर, चांदी के सदृश श्वेत, सुवर्ण के अलङ्कार धारी, अश्वों को उधर ही हांकने लगा ॥३॥

आनुपूर्व्या तु तत्सर्वं जवमास्थाय चोत्तमम् ।
प्राहिणोच्चन्द्रसङ्काशान् कुपितानिव तान् हयान् ॥४॥

अश्वों में क्रम से बड़े वेग को धारण करके उत्तर ने चन्द्रमा के सदृश श्वेत, कुपित हुए से अश्वोंको बड़े आवेश में चलाया।

स गत्वा कुरुसेनायाः समीपं हयकोविदः।
पुनरावर्त्तयामास तान् हयान् वातरंहस ॥५॥

अश्वों के हांकने की शिक्षा में कुशल, उत्तर, कुरुसेना के समीप पहुंचा और वायु के समान वेगशील अश्वों को फिर उसने वापिस लौटाया ॥५॥

प्रदक्षिणमुपावृत्य मण्डलं सव्यमेव च।
कुरून् संमोहयामास मत्स्यो यानेन तत्ववित् ॥६॥

बायें मण्डल की प्रदक्षिणा करके यान चलाने के तत्व के जानने वाले, मत्स्य-पुत्र उत्तर ने कुरुओं को अपने यान चलाने के कौशल से चकित कर दिया ॥६॥

कृपस्य रथमास्थाय वैराटिरकुतोभयः।
प्रदक्षिणमुपावृत्य तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥७॥

निर्भीक विराट-पुत्र, महाबली उत्तर, कृपाचार्य के रथ के पास पहुंच कर और उसकी प्रदक्षिणा करके सामने आ खड़ा हुआ।

ततोऽर्जुनः शङ्खवरं देवदत्तं महास्वनम्।
प्रदध्मौ बलमास्थाय नाम विश्राव्य चात्मनः ॥८॥

इसके अनन्तर अर्जुन ने बड़ी ध्वनि करने वाले, सर्वोत्तम देवदत्त नामक शंख को अपना नाम उद्घोषित करके बड़े बल से बजाया ॥८॥

तस्य शब्दो महानासीद् धमायमानस्य जिष्णुना।
तथा वीर्यवता सङ्ख्ये पर्वतस्येव दीर्यतः ॥९॥

बलशाली अर्जुन द्वारा बजाए हुए शङ्ख का युद्ध भूमि में बड़ा भारी शब्द हुआ। इस समय ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई पर्वत फट रहा हो ॥९॥

पूजयाञ्चक्रिरे शङ्खं कुरवः सहसैनिकाः ।
अर्जुनेन समाध्मातः शतधा यन्न दीर्य्यते ॥१०॥

अर्जुन के बल-पूर्वक बजाने पर भी इस शंख के सौ टुकड़े नहीं हुए, इससे सैनिकों के साथ, कौरवों ने इस शंख की बड़ी प्रशंसा की ॥१०॥

दिवमावृत्य शब्दस्तु निवृत्तः शुश्रुवे पुनः ।
सृष्टो मघवता वज्रः प्रपतन्निव पर्वते ॥११॥

आकाश में जाकर शङ्ख की प्रतिध्वनि हुई। इस समय यही प्रतीत हुआ, कि कहीं इन्द्र से फैंका हुआ वज्र, पर्वतों पर पड़ा है।

एतस्मिन्नन्तरे वीरो बलदर्पसमन्वितः ।
अमृष्यमाणस्तं शब्दं कृपः शारद्वतस्तथा ॥१२॥
अर्जुनं प्रति संरब्धो युद्धार्थी स महारथः ।
महोदधिजमादाय दध्मौ वेगेन वीर्य्यवान् ॥१३॥

इसी अन्तर में बल और गर्व से युक्त, उस शङ्ख शब्द को नहीं सहने वाला, शरद्वान् सुत, महारथी वीर कृपाचार्य, बड़ा क्रुद्ध होकर अर्जुन से युद्ध करने को आ उपस्थित हुआ। इस वीर्यवान् ने भी अपना शङ्ख लेकर बड़े बल से बजाया ॥१२-१३॥

स तु शब्देन लोकांस्त्रीनावृत्य रथिनां वरः ।
धनुरादाय सुमहज्ज्याशब्दमकरोत्तदा ॥१४॥

इस महारथी-श्रेष्ठ ने भी अपने शङ्ख की ध्वनि से तीनों लोकों को पूर्ण कर दिया और फिर यह बड़ा भारी धनुष लेकर उसकी प्रत्यञ्चा का शब्द करने लगा ॥१४॥

तौ रथौ सूर्य्यसङ्काशौ योत्स्यमानौ महाबलौ ।
शारदाविव जीमूतौ व्यरोचेतां व्यवस्थितौ ॥१५॥

सूर्य के समान तेजस्वी, महाबली, महारथी अर्जुन और कृप, युद्ध-भूमि में खड़े हुए, शरद् ऋतु के मेघ के समान सुशोभित हो रहे थे ॥१५॥

ततः शारद्वतस्तूर्णं पार्थं दशभिराशुगैः ।
विव्याध परवीरघ्नं निशितैर्मर्मभेदिभिः ॥१६॥

इसके अनन्तर शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य ने शीघ्र ही शत्रु नाशक, अर्जुन को मर्म-भेदी तीक्ष्ण, दश बाणों से बींध दिया ॥१६॥

पार्थोऽपि विश्रुतं लोके गाण्डीवं परमायुधम् ।
विकृष्य चिक्षेप बहून्नाराचान्मर्मभेदिनः ॥१७॥

अर्जुन ने भी लोक-प्रसिद्ध, बड़े भारी आयुध गाण्डीव धनुष को खैंच कर मर्म-भेदी, अनेक बाण छोड़ना आरम्भ किया ॥१७॥

तान् प्राप्तांश्छितैर्बाणैर्नाराचान् रक्तभोजनान् ।
कृपश्चिच्छेद पार्थस्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥१८॥

अर्जुन के बाण अभी आकर भी नहीं पहुँचे थे, कि उन रक्त के चाटने वाले बाणों को कृपाचार्य ने अपने सैंकड़ों हजारों बाणों से काट गिराया ॥१८॥

ततः पार्थश्च संक्रुद्धश्चित्रान् मार्गान् प्रदर्शयन् ।
दिशः प्राच्छादयामास बाणौघैः प्रदिशस्तथा ॥१६॥

अर्जुन बड़ा कुपित हुआ। इसने अनेक चित्र विचित्र मार्ग (पैंतरे) दिखा कर अपने बाणों के समूह से दिशा विदिशाओं को ढक दिया ॥१६॥

एकच्छायमिवाकाशमकरोत् सर्वतः प्रभुः ।
प्राच्छादयदमेयात्मा पार्थः शरशतैः कृपम् ॥२०॥

शक्तिशाली महाबली अर्जुन ने सब ओर से आकाश छा दिया और सैंकड़ों शरों से कृपाचार्य को ढक दिया ॥२०॥

स शतैरर्दितः क्रुद्धः शितैरग्निशिखोपमैः ।
तूर्णं दशसहस्रेण पार्थमप्रतिमौजसम् ॥२१॥
अर्दयित्वा महात्मानं ननाद समरे कृपः ।

अग्नि की शिखा के समान जलते हुए सौ बाणों से विंध जाने पर क्रुद्ध हुए कृप ने दस हजार बाणों से अत्यन्त-तेजस्वी, महात्मा अर्जुन को बींध कर युद्ध में बड़ी गर्जना की ॥२१॥

ततः कनकपर्वाग्रैर्वीरः सन्नतपर्वभिः ॥२२॥
धनुरादाय विव्याध पार्थं दशभिराशुगैः ।

अब धनुष लेकर सुवर्ण के झोल (पानी) से चमकते हुए अग्रभाग वाले, झुको पर्वधारी, दश बाणों से कृपाचार्य ने फिर अर्जुन को छेद दिया ॥२२॥

त्वरन् गाण्डीवनिर्मुक्तैरर्जुनस्तस्य वाजिनः ॥२३॥
चतुर्भिश्चतुरस्तीक्ष्णैरविध्यत् परमेषुभिः ।

अर्जुन ने भी बड़ी त्वरा (फुर्ती) से गाण्डीव धनुष से छोड़े हुए, तीक्ष्ण चार बाणों से कृप के चारों अश्वों को बींध लिया ॥२३॥

ते हया निशितैर्विद्धा ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥२४॥
उत्पेतुः सहसा सर्वे कृपः स्थानादथाच्यवत् ।

जलती हुई आग के समान तीक्ष्ण, बाणों से बिंधे हुए, घोड़े, अचानक उछल खड़े हुए और उन्होंने कृपाचार्य को अपने स्थान से च्युत कर दिया ॥२॥

च्युतं गौतममालोक्य स्थानात् कुन्तीसुतस्तदा ॥२५॥
नाविध्यत् परवीरघ्नो रक्षमाणोऽस्य गौरवम् ।

अपने स्थान से हटे हुए, गौतम-गोत्रोत्पन्न कृपाचार्य को देख कर कुन्तीपुत्र, शत्रु-वीर-नाशक, अर्जुन ने कृपाचार्य के गौरव की रक्षा करने के ध्यान से फिर उन पर प्रहार नहीं किया॥२५॥

सतु लब्ध्वा पुनः स्थानं गौतमः सव्यसाचिनम्॥२६॥
विव्याध दशभिर्बाणैस्त्वरितः कङ्कपत्रिभिः ।

गौतम वंशोत्पन्न कृप ने फिर अपने स्थान पर आकर कङ्क-पत्रधारी नुकीले दश बाणों से अर्जुन को छेद डाला ॥२६॥

ततः पार्थो धनुस्तस्य भल्लेन निशितेन च ॥२७॥
चिच्छेदैकेन भूयस्तु हस्तावापमथाहरत् ।

अब अर्जुन ने तीक्ष्ण भाले से उसके धनुष को काट गिराया और एक बाण से उसके हस्त-त्राण को काट दिया ॥२७॥

अथास्य कवचं बाणैर्निशितैर्मर्मभेदिभिः ॥२८॥
व्यधमन्न च पार्थोऽस्य शरीरमवपीडयत् ।

अर्जुन ने अपनेमर्म भेदी तीक्ष्ण बाणों से कृपाचार्य के कवच को छिन्न-भिन्न कर डाला, परन्तु इसने अभी तक कृप के शरीर पर चोट नहीं पहुंचाई ॥२८।

तस्य निर्मुच्यमानस्य कवचात् काय आबभौ ॥२९॥
समये मुच्यमानस्य सर्पस्येव तनुर्यथा ।

जब कवच काटकर गिरा दिया, तो कृपाचार्य का शरीर ऐसा चमकने लगा जैसे कांचली छोड़ने पर सर्प का शरीर चमकने लग जाता है ॥२९॥

छिन्ने धनुषि पार्थेन सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ॥३०॥
चकार गौतमः सज्जस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
स तदप्यस्य कौन्तेयश्चिच्छेद नतपर्वणा ॥३१॥

अर्जुन द्वारा धनुष के काट गिराने पर कृप ने दूसरा धनुष उठाया। अब गौतम-वंशी कृप ने उस धनुष को चढ़ाया, जो बड़ा ही अद्भुत था। अर्जुन ने अपने झुकी पर्व वाले बाण से उस धनुष को भी काट गिराया ॥३०-३१॥

एवमन्यानि चापानि बहूनि कृतहस्तवत् ।
शारद्वतस्य चिच्छेद पाण्डवः परवीरहा ॥३२॥

शत्रु-वीर-नाशक अर्जुन, ने इसी तरह हाथ में लिए हुए प्रत्येक धनुष को काट दिया। इस तरह शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य के अनेक धनुष काट गिराए ॥३२॥

स छिन्नधनुरादाय रथाच्छक्तिं प्रतापवान् ।
प्राहिणोत् पाण्डुपुत्राय प्रदीप्तामशनीमिव ॥३३॥

जब कृपाचार्य का धनुष काट दिया, तो उस प्रतापी ने शक्ति उठाई और रथ में से ही प्रदीप्त बिजली की तरह पाण्डु-पुत्र अर्जुन पर फैंक दी ॥३३॥

तामर्जुनस्तदायान्तीं शक्तिं हेमविभूषिताम् ।
वियद्गतां महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः ॥३४॥
सापतद्दशधा छिन्ना भूमौ पार्थेन धीमता ।

अर्जुन ने सुवर्ण के पानी से विभूषित आती हुई, महा-उल्का के समान चमकती हुई, शक्ति को आकाश में ही काट गिराया। वीर-श्रेष्ठ, बुद्धिमान्, अर्जुन ने भूमि में दशों खण्डों में उसे काट डाला, जिस से वह भूमि में गिर पड़ी ॥३४॥

युगपच्चैव भल्लैस्तु ततः सज्यधनुः कृपः ॥३५॥
तमाशु निशितैः पार्थं बिभेद दशभिः शरैः ।

कृप ने फिर धनुष चढ़ाया और अनेक बाणों से उसे सुसज्जित कर के बड़ी शीघ्रता से दश बाणों से अर्जुन को बींध डाला ॥३५॥

ततः पार्थो महातेजा विशिखानग्नितेजसः ॥३६॥
चिक्षेप समरे क्रुद्धस्त्रयोदश शिलाशितान् ।

महातेजस्वी अर्जुन ने क्रुद्ध होकर युद्ध में अग्नि के समान प्रचण्ड, शिला पर तेज किये हुए तेरह बाण छोड़े ॥३६॥

अथास्य युगमेकेन चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥३७॥
षष्ठेन च शिरः कायाच्छरेण रथसारथेः ।
त्रिभिस्त्रिवेणुं समरे द्वाभ्यामक्षं महारथः ॥३८॥
द्वादशेन तु भल्लेन च कर्त्तास्य ध्वजोत्तमम् ।

महारथी अर्जुन ने इन में से एक बाण से रथ का युग, (जूड़ा) चार बाणों से चारों अश्व, छठे बाण से शरीर से सारथि का शिर, तीन बाणों से रथ के तीन वेणु, दो बाणों से रथ का अक्ष तथा बारहवें बाण से इसकी ध्वजा को काट दिया ।

ततो वज्रनिकाशेन फाल्गुनः प्रहसन्निव ॥३९॥
त्रयोदशेनेन्द्रसमः कृपं वक्षस्यविध्यत ।

इसके अनन्तर हंसते हुए इन्द्र के समान अर्जुन ने वज्रोपम बाण से कृपाचार्य का वक्षस्थल बींध लिया ॥३९॥

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ॥४०॥
गदापाणिरवप्लुत्य तूर्णं चिक्षेप तां गदाम् ।

इसका धनुष कट चुका था, रथ टूट गया, अश्व और सारथि मारे जा चुके थे । अब यह गदा हाथ में लेकर बड़ी शीघ्रता से रथ से कूदा ॥४०॥

सा च मुक्ता गदा गुर्वी कृपेण सुपरिष्कृता ॥४१॥
अर्जुनेन शरैर्नुन्ना प्रतिमार्गमथागमत् ।

अब कृप ने अत्यन्त देदीप्यमान भारी गदा को अर्जुन पर फैंका। अर्जुन ने मार्ग में आती हुई को ही अपने बाणों से वापिस लौटा दिया ॥४१॥

तन्तु योधाः परिप्सन्तः शारद्वतममर्षणम् ॥४२॥
सर्वतः समरे पार्थं शरवर्षैरवाकिरन् ।

असहिष्णु शरद्वान् के पुत्र, कृप की सहायता में अन्य योधा आ पहुँचे। इन्होंने भी अर्जुन को युद्ध में घेर कर चारों ओर से बाण बरसाना आरम्भ किया ॥४२॥

ततो विराटस्य सुतः सव्यमावृत्य वाजिनः ॥४३॥
यमकं मण्डलं कृत्वा तान् योधान् प्रत्यवारयत् ।

अब विराट के पुत्र उत्तर ने बांई ओर अश्वों को हटा कर और रथ का शत्रु निरोधक मण्डल बना कर उन योद्धाओं को वहां रोक दिया ॥४३॥

ततः कृपमुपादाय विरथं ते नरर्षभाः
अपजह्रुर्महावेगाः कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ॥४४॥
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
कृपापयाने सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥५७॥

वे वीर-श्रेष्ठ, रथ हीन, कृपाचार्य को बड़े वेग से कुन्ती-पुत्र अर्जुन के पास से दूर हटा ले गये ॥४४॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तगत गोहरणपर्व में कृप के युद्ध भूमि से चले जाने का सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

—:※:—

अट्ठावनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

कृपेऽपनीते द्रोणस्तु प्रगृह्य सशरं धनुः ।
अभ्यद्रवदनाधृष्यः शोणाश्वः श्वेतवाहनम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! कृपाचार्य के रण भूमि से चले जाने पर लाल अश्वों के वाहन वाले, दुराधर्ष, द्रोणाचार्य, बाण-सहित धनुष लेकर, श्वेतवाहन अर्जुन पर झपटे ॥१॥

स तु रुक्मरथं दृष्ट्वा गुरुमायान्तमन्तिकात् ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठ उत्तरं वाक्यमब्रवीत् ॥२॥

सुवर्ण रथ में बैठे हुए गुरु, द्रोणाचार्य को पास से आता हुआ देख कर विजयी अर्जुन, उत्तर से यह वाक्य बोला ॥२॥

अर्जुन उवाच—

यत्रैषा काञ्चनी वेदी ध्वजे यस्य प्रकाशते ।
उच्छ्रिता प्रवरे दण्डे पताकाभिरलंकृता ॥३॥

तत्र मां वह भद्रन्ते द्रोणानीकाय सारथे।
अश्वाः शोणाः प्रकाशन्ते बृहन्तश्चारुवाहिनः ॥४॥

हे सारथे ! जिस ध्वजा में यह सुवर्णमयी वेदी सुशोभित हो रही है और बड़े उत्तम सुवर्ण के दण्ड में पताकाओं से अलंकृत हुई ध्वजा फड़फड़ा रही है, इसके पास में खड़ी हुई, द्रोण की सेना में मुझे ले चल। देखो ? ये द्रोण के बड़े २ उत्तम ढंग से सवारी देने वाले लाल अश्व, दूर से ही चमक रहे हैं ॥३-४॥

स्निग्धविद्रुमसङ्काशास्ताम्रास्याः प्रियदर्शनाः ।
युक्ता रथवरे यस्य सर्वशिक्षाविशारदाः ॥५॥

बड़े सुन्दर चिकने विद्रुम (मूंगे) के समान लाल मुख वाले, अत्यन्त मनोहर, सब युद्ध विद्या में कुशल, अश्व, इनके उत्तम रथ में जुड़े हुए हैं ॥५॥

दीर्घबाहुर्महातेजा बलरूपसमन्वितः ।
सर्वलोकेषु विक्रान्तो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥६॥

तापी भरद्वाज कुलोत्पन्न, द्रोणाचार्य, बड़ी २ भुजा वाले, महातेजस्वी, बल और रूप से युक्त, सारे संसार में महा-पराक्रमी हैं ॥६॥

बुद्ध्या तुल्यो ह्युशनसा बृहस्पतिसमो नये ।
वेदास्तथैव चत्वारो ब्रह्मचर्यं तथैव च ॥७॥

ये बुद्धि में शुक्राचार्य के तुल्य और नीति में बृहस्पति के समान है। इन्होंने चारों वेद पढ़ रखे हैं और ऐसा ही इनका अद्भुत ब्रह्मचर्य है ॥७॥

सप्रयोगाणि सर्वाणि दिव्यान्यस्त्राणि मारिष ।
धनुर्वेदश्च कार्त्स्न्येन यस्मिन्नित्यं प्रतिष्ठितः ॥८॥

हे महाभाग ! इन द्रोणाचार्य में सारे अस्त्र, प्रयोग और संहार सहित विद्यमान हैं और धनुर्वेद भी सारा ही इन में प्रकाशित हो रहा है ॥८॥

क्षमा दमश्च सत्यञ्च आनृशंस्यमथार्जवम् ।
एते चान्ये च बहवो यस्मिन्नित्यं द्विजे गुणाः ॥९॥

इस द्विज-श्रेष्ठ में क्षमा, दम, सत्य, उदारता, सरलता आदि गुण तथा ऐसे ही अन्य बहुत से गुण देदीप्यमान हैं ॥९॥

तेनाहं योद्धुमिच्छामि महाभागेन संयुगे ।
तस्मात्त्वं प्रापयाचार्य्यं क्षिप्रमुत्तर वाहय ॥१०॥

हे उत्तर ! अब मैं इन महानुभाव से ही युद्ध करना चाहता हूं । तुम शीघ्र मुझे आचार्य के पास पहुँचा दो और अब तुम जरा रथ को आगे चलाओ ॥१०॥

वैशम्पायन उवाच—

अर्जुनेनैवमुक्तस्तु वैराटिर्हेमभूषणान् ।
चोदयामास तानश्वान् भारद्वाजरथं प्रति ॥११॥

वैशम्पायन बोले-हे राजन ! अर्जुन के इतना कहते ही विराट-पुत्र, उत्तर ने, सुवर्ण के भूषणधारी, अश्वों को भरद्वाज गोत्रोत्पन्न द्रोणाचार्य की ओर चला दिया ॥११॥

तमापतन्तं वेगेन पाण्डवं रथिनां वरम् ।
द्रोणः प्रत्युद्ययौ पार्थं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥१२॥

महारथियों में श्रेष्ठ, पाण्डु-पुत्र अर्जुन को बड़े वेग से झपटते देख कर मदोन्मत्त हाथी पर मदोत्कट अन्य हाथी की तरह द्रोणाचार्य झपटा ॥१२॥

ततः प्रध्मापयच्छङ्खं भेरीशतनिनादिनम् ।
प्रचुक्षुभे बलं सर्वमुद्धूत इव सागरः ॥१३॥

सैकड़ों भेरी के शब्द के समान भीषण शब्द करने वाले शंख को अर्जुन ने बजाया। जिससे द्रोण की सारी सेना उछलते हुए समुद्र की तरह डगमगाने लगी ॥१३॥

अथ शोणान् सदश्वांस्तान् हंसवर्णैर्मनोजवैः
मिश्रितान् समरे दृष्ट्वा व्यस्मयन्त रणे नराः ॥१४

द्रोण के उत्तम लाल अश्वों को हंस के समान उज्ज्वल, श्वेत मन के समान वेग वाले अर्जुन के अश्वों से रण में मिले हुए देख कर रण के सारे मनुष्य, बड़ा अचम्भा करने लगे ॥१४॥

तौ रथौ वीर्य्यसम्पन्नौ दृष्ट्वा संग्राममूर्द्धनि ।
आचार्य्यशिष्यवजितौ कृतविद्यौ मनस्विनौ ॥१५॥

समाश्लिष्टौ तदान्योन्यं द्रोणपार्थौ महाबली ।
दृष्ट्वा प्राकम्पत मुहुर्भरतानां महद्बलम् ॥१६॥

संग्राम के मध्य में शक्ति सम्पन्न, अस्त्र विद्या में कुशल, मनस्वी, जीतने में नहीं आने वाले, महाबली, गुरु-शिष्य, द्रोण और अर्जुन, एक दूसरे के लिपट गए। इस समय भरत-वंशोत्पन्न कौरवों की बड़ी भारी सेना भी कांप उठी ॥१६॥

हर्षयुक्तस्ततः पार्थः प्रहसन्निव वीर्य्यवान् ।
रथं रथेन द्रोणस्य समासाद्य महारथः ॥१७॥
अभिवाद्य महाबाहुः सामपूर्वमिदं वचः ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा कौन्तेयः परवीरहा ॥१८॥

शत्रु-विजयी, वीर्य्यशाली, हर्ष से समन्वित, महारथी महा-बाहु, कुन्ती-पुत्र, अर्जुन ने अपने रथ से द्रोण के रथ के पास पहुँच कर, हंसते २ नमस्कार की और स्पष्ट मधुर वाणी से शान्ति-पूर्वक यह वचन कहा ॥१७-१८॥

उषिताः स्मो वने वासं प्रतिकर्म चिकीर्षवः ।
कोपं नार्हसि नः कर्तुं सदा समरदुर्जय ॥१९॥

हे युद्ध में दुर्जय ! गुरो ! हम ने वनवास कर लिया है और अब उसके अनन्तर करने योग्य कर्म (युद्ध) को करना चाह रहे हैं। आपको इस विषय में हम पर कोप नहीं करना चाहिए ॥१९॥

अहन्तु प्रहृते पूर्वं प्रहरिष्यामि तेऽनघ ।
इति मे वर्त्तते बुद्धिस्तद्भवान् कर्त्तुमर्हति ॥२०॥

हे अनघ ! मैं तो पूर्व में आप द्वारा प्रहार कर लेने पर फिर प्रहार करूँगा-यह निश्चय कर चुका हूँ, इससे अब आप प्रथम प्रहार करो ॥२०॥

ततोऽस्मै प्राहिणोत् द्रोणः शरानधिकविंशतिम् ।
अप्राप्तांश्चैव तान् पार्थश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥२१॥

इतना कहते ही द्रोण ने अर्जुन पर इक्कीस से अधिक बाण छोड़े। वे बाण आकर पहुँचे भी नहीं थे, कि सिद्धहस्त अर्जुन ने वे मार्ग में ही काट गिराए ॥२१॥

ततः शरसहस्रेण रथं पार्थस्य वीर्य्यवान् ।
अवाकिरत्ततो द्रोणः शीघ्रमस्त्रं विदर्शयन् ॥२२॥

अब वीर्य-शाली द्रोणाचार्य ने अपने शस्त्रों के फुर्तीलेपन को दिखाते हुए अर्जुन के रथ पर सहस्रों बाण छोड़े ॥२२॥

हयांश्च रजतप्रख्यान् कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
अवाकिरदमेयात्मा पार्थं संकोपयन्निव ॥२३॥

शिला पर तीक्ष्ण किए हुए, कङ्कपक्षी के पत्रों वाले, बाणों से चांदी के समान श्वेत अर्जुन के अश्वों को महाबली द्रोण ने छेद डाला, जिससे अर्जुन बड़ा ही कुपित हो उठा ॥२३॥

एवं प्रवृत्ते युद्धं भारद्वाजकिरीटिनोः ।
समं विमुञ्चतोः सङ्ख्ये विशिखान् दीप्ततेजसः॥२४॥

इस प्रकार भरद्वाज-वंशोत्पन्न, द्रोणाचार्य और अर्जुन में युद्ध होने लगा। ये दोनों ही युद्ध में अत्यन्त तेजस्वी बाणों को छोड़ रहे थे ॥२४॥

तावुभौ ख्यातकर्माणावुभौ वायुसमौ जवे ।
उभौ दिव्यास्त्रविदुषावुभावुत्तमतेजसौ ॥२५॥

ये दोनों ही युद्ध विद्या में प्रसिद्ध, वायु के समान वेगशील, दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता और अत्यन्त तेजस्वी थे ॥२५॥

क्षिपन्तौ शरजालानि मोहयामासतुर्नृपान् ।
व्यस्मयन्त ततो योधाः ये तत्रासन् समागताः ॥२६॥

ये दोनों, बाण-समूहों को फैंकते हुए, देखने वाले राजाओं को मोहित कर रहे थे और उस समय वहां जो योद्धा उपस्थित थे, वे इस युद्ध को देख २ कर चकित हो रहे थे ॥२६॥

शरान् विसृजतोस्तूर्णं साधुसाध्वित्यपूजयन् ।
द्रोणं हि समरे कोऽन्यो योद्धुमर्हति फाल्गुनात्॥ २७

ये इस शीघ्रता से बाण छोड़ रहे थे, कि जिसको देखकर सब योद्धाओं के मुख से वाह ? वाह ? की ध्वनि निकल रही थी और सब यही कह रहे थे, कि कौन अर्जुन के सिवा दूसरा वीर हो सकता है, जो द्रोण से युद्ध करने में समर्थ हो सकता हो २७

रौद्रः क्षत्रियधर्मोऽयं गुरुणा यद्युद्धत ।
इत्यब्रुवन् जनास्तत्र संग्रामशिरसि स्थिता ॥२८॥

क्षत्रिय धर्म बड़ा कठोर है, जिसमें समय पर गुरु से भी युद्ध करना पड़ जाता है। वीर मनुष्य, इस प्रकार युद्ध के एक भाग में स्थित हुए बातें बना रहे थे ॥२८॥

वीरौ तावभिसंरब्धौ सन्निकृष्टौ महाभुजौ ।
छादयेतां शरव्रातैरन्योऽन्यमपराजितौ ॥२९॥

ये दोनों महा-भुजा-धारी वीर, क्रोध में भर गए हैं। किसी से पराजित नहीं वाले, द्रोण और अर्जुन, अब पास २ पहुंच चुके और शर समूहों से एक दूसरे को छिन्न भिन्न करने लगे ॥२९॥

विस्फार्य्य सुमहच्चापं हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
भारद्वाजोथ संरब्धः फाल्गुनं प्रत्यविध्यत ॥३०॥

सुवर्ण की पीठ वाले, दुरासद, विशाल धनुष को चढ़ाकर कुपित हुआ द्रोणाचार्य, अर्जुन को बींधने लगा ॥३०॥

स सायकमयैर्जालैरर्जुनस्य रथं प्रति ।
भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोराच्छादयत् प्रभाम् ॥३१

अब द्रोण ने शिला पर तीक्ष्ण किए हुए, चमकीले, बाणों के जाल से अर्जुन के रथ के ऊपर पड़ने वाली सूर्य की धूप को रोक दिया ॥३१॥

पार्थश्च सुमहाबाहुर्महावेगैर्महारथः ।
विव्याध निशितैर्बाणैर्मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥३२॥

महारथी महाबाहु, द्रोण ने, बड़े वेग वाले, तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन को इस तरह ढक दिया, जिस तरह वर्षा से पर्वत ढक जाता है ॥३२॥

तथैव दिव्यं गाण्डीवं धनुरादाय पाण्डवः ।
शत्रुघ्नं वेगवान् हृष्टोभारसाधनमुत्तमम् ॥३३॥
विससर्ज शरांश्चित्रान् सुवर्णविकृतान् बहून् ।
नाशयञ्छरवर्षाणि भारद्वाजस्य वीर्यवान् ॥३४॥

इसी तरह बड़े उत्साह में भरे हुए, महापराक्रमी, वेगवान् अर्जुन ने युद्ध के भार के सह लेने वाले, उत्तम, शत्रुनाशक,

दिव्य गाण्डीव धनुष को लेकर, द्रोण के बाणों की वर्षा को काटते हुए, सुवर्ण से चित्रित बहुत से बाण छोड़े ॥३३-३४॥

तूर्णं चापविनिर्मुक्तैस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
स रथेन चरन् पार्थः प्रेक्षणीयो धनञ्जयः ॥३५॥

बड़ी शीघ्रता से छोड़े हुए बाणों से वह युद्ध-स्थल बड़ा ही अद्भुत हो गया। अपने रथ से युद्ध भूमि में घूमता हुआ अर्जुन बड़ा ही दर्शनीय हो रहा था ॥३५॥

युगपद्दिक्षु सर्वासु सर्वतोऽस्त्राण्यदर्शयन् ।
एकच्छायमिवाकाशं बाणैश्चक्रे समन्ततः ॥३६॥

अर्जुन ने सारी दिशाओं में एक दम सब ओर अस्त्रों का चमत्कार दिखाया। इसने चारों ओर से अपने बाणों से एक छान की तरह आकाश को पाट दिया ॥३६॥

नादृश्यत तदा द्रोणो नीहारेणेव संवृतः ।
तस्याभवत्तदा रूपं संवृतस्य शरोत्तमैः ॥३७॥

अर्जुन के बाणों से ढक जाने पर शरों से ढके हुए द्रोण का रूप ऐसा हो गया जैसे कुहरे में छुप गया हो। वह इस समय दिखाई भी नहीं देता था ॥३७॥

जाज्वल्यमानस्य तदा पर्वतस्येव सर्वतः ।
दृष्ट्वा तु पार्थस्य रणे शरैः स्वरथमावृतम् ॥३८॥
स विस्फार्य्य धनुश्रेष्ठं मेघस्तनितनिस्वनम् ।
अग्निचक्रोपमं घोरं व्यकर्षत् परमायुधम् ॥३९॥

सब ओर से जलते हुए पर्वत के समान अर्जुन के बाणों से अपने रथ को ढका हुआ देख कर द्रोणाचार्य ने धनुष फैलाया और उस पर मेघ गर्जना के तुल्य शब्द करने वाले, अग्नि-चक्र के तुल्य महावीर परम दिव्य-शस्त्र को चढ़ाया ॥३९॥

व्यपातयच्छरांस्तीक्ष्णान् द्रोणः समितिशोभनः ।
महानभूत्ततः शब्दो वंशानामिव दह्यताम् ॥४०॥

युद्ध में चमकने वाले द्रोण ने, बड़े तीखे बाण छोड़े, जिन से जलते हुए बाँसों के सदृश बड़ा भारी शब्द होने लगा ॥४०॥

जाम्बूनदमयैः पुङ्खैश्चित्रचापविनिर्गतैः ।
प्राच्छादयदमेयात्मा दिशः सूर्य्यस्य च प्रभाम् ॥४१॥

महा-शक्ति-शाली द्रोणाचार्य ने सुवर्ण के मूल वाले, अद्भुत धनुष से छोड़े हुए, बाणों से दिशा और सूर्य की धूप को सब ओर से रोक दिया ॥४१॥

ततः कनकपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम् ।
वियच्चराणां वियति दृश्यन्ते बहवो व्रजाः ॥४२॥

इस समय सुवर्ण के मूलधारी, झुकी पर्व वाले, आकाशचारी बाणों के अनेक-समूह आकाश में दिखाई देने लगे ॥४२॥

द्रोणस्य पुङ्खसक्ताश्च प्रभवन्तः शरासनात् ।
एको दीर्घ इवादृश्यदाकाशे संहतः शरः ॥४३॥

द्रोणाचार्य के धनुष से निकले हुए बाण एक दूसरे की जड़ में गड़ जाते हैं, जिससे वे सारे ही बाण आकाश में एक लम्बे बाण के सदृश दिखाई देने लगते हैं ॥४३॥

एवं तौ वर्णविकृतान्विमुञ्चन्तौ महाशरान् ।
आकाशं संवृतं वीरावुल्काभिरिव चक्रतुः ॥४४॥

इस तरह वे, द्रोण और अर्जुन, सुवर्ण से जड़े हुए बाणों को छोड़ रहे थे, इससे इन दोनों वीरों ने उल्काओं (तारे टूटने) से व्याप्त सा आकाश बना दिया ॥४४॥

शरास्तयोस्तु विबभुः कङ्कबर्हिणवाससः ।
पंक्तयः शरदि खस्थानां हंसानां चरतामिव ॥४५॥

कङ्क-पक्षी के श्वेत पक्षों से संयुक्त, इन दोनों के बाणों से ऐसा प्रतीत होता था, जैसे शरद-ऋतु में हंसों की पंक्ति आकाश में उड़ रही हो ॥४५॥

युद्धं समभवत्तत्र सुसंरब्धं महात्मनोः ।
द्रोणपाण्डवयोर्घोरं वृत्रवासवयोरिव ॥४६॥

इन दोनों महावीरों, द्रोण और पाण्डु-पुत्र अर्जुन का बड़े वेग के साथ युद्ध आरम्भ हुआ। यह युद्ध, इन्द्र और वृत्रासुर के महाघोर युद्ध के तुल्य भयङ्कर था ॥४६॥

तौ गजाविव चासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योऽन्यमभिजघ्नतुः ॥४७॥

ये दोनों, अपने २ दांतों से परस्पर टक्कर मारते हुए, दो महागजों की तरह पूर्ण खैंचे हुए धनुष से छोड़े हुए बाणों से एक दूसरे को मार रहे थे ॥४७॥

तौ व्यवाहरतां युद्धे संरब्धौ रणशोभिनौ ।
उदीरयन्तौ समरे दिव्यान्यस्त्राणि भागशः ॥४८॥

रण में सुशोभित होने वाले, आवेश में आए हुए, ये दोनों, युद्ध में धर्म-पूर्वक प्रहार करते थे। ये अपने२ क्रम से इस युद्ध में दिव्य अस्त्रों का भी प्रयोग कर रहे थे ॥४८॥

अथ त्वाचार्य्यमुख्येन शरान् सृष्टान् शिलाशितान् ।
न्यवारयच्छितै र्बाणैरर्जुनो जयतां वरः ॥४९॥

अब शिला पर तीक्ष्ण किए हुए और आचार्य द्रोण से छोड़े हुए, भीषण बाणों को, विजयी अर्जुन ने अपने तीखे बाणों से काट डाला ॥४९॥

दर्शयन् वीक्षमाणानामस्त्रमुग्रपराक्रमः ।
इषुभिस्तूर्णमाकाशं बहुभिश्च समावृणोत् ॥५०॥
जिघांसन्तं नरव्याघ्रमर्जुनं तिग्मतेजसम् ।
आचार्यमुख्यः समरे द्रोणः शस्त्रभृतांवरः ॥५१॥
अर्जुनेन सहाक्रीड़च्छरैः सन्नतपर्वभिः ।

उग्र पराक्रमी, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, देखने वाले योद्धाओं को अपना कौशल दिखाते हुए, आचार्यवर द्रोण ने, युद्ध में मारने की चेष्टा करते हुए, अत्यन्त-तेजस्वी नर-श्रेष्ठ अर्जुन को अपने बहुत से बाणों से ढक लिया। इस समय आचार्य ने अपने बाणों से आकाश को भी चारों ओर से भर दिया। इस प्रकार झुकी पर्व वाले बाणों से आचार्य द्रोण, अर्जुन के साथ युद्ध-क्रीड़ा करने लगे॥ ५०-५१ ॥

दिव्यान्यस्त्राणि मुञ्चन्तं भारद्वाजो महारणे ॥५२॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य्य फाल्गुनं समयोधयत् ।

भरद्वाज वंशोत्पन्न, द्रोणाचार्य, इस महायुद्ध में अपने अस्त्रों से अर्जुन के अस्त्रों को रोक कर बड़ा घोर युद्ध कर रहे थे ॥५२॥

तयोरासीत् सम्प्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः॥५३॥
अमर्षिणोस्तदान्योऽन्यं देवदानवयोरिव ।

यह वीर-श्रेष्ठ, एक दूसरे पर आवेश और क्रोध में भरे हुए, अर्जुन और द्रोण, देव और दानवों के घोर संग्राम के समान भीषण संग्राम कर रहे थे ॥५३॥

ऐन्द्रं वायव्यमाग्नेयमस्त्रमस्त्रेण पाण्डवः ॥५४॥
द्रोणेन मुक्तमात्रन्तु ग्रसति स्म पुनः पुनः ।

अर्जुन, द्रोणाचार्य के छोड़े हुए ऐन्द्र, वायव्य, और आग्नेय अस्त्र को बार २ अपने अस्त्रों के प्रतीकार से रोक रहा था ॥५४॥

एवं शूरौ महेष्वासौ विसृजन्तौ शिताञ्छरान् ॥५५॥
एकच्छायं चक्रतुस्तावाकाशं शरवृष्टिभिः ।

इन दोनों महाधनुर्धर, महावीर, तीक्ष्ण शरों को छोड़ते हुए, द्रोण और अर्जुन ने अपने २ बाणों की वर्षा से आकाश को एक छाया वाला कर दिया अर्थात् बाणों में रन्ध्र ही नहीं रहा, जिस से बीच से धूप आ सके ॥५५॥

तत्रार्जुनेन मुक्तानां पततां वै शरीरिषु ॥५६॥
पर्वतेष्विव वज्राणां शराणां श्रूयते स्वनः ।

अर्जुन के छोड़े हुए और शरीर में आकर लगते हुए बाणों का शब्द, पर्वतों पर पड़ने वाले वज्रके समान प्रतीत होता था॥

ततो नागा रथाश्चैव वाजिनश्च विशाम्पते ॥५७॥
शोणिताक्ता व्यदृश्यन्त पुष्पिता इव किंशुकाः ।

हे विशाम्पते ! इस समय हाथी, महारथी और अश्व, रक्त में लथपथ हुए फूले हुए, किंशुक (ढाक) वृक्ष के समान दिखाई दे रहे थे ॥५७॥

बाहुभिश्च सकेयूरैर्विचित्रैश्च महारथैः ॥५८॥
सुवर्णचित्रैः कवचैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ।
योधैश्च निहतैस्तत्र पार्थबाणप्रपीड़ितैः ॥५९॥
बलमासीत्समुद्भ्रान्तं द्रोणार्जुनसमागमे ।

इस द्रोण और अर्जुन के संग्राम में केयूर (बाजूबन्द) भूषण से युक्त । विचित्र भुजा, बड़े २ रथ, सुवर्ण से विचित्र, कवच, कट कर गिरी हुई ध्वजा, मारे हुए तथा बाण से पीड़ित (घायल) योधाओं से सेनाएँ चकित हो गई ॥५८-५९॥

विधुन्वानौ तु तौ तत्र धनुषी भारसाधने ॥६०॥
आच्छादयेतामन्योऽन्यं संतक्षन्तौ महेषुभिः ।

ये दोनों, युद्ध के भार उठा लेने में समर्थ, धनुषों को बजा रहे थे और बड़े २ बाणों से क्षत करते हुए, एक दूसरे को पाट रहे थे ॥६०॥

तयोः समभवद्युद्धं तुमुलं भरतर्षभ ॥६१॥
द्रोणकौन्तेययोस्तत्र बलिवासवयोरिव ।

हे भरतर्षभ ! यह द्रोण और अर्जुन का घोर संग्राम, बलि और इन्द्र के युद्ध के समान बड़ा ही भयङ्कर था ॥६१॥

अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥६२॥
व्यदारयेतामन्योऽन्यं प्राणद्यूते प्रवर्त्तिते ।

प्राणों का पण (बाजी) लगा कर प्रवृत्त हुए, इस संग्राम में बड़ी दूर तक धनुष को खैंच २ कर छोड़े हुए, झुकी पर्व वाले बाणों से द्रोण और अर्जुन, एक दूसरे को चीर चार रहे थे ॥६२॥

अथान्तरीक्षे नादोऽभूत् द्रोणं तत्र प्रशंसताम् ॥६३॥
दुष्करं कृतवान् द्रोणो यदर्जुनमयोधयत् ।
प्रमाथिनं महावीर्यं दृढमुष्टिं दुरासदम् ॥६४॥
जेतारं देवदैत्यानां सर्पाणाञ्च महारथम् ।

अब अन्तरीक्ष में द्रोण की प्रशंसा की ध्वनि होने लगी, कि द्रोण ने बड़ा दुष्कर कर्म पूरा किया है, जो इसने अर्जुन से युद्ध में टक्कर ले ली । यह अर्जुन, सारे देव और दैत्यों का जीत लेने में महारथी है ॥६३-६४॥

अविभ्रमञ्च शिक्षाञ्च लाघवं दूरपातिताम् ॥६५॥
पार्थस्य समरे दृष्ट्वा द्रोणस्याभूच्च विस्मयः ।

लक्ष्य के कभी नहीं चूकने, अस्त्र शिक्षा, लाघव, (फुर्ती), बाण का दूर तक पहुँच जाने आदि अर्जुन के युद्ध कौशल को देख कर द्रोणाचार्य को भी बड़ा अचम्भा हुआ ॥६५॥

अथ गाण्डीवमुद्यम्य दिव्यं धनुरमर्षणः ॥६६॥
विचकर्ष रणे पार्थो बाहुभ्यां भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ ! आवेश में भरे हुए अर्जुन ने दिव्य, गाण्डीव धनुष को उठाया और उसने उसको अपनी भुजाओं से बड़े ज़ोर से खैंचा ॥६६॥

तस्य बाणमयं वर्षं शलभानामिवायतिम् ॥६७॥
दृष्ट्वा ते विस्मिताः सर्वे साधुसाध्वित्यपूजयन् ।

अर्जुन के बाणों की बर्षा, शलभ पत्तो के झुण्डों की तरह पड़ने लगी। इस कौशल को देखकर सारे महारथी धन्य ? धन्य? का शब्द उच्चारण करने लगे ॥६७॥

न च बाणान्तरे वायुरस्य शक्नोति सर्पितुम् ॥६८॥
अनिशं सन्दधानस्य शरानुत्सृजतस्तथा ।

अत्यन्त शीघ्रता स बाण को चढ़ाया और छोड़ दिया, इस प्रकार निरन्तर छूटने वाले अर्जुन के बाणों के गुच्छों में से वायु भी पार नहीं हो सकता था ॥६८॥

ददर्श नान्तरं कश्चित् पार्थस्याददतोऽपि च ॥६९॥
तथा शीघ्रास्त्रयुद्धे तु वर्त्तमाने सुदारुणे ।
शीघ्रं शीघ्रतरं पार्थः शरानन्यानुदीरयत् ॥७०॥

इस प्रकार शीघ्र अस्त्रों के छोड़ने से प्रवृत्त हुए, दारुण, युद्ध में अर्जुन को बाणों के निकालने और छोड़ने में कुछ भी अवकाश नहीं रहता था। अर्जुन ने इस युद्ध में शीघ्र से शीघ्र बाण छोड़ना आरम्भ किया ॥६९-७०॥

ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ।
युगपत् प्रापतंस्तत्र द्रोणस्य रथमन्तिकात् ॥७१॥
अब झुकी पर्व वाले, सैकड़ों हजारों अर्जुन के बाण, एक दम आकर द्रोण के रथ के पास पड़े ॥७१॥

आकीर्य्यमाणे द्रोणे तु शरैर्गाण्डीवधन्वना ।
हाहाकारो महानासीत्सैन्यानां भरतर्षभ ॥७२॥
हे भरतर्षभ ! गाण्डीव धारी, अर्जुन द्वारा द्रोण को बाणों से ढक लेने पर कौरवों को सेनाओं में महान हाहाकार मच गया ॥७२॥

पाण्डवस्य तु शीघ्रास्त्रं मघवान् प्रत्यपूजयत् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव ये च तत्र समागताः ॥७३॥
अर्जुन के इस शीघ्र अस्त्रों के फैंकने की इन्द्र, गन्धर्व, अप्सरा तथा जो अन्य देवता वहां आए हुए थे, सब प्रशंसा करने लगे ॥७३॥

ततो वृन्देन महता रथानां रथयूथपः ।
आचार्य्यपुत्रः सहसा पाण्डवं प्रत्यवारयत् ॥७४॥
इसके अनन्तर रथ यूथ के पालक, आचार्य पुत्र, अश्वत्थामाने बड़े भारी रथ के समूह को लेकर पाण्डु-पुत्र अर्जुन को रोका

अश्वत्थामा तु तत्कर्म हृदयेन महात्मनः ।
पूजयामास पार्थस्य कोपश्चास्याकरोद्भृशम् ॥७५॥
अश्वत्थामा ने भी महावीर अर्जुन के इस महान् कर्म की अपने मन ही मन बड़ी प्रशंसा की इसके अनन्तर इसने अर्जुन को बड़ा ही कोप किया ॥७५॥

स मन्युवशमापन्नः पार्थमभ्यद्रवद्रणे ।
किरंश्छरसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥७६॥

इस युद्ध में अश्वत्थामा क्रोध में भरकर मेघ के सदृश सहस्रों बाणों की वर्षा करता हुआ, अर्जुन पर टूट पड़ा ॥७६॥

आवृत्य तु महाबाहुर्यतो द्रौणिस्ततो हयान् ।
अन्तरं प्रददौ पार्थो द्रोणस्य व्यपसर्पितुम् ॥७७॥

अब महाबाहु अर्जुन ने जिधर द्रोण-पुत्र था, उधर अश्वों को चलाकर, द्रोणाचार्य के चले जानेको अवकाश दे दिया ॥१७॥

स तु लब्ध्वान्तरं तूर्णं व्यपायाज्जवनैर्हयैः ।
छिन्नवर्मध्वजः शूरो निकृत्तः परमेषुभिः ॥७८॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
द्रोणापयाने अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥५८॥

द्रोणाचार्य, समय (मौका) पाकर अपने वेग-शील अश्वों से चल दिया। इस शूरवीर द्रोण के कवच और ध्वजा कट गए थे ॥७८॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में द्रोण के युद्ध से चले जाने का अट्ठावनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



उनसठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततो द्रौणिर्महाराज प्रययावर्जुनं रणे ।
तं पार्थः प्रतिजग्राह वायुवेगमिवोद्धतम् ॥१॥
शरजालेन महता वर्षमाणमिवाम्बुदम् ।

वैशम्पायन बोले—हे महाराज! इसके अनन्तर द्रोण-पुत्र, अश्वत्थामा, रण में अर्जुन की ओर झपटा। वायु के वेग के समान उद्धत, अश्वत्थामा का अर्जुन ने भी बड़ी बुरी तरह से सामना (मुक़ाबिला) किया। अश्वत्थामा, बड़े भारी शर समूह से मेघ के तुल्य वर्षा की सी झड़ी लगा रहा था ॥१॥

तयोर्देवासुरसमः सन्निपातो महानभूत् ॥२॥
किरतोः शरजालानि वृत्रवासवयोरिव ।

बाण समूहों को फैंकते हुए, अश्वत्थामा और अर्जुन का वृत्रासुर तथा इन्द्र के घोर संग्राम की तरह भीषण संग्राम हो रहा था ॥२॥

न स्म सूर्यस्तदा भाति न च वाति समीरणः ॥३॥
शरजालावृते व्योम्नि छायाभूते समन्ततः ।

शर समूह से आकाश के व्याप्त हो जाने पर सब ओर छाया छा गई। इस समय न तो सूर्य चमक सकता था और न वायु ही बाणों से पार होकर चल रहा था ॥३॥

महान् चटचटाशब्दो योधयोर्हन्यमानयोः ॥४॥
दह्यतामिव वेणूनामासीत्परपुरञ्जयः ।

हे शत्रुञ्जय ! परस्पर प्रहार करते हुए, इन दोनों महारथियों के शस्त्रों का चटाचट शब्द होने लगा—जैसे वन में आग लगने पर बांसों के फटने का शब्द होता है ॥४॥

हयानस्यार्जुनः सर्वान् कृतवानल्पजीवितान् ॥५॥
ते राजन्नप्रजानन्त दिशं काञ्चन मोहिताः ।

हे राजन् ! अर्जुन ने अश्वत्थामा के अश्वों को इतना घायल कर दिया, कि उन में बहुत ही थोड़े प्राण रह गए। इस समय इन अश्वों को किसी भी दिशा का ज्ञान नहीं रह गया था, कि किधर जाना है ॥५॥

ततो द्रौणिर्महावीर्यः पार्थस्य विचरिष्यतः ॥६॥
विवरं सूक्ष्ममालोक्य ज्यां चिच्छेद क्षुरेण ह ।
तदस्यापूजयन् देवाः कर्म दृष्ट्वातिमानुषम् ॥७॥

इसके अनन्तर द्रोण-पुत्र महाबली अश्वत्थामा ने अर्जुन का थोड़ा सा छिद्र देख कर युद्ध-भूमि में विचरते हुए, अर्जुन के धनुष की डोरी को क्षुरोपम शस्त्र से काट डाला। अश्वत्थामा के मनुष्यातिशायी इस कर्म को देखकर देवों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की ॥६-७॥

द्रोणो भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्चैव महारथः ।
साधुसाध्विति भाषन्तोऽपूजयन् कर्म तस्य तत् ॥८॥

महारथी द्रोण, भीष्म, कर्ण और कृप ने अश्वत्थामा को वाह ? वाह ? देते हुए, इसके इस कर्म की बड़ी प्रशँसा की ॥८॥

ततो द्रौणिर्धनुश्रेष्ठमपकृष्य रथर्षभम् ।
पुनरेवाहनत् पार्थं हृदये कङ्कपत्रिभिः ॥९॥

अब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अपने उत्तम रथ को पीछे हटा कर और धनुष खैंच कर अर्जुन के हृदय में कङ्कपक्षी के पङ्ख वाले बाणों को गड़ा दिया ॥९॥

ततः पार्थो महाबाहुः प्रहस्य स्वनवत्तदा ।
योजयामास नवया मौर्व्या गाण्डीवमोजसा ॥१०॥

महाबाहु अर्जुन ने, जोर से हंस कर बड़े वेग के साथ गाण्डीव धनुष पर फिर नई डोरी चढ़ा ली ॥१०॥

ततोऽर्द्धचन्द्रमावृत्य तेन पार्थः समागमत् ।
वारणेनेव मत्तेन मत्तो वारणयूथपः ॥११॥

अपने अर्ध चन्द्राकार ललाट को पोंछ कर अर्जुन, मस्त, यूथपति गज से मदोन्मत्त हाथी की तरह अश्वत्थामा से भिड़ गया ॥११॥

ततः प्रववृत्ते युद्धं पृथिव्यामेकवीरयोः ।
रणमध्ये द्वयोरेवं सुमहल्लोमहर्षणम् ॥१२॥

अब रण के मध्य में पृथिवी पर अद्वितीय वीरों में गिने जाने वाले अर्जुन और अश्वत्थामा का लोमहर्षण महाघोर युद्ध होने लगा ॥१२॥

तौ वीरौ ददृशुः सर्वे कुरवो विस्मयान्विताः ।
युध्यमानौ महावीर्यौ यूथपाविव सङ्गतौ ॥१३॥

इन दोनों महापराक्रमी, यूथपति हाथियों की तरह युद्ध करते हुए, अर्जुन और अश्वत्थामा को सारे कौरव देख कर अचम्भा करने लगे ॥१३॥

तौ समाजग्मतुर्वीरावन्योऽन्यं पुरुषर्षभौ ।
शरैराशीविषाकारैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः ॥१४॥

ये दोनों वीर बड़े, भारी विषैले, लपलपाते हुए सर्पों के समान आकारधारी बाणों से एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे ॥१४॥

अक्षय्याविषुधी दिव्यौ पाण्डवस्य महात्मनः ।
तेन पार्था रणे शूरस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥१५॥

महावीर पाण्डु-पुत्र, अर्जुन के पास क्षीण नहीं होने वाले तरकस थे। इसी से शूरवीर अर्जुन, रण में पर्वत की तरह अचल खड़ा रहा ॥१५॥

अश्वत्थाम्नः पुनर्बाणाः क्षिप्रमभ्यस्यतो रणे ।
जग्मुः परिक्षयं तूर्णमभूत्तेनाधिकोऽर्जुनः ॥१६॥

बड़ी शीघ्रता से युद्ध में बाणों के फैंकते हुए, अश्वत्थामा के बाण शीघ्र ही व्यतीत हो गए। जिससे अर्जुन का बल और भी बढ़ गया ॥१६॥

ततः कर्णो महाचापं विकृष्याभ्यधिकं तथा ।
अवाक्षिपत्ततः शब्दो हाहाकारो महानभूत् ॥१७॥

अब कर्ण ने अपने बड़े भारी धनुष को बड़े जोर से खैंच कर छोड़ा, इससे बड़ा ही हाहाकार मच गया ॥१७॥

ततश्चक्षुर्दधे पार्थो यत्र विस्फार्यते धनुः।
ददर्श तत्र राधेयं तस्य कोपो न्यवर्द्धत ॥१८॥

अर्जुन ने भी उधर दृष्टि फेरी, जिधर से धनुष की टंकार आ रही थी। इसने वहां राधा-पुत्र कर्ण को देखा, जिससे इसका और भी क्रोध बढ़ गया ॥१८॥

स रोषवशमापन्नः कर्णमेव जिघांसया।
तमैक्षत विवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां कुरुपुङ्गवः ॥१९॥

अब रोष में भरे हुए कुरु-वंश-श्रेष्ठ अर्जुन ने आंख फाड़ कर कर्ण को मारने की आकांक्षा से देखा ॥१९॥

तथा तु विमुखे पार्थे द्रोणपुत्रस्य सायकान्।
त्वरिताः पुरुषा राजन्नुपाजह्रुः सहस्रशः ॥२०॥

हे राजन्! इस तरह अर्जुन के कर्ण की ओर प्रवृत हो जाने पर सेवकों ने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के बाणों का बड़ी शीघ्रता से चुनना आरम्भ किया ॥२०॥

उत्सृज्य च महाबाहुर्द्रोणपुत्रं धनञ्जयः।
अभिदुद्राव सहसा कर्णमेव सपत्नजित् ॥२१॥

शत्रु-विजयी, महाबाहु, धनञ्जय ने द्रोण-पुत्र, अश्वत्थामा को छोड़कर सहसा कर्ण का पीछा किया ॥२१॥

तमभिद्रुत्य कौन्तेयः क्रोधसंरक्तलोचनः।
कामयन् द्वैरथं तेन युद्धं वचनमब्रवीत् ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
अर्जुनाश्वत्थामयुद्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

क्रोध से लाल २ आंखें करके कुन्ती-पुत्र अर्जुन, कर्ण के साथ भीषण युद्ध की कामना से यह वचन बोला ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में अर्जुन और अश्वत्थामा के युद्ध का उनसठवां अध्याय समाप्त हुआ।

साठवां अध्याय

अर्जुन उवाच—

कर्ण यत्ते सभामध्ये बहु वाचा विकत्थितम् ।
न मे युधि समोऽस्तीति तदिदं समुपस्थितम् ॥१॥

अर्जुन बोला—हे कर्ण ! तुमने सभा के बीच में अपनी बड़ी प्रशंसा की थी, कि अर्जुन मेरे समान युद्ध में नहीं है। अब यह दिखाने का मौका आ गया है ॥१॥

सोऽद्य कर्ण मया सार्द्धं व्यवहृत्य महामृधे ।
ज्ञास्यसे बलमात्मीयं न चान्यानवमन्यसे ॥२॥

हे कर्ण ! आज तुम मेरे साथ इस महायुद्ध में लड़कर अपने बल का ज्ञान कर सकोगे, जिससे भविष्य में किसी अन्य की निंदा नहीं करोगे ॥२॥

अवोचः परुषा वाचो धर्ममुत्सृज्य केवलम् ।
इदं तु दुष्करं मन्ये यदिदं ते चिकीर्षितम् ॥३॥

तुमने धर्म को छोड़कर व्यर्थ ही कठोर वाणी का व्यवहार किया है, परन्तु तुम जो करना चाहते हो, उसको तो मैं दुष्कर ही समझता हूं ॥३॥

यत्त्वया कथितं पूर्वं मामनासाद्य किञ्चन ।
तदद्य कुरु राधेय कुरुमध्ये मया सह ॥४॥

हे राधेय ! मेरे नहीं रहने पर तुमने जो पूर्वकाल में डींगें मारी हैं, आज तुम उनको मेरे साथ युद्ध करके कौरवों के मध्य में सही कर दिखाओ ॥४॥

यत्सभायां स पाञ्चालीं क्लिश्यमानां दुरात्मभिः ।
दृष्टवानसि तस्याद्य फलमाप्नुहि केवलम् ॥५॥

दुःशासन आदि दुरात्माओं से क्लेशित की हुई, द्रौपदी को तू ने भी प्रसन्नता-पूर्वक देखा था, इससे आज तू इसका फल अवश्य भोगेगा ॥५॥

धर्मपाशनिबद्धेन यन्मया मर्षितं पुरा ।
तस्य राधेय कोपस्य विजयं पश्य मे मृधे ॥६॥

हे राधेय ! धर्म की पाश में बंधे हुए, मैंने जो यह सब कुछ सह लिया था, आज तुम उसी कोप के रोक लेने के कारण इस युद्ध में मेरे विजय को देख लेना ॥६॥

वने द्वादशवर्षाणि यानि सोढानि दुर्मते ।
तस्याद्य प्रतिकोपस्य फलमाप्नुहि केवलम् ॥७॥

हे दुर्मते ! हमने जो बारह वर्ष तक वन में क्लेश सहे हैं, अब तुम उस के प्रति कोप के फल को प्राप्त करो ॥७॥

एहि कर्ण मया सार्द्धं प्रतियुध्यस्व सङ्गरे ।
प्रेक्षकाः कुरवः सर्वे भवन्तु तव सैनिकाः ॥८॥

हे कर्ण ! आओ और मेरे साथ इस रण में युद्ध करो। ये सारे कौरव और तेरे सैनिक खड़े २ तमाशा देखते रहें ॥८॥

कर्ण उवाच—

ब्रवीषि वाचा यत्पार्थ कर्मणा तत्समाचर ।
अतिशेते हि ते वाक्यं कर्मैतत् प्रथितं भुवि ॥९॥

कर्ण ने कहा—हे अर्जुन ! तुम जो अपनी वाणी से कह रहे हो, इसको पूरा करके दिखाओ। यह बात पृथिवी पर प्रकट है, कि यह तेरी डींग तेरे कर्म से आगे बढ़ी हुई है ॥९॥

यत् त्वया मर्षितं पूर्वं तदशक्तेन मर्षितम् ।
इतो गृह्णीमहे पार्थ तव दृष्ट्वा पराक्रमम् ॥१०॥

जो तू ने पूर्वकाल में सभा में सह लिया था, वह सब तो अशक्त होने के कारण ही सहा था। हे अर्जुन ! हम तेरे पराक्रम को जानते हैं, इससे यह सब कुछ समझ चुके हैं ॥१०॥

धर्मपाशनिबद्धेन यत् त्वया मर्षितं पुरा ।
तथैव बद्धमात्मानमबद्धमिव मन्यसे ॥११॥

हे पार्थ ! तू कहता है, कि उस समय तो मैंने धर्म-पाश से बद्ध होकर यह सब कुछ सह लिया था, तो आज भी तेरी आत्मा वैसी ही बंधी हुई है, क्या अब तू अपने को स्वतन्त्र समझता है ॥११॥

यदि तावद्वने वासो यथोक्तश्चरितस्त्वया ।
तत् त्वं धर्मार्थवित् क्लिष्टः स मया योद्धुमिच्छसि ॥१२

हे पार्थ! कहता है, कि मैंने प्रतिज्ञानुसार वनवास कर लिया है, तो तू धर्मात्मा, तपस्वी, क्लेश-युक्त होकर क्या मुझ से लड़ने की आशा रखता है ॥१२॥

यदि शक्रः स्वयं पार्थ युध्यते तव कारणात् ।
तथापि न व्यथा काचिन्मम स्याद्विक्रमिष्यतः ॥१३

हे अर्जुन! यदि तेरा पक्ष लेकर स्वयं इन्द्र भी युद्ध करने चला आवेगा, तो मैं उसके साथ भी पराक्रम कर दिखाऊंगा। मुझे इसमें भी कोई व्यथा नहीं होगी ॥१३॥

अयं कौन्तेय कामस्ते न चिरात् समुपस्थितः ।
योत्स्यसे हि मया सार्द्धमद्य द्रक्ष्यसि मे बलम् ॥

हे कौन्तेय! तेरी मुझ से लड़ने को कामना अब हो खड़ी हुई है। अब जब तू मुझ से युद्धकरेगा, तब तुझे मेरे बल का पता लगेगा ॥१४॥

अर्जुन उवाच—

इदानीमेव तावत् त्वमपयातो रणान्मम ।
तेन जीवसि राधेय निहतस्त्वनुजस्तव ॥१५॥

अर्जुन ने कहा—हे राधेय! तू तो अभी मेरे सामने से युद्ध करता हुआ हट गया था, इसी से तू जीता है और तेरा छोटा भाई मारा गया है ॥१५॥

आतरं घातयित्वा कस्त्यक्त्वा रणशिरश्च कः ।
त्वदन्यः कः पुमान् सत्सु ब्रूयादेवं व्यवस्थितः ॥१६॥

अपने भाई को मरवा कर और रण की अगवानी को छोड़ कर तेरे सिवा कौन ऐसा पुरुष हो सकता है, जो सत्पुरुषों के मध्य में ऐसे खड़ा हुआ अपनी डींग मार रहा हो ॥१६॥

वैशम्पायन उवाच—

इति कर्णं ब्रुवन्नेव बीभत्सुरपराजितः ।
अभ्ययाद्विसृजन् बाणान् कायावरणभेदिनः ॥१७॥

वैशम्पायन बोले— हे राजन् ! किसी से पराजित नहीं होने वाला अर्जुन, इस तरह कर्ण से कहता हुआ, शरीर के आवरण और कवच के बींध देने वाले बाणों को छोड़ता हुआ, कर्ण पर झपटा ॥१७॥

प्रतिजग्राह तं कर्णः प्रीयमाणो महारथः ।
महता शरवर्षेण वर्षमाणमिवाम्बुदम् ॥१८॥

महारथी कर्ण ने बड़ी प्रसन्नता से बड़े जोर से वर्षा करने वाले मेघ की तरह बाणों की वर्षा करने वाले अर्जुन का सामना किया ॥१८॥

उत्पेतुः शरजालानि घोररूपाणि सर्वशः ।
अविध्यदश्वान् बाह्वोश्च हस्तावापं पृथक् पृथक् ॥१९॥

इस समय चारों ओर महा घोर बाणों की वर्षा होने लगी । इन बाणों से कर्ण ने अर्जुन के अश्व और बाहुओं को छेद दिया तथा कर-त्राण के टुकड़े २ कर दिए ॥१९॥

सोऽमृष्यमाणः कर्णस्य निषङ्गस्यावलम्बनम् ।
चिच्छेद निशिताग्रेण शरेणानतपर्वणा ॥२०॥

अर्जुन को इससे बड़ा क्रोध उत्पन हुआ और उसने कर्ण के तूणीर के लटकते हुए, सूत्र को अत्यन्त तीक्ष्ण नोक वाले, झुकी पर्व धारी बाण से काट डाला ॥२०॥

उपासङ्गादुपादाय कर्णो बाणानथापरान् ।
विव्याध पाण्डवं हस्ते तस्य मुष्टिरशीर्यत ॥२१॥

अब कर्ण ने अपने तूणीर से अन्य बाण निकाले और इसने अर्जुन के हाथ में मारा, जिससे उसकी मुष्टि खुल गई ।

ततः पार्थो महाबाहुः कर्णस्य धनुरच्छिनत् ।
स शक्तिं प्राहिणोत्तस्मै तां पार्थो व्यधमच्छरैः ॥२२॥

अब महाबाहु अर्जुन ने क्रुद्ध होकर कर्ण के धनुष को काट डाला, तो कर्ण ने अर्जुन पर शक्ति छोड़ी । अर्जुन ने उसको भी बाणों से काट दिया ॥२२॥

ततो निपेतुर्बहवो राधेयस्य पदानुगाः ।
तांश्च गाण्डीवनिर्मुक्तैः प्राहिणोद्यमसादनम् ॥२३॥

अब कर्णके अनेक पदाति उसकी सहायता को आए, जिनको गाण्डीव सेछोड़े हुए बाणों से अर्जुन ने यमलोक पहुँचा दिया॥२३

ततोऽस्याश्वाञ्छरैस्तीक्ष्णैर्बीभत्सुर्भारसाधनैः ।
आकर्णमुक्तैरहनत् ते हताः प्रापतन् भुवि ॥२४॥

युद्ध के भार को सह लेने वाले अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण, धनुष को कान तक खैंच कर छोड़े हुए बाणों से कर्ण के अश्वों को मार डाला। वे अश्व हत होकर पृथिवी पर गिर पड़े ॥२४॥

अथापरेण बाणेन ज्वलितेन महौजसा।
विव्याध कर्णं कौन्तेयस्तीक्ष्णेनोरसि वीर्यवान् ॥२५

वीर्यशाली कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने अन्य महा ओजस्वी, जलते हुए तीक्ष्ण बाण से कर्ण का हृदय बेध डाला ॥२५॥

तस्य भित्वा तनुत्राणं कायमभ्यगमच्छरः।
ततः सतमसाविष्टो न स्म किञ्चित् प्रजज्ञिवान् ॥२६॥

यह बाण, कर्ण के कवच को बींध कर शरीर में घुस गया, इससे इसको बेहोशी सी आ गई, जिससे कर्ण को कुछ भी ज्ञान नहीं रहा ॥२६॥

स गाढवेदनो हित्वा रणं प्रायादुदङ्मुखः।
ततोऽर्जुन उदक्रोशदुत्तरश्च महारथः ॥२७॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
कर्णापयाने षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

कर्ण को इस बाण से बड़ी भारी वेदना हुई, जिस से यह रण को छोड़ कर उत्तर दिशा की ओर चल दिया। यह देख कर अर्जुन और महारथी उत्तर, बड़ी गर्जना करने लगे ॥२७॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में कर्ण के युद्धक्षेत्र से चले जाने का साठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

इकसठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततो वैकर्त्तनं जित्वा पार्थो वैराटिमब्रवीत् ।
एतन्मा प्रापयानीकं यत्र तालो हिरण्मयः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! अब सूर्य-पुत्र कर्ण को जीत कर अर्जुन, विराट-पुत्र उत्तर से कहने लगा, कि अब तुम मुझे उस सेना में ले चलो, जहां यह सुनहरी ताल वृक्ष खड़ा है।

यत्र शान्तनवो भीष्मो रथेऽस्माकं पितामहः ।
काङ्क्षमाणो मया युद्धं तिष्ठत्यमरदर्शनः ॥२॥

जहां पर शान्तनु-पुत्र, देवों के तुल्य, दिव्य दर्शनों वाला, हमारा पितामह भीष्म, खड़ा है। यह मुझसे युद्ध करने की अभिलाषा कर रहा है ॥२॥

अथ सैन्यं महद् दृष्ट्वा रथनागहयाकुलम् ।
अब्रवीदुत्तरः पार्थमपविद्धः शरैर्भृशम् ॥३॥

रथ, हाथी, अश्वों से व्याप्त, बड़ी भारी सेना को देख कर अत्यन्त बाणों से घायल हुआ उत्तर अर्जुन से कहने लगा ॥३॥

नाहं शक्ष्यामि वीरेह नियन्तुं ते हयोत्तमान् ।
विषीदन्ति मम प्राणा मनो विह्वलतीव मे ॥४॥

हे वीर ! अब मैं तुम्हारे अश्वों को नहीं हांक सकता हूँ। मेरे प्राण पीड़ित हो रहे हैं और मन व्याकुल हुआ जा रहा है ॥४॥

अस्त्राणामिह दिव्यानां प्रभावात् सम्प्रयुज्यताम् ।
त्वया च कुरुभिश्चैव द्रवन्तीव दिशो दश: ॥५॥

तुम और कौरवों से प्रयुक्त किये हुए, दिव्य अस्त्रों के प्रभाव से दशों दिशाएँ पिघली सी जा रही हैं ॥५॥

गन्धेन मूर्च्छितश्चाहं वसारुधिरमेदसाम् ।
द्वैधीभूतं मनो मेऽद्य तव चैव प्रपश्यत: ॥६॥

मैं वसा (चर्बी) रुधिर और मेद की गन्ध से मूर्छित हुआ जा रहा हूं। तुम्हारे भीषण रूप को देखते हुए तो मेरा मन फटा ही जा रहा है ॥६॥

अदृष्टपूर्व: शूराणां मया सङ्ख्ये समागम: ।
गदाघातेन महता शङ्खानां निस्वनेन च ॥७॥
सिंहनादैश्च शूराणां गजानां बृंहितैस्तथा ।
गाण्डीवशब्देन भृशमशनिप्रतिमेन च ॥८॥
श्रुति: स्मृतिश्च मे वीर प्रनष्टा मूढचेतस: ।

मैंने तो पूर्व में किसी युद्ध में भी ऐसा वीरों का घमसान युद्ध नहीं देखा। गदाओं के महान आघात, शङ्खों के शब्द, शूरवीरों की गर्जना, गजों की चिंघाड़, वज्र के तुल्य कड़कने वाले गाण्डीव धनुष के घोष से मेरी श्रवण शक्ति और स्मृति उड़सी गई है और मैं किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहा हूं ॥७-८॥

अलातचक्रप्रतिमं मण्डलं सततं त्वया ॥९॥
व्याक्षिप्यमाणं समरे गाण्डीवञ्च प्रकर्षत: ।
दृष्टि: प्रचलिता वीर हृदयं दीर्यतीव मे ॥१०॥

हे वीर! गाण्डीव धनुष को खेंचते २ तुमने युद्ध-भूमि में अलात-चक्र (पलीता जलाकर घुमाने के चक्र) के समान मण्डल बना दिया है। इसको देखकर मेरी दृष्टि पथरा गई और हृदय फटा सा जा रहा है ॥६-१०॥

वपुश्चोग्रं तव रणे क्रुद्धस्येव पिनाकिनः।
व्यायच्छतः शरान् घोरान् दृष्ट्वा भीर्मे भवत्यपि ॥११

क्रुद्ध हुए पिनाक-धारी शंकर के समान रण में तुम्हारा बड़ा विकराल शरीर हो रहा है। घोर शरों को छोड़ते हुए तुम्हारे इस भीषण आकार को देखकर तो मुझे बड़ा ही भय लगता है ॥११॥

नाददानं न सन्धानं न मुञ्चन्तं शरोत्तमान्।
त्वामहं न प्रपश्यामि पश्यन्नपि विचेतनः ॥१२॥

उत्तम २ बाणों को तूणीर से लेते, धनुष पर चढ़ाते तथा छोड़ते हुए, तुमको देखकर भी मैं अचेत सा हुआ तुम्हें नहीं देख रहा हूं ॥१२॥

अवसीदन्ति मे प्राणा भूरियं चलतीव च।
न च प्रतोदं रश्मींश्च संयन्तुं शक्तिरस्ति मे ॥१३॥

मेरे प्राण बड़े चक्कर में हैं। पृथिवी घूम सी रही है। प्रतोद (साटा) और अश्वों की रस्सी (बाग) के धारण करने की भी मुझ में शक्ति नहीं रह गई है ॥१३॥

अर्जुन उवाच—

मा भैषीः स्तंभयात्मानं त्वयापि नरपुङ्गव।
अत्यद्भुतानि कर्माणि कृतानि रणमूर्द्धनि ॥१४॥

अर्जुन ने कहा—हे नर-पुङ्गव! तुम डरो नहीं, अपने आपको ज़रा रोके रखो। तुमने इस संग्राम में बड़े अद्भुत कर्म कर दिखाए हैं ॥१४॥

राजपुत्रोऽसि भद्रन्ते कुले मत्स्यस्य विश्रुते।
जातस्त्वं शत्रुदमने न विषीदितुमर्हसि ॥१५॥

हे उत्तर! तुम राजपुत्र और शत्रु-दमनकारी मत्स्यराज के प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुए हो। तुमको इस तरह चिन्तित नहीं होना चाहिए ॥१५॥

वैशम्पायन उवाच—

धृतिं कृत्वा सुविपुलां राजपुत्र रथे पुनः।
युध्यमानस्य समरे हयान् संयच्छ शत्रुहन् १६॥

हे शत्रु-विजयी! राजपुत्र! तुम महान् धैर्य को धारण करके रथ में बैठ जाओ और युद्ध में लड़ते हुए मेरे अश्वों का एक बार और संयमन कर दो ॥१६॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्वैराटिं नरसत्तम।
अर्जुनो रथिनां श्रेष्ठ उत्तरं वाक्यमब्रवीत् ॥१७॥

वैशम्पायन बोले—हे नरसत्तम! महाबाहु, महारथियों में श्रेष्ठ, अर्जुन, इतना कह कर फिर विराट-पुत्र उत्तर से यह वाक्य बोला ॥१७॥

सेनाग्रमाशु भीष्मस्य प्रापयस्वैतदेव माम्।
आच्छेत्स्याम्यहमेतस्य धनुर्ज्यामपि चाहवे ॥१८॥

हे उत्तर! अब तुम भीष्म पितामह की सेना के आगे ले चलकर मुझे खड़ा कर दो। मैं अभी इनके धनुष की डोरी को युद्ध भूमि में काट डालता हूं ॥१८॥

अस्यन्तं दिव्यमस्त्रं मां चित्रमद्य निशामय ।
शतह्रदामिवायान्तीं स्तनयित्नोरिवाम्बरे ॥१९॥

अब तुम मुझे रण में विचित्र दिव्य अस्त्र को फैंकते हुए देखोगे, जैसे आकाश में मेघों में बिजली चमकती आ रही हो।

सुवर्णपृष्ठं गाण्डीवं द्रक्ष्यन्ति कुरवो मम ।
दक्षिणेनाथ वामेन कतरेण स्विदस्यति ॥२०॥
इति मां सङ्गताः सर्वे तर्कयिष्यन्ति शात्रवः ।

ये शत्रु-भूत, कौरव लोग, सुवर्ण की पीठ वाले मेरे गाण्डीव धनुष का चमत्कार देखेंगे और इसी तर्कना में इकट्ठे हुए सोचते रहेंगे, कि अर्जुन दायें बायें किस मार्ग से बाण फैंक रहा है ।२०

शोणितोदां रथावर्त्तां नागनक्रान्दुरत्ययाम् ॥२१॥
नदीं प्रस्कन्दयिष्यामि परलोकप्रवाहिनीम् ।

रक्त रूपी जल से भरी हुई, रथ रूपी जल भ्रमों से संयुक्त, गज रूपी नक्रों से व्याप्त, दुर्गम, परलोक के मार्ग में वहने वाली, (वैतरिणी) नदी के समान नदी बहा दूंगा ॥२१॥

पाणिपादशिरः पृष्ठबाहुशाखानिरन्तरम् ॥२२॥
वनं कुरूणां छेत्स्यामि शरैः सन्नतपर्वभिः ।

मैं, हाथ, पैर, शिर, पीठ, भुजा रूपी गहरी शाखा वाले, कौरवों के शरीर रूपी वन को अपने झुकी पर्व वाले, बाणों से काट कर फैंक दूंगा ॥२२॥

जयतः कौरवीं सेनामेकस्य मम धन्विनः ॥२३॥

शतं मार्गा भविष्यन्ति पावकस्येव कानने ।

कुरुओं की सेना के जीतने के समय वन को जलाने वाले अग्नि के समान, मुझ धनुषधारी को अनेक मार्ग निकल आवेंगे।

मया चक्रमिवाविद्धं सैन्यं द्रक्ष्यसि केवलम् ॥२४॥

इष्वस्त्रे शिक्षितं चित्रमहं दर्शयितास्मि ते ।

तुम अब चक्र की तरह मेरे द्वारा घुमाई हुई, सेना को देखोगे और आज मैं मेरी बाण तथा अन्य शस्त्रों की शिक्षा को तुमको दिखाऊंगा ॥२४॥

असम्भ्रान्तो रथे तिष्ठ समेषु विषमेषु च ॥२५॥

दिवमावृत्य तिष्ठन्तं गिरिं भिन्द्यां स्म पत्रिभिः ।

तुम सरल या कठिन परिस्थिति में बिना घबड़ाए रथ पर बैठे रहो। यदि आकाश को व्याप्त करके कोई पर्वत भी बीच में आकर खड़ा हो जावेगा, तो भी मैं बाणों से उसके टुकड़े २ कर डालूंगा ॥२५॥

अहमिन्द्रस्य वचनात् संग्रामेऽभ्यहनं पुरा ॥२६॥

पौलोमान् कालकञ्जांश्च सहस्राणि शतानि च ।

मैंने पूर्वकाल में इन्द्र की आज्ञा से संग्राम में सैकड़ों हज़ारों पोलोम और कालखञ्ज असुरों को मृत्यु के घाट उतार दिया था ॥२६॥

अहमिन्द्राद् दृढां मुष्टिं ब्रह्मणः कृतहस्तताम् ॥२७॥
प्रगाढं तुमुलं चित्रमभ्यशिक्षं प्रजापतेः ।

मैंने इन्द्र से अपनी मुष्टि को शस्त्र पर गाढ़ी तरह जमाना ब्रह्मा से हस्तलाघव (फुर्ती) और प्रजापति से संकट के समय अद्भुत ढंग से घोर युद्ध करना सीखा है ॥२७॥

अहं पारे समुद्रस्य हिरण्यपुरवासिनाम् ॥२८॥
जित्वा षष्टिसहस्राणि रथिनामुग्रधन्विनाम् ।

मैंने समुद्र के पार हिरण्यपुर निवासी, उग्र-धनुष-धारी, साठ हज़ार, महारथियों को जीत लिया है ॥२८॥

शीर्य्यमाणानि तूलानि प्रवृद्धेनेव वायुना ॥२९॥
मया कुरूणां वृन्दानि पात्यमानानि पश्य वै ।

प्रबल वेग से चलने वाले वायु से उड़ाए हुए, तूल (रुई) के वृन्द के तुल्य, कुरुओं के वृन्द मुझ से भूमि में बिछाए हुए देख लेना ॥२९॥

ध्वजवृक्षं पत्तितृणं रथिसिंहगणायुतम् ॥३०॥
वनमादीपयिष्यामि कुरूणामस्त्रतेजसा ।

ध्वजा रूपी वृक्ष, पैदल सैनिकों रूपी तृण वाले तथा महारथी रूपी सिंहादि हिंसक जन्तुओं से युक्त, कुरुओं के वन को अपने अस्त्र रूपी अग्नि से जला डालूंगा ॥३०॥

तानहं रथनीडेभ्यः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥३१॥

पत्तीन् सर्वानतिबलान् योत्स्यमानानवस्थितान् ।

एकः सङ्कालयिष्यामि वज्रपाणिरिवासुरान् ॥३२॥

मैं अपने झुकी पर्व वाले बाणों से रथ रूपी घौंसलों में से सारे पैदल सैनिक तथा अति-बली युद्ध की इच्छा से सन्मुख उपस्थित, योद्धा रूपी पक्षियों को, असुरों को वज्रपाण इन्द्र की तरह अकेला ही गिरा लूंगा ॥३१-३२॥

रौद्रं रुद्रादहं ह्यस्त्रं वरुणादपि वारुणम् ।

अस्त्रमाग्नेयमग्नेश्च वायव्यं मातरिश्वनः ।

वज्रादीनि तथास्त्राणि शक्रादहमवाप्तवान् ॥३३॥

मैंने रुद्र से रौद्र, वरुण से वारुण, अग्नि से आग्नेय, वायु से वायव्य, इन्द्र से वज्र आदि अस्त्र प्राप्त कर लिए हैं ॥३३॥

धार्त्तराष्ट्रं वनं घोरं नरसिंहाभिरक्षितम् ।

अहमुत्पाटयिष्यामि वैराटे व्येतु ते भयम् ॥३४॥

हे विराट-पुत्र ! उत्तर ! धृतराष्ट्र के पुत्र घोर वन है, जो वीर-श्रेष्ठों से सुरक्षित है । मैं इस वन को अभी उखाड़ कर फैंक देता हूँ, तुम डरो मत ॥३४॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमाश्वासितस्तेन वैराटिः सव्यसाचिना ।

व्यवगाहद्रथानीकं भीमं भीष्माभिरक्षितम् ॥३५॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इस प्रकार सव्यसाची अर्जुन द्वारा समझाये हुए, विराट-पुत्र उत्तर ने भीष्म से सुरक्षित, भीषण रथों से युक्त सेना का आलोडन करना आरम्भ किया ॥३५॥

तमायान्तं महाबाहुं जिगीषन्तं रणे कुरून्।
अभ्यवारयदव्यग्रः क्रूरकर्मापगासुतः ॥३६॥

रण में कौरवों को जीतने के अभिलाषी, महाबाहु अर्जुन को आता हुआ देख कर क्रूर कर्म करने में समर्थ, गङ्गा-पुत्र, भीष्मने विना किसी प्रकार की व्याकुलता के इसको आगे बढ़ने से रोक दिया ॥३६॥

तस्य जिष्णुरुपावृत्य ध्वजं मूलादपातयत्।
विकृष्य कलधौताग्रैः स विद्धः प्रापतद्भुवि ॥३७॥

अर्जुन ने धनुष खैंच कर सुवर्ण से चित्रित अग्र भाग वाले बाण से भीष्म की ध्वजा को जड़ से काट दिया। वह कटी हुई ध्वजा भूमि में गिर पड़ी ॥३७॥

तं चित्रमाल्याभरणाः कृतविद्या मनस्विनः।
आगच्छन् भीमधन्वानं चत्वारश्च महाबलाः ॥३८॥

इस समय चित्र विचित्र माला धारी, अस्त्र विद्या में कुशल, मनस्वी, चार महारथी, भीषण धनुष-धारी अर्जुन के पास आए।

दुःशासनो विकर्णश्च दुःसहोऽथ विविंशतिः।
आगत्य भीमधन्वानं बीभत्सुं पर्य्यवारयन् ॥३९॥

दुःशासन, विकर्ण, दुःसह, विविंशति, इन चार महारथियोंने आकर भीषण धनुष वाले महारथी अर्जुन को घेर लिया ॥३९॥

दुःशासनस्तु भल्लेन विध्वा वैराटिमुत्तरम् ।
द्वितीयेनार्जुनं वीरः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥४०॥

वीर दुःशासन ने बाण से विराट-पुत्र उत्तर को बींध कर दूसरे बाण से अर्जुन के हृदय को बींध डाला ॥४०॥

तस्य जिष्णुरुपावृत्य पृथुधारेण कार्मुकम् ।
चकर्त्त गार्द्धपत्रेण जातरूपपरिष्कृतम् ॥४१॥

अर्जुन ने लौट कर गृद्ध की पूंछ वाले, पुष्ट धार धारी, बाण से, सुवर्ण से चमकते हुए, दुःशासन के धनुष को काट डाला ।४२॥

अथैनं पञ्चभिः पश्चात् प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ।
सोऽपयातो रणं हित्वा पार्थबाणप्रपीडितः ॥४२॥

अर्जुन ने पांच बाणों से दुःशासन की छाती को बींध लिया । अर्जुन के बाण से पीड़ित होकर दुःशासन, रण को छोड़ कर चल दिया ॥४२॥

तं विकर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्गार्द्धपत्रैरजिह्मगैः ।
विव्याध परवीरघ्नमर्जुनं धृतराष्ट्रजः ॥४३॥

अब धृतराष्ट्र-पुत्र विकर्ण ने गृद्ध पक्षी के पक्षों से सुशोभित, सीधे जाने वाले तीक्ष्ण बाणों से शत्रु-वीर नाशक, अर्जुन को छेद डाला। ॥४३॥

ततस्तमपि कौन्तेयः शरेणानतपर्वणा ।
ललाटेऽभ्यहनत्तूर्णं स विद्धः प्रापतद्रथात् ॥४४॥

झुकी पर्व वाले बाण से कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने बड़ी शीघ्रता के साथ विकर्ण के ललाट में मारा। यह बाणों से विंध कर रथ से नीचे गिर पड़ा ॥४४॥

ततः पार्थमभिद्रुत्य दुःसहः सविविंशतिः।
अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णैः परीप्सुर्भ्रातरं रणे ॥४५॥

अब विविंशति के साथ दुःसह ने रण में अपने भाई का बदला लेने के लिए अर्जुन पर धावा बोल कर तीक्ष्ण बाणों से बींधना आरम्भ किया ॥४५॥

तावुभौ गार्द्ध्रपत्राभ्यां निशिताभ्यां धनञ्जयः।
विध्वा युगपदव्यग्रस्तयोर्वाहानसूदयत् ॥४६॥

गृद्ध पक्षी के पत्तों से युक्त, तीक्ष्ण बाणों से किसी व्याकुलता के बिना ही उन दोनों को एक साथ बींधकर अर्जुन ने उनके अश्वों को भी मार डाला ॥४६॥

तौ हताश्वौ विभिन्नाङ्गौ धृतराष्ट्रात्मजावुभौ।
अभिपत्य रथैरन्यैरपनीतौ पदानुगैः ॥४७॥

इन दोनों धृतराष्ट्र पुत्रों के अश्व मर चुके और इनके शरीर क्षत विक्षत हो गए, तब इन दोनों को अन्य रथ में डालकर पैदल सैनिक; रण से ले गए ॥४७॥

सर्वा दिशश्चाभ्यपतद् बीभत्सुरपराजितः।
किरीटमाली कौन्तेयो लब्धलक्षो महाबलः ॥४८॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
अर्जुनदुःशासनादियुद्धे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

किसी से पराजित नहीं होने वाले किरीट-धारी, महाबली, कुन्ती-पुत्र अर्जुन अपने लक्ष्य में नहीं चूकता हुआ रण में चारों ओर सब दिशाओं में घूमने लगा ॥४८॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में अर्जुन दुःशासन आदि के युद्ध का इकसठवां अध्याय पूरा हुआ।

:

बासठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

अथ सङ्गम्य सर्वे ते कौरवाणां महारथाः।
अर्जुनं सहिता यत्ताः प्रत्यविध्यन्त भारत ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! अब कौरवों के सारे महारथी इकट्ठे हो गए और बड़ी सावधानी से अर्जुन को बाणों से बींधने लगे ॥१॥

स सायकमयैर्जालैः सर्वतस्तान्महारथान्।
आच्छादयदमेयात्मा नीहारेणेव पर्वतान् ॥२॥

इस विशाल-शक्ति-शाली अर्जुन ने भी अपने बाणों के जाल से उन सारे महारथियों को इस तरह ढक लिया- जैसे पर्वतों को कुहरा ढक लेता है ॥२॥

नदद्भिश्च महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः ।
भेरीशङ्खनिनादैश्च स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥३॥

बड़े २ हाथियों के चीखने और अश्वों के हिनहिनाने तथा भेरी (नगाड़े) शंखों की ध्वनि से रण शब्द बहुत ही भीषण हो गया ॥३॥

नागाश्वकायान्निर्भिद्य लौहानि कवचानि च ।
पार्थस्य शरजालानि विनिष्पेतुः सहस्रशः ॥४॥

अर्जुन के बाण हाथी घोड़ों के शरीर और लोह के कवचों को बींध २ कर सहस्रों की संख्या में गिरने लगे ॥४॥

त्वरमाणः शरानस्यन् पाण्डवः प्रबभौ रणे ।
मध्यन्दिनगतोर्चिष्मान् शरदीव दिवाकरः ॥५॥

बड़ी शीघ्रता (फुर्ती) से बाणों को फैंकता हुआ, अर्जुन, रण में ऐसा चमक रहा था- जैसे शरद् ऋतु में घबराकर सूर्य चमकता है ॥५॥

उपप्लवन्ति वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तथा ।
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चैव पदातयः ॥६॥

इस युद्ध में रथों में बैठे हुए महारथी, रथों से, अश्वों के सवार, अश्वों से उतर कर एवं पैदल, भूमि पर भाग निकले ॥६॥

शरैः संच्छिद्यमानानां कवचानां महात्मनाम् ।
ताम्रराजतलौहानाम्प्रादुरासीन्महास्वनः ॥७॥

महारथियों के ताँबे चान्दी और लोहे के कवचों के बाणों से बींधने से बड़ा भारी शब्द होने लगा ॥७॥

छन्नमायोधनं सर्वं शरीरैर्गतचेतसाम् ।
गजाश्वसादिनां तत्र शितबाणात्तजीवितैः ॥ ॥

तीक्ष्ण बाणों से अपहरण किये हुए, प्राणों वाले, मरे हुए हाथी, घोड़े और अश्वों के सवारों के शरीरों से सारी युद्ध भूमि, आच्छन्न हो गई ॥८॥

रथोपस्थाभिपतितैरास्थिता मानवैर्मही ।
प्रनृत्यतीव संग्रामे चापहस्तो धनञ्जयः ॥९॥

रथ के पास छुने का आकाङ्क्षा से आये हुए, मनुष्यों से रण भूमि घिर गई। इस समय धनुष, हाथ में लिये हुए अर्जुन, युद्ध-क्षेत्र में नाच सा कर रहा था ॥९॥

श्रुत्वा गाण्डीवनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
त्रस्तानि सर्वसैन्यानि व्यपागच्छन् महाहवात् ॥१०॥

वज्र की ध्वनि के तुल्य गाण्डीव धनुष का निर्घोष सुन कर सारी सेना व्याकुल होकर इस युद्ध भूमि से भाग निकली ॥१०॥

कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपस्रजस्तथा ।
पतितानि स्म दृश्यन्त शिरांसि रणमूर्द्धनि ॥११॥

कुण्डल और पगड़ी पहिने हुए, सुवर्ण की माला धारी योद्धाओं के शिर, रणभूमि में चारों ओर पड़े दिखाई दे रहे थे ॥११॥

विशिखोन्मथितैर्गात्रै र्बाहुभिश्च सकार्मुकैः ।
सहस्ताभरणैश्चान्यैः प्रच्छन्ना भाति मेदिनी ॥१२॥

बाणों से छिदे हुए शरीरा और धनुष तथा हाथ के भूषणों से भूषित बाहुओं से पृथिवी ढकी हुई दिखाई दे रही थी ॥१२॥

शिरसां पात्यमानानामन्तरा निशितैः शरैः ।
अश्मवृष्टिरिवाकाशादभवद्भरतर्षभः ॥१३॥

हे भरतर्षभ! मध्य में खड़े हुए तीक्ष्ण बाणोंसे युक्त शिरों के पड़ने से ऐसा प्रतीत होता था, जैसे आकाश से पत्थरों की वर्षा हो रही हो ॥१३॥

दर्शयित्वा तथात्मानं रौद्रं रुद्रपराक्रमः ।
अवरुद्धोऽचरत् पार्थो वर्षाणि त्रिदशानि च ॥१४॥
क्रोधाग्निमुत्सृजन् घोरो धार्त्तराष्ट्रेषु पाण्डवः ।

भीषण पराक्रम करने वाला अर्जुन, तेरह वर्ष तक वन में क्लेश सहता रहा। इस समय यह महावीर, धृतराष्ट्र के पुत्रों पर क्रोध की अग्नि को बरसाता हुआ अपने को भीषण बनाकर युद्ध भूमि में विचरने लगा ॥१४॥

तस्य तद्दहतः सैन्यं दृष्ट्वा घोरं पराक्रमम् ॥१५॥
सर्वे शान्तिपरा भूत्वा धार्त्तराष्ट्रस्य पश्यतः ।

सेना को दहन करते हुए, अर्जुन का घोर पराक्रम देख कर धृतराष्ट्र सुत राजा दुर्योधन के देखते २ सारे योद्धा, चुपचाप खड़े हो गए ॥१५॥

वित्रासयित्वा तत् सैन्यन्द्रावयित्वा महारथान् ॥१६॥
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठः पर्य्यवर्त्तत भारत।

हे भारत! सारी कौरव सेना को भयभीत करके और महारथियों को भगाकर विजयी अर्जुन वापिस लौट पड़ा ॥१६॥

आवर्त्तयन्नदीं घोरां शोणितोदां तरङ्गिणीम् ॥१७॥
अस्थिशैवालसम्बाधां युगान्ते कालनिर्मिताम्।
शरचापप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ॥१८॥
तनुत्रोष्णीषसम्बाधां नागकूर्ममहाद्विपाम्।
मेदोवसासृक्प्रवहां महाभयविवर्द्धिनीम् ॥१९॥
रौद्ररूपां महाभीमां श्वापदैरभिनादिताम्।
तीक्ष्णशस्त्रमहाग्राहां क्रव्यादगणसेविताम् ॥२०॥
मुक्ताहारोर्मिकलिलां चित्रालङ्कारबुद्बुदाम्।
शरसङ्घमहावर्त्तां नागनक्रान्दुरत्ययाम् ॥२१॥
महारथमहाद्वीपां शङ्खदुन्दुभिनिस्वनाम्।
चकार च तदा पार्थो नदीं दुस्तरशोणिताम् ॥२२॥

इस युद्ध भूमि में अर्जुन ने तरङ्गों से युक्त, रक्त की घोर नदी बहादी। यह ऐसी भीषण प्रतीत होती थी, जैसी प्रलय के समय काल द्वारा रची गई हो। इसमें योद्धाओं के अस्थिजाल के बालों के जाल से दिखाई पड़ते थे। इस घोर नदी में धनुष बाण डोंगियों की तरह तरते फिरते थे और योद्धाओं के शिर

के बाल कहीं शेवाल और कहीं हरी २ दूब के गुच्छे से दिखाई देते थे। कवच और पगड़ियों से व्याप्त इस नदी में हाथी, कछुए और कहीं जल गज से प्रतीत होते थे। यह मेद (चर्वी) और रक्त के प्रवाह से बड़ा ही भय वढ़ा रही थी। जो बड़ी ही रौद्र, भयानक और वन के भीषण जन्तुओं से शब्दायमान थी। इसमें तीक्ष्ण शस्त्र, बड़े २ ग्राह से प्रतीत होते थे। यह मांस खाने वाले जन्तुओं के गणों से व्याप्त थी और योद्धाओं की मोतियों की माला तथा हार-रूपी लहरों से गहन एव अद्भुत२ अलङ्कारोंसे बुद्‌बुदों वाली मालूम होती थी, इसमें बाणों के समूहों के वड़े आवर्त और हाथिओं के मगर घूम रहे थे। यह बड़ी ही दुर्गम थी। इसमें वड़े रथ के वड़े २ द्वीप पड़े हुए से दिखाई देते थे। यह शङ्ख दुन्दुभियों की ध्वनि से भयानक नाद सा कर रही थी। अर्जुन ने इस युद्ध में इस प्रकार रक्त की दुस्तर नदी बहा दी ॥१७-२२॥

आददानस्य हि शरान् सन्धाय च विमुञ्चतः।
विकर्षतश्च गाण्डीवं न किञ्चिद्ददृशे जनः ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
अर्जुनसङ्कुलयुद्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

बाणों के निकालते, धनुष पर चढ़ाते और छोड़ते तथा बड़ी शीघ्रता से गाण्डीव धनुष को खैंचते हुए अर्जुन को कोई भी योद्धा नहीं देख पाता था ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में अर्जुन का सबसे सम्मिलित युद्ध करने का बासठवां अध्याय समाप्त हुआ।

—:※:—

तरेसठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततो दुर्योधनः कर्णो दुःशासनविविंशती।
द्रोणश्च सहपुत्रेण कृपश्चापि महारथः ॥१॥
पुनर्युयुश्च संरब्धा धनञ्जयजिघांसवः।
विस्फारयन्तश्चापानि बलवन्ति दृढानि च ॥२॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! अब राजा दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, विविंशति, अश्वत्थामा के साथ द्रोण, महारथी कृप ये सारे, अर्जुन के मारने की इच्छा से आवेश में आकर फिर दौड़े। ये, अपने बलशाली दृढ़ धनुषों को बजा रहे थे।१-२।

तान् विकीर्णपताकेन रथेनादित्यवर्चसा।
प्रत्युद्ययौ महाराज समन्ताद्वानरध्वजः ॥३॥

हे महाराज! अब वानर की ध्वजा धारी अर्जुन, फहराती ध्वजा वाले, सूर्य के सदृश चमकीले रथ से उन महारथियों की ओर झपटे ॥३॥

ततः कृपश्च कर्णश्च द्रोणश्च रथिनां वरः।
तं महास्त्रैर्महावीर्यैः परिवार्य धनञ्जयम् ॥४॥
शरौघान् सम्यगस्यन्तो जीमूता इव वार्षिकाः।
ववर्षुः शस्त्रवर्षाणि पातयन्तो धनञ्जयम् ॥५॥

वर्षा करने वाले, मेघों की तरह शरों के समूह को फैंकते हुए, महारथियों में उत्तम कृप, कर्ण और द्रोणाचार्य, बड़ी २ शक्ति रखने वाले, बड़े अस्त्रों से घेरकर धनञ्जय अर्जुन को शरों की वर्षा से पीड़ित करने लगे ॥४-५॥

इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं समरे लोमवाहिभिः।
अदूरात् पर्य्यवस्थाय पूरयामासुरादृताः ॥६॥

ये योद्धा इस युद्ध में बड़ी शीघ्रता के साथ कङ्क-पत्रधारी, अनेक बाणों से बड़े ध्यान पूर्वक अर्जुन को घेर कर समीप से ही बींधने लगे ॥६॥

तथा तैरवकीर्णस्य दिव्यैरस्त्रैः समन्ततः।
न तस्य द्व्यङ्गुलमपि विवृतं सम्प्रदृश्यते ॥७॥

इन द्रोण आदि महारथियों द्वारा दिव्य अस्त्रों से विंधे हुए, अर्जुन का शरीर दो अङ्गुल पर भी छेद से खाली दिखाई नहीं देता था ॥७॥

ततः प्रहस्य बीभत्सुर्दिव्यमैन्द्रं महारथः।
अस्त्रमादित्यसङ्काशं गाण्डीवे समयोजयत् ॥८॥

महारथी अर्जुन ने भी अब हंसकर सूर्य के समान चमकीले इन्द्र सम्बन्धी अस्त्र को गाण्डीव धनुष पर चढ़ाया ॥८॥

शररश्मिरिवादित्यः प्रतस्थे समरे बली ।
किरीटमाली कौन्तेयः सर्वान् प्राच्छादयन् कुरून् ॥९॥

महाबली अर्जुन, बाण रूपी किरणों से युक्त हुआ सूर्य के तुल्य समर में आगे बढ़ा। इस किरीट धारी अर्जुन ने सारे कौरवों को अपने बाणों से ढ़क लिया ॥९॥

यथा बलाहके विद्युत्पावको वा शिलोच्चये ।
तथा गाण्डीवमभवदिन्द्रायुधमिवाततम् ॥१०॥

जिस तरह बादलों में बिजली या पर्वतों में आग हो, उसी तरह इन्द्र-धनुष के समान गाण्डीव, बड़ा विस्तृत होकर देदीप्य मान हो रहा था ॥४०॥

यथा वर्षति पर्जन्ये विद्युद्विभ्राजते दिवि ।
द्योतयन्ती दिशः सर्वाः पृथिवीश्च समन्ततः ॥११॥
तथा दशः दिश सर्वाः पतद्गाण्डीवमावृणोत् ।
नागाश्वरथिनः सर्वे मुमुहुस्तत्र भारत ॥१२॥

मेघ के बरसने के समय आकाश में बिजली सारी दिशाओं और सब ओर से पृथिवी को चमकाती हुई चमकती है, उसी तरह गाण्डीव ने अपनी चमक से सब को ढक लिया। हे भारत! इस समय सारे हाथी, घोड़े और रथारोही वीर, मोहित से हो गए ॥११-१२॥

सर्वे शान्तिपरा योधाः स्वचित्तानि न लेभिरे ।
संग्रामे विमुखाः सर्वे योधास्ते हतचेतसः ॥१३॥

सारे योद्धा, युद्ध को बन्द कर देना चाहते थे। इस समय इनको अपने चित्त का ज्ञान नहीं था। ये सारे योद्धा अचेत से हुए, युद्ध करने के विरुद्ध थे ॥१३॥

एवं सर्वाणि सैन्यानि भग्नानि भरतर्षभ ।
व्यद्रवन्त दिशः सर्वा निराशानि स्वजीविते ॥१४॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
अर्जुनसङ्कलयुद्धे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

हे भरतर्षभ ! इस प्रकार सारी सेना अपने, जीवन में निराश होकर सारी दिशाओं को भाग निकली ॥१४॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में अर्जुन के सारे महारथियों के साथ युद्ध होने का तरेसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

चौसठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच —

ततः शान्तनवो भीष्मो भरतानां पितामहः ।
बध्यमानेषु योधेषु धनञ्जयमुपाद्रवत ॥१॥
प्रगृह्य कार्मुकश्रेष्ठं जातरूपपरिष्कृतम् ।
शरानादाय तीक्ष्णाग्रान्मर्मभेदान् प्रमाथिनः ॥२॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! इसके अनन्तर शान्तनु-पुत्र, भरतवंशियों का पितामह भीष्म, सारे योद्धाओं के भार सह लेने

वाले, सुवर्ण से मढ़े हुए, धनुष श्रेष्ठ तथा तीक्ष्ण अग्रभाग वाले, मर्म-भेदी, शत्रु नाशक, बाणों को लेकर अर्जुन पर झपटा ॥१-२॥

पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्द्धनि ।
शुशुभे स नरव्याघ्रो गिरिः सूर्य्योदये यथा ॥३॥

इस नर श्रेष्ठ ने अपने मस्तक पर श्वेत छत्र धारण कर रखा था, जिससे सूर्योदय के समय पर्वत की सी शोभा हो रही थी ॥३॥

प्रध्माय शङ्खं गाङ्गेयो धार्त्तराष्ट्रान् प्रहर्षयन् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य बीभत्सुः समवारयत् ॥४॥

उस गङ्गा पुत्र भीष्म ने धृतराष्ट्र पुत्रों को हर्षित करते हुए अपना शङ्ख बजाया और दांई ओर से चक्कर लगा कर अर्जुन को आ घेरा ॥४।

तमुदीक्ष्य समायान्तं कौन्तेयः परवीरहा ।
प्रत्यगृह्णात् प्रहृष्टात्मा धाराधरमिवाचलः ॥५॥

भीष्म को आता हुआ देखकर शत्रु वीर-नाशक कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने बड़ी प्रसन्नता से मेघ को पर्वत की भांति भीष्म के वेग को सह लिया ॥५॥

ततो भीष्मः शरानष्टौ ध्वजे पार्थस्य वीर्य्यवान् ।
समर्पयन्महावेगान् श्वसमानानिवोरगान् ॥६॥

अब वीर्यवान् भीष्म ने अर्जुन की ध्वजा में सर्प के सदृश श्वास लेते हुए, महा-वेग-धारी, आठ बाणों को मारा ॥६॥

ते ध्वजं पाण्डुपुत्रस्य समासाद्य पतत्त्रिणः ।
ज्वलन्तं कपिमाजघ्नुः ध्वजाग्रनिलयांश्च तान् ॥७॥

इन बाणों ने पाण्डु-पुत्र, अर्जुन की ध्वजा को काट कर जाज्वल्यमान वानर पर आक्रमण किया और जो ध्वजा पर अन्य भूत निवास करते थे, उनको भी जा बींधा ॥७॥

ततो भल्लेन महता पृथुधारेण पाण्डवः ।
छत्रं चिच्छेद भीष्मस्य तूर्णं तदपतद्भुवि ॥८॥

पाण्डु-पुत्र, अर्जुन ने भी तीक्ष्ण धार वाले, बाण से भीष्म के छत्र को काट डाला, जिससे वह बड़ा ही शीघ्र भूमि पर गिर पड़ा ॥८॥

ध्वजं चैवास्य कौन्तेयः शरैरभ्यहनद्भृशम् ।
शीघ्रकृद्रथवाहांश्च तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥९॥

बड़ी शीघ्रता से बाण चलाने वाले अर्जुन ने अपने बाणों से इसकी ध्वजा को भी बड़ी अच्छी तरह से छिन्न भिन्न कर डाला तथा रथ के अश्व और पार्ष्णि (पीठ) रक्षक तथा सारथि को भी घायल कर दिया ॥९॥

अमृष्यमाणस्तद्भीष्मो जानन्नपि सपाण्डवम् ।
दिव्येनास्त्रेण महता धनञ्जयमवाकिरत् ॥१०॥

यद्यपि भीष्म अर्जुन का पराक्रम जानता था, परन्तु इस आक्रमण को सह नहीं सका। इसने भी बड़े दिव्य अस्त्र से धनंजय पर आक्रमण किया ॥१०॥

तथैव पाण्डवो भीष्मे दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ।
प्रत्यगृह्णाद्मेयात्मा महामेघमिवाचलः ॥११॥

इसी तरह पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने भी भीष्म पर दिव्य अस्त्र चलाया। इस दिव्य अस्त्र को भी महात्मा भीष्म ने मेघ को पर्वत के समान सह लिया ॥११॥

तयोस्तदभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
भीष्मस्य सह पार्थेन बलिवासवयोरिव ॥१२॥

इन भीष्म और अर्जुन का बलि और इन्द्र के समान बड़ा घोर लोम खड़े कर देने वाला युद्ध होने लगा ॥१२॥

प्रेक्षन्ते कुरवः सर्वे योधाश्च सहसैनिकाः ।
भल्लैर्भल्लाः समागम्य भीष्मपाण्डवयोर्युधि ॥१३॥
अन्तरीक्षे व्यराजन्त खद्योताः प्रावृषीव हि ।

इन भीष्म और अर्जुन के युद्ध में जब भालों से आकर भाले टकराने लगे, तो उनको सैनिकों के साथ सारे योद्धा और कौरवों ने वर्षा ऋतु में आकाश में खद्योत (जुगनू) चमकने के सदृश देखा ॥१३॥

अग्निचक्रमिवाविद्धं सव्यदक्षिणमस्यतः ॥१४॥
गाण्डीवमभवद्राजन् पार्थस्य सृजतः शरान् ।

हे राजन्! दांये बांये धनुष को घुमाते हुए और बाणों को छोड़ते हुए, अर्जुन के गाण्डीव का अग्नि-चक्र सा घूमने लगा ॥

ततः संछादयामास भीष्मं शरशतैः शितैः ॥१५॥
पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः।

जिस तरह मेघ पर्वत को जल धारा से ढ़क लेता है, उसी तरह अर्जुन ने अपने नुकीले बाणों से भीष्म को ढ़क लिया ॥१५॥

तां स वेलामिवोद्धूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ॥१६॥
व्यधमत्सायकैर्भीष्मः पाण्डवं समवारयत्।

भीष्म ने समुद्र की वेला के तुल्य, उठी हुई बाण वर्षा को अपने बाणों से काट डाला और अर्जुन को वहीं रोक दिया ॥१६॥

ततस्तानि निकृत्तानि शरजालानि भागशः ॥१७॥
समरे च व्यशीर्यन्त फाल्गुनस्य रथं प्रति।

भीष्म द्वारा काटी हुई, अर्जुन की बाण वर्षा, युद्ध-क्षेत्र में अर्जुन के रथ के पास ही कट कट कर बिखरने लगी ॥१७॥

ततः कनकपुङ्खानां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ॥१८॥
पाण्डवस्य रथात्तूर्णं शलभानामिवायतिम्।
व्यधमत्तां पुनस्तस्य भीष्मः शरशतैः शितैः ॥१९॥

सुवर्णके पुंखों (जड़) वाले, शलभ पक्षियों की पंक्ति के सदृश, अर्जुन के रथ से बड़े वेग के साथ उठी हुई बाणों की वर्षा को भीष्म ने अपने तीक्ष्ण सैंकड़ों बाणों से काट गिराया ॥१८-१९॥

ततस्ते कुरवः सर्वे साधु साध्विति चाब्रुवन्।
दुष्करं कृतवान् भीष्मो यदर्जुनमयोधयत् ॥२०॥

अब कौरव लोग, भीष्म को साधुवाद देते हुए कहने लगे- कि भीष्म ने बड़ा कठिन कर्म कर दिखाया है, जो अर्जुन से युद्ध की टक्कर ले ली है ॥२०॥

बलवांस्तरुणो दक्षः क्षिप्रकारी धनञ्जयः ।
कोऽन्य समर्थः पार्थस्य वेगंधारयितुं रणे ॥२१॥

अर्जुन बड़ा बली, युवा, चतुर और क्षिप्रकारी (फुर्तीला) है। इस अर्जुन के वेग को रण में अन्य कौन रोकने में समर्थ हो सकता है ? ॥२१॥

ऋते शान्तनवात् भीष्मात् कृष्णाद्वा देवकीसुतात् ।
आचार्य्यप्रवराद्वापि भारद्वाजान्महाबलात् ॥२२॥

अर्जुन के वेग को शान्तनु-पुत्र भीष्म, देवकी पुत्र श्रीकृष्ण, महाबली, भरद्वाज-पुत्र द्रोण के सिवा कौन सह सकता है?॥२२॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य्या क्रीड़न्ती भरतर्षभौ ।
चक्षूंषि सर्वभूतानां मोहयन्तौ महाबलौ ॥२३॥

ये दोनों भरत वंशोत्पन्न भीष्म और अर्जुन, अपने २ अस्त्र से एक दूसरे के अस्त्रों को रोक कर युद्ध क्रीड़ा कर रहे थे। यह दोनों महाबली, अपने युद्ध कौशल से सारे प्राणियों के चक्षुओं को मुग्ध कर रहे थे ॥ ३॥

प्राजापत्यं तथैवैन्द्रमाग्नेयं रौद्रदारुणम् ।
कौबेरं वारुणञ्चैव याम्यं वायव्यमेव च ॥२४॥
प्रयुञ्जानौ महात्मानौ समरे तौ विचेरतुः ।

विस्मितान्यथ भूतानि तौ दृष्ट्वा संयुगे तदा ॥२५॥
साधु पार्थ महाबाहो साधु भीष्मेति चाब्रुवन् ।

प्रजापति, इन्द्र, अग्नि, रुद्र, कुवेर, वरुण, यम, वायु आदि देवों के दारुण अस्त्रों का प्रयोग करते हुए, ये दोनों महात्मा, युद्ध में विचरने लगे। इनको युद्ध में इस तरह देख कर सारे प्राणी चकित होकर देखने लगे और हे महाबाहो! अर्जुन! तुम बड़े अच्छे लड़े। हे भीष्म! तुमने ठीक प्रहार किया- इस तरह कहने लगे ॥२४-२५॥

नायं युक्तो मनुष्येषु योऽयं संदृश्यते महान् ।
महास्त्राणां सम्प्रयोगः समरे भीष्मपार्थयोः ॥२६॥

इस युद्ध में भीष्म और अर्जुन को बड़े २ अस्त्रों का जो महान् प्रयोग दिखाई दिया, वह कभी अन्य मनुष्यों में नहीं देखा गया था ॥२६॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं सर्वास्त्रविदुषोरस्त्रयुद्धमवर्त्तत ।
अस्त्रयुद्धे तु निर्वृत्ते शरयुद्धमवर्त्तत ॥२७॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इस प्रकार सारे अस्त्रों के जानने वाले भीष्म और अर्जुन का अस्त्र युद्ध हुआ। इस अस्त्र युद्ध के समाप्त हो जाने पर बाणों से युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥२७॥

अथ जिष्णुरुपावृत्य क्षुरधारेण कार्मुकम् ।
चकर्त्त भीष्मस्य तदा जातरूपपरिष्कृतम् ॥२८॥

अब अर्जुन ने लौटकर क्षुर के समान तीक्ष्ण बाण से सुवर्ण से उज्ज्वल भीष्म के धनुष को काट दिया ॥२८॥

निमेषान्तरमात्रेण भीष्मोऽन्यत्कार्मुकं रणे
समादाय महाबाहुः सज्यं चक्रे महारथः ॥२९॥
शरांश्च सुबहून् क्रुद्धो मुमोचाशु धनञ्जये।

क्षण मात्र में ही महाबाहु महारथी भीष्म ने युद्ध में अन्य धनुष लेकर उसको चढ़ा लिया और क्रुद्ध होकर अर्जुन पर बहुत से बाण चलाए ॥२९॥

अर्जुनोऽपि शरांस्तीक्ष्णान् भीष्माय निशितान् बहून् ॥
चिक्षेप सुमहातेजास्तथा भीष्मश्च पाण्डवे।

अर्जुन ने भी बहुत से तीक्ष्ण बाण, भीष्म पर छोड़े और इसी तरह महातेजस्वी भीष्म ने अर्जुन पर बाण वर्षा की ॥३०॥

तयोर्दिव्यास्त्रविदुषोरस्यतोर्निशिताञ्छरान् ॥३१।
न विशेषस्तदा राजन् लक्ष्यते स्म महात्मनोः।

हे राजन्! दिव्य अस्त्रों के जानने वाले, तीक्ष्ण बाण फैंकते हुए, इन दोनों महावीर, भीष्म और अर्जुन में कोई भेद (फर्क) दिखाई नहीं पड़ता था ॥३१॥

अथावृणोद्दशदिशः शरैरतिरथस्तदा ॥३२॥
किरीटमाली कौन्तेयः शूरः शान्तनवस्तथा।

मुकुट धारी, कुन्ती-पुत्र महारथी, अर्जुन और शूरवीर भीष्मने अपने २ बाणों से दश दिशाओं को ढक सा लिया ॥३२॥

अतीव पाण्डवो भीष्मं भीष्मश्चातीव पाण्डवम् ॥३३॥
बभूव तस्मिन् संग्रामे राजन् लोके तदद्भुतम् ।

हे राजन्! इस सँग्राम में भीष्म से अधिक अर्जुन और अर्जुन से अधिक भीष्म, पराक्रम करके दिखा रहाथा। यह लोक के लिए बड़ी अद्भुत बात थी ॥३३॥

पाण्डवेन हताः शूरा भीष्मस्य रथरक्षिणः ॥३४॥
शेरते स्म तदा राजन् कौन्तेयस्याभितो रथम् ।

हे राजन्! भीष्म के रथ के रक्षक, अर्जुन से मारे हुए शूरवीर, अर्जुन के रथ के इधर उधर पड़े हुए दिखाई दे रहे थे।

ततो गाण्डीवनिर्मुक्ता निर्मित्रं चिकीर्षवः ॥३५॥
अगच्छन् पुङ्खसंश्लिष्टाः श्वेतवाहनपत्रिणः ।

अब शत्रु के नाश करने को चेष्टा वाले, गाण्डीव धनुष से छोड़ेगए, अपनी जड़ में जड़े हुए, श्वेत अश्वों के वाहन वाले अर्जुन के बाण, वेग के साथ चलने लगे ॥३५॥

निष्पतन्तो रथात्तस्य धौता हैरण्यवाससः ॥३६॥
आकाशे समदृश्यन्त हंसानामिव पङ्क्तयः ।

अर्जुन के रथ से निकलते हुए उज्ज्वल, कंक-पत्र-धारी, सुवर्ण जटित बाण, आकाश में हँसों की पंक्ति के समान उड़ते हुए दिखाई देते थे ॥३६॥

तस्य तद्दिव्यमस्त्रं हि विगाढं चित्रमस्यतः ॥३७॥
प्रेक्षन्ते स्मान्तरीक्षस्थाः सर्वे देवाः सवासवाः ।

दिव्य अस्त्र को बड़ी गाढ़ी और अद्भुत रीति से फेंकते हुए अर्जुन को अन्तरीक्ष में स्थित इन्द्र सहित सारे देव, बड़े अचम्भे से देख रहे थे ॥३७॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीतो गन्धर्वश्चित्रमद्भुतम् ॥३८॥
शशंस देवराजाय चित्रसेनः प्रतापवान् ।

इस अद्भुत वेगसे अस्त्र के चलाने को देख कर गन्धर्व राज, प्रतापी चित्रसेन, बड़ा प्रसन्न हुआ और देवराज इन्द्र से अर्जुन की प्रशँसा करने लगा ॥३८॥

पश्येमान् पार्थनिर्मुक्तान् संसक्तानिव गच्छतः ॥३९॥
चित्ररूपमिदञ्जिष्णोर्दिव्यमस्त्रमुदीर्यतः ।

हे देवराज ! तुम अर्जुन के छोड़े हुए और एक दूसरे से मानो जुड़कर चलते हुए बाणों को देखो । इस समय दिव्य अस्त्र चलाते हुए अर्जुन का यह रूप बड़ा ही अद्भुत दिखाई दे रहा है

नेदं मनुष्याः संदध्युर्नहीदं तेषु विद्यते ॥४०॥
पौराणानां महास्त्राणां विचित्रोऽयं समागमः ।

मनुष्यों में ये अस्त्र हैं ही नहीं, इससे वे इन के गौरव को नहीं जान सकते हैं । इन प्राचीन महा अस्त्रों का आज तो बड़ा ही अद्भुत संघर्ष हो रहा है ॥४०॥

आददानस्य हि शरान् सन्धाय च विमुञ्चतः ॥४१॥
विकर्षतश्च गाण्डीवं नान्तरं समदृश्यत ।

शरों के लेने और छोड़ने तथा धनुष के खैंचने के समय में कुछ भी अन्तर (फ़ासला) दिखाई नहीं देता है ॥४१॥

मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे ॥४२॥
न शक्नुवन्ति सैन्यानि पाण्डवं प्रतिवीक्षितुम् ।
तथैव भीष्मं गाङ्गेयं द्रष्टुं नोत्सहते जनः ॥४३॥

आकाश में दिनके मध्यमें प्रचण्ड चमकते हुए सूर्य के तुल्य युद्ध में कोई भी सैनिक अर्जुन के देखने में समर्थ नहीं है। इसी तरह गङ्गा पुत्र भीष्म को भी कोई वीर नहीं देख सकता था ॥४२-४३॥

उभौ विश्रुतकर्माणावुभौ तीव्रपराक्रमौ ।
उभौ सदृशकर्माणावुभौ युधि सुदुर्जयौ ॥४४॥

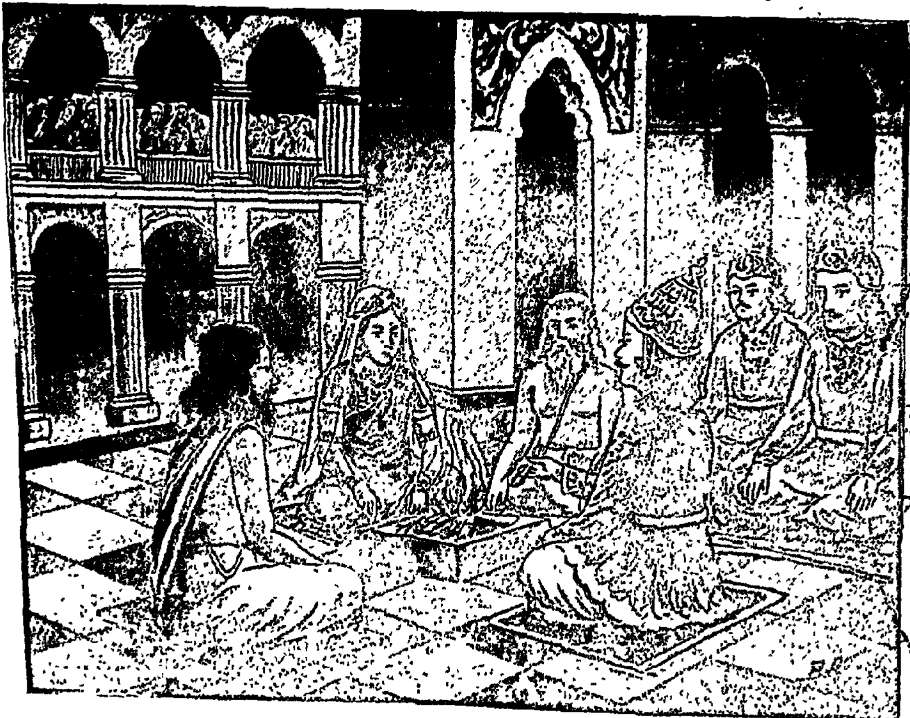
दोनों के वीरता के कर्म बड़े प्रसिद्ध थे और दोनों बड़े तीव्र पराक्रमी थे। दोनों ही भीष्म और अर्जुन, एक से वीरता के कर्म कर दिखाने वाले थे और दोनों ही युद्ध में दुर्मद थे। ॥४४॥

इत्युक्तो देवराजस्तु पार्थभीष्मसमागमम् ।
पूजयामास दिव्येन पुष्पवर्षेण भारत ॥४५॥

हे भारत! इस प्रकार चित्रसेन गन्धर्व ने भीष्म और अर्जुन का युद्ध इन्द्र को बताया। इन्द्र ने भी प्रसन्न हो कर दिव्य पुष्पों की वर्षा से इन का आदर प्रकट किया ॥४५॥

ततः शान्तनवो भीष्मो वामं पार्श्वमताडयत् ।
पश्यतः प्रतिसन्धाय विध्यतः सव्यसाचिनः ॥४६॥

अब शान्तनु पुत्र, भीष्म ने, अपने धनुष पर बाण चढ़ा कर बींधने की चेष्टा करते हुए, सव्य-साची अर्जुन के वाम-पार्श्व को बाण से बींध दिया ॥४६॥



महाराज विराट की पुत्री उत्तरा का अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के साथ विवाह।

महाभारत विराट पर्व अ० ७२।३५ पृष्ठ २६४

ततः प्रहस्य बीभत्सुः पृथुधारेण कार्मुकम् ।
चिच्छेद गार्द्ध पत्रेण भीष्मस्यादित्यतेजसः ॥४७॥

इस समय अर्जुन कुछ हंस दिया और इसने भी विशाल धार वाले, गृध्र पक्षी के पक्ष से युक्त बाण से आदित्य के समान तेजस्वी, भीष्म के धनुष को काट डाला ॥४७॥

अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ।
यतमानं पराक्रान्तं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥४८॥

कुन्ती-पुत्र धनञ्जय ने बड़े पराक्रम और प्रयत्न करते हुए, भीष्म की छाती को दश बाणों से बींध लिया ॥४८॥

स पीड़ितो महाबाहुर्गृहीत्वा रथकूबरम् ।
गाङ्गेयो युद्धदुर्धर्षस्तस्थौ दीर्घमिवान्तरम् ॥४९॥

महाबाहु युद्ध-दुर्मद, गङ्गा-पुत्र, भीष्म, इस प्रहार से बड़ा पीड़ित हुआ और कुछ काल के लिए रथ का कूबर (जूए को धारण करने वाला रथ का भाग)पकड़ कर ज्यों का त्यों खड़ा रहा ॥४९

तं विसंज्ञमपोवाह संयन्ता रथवाजिनाम् ।
उपदेशमनुस्मृत्य रक्षमाणो महारथम् ॥५०॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
भीष्मापयाने चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

रथ और अश्वों का चलाने वाला सारथि अचेत हुए, भीष्म को युद्ध भूमि से ले गया, क्योंकि सारथि का कर्तव्य बताया गया है, कि ऐसे समय में सारथि महारथी की रक्षा करे ॥५०॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में भीष्म के युद्ध से चले जाने का चौसठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

:

पैंसठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

भीष्मे तु संग्रामशिरो विहाय पलायमाने धृतराष्ट्रपुत्रः।
उत्सृज्य केतुं विनदन्महात्मा धनुर्विगृह्यार्जुनमाससाद॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! युद्ध भूमिको छोड़कर भीष्मके चलेजाने पर धृतराष्ट्र पुत्र महावीर राजा दुर्योधन अपनी ध्वजा को उड़ाता हुआ और गर्जता हुआ, धनुष लेकर स्वयं अर्जुन के सम्मुख आ पहुंचा॥१॥

स भीमधन्वानमुदग्रवीर्यं धनञ्जयं शत्रुगणे चरन्तम्।
आकर्णपूर्णायतचोदितेन विव्याध भल्लेन ललाटमध्ये॥२॥

भयङ्कर धनुष धारी, महाबली, शत्रुओं के मध्य में घूमते हुए अर्जुन के सामने पहुंच कर राजा दुर्योधन ने कान तक खैंचे हुए धनुष से युक्त बाण से अर्जुन के मस्तक को बींध दिया॥२॥

स तेन बाणेन समर्पितेन जाम्बूनदाग्रेण सुसंहितेन।
रराज राजन् महनीयकर्मा यथैकपर्वा रुचिरैकशृङ्गः॥३॥

हे राजन्! सुवर्ण से अग्रभाग में जटित, नुकीले, छोड़े हुए उस बाण से, प्रशंसनीय कर्म करने वाला, अर्जुन, एक लम्बे बांस से युक्त, पर्वत की भांति सुशोभित होने लगा॥३॥

अथास्य बाणेन विदारितस्य प्रादुर्बभूवासृगजस्रमुष्णम् ।
स तस्यजाम्बूनदपुङ्खचित्रो भित्त्वा ललाटं सुविराजते स्म ४

बाण से चीरे हुए, अर्जुन के मस्तक से लगातार रक्त की धारा बहने लगी। इस समय सुवर्ण से चित्रित मूल वाला बाण, इसके मस्तक को बींधकर बड़ा ही चमकदार दिखाई दे रहा था ॥४॥

स तेन बाणाभिहतस्तरस्वी दुर्य्योधनेनोद्धतमन्युवेगः ।
शरानुपादाय विषाग्निकल्पान् विव्याध राजानमदीनसत्त्वः५

महा-बल-शाली, दुर्योधन के बाण से बिंधा हुआ, अत्यन्त कोप से युक्त, वेगवान् अर्जुन, विष में बुझे हुए बाणों को लेकर राजा दुर्योधन को बींधने लगा ॥५॥

दुर्य्योधनश्चापि तमुग्रतेजा पार्थश्च दुर्योधनमेकवीरः ।
अन्योन्यमाजौ पुरुषप्रवीरौ समौ समाजघ्नतुराजमीढौ ॥६॥

उग्र तेजस्वी दुर्योधन, अर्जुन को और जगत् में एक मात्र वीर, अर्जुन, दुर्योधन को बींधने लगा। इस प्रकार अजमीढ़-वंशी, दोनों वीरश्रेष्ठ, अर्जुन और दुर्योधन, युद्ध में एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥६॥

ततः प्रभिन्नेन महागजेन महीधराभेन पुनर्विकर्णः ।
रथैश्चतुर्भिर्गजपादरक्षैः कुन्तीसुतं जिष्णुतथाभ्यधावत् ॥७॥

इसके बाद मद टपकाते हुए, पर्वत का आकारधारी, महागज और गज के रक्षक चार रथों से युक्त होकर विकर्ण ने कुन्ती-पुत्र, अर्जुन पर आक्रमण किया ॥७॥

तमापतन्तं त्वरितं गजेन्द्रं धनञ्जयः कुम्भविभागमध्ये ।
आकर्णपूर्णेन महायसेन बाणेन विव्याध महाजवेन ॥८॥

बड़े वेग से आते हुए, इस गजेन्द्र को देख कर धनञ्जय अर्जुन ने उसके मस्तक के मध्य में कान तक धनुष खैंच कर दृढ लोहे से निर्मित बाण से बड़े वेग के साथ मारा ॥८॥

पार्थेन सृष्टः स तु गार्द्धपत्रः आपुङ्खदेशात् प्रविवेश नागम्
विदार्य्य शैलप्रवरप्रकाशं यथाशनिः पर्वतमिन्द्रसृष्टः॥९॥

अर्जुन से छोड़ा हुआ, गृद्ध-पक्षी के परों से युक्त बाण, हाथी के शरीर में जड़ तक इस तरह गड़ गया, जैसे पर्वत को चीर कर इन्द्र का छोड़ा हुआ वज्र, पर्वत में घुस जाता है ॥९॥

शरप्रतप्तः स तु नागराजः प्रवेपिताङ्गो व्यथितान्तरात्मा
संसीदमानो निपपात मह्यां वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य॥१०॥

बाण से सन्तप्त हुआ, नागराज, बडा पीड़ित होकर कांपने लगा। यह गजराज, बड़ा क्लेशित हुआ पृथिवी में ऐसे गिर गया—जैसे वज्र से छिन्न-भिन्न होकर पर्वत का शिखर गिर जाता है ॥१०॥

निपातिते दन्तिवरे पृथिव्यां त्रासाद्विकर्णः सहसावतीर्य्य ।
तूर्णं पदान्यष्टशतानि गत्वा विविंशतेः स्यन्दनमारुरोह ॥

अर्जुन द्वारा हाथी को भूमि पर गिरा देने पर विकर्ण, भय-भीत होकर बहुत शीघ्र उससे कूद पड़ा और बड़ी शीघ्रता से आठ सौ पद (कदम) जाकर विविंशति के रथ पर चढ गया॥११॥

निहत्य नागन्तु शरेण तेन वज्रोपमेनाद्रिवराम्बुदाभम् ।
तथाविधेनैव शरेण पार्थो दुर्य्योधनं वक्षसि निर्बिभेद १२

इस वज्रोपम बाण से पर्वत या मेघ के तुल्य हाथी को मार कर वैसे ही अन्य बाण से अर्जुन ने दुर्योधन के वक्ष-स्थल को बींध दिया ॥१२॥

ततो गजे राजनि चैव भग्ने तथा विकर्णे च सपादरक्षे ।
गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैः प्रणुन्नास्ते योधमुख्याः सहसोपजग्मुः

इस प्रकार हाथी और राजा दुर्योधन तथा पाद रक्षकों के सहित, विकर्ण के बींध लेने पर गाण्डीव से छोड़े हुए बाणों से छिन्न-भिन्न हुए, अन्य मुख्य २ योद्धा भी एक दम रण-भूमि से भाग निकले ॥१३॥

दृष्ट्वैव पार्थेन हतञ्चनागं योधांश्च सर्वान् द्रवतो निशम्य
रथं समावृत्य कुरुप्रवीरो रणात् प्रदुद्राव यतो न पार्थः ॥

अर्जुन द्वारा हाथी के मार लेने तथा सारे योद्धाओं को रण से भागे हुए देखकर कुरु-वंश-श्रेष्ठ दुर्योधन भी अपने रथ को लौटा कर उधर से भाग निकला, जिधर अर्जुन नहीं था ॥१४॥

तं भीमरूपं त्वरितं द्रवन्तं दुर्य्योधनं शत्रुसहोऽभिषङ्गात् ।
आस्फोटयद्योद्धुमनाः किरीटी बाणेन विद्धं रुधिरं वमन्तम्

शत्रु का सहने वाला, युद्ध का अभिलाषी, मुकुट-धारी, अर्जुन, भयभीत होकर भागते हुए, बाण से विद्ध, रक्त वमन करते हुए, दुर्योधन को दिखाकर अपनी भुजाओं की ताल देने लगा ॥१५॥

अर्जुन उवाच—

विहाय कीर्तिं विपुलां यशश्च युद्धात् परावृत्य पलायसे किम्
न तेऽद्य तूर्य्याणि समाहतानि तथैव राज्यादवरोपितस्य।
युधिष्ठिरस्यास्मिनिदेशकारीपार्थस्तृतीयोयुधिसंस्थितोऽस्मि
तदर्थमावृत्य मुखं प्रयच्छ नरेन्द्रवृत्तं स्मर धार्त्तराष्ट्र १७

अर्जुन बोला—हे दुर्योधन ! अपनी विपुल कीर्ति और यश को छोड़कर युद्ध से मुख मोड़े हुए कैसे भागे जा रहे हो। आज तेरे जय के बाजे कहां गए। मैं राज्य से हटाए हुए, राजा युधिष्ठिर का आज्ञाकारी सेवक, तीसरा कुन्ती का पुत्र अर्जुन, युद्ध की अभिलाषा से खड़ा हूँ। तुम युद्ध करने को लौटकर जरा अपना मुख तो दिखलाओ। हे धृतराष्ट्र-पुत्र ! तुम राजाओं के कर्तव्य को पहिचानो ॥१६-१७॥

मोघं तवेदं भुवि नामधेयं दुर्य्योधनेतीह कृतं पुरस्तात् ।
नहीह दुर्य्योधनता तवास्ति पलायमानस्य रणं विहाय ॥

हे राजन् ! तुम्हारा जो दुर्योधन नाम रखा गया है, यह जगत् में व्यर्थ हो जावेगा। दुर्योधन उसे कहते हैं, जिससे शत्रु कठिनाई से लड़ सकें। अब रण को छोड़कर भाग जाने में तुम्हारा दुर्योधनपन कैसे बचा रह सकेगा॥१८॥

न ते पुरस्तादथ पृष्ठतो वा पश्यामि दुर्य्योधन रक्षितारम् ।
अपैहि युद्धात् पुरुषप्रवीर प्राणान् प्रियान् पाण्डवतोऽद्य रक्ष

इति श्रीमहाभरत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
दुर्य्योधनपलायने पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

हे दुर्योधन! इस समय तेरे आगे या पीछे मैं किसी रक्षक को नहीं देख रहा हूं। हे पुरुष-प्रवीर! आज तुम इस युद्ध से चले जाओ और अपने प्रिय प्राणों को मुझ पाण्डु-पुत्र से बचा लो ॥१६॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में दुर्योधन के पलायन का पैंसठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥



छियासठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

आहूयमानश्च स तेन सङ्ख्ये महात्मना वै धृतराष्ट्रपुत्रः ।
निवर्तितस्तस्य गिरांकुशेन महागजो मत्त इवाङ्कुशेन ॥१

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! महावीर अर्जुन के दुर्योधन को इस प्रकार ललकारने पर युद्ध में धृतराष्ट्र-पुत्र अर्जुन के वाणी रूप अंकुश से ऐसे लौट आया—जैसे अङ्कुश से मदोन्मत्त महागज लौट आता है ॥ १ ॥

सोऽमृष्यमाणो वचसाभिमृष्टो महारथेनातिरथस्तरस्वी ।
पर्यावव्रर्ताथ रथेन वीरो भोगी यथा पादतलाभिमृष्टः ॥२॥

महारथी अर्जुन से अभिभूत हुआ, अत्यन्त वेगवान्, महारथी दुर्योधन से अर्जुन का वचन नहीं सहा गया। यह वीर पैर से कुचले हुए सर्प के सदृश अपने रथ से वापिस लौटा ॥ २ ॥

तं प्रेक्ष्य कर्णः परिवर्त्तमानं निवर्त्त्य संस्तभ्य च विद्धगात्रम्
दुर्य्योधनस्योत्तरतोऽभ्यगच्छत् पार्थं नृवीरो युधि हेममाली

सुवर्ण की माला धारी नरश्रेष्ठ, कर्ण ने बाण से विद्ध दुर्योधन को लौटता हुआ देख कर वहीं रोक दिया और वह स्वयं दुर्योधन को उत्तर दिशा से रक्षा करता हुआ अर्जुन के सामने आया ॥ ३ ॥

भीष्मस्ततः शान्तनवो विवृत्य हिरण्यकक्षस्त्वरयाभिपङ्गी ।
दुर्य्योधनं पश्चिमतोऽभ्यरक्षत् पार्थान्महाबाहुरधिज्यधन्वा ४

सुवर्ण की काञ्ची पहिने हुए, शत्रु के विजय में समर्थ, धनुष धारी, महाबाहु, शान्तनु-पुत्र, भीष्म भी, लौट कर पश्चिम की ओर से अर्जुन से दुर्योधन की रक्षा करने लगा ॥४॥

द्रोणः कृपश्चैव विविंशतिश्च दुःशासनश्चैव विवृत्य शीघ्रम् ।
सर्वे पुरस्ताद्विततेषुचापा दुर्य्योधनार्थं त्वरिताभ्युपेयुः ॥५॥

इसी तरह द्रोण, कृप, विविंशति और दुःशासन, शीघ्र लौटकर दुर्योधन की सामने से रक्षा करने को बड़ी शीघ्रता से आ खड़े हुए । इन सब ने अपने धनुष बाण खैंच रखे थे । ॥५॥

स तान्यनीकानि निवर्त्तमानान्यालोक्य पूर्णौघनिभानि पार्थः
हंसो यथा मेघमिवापतन्तं धनञ्जयः प्रत्यपतत्तरस्वी ॥६॥

नदी के पूर्ण प्रवाह की तरह इन सेनाओं को लौटती देख कर वेगशील, कुन्ती-पुत्र अर्जुन, छाये हुए मेघ में सूर्य की तरह चमकने लगा ॥६॥

ते सर्वतः सम्परिवार्य्य पार्थं शस्त्राणि दिव्यानिसमाददानाः
ववर्षुरभ्येत्य शरैः समन्तान्मेघा यथा भूधरमम्बुवर्षैः ॥७॥

ये सारे महारथी, सब ओर से अर्जुन को घेरकर दिव्य अस्त्र लिये हुए बाणों से इस तरह बरसने लगे-जैसे जलकी धाराओं से मेघ, पर्वत पर बरस पड़ता है ॥७॥

ततोऽस्त्रमस्त्रेण निवार्य्य तेषां गाण्डीवधन्वा कुरुपुङ्गवानाम्,
संमोहनं शत्रुसहोऽन्यदस्त्रं प्रादुश्चकारैन्द्रमवारणीयम् ॥८॥

गाण्डीव-धनुष-धारी, शत्रु के आक्रमण को सहन करने वाले, अर्जुन ने अपने अस्त्र से उन कुरुवंश वीरों के अस्त्रों को रोक कर उन पर नहीं रुकने वाले, इन्द्र के संमोहन अस्त्र का प्रयोग किया ॥८॥

ततो दिशश्चानुदिशो विवृत्य शरैः सुधारैर्निशितैः सुपुङ्खैः ।
गाण्डीवघोषेण मनांसि तेषां महाबलः प्रव्यथयाञ्चकार॥९॥

इसने तीखी धारवाले, तीक्ष्ण, पक्षी के पक्षों के धारी, बाणों से दिशा, विदिशाओं को व्याप्त करके अपनी गाण्डीव धनुष के घोष से उन कौरवों के मनों को व्यथित कर दिया ॥९॥

ततः पुनर्भीमरवम्प्रगृह्य दोर्भ्यां महाशङ्खमुदारघोषम् ।
व्यनादयत् स प्रदिशो दिशः खं भुवश्च पार्थो द्विषतांनिहन्ता

इसके अनन्तर शत्रु-विजयी अर्जुन भीषण शब्दकारी, दूर तक शब्द के पहुंचाने वाले, शंख को अपने हाथ में लेकर बजाने लगा, जिसके घोष से दिशा, विदिशा, आकाश और पृथिवी, शब्दायमान कर दी ॥१०॥

ते शङ्खनादेन कुरुप्रवीराः संमोहिताः पार्थसमीरितेन ।
उत्सृज्य चापानि दुरासदानि सर्वे तदा शान्तिपरा बभूवुः

अर्जुन के किये हुए शंख नाद से सारे कुरुवीर, संमोहित हो गए। ये सारे, दुर्गम धनुषों को छोड़कर वहीं चुपचाप खड़े हो गए ॥११॥

तथा विसंज्ञेषु बलेषु पार्थः स्मृत्वा च वाक्यानि तथोत्तरायाः
निर्याहि मध्यादिति मत्स्यपुत्रमुवाच यावत् कुरवो विसंज्ञाः

इस प्रकार सेना के अचेत हो जाने पर अर्जुन को उत्तरा का वचन याद आया। इसने मत्स्य-पुत्र उत्तर से कहा-अब तुम, जब तक ये कौरव अचेत हैं, तब तक तुम इनके मध्य से निकल चलो ॥१२॥

आचार्यशारद्वतयोः सुशुक्ले कर्णस्य पीतं रुचिरञ्च वस्त्रम्
द्रौणेश्च राज्ञश्च तथैव नीले वस्त्रे समादत्स्व नरप्रवीर॥१३

हे नरप्रवीर ! तुम, आचार्य द्रोण और शरद्वान् पुत्र-कृप के उज्जवल श्वेत, कर्ण के सुन्दर पीले, राजा दुर्योधन और द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के नीले वस्त्र उठा लो ॥१३॥

भीष्मस्य संज्ञान्तु तथैव मन्ये जानाति सोऽस्त्रप्रतिघातमेषः
एतस्य वाहान् कुरु सव्यतस्त्वमेवं हि यातव्यममूढसंज्ञैः१४

मुझे भीष्म की चेतना ज्यों की त्यों दिखाई देती है, क्योंकि यह इस अस्त्रका प्रतिघात (रोक थाम) जानता है। तुम, इसके अश्वों को बांई ओर छोड़ दो, क्योंकि ऐसे सावधान रहने वाले भीष्मादि के सामने को बचाकर ही निकल जाना चाहिए ॥१४॥

रश्मीन् समुत्सृज्य ततो महात्मा रथादवप्लुत्य विराटपुत्रः।
वस्त्राण्युपादाय महारथानां तूर्णं पुनः स्वं रथमारुरोह१५

महावीर, विराट पुत्र,अश्वों की रस्सी छोड़ कर रथसे नीचे कूद पड़ा और इन महारथियों के वस्त्र लेकर बहुत शीघ्र, फिर अपने रथ पर आ चढ़ा ॥१॥

ततोऽन्वशासच्चतुरः सदश्वान् पुत्रो विराटस्य हिरण्यकक्षान्
ते तद्व्यतीयुर्ध्वजिनामनीकं श्वेता वहन्तोऽर्जुनमाजिमध्यात्

सुवर्ण के भूषण धारी, चार उत्तम अश्वों को विराट-पुत्र उत्तर हांकने लगा। वे श्वेत अश्व, अर्जुन को युद्ध के मध्य से लेकर ध्वजा-धारियों की सेना को पार कर गए ॥१६॥

तथानुयान्तं पुरुषप्रवीरं भीष्मः शरैरभ्यहनत्तरस्वी।
स चापि भीष्मस्य हयान्निहत्य विव्याध पार्थो दशभिः पृषत्कैः

इस प्रकार निकल कर जाते हुए, पुरुष-श्रेष्ठ, अर्जुनको वेगवान् भीष्म ने अपने बाणों से बींधा। अर्जुन ने भी भीष्म के अश्वों को मार कर दश बाणों से भीष्म को बींध दिया ॥१७॥

ततोऽर्जुनो भीष्ममपास्य युद्धे विश्वास्य यन्तारमरिष्टधन्वा
तस्थौ विमुक्तो रथवृन्दमध्यान्मेघं विदार्येव सहस्ररश्मिः

उत्तम धनुषधारी, अर्जुन, युद्ध में भीष्म को उसी दशा में छोड़ कर और अपने सारथि को सब तरह तसल्ली कर के रथ वृन्द के मध्य से ऐसे निकल आया -जैसे मेघ को चीर कर सूर्य निकल आता है ॥१८॥

लब्ध्वा हि संज्ञां तु कुरुप्रवीरा पार्थं निरीक्ष्याथ सुरेन्द्रकल्पम्
रणे विमुक्तं स्थितमेकमाजौ तं धार्त्तराष्ट्रस्त्वरितं बभाषे १८

जब कुरुवीरों को चेत हुआ, तो उन्होंने इन्द्र के समान रथके समूह के मध्य से बाहर निकले हुए अकेले युद्ध में स्थित, अर्जुन को देखा। अब धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन भीष्मसे कहने लगा ॥१६॥

अयं कथंस्विद्भवता विमुक्तस्तथा प्रमथ्नीहि यथा न मुञ्चेत्
तमब्रवीत् शान्तनवः प्रहस्य क्व ते गता बुद्धिरभूत् क्व वीर्यम्

हे भीष्म ! क्या इस अर्जुन को तुमने छोड़ दिया है। अब तुम इनको इतना घेरो, कि यह निकल न जावें। शान्तनु-पुत्र भीष्म दुर्योधन से हंस कर बोला, कि तेरी बुद्धि और पराक्रम कहां चला गया है ॥ २० ॥

शान्तिं परांप्राप्य यदास्थितोऽभूरुत्सृज्यबाणांश्चधनुर्विचित्रम्
न त्वेष बीभत्सुरलं नृशंसं कर्त्तुं न पापोस्य मनो विशिष्टम्

हे राजन् ! जब तुम विचित्र धनुष और बाणों को छोड़ कर बड़ी शान्ति प्राप्त करके चुपचाप खड़े थे, उस समय भी इस अर्जुन ने तुम पर नीच कर्म का व्यवहार नहीं किया। यह पापी नहीं है, इसका मन बड़ा ही विशाल है ॥२१ ॥

त्रैलोक्यहेतोर्न जहेत् स्वधर्मं सर्वे न तस्मान्निहता रणेऽस्मिन्
क्षिप्रं कुरून् याहि कुरुप्रवीर विजित्य गाश्च प्रतियातु पार्थः
मा ते स्वकोऽर्थो निपतेत मोहात्तत्संविधातव्यमरिष्टबन्धम्

यह त्रिलोकी के राज्य प्राप्त होने के लोभ से भी अपने धर्म को नहीं छोड़ सकता है। इसी से इसने इस रण में तुम सबको नहीं मारा है। हे कुरुप्रवीर! अब तुम शीघ्र अपने कुरु देश को चलो और अर्जुन अपनी गायों को जीत कर लौट जावे। तेरे अज्ञान से तेरे स्वार्थ का नाश न हो जावे। अब तुम अपने कल्याण के मार्ग का खोज करो ॥ २२ ॥

वैशम्पायन उवाच—

दुर्योधनस्तस्य तु तन्निशम्य पितामहस्यात्महितं वचोऽथ
अतीतकामो युधि सोऽत्यमर्षी राजा विनिश्वस्यबभूव तूष्णीम्

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! राजा दुर्योधन, पितामह भीष्म से अपने हितकारी वचन सुनकर युद्ध के विजय की कामना छोड बैठा। यह असहनशील राजा अब लम्बी श्वास लेकर चुप हो गया ॥२३॥

तद्भीष्मवाक्यं हितमीक्ष्य सर्वे धनञ्जयाग्निश्च विवर्द्धमानम्
निवर्त्य नायैव मनो निदध्युर्दुर्योधनं ते परिरक्षमाणाः ॥

सारे कुरुयोद्धाओं ने अर्जुन रूपी अग्नि को बढते देखकर और भीष्म के हितकारी वचन सुनकर दुर्योधन की रक्षा करते हुए, लौट चलने का ही अपने मन में विचार किया ॥२४॥

तान्प्रस्थितान्प्रीतमनाः सपार्था धनञ्जयःप्रेक्ष्यकुरुप्रवीरान्
आभाषमाणोऽनुनयं मुहूर्त्तं वचोऽब्रवीत् सम्परिहृत्य भूयः

उन कुरुप्रवीरों को इस तरह जाते हुए देखकर कुन्तीपुत्र अर्जुन बड़ा प्रसन्न हुआ। इसने लौटकर थोड़ी देर बड़े नम्र वचनों का व्यवहार किया ॥२५॥

पितामहं शान्तनवञ्च वृद्धं द्रोणं गुरुञ्च प्रणिपत्य मूर्ध्ना
द्रौणिं कृपञ्चैव कुरूंश्च मान्याञ्छरैर्विचित्रैरभिवाद्य चैव ॥

शान्तनु-पुत्रने वृद्ध भीष्म पितामह, गुरुवर द्रोण को मस्तक झुका कर प्रणाम किया और द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा तथा कृप और अन्य मान्य कौरवों का भी, चरणों में छोड़े हुए विचित्र, बाणों से अभिवादन किया ॥२६॥

दुर्योधनस्योत्तमरत्नचित्रं चिच्छेद पार्थो मुकुटं शरेण ।
आमन्त्र्यवीरांश्चतथैवमान्यान्गाण्डीवघोषेणविनाद्यलोकान्

अर्जुन ने उत्तम रत्नों से जड़े हुए, दुर्योधन के मुकुट को बाण से काट डाला। इसी तरह यह गाण्डीव धनुष के घोष से सारे लोकों को शब्दायमान करके अन्य वीरों का आह्वान करने लगा ॥२७॥

स देवदत्तं सहसा विनाद्य विदार्य्य विरो द्विषतां मनांसि ।
ध्वजेन सर्वानभिभूय शत्रून् सहेमजालेन विराजमानः २८

इसने अब अचानक देवदत्त नामक शंख को बजाया, जिससे शत्रुओं के हृदय फटने लगे। यह अर्जुन, सुवर्ण के समूह से चमकती हुई, ध्वजा से सब शत्रुओं का मान मर्दन करता हुआ चलने लगा ॥२८॥

दृष्ट्वाप्रयातांस्तुकुरून्किरीटीहृष्टोऽब्रवीत्तत्रसमत्स्यपुत्रम् ।
आवर्त्तयाश्वान्पशवोजितास्तेयाताःपरेयाहिपुरंप्रहृष्टः २६

अब कौरवोंको लौटकर जाते हुए देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ, मुकुटधारी अर्जुन, बड़ी प्रसन्नता से मत्स्य-पुत्र उत्तर से कहने लगा—हे राज-पुत्र ! अब तुम अश्वों को लौटा लो। मैंने तुम्हारे पशु जीत लिए हैं। शत्रु लोग, चल दिए। अब तुम भी प्रसन्न होकर पुर को चलो ॥२६॥

देवास्तु दृष्ट्वा महदद्भुतं तद्युद्धं कुरूणां सह फाल्गुनेन।
जग्मुर्यथा स्वं भवनं प्रतीताः पार्थस्य कर्माणि विचिन्तयन्तः

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
अर्जुनयुद्धनिवर्त्तने षडधिकषष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

देवता, कौरवों के साथ अर्जुन के इस महा विचित्र घोर युद्ध को देखकर बड़ी प्रसन्नता से अर्जुन के कर्मों का ही विचार करते हुए, अपने २ भवन को चल दिए ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में अर्जुन को युद्ध से लौट आने का छियासठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

सड़सठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततो विजित्य संग्रामे कुरून स वृषभेक्षणः ।
समानयामास तदा विराटस्य धनं महत् ॥१॥

वैशम्पायन बोले-हे भारत ! वृषभ के समान विशाल नेत्र धारी, अर्जुन, संग्राम में कौरवों को जीत कर राजा विराट के बहुत से गोधन को लौटा लाया ॥१॥

गतेषु च प्रभग्नेषु धार्त्तराष्ट्रेषु सर्वशः ।
वनान्निष्क्रम्य गहनाद्बहवः कुरुसैनिकाः ॥२॥
भयात् सन्त्रस्तमनसः समाजग्मुस्ततस्ततः ।
मुक्तकेशास्त्वदृश्यन्त स्थिताः प्राञ्जलयस्तदा ॥३॥

धृतराष्ट्र के पुत्रों के अच्छी तरह लौट जाने पर बहुत कुरु-सैनिक, गहन वन से निकले और भयसे उद्विग्न चित्त वाले हो कर इधर उधर जाने लगे। इन के बाल खुले हुए थे। ये सब हाथ जोड़ कर अर्जुन के सामने आ खड़े हुए ॥२-३॥

क्षुत्पिपासापरिश्रान्ता विदेशस्था विचेतसः ।
ऊचुः प्रणम्य सम्भ्रान्ताः पार्थं किङ्करवाम ते ॥४॥

ये सारे कुरु सैनिक, भूख प्यास से थके हुए, विदेश में अचेत से हो रहे थे। ये घबराए हुए, अर्जुन को प्रणाम करके बोले-कहिए-हम आपकी क्या आज्ञा पूरी करें ॥४॥

अर्जुन उवाच—

स्वस्ति व्रजत वा भद्रं न भेतव्यं कथञ्चन ।
नाहमार्त्तान् जिघांसामि भृशमाश्वासयामि वः ॥५॥

अर्जुन ने कहा-हे सैनिको ! तुम सुख-पूर्वक जाओ-तुम्हारा कल्याण हो। तुम किसी बात से डरो नहीं। मैं व्याकुल मनुष्यों को मारना नहीं चाहता हूं। मैं तो तुम को बड़ा आश्वासन देता हूं, कि तुम धैर्य धारण करो ॥५॥

वैशम्पायन उवाच—

तस्य तामभयां वाच श्रुत्वा योधाः समागताः ।
आयुः कीर्त्तियशोदाभिस्तमाशीर्भिरनन्दयन् ॥६॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! अर्जुन के अभय दान की वाणी सुन कर योद्धा वहां आए और अर्जुन को आयु, कीर्ति, यश देने वाले आशीर्वादों से प्रसन्न करने लगे। ॥६॥

ततोऽर्जुनं नागमिव प्रभिन्नमुत्सृज्य शत्रून् विनिवर्त्तमानम् ।
विराटराष्ट्राभिमुखं प्रयान्तं नाशक्नुवंस्तं कुरवोऽभियातुम्

मद टपकाने वाले हाथी के सदृश, शत्रुओं को जीत कर लौटते हुए एवं विराट नगर की ओर चलते हुए, अर्जुन का कोई भी कौरव पीछा नहीं कर सके ॥७॥

ततः स तन्मेघमिवापतन्तं विद्राव्य पार्थः कुरुमेघसैन्यम् ।
मत्स्यस्य पुत्रं द्विषतां निहन्ता वचोऽब्रवीत् संपरिगृह्य भूयः

कुरुवीरों की मेघ के समान गिरने वाली सेना को भगा कर शत्रु-विजयी अर्जुन, मत्स्यराज के पुत्र उत्तर का आलिङ्गन कर के उस से कहने लगा ॥८॥

पितुः सकाशे तव तात सर्वे वसन्ति पार्था विदितास्तवैव ।
तान्मा प्रशंसेर्नगरं प्रविश्य भीतः प्रणश्येद्धि स मत्स्यराजः

हे तात ! तेरे पिता के पास हम सब पाण्डव, रह रहे हैं, यह तुमको ही ज्ञात हुआ है । तुम नगर में जाकर हम पाण्डवों की प्रशंसा न करना, क्योंकि तुम्हारी प्रशंसा से पाण्डवों से डर कर मत्स्यराज कहीं भाग न जावे ॥९॥

मयाजितासाध्वजिनीकुरूणांमयाचगावोविजिताद्विपद्भ्यः
पितुः सकाशं नगरं प्रविश्य त्वमात्मनः कर्म कृतं ब्रवीहि

मैंने ही कौरवों की सेना जीती है और मैंने ही शत्रुओं से गायें छीन ली हैं । नगर में जाकर पिता के पास तुम इस विजय को अपनी ही प्रकट करना ॥१०॥

उत्तर उवाच—

यत्ते कृतं कर्म न पारणीयं तत्कर्म कर्तुं मम नास्ति शक्तिः
नत्वांप्रवक्ष्यामि पितुःसकाशेयावन्नमांवक्ष्यसि सव्यसाचिन्

हे सव्यसाचिन्! तुमने जो काम कर दिखाया है, उसका पार नहीं है इस काम के कर दिखाने की मुझ में शक्ति कहां है । हां? जब तक तुम मुझ से न कहोगे, मैं तुम्हारी विजय की कथा पिताजी से नहीं कहूंगा ॥११॥

वैशम्पायन उवाच—

स शत्रुसेनामवजित्य जिष्णुराच्छिद्य सर्वञ्च धनं कुरुभ्यः।
श्मशानमागत्य पुनः शमीं तामभ्येत्य तस्थौ शरविक्षताङ्गः

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! अर्जुन, शत्रु सेना को जीतकर और सारा धन कौरवों से छीन कर उसी शमी वृक्ष के पास आ कर श्मशान में खड़ा हो गया। इस समय इसका सारा अङ्ग बाणों से छिदा हुआ था ॥१२॥

ततः स वह्निप्रतिमो महाकपिः सहेव भूतैर्दिवमुत्पपात।
तथैव माया विहिता बभूव ध्वजञ्च सैंहं युयुजे रथे पुनः ॥

इसके अनन्तर अग्नि के समान तेजस्वी, महाकपि, उन भूतों के साथ आकाशको उड़ गया। वह पूर्वोक्त माया उसी तरह लीन हो गई और उत्तर की ध्वजा का चिन्ह सिंह उसी तरह फिर रथ में लगा लिया गया ॥१३॥

विधाय तत्रायुधमाजिवर्द्धनं कुरूत्तमानामिषुधीः शरांस्तथा
प्रायात्समत्स्यो नगरं प्रहृष्टः किरीटिना सारथिना महात्मना

कुरुवंशोत्पन्न, पाण्डवों के युद्ध में विजय करने वाले. तूणीर और बाणों को उसी तरह रखकर महावीर अर्जुन सारथि के साथ वह मत्स्यराज-पुत्र उत्तर, अपने नगर में प्रविष्ट हुआ ॥१४

पार्थस्तु कृत्वा परमार्यकर्म निहत्य शत्रून् द्विषतां निहन्ता
चकार वेणीञ्च तथैव भूयो जग्राह रश्मीन् पुनरुत्तरस्य।
विवेश हृष्टो नगरं महात्मा बृहन्नलारूपमुपेत्य सारथिः॥१५॥

शत्रु-नाशक अर्जुन ने भी इस उत्तम कर्म तथा शत्रुओं का नाश करके फिर अपनी वैसी ही स्त्रियों की सी वेणी बना ली और उत्तर के अश्वों की रस्सी पकड़ ली। वीर-श्रेष्ठ अर्जुन ने फिर बृहन्नला का रूप धारण करके सारथि के रूप से नगर में प्रवेश किया॥ १५॥

वैशम्पायन उवाच—

ततो निवृत्ताः कुरवः प्रभग्ना वशमास्थिताः।
हस्तिनापुरमुद्दिश्य सर्वे दीना ययुस्तदा॥१६॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत! वहां से कौरव, शत्रु से पराजित होकर भाग कर वापिस लौटे। ये सारे हस्तिनापुर को लक्ष्य करके बड़ी उदासी से चल दिए ॥१६॥

पन्थानमुपसङ्गम्य फाल्गुनो वाक्यमब्रवीत्
राजपुत्र प्रत्यवेक्ष समानीतानि सर्वशः॥१७॥
गोकुलानि महाबाहो वीर गोपालकैः सह।
ततोऽपराह्णे यास्यामो विराटनगरं प्रति॥१८॥
आश्वास्य पाययित्वा च परिप्लाव्य च वाजिनः।

अर्जुन भी कुछ आगे मार्ग में पहुँच कर उत्तर से कहने लगा हे महाबाहो! वीर! राज-पुत्र! तुम सारे गोसमूह को ग्वालों के साथ आता देख लो। ये इस सारे गोधन को अच्छी तरह इकट्ठा करके ला रहे हैं। हम लोग, दोपहरके अनन्तर अश्वों को शान्ति देकर जल पिलाकर एवं इधर उधर टहला कर नगर को चलेंगे ।१७-१८॥

गच्छन्तु त्वरिताश्चेमे गोपालाः प्रेषितास्त्वया।
नगरे प्रियमाख्यातुं घोषयन्तु च ते जयम् ॥१६॥

तुम इन ग्वालों को भेजो, ये बड़ी शीघ्रता से नगर में इस प्रिय समाचार को सुनाने चले जावें और तुम्हारे विजय का ढ़ँढोरा पीट देंवे ॥१६॥

वैशम्पायन उवाच—

अथोत्तरस्त्वरमाणः स दूतानाज्ञापयद्वचनात् फाल्गुनस्य।
आचक्षध्वं विजयं पार्थिवस्य भग्नाः परे विजिताश्चापि गावः

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! अब उत्तर ने अर्जुन के कहने से बड़ी शीघ्रता से दूतों को आज्ञा दी, कि तुम जाकर विराटराज से अपने विजय का समाचार सुनाओ और कह दो, कि शत्रु भाग गए है ॥२०॥

इत्येवं तौ भारतमत्स्यवीरौ संमन्त्र्य सङ्गम्य ततः शमीं ताम्
अभ्येत्य भूयो विजयेन तृप्तावुत्सृष्टमारोपयतां स्म भाण्डम्

इस प्रकार विजय से सन्तुष्ट, उन दोनों भरत और मत्स्यवंशी वीरों ने एक होकर और सम्मति करके तथा शमी वृक्ष के पास जाकर पूर्व में छोड़े हुए सारे अलङ्कार धारण कर लिए २१

स शत्रुसेनामभिभूय सर्वामाच्छिद्य सर्वञ्च धनं कुरुभ्यः।
वैराटिरायान्नगरं प्रतीतो बृहन्नलासारथिना प्रवीरः ॥२२

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
उत्तरागमने सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

इसके अनन्तर बृहन्नला को सारथि बनाये हुए, वीर श्रेष्ठ, विराट-पुत्र उत्तर, बड़ी प्रसन्नता से नगर में प्रविष्ट हुआ ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में उत्तर के आगमन का सड़सठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

अड़सठवां अध्याय

शम्पायन उवाच—

धनं चापि विजित्याशु विराटो वाहिनीपतिः।
विवेश नगरं हृष्टश्चतुर्भिः पाण्डवैः सह ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! उत्तम सेना का पति, राजा विराट, विजयी होकर, चारों पाण्डवों के साथ, बड़ी प्रसन्नता से विराट नगर में प्रविष्ट हुआ ॥१॥

जित्वा त्रिगर्त्तान् संग्रामे गाश्चैवादाय सर्वशः।
अशोभत महाराज सह पार्थैः श्रिया वृतः ॥२॥

हे महाराज! संग्राम में त्रिगर्तों को जीत कर और अपनी सारी गायें लेकर विराटराज, चारों पाण्डवों के साथ राज्य-लक्ष्मी से सुशोभित हो रहा था ॥२॥

तमासनगतं वीरं सुहृदां हर्षवर्द्धनम्।
उपासाञ्चक्रिरे सर्वे सह पार्थैः परन्तपाः ॥३॥

अपने मित्रों का हर्ष बढ़ाने वाले, राज्यसिंहासन पर बैठे हुए, वीर विराट-राज की सेवा में पाण्डवों के साथ अनेक शत्रु-विजयी वीर, उपस्थित थे ॥३॥

उपतस्थुः प्रकृतयः समस्ताः ब्राह्मणैः सह ।
सभाजितः ससैन्यस्तु प्रतिनन्द्याथ मत्स्यराट् ॥४॥
विसर्जयामास तदा द्विजांश्च प्रकृतीस्तथा ।

इस राज-सभा (दरबार) में ब्राह्मणों के साथ सारी प्रजा भी उपस्थित थी । प्रजा ने सेना-सहित राजा की बड़ी पूजा की, मत्स्य-राज ने भी प्रजा का आदर करके सारी प्रजा और द्विजों को विदा किया ॥४॥

तथा स राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः ॥५॥
उत्तरं परिपप्रच्छ क्व यात इति चाब्रवीत् ।

इसके अनन्तर सेनाधीश्वर मत्स्यों के स्वामी विराट-पति ने उत्तर के विषय में पूछा, कि उत्तर कहां गया है ॥५॥

आचख्युस्तस्य तत्सर्वाः स्त्रियः कन्याश्च वेश्मनि ६
अन्तः पुरचराश्चैव कुरुभिर्गोधनं हृतम् ।

महलों में स्थित, सारी स्त्री, अन्तः पुर के अन्य वर्षवर (नपुँसक) आदि मनुष्य और कन्याओं ने कहा- कि त्रिगर्तों से छुड़ाई हुई गायों को बीच में ही कौरव छीन ले गए ॥६॥

विजेतुमभिसंरब्ध एक एवातिसाहसात् ॥७॥
बृहन्नलासहायश्च निर्गतः पृथिवीञ्जयः ।

उपायातानतिरथान् भीष्मं शान्तनवं कृपम् ।
कर्णं दुर्योधनं द्रोणं द्रोणपुत्रञ्च षड्रथान् ॥८॥

हे पृथिवीपते ! बड़े आवेश में आकर अत्यन्त साहस से बृहन्नला को साथ लेकर आये हुए रथ, में स्थित, शान्तनु-पुत्र भीष्म, कृप, कर्ण, दुर्योधन, द्रोण, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा इन छः महारथियों के विजय के लिए अकेला ही उत्तर, चला गया है ॥७-८॥

वैशम्पायन उवाच—

राजा विराटोऽथ भृशाभितप्तः श्रुत्वा सुतं त्वेकरथेन यातम्
बृहन्नलासारथिमाजिवर्द्धनं प्रोवाच सर्वानथ मन्त्रिमुख्यान्

वैशम्पायन बोले—अपने पुत्र को एक रथ से युद्ध में कुशल बृहन्नला को सारथि बनाकर गया हुआ सुनकर विराटराज, बड़ा ही चिन्तित हुआ और अपने मन्त्रिमुख्यों से बोला ॥९॥

सर्वथा कुरवस्ते हि ये चान्ये वसुधाधिपाः ।
त्रिगर्त्तान्निःसृतान् श्रुत्वा न स्थास्यन्ति कदाचन १०
तस्माद्गच्छन्तु मे योधा बलेन महता वृताः ।
उत्तरस्य परीप्सार्थं ये त्रिगर्त्तैरविक्षताः ॥११॥

ये कौरव, तथा अन्य उनके साथी राजा, त्रिगर्तों को गए हुए सुनकर कभी नहीं ठहरेंगे अर्थात् गायें लेकर चलते बनेंगे, इसलिए मेरे सारे जो त्रिगर्तों से घायल नहीं हुए हैं, योद्धा, बड़ी सेना से सुसज्जित होकर उत्तर की सहायता के लिए चल दें ॥११॥

हयांश्च नागांश्च रथांश्च शीघ्रं पदातिसङ्घांश्च ततः प्रवीरान्
प्रस्थापयामास सुतस्य हेतोर्विचित्रवस्त्राभरणोपपन्नान् १२

अश्व, हाथी, रथ, पैदलों के समूह तथा विचित्र वस्त्र और आभरणों से युक्त, उत्तम २ वीरों को अपने पुत्र की सहायता के लिए विराटराज ने भेजा ॥१२॥

एवं स राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः ।
व्यादिदेशाथ तां क्षिप्रं वाहिनीं चतुरङ्गिणीम् ॥१३॥

इस प्रकार उत्तम सेना के अधिपति, विराटपति ने अपनी चतुरङ्गिणी सेना को शीघ्र ही जाने की आज्ञा दी ॥१३॥

कुमारमाशु जानीत यदि जीवति वा न वा ।
यस्य यन्ता गतः षण्डो मन्येऽहं स न जीवति॥१४॥

तुम जाकर शीघ्र पता लगाओ, कि कुमार जीता है या नहीं, जिसका सारथि ही नपुंसक गया है, वह मेरे खयाल में अब जीवित नहीं होगा ॥१४॥

वैशम्पायन उवाच—

तमब्रवीद्धर्मराजो विहस्य विराटराजं तु भृशाभितप्तम् ।
बृहन्नलासारथिश्चेन्नरेन्द्र परे न नेष्यन्ति तवाद्य गास्ताः१५

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! अत्यन्त दुःखी हुए, विराट-राज से हंसकर धर्मराज बोला। हे नरेन्द्र ! तुम चिन्ता न करो। यदि बृहन्नला सारथि बन गया है, तो तुम्हारी गायों को कौरव नहीं ले जा सकेंगे ॥१५॥

सर्वान् महीपान् सहितान् कुरूंश्च तथैव देवासुरसिद्धयक्षान्
अलं विजेतुं समरे सुतस्ते सुरक्षितः सारथिना हि तेन १६

देव, असुर, सिद्ध, यक्ष, कौरव और उनके सहायक राजाओं को जीतने में तेरा अकेला पुत्र पर्याप्त है, क्योंकि वह इस बृहन्नला सारथि से सुरक्षित है ॥१६॥

वैशम्पायन उवाच—

अथोत्तरेण प्रहिता दूतास्ते शीघ्रगामिनः ।
विराटनगरं प्राप्य विजयं समवेदयन् ॥१७॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इसी समय उत्तर के भेजे हुए शीघ्रगामी दूत आए और उन्होंने विराट नगर में पहुँचकर उत्तर के विजय का समाचार सुनाया ॥१७॥

राज्ञस्तत्सर्वमाचख्यौ मन्त्री विजयमुत्तमम् ।
पराजयं कुरूणाञ्चाप्युपायान्तं तथोत्तरम् ॥१८॥

मन्त्री ने उत्तर का विजय और कौरवों का पराजय एवं उत्तर के लौट आने का समाचार, राजा को सुनाया ॥१८॥

सर्वा विनिर्जिता गावः कुरवश्च पराजिताः ।
उत्तरः सह सूतेन कुशली च परन्तप ॥१९॥

हे परन्तप! सारी गायें वापिस जीत लीं। कौरव पराजित हो गए और सारथि के साथ उत्तर, कुशल से है ॥१९॥

युधिष्ठिर उवाच—

दिष्ट्या विनिर्जिता गावः कुरवश्च पलायिताः ।
नाद्भुतं त्वेव मन्येऽहं यत्ते पुत्रोऽजयत् कुरून् ।
ध्रुव एव जयस्तस्य यस्य यन्ता बृहन्नला ॥२०॥

युधिष्ठिर बोले—हे विराटराज ! यह बड़े हर्ष की बात है, कि गायें जीत ली गईं और कौरव भाग गए, परन्तु मैं इस बात को अद्भुत नहीं समझता हूं, जो तुम्हारे पुत्र ने कौरवों को जीत लिया। जिसका सारथि बृहन्नला हो गया, उसकी जीत हो जाना निश्चित है ॥२०॥

वैशम्पायन उवाच—

ततो विराटो नृपतिः सम्प्रहृष्टतनूरुहः।
श्रुत्वा स विजयं तस्य कुमारस्यामितौजसः ॥२१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! अपने अत्यन्त तेजस्वी कुमार उत्तरकी इस विजय को सुनकर राजा विराट के शरीरमें आनन्द के रोमांच खड़े हो गए ॥२१॥

आच्छादयित्वा दूतांस्तान् मन्त्रिणः सोऽभ्यचोदयत्।
राजमार्गाः क्रियन्तां मे पताकाभिरलङ्कृताः ॥२२॥
पुष्पोपहारैरर्च्यन्तां देवताश्चापि सर्वशः।
कुमारा योधमुख्याश्च गणिकाश्च स्वलङ्कृताः ॥२३॥
वादित्राणि च सर्वाणि प्रत्युद्यान्तु सुतं मम।

उसने इस आनन्द के समाचार सुनाने वाले दूतों को वस्त्र आदि से सन्तुष्ट किया और मन्त्रियों से कहा—अब तुम राज मार्ग (सड़कों) को पताकाओं से अलंकृत कर दो, सब भांति से देवताओं की पुष्पों की भेंट से पूजा करो। इसी तरह कुमारों को मिष्ठान, और मुख्य २ योद्धाओं का सत्कार करो। गणिकाओं

को विभूषित करके नृत्य कराओ। अनेक भांति के बाजे मेरे पुत्र की अगवानी में बजाये जावें ॥२२-२३॥

घण्टावान्मानवः शीघ्रं मत्तमारुह्य वारणम् ॥२४॥
शृङ्गाटकेषु सर्वेषु समाख्यातु जयं मम।

कोई मनुष्य, हाथ में घण्टा लेकर और मस्त हाथी पर बैठ कर शीघ्र सारे चौराहों पर मेरे पुत्रकी विजयकी घोषणा करे।

उत्तरा च कुमारीभिर्बह्विभिः परिवारिता।
शृङ्गारवेशाभरणा प्रत्युद्यातु सुतं मम ॥२५॥

अनेक कुमारियों को साथ लेकर उज्ज्वल वस्त्रों से सजी हुई, मेरी पुत्री उत्तरा, मेरे पुत्र को मांगलिक रीति से लेने को अगवानी में जावे ॥२५॥

वैशम्पायन उवाच—

श्रुत्वा चेदं वचनं पार्थिवस्य सर्वं पुरं स्वस्तिकपाणि भूतम्
भेर्यश्च तूर्याणि च वारिजाश्च वेशैः परार्द्धैः प्रमदाःशुभाश्च

वैशम्पायन बोले-हे राजन्! राजा की इस आज्ञा को सुन कर सारा नगर कल्याणकारी दूर्वादि हाथ में लेकर तय्यार हो गया। इस समय भेरी, तुरी और शंख बजने लगे और उत्तम २ वेशों से स्त्रियां सज २ कर निकल आई ॥२६॥

तथैवसूतैः सह मागधैश्च नान्दीवाद्याः पणवास्तूर्य वाद्याः
पुराद्विराटस्य महाबलस्य प्रत्युद्ययुः पुत्रमनन्तवीर्यम् २७

सूत मागध आदि स्तुति करने वालों के साथ, आशीर्वाद का उच्चारण करने वाले जनों के सहित पणव भेरी आदि मांग-

लिक बाजे बजाने वाले लोग, अत्यन्त शक्तिशाली, महाबली विराट-पुत्र के स्वागत के लिए पुर से बाहर निकल पड़े ॥२७॥

वैशम्पायन उवाच—

प्रस्थाप्य सेनां कन्याश्च गणिकाश्च स्वलङ्कृताः ।
मत्स्यराजो महाप्राज्ञः प्रहृष्ट इदमब्रवीत् ॥२८॥

वैशम्पायन बोले-हे राजन् ! विभूषित सेना, कन्या और गणिकाओं को भेज कर महाबुद्धिमान् मत्स्यराज, बड़ी प्रसन्नता से यह वचन बोला ॥२८॥

अक्षानाहर सैरिन्ध्रि कङ्क द्यूतं प्रवर्त्तताम् ।
तं तथा वादिनं दृष्ट्वा पाण्डवः प्रत्यभाषत ॥२९॥

हे सैरिन्ध्रि ! तुम पासे उठा लाओ । हे कङ्क! तुम द्यूत का आरम्भ करो । राजा विराट को ऐसा कहते देखकर राजा युधिष्ठिर बोला ॥२९॥

न देवितव्यं हृष्टेन कितवेनेति नः श्रुतम् ।
तं त्वामद्य मुदायुक्तं नाहं देवितुमुत्सहे ।
प्रियं तु ते चिकीर्षामि वर्त्ततां यदि मन्यसे ॥३०॥

हे राजन् ! प्रसन्नता के समय छली जुआरी के साथ नहीं खेलना चाहिए, इसीलिए आज आनन्द युक्त हुए, तुमसे मैं खेलना नहीं चाहता हूं, परन्तु मैं तो तुम्हारा प्रिय करना चाहता हूँ, यदि आपकी इच्छा है, तो आप खेलने की आज्ञा दे दीजिए ॥३०॥

विराट उवाच—

स्त्रियो गावो हिरण्यञ्च यच्चान्यद्वसु किञ्चन।
न मे किञ्चित्त्वद्रक्ष्यन्ते अन्तरेणापि देवितुम् ॥३१॥

विराट बोला-स्त्रियां, गायें, सुवर्ण या जो कुछ अन्य धन है, मैं आज द्यूत को छोड़कर कुछ भी बचा कर नहीं रखूंगा ॥३१॥

कङ्क उवाच—

किन्ते द्यूतेन राजेन्द्र बहुदोषेण मानद।
देवने बहवो दोषास्तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥३२॥

कङ्क बोला-हे राजन्! बहुत दोष वाली जुआ के खेलने में क्या लाभ है। इस जुआ के खेलने में बहुत से दोष हैं, इस से तुम इस को छोड़ दो ॥३२॥

श्रुतस्ते यदि वा दृष्टः पाण्डवेयो युधिष्ठिरः।
सराष्ट्रं सुमहत् स्फीतं भ्रातृंश्च त्रिदशोपमान् ॥३३॥
राज्यं हारितवान् सर्वं तस्माद्द्यूतं न रोचये।
अथ वा मन्यसे राजन् दीव्याम यदि रोचते ॥३४॥

तुमने पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर सुना या देखा होगा। अपने विशाल राष्ट्र, देवों के सदृश भाई और राज्य को द्यूत में हार गया, इस से जुआ कभी नही खेलनी चाहिए। हे राजन्! यदि तुम्हारा बहुत ही आग्रह है, तो आओ, खेल लें ॥३३-३४॥

वैशम्पायन उवाच—

प्रवर्त्तमाने द्यूते तु मत्स्यः पाण्डवमब्रवीत्।
पश्य पुत्रेण मे युद्धे तादृशाः कुरवो जिताः ॥३५॥

वैशम्पायन बोले-हे राजेन्द्र ! द्यूत के प्रवृत्त होते ही मत्स्य-राज, पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर से बोला-तुमने देखा मेरे पुत्र ने कितने बली कौरव जीत लिए हैं ॥३५॥

ततोऽब्रवीन्महात्मा स एनं राजा युधिष्ठिरः ।
बृहन्नला यस्य यन्ता कथं स न जयेत् युधि ॥३६॥

अब इस से महात्मा युधिष्ठिर ने कहा-जिसके रथ चलाने वाली बृहन्नला बन गई, वह युद्ध में क्यों न विजयी होगा ॥३६॥

इत्युक्तः कुपितो राजा मत्स्यः पाण्डवमब्रवीत् ।
समं पुत्रेण मे षण्डं ब्रह्मबन्धो प्रशंससि ॥३७॥

यह सुन कर मत्स्यराज बड़ा कुपित हुआ और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर से बोला-हे बेसमझ ! ब्राह्मण ! क्या तू उस नपुंसक को मेरे पुत्र के साथ प्रशंसा का पात्र बनाता है ॥३६-३७॥

वाच्यावाच्यं न जानीषे नूनं मामवमन्यसे ।
भीष्मद्रोणमुखान् सर्वान् कस्मान्न स विजेष्यति ॥३८॥

तुम बोलने या नहीं बोलने की बात को पहिचानते ही नहीं हो और व्यर्थ मेरा अपमान करना चाहते हो। मेरा पुत्र बड़ा वीर है, क्या वह भीष्म, द्रोण आदि को नहीं जीत सकता है ॥

वयस्यत्वात्तु ते ब्रह्मन्नपराधमिमं क्षमे ।
नेदृशं तु पुनर्वाच्यं यदि जीवितुमिच्छसि ॥३९॥

हे ब्राह्मण! तू मेरा मित्र है, इससे इस तेरे अपराध को क्षमा करता हूं। यदि तू जीना चाहता है,तो फिर कभी ऐसा न करना।

युधिष्ठिर उवाच—

यत्र द्रोणस्तथा भीष्मो द्रौणिर्वैकर्तनः कृपः।
दुर्योधनश्च राजेन्द्रस्तथान्ये च महारथाः ॥४०॥
मरुद्गणैः परिवृतः साक्षादपि मरुत्पतिः।
कोऽन्यो बृहन्नलायास्तान् प्रतियुध्येत सङ्गतान् ॥४१॥

युधिष्ठिर बोले-जिस सेना में द्रोण, भीष्म, द्रोण पुत्र अश्वत्थामा, सूर्य पुत्र कर्ण, कृप, राजा दुर्योधन तथा अन्य ऐसे ही महारथी हैं, वीरों से युक्त, उस सेना से बृहन्नला को छोड़ कर देवों से युक्त इन्द्र भी नहीं लड़ सकता है ॥४०-४१॥

यस्य बाहुबले तुल्यो न भूतो न भविष्यति।
अतीव समरं दृष्ट्वा हर्षो यस्योपजायते ॥४२॥

जिस के बाहु बल में बराबरी करने वाला पुरुष, आज तक हुआ न आगे होगा। घोर युद्ध को देख कर तो इस के चित्त में बड़ा ही उत्साह होता है ॥४२॥

यो जयेत् सहितान् सर्वान् ससुरासुरमानवान्।
तादृशेन सहायेन कस्मात् स न विजेष्यते ॥४३॥

जो वीर, (बृहन्नला) सारे इकट्ठे हुए सुर, असुर और मानवों को जीत सकता है, उस सहायक के साथ होने पर उत्तर, क्यों न विजयी होता ॥४६॥

विराट उवाच—

बहुशः प्रतिषिद्धोऽसि न च वाचं नियच्छसि ।
नियन्ता चेन्न विद्येत न कश्चिद्धर्ममाचरेत् ॥४४॥

विराट ने कहा—हे कङ्क ! तुमको मैंने बार २ रोका, परन्तु तुम अपनी वाणी को नहीं रोकते हो। यदि कोई रोकने वाला न हो, तो कोई भी धर्म या नियमों का पालन ठीक २ नहीं करता है ॥४४॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः प्रकुपितो राजा तमक्षेणाहनद्भृशम् ।
मुखे युधिष्ठिरं कोपान्नैवमित्येव भर्त्सयन् ॥४५॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इतना कहकर राजा बड़ा ही कुपित हुआ और झुंझला कर युधिष्ठिर के मुख पर पासे दे मारे तथा कोप से युधिष्ठिर को फटकारते हुए कहा—इस तरह की बातें मेरे सामने न किया करो ॥४५॥

बलवत् प्रतिविद्धस्य नस्तः शोणितमावहत् ।
तदप्राप्तं महीं पार्थः पाणिभ्यां प्रत्यगृह्णत ॥४६॥

जोर से मारे हुए पासों के आघात से राजा युधिष्ठिर की नाकसे रक्त बहने लगा। यह रक्त पृथिवी पर अभी पड़ा नहीं था, कि युधिष्ठिर ने हाथ में ही ओट लिया ॥४६॥

अवैक्षत स धर्मात्मा द्रौपदीं पार्श्वतः स्थिताम् ।
सा ज्ञात्वा तमभिप्रायं भर्तुश्चित्तवशानुगा ॥४७॥

पात्रं गृहीत्वा सौवर्णं जलपूर्णमनिन्दिता ।
तच्छोणितं प्रत्यगृह्णाद्यद् प्रसुस्राव नस्ततः ॥४८॥

धर्मात्मा युधिष्ठिर ने पास में खड़ी हुई द्रौपदी की ओर देखा। अपने पति की इच्छा के अनुसार चलने वाली द्रौपदी उसके अभिप्राय को समझ गई। सब तरह से प्रशंसा के योग्य द्रौपदी, इस समय एक जल-पूर्ण सुवर्ण का पात्र ले आई और इसने नाकसे टपकते हुए उस रक्तको इसी पात्रमें ले लिया॥४७-४८

अथोत्तरः शुभैर्गन्धैर्माल्यैश्च विविधैस्तथा ।
अवकीर्य्यमाणः संहृष्टो नगरं स्वैरमागतः ॥४९॥
सभाज्यमानः पौरैश्च स्त्रीभिर्जानपदैस्तथा ।
आसाद्य भवनद्वारं पित्रे संप्रत्यवेदयत् ॥५०॥

इसी समय शुभ गन्ध युक्त, अनेक पुष्पों की मालाओं से अलंकृत हुआ, उत्तर, बड़ो प्रसन्नता से नगर में घुसा और महलों के द्वार पर पहुंचकर इसने अपने आने की सूचना अपने पिता को कराई ॥४९-५०॥

ततो द्वास्थः प्रविश्यैव विराटमिदमब्रवीत् ।
बृहन्नलासहायस्ते पुत्रो द्वार्य्युत्तरः स्थितः ॥५१॥

द्वारपाल भीतर जाकर राजा विराट से कहने लगा—कि बृहन्नला के साथ आपका पुत्र,उत्तर, द्वार पर खड़ा है ॥५१॥

ततो हृष्टो मत्स्यराजः क्षत्तारमिदमब्रवीत् ।
प्रवेश्यतामुभौ तूर्णं दर्शनेप्सुरहं तयोः ॥५२॥

मत्स्यराज, यह सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और चत्ता (ब्राह्मण से शूद्रो में उत्पन्न) द्वारपाल से यह वचन बोला-तुम इन दोनों को शीघ्र भीतर लाओ, मैं इनको देखना चाहता हू ॥५२॥

चत्तारं कुरुराजस्तु शनैः कर्ण उपाजपत् ।
उत्तरः प्रविशत्वेको न प्रवेश्या बृहन्नला ॥५३॥

कुरुराज युधिष्ठिर ने द्वारपाल के कर्ण में कह दिया, कि प्रथम तुम उत्तर को लाओ, अभी बृहन्नला को न लाना ॥५३॥

एतस्य हि महाबाहो व्रतमेतत् समाहितम् ।
यो ममाङ्गे व्रणं कुर्याच्छोणितं वापि दर्शयेत् ॥५४॥
अन्यत्र संग्रामगतान्न स जीवेत् कथञ्चन ।

हे महाबाहो ! बृहन्नला का यह व्रत है, कि जो मेरे अंग में व्रण कर देता है, और युद्ध छोड़कर किसी तरह रक्त निकाल देता है, वह उसको जीवित नहीं छोड़ता है ॥५४॥

न मृष्यादृशसंक्रुद्धो मां दृष्ट्वा तु सशोणितम् ।
विराटमिह सामात्यं हन्यात् सबलवाहनम् ॥५५॥

मुझे रक्त में लिप्त देखकर यह बड़ा कुपित हो उठेगा और इसको कभी सहन नहीं करेगा। इस घटना से कुपित हुआ, वह मन्त्री सेना और वाहनों के साथ विराट-राज को मारे विना नहीं छोड़ेगा ॥५५॥

वैशम्पायन उवाच—

ततो राज्ञः सुतो ज्येष्ठः प्राविशत् पृथिवीञ्जयः ।
सोऽभिवाद्य पितुः पादौ कङ्कश्चाप्युपतिष्ठत ॥५६॥

वैशम्पायन बोले—अब राजा का बड़ा पुत्र, भूमिञ्जय (उत्तर) भीतर आया। इसने पिता के चरणों और कङ्क द्विज (युधिष्ठिर) को प्रणाम किया ॥५६॥

ततो रुधिरसंयुक्तमनेकाग्रमनागसम्।
भूमावासीनमेकान्ते सैरन्ध्र्या प्रत्युपस्थितम् ॥५७॥

इसने भीतर आकर रक्त से भीगे हुए, एक ओर भूमि में बैठे हुए, द्रौपदी से सुसेवित, निरपराधी युधिष्ठिर को बड़ा व्याकुल देखा ॥५७॥

ततः पप्रच्छ पितरं त्वरमाण इवोत्तरः।
केनायं ताड़ितो राजन् केन पापमिदं कृतम् ॥५८॥

उत्तर ने बड़ी शीघ्रता से पूछा—हे राजन्! इनको किसने मारा और यह पाप किसने किया है? ॥५८॥

विराट उवाच—

मयायं ताड़ितो जिह्मो न चाप्येतावदर्हति।
प्रशस्यमाने यत् शूरे त्वयि षण्डं प्रशंसति ॥५९॥

विराट बोला—इस कुटिल को मैंने मारा है। यह इतना भी नहीं बचना चाहिए था। तुम शूरवीर की इस युद्ध के विजय के उपलक्ष में प्रशंसा करनी थी, परन्तु यह नपुंसक (बृहन्नला) की प्रशंसा कर रहा है ॥५९॥

उत्तर उवाच—

अकार्य्यं ते कृतं राजन् क्षिप्रमेव प्रसाद्यताम्।
मा त्वां ब्रह्मविषं घोरं समूलमिह निर्दहेत् ॥६०॥

उत्तर बोला—हे राजन्! आपने तो बड़ा बुरा कार्य कर डाला। इसको शीघ्र प्रसन्न करो, नहीं तो तुमको यह ब्राह्मण के अपमान का घोर विष, मूल सहित नष्ट कर डालेगा ॥६०॥

वैशम्पायन उवाच—

स पुत्रस्य वचः श्रुत्वा विराटो राष्ट्रवर्द्धनः ।
क्षमयामास कौन्तेयं भस्मछन्नमिवानलम् ॥६१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! अपने पुत्र के वचन सुनकर राष्ट के हित को अभिलाषी, विराट राज, भस्म में ढ़की आग के तुल्य कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर से क्षमा मांगने लगा ॥६१॥

क्षमयन्तन्तु राजानं पाण्डवः प्रत्यभाषत ।
चिरं क्षान्तमिदं राजन्न मन्युर्विद्यते मम ॥६२॥

क्षमा मांगते हुए विराट-राज से राजा युधिष्ठिर बोले—हे राजन्! मैंने तो पहिले से ही क्षमा कर रखा है। मुझे इस बात पर कुछ कोप ही नहीं है ॥६२॥

यदि ह्येतत् पतेद्भूमौ रुधिरं मम नस्ततः ।
स राष्ट्रस्त्वं महाराज विनश्येथा न संशयः ॥६३॥

हे महाराज! यदि मेरी नाक से यह रक्त, भूमि पर गिर जाता, तो तुम राष्ट्र सहित नष्ट हो जाते, इसमें सन्देह नहीं है।

न दूषयामि ते राजन् यद्वै हन्याददूषकम् ।
बलवन्तं प्रभुं राजन् क्षिप्रं दारुणमाप्नुयात् ॥६४॥

हे राजन् ! आपने जो मुझ दोषहीन को मार दिया, मैं इस से भी आपको दोष नहीं देता हूँ । बलवान् स्वामी का इस तरह की शीघ्रता में दारुण कर्म कर बैठना स्वाभाविक ही है ॥६४॥
वैशम्पायन उवाच--

शोणिते तु व्यतिक्रान्ते प्रविवेश बृहन्नला ।
अभिवाद्य विराटन्तु कङ्कं चाप्युपतिष्ठत ॥६५॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! जब राजा युधिष्ठिर का रक्त हटा दिया गया, तो बृहन्नला भीतर बुलाई गई । इसने विराट को प्रणाम करके कङ्क द्विज (युधिष्ठिर) को प्रणाम किया ॥६५॥

क्षामयित्वा तु कौरव्यं रणादुत्तरमागतम् ।
प्रशशंस ततो मत्स्यः शृण्वतः सव्यसाचिनः ॥६६॥

कुरु-वंश-श्रेष्ठ युधिष्ठिर से क्षमा मांगने के अनन्तर राजा विराट, रण से विजयी होकर आये हुए, उत्तर का अर्जुन के सुनते २ प्रशंसा करने लगा ॥६६॥

त्वया दायादवानस्मि कैकेयानन्दवर्द्धन ।
त्वया मे सदृशः पुत्रो न भूतो न भविष्यति ॥६७॥

अपनी माता केकैयी के आनन्द के बढ़ाने वाले ! उत्तर ! मैं तुम पुत्र से ही पुत्रवान् हूँ । तेरे समान मेरे पुत्र, न हुआ न आगे होगा ॥६७॥

पदं पदसहस्रेण यश्चरन्नापराध्नुयात ।
तेन कर्णेन ते तात कथमासीत्समागमः ॥६८॥

हे पुत्र ! जो कर्ण एक लाख लक्ष्यों पर भी बाण छोड़ने पर एक को भी विना बेंधे नहीं छोड़ सकता है, उस कर्ण से तेरा संग्राम किस तरह हुआ ॥६८॥

मनुष्यलोके सकले यस्य तुल्यो न विद्यते ।

तेन भीष्मेण ते तात कथमासीत्समागमः ॥६९॥

हे पुत्र ! इस सारे मृत्युलोकमें जिसके बराबर कोई वीर नहीं है, उस भीष्म से तेरा युद्ध किस तरह हुआ ॥६९॥

आचार्य्यो वृष्णिवीराणां कौरवाणाञ्च यो द्विजः ।

सर्वक्षत्रस्य चाचार्य्यः सर्वशस्त्रभृताम्वरः ॥७०॥

तेन द्रोणेन ते तात कथमासीत्समागमः ।

जो वृष्णि-वंश के वीर, कौरव वीर तथा प्रायः सारे ही क्षत्रियों का आचार्य है । जो सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ है, उस द्विज द्रोणाचार्य से तेरा युद्ध किस तरह हुआ ॥७०॥

आचार्य्यपुत्रो यः शूरः सर्वशस्त्रभृतामपि ॥७१॥

अश्वत्थामेति विख्यातस्तेनासीत् सङ्गरः कथम् ।

जिसका अश्वत्थामा यह नाम प्रसिद्ध है, वह आचार्य-पुत्र, सारे धनुर्धरों में शूरवीर है। तुम्हारा उनके साथ कैसे २ युद्ध हुआ ॥७१॥

रणे यं प्रेक्ष्य सीदन्ति हृतस्वा वणिजो यथा ॥७२॥

कृपेण तेन ते तात कथमासीद् समागमः ।

हे तात! जिसको रण में देख कर वीर, लुटे हुए वणिज की तरह कंपित होने लगते हैं, उस कृपाचार्य से तेरा युद्ध कैसे हुआ ॥७२॥

पर्वतं योऽभिविध्येत राजपुत्रो महेषुभिः ॥७३॥

दुर्योधनेन ते तात कथमासीत् समागमः ।

हे तात! जो राजपुत्र दुर्योधन, अपने बाणों से पर्वत को भी छिन्न भिन्न कर सकता है, उस राजा दुर्योधन के साथ तेरा किस तरह युद्ध हुआ ॥७३॥

अवगाढा द्विषन्तो मे सुखो वातोऽभिवाति माम् ॥७४॥

यस्त्वं धनमथाजैषीः कुरुभिग्रस्तमाहवे ।

तुमने मेरे शत्रुओं को जीत लिया तथा कुरुओं से छीना हुआ गोधन वापिस जीत लिया—इस समाचार से युक्त वायु मण्डल मुझे बड़ा ही सुख देता है ॥७४॥

तेषां भयाभिपन्नानां सर्वेषां बलशालिनाम् ॥७५॥

नूनं प्रकाल्य तान् सर्वांस्त्वया युधि नरर्षभ ।

आच्छिन्नं गोधनं सर्वं शार्दूलानामिवामिषम् ॥७६॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि

विराटोत्तरसंवादे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

हे नरर्षभ! सारे बलवानों को भयभीत करके और युद्ध में ललकार कर सिंह के भोजन भूत मांस के सदृश तुमने अपना गोधन वापिस छीन लिया है ॥७५-७६॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में विराट और उत्तर के सम्वाद का अड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ।

उनहत्तरवाँ अध्याय

उत्तर उवाच—

न मया निर्जिता गावो न मया निर्जिताः परे।
कृतं तत्सकलं तेन देवपुत्रेण केनचित् ॥१॥

उत्तर बोला- हे पिता ! न तो मैंने गायें जीती हैं और न मैंने शत्रुओं को ही जीता है। यह सब कुछ किसी देवपुत्र ने आकर कर दिया—तुम सच समझो ॥१॥

स हि भीतं द्रवन्तं मां देवपुत्रो न्यवारयत्।
स चातिष्ठद्रथोपस्थे वज्रसंहननो युवा ॥२॥

मैं तो इन योद्धाओं से डर कर भाग निकला था, परन्तु मुझे भी उसी देवपुत्र ने युद्ध में रोका और मेरे रथ में वही वज्र के समान शरीर धारी युवा आकर बैठ गया ॥२॥

तेन ते निर्जिता गावः कुरवश्च पराजिताः।
तस्य तत्कर्म वीरस्य न मया तात तत्कृतम् ॥३॥

उसी ने ये गायें जीती हैं और कौरवोंको पराजित किया है। हे तात ! यह कार्य उसी वीर का है, मैंने इसमें कुछ भी नहीं किया है ॥३॥

स हि शारद्वतं द्रोणं द्रोणपुत्रञ्च षड्रथान्।
सूतपुत्रञ्च भीष्मञ्च चकार विमुखान् शरैः ॥४॥

उसी देवपुत्र ने शरद्वान् पुत्र कृप, द्रोण, अश्वत्थामा कर्ण, भीष्म, और राजा दुर्योधन इन छः महारथियों को अपने बाण से पराजित किया है ॥४॥

दुर्योधनं विकर्णञ्च स नागमिव यूथपम् ।
अभग्नमब्रवीद्भीतं राजपुत्रं महाबलः ।५।।
न हास्तिनपुरे त्राणं तव पश्यामि किञ्चन ।
व्यायासेन परीप्सस्व जीवितं कौरवात्मज ।।६।।

उस महाबली देवपुत्र ने यूथपति हाथी की तरह भागते हुए, भयभीत, राजपुत्र, दुर्योधन और विकर्ण से कहा था, हे कौरवात्मज ! अब तुम्हारी रक्षा करने वाला हस्तिनापुर में भी कोई मुझे दिखाई नहीं देता है। तुम किसी अन्य देश में चले जाओ, जिससे तुम्हारा जीवन बच जावे ।।५-६।।

न मोक्ष्यसे पलायंस्त्वं राजन् युद्धे मनः कुरु ।
पृथिवीं भोक्ष्यसे जित्वा हतो वा स्वर्गमाप्स्यसि ।७।

हे राजन्! दुर्योधन ! अब भागने से भी तुम्हारे प्राण नहीं बचेंगे, इससे तुम अपना मन युद्ध में लगाओ । यदि तुम विजयी हो गए, तो पृथिवी को भोगोगे और मर गए, तो स्वर्ग प्राप्त कर लोगे ।। ७ ।।

स निवृत्तो नरव्याघ्रो मुञ्चन् वज्रनिभान् शरान् ।
सचिवैः संवृतो राजा रथे नाग इव श्वसन् ।।८।।

इतना सुनकर अपने सचिवों से युक्त, वीर-श्रेष्ठ राजा दुर्योधन, लौटा और वज्र के तुल्य, बाणों को छोड़ने लगा। वह रथ में, क्रुद्ध हुए, सर्प की तरह श्वांस ले रहा था ।। ८ ।।

तं दृष्ट्वा रोमहर्षोऽभूदूरुकम्पश्च मारिष ।
स तत्र सिंहसङ्काशमनीकं व्यधमच्छरैः ।।९।।

हे माननीय ! इस समय राजा दुर्योधन को देख कर मेरे रोमाञ्च खड़े हुए और कांपने लगे, परन्तु उस देवपुत्र ने सिंह के सदृश पराक्रमी उस सेनाको भी बाणों से छिन्न भिन्न कर दिया।

तत् प्रणुद्य रथानीकं सिंहसंहननो युवा ।
कुरूंस्तान् प्रहसन् राजन् संस्थितान् हृतवाससः १०

हे राजन् ! सिंह के समान शरीरधारी इसी युवा देवपुत्र ने इन रथों की सेना को छिन्न भिन्न करके हंसते २ सारे संमोहित से खड़े हुए कुरु महारथियों के कपड़े उतार लिए ॥१०॥

एकेन तेन वीरेण षड्रथाः परिनिर्जिताः ।
शार्दूलेनेव मत्तेन यथा वनचरा मृगाः ॥११॥

इस अकेले वीर ने ही, शक्तिशाली सिंह-जैसे वन में घूमने वाले जन्तुओंको मार लेता है-ऐसे ही छःओं महारथियों को मार भगाया ॥११॥

विराट उवाच—

क स वीरो महाबाहुर्देवपुत्रो महायशाः ।
यो मे धनमथाजैषीत् कुरुभिर्ग्रस्तमाहवे ॥१२॥

विराट ने कहा- हे पुत्र ! वह महायशस्वी, वीर देवपुत्र कहां है, जिसने कौरवों द्वारा अपहरण किये हुए मेरे गोधन को उनसे युद्ध में वापिस छीन लिया है ? ॥१२॥

इच्छामि तमहं द्रष्टुमर्चितुञ्च महाबलम् ।
येन मे त्वञ्च गावश्च रक्षिता देवसूनुना ॥१३॥

मैं उस देवपुत्र से मिलना और उसकी पूजा करना चाहता हूं, जिसने मेरी गायें और तुम्हारी रक्षा की है ॥१३॥

उत्तर उवाच—

अन्तर्धानं गतस्तत्र देवपुत्रो महाबलः ।

स तु श्वो वा परश्वो वा मन्ये प्रादुर्भविष्यति ॥१४॥

उत्तर ने उत्तर दिया-हे पिता! वह महाबली देवपुत्र, उस समय वहीं अलक्षित हो गया-परन्तु कल या परसों वह फिर यहां प्रकट हो जावेगा ॥१४॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमाख्यायमानन्तु छन्नं सत्रेण पाण्डवम् ।

वसन्तं तत्र नाज्ञासीद्विराटो वाहिनीपतिः ॥१५॥

वैशम्पायन बोले- हे राजन्! उत्तरके इस प्रकार कह देने पर छुपकर रहते हुए अर्जुन को विशाल सेना का अधिपति, विराट-राज, जान नहीं सका ॥१५॥

ततः पार्थोऽभ्यनुज्ञातो विराटेन महात्मना ।

प्रददौ तानि वासांसि विराटदुहितुः स्वयम् ॥१६॥

इसके अनन्तर महात्मा विराटराज ने बृहन्नला को जाने की आज्ञा दी। बृहन्नला ने कौरवों के वे वस्त्र, स्वयं विराटपुत्री उत्तरा को दिए ॥१६॥

उत्तरा तु महार्हाणि विविधानि नवानि च ।

प्रतिगृह्याभवत् प्रीता तानि वासांसि भाविनी ॥१७॥

महाभागा उत्तरा भी बड़े २ मूल्य वाले अनेक नये२ कौरवों के उन वस्त्रों को लेकर बड़ी प्रसन्न हुई ॥१७॥

मन्त्रयित्वा तु कौन्तेय उत्तरेण रहस्तदा।
इति कर्तव्यतां सर्वां राजन् पार्थे युधिष्ठिरे ॥१८॥
ततस्तथा तद्व्यदधाद्यथावत् पुरुषर्षभ।
सह पुत्रेण मत्स्यस्य प्रहृष्टा भरतर्षभाः ॥१९॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि विराटोत्तरसंवादे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः समाप्तश्च गोहरणपर्व

हे जनमेजय! कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने एकान्त में उत्तर से मन्त्रणा (सलाह) करके राजा युधिष्ठिरके साथ जो २ व्यवहार करना चाहिए, निश्चित कर दिया। हे पुरुषर्षभ! उत्तर ने राजा युधिष्ठिर को उचित आसन आदि पर बैठने की सारी व्यवस्था उसी समय ठीक कर दी। अब मत्स्यराज के पुत्र उत्तर के साथ भरत-वंश-श्रेष्ठ पाण्डव, बड़ी, प्रसन्नता से रहने लगे ॥१८-१९॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में विराट और उत्तर के सम्वाद का उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ और यहीं पर गोहरणपर्व समाप्त हो गया।



अथ वैवाहिकपर्व
सत्तरहवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततस्तृतीये दिवसे भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ।
स्नाताः शुक्लाम्बरधराः समये चरितव्रताः ॥१॥
युधिष्ठिरं पुरस्कृत्य सर्वाभरणभूषिताः ।
द्वारि मत्ताः यथा नागा भ्राजमाना महारथाः ॥२॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इसके अनन्तर तीसरे दिन, पांचों पाण्डवों ने समय पर अपने व्रत को समाप्त करके स्नान किया और शुक्ल वस्त्र धारण किए। इन्होंने सारे भूषण पहिन रखे थे। ये राजा युधिष्ठिर को आगे करके विराटराज की राज-सभाके द्वार पर पहुंचे। ये महारथी। द्वार पर ऐसे देदीप्यमान हो रहे थे-जैसे कोई मस्त हाथी झूम रहे हो ॥१-२॥

विराटस्य सभां गत्वा भूमिपालासनेष्वथ ।
निषेदुः पावकप्रख्याः सर्वे धिष्ण्येष्विवाग्नयः ॥३॥

अग्नि के समान तेजस्वी, पाण्डव, राजा विराट की सभा में जाकर राजाओं के आसनों पर बैठ गए। जैसे अग्नि, अपने २ मण्डप में चमकती है, वैसे ही ये भी अपने २ आसनों पर चमक रहे थे ॥३॥

तेषु तत्रोपविष्टेषु विराटः पृथिवीपतिः ।
आजगाम सभां कर्त्तुं राजकार्याणि सर्वशः ॥४॥

इन सब के बैठ जाने पर पृथिवीपति विराट भी राज-कार्य करने को सभा में आया ॥४॥

श्रीमतः पाण्डवान् दृष्ट्वा ज्वलतः पावकानिव ।
मुहूर्तमिव च ध्यात्वा सरोषः पृथिवीपतिः ॥५॥
अथ मत्स्योऽब्रवीत् कङ्कं देवरूपमवस्थितम् ।
मरुद्गणैरुपासीनं त्रिदशानामिवेश्वरम् ॥६॥

पृथिवीपति, मत्स्यराज राजा विराट ने अग्नि के समान देदीप्यमान, कान्ति-धारी पाण्डवों का देख कर थोड़ी देर सोचा और फिर रोष में भर कर देवों के समान रूपधारी कङ्क द्विज (युधिष्ठिर) से कहा—जो देवों से सुसेवित त्रिदशेश्वर इन्द्र की तरह आसन पर बैठा था ॥५-६॥

स किलाक्षातिवापस्त्वं सभास्तारो मया वृतः ।
अथ राजासने कस्मादुपविष्टस्त्वलङ्कृतः ॥७॥

हे कङ्क ! मैंने तुझे पासे फैंकने के स्थान पर सभासद बनाया था । आज तू वस्त्र भूषण पहिनकर राजाओं के आसन पर कैसे बैठ गया है ॥७॥

वैशम्पायन उवाच—

परिहासेप्सया वाक्यं विराटस्य निशम्य तत् ।
स्मयमानोऽर्जुनो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥८॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! विराट के ये वचन सुनकर हँसी करने की अभिलाषा से मुस्कुराते हुए, अर्जुन ने यह वाक्य कहा ॥८॥

अर्जुन उवाच—

इन्द्रस्यार्द्धासनं राजन्नयमारोढुमर्हति ।
ब्रह्मण्यः श्रुतवांस्त्यागी यज्ञशीलो दृढव्रतः ॥९॥

हे राजन् ! यह कङ्क तो इन्द्र के आसन पर बैठने के योग्य है। यह बड़ा ब्राह्मण सेवक, वेद का ज्ञाता, त्यागो, यज्ञ करने वाला, दृढ़ प्रतिज्ञा-धारी है ॥९॥

एष विग्रहवान् धर्म एष वीर्यवतामवरः ।
एष बुद्ध्याधिको लोके तपसाञ्च परायणः ॥१०॥

यह तो शरीर धारी धर्म है तथा पराक्रमी वीरों में सर्व-श्रेष्ठ है। यह सब से अधिक बुद्धिमान् और तप में संलग्न है ॥१०॥

एषोऽस्त्रविविधं वेत्ति त्रैलोक्ये सचराचरे ।
न चैवान्यः पुमान् वेत्ति न वेत्स्यति कदाचन ॥११

ये ऐसे अनेक अस्त्र जानते हैं, जिनको इस चराचर त्रिलोकी में अन्य कोई पुरुष नहीं जानता है और न आगे जान सकेगा ॥

न देवा नासुराः केचिन्न मनुष्या न राक्षसाः ।
गन्धर्वयक्षप्रवरा सकिन्नरमहोरगाः ॥१२॥

इसके बराबर वीर, देव, असुर, मनुष्य, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष-किन्नर, महोरग आदि में कोई भी नहीं है ॥१२॥

दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः ।
पाण्डवानामतिरथो यज्वा धर्मपरो वशी ॥१३॥
महर्षिकल्पो राजर्षिः सर्वलोकेषु विश्रुतः ।
बलवान् धृतिमान् दक्ष सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥१४॥

यह महाभाग, बड़ा दीर्घदर्शी, महातेजस्वी, पुर और देश का प्रिय, पाण्डवों में महारथी, यज्ञशील, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, राजर्षि होकर भी महर्षि है, जो सब लोकों में विख्यात है, यह बड़ा बलवान्, धैर्यशील, दक्ष, सत्यवादी और जितेन्द्रिय है ॥ १३-१४ ॥

धनैश्च सञ्चयैश्चैव शक्रवैश्रवणोपमः ।
यथा मनुर्महातेजा लोकानां परिरक्षिता ॥१५॥

यह सञ्चित धन में इन्द्र और कुबेर के तुल्य ऐश्वर्यशाली है। यह महातेजस्वी, मनु के समान लोकों का रक्षक है॥ १५ ॥

एवमेष महातेजाः प्रजानुग्रहकारकः ।
अयं कुरूणामृषभो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥१६॥

यह महाप्रतापी, प्रजा की बड़ी अच्छी तरह रक्षा करता है। यह कुरु-वंश-श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर है ॥१६॥

अस्य कीर्त्तिः स्थिता लोके सूर्य्यस्येवोद्यतः प्रभा ।
संसरन्ति दिशः सर्वा यशसोऽस्य इवांशवः ॥१७॥
उदितस्येव सूर्य्यस्य तेजसोऽनुगभस्तयः ।

संसार में इसकी कीर्ति उदय होते हुए सूर्य के समान दीप्ति-मती है। सारी दिशाओं में इसके यश की किरण ऐसे फैलती हैं, जैसे उदित होते हुए सूर्य की चमकीली किरण फैलजाती हैं १७

एनं दशसहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥१८॥
अन्वयुः पृष्ठतो राजन् यावदध्यावसत् कुरून् ।

हे राजन्! जब ये युधिष्ठिर, कुरुदेश के सिंहासन पर बैठे थे, उस समय दश हजार मदोन्मत्त हाथी, इसके पीछे २ चलते थे ॥ १८ ॥

त्रिंशदेवं सहस्राणि रथाः काञ्चनमालिनः ॥१९॥
सदश्वैरुपसम्पन्नाः पृष्ठतोऽनुययुस्तदा ।

इसी तरह तीस हजार सुवर्ण की मालाधारी, उत्तम २ अश्वों से युक्त रथ, पीछे पीछे चलते थे ॥ १९ ॥

एनमष्टशताः सूताः सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥२०॥
अब्रुवन्मागधैः सार्द्धं पुरा शक्रमिवर्षयः ।

पूर्वकाल में इन्द्र की स्तुति करने वाले ऋषियों की भांति, उत्तम उत्तम मणियों से जड़े हुए, कुण्डल पहने हुए, मागध बन्दियों के साथ सूत इसके यश का वर्णन करते रहते थे ॥ २० ॥

इमं नित्यमुपासन्त कुरवः किङ्करा यथा ॥२१॥
सर्वे च राजन् राजानो धनेश्वरमिवामराः ।

हे राजन्! अनेक कुरुवंशोत्पन्न वीर, और अनेक राजा, महाराज, धनेश्वर कुवेर की सेवा में देवों की तरह इन राजा युधिष्ठिर की सेवा में खड़े रहते थे ॥ २१ ॥

एष सर्वान् महीपालान् करदान् समकारयत् ॥२२॥
वैश्यानिव महाभागा विवशान् स्ववशानपि ।

इस महाभाग ने सारे राजाओं को वैश्यों की तरह कर दाता बना लिया है। इसने बहुत को प्रेम से और बहुत से राजाओं को बल से वश में किया है ॥ २२ ॥

अष्टाशीतिसहस्राणि स्नातकानां महात्मनाम् ॥२३॥
उपजीवन्ति राजानमेनं सुचरितव्रतम् ।

इस चरित्रशाली राजा युधिष्ठिर के आश्रय से अट्ठासी हजार महात्मा, स्नातक, अपनी वृत्ति प्राप्त करके निर्वाह करते हैं ॥ २३ ॥

एष वृद्धाननाथांश्च पङ्गूनन्धांश्च मानवान् ॥२४॥
पुत्रवत् पालयामास प्रजा धर्मेण वै विभुः ।

यह शक्तिशाली राजा, वृद्ध, अनाथ, लगड़े,लूले-अन्धे मनुष्यों को तथा प्रजा को पुत्र की तरह पालता रहता है ॥२४॥

एष धर्मे दमे चैव क्रोधे चापि जितव्रतः ॥२५॥
महाप्रसादो ब्रह्मण्यः सत्यवादी च पार्थिवः ।

यह धर्म, मन और इन्द्रियों के विजय, क्रोध के जीतने में सर्वदा तत्पर रहता है । इसका अनुग्रह बड़ा फल लाता है । यह ब्राह्मण का रक्षक, सत्यवादी राजा है ॥२५॥

श्रीप्रतापेन चैतस्य तप्यते स सुयोधनः ॥२६॥
सगणः सह कर्णेन सौबलेनापि वा विभुः ।

इसी की राज्य-लक्ष्मी के प्रताप से बड़ा शक्तिशाली राजा दुर्योधन भी कर्ण और सुबल-पुत्र शकुनि तथा सारे अपने अन्य वीरों के साथ सन्तापित रहता है ॥२६॥

न शक्यन्तेऽस्य गुणाः प्रसङ्ख्यातुं नरेश्वर॥२७॥
एष धर्मपरो नित्यमानृशंस्यश्च पाण्डवः ।

हे नरेश्वर ! इस राजा के गुण गिने नहीं जा सकते हैं । यह पाण्डु-पुत्र, धर्मराज युधिष्ठिर, बड़ा धर्म परायण और उदार है ॥२७॥

एवमुक्तो महाराजः पाण्डवः पार्थिवर्षभः ।
कथं नार्हति राजार्हमासनं पृथिवीपते ॥२८॥
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि वैवाहिकपर्वणि
पाण्डवप्रकाशो सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

हे पृथिवीपते ! राजाओं में श्रेष्ठ, इन गुणों से युक्त, महाराज युधिष्ठिर भी, क्या राजाओं के इस आसन पर नहीं बैठ सकते हैं? ॥२८॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत वैवाहिकपर्व में पाण्डवों के प्रकट हो जाने का सत्तरहवां अध्याय समाप्त हुआ



इकहत्तरवां अध्याय

विराट उवाच—

यद्येष राजा कौरव्यः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
कतमोऽस्यार्जुनो भ्राता भीमश्च कतमो बली ॥१॥
नकुलः सहदेवो वा द्रौपदी वा यशस्विनी ।
यदा द्यूतजिताः पार्था न प्राज्ञायन्त ते क्वचित् ॥२॥

विराट कहने लगा-हे महाभाग ! यदि यह कुरु-वंश-श्रेष्ठ, कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर है, तो इनका भाई अर्जुन कौनसा है और महाबली भीम कौन सा है । नकुल सहदेव तथा यशस्विनी द्रौपदी कौनसी है ? इनको तो द्यूत में पराजित होकर निकले हुए पाण्डवोंका उस दिन से कोई समाचार मिला ही नहीं है ॥ १-२॥

अर्जुन उवाच—

य एष बल्लवो ब्रूते सूदस्तव नराधिप ।
एष भीम महाराज भीमवेगपराक्रमः ॥३॥
एष क्रोधवशान् हत्वा पर्वते गन्धमादने ।
सौगन्धिकानि दिव्यानि कृष्णार्थे समुपाहरत् ॥४॥
गन्धर्व एष वै हन्ता कीचकानां दुरात्मनाम् ।
व्याघ्रानृक्षान् वराहांश्च हतवान् स्त्रीपुरे तव ॥५॥

अर्जुन ने कहा-हे नराधिप ! महाराज ! जो आपका रसोइया बल्लव है, यही भीषण वेग और पराक्रम-धारी भीम है । यही क्रोध में भरे हुए, गन्धमादन पर्वत पर

देव दानवों को मारकर द्रौपदी के लिए दिव्य सुगन्धि से युक्त कमल पुष्पों को लाया था। यह वही गन्धर्व है, जिसने कीचकोंको मारा है,तथा यह मल्ल-युद्ध(कुश्ती)में स्त्रियोंके सामने व्याघ्र, रीछ, वराह आदि भयंकर जीवोंको मारता रहा है॥३-५॥

यश्चासीदश्वबन्धस्ते नकुलोऽयं परन्तपः।
गोसङ्ख्यः सहदेवश्च माद्रीपुत्रौ महारथौ ॥६॥

जो आपकी अश्व-शाला का अध्यक्ष है, यह परन्तप नकुल और जो गौओं की संख्या का अध्यक्ष है, यह सहदेव है ॥ ६ ॥

शृङ्गारवेशाभरणौ रूपवन्तौ यशस्विनौ।
महारथसहस्राणां समर्थौ भरतर्षभौ ॥७॥

ये दोनों महारथी माद्री देवी के पुत्र हैं। ये भरत-वंश-श्रेष्ठ यशस्वी नकुल और सहदेव, शृंगार,वेश और आभूषणधारी बड़े ही रूपवान है। ये सहस्रों महारथियां में अपने पराक्रम के दिखाने में समर्थ हैं ॥ ६-७ ॥

एषा पद्मपलाशाक्षी सुमध्या चारुहासिनी।
सैरिन्ध्री द्रौपदी राजन् यस्यार्थे कीचका हताः ॥८॥

यह कमल के पत्र के समान नेत्रों वाली, सुन्दर कटिधारिणी और सुन्दर हंसने वाली, सैरिंध्री द्रौपदी है, जिसके कारण सारे कीचक मारे गए हैं ॥ ८ ॥

अर्जुनोऽहं महाराज व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः।
भीमादवरजः पार्थो यमाभ्यां चापि पूर्वजः ॥९॥

हे महाराज ! मेरा नाम अर्जुन है। कभी मेरा नाम तुम्हारे कानों में अवश्य पड़ा होगा। मैं भीम से छोटा और नकुल, सहदेव से बड़ा पाण्डु-पुत्र हूं ॥ ६ ॥

उषिता स्मो महाराज सुखं तव निवेशने।
अज्ञातवासमुषिता गर्भवास इव प्रजाः ॥१०॥

हे महाराज! हम आपके भवन पर बड़े सुख से रहे हैं। जैसे संसार का प्रत्येक मनुष्य गर्भ में छुपा २ निवास करता है, वैसे ही छुपकर हमने भी तुम्हारे यहां निवास किया है ॥ ० ॥

वैशम्पायन उवाच—

यदार्जुनेन ते वीराः कथिताः पञ्च पाण्डवाः।
तदार्जुनस्य वैराटिः कथयामास विक्रमम्।
पुनरेव च तान् पार्थान् दर्शयामास चोत्तरः ॥११।

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! ज्यों ही अर्जुन ने पांचों वीर पाण्डवों का परिचय दिया, त्यों ही विराट-पुत्र उत्तरने अर्जुनका पराक्रम कहना आरम्भ किया और यह फिर पाण्डवों की प्रशंसा में उनका परिचय देने लगा ॥ ११ ॥

उत्तर उवाच—

य एष जाम्बूनदशुद्धगौरतनुर्महान् सिंह इव प्रवृद्धः।
प्रचण्डघोणः पृथुदीर्घनेत्रस्ताम्रायताक्षः कुरुराज एषः १२

उत्तर ने कहा—यह जो शुद्ध सुवर्ण के सदृश गोर शरीर धारी, बड़े सिंह के समान विशालकाय, ऊंची नासिका वाला, मोटे और बड़े नेत्रों से सुन्दर, लाल तेजस्वी लम्बे चौड़े चक्षुओं से संयुक्त है, यह कुरुराज युधिष्ठिर है ॥१२॥

अयं पुनर्मत्तगजेन्द्रगामी प्रतप्तचामीकरशुद्ध गौरः ।
पृथ्वायतांसो गुरुदीर्घबाहुर्वृकोदरः पश्यत पश्यतैनम् १३

हे राजन ! मदोन्मत्त हाथी की तरह चलने वाला, तपे हुए सुवर्ण के समान शुद्ध गौर वर्णधारी, मोटे और लम्बे कंधों वाला, भारी और दीर्घ भुजाधारी है, यह वृकोदर भीम है। आप जरा इसको देखो तो सही ॥१३॥

यस्त्वेष पार्श्वेऽस्यमहाधनुष्मान् श्यामोयुवावारणयूथपोपमः
सिंहोन्नतांसो गजराजगामीपद्मायताक्षोऽर्जुन एष वीरः१४

जो इसके पास में महाधनुर्धर, श्याम, युवा, यूथपति गजराज के समान विक्रमी, सिंह के सदृश कंधों तथा हाथी की तरह गति वाला, कमल के तुल्य नेत्रधारी वीर अर्जुन है ॥

राज्ञः समीपे पुरुषोत्तमौ तु यमाविमौ विष्णुमहेन्द्रकल्पौ ।
मनुष्यलोके सकले समोऽस्ति ययोर्न रूपे न बले न शीले

राजा युधिष्ठिर के पास में जो ये दोनों पुरुष-श्रेष्ठ, विष्णु और इन्द्र के तुल्य पराक्रमी खड़े हैं। जिनके रूप, बल और शील में बराबरी करने वाला संसार में कोई नहीं है, ये नकुल और सहदेव हैं ॥१५॥

आभ्यांन्तु पार्श्वेकनकोत्तमाङ्गी येषा प्रभा मूर्त्तिमतीव गौरी
नीलोत्पलाभा सुरदेवतेव कृष्णा स्थिता मूर्त्तिमतीव लक्ष्मीः

इनके पास में ही कनक के समान उत्तम अङ्गधारिणी, जो मूर्ति-मती गौरी के सदृश दिव्य ज्योति है तथा नीले कमल की

सी कान्तिवाली, देवकन्या सी साक्षात् लक्ष्मी दिखाई दे रही है, यह द्रौपदी है ॥१६॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं निवेद्य तान् पार्थान् पाण्डवान् पञ्च भूपतेः।
ततोऽर्जुनस्य वैराटिः कथयामास विक्रमम् ॥१७॥

वैशम्पायन बोले-इस प्रकार पांचों पाण्डवों का राजा विराट को परिचय दे कर अब विराट-पुत्र वीर-श्रेष्ठ उत्तर महाबली अर्जुन का विक्रम सुना ने लगा ॥१७॥

उत्तर उवाच—

अयं स द्विषतां हन्ता मृगाणामिव केशरी।
अचरद्रथवृन्देषु निघ्नंस्तांस्तान् वरान् रथान् ॥१८॥

यह अर्जुन, मृगों को सिंह के सदृश शत्रुओं का नाशकारी है। यह उत्तम २ रथों का चूरा करता हुआ, रथ समूह में निर्भीक घूमता है ॥१८॥

अनेन विद्धो मातङ्गो महानेकेषुणा हतः।
सुवर्णकक्ष्यः संग्रामे दन्ताभ्यामगमन्महीम् ॥१९॥

इसी ने मदोन्मत्त हाथी को एक बाण से ही बींध लिया, जो सुवर्ण की शृङ्खला धारी हाथी युद्ध में दांतों के बल, पृथिवी में औंधे मुंह गिर पड़ा ॥१९॥

अनेन विजिता गावो जिताश्च कुरवो युधि।
अस्य शङ्खप्रणादेन कर्णौ मे बधिरीकृतौ ॥२०॥

इसने ही गायें जीती और इसी ने युद्ध में कौरव जीते हैं। इसी के शंख-ध्वनि से मेरे कान बहरे हो गए ॥२०॥

वैशम्पायन उवाच—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मत्स्यराजः प्रतापवान् ।
उत्तरं प्रत्युवाचेममभिपन्नो युधिष्ठिरे ॥२१॥
प्रसादनं पाण्डवस्य प्राप्तकालं हि रोचये ।
उत्तराञ्च ऽयच्छामि पार्थाय यदि मन्यसे ॥२२॥

वैशम्पायन बोले—उत्तर के वचन सुनकर प्रतापी, मत्स्यराज, उत्तर से कहने लगा, कि मैंने तो राजा युधिष्ठिर का बड़ा अपराध किया। मैं अब राजा युधिष्ठिर को प्रसन्न करना चाहता हूँ। यह समय प्रसन्न करने का ही है। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो अर्जुन के लिए उत्तरा को प्रदान कर दूं ॥२२॥

उत्तर उवाच—

आर्य्याः पूज्याश्च मान्याश्च प्राप्तकाल च मे मतम् ।
पूज्यन्तां पूजनार्हाश्च महाभागाश्च पाण्डवाः ॥२३॥

उत्तर ने कहा—ये पाण्डव, बड़े श्रेष्ठ, पूज्य और मान्य हैं। मेरी सम्मति में इनके सत्कार का यही समय है। ये महाभाग, पाण्डव, पूजा के योग्य हैं, तुम इनकी पूजा करो ॥२३॥

विराट उवाच—

अहं खल्वपि संग्रामे शत्रूणां वशमागतः ।
मोक्षितो भीमसेनेन गावश्चापि जितास्तथा ॥२४॥
एतेषां बाहुवीर्य्येण अस्माकञ्च जयो मृधे ।

विराट बोला—मैं भी संग्राम में शत्रुओं के वश में हो गया था। उस समय मुझे भी भीमसेन ने ही छुड़ाया और त्रिगर्तों से गायें छीनी। इस युद्ध में पाण्डवों के बाहुवीर्य से ही हमारा विजय हुआ है ॥२४॥

एवं सर्वे सहामात्याः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥२५॥
प्रसादयामो भद्रन्ते सानुजं पाण्डवर्षभम् ।

अब हम सब मन्त्रियों के साथ कुन्तीपुत्र, पाण्डु-श्रेष्ठ, राजा युधिष्ठिर को भाइयों के सहित, प्रसन्न करना चाहते हैं ॥२५॥

यदस्माभिरजानद्भिः किञ्चिदुक्तो नराधिप ।
क्षन्तुमर्हति तत्सर्वं धर्मात्मा ह्येष पाण्डवः ॥२६॥

हे नराधिप! जो हमने आपके बिना जाने कुछ कह दिया, आप उसको सब क्षमा करें, क्योंकि आप धर्मात्मा पाण्डु-पुत्र हैं ॥२६॥

वैशम्पायन उवाच—

ततो विराटः प्रथमं प्रहृष्टः समेत्य राजा समयञ्चकार
राज्यञ्च सर्वं विससर्ज तस्मै सदण्डकोषं सपुरं महात्मा

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! राजा विराट ने अत्यन्त प्रसन्न होकर और अपने पुत्र के साथ सम्मति करके पाण्डवों के प्रसन्न करने का निश्चय किया। इसके अनन्तर महात्मा विराटराज ने राज्य, कोष, दण्डाधिकार, राजधानी सब कुछ राजा युधिष्ठिर के समर्पण कर दिया ॥२७॥

पाण्डवांश्च ततः सर्वान् मत्स्यराजः प्रतापवान् ।
धनञ्जयं पुरस्कृत्य दिष्ट्यादिष्ट्येति चाब्रवीत् ॥२८॥

प्रतापी मत्स्यराज ने अर्जुन को प्रधान करके सारे पाण्डवों को बहुत ही अधिक धन्यवाद दिया ॥२८॥

समुपाघ्राय मूर्द्धानं संश्लिष्य च पुनः पुनः ।
युधिष्ठिरश्च भीमश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥२९॥
नातृप्यद्दर्शने तेषां विराटो वाहिनीपतिः ।
स प्रीयमाणो राजानं युधिष्ठिरमथाब्रवीत् ॥३०॥

उत्तम सेना के अधिपति विराट-राज, इन पाण्डवोंके मस्तक सूँघ कर पाण्डु-पुत्र, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, माद्री-पुत्र नकुल, सहदेव का बार २ आलिङ्गन करने लगे। इस अत्यन्त सन्तुष्ट हुए, राजा ने राजा युधिष्ठिर से कहा ॥२९-३०॥

दिष्ट्या भवन्तः सम्प्राप्ताः सर्वे कुशलिनो वनात् ।
दिष्ट्या सम्पालितं कृच्छ्रं अज्ञातं वै दुरात्मभिः ॥

हे महानुभावो ! यह बड़ी अच्छी बात हुई, कि तुम वन में कुशल-पूर्वक अपनी अवधि समाप्त करके हमारे पास चले आए और यह भी अच्छा ही हुआ, कि उन दुरात्माओंसे छुपकर तुमने अज्ञातवास का कठिन समय भी व्यतीत कर दिया ॥३१॥

इदञ्च राज्यं पार्थाय यच्चान्यदपि किञ्चन ।
प्रतिगृह्णन्तु तत् सर्वं पाण्डवा अविशङ्कया ॥३२॥

अब यह हमारा राज्य, सारा युधिष्ठिर का ही है तथा राज्य से अतिरिक्त वस्तु भी जो कुछ हैं, उनको तुम पाण्डव, निःशङ्क होकर ग्रहण करो ॥३२॥

उत्तरां प्रतिगृह्णान्तु सव्यसाची धनञ्जयः ।
अयं ह्यौपयिको भर्त्ता तस्याः पुरुषसत्तमः ॥३३॥

इस मेरी पुत्री उत्तरा को धनञ्जय स्वीकार करे। मैं इस उत्तरा का इन पुरुष-श्रेष्ठ अर्जुन को ही उचित भर्त्ता समझता हूं ॥३३॥

एवमुक्तो धर्मराजः पार्थमैक्षद्धनञ्जयम् ।
ईक्षितश्चार्जुनो भ्राता मत्स्यं वचनमब्रवीत् ॥३४॥

विराटराज के इतना कहने पर धर्मराज ने कुन्ती-पुत्र अर्जुन की ओर देखा। धर्मराज के देखने पर लघु भ्राता अर्जुन, मत्स्यराज से यह वचन बोला ॥३४॥

प्रतिगृह्णाम्यहं राजन् स्नुषां दुहितरं तव ।
युक्त एक हि सम्बन्धो मत्स्यभारतयोरपि ॥३५॥
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि उत्तराविवाहप्रस्तावे
एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

हे राजन् ! मैं आपकी पुत्री को अपनी पुत्र-वधू बना कर ग्रहण कर सकता हूं। हम भरत-वंशी और तुम मत्स्यों का यही सम्बन्ध अच्छा रहेगा ॥३५॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत वैवाहिकपर्व में उत्तरा के विवाह का इकहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ।



बहत्तरवां अध्याय

विराट उवाच—

किमर्थं पाण्डवश्रेष्ठ भार्य्यां दुहितरं मम ।
प्रतिग्रहीतुं नेमां त्वं मया दत्तामिहेच्छसि ॥१॥

विराट नें कहा—हे पाण्डव-श्रेष्ठ ! अर्जुन ! क्या कारण है, जो तुम मेरी पुत्री को जिसको मैं प्रेम से अर्पण कर रहा हूँ। आप अपनी भार्या बना कर ग्रहण करने में संकोच करते हो ?

अर्जुन उवाच—

अन्तः पुरेऽहमुषितः सदा पश्यन् सुतां तव ।
रहस्यश्च प्रकाशश्च विश्वस्ता पितृवन्मयि ॥२॥

अर्जुन ने कहा—हे राजन् ! मैं आपके अन्तःपुर में रहा हूँ और मैंने आपकी पुत्री को सदा देखा है। वह अपनी गुप्त बातों के छुपाने और प्रकट करने में मुझ पर पिता की तरह विश्वास करती रही है ॥२॥

प्रियो बहुमतश्चासं नर्त्तको गीतकोविदः ।
आचार्य्यवच्च मां नित्यं मन्यते दुहिता तव ॥३॥

मैं नाचने गाने वाला बना हुआ था, मुझे यह आप की पुत्री बड़ा ही प्रिय और आचार्य (गुरु) की तरह नित्य पूज्य मानती थी।

वयःस्थया तया राजन् सह सम्वत्सरोषितः ।
अतिशङ्का भवेत् स्थाने तव लोकस्य वा विभो ॥४॥

हे राजन्! मैं युवति हुई आपकी पुत्री के साथ एक वर्ष तक रहा हूँ। इससे इस दशा में आप तथा अन्य पुरुषों का शङ्का होजाने की सम्भावना है ॥४॥

तस्मान्निमन्त्रये ऽहन्ते दुहितां मनुजाधिप।
शुद्धा जितेन्द्रिया दान्तस्तस्याः शुद्धिः कृता मया ॥

हे मनुजाधिप! इससे मैं आपकी दुहिता को अपनी पुत्र-वधू के रूप में ग्रहण करता हूँ। मैं सर्वथा शुद्ध, जितेन्द्रिय और उदार होने का अभिमान रखता हूँ। इस तरह आपकी पुत्री उत्तरा की शुद्धि का अत्यन्त प्रमाण उपस्थित हो जावेगा ॥५॥

स्नुषायां दुहितुश्चापि पुत्रे चात्मनि वा पुनः।
अत्र शङ्कां न पश्यामि तेन शुद्धिर्भविष्यति ॥६॥

जब आपकी दुहिता को मैं अपनी पुत्रवधू बना लूँगा और अपने पुत्र के साथ संस्कार करा दूंगा, तो इस में कुछ भी शङ्का नहीं रहेगी, जिससे हम सब की बड़ी शुद्धि होगी ॥६॥

अभिशापादहं भीतो मिथ्यावादात् परन्तप।
स्नुषार्थमुत्तरां राजन् प्रतिगृह्णामि ते सुताम् ॥७॥

हे परन्तप! मैं लोगों की निन्दा और मिथ्यापवाद से डरता हूँ। हे राजन्! इससे मैं आपकी पुत्री उत्तरा को अपनी पुत्रवधू बना कर ग्रहण करता हूँ ॥७॥

स्वस्रीयो वासुदेवस्य साक्षाद्देवशिशुर्यथा।
दयितश्चक्रहस्तस्य बाल एवास्त्रकोविदः ॥८॥

अभिमन्युर्महाबाहुः पुत्रो मम विशाम्पते ।
जामाता तव युक्तो वै भर्त्ता च दुहितुस्तव ॥९॥

चक्रधारी वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण का भानजा और उनका अत्यन्त प्रिय, देवकुमार के सदृश सुन्दर, मेरा पुत्र, महाबाहु अभिमन्यु है। यह बालक ही अस्त्रविद्यामें बड़ा कुशल है। यही तुम्हारा जामाता और तुम्हारा पुत्री का पति होने के सर्वथा योग्य है॥ ८-९॥

विराट उवाच—

उपपन्नं कुरुश्रेष्ठे कुन्तीपुत्रे धनञ्जये ।
य एवं धर्मनित्यश्च जातज्ञानश्च पाण्डवः ॥१०॥

विराट ने कहा—कुरु-वंश-श्रेष्ठ, कुन्ती-पुत्र धनञ्जय को ऐसा करना उचित ही है, क्योंकि यह पाण्डु-पुत्र, अर्जुन, बड़ा धर्मात्मा और ज्ञानी है॥१०॥

यत् कृत्यं मन्यसे पार्थ क्रियतां तदनन्तरम् ।
सर्वे कामाः समृद्धाश्च सम्बन्धी यस्यमेऽर्जुनः॥११॥

हे पार्थ! अब तुम इसके अनन्तर करने योग्य कार्य को करो। मेरे सम्बन्धी अर्जुन हो चुके, इससे मेरे सारे ही मनोरथ सफल हैं॥ ११॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं ब्रुवति राजेन्द्रे कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अन्वशासत् समं योगं समये मत्स्यपार्थयोः ॥१२॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! राजा विराट के इतना कहने पर कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने भी मत्स्यराज और पाण्डवों के इस सम्बन्ध को समान सम्बन्ध बनाकर अनुमोदन कर दिया ॥ १२ ॥

ततो मित्रेषु सर्वेषु वासुदेवे च भारत ।
प्रेषयामास कौन्तेयो विराटश्च महीपतिः ॥१३॥

हे भारत ! इसके अनन्तर सारे मित्र और वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण के पास कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर और राजा विराट ने इस विवाह का निमन्त्रण लेकर दूत भेजे ॥ १३ ॥

ततस्त्रयोदशे वर्षे निवृत्ते पञ्च पाण्डवाः ।
उपप्लव्यं विराटस्य समपद्यन्त सर्वशः ॥१४॥

अब तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके थे, इससे पांचों पाण्डवों ने विराटराज से विराट नगर के पास नये बनाये हुए, नगर में गमन किया ॥ १४ ॥

अभिमन्युश्च बीभत्सुरानिनाय जनार्दनम् ।
आनर्त्तेभ्योऽपि दाशार्हामानयामास पाण्डवः॥१५॥

पाण्डु-पुत्र अर्जुन, आनर्त देश में जाकर श्रीकृष्ण और अभिमन्यु तथा दशार्ह-पुत्री सुभद्रा को ले आया ॥ १५ ॥

काशीराजश्च शैब्यश्च प्रीयमाणो युधिष्ठिरे ।
अक्षौहिणीभ्यां सहितावागतौ पृथिवीपती ॥१६॥

काशीराज और शैब्य राजा युधिष्ठिर से बड़ा प्रेम रखते थे। वे दोनों राजा अपनी २ अक्षौहिणी सेना लेकर साथ ही विराट नगर में आ पहुंचे ॥ १६ ॥

अक्षौहिण्या च सहितो यज्ञसेनो महाबलः।

द्रौपद्याश्च सुता वीरा शिखण्डी चापराजितः ॥१७॥

इसी तरह महाबली यज्ञसेन (द्रुपद) अक्षौहिणी सेना लेकर आया और द्रौपदी के वीर पुत्र तथा किसी से पराजित नहीं होने वाला शिखण्डी भी आया ॥ १७ ॥

धृष्टद्युम्नश्च दुर्द्धर्षः सर्वशस्त्रभृताम्वरः।

समस्ताक्षौहिणीपाला यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥१८॥

वेदाध्ययनसम्पन्नाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः।

सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, दुर्धर्ष, द्रुपद-पुत्र, धृष्टद्युम्न आया। ये सारे अक्षौहिणी पति थे और बड़ी २ दक्षिणा के यज्ञ कर चुके थे। ये सारे ही वेद का स्वाध्याय करने वाले और युद्ध में शरीर की परवाह नहीं करने वाले वीर थे ॥ १८ ॥

तानागतानभिप्रेक्ष्य मत्स्यो धर्मभृताम्वरः ॥१९॥

पूजयामास विधिवत् सभृत्यबलवाहनान्।

प्रीतोऽभवद् दुहितरं दत्त्वा तामभिमन्यवे ॥२०॥

धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, मत्स्यराज ने इनको आया हुआ देखकर भृत्य, सेना और वाहनों के सहित इनकी बड़ी सेवा शुश्रूषा की। राजा विराट, अपनी पुत्री उत्तरा को अभिमन्यु के लिए प्रदान करके बड़ा ही प्रसन्न हुआ ॥ १९-२० ॥

ततः प्रत्युपयातेषु पार्थिवेषु ततस्ततः ।
तत्रागमद्वासुदेवो वनमाली हलायुधः ॥२१॥

इधर उधर से जब अन्य राजा आ रहे थे, उसी समय वसु-देव पुत्र, श्रीकृष्ण और हलधारी बलराम आए ॥ २१ ॥

कृतवर्मा च हार्दिक्यो युयुधानश्च सात्यकिः ।
अनाधृष्टिस्तथाक्रूरः साम्बो निषठ एव च ॥२२॥
अभिमन्युमुपादाय सह मात्रा परन्तपाः ।

इसी तरह कृतवर्मा, हार्दिक्य, युयुधान, सात्यकि, अना-धृष्टि, अक्रूर, साम्ब, निशठ आदि शत्रु विजयी यादव, माता सुभद्रा सहित अभिमन्यु को लेकर वहाँ आए ॥ २२ ॥

इन्द्रसेनादयश्चैव रथैस्तैः सुसमाहितैः ॥२३॥
आययुः सहिताः सर्वे परिसम्वत्सरोषिताः ।

एक वर्ष तक आनर्त देश में निवास करके अपने रथों के साथ इन्द्रसेन आदि सारथी भी सारे वहीं चले आये ॥ २३ ॥

दशनागसहस्राणि हयानाञ्च दशायुतम् ॥२४॥
रथानामर्बुदं पूर्णं निखर्वञ्च पदातिनाम् ।
वृष्ण्यन्धकाश्च बहवो भोजाश्च परमौजसः ॥२५॥
अन्वयुर्वृष्णिशार्दूलं वासुदेवं महाद्युतिम् ।
पारिबर्हं ददौ कृष्णः पाण्डवानां महात्मनाम् ।
स्त्रियो रत्नानि वासांसि पृथक् पृथगनेकशः ॥२६॥

दश हजार हाथी, एक लाख अश्व, एक अरब रथ, निखर्व पैदल लेकर अत्यन्त ओजस्वी, वृष्णि, अन्धक और भोजवंशी वीर, महाद्युति, वृष्णि-वंश-श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण के पीछे पीछे आए। श्रीकृष्णजी ने महात्मा पाण्डवों को भेंट दी। इसी तरह अनेक स्त्रियां और उत्तम २ वस्त्र वहां लाये गए॥ २४-२६॥

ततो विवाहो विधिवद्ववृधे मत्स्यपार्थयोः।
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च गोमुखाडम्बरास्तथा ॥२७॥
पार्थैः संयुज्यमानस्य नेदुर्मत्स्यस्य वेश्मनि।

अब मत्स्यराज और पाण्डव के विवाहोत्सव का आनन्द बढ़ने लगा। शंख, भेरी, गोमुख, डुम्बर आदि बाजे, इस मत्स्य और पाण्डवों के सम्बन्ध के उपलक्ष में मत्स्यराज के भवन पर बजने लगे॥ २७॥

उच्चावचान्मृगान् जघ्नुर्मेध्यांश्च शतशः पशून् ॥२८
सुरामैरेयपानानि प्रभूतान्यभ्यहारयन्।

इस समय यहाँ बड़े पुष्ट मृग मारे गए और इसी तरह अन्य भी सैकड़ों पवित्र पशुओं का वध किया गया। सुरा, मैरेय आदि पान भी अधिक मात्रा में व्यवहार में लाये गए॥ २८॥

गायनाख्यानशीलाश्च नटवैतालिकास्तथा ॥२९॥
स्तुवन्तस्तानुपातिष्ठन् सूताश्च सह मागधैः।

नट और वैतालिक गा रहे तथा उपाख्यान कह रहे थे। इन सारे राजाओं की मागधों के साथ स्तुति करते हुए, अनेक सूत वहां उपस्थित थे॥ २९॥

सुदेष्णाञ्च पुरस्कृत्य मत्स्यानाञ्च वरस्त्रियः॥३०॥
आजग्मुश्चारुसर्वाङ्ग्यः सुमृष्टमणिकुण्डलाः।
वर्णोपपन्नास्ता नार्य्यो रूपवत्यः स्वलङ्कृताः॥३१॥
सर्वाश्चाभ्यभवत् कृष्णा रूपेण यशसा श्रिया।

चमकते हुए, मत्स्यवीरों को सुन्दर २ स्त्रियां कुण्डल पहिने हुए सुदेष्णा को आगे लेकर वहां निकल आईं। ये सारी स्त्रियां वर्ण और रूप में अद्वितीय थीं, परन्तु द्रौपदी अपने रूप और यश (गुणों) से इनको जीत रही थी॥ ३०-३१॥

परिवार्य्योत्तरां तास्तु राजपुत्रीमलङ्कृताम्॥३२॥
सुतामिव महेन्द्रस्य पुरस्कृत्योपतस्थिरे।

ये सारी सुन्दर स्त्रियां, अलङ्कारों से युक्त, इन्द्र की पुत्री जैसी सुन्दर उत्तरा को घेर कर खड़ी हो गई॥ ३२॥

तां प्रत्यगृह्णात् कौन्तेय सुतस्यार्थे धनञ्जयः॥३३॥
सौभद्रस्यानवद्याङ्गीं विराटतनयां तदा।

कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने अपने पुत्र अभिमन्यु के निमित्त सर्व-गुण-सुन्दरी विराट-पुत्री उत्तरा को ग्रहण किया॥ ३३॥

तत्रातिष्ठन्महाराजो रूपमिन्द्रस्य धारयन्॥३४
स्नुषां तां प्रतिजग्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।

इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली रूप बनाकर विराटराज वहां उपस्थित हुए। कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर ने अपनी पुत्र-वधू बनाकर उत्तरा को ग्रहण किया॥ ३४॥

प्रतिगृह्य च तां पार्थः पुरस्कृत्य जनार्दनम् ३५
विवाहं कारयामास सौभद्रस्य महात्मनः ।

श्रीकृष्ण की अनुमति से कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने उत्तरा को स्वीकार करके महावीर अभिमन्यु के साथ उसका विवाह करवा दिया ॥ ३५ ॥

तस्मै सप्तसहस्राणि हयानां वातरंहसाम् ॥३६॥
द्वे च नागशते मुख्ये प्रादाद्बहुधनं तदा ।

उस समय विराटराज ने अभिमन्यु के लिए वायु के समान वेगशील सात हजार अश्व, दो हजार हाथी और बहुत सा धन दिया ॥ ३६ ॥

हुत्वा सम्यक् समिद्धाग्निमर्चयित्वा द्विजन्मनः ३७
राज्यं बलञ्च कोपञ्च सर्वमात्मानमेव च ।

अभिमन्यु ने प्रदीप्त अग्नि में हवन और ब्राह्मणों का पूजन किया। विराटराज ने भी अपना राज्य, कोप तथा अपने आपको भी पाण्डवों के अर्पण कर दिया ॥ ३७ ॥

कृते विवाहे तु तदा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥३८॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं यदुपाहरदच्युतः ।

जब विवाह की विधि समाप्त हो गई, तो धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को वह सारा धन दे दिया, जो श्रीकृष्ण ने भेंट में दिया था ॥ ३८ ॥

गोसहस्राणि रत्नानि वस्त्राणि विविधानि च ॥३९॥
भूषणानि च मुख्यानि यानानि शयनानि च ।
भोजनानि च हृद्यानि पानानि विविधानि च ॥४०॥

एक सहस्र गौ, रत्न, अनेक वस्त्र, भूषण, मुख्य २ यान, शयन, भोजन हृदय को रुचिकर प्रतीत होने वाले अनेक पान के पदार्थ, पाण्डवों की सेवा में विराटराज ने उपस्थित किए।३९-४०।

तन्महोत्सवसङ्काशं हृष्टपुष्टजनावृतम् ।
नगरं मत्स्यराजस्य शुशुभे भरतर्षभ ॥४१॥
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि वैवाहिकपर्वणि
उत्तराविवाहे द्विसप्ततिमोऽध्यायः ॥७२॥

समाप्तञ्च वैवाहिकपर्व ।
समाप्तश्च विराटपर्व ।

हे भरतर्षभ ! इस महोत्सव के अनुरूप ही हृष्ट पुष्ट जनों से युक्त, मत्स्यराज का नगर बड़ा ही रमणीक प्रतीत होरहा था ॥४१

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत वैवाहिकपर्व में उत्तरा के विवाह का बहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ और यहीं पर वैवाहिक-पर्व तथा विराटपर्व भी समाप्त हो गया ।



विराटपर्वश्रवणमाहात्म्य

श्रुत्वा वैराटकं पर्व वासांसि विविधानि च ।
हिरण्यं धान्यं गावश्च दद्याद्वित्तानुसारतः ॥१॥

विराटपर्व को सुनकर यजमान अनेक वस्त्र, सुवर्ण, धान्य, गौ अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण को प्रदान करे ॥ १ ॥

प्रीतये देवतानां वै दद्याद्वै द्विजमुख्यके ॥
वाचके तु सुसन्तुष्टे तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥२॥

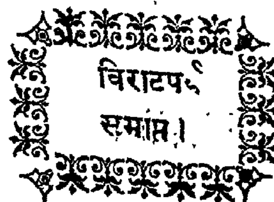
देवताओं की तुष्टि के लिए द्विज-श्रेष्ठ को अवश्य दान दे। कथावाचक के सन्तुष्ट होने पर सारे देवता सन्तुष्ट होते हैं ॥२॥

ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या पायसैः सर्पिपासितैः ।
एवं श्रुते च वैराटे सम्यक् फलमवाप्नुयात् ॥३॥

जितनी शक्ति हो, उतना क्षीर, घृत, शर्करा से युक्त ब्राह्मणों को भोजन करावे। इस प्रकार जो विराटपर्व को सुनता है, उसको बड़ा उत्तम फल प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

अतः परमुद्योगपर्व तस्यायमाद्यः श्लोकः

कृत्वा विवाहं तु कुरुप्रवीरास्तदाभिमन्योर्मुदिताः स्वपक्षाः
विश्रम्य रात्रावुषसि प्रतीताःसभां विराटस्य ततोऽभिजग्मुः१



महाभारत

—:*:—

उद्योग-पर्व-प्रारम्भ





महाभारते

उद्योगपर्व

सेनोद्योगपर्व

पहिला अध्याय

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥

वैशम्पायन उवाच—

कृत्वा विवाहं तु कुरुप्रवीरास्तदाऽभिमन्योर्मुदितास्वपक्षाः ।
विश्रम्य रात्रावुषसि प्रतीताः सभां विराटस्य ततोऽभिजग्मुः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! कुरुवंशोत्पन्न, वीर-श्रेष्ठ, पाण्डव, अभिमन्यु का विवाह संस्कार समाप्त करके अपने मित्र यादवों के साथ बड़े प्रसन्न हुए, रात में विश्राम लेकर प्रातःकाल उठे और बड़े हर्ष से विराटराज की सभा को लक्ष्य करके चल दिए ॥१॥

सभातुसामत्स्यपतेः समृद्धामणिप्रवेकोत्तमरत्नचित्रा ।
न्यस्तासनामाल्यवतीसुगन्धातामभ्ययुस्ते नरराजवृद्धाः ॥२॥

मत्स्यराज की यह राजसभा बड़ी समृद्धि शालिनी और मणि समूह तथा उत्तम उत्तम रत्नों से चित्र विचित्र थी। इसमें इधर उधर बैठने के आसन (कुर्सी आदि) बिछे हुए थे और पुष्पों की मालाएं लटक रहीं थीं। जिससे यह बड़ी ही सुगन्धित हो रही थी। नरेन्द्रों में श्रेष्ठ पाण्डव, इस सभा में पहुँचे ॥ २ ॥

अथासनान्याविशतांपुरस्तादुभौ विराटद्रुपदौ नरेन्द्रौ ।
वृद्धौच मान्यौ पृथिवीपतीनां पित्रासमंरामजनार्दनौ च॥३॥

सबसे आगे लगे हुए दो आसनों पर राजा विराट और द्रुपद बैठ गए। इनके पास ही राजाओं के मान्य और वृद्ध पिता वसुदेव के साथ बलराम और श्रीकृष्ण बैठे ॥ ३ ॥

पांचालराजस्यसमीपतस्तु शिनिप्रवीरः सहरौहिणेयः ।
मत्स्यस्यराज्ञस्तुसुसंनिकृष्टो जनार्दनश्चैव युधिष्ठिरश्च ॥४॥

पाञ्चालराज द्रुपद के पास सात्यकी और बलराम तथा मत्स्यराज के पास श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिर बैठे थे ॥ ४ ॥

सुताश्च सर्वेद्रुपदस्यराज्ञो भीमार्जुनौ माद्रवती सुतौ च।
प्रद्युम्नसांबौचयुधिप्रवीरौ विराटपुत्रैश्चसहाभिमन्युः ॥५॥

राजा द्रुपद के सारे पुत्र, भीम, अर्जुन, माद्री-पुत्र, नकुल, सहदेव, युद्धवीर प्रद्युम्न, साम्ब तथा विराट पुत्रों के साथ अभिमन्यु बैठे थे ॥ ५ ॥

सर्वेचशूराः पितृभिः समाना वीर्य्येण रूपेण बलेनचैव।
उपाविशन् द्रौपदेयाः कुमाराः सुवर्णचित्रेषु वरासनेषु॥६।

ये सारे शूरवीर पुत्र, वीर्य, रूप और बल में अपने पिताओं के सदृश थे। इसी तरह सुवर्ण से विचित्र आसनों पर द्रौपदी के पुत्र बैठे हुए थे ॥ ६ ॥

तथोपविष्टेषु महारथेषु विराजमानाभरणाम्बरेषु ।
रराज सा राजवती समृद्धा ग्रहैरिवद्यौर्विमलैरुपेता ॥७॥

उत्तम २ आभूषण और वस्त्रों से देदीप्यमान, महारथियों के अच्छे २ आसनों पर बैठ जाने पर चमकते हुए ग्रहों से आकाश की तरह राजा विराट की ऐश्वर्यशालिनी सभा चमकने लगी ७ ॥

ततः कथास्ते समवाययुक्ताः कृत्वा विचित्राःपुरुषप्रवीराः
तस्थुर्मुहूर्त्तंपरिचिन्तयन्तः कृष्णं नृपास्ते समुदीक्षमाणाः ८

ये पुरुष-श्रेष्ठ, इस राजसमूह में होने के योग्य,अद्भुत चर्चा करके कुछ देर सोचते हुए, चुप हो गए और सारे ही राजा इस समय श्रीकृष्ण की ओर देखते रहे ॥ ८ ॥

कथांतमासाद्यचमाधवेन संघट्टिताः पाण्डवकार्यहेतोः ।
तेराजसिंहाः सहिताह्यश्रृण्वन्वाक्यं महार्थं सुमहोदयश्च ॥९॥

चली हुई चर्चा के समाप्त हो जाने पर श्रीकृष्ण ने राजाओं का पाण्डवों के कार्य की सिद्धि के लिए संगठन किया। इन सारे राजसिंहों ने एक साथ बड़े ध्यान से महान् सार वाले, अभ्युदयशाली श्रीकृष्ण के वाक्य को सुना ॥९॥

श्रीकृष्ण उवाच—

सर्वैर्भवद्भिर्विदितंयथाऽयंयुधिष्ठिरः सौबलेनाक्षवत्याम् ।
जितो निकृत्या ऽपहृतंचराज्यंवनप्रवासे समयः कृतश्च ॥१०

श्रीकृष्ण बोले—हे नरेन्द्रो ! आप सब लोगों को मालूम है, कि सुबल-पुत्र शकुनि ने द्यूत में किस प्रकार छल करके राजा युधिष्ठिर को जीता था और इनका राज्य छीनकर वनवास के लिए किस तरह समय नियत किया था ॥ ०॥

शक्तैर्विजेतुं तरसामहींच सत्येस्थितैः सत्यरथैर्यथावत् ।
पाण्डौः सुतैस्तद्व्रतमुग्ररूपं वर्षाणि षट् सप्तचचीर्णमग्र्यैः

ये पाण्डव, शक्तिशाली थे और उस समय ही सारी पृथिवी को जीत सकते थे, परंतु सत्य से प्रेम करने वाले, इन सत्यवादी नरश्रेष्ठ पाण्डवों ने तेरह वर्ष तक वन में बड़े उग्र व्रत का पालन किया ॥११॥

त्रयोदशश्चैव सुदुस्तरोऽयमज्ञायमानैर्भवतां समीपे ।
क्लेशानसह्यान् विविधान्सहद्भिर्महात्मभिश्चापिवनेनिविष्टम्
एतैःपरप्रेष्यनियोगयुक्तैरिच्छद्भिराप्तंस्वकुलेनराज्यं ।

इन्होंने छुपकर आपके पास नहीं कटने वाला तेरहवां वर्ष भी पूरा कर लिया। कुल क्रमागत प्राप्त अपने राज्य को प्राप्त करने की इच्छा वाले तथा अन्य की आज्ञा में तत्पर हुए, इन महात्मा पाण्डवों ने वन में अनेक असह्य क्लेश सहे हैं ॥१२॥

एवंगतेधर्मसुतस्यराज्ञोदुर्योधनस्यापिचयद्धितंस्यात् ॥१३॥
तच्चिंतयध्वंकुरुपुंगवानांधर्म्यंचयुक्तंचयशस्करंच ।
अधर्मयुक्तंनचकामयेतराज्यंसुराणामपिधर्मराजः ॥१४॥

इस दशा में राजा युधिष्ठिर और दुर्योधन का जिसमें हित हो, वही आज आप विचारो। इसमें यह और ध्यान रखना, कि वह काय सम्पादन का उद्योग, धर्मानुसार उचित हो,क्योंकि धर्मराज युधिष्ठिर अधम के योग से प्राप्त हुए, इन्द्रासन को भी स्वीकार करना नहीं चाहता है ॥१३-१४॥

धर्मार्थयुक्तंतुमहीपतित्वंग्रामेऽपिकस्मिंश्चिदयंबुभूषेत् ।
पित्र्यंहिराज्यंविदितंनृपाणांयथाऽपकृष्टंधृतराष्ट्रपुत्रैः ॥१५॥

यह धर्मराज धर्म से युक्त तो एक ग्राम के राज्य में भी अपना निर्वाह कर लेना उचित समझता है। आप सब राजाओं को विदित है, कि उसके पिता के राज्य को किस तरह धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधनादि ने छीन लिया है ॥१५॥

मिथ्योपचारेणयथाह्यनेनकृच्छ्रंमहत्प्राप्तमसह्यरूपम् ।
नचापिपार्थोविजितोरणेतैःस्वतेजसाधृतराष्ट्रस्यपुत्रैः ॥१६॥
तथाऽपिराजासहितःसुहृद्भिरभीप्सतेऽनामयमेवतेषां ।

दुर्योधन ने बड़ी कठिनाई से प्राप्त किये जाने वाले विशाल राज्य को बड़े छल से प्राप्त कर लिया है। हम इसको कभी नहीं सह सकते हैं। इन धृतराष्ट्रके पुत्रों ने राजा युधिष्ठिर को अपने तेज से नहीं जीता है। इस अवस्था में भी अपने मित्रों के सहित धर्मराज, दुर्योधनादि का कल्याण ही चाहता है ॥१६॥

यत्तुस्वयंपांडुसुतैर्विजित्यसमाहृतंभूमिपतीन्प्रपीड्य ॥१७॥
तत्प्रार्थयंतेपुरुषप्रवीराःकुंतीसुतामाद्रवतीसुतौच ।
बालास्त्विमेतैर्विविधैरुपायैःसंप्रार्थिताहंतुममित्रसंघैः ॥१८॥
राज्यंजिहीर्षद्भिरसद्भिरुग्रैःसर्वंचतद्वाविदितंयथावत् ।

जो कुछ द्रव्य अन्य राजाओं को जीत कर इकट्ठा किया था, ये कुन्ती माद्री के पुत्र केवल उसी धन को मांगते हैं, परंतु उन शत्रुओं की टोली द्वारा इन भोले-भाले पाण्डवोंके मारने के अनेक उपाय किये गए हैं। असद्व्यवहार करने वाले ये महाबली कौरव, पाण्डवों के राज्य को हड़प जाने की चिन्ता कर रहे हैं, यह आप सबको विदित है ॥ १७–१८ ॥

तेषांचलोभंप्रसमीक्ष्यवृद्धं धर्मज्ञतांचापियुधिष्ठिरस्य ॥१९॥
संबंधितांचापिसमीक्ष्यतेषांमतिंकुरुध्वंसहिताःपृथक् च ॥
अब तुम लोग कौरवों के बढ़े हुए लोभ और राजा युधिष्ठिर के धर्मात्मापन को देखकर तथा अपने सम्बन्ध को विचार कर पृथक् २ या इकट्ठे ही कुछ विचार करो ॥ १९ ॥



सञ्जय का पाण्डवों के पास सन्धि के लिये जाना

महाभारत उद्योगपर्व अ० २३ । १ पृष्ठ ४६४

इमेचसत्येऽभिरताः सदैव तं पालयित्वासमयंयथावत् ॥२०
अतोऽन्यथातैरुपचर्यमाणा हन्युः समेतान् धृतराष्ट्रपुत्रान् ॥

ये सदैव सत्य में तत्पर हैं और अपने समय (शर्त) का ठीक २ पालन कर चुके हैं। यदि इनके साथ कौरवों ने फिर दुर्व्यवहार किया, तो ये उन सारे धृतराष्ट्र-पुत्रों का वध किए विना न छोड़ेंगे॥ २०॥

तैर्विप्रकारंचनिशम्यकार्येसुहृज्जनास्तान्परिवारयेयुः ॥२१
युद्धेनबाधेयुरिमांस्तथैवं तैर्बाध्यमाना युधि तांश्चहन्युः ॥

यदि इनके राज्य-प्राप्त रूप कार्य में कौरवों द्वारा फिर कोई विघ्न देखें गए, तो आप सब हितकारी पुरुषों को इन पाण्डवों की सहायता करनी चाहिए। यदि कौरवों ने इनको युद्ध के लिये बाध्यमान (मजबूर) किया, तो ये तङ्ग आकर उन को युद्ध में मार डालेंगे॥ २१॥

तथाऽपि न मेऽल्पतयासमर्थास्तेषां जयायेति भवेन्मतं वः
समेत्य सर्वे सहिताः सुहृद्भिस्तेषां विनाशाय यतेयुरेव

ये पाण्डव, संख्या में थोड़े हैं, इससे उन कौरवों के विजय करने में समर्थ नहीं हैं, यह आप लोग समझते हैं। इससे हम सब मित्रोंका इकट्ठे होकर उनके विनाश के लिए प्रयत्न करना चाहिए॥ २२॥

दुर्योधनस्यापिमतंयथावन्नज्ञायतेकिंनुकरिष्यतीति ॥२३॥
अज्ञायमाने च मतंपरस्य किं स्यात्समारभ्यतमं मतं वः ॥

अभी तक दुर्योधन के मत का भी पता नहीं लगा, कि वह क्या करना चाहता है। दूसरे के मन के जाने विना भी आप लोग, कुछ करना नहीं चाहते हैं ॥ २३ ॥

तस्मादितोगच्छतुधर्मशीलःशुचिःकुलीनःपुरुषोऽप्रमत्तः२४
दूतः समर्थः प्रशमायतेषांराज्यार्धदानाययुधिष्ठिरस्य ।

अब यहां से धर्मात्मा, आचारवान्, कुलीन, अप्रमादी,समर्थ दूत, कौरवों के शान्त करने और युधिष्ठिर को आधा राज्य दिलाने के प्रस्ताव के लिए हस्तिनापुर जाना चाहिए ॥२४ ॥

निशम्य वाक्यं तुजनार्दनस्य धर्मार्थयुक्तं मधुरं समं च ॥
समाददे वाक्यमथाग्रजोऽस्य संपूज्य वाक्यंतदतीवराजन्
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैनोद्योगपर्वणि पुरोहितयाने
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हे राजन्! श्रीकृष्ण के धर्मार्थ युक्त, मधुर वचन को सुनकर उनके वाक्य का अनुमोदन करता हुआ, ज्येष्ठ भ्राता बलदेव,इस प्रकार कहने लगा ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सैनोद्योगपर्व में पुरोहित के भेजने के प्रस्ताव का प्रथम अध्याय पूरा हुआ।

दूसरा अध्याय

बलदेव उवाच—

श्रुतंभवद्भिर्गदपूर्वजस्यवाक्यंयथाधर्मवदर्थवच्च ।
अजातशत्रोश्चहितंहितंचदुर्योधनस्यापितथैवराज्ञः ॥१॥

बलदेव ने कहा—हे नरेन्द्रों ! आप लोगों ने गदाग्रज श्रीकृष्ण के धर्म और अर्थ के अनुसार वचन सुन लिए हैं। इन वचनों में अजात-शत्रु युधिष्ठिर और राजा दुर्योधन दोनों का ही हित भरा हुआ है ॥१॥

अर्धंहिराज्यस्यविसृज्यवीराःकुन्तीसुतास्तस्यकृते यतंते ।
प्रदायचार्धंधृतराष्ट्रपुत्रःसुखीसहास्माभिरतीवमोदेत् ॥ २

कुन्ती-पुत्र, वीर पाण्डव, राज्य का आधा भाग, कौरवों को प्रदान करके आधा राज्य लेने का प्रयत्न कर रहे हैं। ये चाहते हैं, कि धृतराष्ट्र-पुत्र, दुर्योधन आधा राज्य हमको देकर सुख से रहे ॥२॥

लब्ध्वाहिराज्यंपुरुषप्रवीराःसम्यक्प्रवृत्तेषुपरेषुचैव ।
ध्रुवंप्रशांताःसुखमाविशेयुस्तेषांप्रशांतिश्चहितंप्रजानाम्

विरोधी पक्ष के अच्छी तरह प्रवृत्त होने पर ये पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डव, राज्य को प्राप्त करके निश्चय शान्त और सुखी हो जायेंगे। इस तरह कौरवों को भी सुख प्राप्त होगा और प्रजा को शान्ति मिलेगी ॥३॥

दुर्योधनस्यापिमतंचवेत्तुंवक्तुंचवाक्यानियुधिष्ठिरस्य ।
प्रियंचमेस्याद्यदितत्रकश्चिद्व्रजेच्छमार्थंकुरुपांडवानम् ॥

दुर्योधन के मत को जानने और राजा युधिष्ठिर के वाक्यों को कुरु-सभा के समक्ष उपस्थित करने तथा कौरव पाण्डवों के विग्रह को शान्त करने के लिए कोई चतुर पुरुष वहां चला जावे, तो मैं बड़ा ही प्रसन्न हो जाऊं ॥४॥

सभीष्ममामंत्र्यकुरुप्रवीरं वैचित्रवीर्यंचमहानुभावं ।
द्रोणंसपुत्रं विदुरंकृपंचगांधारराजं चसूतपुत्रम् ॥५॥
सर्वेचयेऽन्येधृतराष्ट्रपुत्रा बलप्रधाना निगमप्रधानाः ।
स्थिताश्चधर्मेषुतथास्वकेषु लोकप्रवीराःश्रुतकालवृद्धाः॥
एतेषु सर्वेषुसमागतेषु पौरेषु वृद्धेषुच संगतेषु ।
ब्रवीतुवाक्यंप्रणिपातयुक्तं कुंतीसुतस्यार्थकरंयथास्यात् ॥

ये दूत; कुरुप्रवीर, भीष्म, विचित्रवीर्य के पुत्र, महानुभाव धृतराष्ट्र, द्रोण, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, विदुर, कृप, गांधारराज, शकुनि, सूत-पुत्र कर्ण तथा बलवान, नीतिज्ञ, लोक में श्रेष्ठवीर, अपने धर्म में वर्तमान, शास्त्र और आयु में वृद्धि को प्राप्त हुए, अन्य धृतराष्ट्र के पुत्र एवं पुरदेशवासी वृद्धों के सभा में उपस्थित हो जाने पर कुन्ती-पुत्र धर्मराज के कार्य के सम्पादन करने वाली वाणी को बड़ी नम्रता से प्रयुक्त करे ॥५-७॥

सर्वास्ववस्थासुचतेनकोप्या ग्रस्तोहिसोऽर्थोबलमाश्रितैस्तैः ।
प्रियाभ्युपेतस्य युधिष्ठिरस्य द्यूतेप्रसक्तस्यहृतंचराज्यम् ॥८॥

अब पाण्डवों को किसी भी अवस्था में कुपित नहीं करना चाहिए। इन बलवान् पाण्डवों ने अपनी सारी प्रतिज्ञा पूर्ण कर

दी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि सुख भोगते हुए, द्यूत के प्रेमी, राजा युधिष्ठिर का छल से राज्य छीना गया ॥८॥

निवार्यमाणश्चकुरुप्रवीरःसर्वैःसुहृद्भिर्ह्ययमप्यतज्ज्ञः ।

सदीव्यमानःप्रतिदीव्यचैनंगांधारराजस्यसुतंमताक्षं ॥

हित्वाहिकर्णं चासुयोधनंच समाह्वयद्देवितुमाजमीढः ।

इस कुरु-वंश-श्रेष्ठ युधिष्ठिर को सारे सुहृदों ने द्यूत खेलने का निषेध किया, परन्तु इसने इसका तत्व नहीं जाना। द्यूत खेलने को तत्पर इस अजमीढ़ वंशी, युधिष्ठिर ने कर्ण और सुयोधन को छोड़कर गांधारराज के पुत्र, छली शकुनि को ही खेलने के लिए आह्वान किया ॥९॥

दुरोदरास्तत्रसहस्रशोऽन्ये युधिष्ठिरोयान्विषहेतजेतुं ।

उत्सृज्यतान्सौबलमेवचायं समाह्वयत्तेनजितोऽद्यत्रत्यां

उस समय वहां द्यूत के अनेक खिलाड़ी विद्यमान थे, जिनको राजा युधिष्ठिर जीत सकता था। इसने उन सबको छोड़कर सुबल पुत्र को ही खेलने को बुलाया। उसने इसको द्यूत स्थान में जीत लिया ॥१०॥

सदीव्यमानःप्रतिदेवनेन अक्षेषुनित्यंतुपराङ्मुखेषु ११

संरंभमाणोविजितःप्रसह्य तत्रापराधः शकुनेर्नकश्चित् ।

यह अपने समय में पासे फेंक २ कर खेलने लगा। ज्यों ही इसके पासे विरुद्ध पड़ते थे, त्यों ही यह अड़ २ कर खेलता रहा। इस आग्रह में शकुनि का कुछ अपराध नहीं है ॥११॥

तस्मात्प्रणम्यैववचोब्रवीतु वैचित्रवीर्यंबहुसामयुक्तं ॥१२

तथाहिशक्योधृतराष्ट्रपुत्रः स्वार्थेनियोक्तुंपुरुषेणतेन।

अब विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र से प्रणाम करके दूत बड़े नम्र वचन सुनावे। इस तरह हो अहंकारी धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन उस चतुर पुरुष से पाण्डवों के स्वार्थ की सिद्धि के लिए प्रेरित किया जा सकता है ॥१२॥

अयुद्धमाकांक्षत कौरवाणां साम्नैव दुर्योधनमाह्वयध्वं।
साम्नाजितोऽर्थोऽर्थकरोभवेत युद्धेऽनयोभविता नेहसोऽर्थः

तुम सबको कौरवों में युद्ध को प्रारम्भ नहीं होने देना चाहिए। दुर्योधन को समझा कर इस कार्य के लिए तय्यार करो। जो कार्य, साम [शान्ति] उपाय से होता है, वह बड़ी सिद्धि का करने वाला होता है। युद्ध करने में तो अन्याय हो जाने की पद २ पर सम्भावना है और युद्ध से कार्य, उत्तम रीति से बनना भी नहीं माना जा सकता है ॥१३-१४॥

एवं ब्रुवत्येव मधुप्रवीरे शिनिप्रवीरः सहसोत्पपात
तच्चापि वाक्यंपरिनिंद्य तस्य समाददे वाक्यमिदं समन्युः

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि बलदेववाक्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! बलदेव के इतना कहने पर शिनिवंशवीर सात्यकि, एकदम खड़ा हो गया। वह बलदेव के वाक्य का विरोध करके क्रोध के साथ यह वचन बोला ॥१५॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में बलदेव वाक्य का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।

तीसरा अध्याय

सात्यकिरुवाच —

याद्दशः पुरुषस्यात्मा ताद्दशं संप्रभाषते।
यथारूपोऽतरात्मा ते तथारूपं प्रभाषसे ॥१॥

सात्यकि बोला — मनुष्य की जैसी शुद्ध या पापमयी आत्मा होती है, वह उसके अनुसार ही शुद्ध या पाप का भाषण करता है। हे बलदेव ! तेरी भी जैसी आत्मा है, तू भी उसी के अनुसार बोल रहा है ॥१॥

संति वै पुरुषाः शूराः संति कापुरुषास्तथा।
उभावेतौ दृढौ पक्षौ दृश्येते पुरुषान्प्रति ॥२॥

पुरुषों में शूरवीर और कायर दोनों प्रकार के पुरुष होते हैं, ये दो ही पक्ष-पुरुषों में दृढ़ रीति से देखे जाते हैं ॥२॥

एकस्मिन्नेव जायेते कुले क्लीबमहाबलौ।
फलाफलवती शाखे यथैकस्मिन्वनस्पतौ ॥३॥

एक ही कुल में क्लीब और महाबली दो प्रकार के पुरुष उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे एक ही वृक्ष में फलों से युक्त या फल हीन शाखा होती हैं ॥३॥

नाभ्यसूयामि ते वाक्यं ब्रुवतो लांगलध्वज।
ये तु शृण्वंति ते वाक्यं तानसूयामि माधव ॥४॥

हे हलधर ! माधव ! तुमने जो कहा—मैं इसकी निन्दा नहीं करता हूं। मैं तो इनकी निन्दा करता हूं, जो कौरवोंके पक्षपाती तेरे वचनों को चुपचाप सुन रहे हैं ॥४॥

कथं हि धर्मराजस्य दोषमल्पमपि ब्रुवन् ।
लभंत पारषन्मध्ये व्याहर्तुमकुतोभयः ॥५॥

समझदारों की सभा के मध्य में निरपराधी युधिष्ठिर का स्वल्प भी दोष निर्भीक होकर कौन कह सकता है ॥५॥

समाहूय महात्मानं जितवंतोऽक्षकोविदाः ।
अनक्षज्ञं यथाश्रद्धं तेषु धर्मजयः कुतः ॥६॥

द्यूत खेलने के ढंग को नहीं जानने वाले, द्यूत के प्रेम से हीन, महात्मा युधिष्ठिर को बुलाकर छली द्यूत के कौशल (फन) को जानने वाले कौरवों ने जीत लिया। क्या यह धर्म-युक्त जय कहाता है ? ॥६॥

यदि कुंतीसुतं गेहे क्रीडंतं भ्रातृभिः सह
अभिगम्य जयेयुस्ते तत्तेषां धर्मतो भवेत् ॥७॥

यदि घर में बुलाकर खेलते हुए, कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर को सारे भाइयों के साथ घेर कर जीत लिया, तो क्या यह धर्ममय विजय हो सकता है? ॥७॥

समाहूय तु राजानं क्षत्रधर्मरतं सदा
निकृत्या जितवंतस्ते किं नु तेषां परं शुभम् ॥८

क्षत्रियों के धर्म के आचरण करने वाले, राजा युधिष्ठिर को बुला कर यदि कौरवों ने छल से जीत लिया, तो क्या यह उनके लिए कल्याणकारी हो सकता है? ॥८॥

कथं प्रणिपतेच्चायमिह कृत्वा पणं परं ।
वनवासाद्विमुक्तस्तुप्राप्तः पैतामहं पदम् ॥९॥

धर्मराज, वनवास की प्रतिज्ञा को पूरी कर चुका है, क्या फिर भी यह उनके सम्मुख शिर ही झुकाता रहेगा। वनवास से लौट आनेपर तो यह अपन पैतृक राज्यका जन्मसिद्ध अधिकारी है

यद्ययं पापवित्तानि कामयेत युधिष्ठिरः।
एवमप्ययमत्यंतं परान्नार्हतियाचितुम् ॥१०॥

यदि राजा युधिष्ठिर अन्याय युक्त सम्पत्ति की अभिलाषा करता है; तो भी इसको प्रति-पक्षियों से याचना कभी नहीं करनी चाहिए ॥१०॥

कथं च धर्मयुक्तास्ते न च राज्यंजिहीर्षवः।
निवृत्तवासान् कौंतयान्यानाहुर्विदिता इति ॥११॥

यह कैसे माना जा सकता है कि कौरव धर्मात्मा हैं और वे इनके राज्य का अपहरण करना नहीं चाहते हैं; जब कि वे वनवास की प्रतिज्ञा पूरी करके लौटे हुए पाण्डवों को कह रहे हैं, कि अज्ञात-वास के मध्य में ही ये जान लिए गए, इससे ये फिर वन को जाने चाहिए ॥ ११ ॥

अनुनीता हि भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च।
न व्यवस्यंति पांडूनां प्रदातुंपैतृकं वसु ॥१२॥

भीष्म, द्रोण और विदुर ने कौरवों को बहुत वार शान्ति में समझा भी लिया। परन्तु वे पाण्डवों को पैतृक राज्य देने को तय्यार नहीं होते हैं॥ १२ ॥

अहं तु तान् शितैर्बाणैरनुनीय रणे बलात् ।
पादयोः पातयिष्यामि कौंतेयस्य महात्मनः ॥१३॥

मैं तो रण में तीक्ष्ण बाणों से उनका स्वागत करके महात्मा युधिष्ठिर के चरणों में उनको गिरा कर छोड़ूँगा ॥१३॥

अथ ते न व्यवस्यंति प्रणिपाताय धीमतः ।
गमिष्यन्ति सहामात्या यमस्यसदनं प्रति ॥१४॥

यदि वे आकर धर्मशील धर्मराज के चरणों में प्रणाम करने का प्रयत्न नहीं करेंगे, तो अपने मन्त्रियों के साथ उनको यमलोक जाना पड़ेगा ॥ १४ ॥

नहि ते युयुधानस्य संरब्धस्य युयुत्सतः ।
वेगं समर्थाः संसोढुं वज्रस्येव महीधराः ॥१५॥

ये कौरव, युद्ध की अभिलाषा से आवेश में भरे हुए, वीर युयुधान के वेग को वज्र के वेग को पर्वतों की तरह नहीं सह सकेंगे ॥ १५ ॥

को हि गांडीवधन्वानं कश्च चक्रायुधं युधि ।
मां चापि विषहेत् क्रुद्धं कश्च भीमं दुरासदम् ॥१६॥

कौरवों में कौन ऐसा वीर है, जो युद्ध में गाण्डीवधारी अर्जुन, चक्रधारी श्रीकृष्ण, क्रुद्ध हुए मुझे और दुधर्ष भीम के पराक्रम को सह सकता है ॥ १६ ॥

यमौ च दृढधन्वानौ यमकालोपमद्युती ।
विराटद्रुपदौ वीरौ यमकालोपमद्युती
को जिजीविषुरासादेद्धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् । ॥१७॥

नकुल सहदेव भी दृढ़ धनुषधारी यम और काल के समान कान्तिधारी है । इसी तरह विराट और द्रुपद भी मृत्युके दूत हैं । जीवन का अभिलाषी कौन पुरुष है, जो द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न के सामने आ सकता है ॥ १७ ॥

पंचैतान् पांडवेयांस्तु द्रौपद्याः कीर्तिवर्धनान्
समप्रमाणान्पांडूनां समवीर्यान्मदोत्कटान् ॥१८॥

द्रौपदी की कीर्ति के बढ़ाने वाले पाण्डवों के तुल्य ही बल रूप धारी मदोत्कट पांच पांडव-पुत्रों का कौन सामना (मुकाबिला) कर सकता है ॥ १८ ॥

सौभद्रं च महेष्वासममरैरपिदुःसहं
गदप्रद्युम्नसांबांश्च कालसूर्यानलोपमान् ॥१९॥

सुभद्रा-पुत्र महाधनुर्धर युद्ध में दुःसह अभिमन्यु तथा काल सूर्य और अग्नि के तुल्य तेजस्वी गद, प्रद्युम्न और साम्ब का युद्ध में कौन झटका झेल सकता है ॥ १९ ॥

ते वयं धृतराष्ट्रस्य पुत्रं शकुनिना सह ।
कर्णं चैव निहत्याजावभिषेक्ष्याम पांडवम् ॥२०।

हम सब लोग, शकुनि के साथ धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन और कर्ण को युद्ध में मार कर पाण्डु-पुत्र धर्मराज को इन्द्रप्रस्थ के सिंहासन पर बैठा देंगे ॥ २० ॥

नाधर्मो विद्यते कश्चिच्छत्रून् हत्वाततायिनः
अधर्म्यमयशस्यं च शात्रवाणां प्रयाचनम् ॥२१॥

आततायी, दुष्ट शत्रुओं के मार देने में कोई दोष नहीं है। शत्रुओं से भीख मांगना, अधर्म और अपयश का करने वाला है ॥ २१ ॥

हृद्गतस्तस्य यः कामस्तं कुरुध्वमतंद्रिताः ॥
निसृष्टं धृतराष्ट्रेण राज्यं प्राप्नोतु पांडवः॥२२॥
अद्य पांडुसुतो राज्यं लभतां वा युधिष्ठिरः ॥॥
निहता वा रणे सर्वे स्वप्स्यंति वसुधातले ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि सात्यकिक्रोध-
वाक्ये तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

तुम सब लोग सावधान होकर धर्मराज की अभिलाषा को पूरी करो, कि धृतराष्ट्र द्वारा प्रदान किए हुए राज्य को राजा युधिष्ठिर प्राप्त करले पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिरादि या तो अब राज्य पा लेगा नहीं तो सारे कौरव रण में मरे हुए भूमि में लेट लगावेंगे ॥ २२-२३ ।

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में सात्यकि के क्रोध पूर्ण कथन का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

चौथा अध्याय

द्रुपदवाच—

एवमेतन्महाबाहो भविष्यति न संशयः।
नहि दुर्योधनो राज्यं मधुरेण प्रदास्यति ॥१॥

द्रुपद कहने लगा— हे महाबाहो! जो तुम कह रहे हो, यही होगा। राजा दुर्योधन सीधी तरह आधा राज्य धर्मराज को नहीं देगा॥ १ ॥

अनुवर्त्स्यति तं चापि धृतराष्ट्रः सुतप्रियः।
भीष्म द्रोणौ च कार्पण्यान्मौर्ख्याद्राधेयसौबलौ ॥२॥

अपने पुत्र के प्रेम से धृतराष्ट्र भी उनका ही अनुसरण करेगा। अपनी परवशतासे भीष्म और द्रोण तथा अज्ञानसे कर्ण और शकुनि भी दुर्योधन का ही साथ देंगे ॥ २॥

बलदेवस्य वाक्यं तु मम ज्ञाने न युज्यते।
एतद्धि पुरुषेणाग्रे कार्यं सुनयमिच्छता ॥३॥

बलदेव का वाक्य मेरी भी समझ में नहीं आया। नीतिमान् पुरुष को आगे कहे हुए ढंग से कार्य करना चाहिए॥ ३ ॥

न तु वाच्यो मृदुवचो धार्त्तराष्ट्रः कथंचन।
न हि मार्दवसाध्योऽसौ पापबुद्धिर्मतोमम ॥४॥

धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन से नम्र वचन कहना कभी उचित नहीं है, क्योंकि यह कभी नम्र वचनों से मानने वाला नहीं है। मेरी सम्मति में तो यह बड़ा ही पाप-बुद्धि है॥ ४ ॥

गर्दभे मार्दवं कुर्याद्गोषु तीक्ष्णं समाचरेत् ।
मृदु दुर्योधने वाक्यं यो ब्रूयात्पापचेतसि ॥५॥

जो पाप चित्त वाले दुर्योधनसे नरम व्यवहार करना चाहता है, वह गधे से नम्रता और गौ से कठोरता का व्यवहार करना उचित मानता है ॥५॥

मृदुं वै मन्यते पापो भाषमाणमशक्तिगम् ।
जितमर्थं विजानीयादबुधो मार्दवे सति ॥६॥

पापी मनुष्य मृदु-भाषण को अशक्तियुक्त भाषण समझता है। यदि अज्ञानी के सम्मुख मृदुता स्वीकार की जाती है, तो वह अपने कार्य को सिद्ध हुआ समझता है ॥६॥

एतच्चैव करिष्यामो यत्नश्च क्रियतामिह ।
प्रस्थापयाम मित्रेभ्योबलान्युद्योज यंतु नः ॥७॥

मैं भी यही करूँगा और तुम भी इस तरह ही प्रयत्न करो। मैं अपनें मित्रों के पास सूचना भेज देता हूं, कि वे हमारे लिए सेना तय्यार करें ॥७॥

शल्यस्य धृष्टकेतोश्च जयत्सेनस्य वा विभो ।
केकयानां च सर्वेषां दूता गच्छंतु शीघ्रगाः ॥८॥

हे महाभाग! शल्य, धृष्टकेतु, जयत्सेन तथा सारे केकय देश के राजाओं के पास शीघ्रगामी दूत चले जाने चाहिए ॥८॥

स च दुर्योधनो नूनं प्रेषयिष्यति सर्वशः ।
पूर्वाभिपन्नाः संतश्च भजंते पूर्वचोदनम् ॥९॥

राजा दुर्योधन भी इन ही लोगों के पास अपने दूत भेजेगा। जो सज्जन होते हैं, वे पूर्व में याचना करने वाले की ओर अधिक ध्यान देते हैं ॥९॥

तत्त्वरध्वं नरेंद्राणां पूर्वमेव प्रचोदने।
महद्धि कार्यं वोढव्य मिति मे वर्त्तते मतिः ॥१०॥

यही कारण है, कि तुम को राजाओं के लिए प्रथम ही युद्ध का निमन्त्रण भेज देने की शीघ्रता करनी चाहिए। यह बड़ा भारी काम करना है- ऐसा मेरा खयाल है ॥२०॥

शल्यस्य प्रेष्यतां शीघ्रं ये च तस्यानुगा नृपाः।
भगदत्ताय राज्ञे च पूर्वसागरवासिने ॥११॥

सबसे शीघ्र शल्य और उसके अनुयायी राजाओं के पास दूत भेजो और पूर्व सागर के निवासी भगदत्त पर भी शीघ्र ही दूत जाने चाहिए ॥११॥

अमितौजसे तथोग्राय हार्दिक्यायांधकाय च।
दीर्घप्रज्ञाय शूराय रोचमानाय वा विभो ॥१२॥

हे महाभाग! अमितौजस, उग्र, हार्दिक्य, अंधक, दीर्घप्रज्ञ, शूरवीर रोचमान आदि राजाओं के पास दूत भेजो ॥१२॥

आनीयतां बृहंतश्च सेना बिंदुश्च पार्थिवः।
सेनजित्प्रतिविंध्यश्च चित्रवर्मा सुवास्तुकः ॥१३॥
बाह्लीको मुंजकेशश्च चैद्याधिपतिरेवच।
सुपार्श्वश्च सुबाहुश्च पौरवश्च महारथः ॥१४॥

शकानां पह्लवानां च दरदानां च ये नृपाः ।
सुरारिश्च नदीजश्च कर्णवेष्टश्च पार्थिवः ॥१५॥
नीलश्च वीरधर्मा च भूमिपालश्च वीर्यवान् ।
दुर्जयो दंतवक्रश्च रुक्मी च जनमेजयः ॥१६॥
आषाढो वायुवेगश्च पूर्वपाली च पार्थिवः ।
भूरितेजा देवकश्च एकलव्यः सहात्मजैः ॥१७॥
कारूपकाश्च राजानः क्षेमधूर्त्तिश्च वीर्यवान् ।
कांबोजा ऋषिका ये च पश्चिमानूपकाश्च ये ॥१८॥
जयत्सेनश्च काश्यश्च तथा पंचनदा नृपाः ।
क्राथपुत्रश्च दुर्द्धर्षः पार्वतीयाश्च ये नृपाः॥१९॥
जानकिश्च सुशर्मा च मणिमान्योतिमत्सकः ।
पांशुराष्ट्राधिपश्चैव धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ॥२०॥
तुंडश्च दंडधारश्च बृहत्सेनश्च वीर्यवान् ।
अपराजितो निषादश्च श्रेणिमान्वसुमानपि ॥२१॥
बृहद्बलो महौजाश्च बाहुः परपुरंजयः ।
समुद्रसेनो राजा च सह पुत्रेण वीर्यवान् ॥२२॥
उद्भवः क्षेमकश्चैव वाटधानश्च पार्थिवः ।
श्रुतायुश्च दृढायुश्च शाल्वपुत्रश्च वीर्यवान् ॥२३॥
कुमारश्च कलिंगानामीश्वरो युद्धदुर्मदः ।
एतेषां प्रेष्यतां शीघ्रमेतद्धि मम रोचते ॥२४॥

राजा बिन्दु भी विशाल सेना लेकर आवे। सेनजित, प्रतिविन्ध्य, चित्रवर्मा, सुवास्तुक, बाह्लीक, मुंजकेश, चैद्याधिपति, सुपार्श्व, सुबाहु, महारथी पौरव, शक, पह्लव, दरदों के अधिपति, सुरारि, नदीज, राजा कर्णवेष्ट, वीरधर्मा, नील वीर्यवान् भूमिपाल, दुर्जय, दन्तवक्र, रुक्मी, जनमेजय, आषाढ़, वायुवेग, राजा पूर्वपाली भूरितेज, देवक, पुत्रों के साथ एकलव्य, राजा कारूषक, वीर्यवान् क्षेत्रधूर्ति, काम्बोज, ऋषीक, पश्चिम जल प्रदेश के निवासी, जयत्सेन, काश्य, पञ्चनद के अधिपति क्राथपुत्र, दुर्धर्ष, पर्वत-प्रदेश के राजा, जनकवंशी, सुशर्मा, मणिमान्य, अतिमत्स्यक, पांशुराष्ट्राधिप, वीर्यवान् धृष्टकेतु, तुण्ड, दण्डधार, वीर्यवान् बृहत्सेन, अपराजित निषाद, श्रेणिमान, वसुमान्, बृहद्बल, महौजा, बाहु, परपुरञ्जय, पुत्र सहित वीयवान् राजा समुद्रसेन, उद्भव, क्षेमक, राजा वाटधान, श्रुतायु, दृढ़ायु, वीर्यवान् शाल्वपुत्र, कलिंगाधिपति, युद्धदुर्मद कुमार, इन सबके पास शीघ्र दूत भेजो—मेरी ऐसी सम्मति है ॥१३-२४॥

अयं च ब्राह्मणो विद्वान् मम राजन् पुरोहितः ।

प्रेष्यतां धृतराष्ट्राय वाक्यमस्मै प्रदीयताम् ॥२५॥

हे राजन् ! यह विद्वान ब्राह्मण, मेरा पुरोहित है। इसको धृतराष्ट्र के पास भेजो और जो कुछ सन्देशा कहना हो—कहला भेजो ॥ २५ ॥

यथा दुर्योधनो वाच्यो यथा शांतनवो नृपः ।
धृतराष्ट्रो यथावाच्यो द्रोणश्च रथिनांवरः॥२६॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनाद्योगपर्वणि
द्रुपद वाक्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

जो कुछ सन्देश दुर्योधन, शान्तनु-पुत्र भीष्म, धृतराष्ट्र और रथियों में श्रेष्ठ द्रोण से कहना है, वह भी कहला भेजो ॥ २६॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में द्रुपद वाक्य का चौथा अध्याय पूरा हुआ ।



पांचवां अध्याय

वासुदेव उवाच—

उपपन्नमिदंवाक्य सोमकानां धुरंधरे ।
अर्थसिद्धिकर राज्ञः पांडवस्यामितौजसः ॥१॥

श्रीकृष्ण बोले—हे महानुभावो ! सोमकवंशी धुर के धारण करने वाले द्रुपदराज का वचन बड़ा ही उचित है, जो अत्यन्त ओजस्वी, पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर की अर्थ सिद्धि का सम्पादन करने वाला है ॥ १ ॥

एतच्च पूर्वं कार्यं नः सुनीतमभिकांक्षताम् ।
अन्यथा ह्याचरन्कर्म पुरुषः स्यात्सुबालिशः ॥२॥

सुन्दर नीति की इच्छा करने वाले हम लोगों का यह सबसे पहिला कार्य है। नीति के विरुद्ध काम करने वाला पुरुष पागल ही कहाता है ॥ २ ॥

किंतु संबंधकं तुल्यमस्माकं कुरुपांडुषु ।
यथेष्टं वर्तमानेषु पांडवेषु च तेषु च ॥३॥

हे द्रुपदराज! कौरव और पाण्डवों से हमारा एक सा सम्बन्ध (रिश्ता) है। ये पाण्डव और कौरव अपनी इच्छा के अनुसार बर्ताव करें। हम अचानक इनके मध्य में कैसे बोल सकते हैं ३

ते विवाहार्थमानीता वयं सर्वे तथा भवान् ।
कृते विवाहे मुदिता गमिष्यामो गृहान्प्रति ॥४॥

इन्होंने हमको विवाह में बुलाया तो चले आए। हम ही क्या ये सारे राजा और आप भी इस विवाह में ही पधारे हैं। इस विवाह के समाप्त होते ही हम लोग तो घर को चले जावेंगे ॥४॥

भवान् वृद्धतमो राज्ञां वयसा च श्रुतेन च ।
शिष्यवत्ते वयं सर्वे भवामेह न संशयः ॥५॥

आप राजाओं में आयु और ज्ञान में वृद्ध हैं। हम लोग तो आपके शिष्य के समान हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥५॥

भवन्तं धृतराष्ट्रश्च सततं बहुमन्यते ।
आचार्ययोः सखा चासि द्रोणस्य च कृपस्य च ॥६॥

आपको राजा धृतराष्ट्र भी सदा बड़े आदर की दृष्टि से देखता है। आप द्रोण और कृप इन दोनों आचार्यों के भी परम मित्र हैं ॥६॥

स भवान्प्रेषयत्वद्य पांडवार्थकरं वचः ।
सर्वेषां निश्चितं तन्नः प्रेषयिष्यति यद्भवान् ॥७॥

अब आप ही पाण्डवों की सिद्धि करने वाला सन्देश कौरवों के पास भेजो। आप सब लोगों में जो बात निश्चित हो जावे-उसकी सूचना हमको कर देना ॥७॥

यदि तावच्छमं कुर्यान्न्यायेन कुरुपुंगवः ।
न भवेत् कुरुपांडूनां सौभ्रात्रेण महान् क्षयः ॥८॥

यदि न्यायानुसार कुरुवंशश्रेष्ठ राजा दुर्योधन, सन्धि कर लेगा, तो इस परस्पर भाइयों के प्रेम स कुरु पाण्डवों का महान् क्षय नहीं ह गा ॥८॥

अथ दर्पान्वितो मोहान्न कुर्याद्धृतराष्ट्रजः ।
अन्येषां प्रेषयित्वा च पश्चादस्मान्समाहूयेः ॥९॥

धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन, यदि घमण्ड या अज्ञान से आपकी बात को न माने, तो आप अन्य राजाओं के पास दूत भेजें और पीछे हमको भी बुला लें ॥९॥

ततो दुर्योधनो मन्दः सहामात्यः सबांधवः ।
निष्ठामापत्स्यते मूढः क्रुद्धे गांडीवधन्वनि ॥१०॥

इस तरह गाण्डीवधारी अर्जुन के कुपित होने पर फिर

मूर्ख दुर्योधन बांधव और मंत्रियों के साथ नाश को प्राप्त हो जावेगा- यह निश्चित है ॥१०॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः सत्कृत्य वार्ष्णेयं विराटः पृथिवीपतिः ।
गृहात् प्रस्थापयामास सगणं सबांधवम्॥११॥

इसके अनन्तर वृष्णिवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण का सत्कार करके राजा विराट ने सेना और बांधवों के सहित श्रीकृष्ण को अपने घर से विदा किया ॥११॥

द्वारकां तु गते कृष्णे युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
चक्रुः सांग्रामिकं सर्वं विराटश्च महीपतिः॥१२॥

श्रीकृष्ण के द्वारका को चले जाने पर युधिष्ठिर आदि पाण्डवों और राजा विराट ने युद्ध का ही निश्चय किया ॥१२

ततः संप्रेषयामास विराटः सह बांधवैः ।
सर्वेषां भूमिपालानां द्रुपदश्च महीपतिः ॥१३॥

बांधवों के सहित राजा विराट और राजा द्रुपद ने अन्य सारे राजाओं को भी विदा कर दिया ॥१३॥

वचनात्कुरुसिंहानां मत्स्यपांचालयोश्च ते ।
समाजग्मुर्महीपालाः संप्रहृष्टा महाबलाः ॥१४॥

कुरु-सिंह पाण्डव और मत्स्य-पाञ्चाल-देशाधिपति, विराट और द्रुपद के बुलाने पर ये सारे महाबली राजा, बड़े प्रेम से यहाँ आए थे ॥१४॥

तच्छ्रुत्वा पांडुपुत्राणां समागच्छन्महद्बलम्।
धृतराष्ट्रसुताश्चापि समानिन्युर्महीपतीन् ॥१५॥

धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जब सुना, कि विराट-नगरी में राजाओं का जमघट हो रहा है, तो उन्होंने भी अपने मित्र राजाओं को सम्मति करने बुलाया ॥१५॥

समाकुला मही राजन् कुरुपांडवकारणात्।
तदा समभवत्कृत्स्ना संप्रयाणे महीक्षिताम् ॥१६॥

हे राजन्! इस तरह कौरव और पाण्डवों के कारण से युद्ध यात्रा के विचार से इकट्ठे हुए, राजाओं से सारी भूमि व्याकुल हो उठी ॥१६॥

संकुला च तदा भूमिश्चतुरंगबलान्विता।
बलानि तेषां वीराणामागच्छन्ति ततस्ततः ॥१७॥
चालयंतीव गां देवीं सपर्वतवनामिमाम्।

चतुरङ्गिणी सेना से भूमि, चारों ओर से घिर गई। दोनों ओर के वीरों की सेना इधर उधर से आ जा रही थी, जो पर्वत, वन से युक्त, इस पृथिवी को हिलाए दे रही थी ॥१७॥

ततः प्रज्ञावयोवृद्धं पांचाल्यः स्वपुरोहितम्।
कुरुभ्यः प्रेषयामास युधिष्ठिरमते स्थितः ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
पुरोहितयाने पंचमोऽध्यायः ॥५॥

इसके अनन्तर बुद्धि, बल और वयो वृद्ध, पाञ्चालपति राजा द्रुपद ने राजा युधिष्ठिर की सम्मति से कौरवों के पास संदेश लेकर अपना पुरोहित भेजा ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में पुरोहित के गमन का पांचवा अध्याय समाप्त हुआ।

छठा अध्याय

द्रुपद उवाच—

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेष्वपि द्विजातयः ॥१॥
द्विजेषु वैद्याः श्रेयांसो वैद्येषु कृतबुद्धयः ।
कृत बुद्धिषु कर्त्तारः कर्त्तृषु ब्रह्मवादिनः ॥२॥
स भवान् कृतबुद्धीनां प्रधान इति मे मतिः ।
कुलेन च विशिष्टोऽसि वयसा च श्रुतेन च ॥३॥
प्रज्ञया सदृशश्चासिशुक्रेणांगिरसेन च ।
विदितं चापि ते सर्वं यथावृत्तः सकौरवः ॥४॥
पांडवश्च यथावृत्तः कुंतीपुत्रोयुधिष्ठिरः ।
धृताराष्ट्रस्य विदिते वंचिताः पांडवाः परैः॥५॥
विदुरेणानुनीतोऽपि पुत्रमेवानुवर्त्तते ।

द्रुपद कहने लगा— पञ्च महा भूतों में प्राणी, प्राणियों में बुद्धिमान् प्राणी, बुद्धिमान् प्राणियों में मनुष्य, मनुष्यों में ब्राह्मण, ब्राह्मणों में विद्वान, विद्वानों में तत्वज्ञ, तत्वज्ञाताओं में कर्मयोगी, कर्मयोगियों में ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं। हे ब्रह्मन्! मैं यह जानता हूं, कि आप तत्व के जाननेवालों में प्रधान हैं। आप कुल और आयु में वृद्ध (बड़े) हो। आप बुद्धि में शुक्र और बृहस्पति के सदृश हैं। तुम कुरुवंशोत्पन्न राजा दुर्योधन और कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर के सारे आचरण और स्वरूप को जानते हो। तुम यह भी जानते हो, कि दुर्योधनादि ने राजा धृतराष्ट्र के ज्ञान में हीं पाण्डवों को छल से जीत लिया था। राजा धृतराष्ट्र को विदुर ने बहुत समझाया, परन्तु उसने अपने पुत्र दुर्योधन का ही पक्ष लिया ॥१-५॥

शकुनिर्बुद्धिपूर्वं हि कुंतीपुत्रं समाह्वयत् ॥६॥
अनक्षज्ञं मताक्षः सन्क्षत्रवृत्ते स्थितंशुचिम् ।
ते तथा वंचयित्वा तु धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥७॥
न कस्यांचिदवस्थायां राज्यं दास्यति वैस्वयम् ।

द्यूत कपटी शकुनि ने, जान बूझकर पासे खेलना नहीं जानने वाले राजा युधिष्ठिर को बुलाया, जो कि क्षात्र धर्म में स्थित था- उन्होंने उस समय में राजा युधिष्ठिर को बुरी तरह ठग लिया। अब वे किसी भी अवस्था में स्वयं धर्मराज को उसका राज्य नहीं देंगे ॥६-७॥

भवांस्तु धर्मसंयुक्तं धृतराष्ट्रं ब्रुवन्वचः ॥८॥
मनांसि तस्य योधानां ध्रुवमावर्त्तयिष्यति ।

आप धृतराष्ट्र से धर्मानुकूल इस तरह वचन बोले, कि जिस से उनके योद्धाओं के चित्त पर इस कथन का प्रभाव पड़े और उनका चित्त दुर्योधन के विरुद्ध हो जावे ॥ ८ ॥

विदुरश्चापि तद्वाक्यं साधयिष्यति तावकम् ॥९॥
भीष्मद्रोणकृपादीनां भेदं संजनयिष्यति ।

विदुर भी, तुम्हारे वाक्य की पुष्टि में सहायता करेगा । यही विदुर, भीष्म, द्रोण और कृप आदि दुर्योधन के विरुद्ध, उचित ज्ञान करावेगा ॥ ९ ॥

अमात्येषु च भिन्नेषुयोधेषुविमुखेषु च ॥१०॥
पुनरेकत्रकरणं तेषां कर्म भविष्यति ।

जब मन्त्री और मुख्य २ योद्धा, दुर्योधन के विरुद्ध हो जावेंगे, तो फिर उनके अनुकूल करने का झगड़ा खड़ा हो जावेगा ॥ १० ॥

एतस्मिन्नंतरे पार्थाः सुखमेकाग्रबुद्धयः ॥११॥
सेनाकर्म करिष्यन्ति द्रव्याणां चैव संचयम् ।

मिली बुद्धि वाले पाण्डव, इस बीच में बड़े सुख से सेना और धन इकट्ठा कर लेंगे ॥ ११ ॥

विद्यमानेषु च स्वेषु लम्बमाने तथा त्वयि ॥१२॥
न तथा ते करिष्यन्ति सेनाकर्म न संशयः।
एतत्प्रयोजनं चात्र प्राधान्येनोपलभ्यते ॥१३॥

हमारे मत के लोगों के वहां विद्यमान होने तथा तेरे भी विलम्ब लगाकर लौटकर आने से वे सेना का सञ्चय ढंग से कर ही नहीं सकेंगे। तुम्हारे जाने से प्रधानतया हमारा यह प्रयोजन सिद्ध हो जावेगा ॥ १२-१३ ॥

संगत्या धृतराष्ट्रश्च कुर्याद्धर्म्यं वचस्तव।
स भवान् धर्मयुक्तश्च धर्म्यं तेषु समाचरन् ॥१४॥

जब तुम्हारा और धृतराष्ट्र का मिलना होगा, तब वह तुमसे बड़ी धर्मानुकूल बातें करेगा। तुम भी धर्म के ज्ञाता हो, इससे उसके साथ धर्मानुसारिणी बातें बनाना ॥ १४ ॥

कृपालुषु परिक्लेशान्पाण्डवीयान्प्रकीर्त्तयन्।
वृद्धेषु कुलधर्मं च ब्रुवन्पूर्वैरनुष्ठिताम् ॥१५॥

जो दयालु प्रकृति के मनुष्य हों, उनसे पाण्डवों के क्लेश की चर्चा करना और वृद्ध पुरुषों में पूर्वजों के किये हुए कुल धर्मों का कथन करना ॥ १५ ॥

विभेत्स्यति मनांस्येषामिति मे नात्रसंशयः।
न च तेभ्यो भयं तेऽस्ति ब्राह्मणोह्यसि वेदवित् ॥१६॥

इस तरह उनमें बहुओं के मन विचलित हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। तुम तो वेद के ज्ञाता ब्राह्मण हो, इन सब बातों के सम्पादन करने में तुमको कुछ भी भय नहीं मानना चाहिए ॥ १६ ॥

दूतकर्मणि युक्तश्च स्थविरश्च विशेषतः ।
सभवान्पुष्ययोगेन मुहूर्त्तेन जयेन च ।
कौरवेयान्प्रयात्वाशु कौंतेयस्यार्थसिद्धये ॥१७॥

आप तो दूत कर्म में कुशल हैं। यह वृद्धावस्था इन हीं कार्यों के करने में हुई है। तुम पुण्य नक्षत्र, युद्ध-विजयी मुहूर्त में कौरवों के पास राजा युधिष्ठिर की सिद्धि के लिए शीघ्र जाओ ॥१७॥

वैशम्पायन उवाच—

तथाऽनुशिष्टः प्रययौ द्रुपदेन महात्मना ।
पुरोधा वृत्त संपन्नो नगरं नागसाह्वयम् ॥१८॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इस प्रकार उचित रीति से महात्मा द्रुपद्द्वारा सिखाया हुआ, द्रुपद का आचार सम्पन्न पुरोहित, हस्तिनापुर को चल दिया ॥ १८ ॥

शिष्यैः परिवृतो विद्वान् नीतिशास्त्रर्थकोविदः ।
पांडवानां हितार्थाय कौरवान् प्रतिजग्मिवान् ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पुरोहितयाने
षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

इस विद्वान ब्राह्मण के साथ कुछ शिष्य भी चले। यह नीति शास्त्र का अच्छा पण्डित था। यह पाण्डवों के हित सम्पादन के लिये कौरवों के पास चल दिया ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योपर्वान्तर्गत सेनाद्योगपर्व में पुरोहित के गमन का छठा अध्याय समाप्त हुआ

सातवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

पुरोहितं ते प्रस्थाप्य नगरं नागसाह्वयम् ।
दूतान्प्रस्थापयामासुः पार्थिवेभ्यस्ततस्ततः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भरतर्षभ! राजा द्रुपद ने हस्तिनापुर को अपना पुरोहित भेज कर इधर उधर राजाओं के पास दूत भेजे।

प्रस्थाप्य दूतानन्यत्र द्वारकां पुरुषर्षभः ।
स्वयं जगाम कौरव्यः कुंतीपुत्रो धनंजयः ॥२॥

पुरुषर्षभ, कुरुश्रेष्ठ कुन्ती-पुत्र, अर्जुन, अन्य स्थान में दूत भेज कर द्वारका में स्वयं पहुंचा। ॥ २ ॥

गते द्वारवतीं कृष्णे बलदेवे च माधवे ।
सह वृष्ण्यन्धकैः सर्वैर्भोजैश्च शतशस्तदा ॥३॥
सर्वमागमयामास पांडवानां विचेष्टितम् ।
धृतराष्ट्रात्मजो राजा गूढैः प्रणिहितैश्चरैः ॥४॥

स श्रुत्वा माधवं यांतं सदश्वैरनिलोपमैः ।
बलेन नातिमहता द्वारकामभ्ययात्पुरीम् ॥५॥

इसने द्वारकामें पहुंचने पर समयपर वृष्णि,अन्धक तथा सैंकड़ों भोजवंशा वीरों के साथ द्वारका निवासी श्रीकृष्ण और बलदेव को पाण्डवों की सारी चेष्टाओं (प्रोग्राम) का बोध कराया, राजा दुर्योधन को जब अपने लगाये हुए गुप्तचरों से यह पता लगा, कि श्रीकृष्ण, युद्ध में पाण्डवों की ओर जाने का विचार कर रहे हैं,तो यह थोड़ी सी सेना लेकर वायु के समान वेगशील अश्वों से द्वारकापुरी में पहुंचा ॥ ४-५ ॥

तमेव दिवसं चापि कौंतेयः पांडुनंदनः ।
आनर्त्तनगरीं रम्यां जगामाशु धनंजयः ॥६॥

जिस दिन दुर्योधन द्वारका में पहुंचा, उसी दिन कुन्तीपुत्र पाण्डवनन्दन अर्जुन भी आनर्त नगरी द्वारका में पहुंचा ॥ ६॥

तौ यात्वा पुरुषव्याघ्रौ द्वारकांकुरुनंदनौ ।
सुप्तं ददृशतुः कृष्णंशयानंचाभिजग्मतुः ७

ये दोनों कुरुवंशोत्पन्न पुरुष-श्रेष्ठ, द्वारका में गए। इन्होंने सुना, कि श्रीकृष्ण सो रहे हैं, ये दोनों सोते हुए श्रीकृष्ण के पास ही पहुंचे ॥ ७ ॥

ततः शयाने गोविंदे प्रविवेश सुयोधनः।
उच्छीर्षतश्चकृष्णस्य निषसाद वरासने ॥८॥

श्रीकृष्ण के सोते हुए ही दुर्योधन उनके भवन में चला गया और श्रीकृष्ण के शिर की ओर बिछे हुए उत्तम आसन पर जा बैठा ॥ ८ ॥

ततः किरीटी तस्यानुप्रविवेश महामनाः ।
पश्चाच्चैव स कृष्णस्य प्रह्वोऽतिष्ठत्कृतांजलिः ॥९॥

महामना अर्जुन भी, दुर्योधन के पीछे श्रीकृष्ण के भवन में घुसा और यह हाथ जोड़ कर नम्रता से श्रीकृष्ण के सामने खड़ा रहा ॥ ९ ॥

प्रतिबुद्धः स वार्ष्णेयो ददर्शाग्रे किरीटिनम् ।
स तयोः स्वागतं कृत्वा यथावत्प्रतिपूज्य तौ ॥१०॥
तदा गमनजं हेतुं पप्रच्छ मधुसूदनः ।

जब वृष्णि-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण को चेत हुआ तो उन्होंने अपने सामने अर्जुन को खड़ा देखा। इसके पीछे दुर्योधन पर दृष्टि पड़ी। श्रीकृष्ण ने दोनों का यथायोग्य स्वागत किया और यथाविधि सत्कार के अनन्तर मधुसूदन कृष्ण ने उनके आने का कारण पूछा ॥ १० ॥

ततो दुर्योधनः कृष्णमुवाच प्रहसन्निव ॥११॥
विग्रहेऽस्मिन् भवान् साह्यं मम दातुमिहार्हति ।
समं हि भवतः सख्यं मम चैवार्जुनेऽपि च ॥१२॥
तथा संबंधकं तुल्यमस्माकं त्वयि माधव ।
अहं चाभिगतः पूर्वं त्वामद्य मधुसूदन ॥१३॥
पूर्वं चाभिगतं सन्तो भजन्ते पूर्वसारिणः ।

दुर्योधन ने मुस्कुराते हुए श्रीकृष्ण से कहा—कि हम लोगों में झगड़ा खड़ा हो गया है, आप हमारी सहायता करें। हे माधव ! आपकी मित्रता मुझसे और अर्जुनसे समान है और हमारा सम्बन्ध भी तुम से बराबर का ही है। हे मधुसुदन ! आज मैं आपके पास अर्जुन से पूर्व ही आया हूं। सज्जन, पूर्व में आये हुए पुरुष की अधिक सहायता करते हैं, क्योंकि उनको पूर्व में आने वाला का आग्रह हो जाता है ॥ ११-१३ ॥

त्वं च श्रेष्ठतमो लोके सतामद्य जनार्दन ॥१४॥
सततं संमतश्चैव सद्वृत्तमनुपालय ।

हे जनार्दन ! तुम सज्जनों के समाज में आज कल श्रेष्ठ माने जाते हो और प्रतिष्ठित हो। अब तुम सज्जनों के व्यवहार को स्वीकार करो ॥ १४ ॥

कृष्ण उवाच—
भवानभिगतः पूर्वमत्र मे नास्ति संशयः ।
दृष्टस्तु प्रथमं राजन् मया पार्थो धनंजयः ॥१५॥

श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! इसमें संशय नहीं, कि आप यहां पहिले आए हो, परन्तु मैंने तो प्रथम कुन्ती-पुत्र अर्जुन को देखा है ॥ १५ ॥

तव पूर्वाभिगमनात्पूर्वं चाप्यस्य दर्शनात् ।
साहाय्यमुभयोरेव करिष्यामि सुयोधन ॥१६॥

हे सुयोधन! तुम्हारे पूर्व आने और इनके पूर्व दिखाई देने से मैं दोनों को ही सहायता करूंगा ॥ १६॥

प्रवारणं तु बालानां पूर्वं कार्यमिति श्रुतिः ।
तस्मात्प्रवारणं पूर्वमर्हः पार्थो धनंजयः ॥१७॥

बालकों के मन की अभिलाषा प्रथम पूरी करनी चाहिए—यही सभ्यता है, इससे कुन्ती-पुत्र धनञ्जय, प्रथम अपनी अभिलाषा को पूर्ण कर ले ॥ १७ ॥

मत्संहननतुल्यानां गोपानामर्बुदं महत् ।
नारायणा इति ख्याताः सर्वे संग्रामयोधिनः ॥१८॥

मेरे शरीर के समान ही दृढ़ शरीरधारी, एक अरब गोपों की सेना है, जो गोप नारायण कहाते हैं। ये सारे ही संग्राम में वीरता से लड़ने वाले हैं॥ १८ ॥

ते वा युधि दुराधर्षा भवंत्वेकस्य सैनिकाः।
अयुध्यमानः संग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेकतः ॥१९॥

युद्ध में दुराधर्ष, मेरे सैनिकों को तुम में से एक ले लो और एक ओर संग्राम में शस्त्र न लेकर बिना युद्ध किए मैं सहायता करूंगा ॥ १९ ॥

आभ्यामन्यतरं पार्थ यत्ते हृद्यतरं मतम् ।
तद्वृणीतां भवानग्रे प्रवार्यस्त्वं हि धर्मतः ॥२०॥

हे अर्जुन! इनमें से जो तुझे अच्छा लगे—वह प्रथम तू मांग ले, क्योंकि धर्मानुसार प्रथम छोटे की इच्छा पूरी करनी है ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवच—

एवमुक्तस्तु कृष्णेन कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।

अयुध्यमानं संग्रामे वरयामास केशवम् ॥२१॥

नारायणममित्रघ्नं कामाज्जातमजं नृषु ।

वैशम्पायन बोले—श्रीकृष्ण के इतना कहने पर कुन्ती-पुत्र धनञ्जय, ने संग्राम में युद्ध नहीं करने की प्रतिज्ञा करने पर भी शत्रु नाशक, अपनी इच्छा से मनुष्यों में अवतरित, अज, सर्व-व्यापक ईश्वर के अवतार; श्रीकृष्ण को ही मांगा ॥ २१ ॥

सर्वक्षत्रस्य पुरतो देव दानवयो रपि ॥२२॥

दुर्योधनस्तु तत्सैन्यं सर्वमावरयत्तदा ।

सारे क्षत्रिय और देव दानवों के ज्ञान में राजा दुर्योधन ने श्रीकृष्ण की सारी सेना बड़े हर्ष से स्वीकार करली ॥२२॥

सहस्राणां सहस्रं तु योधानां प्राप्य भारत ॥२३॥

कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा संप्राप परमां मुदम् ।

हे भारत! कहीं हजारों से हजारों को गुणान करने पर जो संख्या होती है अर्थात् उस संख्या से युक्त योधाओं को पाकर और कृष्ण को खाली हुआ जानकर शक्ति हीन राजा दुर्योधन बड़ा ही सन्तुष्ट हुआ ॥२३॥

दुर्योधनस्तु तत्सैन्यं सर्वमादाय पार्थिवः ॥२४॥

ततोऽभ्ययाद्भीमबलो रौहिणेयं महाबलम् ।

राजा दुर्योधन उस सारी सेना को लेकर इस महाभयानक सेना के साथ महाबली रोहिणी पुत्र बलदेव के पास पहुँचा ॥२४

सर्वं चागमने हेतुं स तस्मै संन्यवेदयत ।

प्रत्युवाच ततः शौरिर्धार्तराष्ट्र मिदं वचः ॥२५॥

दुर्योधन ने अपने आगमन का सारा कारण उनको भी कह सुनाया। अब वसुदेव पुत्र बलराम ने धृतराष्ट्र पुत्र, दुर्योधन से इस प्रकार कहा ॥२५॥

बलदेव उवाच—

विदितं ते नरव्याघ्र सर्वंभवितुमर्हति ।

यन्मयोक्तं विराटस्य पुरा वैवाहिके तदा ॥२६॥

हे राजन्! तुमको यह विदित हो चुका होगा, जो मैंने विराट नगरी में अभिमन्यु के विवाह के समय कहा था ॥२६॥

निगृह्योक्तो हृषीकेशस्त्वदर्थं कुरुनंदन ।

मया संबंधकं तुल्यमिति राजन्पुनः पुनः ॥२७॥

हे कुरुनन्दन! मैंने वहां बड़ा दबाव देकर श्रीकृष्ण को तुम्हारी ओर करना चाहा। हे राजन्! मैंने बार २ उनसे तुम्हारे बराबर के सम्बन्धी होने की भी बात कही ॥२७॥

न च तद्वाक्यमुक्तं वै केशवं प्रत्यपद्यत ।

न चाहमुत्सहे कृष्णं विनास्थातुमपि क्षणम् ॥२८॥

परन्तु मेरी कही हुई बात,कृष्ण की समझ में ही नहीं आई और मैं कृष्ण से विरुद्ध होकर एक क्षण भी रहना नहीं चाहता हूँ ॥२८

नाहं सहायः पार्थस्य नापि दुर्योधनस्य वै ।
इति मे निश्चिता बुद्धिर्वासुदेवमवेक्ष्य ह ॥२६॥

कृष्ण का यह ढँग देखकर मैंने तो निश्चय कर लिया है, कि मैं न तो युधिष्ठिर का साथ दूँगा और न दुर्योधन की ही सहायता करूँगा ॥२६॥

जातोऽसि भारते वंशे सर्वपार्थिवपूजिते ।
गच्छ युध्य स्वधर्मेण क्षात्रेण पुरुषर्षभ ॥३०॥

हे पुरुषर्ष ! तुम भी भरत के पवित्र वंश में उत्पन्न हुए हो, जिसको सारे राजा आदर की दृष्टि से देखते हैं । अब तुम जाओ और क्षात्र-धर्म के अनुसार युद्ध करो ॥३०॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्येवमुक्तस्तु तदा परिष्वज्य हलायुधम् ।
कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा युद्धान्मेनेजितं जयम् ॥३१॥

वैशम्पायन बोले:— बलदेव के इतना कहने पर राजा दुर्योधन ने बलदेव का आलिङ्गन किया । इसने अकेले कृष्ण को शक्ति हीन समझकर युद्ध को जीता हुआ ही समझा ॥३१॥

सोऽभ्ययात्कृतवर्माणं धृतराष्ट्रसुतो नृपः ।
कृतवर्मा ददौ तस्य सेनामक्षौहिणीं तदा ॥३२॥

धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन अब कृतवर्मा के पास पहुंचा, उसने भी इसको एक अक्षौहिणी सेना प्रदान की ॥ ३२॥

स तेन सर्वसैन्येन भीमेन कुरुनन्दनः ।
वृतः परिययौ हृष्टः सुहृदः संप्रहर्षयन् ॥ ३३ ॥

कुरुनन्दन दुर्योधन, इस सारी भीषण सेना से युक्त होकर अपने मित्रों को संप्रहर्षित करता हुआ बड़ी प्रसन्नता से हस्तिनापुर को चला गया ॥३३॥

ततः पीताम्बरधरो जगत्स्रष्टा जनार्दनः ।
गते दुर्योधने कृष्णः किरीटिनमथाब्रवीत् ।
अयुध्यमानः कां बुद्धिमास्थायाहं वृतस्त्वया ॥३४॥

दुर्योधन के चले जाने पर पीताम्बरधारी, जगत् के रचयिता जनार्दन श्रीकृष्ण, किरीट धारी अर्जुन से बोला—हे अर्जुन! युद्ध नहीं करने की प्रतिज्ञा करने पर भी तूने मुझे ही क्यों ग्रहण किया है ॥३४॥

अर्जुन उवाच—

भवान् समर्थस्तान्सर्वान्निहंतुं नात्र संशयः ।
निहन्तुमहमप्येकः समर्थः पुरुषर्षभ ॥ ३५ ॥

अर्जुन कहने लगा—हे पुरुषर्षभ ! आप उन सबको मार देने में अकेले ही समर्थ हैं, इसमें कुछ संशय नहीं है, परन्तु मैं भी उन सब को अकेला ही मारने का सामर्थ्य रखता हूं ॥३५॥

भवांस्तु कीर्तिमाल्लोके तद्यशस्त्वां गमिष्यति ;
यशसां चाहमप्यर्थी तस्मादसि मया वृतः ॥३६ ॥

आपका संसार में यश हो रहा है । इस विजय का यश भी आपको ही प्राप्त होना है । मैं भी यश का ही आकांक्षी हूं । आपकी सहायता से मैं भी यशस्वी हो जाऊंगा; इसी से मैंने आपको मांगा है ॥३६॥

सारथ्यं तु त्वया कार्यमिति मे मानसं सदा।
चिररात्रेप्सितं कामं तद्भवान् कर्तुमर्हति ॥३७॥

मेरे तो मन की यही अभिलाषा है, कि आप मेरे सारथि बन जावें। मेरी यह अभिलाषा बहुत दिन की पुरानी है, आप इसको पूर्ण करें ॥३७॥

वासुदेव उवाच—

उपपन्नमिदं पार्थ यत्स्पर्द्धसि मया सह।
सारथ्यं ते करिष्यामि कामः संपद्यतां तव ॥३८॥

श्री कृष्ण ने कहा—हे पार्थ! तुम जो मेरे साथ स्पर्धा (बराबरी) करते हो, वह उचित ही है! मैं तेरा सारथिपन कर दूंगा, क्योंकि किसी तरह तेरा कार्य सिद्ध होना चाहिए ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं प्रमुदितः पार्थः कृष्णेन सहितस्तदा।
वृतो दाशार्हप्रवरैः पुनरायाद्युधिष्ठिरम् ॥३९॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि कृष्ण-सारथ्य-स्वीकारे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन, आनन्द की बातचीत करके दशार्ह वीरों के साथ राजा युधिष्ठिर के पास चला आया॥३९॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में श्रीकृष्ण के सारथि बनने की स्वीकृति प्रदान करने का सातवां अध्याय पूरा हुआ।

आठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

शल्यः श्रुत्वा तु दूतानां सैन्येन महता वृतः ।
अभ्ययात्पांडवान् राजन सहपुत्रैर्महारथैः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! मद्र देश का राजा शल्य, दूतों से युद्ध का निमन्त्रण सुनकर बड़ी भारी सेना के साथ अपने पुत्रों के सहित पाण्डवों की सहायता को चला ॥ १ ॥

तस्य सेनानिवेशोऽभूदध्यर्द्धमिव योजनम् ।
तथा हि विपुलां सेनां बिभर्ति स नरर्षभः॥२॥

इसकी सेना का पड़ाव आधे २ योजन पर पड़ता था । यह नरर्षभ शल्य, एक बड़ी भारी सेना का भरण पोषण और धारण करता था ॥ २ ॥

अक्षौहिणीपती राजन् महावीर्यपराक्रमः ।
विचित्रकवचाः शूरा विचित्रध्वजकार्मुकाः ॥ ३ ॥

हे राजन्! यह महाबली शल्य, बड़ा पराक्रमी था और कई अक्षौहिणी सेना का अधिपति था । इसके शूरवीर, विचित्र कवचों के धारण करने वाले और विचित्र ध्वजा और धनुषधारी थे ॥ ३ ॥

विचित्राभरणाः सर्वे विचित्ररथवाहनाः ।
विचित्रस्रग्धराः सर्वे विचित्रांबरभूषणाः ॥ ४ ॥

स्वदेशवेषाभरणा वीराः शतसहस्रशः ।

तस्य सेनाप्रणेतारो बभूवुः क्षत्रियर्षभाः ॥ ५ ॥

ये सारे योद्धा विचित्र २ आभूषण, रथ, वाहन और अद्भुत अद्भुत माला तथा वस्त्रों से सुशोभित थे। इन वीरों के वेष और वस्त्र अपने २ देश के अनुसार थे, जो लाखों की संख्या में थे। इसकी सेना के सेनापति, बड़े बड़े क्षत्रिय रत्न थे ॥ ५ ॥

व्यथयन्निव भूतानि कंपयन्निव मेदिनीम् ।

शनैर्विश्रामयन् सेनां सययौ येन पाण्डवः ॥६॥

भूतों को पीड़ित करते और पृथिवी को कंपाते हुए तथा सेना को विश्राम देते हुए मद्रराज शल्य, जहां पाण्डव थे, उधर चल दिए ॥ ६ ॥

ततो दुर्योधनः श्रुत्वा महात्मानं महारथम् ।

उपायांतमभिद्रुत्य स्वयमानर्च भारत ॥ ७ ॥

हे भारत ! जब दुर्योधन ने सुना, कि महावीर, महारथी, शल्य, पाण्डवों की ओर जा रहा है, तो यह दौड़कर पहुंचा और स्वयं उसका स्वागत करने लगा ॥ ७ ॥

कारयामास पूजार्थं तस्य दुर्योधनः सभाः ।

रमणीयेषु देशेषु रत्नचित्राः स्वलंकृताः ॥ ८ ॥

शल्य के स्वागत के लिए दुर्योधन ने सुन्दर २ प्रदेशों में रत्नों से जटित, सामान से सजी हुई, सभाएं बनवा दीं ॥ ८ ॥

शिल्पिभिर्विविधैश्चैव क्रीडास्तत्र प्रयोजिताः ।

तत्र माल्यानि मांसानि भक्ष्यं पेयं च सत्कृतः ॥९॥

दुर्योधन ने उत्तम २ अनेक शिल्पियों से उन सभाओं (ठहरने के स्थानों) में अनेक क्रीड़ा गृह बनवाए और मालाओं के समूह, मांस, अन्य भोजन पान, सामग्री से वे सब सजा दिए ॥ ९ ॥

कूपाश्च विविधाकारा मनोहर्षविवर्धनाः ।

वाप्यश्च विविधाकारा औदकानि गृहाणि च ॥ १० ॥

देखते ही मन को प्रफुल्लित करने वाले, अनेक ढङ्ग के उन स्थानों में कूप थे । अनेक प्रकार की बावड़ी और उनमें अनेक ढङ्ग के स्नानागार और जलगृह (फव्वारे) थे ॥ १० ॥

स ताः सभाः समासाद्य पूज्यमानो यथाऽमरः ।

दुर्योधनस्य सचिवैर्देशे देशे समन्ततः ॥ ११ ॥

शल्य, उन सभाओं में ठहर जाता था और जगह २ पर दुर्योधन के मन्त्री, उसकी देवता की सी पूजा करते थे ॥ ११ ॥

आजगाम सभामन्यां देवावसथवर्चसम् ।

स तत्र विषयैर्युक्तैः कल्याणैरतिमानुषैः ॥ १२ ॥

मेनेऽभ्यधिकमात्मानमवमेने पुरंदरम् ।

देवों के घरके समान देदीप्यमान, किसी सभा में मद्र-राज पहुंचा । उसने मनुष्यों को दुर्लभ, सुखकारी, अनेक भोगों के साधनों से अपने को अधिक और इन्द्र को लघु समझा ॥१२॥

पप्रच्छ स ततः प्रेष्यान् प्रहृष्टः क्षत्रियर्षभः ॥ १३ ॥
युधिष्ठिरस्य पुरुषाः केऽत्र चक्रुः सभा इमाः ।
आनीयन्तां सभाकाराः प्रदेयार्हा हि मे मताः ॥ १४॥

इस क्षत्रियर्षभ, शल्य ने सेवकों से बड़ी प्रसन्नता से पूछा-कि युधिष्ठिर के वे पुरुष कहां है, जिन्होंने ये सभाएं बनवाई हैं। उन सभा बनाने बनवाने वालों (कारीगर और अधिकारी) को मैं उपहार (इनाम) देना चाहता हूं ॥१३-१४॥

प्रसादमेषां दास्यामि कुन्तीपुत्राऽनुमन्यताम् ।
दुर्योधनाय तत्सर्वं कथयन्तिस्म विस्मिताः ॥ १५ ॥

मैं उनको जो कुछ उपहार दूंगा—उनको कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर को मान लेना चाहिए-इसके लिए मुझे रोकना उचित नही है। ये प्रबन्धक, इन सारी बातों को राजा दुर्योधन को सुना देते थे ॥१५॥

संप्रहृष्टो यदा शल्यो दिदित्सुरपि जीवितम् ।
गूढो दुर्योधनस्तत्र दर्शयामास मातुलम् ॥ १६ ॥

जब शल्य, इतना प्रसन्न हो गया, कि इसने इस स्वागत करने वाले के लिए प्राण देना भी स्वीकार कर लिया, तो अपना रूप छिपा कर राजा दुर्योधन पाण्डवों के मातुल (मामा) शल्य के सम्मुख आया ॥१६॥

तं दृष्ट्वा मद्रराजश्च ज्ञात्वा यत्नं च तस्य तम् ।
परिष्वज्याब्रवीत्प्रीत इष्टोऽर्थो गृह्यतामिति ॥ १७ ॥

मद्रराज ने इस को देख कर और सारा स्वागत का प्रयत्न इस अधिकारी को समझ कर इस से आलिङ्गन किया और बड़ी प्रसन्नता से कहा-कि तुम को जो चाहिए-वह मांग लो ॥१७॥

दुर्योधन उवाच—

सत्यवागभव कल्याण वरो वै मम दीयताम् ।

सर्वसेनाप्रणेता वै भवान्भवितुमर्हति ॥ १८ ॥

दुर्योधन बोला-हे मद्रराज ! देखो ? सत्यवादी रहना, अब तुम मुझ दुर्योधन को वरदान दो । तुमको मेरी सारी सेना का सञ्चालक बनना पड़ेगा ॥१८॥

वैशम्पायन उवाच—

कृतमित्यब्रवीच्छल्यः किमन्यत्क्रियतामिति ।

कृतमित्येव गांधारिः प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥ १९॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! शल्य ने कहा अच्छी बात है, कहो और क्या चाहते हो, जो किया जावे । अब गान्धार-राज के पुत्र शकुनि ने शल्य के इस स्वीकृति के कथन को आनन्द से बार-बार दुहराया ॥१९॥

शल्य उवाच—

गच्छ दुर्योधन पुरं स्वकमेव नरर्षभ ।

अहं गमिष्ये द्रष्टुं वै युधिष्ठिरमरिन्दमम् ॥२०॥

हे नरर्षभ ! दुर्योधन ! तुम अपने पुर को जाओ और मैं ज़रा अरिमर्दन राजा युधिष्ठिर से मिल कर आता हूं ॥२०॥

दृष्ट्वा युधिष्ठिरं राजन् क्षिप्रमेष्ये नराधिप ।

अवश्यं चापि द्रष्टव्यः पांडवः पुरुषर्षभः ॥ २१ ॥

हे नराधिप ! मैं युधिष्ठिर से मिलकर बहुत ही शीघ्र आ रहा हूं, क्योंकि पुरुषर्षभ पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर से मुझे अवश्य मिलना है ॥२१॥

दुर्योधन उवाच—

क्षिप्रमागम्यतां राजन् पांडवं वीक्ष्य पार्थिव ।
त्वय्यधीना स्म राजेन्द्र वरदानं स्मरस्व नः ॥२२॥

हे राजन् ! आप, पाण्डु-पुत्र, युधिष्ठिर से मिल कर जल्दी ही चले आवें । हे राजेन्द्र ! हम लोग तुम्हारे अधीन हैं । तुम हमको दिए हुए वरदान को याद रखना ॥२२॥

शल्य उवाच—

क्षिप्रमेष्यामि भद्रन्ते गच्छस्व स्वपुरं नृप ।
परिष्वज्य तथोऽन्योन्यं शल्यदुर्योधनावुभौ ॥ २३ ॥
स तथा शल्यमामंत्र्य पुनरायात्स्वकं पुरम्
शल्यो जगाम कौन्तेयानाख्यातुं कर्म तस्य तत्॥२४

शल्य बोला—हे राजन ! तुम चिन्ता न करो—मैं शीघ्र ही आऊंगा । तुम अपने नगर को जाओ । इस तरह शल्य और दुर्योधन दोनों ने परस्पर आलिङ्गन किया, राजा दुर्योधन शल्य से पूछ कर अपने नगर हस्तिनापुर को चला आया और शल्य भी सारी चर्चा को सुनाने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के पास पहुंचा २४

उपप्लव्यं स गत्वा तु स्कंधावारं प्रविश्य च ।
पांडवानथ तान् सर्वान् शल्यस्तत्र ददर्श ह ॥२५॥

विराट नगर के पास नवीन बनाए हुए उपलव नामक स्थान पर पहुंच कर शल्य सेना के निवेश (पड़ाव) में पहुंचा । वहां उसने सारे पाण्डवों को देखा ॥ २५ ॥

समेत्य च महाबाहुः शल्यः पांडुसुतैस्तदा ।
पाद्यमर्घ्यं च गां चैव प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ॥२६॥

महाबाहु शल्य, पाण्डु सुत से मिला और पाण्डवों द्वारा समर्पण किये हुए पाद्य अर्घ्य और गौ आदि को इसने विधिपूर्वक ग्रहण किया ॥ २६ ॥

ततः कुशलपूर्वं हि मद्रराजोऽरिसूदनः ।
प्रीत्या परमया युक्तः समाश्लिष्य युधिष्ठिरम् ॥२७॥
तथा भीमार्जुनौ कृष्णौ स्वस्रीयौ च यमावुभौ ।
आसने चोपविष्टस्तु शल्यः पार्थमुवाच ह ॥२८॥

कुशल प्रश्न के अनन्तर अरिसूदन मद्रराज ने युधिष्ठिर और इसी तरह मेघ समान कृष्ण-रूप-धारी भीम, अर्जुन और अपने भानजे नकुल सहदेव का बड़े प्रेम के साथ आलिंगन किया एवं उच्च आसन पर बैठ कर राजा युधिष्ठिर से कहा ॥ २७-२८॥

कुशलं राजशार्दूल कच्चित्ते कुरुनंदन ।
अरण्यवासाद्दिष्ट्याऽसि विमुक्तो जयतां वर ॥२९॥

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! कुरुनन्दन ! आप कुशल से तो हैं। हे जयशील ! आप वनवास के समय को आनन्द से व्यतीत कर आए—इसका बड़ा हर्ष है ॥ २९ ॥

सुदुष्करं कृतं राजन्निर्जने वसता त्वया ।
भ्रातृभिः सह राजेन्द्र कृष्णया चानया सह ॥३०॥

हे राजन् ! तुमने निर्जन वन में अपने भाई और द्रौपदी के साथ निवास करके बड़ा ही दुष्कर कार्य पूरा कर डाला है ॥३०॥

अज्ञातवासं घोरं च वसता दुष्करं कृतम् ।
दुःखमेव कुतः सौख्यं भ्रष्टराज्यस्य भारत ॥३१॥

हे भारत ! इसके सिवा घोर अज्ञात वास में रह कर तो तुमने महान् हीं दुष्कर कार्य किया । जिस राजा का राज्य छिन जाता है, उसको तो दुःख ही दुःख है- सुख कहां रखा है ॥ ३१ ॥

दुःखस्यैतस्य महतो धार्तराष्ट्रकृतस्य वै ।

अवाप्स्यसि सुखं राजन् हत्वा शत्रून् परंतप ॥३२॥

हे परन्तप ! धृतराष्ट्र के पुत्रों द्वारा खड़े किये हुए, इस महादुःख के बदले में तुम शत्रुओं को मार कर राज्य–सुख प्राप्त करोगे ॥ ३२ ॥

विदितं ते महाराज लोभतंत्रं नराधिप ।

तस्माल्लोभकृतं किंचित्तव तात न विद्यते ॥३३॥

हे महाराज ! नराधिप ! तुम जानते हो, कि सारी बुराई तो लोभ से खड़ी होती है, इसी से तुमको कोई लोभ नहीं है ॥३३॥

राजर्षीणां पुराणानां मार्गमन्विच्छ भारत ।

दाने तपसि सत्ये च भव तात युधिष्ठिर ॥३४॥

हे भारत ! तुम प्राचीन राजर्षियों के मार्ग का अनुसरण करो ! हे तात ! युधिष्ठिर ! तुम दान तप और सत्य में अपने मन को अवश्य प्रवृत्त करते रहो ॥ ३४ ॥

क्षमा दमश्चसत्यं च अहिंसा च युधिष्ठिर ।

अद्भुतश्च पुनर्लोकस्त्वयि राजन् प्रतिष्ठितः ॥३५॥

हे राजन् ! युधिष्ठिर ! क्षमा, मन की विजय, सत्य, अहिंसा ये तुममें अच्छी तरह विद्यमान हैं तथा इस सारे संसार का हीं तुम अद्भुत ढंग से अनुशीलन कर रहे हो ॥३५॥

मृदुर्वदान्यो ब्रह्मण्यो दाता धर्मपरायणः ।

धर्मास्ते विदिता राजन् बहवो लोकसाक्षिकाः ॥३६॥

हे राजन् ! आप कोमल-प्रकृति, उदार, मधुरभाषी, ब्राह्मण-सेवक, दानी और धर्मपरायण हो। आपको लोक के मान्य अनेक धर्म विदित हैं ॥३६॥

सर्वं जगदिदं तात विदितं ते परन्तप ।
दिष्ट्या कृच्छ्रमिदं राजन् पारितं भरतर्षभ ॥३७॥

हे परन्तप ! भरतर्षभ ! राजन् ! इस सारे जगत का तुमने तत्व देख लिया। हमको तो यह बड़ी प्रसन्नता है, कि आपने इस कठिन व्रत वनवास का समय पूरा कर लिया ॥३७॥

दिष्ट्या पश्यामि राजेन्द्र धर्मात्मानं सहानुगम् ।
निस्तीर्णं दुष्करं राजंस्त्वां धर्मनिचय प्रभो ॥३८॥

हे राजेन्द्र ! अपने अनुगामी भाइयों के साथ आज हम तुमको कुशल से देखकर बड़े ही प्रसन्न हैं। आपने बड़ा ही दुष्कर व्रत पूरा करके धर्म का बड़ाही लाभ प्राप्त किया है ॥३८॥

वैशंपायन उवाच—

ततोऽस्याकथयद्राजा दुर्योधनसमागमम् ।
तच्च शुश्रूषितं सर्वं वरदानं च भारत ॥३९॥

वैशम्पायन बोले:— भारत ! इसके अनन्तर शल्य ने राजा दुर्योधन का मिलना, उसकी सेवा शुश्रूषा और अपने वरदान की सारी कथा राजा युधिष्ठिर को कह सुनाई ॥३९॥

युधिष्ठिर उवाच—

सुकृतं ते कृतं राजन् प्रहृष्टेनांतरात्मना ।
दुर्योधनस्य यद्वीर त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ॥४०॥

युधिष्ठिर ने कहा !— हे वीर ! राजन ! तुमने प्रसन्न होकर जो दुर्योधन को वरदान दे दिया, यह बड़ा ही अच्छा किया ॥४०॥

एकं त्विच्छामि भद्रन्ते क्रियमाणं महीपते ।

राजन्नकर्त्तव्यमपि कर्त्तुमर्हसि सत्तम ॥४१॥

हे महीपते ! हे राजेन्द्र ! राज-सत्तम ! मैं तुमसे एक बात अपने हित की करवाना चाहता हूँ । यद्यपि वह अकर्तव्य है, तथापि तुमको उसे करना ही पड़ेगा ॥४१॥

मम त्ववेक्षया वीर शृणु विज्ञापयामि ते ।

भवानिह महाराज वासुदेवसमो युधि ॥४२॥

कर्णार्जुनाभ्यां संप्राप्ते द्वैरथे राजसत्तम ।

कर्णस्य भवता कार्यं सारथ्यं नात्र संशयः ॥४३॥

हे वीर ! महाराज ! तुम मेरी बात को जरा ध्यान से सुनो-मैं तुम से कहता हूं । आप युद्ध में वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण के समान हैं । हे राजसत्तम ! जिस समय कर्ण और अर्जुन का घोर युद्ध होगा, उस समय आप अवश्य कर्ण के सारथि बनोगे ४२-४३

तत्र पाल्योऽर्जुनो राजन् यदि मत्प्रियमिच्छसि ।

तेजोवधश्च ते कार्यः सौतेरस्मज्जयावहः ॥४४॥

अकर्तव्यमपिह्येतत् कर्तुमर्हसि मातुल ।

हे राजन् ! यदि मेरा प्रिय चाहते हो, तो उस समय अर्जुन की रक्षा कर देना - उस समय हमारी जय का करने वाला सूत-

पुत्र कर्ण के तेज का न्यून करना है, उसे तुम कर देना। हे मातुल ! यद्यपि यह अकर्तव्य है,परन्तु आपको करना ही होगा।

शल्य उवाच—

शृणु पांडव भद्रन्ते यद्ब्रवीषि महात्मनः ।
तेजो वधनिमित्तं मां सूतपुत्रस्य संगमे ॥४५॥
अहं तस्य भविष्यामि संग्रामे सारथिर्ध्रुवं ।
वासुदेवेन हि समं नित्यं मां स हि मन्यते ॥ ४६ ॥

शल्य ने कहा—हे पाण्डव ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम जो महावीर-सूत-पुत्र कर्ण के साथ अर्जुन के युद्ध के समय कर्ण का तेज न्यून करने को कह रहे हो- यह ठीक है। मैं अवश्य ही संग्राम में उसका सारथि वनूंगा, क्योंकि दुर्योधन, मुझे कृष्ण के बराबर ही सारथि मानता है ॥४५-४६॥

तस्याहं कुरुशार्दूल प्रतीपमहितं वचः ।
ध्रुवं संकथयिष्यामि योद्धुकामस्य संयुगे ॥ ४७ ॥

हे कुरुशार्दूल ! अर्जुन के साथ युद्ध करने के समय में अवश्य कर्ण के विरुद्ध तेज न्यून करने वाले अहितकारी वचन कहूंगा ॥४७॥

यथा सहतदर्पश्च हृततेजाश्च पांडव ।
भविष्यति सुखं हंतुं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ४८ ॥

हे पाण्डव ! जैसे कर्ण का हर्ष और तेज नष्ट हो जावेगा—मैं वैसा ही ढ़ँग स्वीकार करूंगा। इस तरह वह सुखसे मारा जा सकेगा। मैं यह सत्य प्रतिज्ञा कर रहा हूँ ॥४८॥

एवमेतत्करिष्यामि यथा तात त्वमात्थमाम् ।
यच्चान्यदपि शक्यामि तत्करिष्यामि ते प्रियम् ॥४६॥

हे तात ! जो तुमने कहा है, मैं वैसा ही करूँगा । इसके सिवा जो कुछ तुम्हारा अन्य प्रिय कार्य होगा- मैं उसको भी यथा-शक्ति पूरा करूँगा ॥४६॥

यच्च दुःखं त्वया प्राप्तं द्यूते वै कृष्णया सह ।
परुषाणि च वाक्यानि सूतपुत्रकृतानि वै ॥५० ॥
जटासुरात्परिक्लेशः कीचकाच्च महाद्युते ।
द्रौपद्याऽधिगतं सर्वं दमयंत्या यथाऽशुभम् ॥ ५१॥
सर्वं दुःखमिदं वीर सुखोदर्कं भविष्यति ।
नात्र मन्युस्त्वया कार्यो विधिर्हि बलवत्तरः ॥५२ ॥

हे महाद्युते ! जो तुमने द्यूत में द्रोपदी के साथ क्लेश उठाया और सूतपुत्र कर्ण ने कठोर वचन कह कर दुःखी किया, वन में जटासुर और यहां कीचक से दुःख उठाया एवं द्रौपदी ने भी दमयन्ती की तरह जो क्लेश उठाया, ये सब दुःख महासुख में बदल जावेंगे । इस विषय में तुम शोक या क्रोध न करो, क्योंकि विधाता बलवान् है ॥४६-५२॥

दुःखानि हि महात्मानः प्राप्नुवंति युधिष्ठिर ।
देवैरपि हि दुःखानि प्राप्तानि जगतीपते ॥ ५३ ॥

हे पृथिवीपते ! युधिष्ठिर ! महात्मा ही दुःख उठाया करते हैं, देवताओं ने भी समय पड़ने पर क्लेश उठाए हैं- इससे तुम को अधिक क्लेशित नहीं होना चाहिए ॥५३॥

इन्द्रेण श्रूयते राजन् सभार्येण महात्मना ।
अनुभूतं महद्दुःखं देवराजेन भारत ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
शल्यवाक्ये अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

हे भरतवंशोत्तम ! राजन् ! एक बार महात्मा इन्द्र ने भी अपनी भार्या के साथ बड़ा दुःख उठाया है । ॥५४॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में शल्य के वाक्य का आठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



नौवां अध्याय

युधिष्ठिर उवाच—

कथमिन्द्रेण राजेन्द्र सभार्येण महात्मना ।
दुःखं प्राप्तं परं घोरमेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे राजेन्द्र ! भार्या के साथ महात्मा इन्द्र ने कैसे महाघोर दुःख उठाया । मैं यह जानना चाहता हूं ॥१

शल्य उवाच—

शृणु राजन्पुरावृत्तमितिहासं पुरातनम् ।
सभार्येण यथाप्राप्तं दुःखमिन्द्रेण भारत ॥ २ ॥

शल्य ने कहा—हे भारत ! तुम पूर्वकाल में हुए, एक पुराने वृत्तान्त को सुनो, कि किस तरह अपनी भार्या के साथ इन्द्र ने दुःख पाया था ॥ २ ॥

त्वष्टा प्रजापतिर्ह्यासीद् देवश्रेष्ठो महातपाः ।
स पुत्रं वै त्रिशिरसमिन्द्रं द्रोहात्किलासृजत् ॥ ३ ॥

हे राजन् ! त्वष्टा नामक देवश्रेष्ठ, महातपस्वी, प्रजापति ने इन्द्र के द्रोह से त्रिशिरा दैत्य को पुत्र रूप से रचा ॥ ३ ॥

ऐंद्रं स प्रार्थयत् स्थानं विश्वरूपा महाद्युतिः ।
तैस्त्रिभिर्वदनैर्घोरैः सूर्येन्दुज्वलनोपमैः ॥ ४॥

इस विश्वरूप महाद्युतिशाली त्रिशिरा ने सूर्य, चन्द्र, अग्नि के तुल्य विशाल मुखों से इन्द्र के पद की प्रार्थना की ॥ ४॥

वेदानेकेन सोऽधीते सुरामेकेन चापिबत् ।
एकेन च दिशः सर्वाः पिबन्निव निरीक्षते ॥ ५ ॥

यह दैत्य, एक मुख से वेद पढ़ता था और एक से सुरा पीता जाता था तथा एक मुख से सारी दिशाओं को पीता हुआ सा देख रहा था ॥ ५ ॥

स तपस्वी मृदुर्दान्तो धर्मे तपसि चोद्यतः।
तपस्तस्य महत्तीव्रं सुदुश्चरमरिन्दम ॥ ६॥

हे अरिन्दम ! यह कोमल, उदार तपस्वी होकर धर्म और तप करने में उद्यत हो गया । इसका तप बड़ा तीव्र और अन्य को दुष्कर था ॥ ६ ॥

तस्य दृष्ट्वा तपो वीर्यं सत्यं चामिततेजसः ।
विषादमगमच्छक्र इंद्रोऽयं मा भवेदिति ॥ ७ ॥

इस महातेजस्वी के तप, पराक्रम और सत्य को देखकर इन्द्र को बड़ा विषाद हुआ, कि कहीं यह इन्द्र न बन जावे ॥ ७॥

कथं सज्जेच्च भोगेषु न च तप्येन्महत्तपः ।
विवर्धमानस्त्रिशिराः सर्वं हि भुवनं ग्रसेत् ॥ ७ ॥

अब कौनसा ऐसा ढङ्ग है, जिससे यह भोग विलास में लिपट जावे और महान तप न कर सके । यदि यह त्रिशिरा तप में बढ़ गया, तो सारे भुवन को निगल जावेगा ॥ ८ ॥

इति संचिन्त्य बहुधा बुद्धिमान् भरतर्षभ ।
आज्ञापयत्सोऽप्सरसस्त्वष्टृपुत्रप्रलोभने ॥ ६ ॥

हे भरतर्षभ ! बुद्धिमान इन्द्र ने बहुत तरह से विचार करके त्वष्टा के पुत्र त्रिशिरा को लुभाने के लिए अप्सराओं को आज्ञा दी ॥ ६ ॥

यथा स सज्जेत् त्रिशिराः कामभोगेषु वै भृशम् ।
क्षिप्रं कुरुत गच्छध्वं प्रलोभयत माचिरम् ॥ १० ॥

हे अप्सराओ ! जिस तरह यह त्रिशिरा, कामदेव के भोग विलासों में फंस जावे- ऐसा करो । तुम शीघ्र जाओ और उस को मोहित करने में देर न करो ॥ १० ॥

शृङ्गारवेषाः सुश्रोण्यो हारैर्युक्ता मनोहरैः ।
हावभावसमायुक्ताः सर्वाः सौंदर्यशोभिताः ॥११॥
प्रलोभयत भद्रं वः शमयध्वं भयं मम।
अस्वस्थं ह्यात्मनात्मानं लक्षयामि वरांगनाः॥ १२॥
भयं तन्मे महाघोरं क्षिप्रं नाशयताबलाः ।

तुम पुष्ट नितम्बवाली सारी सुन्दर अप्सराएँ, शृङ्गार युक्त वेष बनाकर मनोहर हारों से युक्त हो जाओ और हाव भाव (कटाक्षादि चेष्टा) करती हुई उस त्रिशिरा को शीघ्र जाकर मोहित करो, जिससे मेरा भय नष्ट हो जावे। हे वराङ्गनाओ! मैं इस समय अपने आपको अस्वस्थ (विपत्तिग्रस्त) देख रहा हूँ। हे अबलाओ! यह मुझे बड़ा घोर भय उपस्थित हुआ है, तुम इसका शीघ्र नाश करो॥ ११-१२॥

अप्सरस ऊचुः—

तथा यत्नं करिष्यामः शक्र तस्य प्रलोभने।
यथा नावाप्स्यसि भयं तस्माद् बलनिषूदन॥ १३॥

अप्सरा कहने लगी -हे बल--दैत्य-नाशक! इन्द्र! हम त्रिशिरा को भोग विलासों में फंसाने का ऐसा ही प्रयत्न करेंगी-जिस से तुम को यह भय नहीं रह सकेगा॥१३॥

निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां योऽसावास्ते तपोनिधिः।
तं प्रलोभयितुं देव गच्छामः सहिता वयम्॥ १४
यतिष्यामो वशे कर्तुं व्यपनेतुं च ते भयम्।

हे देवराज! यद्यपि यह तपस्वी, अपने तेजोमय चक्षुओं से सब को दग्ध करता सा देखता है, तो भी हम सब उस को मोहित करने को अभी जाती हैं। हम उसको वश में करने और तेरे भय के नाश करने का अवश्य प्रयत्न करेंगी ॥१४॥

शल्य उवाच—

इन्द्रेण तास्त्वनुज्ञाता जग्मुस्त्रिशिरसोऽन्तिकम्।
तत्र ता विविधैर्भावैर्लोभयन्त्यो वरांगनाः ॥ १५ ॥

शल्य बोला-हे राजन्! इन्द्र से विदा होकर अप्सरा, त्रिशिरा के पास पहुंची और ये वराङ्गनाएं अनेक भावों से उसको मोहित करने लगीं ॥१५॥

नित्यं संदर्शयामासुस्तथैवांगेषु सौष्ठवम्।
नाभ्यगच्छत्प्रहर्षं ताः स पश्यन् सुमहातपाः ॥१६॥

ये अप्सराएं, नित्य अपने सुन्दर अङ्गों को उस त्रिशिरा तपस्वी को दिखाती, परन्तु वह महा-तपस्वी, उन को देख कर भी कामातुर नहीं होता था ॥१६॥

इन्द्रियाणि वशे कृत्वा पूर्वसागरसन्निभः।
तास्तु यत्नं परं कृत्वा पुनः शक्रमुपस्थिताः ॥१७॥

इस त्रिशिरा ने अपनी इन्द्रियों को इतना वशमें कर रखा था, कि यह अब भी पूर्वी समुद्र की तरह बिल्कुल क्षोभ रहित ही रहा। ये अप्सरा, बड़ा प्रयत्न करके अकृतार्थ ही इन्द्र के पास लौट आईं

कृतांजलिपुटाः सर्वा देवराजमथाब्रुवन्।
न स शक्यः सुदुर्धर्षो धैर्याच्चालयितुं प्रभो ॥ १८ ॥
यत्ते कार्यं महाभाग क्रियतां तदनन्तरम्।

ये अप्सराएं आकर देवराज से बोली-हे प्रभो ! इस दुर्द्धर्ष तपस्वी को हम अपने धैर्य से च्युत करने में समर्थ नहीं हो सकी हैं। हे महाभाग ! अब इसके अनन्तर आप को जो कार्य करना है, वह शीघ्र करो ॥१८॥

संपूज्याप्यसरसः शक्रो विसृज्य च महामतिः ॥१६॥
चिन्तयामास तस्यैव वधोपायं युधिष्ठिर ।

हे युधिष्ठिर ! महामति इन्द्र ने अप्सराओं का सत्कार करके उन को विदा कर दिया और आप उस त्रिशिरा के वध का उपाय सोचने लगा ॥१६॥

तूष्णीं प्रचिन्तयन्वीरो देवराजः प्रतापवान् ॥ २० ॥
विनिश्चितमतिर्धीमान् वधे त्रिशिरसोऽभवत् ।

प्रतापी वीर देवराज ने चुप चाप बहुत देर तक विचार किया और अन्त में यह बुद्धिमान, त्रिशिरा के वध का निश्चय कर बैठा ॥ २० ॥

वज्रमस्य क्षिपाम्यद्य स क्षिप्रं न भविष्यति ॥ २१ ॥
शत्रुः प्रवृद्धो नोपेक्ष्यो दुर्बलोऽपि बलीयसा ।
शास्त्रबुद्ध्या विनिश्चित्य कृत्वा बुद्धिं वधे दृढाम् २२

अब मुझ को उस पर वज्र छोड़ देना चाहिए-इससे यह शीघ्र ही नष्ट होकर संसार में नहीं रह सकेगा। बलवान् मनुष्य को भी दुर्बल, बढ़ते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इन्द्र ने नीति शास्त्र से निश्चय कर के त्रिशिरा के वध करने की दृढ़ बुद्धि बना ली ॥ २१-२२ ॥

अथ वैश्वानरनिभं घोररूपं भयावहम् ।
मुमोच वज्रं संक्रुद्धः शक्रस्त्रिशिरसं प्रति ॥ २३ ॥

इसके अनन्तर अग्नि के तुल्य प्रज्वलित, घोर, भयंकर वज्र को क्रुद्ध हुए इन्द्र ने त्रिशिरा के ऊपर छोड़ दिया ॥२३॥

स पपात हतस्तेन वज्रेण दृढमाहतः ।
पर्वतस्येव शिखरं प्रणुन्नं मेदिनीतले ॥ २४ ॥

वज्र के दृढ़ प्रहार से त्रिशिरा इतना पीड़ित हुआ, कि वह मर कर भूमि में विशीर्ण पर्वत के शिखर की तरह गिर गया॥२४॥

तं तु वज्रहतं दृष्ट्वा शयानमचलोपमम् ।
न शर्म लेभे देवेंद्रो दीपितस्तस्य तेजसा ॥ २५ ॥

इन्द्र ने वज्र से मरे हुए और पर्वत के शिखर के समान पड़े हुए, त्रिशिरा को देखा । यह इसके तेज से इतना सन्तापित हुआ, कि इस को कहीं भी चैन नहीं पड़ता था ॥२५॥

हतोऽपि दीप्ततेजाः स जीवन्निव हि दृश्यते ।
घातितस्य शिरांस्याजौ जीवंतीवाद्भुतानि वै ॥२६॥

मरा हुआ भी त्रिशिरा, अपने तेज से इतना दीप्त हो रहा था, कि वह जीवित सा ही दिखाई देता था । इसके वज्र प्रहार से छिन्न भिन्न मस्तक भी जीवित से ही दिखाई देते थे, यह बड़ी ही अद्भुत बात थी ॥२६॥

ततोऽतिभीतगात्रस्तु शक्र आस्ते विचारयन् ।
अथाजगाम परशुं स्कंधेनादाय वर्धकिः ॥ २७ ॥
तदरण्यं महाराज यत्रास्तेऽसौ निपातितः ।

अब इन्द्र बड़ा भयभीत हुआ और विचारने लगा। इसी समय अचानक कोई बढ़ई कंधे पर परशु रखे हुए उसी वन के मार्ग में चला आया, जहां वह त्रिशिरा मरा पड़ा था ॥२७॥

स भीतस्तत्र तक्षाणं घटमानं शचीपतिः ॥ २८ ॥
अपश्यदब्रवीच्चैनं सत्वरं पाकशासनः ।
क्षिप्रं छिंधि शिरांस्यस्य कुरुष्व वचनं मम ॥ २९ ॥

शचीपति इन्द्र ने इस स्थान पर लकड़ी घड़ते हुए इस तक्षा (बढ़ई) को देखा। यह भयभीत हुआ इस बढ़ई से बड़ी शीघ्रता से बोला, कि तुम इस मृतक के शिरों को भी जल्दी से काट डालो और मेरा वचन पूरा कर दो ॥२८-२९॥

तक्षोवाच—

महास्कंधो भृशंह्येष परशुर्न भविष्यति ।
कर्तुं चाहं न शक्ष्यामि कर्म सद्भिर्विगर्हितम् ॥३०॥

तक्षा बोला:— एक तो इसके कंधे बड़े पुष्ट हैं, इसमें मारने से मेरा परशु ही टूट जावेगा। दूसरे मैं सज्जनों से निन्दित कर्म को करना भी नहीं चाहता हूँ ॥३०॥

इन्द्र उवाच—

मा भैस्त्वं शीघ्रमेतद्वै कुरुष्व वचनं मम ।
मत्प्रसादाद्धि ते शस्त्रं वज्रकल्पं भविष्यति ॥ ३१ ॥

इन्द्र ने कहा—हे तक्षा! तू डर नहीं—मेरे वचन को शीघ्र पूरा कर दे। मेरे अनुग्रह से तेरा यह शस्त्र, वज्र के तुल्य हो जावेगा ॥३१॥

तक्षोवाच—

कं भवंतमहं विद्यां घोरकर्माणमद्य वै।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वेन कथयस्व मे ॥ ३२ ॥

तक्षा ने कहा—आप जरा यह तो बताओ, कि इस पापकर्म के करने वाले आप कौन व्यक्ति हैं ? मैं यह सुनना और जानना चाहता हूँ- तुम ठीक २ कहो ॥३२॥

इन्द्र उवाच—

अहमिन्द्रो देवराजस्तक्षन्विदितमस्तु ते।
कुरुष्वैतद्यथोक्तं मे तक्षन्माऽत्र विचारय ॥ ३३ ॥

हे तक्षराट् ! तुमको मालूम होना चाहिए, कि मैं देवराज इन्द्र हूं। मैंने जो तुमसे कहा है, तुम वही करो–विचार न करो।

तक्षोवाच—

क्रूरेणनापत्रपसे कथं शक्रेह कर्मणा।
ऋषिपुत्रमिमं हत्वा ब्रह्महत्या भयं न ते ॥ ३४ ॥

तक्षा बोला—हे इन्द्र ! तुम इस क्रूर कर्म से कैसे लज्जित नहीं होते हो ? इस ऋषि पुत्र को मार कर भी तुझे ब्रह्म-हत्या का भय क्यों नहीं होता है ? ॥३४॥

शक्र उवाच—

पश्चाद्धर्मं चरिष्यामि पावनार्थं सुदुश्चरम्।
शत्रुरेष महावीर्यो वज्रेण निहतो मया ॥ ३५ ॥

इन्द्र ने कहा—मैं इस कर्म को करके पीछे इसका प्रायश्चित कर लूंगा। यह मेरा बड़ा भारी शत्रु था, इससे मैंने इसको वज्र से मारा है ॥ ३५ ॥

अद्यापि चाहमुद्विग्नस्तक्षन्नस्माद्बिभेमि वै ।
क्षिप्रं छिंधि शिरांसि त्वं करिष्येऽनुग्रहं तव ॥ ३६ ॥

हे तक्षन्! मैं इ ना उद्विग्न हो रहा हूं, कि अभी तक इससे डरता हूं। तू इसका शिर जल्दी से काट डाल। मैं तुझ पर बड़ा अनुग्रह करूंगा ॥ ३६ ॥

शिरः पशोस्ते दास्यंति भागं यज्ञेषु मानवाः ।
एष तेऽनुग्रहस्तक्षन् क्षिप्रं कुरु मम प्रियम् ॥ ३७ ॥

हे तक्षन्! यजमान लोग, यज्ञ में तेरा भाग पशु का शिर प्रदान कर दिया करेंगे--यह मेरा तुझ पर बड़ा ही अनुग्रह है। तुम शीघ्र मेरा प्रिय कार्य करो ॥ ३७ ॥

शल्य उवाच—

एतच्छ्रुत्वा तु तक्षा समहेन्द्रवचनात्तदा ।
शिरांस्यथ त्रिशिरसः कुठारेणाच्छिनत्तदा ॥ ३८ ॥

शल्य ने कहा-हे राजन्! यह सुनकर तक्षाने इन्द्र के वचन से इस त्रिशिरा के शिर कुल्हाड़ी से काट डाले ॥३८॥

निकृत्तेषु ततस्तेषु निष्क्रामन्नंडजास्त्वथ ।
कपिंजलास्तित्तिराश्च कलविंकाश्च सर्वशः ॥ ३९ ॥

इस के शिर के काटने के समय उन शिरों से कपिञ्जल, तीतर और कलविंक नामक पत्ती निकले ॥३९॥

येन वेदानधीतेस्म पिबते सोम मेव च ।
तस्माद्वक्राद्विनिश्चेरुः क्षिप्रं तस्य कपिंजलाः ॥ ४० ॥

यह त्रिशिरा, जिस मुख से वेद पढ़ता और सोम पीता था, इसके उस मुख से कपिञ्जल निकले ॥४०॥

येन सर्वा दिशो राजन् पिबन्निव निरीक्षते ।
तस्माद्वक्राद विनिश्चेरुस्तित्तिरास्तस्य पांडव ॥ ४१

हे राजन्! यह जिस मुख से सारे जगत् को पी जाने की दृष्टि से देखता था, इसके उस मुख से तीतर निकले ॥४१॥

यत्सुरापंतु तस्यासीद्वक्रं त्रिशिरसस्तदा ।
कलविंकाः समुत्पेतुः श्येनाश्च भरतर्षभ ॥ ४२ ॥

हे भरतर्षभ! इस त्रिशिरा के जो सुरा पान करने वाला मुख था, इससे कलविक और श्येन (बाज) पत्ती उत्पन्न हुए ॥४२॥

ततस्तेषु निकृत्तेषु विज्वरो मघवानथ ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टस्त्वष्टाऽपि स्वगृहान्ययौ ॥ ४३ ॥
मेने कृतार्थमात्मानं हत्वा शत्रुं सुरारिहा ।

जब वे शिर काट लिए गए तो इन्द्र निश्चिन्त हो गया और अपने स्वर्ग लोक को चला गया। देवों के शत्रु असुरों को मारने वाले, इन्द्र ने इस अपने शत्रु को मार कर अपने आपको कृतार्थ समझा ॥४३॥

त्वष्टा प्रजापतिः श्रुत्वा शक्रेणाथ हतं सुतम् ॥ ४४ ॥
क्रोधसंरक्तनयन इदं वचनमब्रवीत् ।

जब त्वष्टा प्रजापति ने सुना, कि इन्द्र ने तेरा पुत्र मार दिया, तो इसकी आंखें लाल होगई और यह इस प्रकार कहने लगा॥४४

त्वष्टोवाच—

तप्यमानं तपो नित्यं क्षान्तं दान्तं जितेन्द्रियम् ।
विनाऽपराधेन यतः पुत्रं हिंसितवान्मम ॥ ४५ ॥

त्वष्टा ने कहा-मेरा पुत्र, नित्य तप करता रहता था, जो बड़ा उदार, क्षमाशील और जितेन्द्रिय था। इस इन्द्र ने बिना अपराध ही मेरे पुत्र का वध कर दिया है ॥४५॥

तस्माच्छक्र विनाशाय वृत्रमुत्पादयाम्यहम् ।
लोकाः पश्यन्तु मे वीर्यं तपसश्च बलं महत् ॥ ४६॥
स च पश्यतु देवेन्द्रो दुरात्मा पापचेतनः ।

अब मैं इन्द्र के विनाश के लिए वृत्रासुर की उत्पत्ति करूंगा। जिससे संसार, मेरे पराक्रम और तप के महान् बल को देख लेगा और यह दुरात्मा, पापी, देवराज भी तभी तप की महिमा को समझ सकेगा ॥४६॥

उपस्पृश्य ततः क्रुद्धस्तपस्वी सुमहायशाः ॥४७॥
अग्नौ हुत्वा समुत्पाद्य घोरं वृत्रमुवाचह ।
इन्द्रशत्रो विवर्धस्व प्रभावात्तपसो मम ॥ ४८ ॥

इस महातपस्वी,कीर्त्तिमान्, त्वष्टा प्रजापति ने आचमन करके अग्नि में हवन करके महा भयंकर वृत्रासुर को उत्पन्न किया और कहा–हे इन्द्र के शत्रु ! वृत्र ! तुम मेरे तप के प्रभाव से संसार में वृद्धि को प्राप्त करो ॥४७-४८॥

सोऽवर्द्धत दिवं स्तब्ध्वा सूर्यवैश्वानरोपमः ।
किं करोमीति चोवाच कालसूर्य इवोदितः ॥ ४९ ॥

सूर्य और अग्नि के तुल्य तेजस्वी, वृत्रासुर, आकाश को घेर कर बढ़ने लगा। प्रलय काल के सूर्य के समान जाज्वल्यमान वृत्रासुर ने त्वष्टा से कहा—अब मैं क्या करूं ॥४९॥

शक्रं जहीति चाप्युक्तो जगाम त्रिदिवं ततः ।
ततो युद्धं समभवद् वृत्रवासवयोर्महत् ॥ ५० ॥
संक्रुद्धयोर्महाघोरं प्रसक्तं कुरुसत्तम ।

हे कुरुसत्तम ! त्वष्टा ने कहा—तुम इन्द्र का वध करो। इसके इतना कहने पर यह स्वर्ग लोक में पहुंचा। वहां क्रुद्ध हुए, वृत्र और इन्द्र का महाघोर घमासान युद्ध हुआ ॥५०॥

ततो जग्राह देवेन्द्रं वृत्रो वीरः शतक्रतुम् ॥ ५१ ॥
अपावृत्याक्षिपद्वक्त्रे शक्रं कोप समन्वितः ।

वीर वृत्रासुर ने शतक्रतु इन्द्र को पकड़ लिया और कोप में भर कर इन्द्र को उलटा करके अपने मुख में रख लिया ॥५१॥

ग्रस्ते वृत्रेण शक्रे तु संभ्रांतास्त्रिदिवेश्वरा ॥ ५२ ॥
असृजंस्ते महासत्वा जृंभिकां वृत्रनाशिनीम् ।

वृत्र द्वारा इन्द्र के निगले जाने पर देवता बहुत घबड़ाए और उन महा-शक्ति-शाली देवों ने वृत्र के नाश करने वाली उसके मुख में एक जंभाई उत्पन्न की ॥५२॥

विजृंभमाणस्य ततो वृत्रस्यास्यादपावृतात् ॥५३॥
स्वान्यंगान्यभिसंक्षिप्य निष्क्रांतो बलनाशनः ।
ततः प्रभृति लोकस्य जृंभिका प्राणसंश्रिता ॥५४॥

जंभाई लेते हुए वृत्रासुर के खुले हुए मुख से अपने अङ्गों को संकुचित करके इन्द्र बाहर निकल आया। उस समय से इस जंभाई का प्राणों के साथ संपर्क हो गया है ॥५३-५४॥

जहृषुश्च सुराः सर्वे शक्रं दृष्ट्वा विनिःसृतम् ।
ततः प्रववृत्ते युद्धं वृत्रवासवयोः पुनः ॥५५॥

इन्द्र को उस दैत्य के मुख से निकला हुआ देखकर देवता बड़े प्रसन्न हुए। अब फिर वृत्र और इन्द्र के युद्ध का आरम्भ हुआ ॥५५॥

संरब्धयोस्तदा घोरं सुचिरं भरतर्षभ ।
यदा व्यवर्धत रणे वृत्रो बलसमन्वितः ॥ ५६ ॥
त्वष्टुस्तेजो बलाविद्धस्तदा शक्रो न्यवर्तत ।
निवृत्ते च तदा देवा विषादमगमन्परम् ॥ ५७ ॥

हे भरतर्षभ ! आवेश और क्रोध में भरे हुए, इन दोनों वृत्र और इन्द्र का बहुत देर तक घोर युद्ध होता रहा। ज्यों ही रण में त्वष्टा के तेज से वृद्धि पाकर वृत्रासुर बल की वृद्धि को प्राप्त हुआ, त्यों ही इन्द्र उसका सामना छोड़कर चल दिया। इन्द्र के युद्ध से निवृत्त हो जाने पर देवता बड़े विषाद को प्राप्त हुए ॥५६-५७॥

समेत्य सह शक्रेण त्वष्टुस्तेजोविमोहिताः ।
अमंत्रयंत ते सर्वे मुनिभिः सह भारत ॥ ५८ ॥
किंकार्यमिति वै राजन् विचिंत्य भयमोहिताः ।
जग्मुःसर्वे महात्मानं मनोभिर्विष्णुमव्ययम् ।
उपविष्टा मन्दराग्रे सर्वे वृत्रवधेप्सवः ॥ ५९ ॥
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
इन्द्रविजये नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

हे भारत ! त्वष्टा के तेज से पराभूत होकर सारे देव, इन्द्र और मुनियों के साथ सम्मति (सलाह) करने लगे, कि हमको क्या करना चाहिए। हे राजन् ! यह उस घटना को सोच कर बड़े भयभीत और मोहित हुए। ये सारे महात्मा देवता अपने २ मन से एक रस रहने वाले भगवान विष्णु की शरण में पहुँचे। ये देव, वृत्र वध के लिए मंदराचल पर्वत पर बैठ गए और सभा करने लगे ॥ ५८-५९ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में इन्द्र के विजय का नौवां अध्याय समाप्त हुआ।

दशवां अध्याय

इन्द्र उवाच—

सर्वं व्याप्तमिदं देवा वृत्रेण जगदव्ययम् ।
नह्यस्य सदृशं किंचित्प्रतिघाताय यद्भवेत् ॥ १ ॥

इन्द्र ने कहा- हे देवो ! इस वृत्रासुर से सारा संसार व्याप्त हो रहा है । इसके सदृश अन्य कोई भी वस्तु प्रतिघात के योग्य नहीं है अर्थात् सर्व प्रथम इसका प्रतिघात (नाश) होना चाहिए ।

समर्थो ह्यभवं पूर्वमसमर्थोऽस्मि सांप्रतम् ।
कथं नु कार्यं भद्रं वो दुर्धर्षः स हि मे मतः ॥ २ ॥

मैं पूर्वकाल में तो समर्थ था, परन्तु अब असमर्थ हो गया हूं । अब कार्य कैसे सम्पादन किया जावे, क्योंकि वह तो मेरी सम्मति में बड़ा दुर्धर्ष है ॥ २ ॥

तेजस्वी च महात्मा च युद्धे चामितविक्रमः ।
ग्रसेत् त्रिभुवनं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ३ ॥

यह बड़ा तेजस्वी, महात्मा और युद्ध में अत्यन्त पराक्रमी है । यह देवासुर और मनुष्यों के साथ त्रिलोकी को निगल सकता है ॥

तस्माद्विनिश्चयमिमं शृणुध्वं त्रिदिवौकसः ।
विष्णोः क्षयमुपागम्य समेत्य च महात्मना ।
तेन संमन्त्र्य वेत्स्यामो वधोपायं दुरात्मनः ॥ ४ ॥

हे देवो ! अब तुम मेरा निश्चय सुन लो। हम सब लोग, प्रथम भगवान् विष्णु के भवन पर चलें और वहां उन महात्मा से मिल कर तथा सम्मति करके इस दुरात्मा के वध का उपाय सोचें ॥ ४ ॥

शल्य उवाच—

एवमुक्ते मघवता देवाः सर्षिगणास्तदा।
शरण्यं शरणं देवं जग्मुर्विष्णुं महाबलम् ॥ ५ ॥

शल्य बोला—हे राजन ! इन्द्र के इतना कहने पर ऋषियों के साथ देवता, शरणागत-वत्सल, महा-शक्ति-शाली देव, भगवान् विष्णु, की शरण में पहुंचे ॥ ५ ॥

ऊचुश्च सर्वे देवेशं विष्णुं वृत्रभयार्दिताः।
त्रयो लोकास्त्वया क्रांतास्त्रिभिर्विक्रमणैः पुरा ॥ ६ ॥
अमृतं चाहृतं विष्णोर्दैत्याश्च निहता रणे।
बलिं बध्वा महादैत्यं शक्रो देवाधिपः कृतः ॥७॥

वृत्र के भय से व्याकुल देवों ने देवेश्वर विष्णु से कहा—हे भगवन् ! आपने तीन विक्रमण [पादप्रक्षेपण] से तीनों लोकों का आक्रमण कर लिया है। पूर्वकाल में दैत्यों को रण में मार कर आपने ही देवों को अमृत लाकर दिया था। इसी तरह महादैत्य बलि को बांध कर इन्द्र को फिर देवों का अधीश्वर बनाया ॥ ६-७ ॥

त्वं प्रभुः सर्वदेवानां त्वया सर्वमिदं ततम्।
त्वं हि देवो महादेवः सर्वलोकनमस्कृतः ॥८॥

तुम सारे देवों के प्रभु हो और तुमने ही इस सारे जगत को व्याप्त कर रखा है। तुम सब से बड़े देव हो और सारा संसार तुमको नमस्कार करता है ॥८॥

गतिर्भव त्वं देवानां सेन्द्राणाममरोत्तम।
जगद्व्याप्तमिदं सर्वं वृत्रेणासुरसूदन ॥९॥

हे अमरोत्तम! आज तुम इन्द्र सहित सारे देवों के फिर रक्षक बनो। हे असुरसूदन! आज सारे जगत् को वृत्रासुर न व्याप्त कर लिया है ॥९॥

विष्णुरुवाच—

अवश्यं करणीयं मे भवतां हितमुत्तमम्।
तस्मादुपायं वक्ष्यामि यथाऽसौ न भविष्यति ॥१०॥

विष्णु ने कहा:— हे देवो! मुझे आप लोगों का अवश्य हित करना है। अब मैं तुम को उपाय बताता हूँ, जिससे यह अवश्य संसार में नहीं रहेगा-अर्थात् नष्ट हो जावेगा ॥१०॥

गच्छध्वं सर्षिगंधर्वा यत्रासौ विश्वरूपधृक्।
साम तस्य प्रयुञ्जध्वं तत एनं विजेष्यथ ॥११॥

तुम लोग ऋषि और गन्धर्वों के साथ वहीं जावो, जहां वह मायावी दैत्य वृत्रासुर है। तुम उससे सन्धि करने का प्रस्ताव चलाओ, जिससे तुम उसको जीत लोगे ॥११॥

भविष्यति जयो देवाः शक्रस्य मम तेजसा।
अदृश्यश्च प्रवेक्ष्यामि वज्रे ह्यस्यायुधोत्तमे ॥१२॥

हे देवो ! मेरे तेज से इन्द्र का विजय हो जावेगा। मैं इन्द्र के अस्त्र वज्र में अलक्षित रूप से प्रविष्ट हो जाऊँगा ॥१२॥

गच्छध्वमृषिभिः सार्द्धं गन्धर्वैश्च सुरोत्तमाः ।
वृत्रस्य सह शक्रेण सन्धिं कुरुत मा चिरम् ॥१३॥

अब तुम सारे उत्तम २ देवता, ऋषि और गन्धर्वों के साथ जाओ और इन्द्र के साथ वृत्रासुर की सन्धि होने का प्रयत्न करो- देर न लगाओ ॥१३॥

शल्य उवाच—

एवमुक्ते तु देवेन ऋषयस्त्रिदशास्तथा ।
ययुः समेत्य सहिताः शक्रं कृत्वा पुरःसरम् ॥१४॥

शल्य ने कहाः—भगवान् विष्णु के इतना कहने पर ऋषि और देवता, इकट्ठे होकर एवं इन्द्र को आगे करके वृत्रासुर के पास पहुंचे ॥१४॥

समीपमेत्य च यदा सर्व एव महौजसः ।
तं तेजसा प्रज्वलितं प्रतपन्तं दिशो दश ॥१५॥
ग्रसन्तमिव लोकांस्त्रीन् सूर्याचन्द्रमसौ यथा ।
ददृशुस्ते ततो वृत्रं शक्रेण सह देवताः ॥१६॥

जब सारे महाओजस्वी देव, उनके पास पहुँचे, तो इन्द्र के साथ इन सारे देवों ने तेज से प्रज्वलित, दशों दिशाओं को तपाते हुए मानो तीनों लोकों को ग्रस जाने की चेष्टा करते हुए, सूर्य चन्द्र के समान देदीप्यमान वृत्रासुर को देखा ॥१५-१६॥

ऋषयोऽथ ततोऽभ्येत्य वृत्रमूचुः प्रियं वचः ।
व्याप्तं जगदिदं सर्वं तेजसा तव दुर्जय ॥१७॥
न च शक्नोषि निर्जेतुं वासवं बलिनाम्वर ।
युध्यतोश्चापि वां कालो व्यतीतः सुमहानिह ॥१८॥
पीड्यंते च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानुषाः ।
सख्यं भवतु ते वृत्र शक्रेण सह नित्यदा ॥१९॥
अवाप्स्यसि सुखं त्वं च शक्रलोकांश्च शाश्वतान् ।

अब वृत्रासुर से ऋषि लोग जाकर इस प्रकार प्रिय वचन बोले— हे बलवानों में श्रेष्ठ दुर्जय ! तेरे तेज से सारा जगत् व्याप्त हो गया है,परन्तु तू अभी तक इन्द्र को नहीं जीत सका है। तुम दोनों को युद्ध करते हुए बहुत काल व्यतीत हो गया। देव असुर और मनुष्यों सहित सारी प्रजा पीड़ित हो रही है। हे वृत्र ! अब तो तुम्हारी इन्द्र के साथ सदा के लिए सन्धि हो जानी चाहिए, इसमें तुम महासुख प्राप्त करोगे और शाश्वत सुखदायी इन्द्र के लोकों में भी जा आ सकोगे ॥१८-१९॥

ऋषिवाक्यं निशम्याथ वृत्रः स तु महाबलः ॥२०॥
उवाच तानृषीन्सर्वान्प्रणम्य शिरसाऽसुरः ।

महाबली वृत्रासुर ऋषियों के इन वचनों को सुन कर और शिर सहित प्रणाम करके उनसे कहने लगा ॥ २० ॥

सर्वे यूयं महाभागा गन्धर्वाश्चैव सर्वशः ॥२१॥
यद्ब्रूथ तच्छ्रुतं सर्वं ममापि शृणुतानघाः ।

हे देवो! तुम बड़े २ देवता और बड़े २ गन्धर्व यहां विद्यमान हो। तुम लोगों ने जो कहा—वह मैंने सुना और अब मैं जो कहता हूं—वह तुम सुनो॥ २१॥

संधिः कथं वै भविता मम शक्रस्य चोभयोः।
तेजसोर्हि द्वयोर्देवाः सख्यं वै भविता कथम्॥२२॥

हे देवताओ! मेरा और इन्द्र की सन्धि कैसे हो सकती है। दो तेजस्वियों का मिलकर रहना कैसे सम्भव हो सकता है॥२२॥

ऋषय ऊचुः—

सकृत् सतां संगतं लिप्सितव्यं ततः परं भविता भव्यमेव।
नातिक्रमेत्सत्पुरुषेण संगतं तस्मात् सतां संगतं लिप्सितव्यम्

ऋषि बोले—जीवन में एक बार भी सज्जन समागम मिल सके, तो इसके लिए बड़ा प्रयत्न करना चाहिए। इससे बड़ा ही कल्याण होता है। सत्पुरुष के साथ संगति होने के काल को व्यतीत न होने दे, इस लिए सज्जनों की संगति अवश्य करनी चाहिए॥ २३॥

दृढं सतां संगतं चापि नित्यं ब्रूयाच्चार्थं ह्यर्थकृच्छ्रेषु धीरः।
महार्थवत्सत्पुरुषेण संगतं तस्मात्सन्तं न जिघांसेत धीरः॥

सज्जनों के साथ सदा दृढ़ संगति करनी चाहिए, क्योंकि धीर, सज्जन, कर्तव्यों की कठिनाइयों के समय तत्वार्थ का विवेचन कर देते हैं। सत्संगति बड़ी भारी प्रभावशाली है, जिस

से बड़े २ कार्य सिद्ध होते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य को उचित है, कि वह कभी प्राप्त हुए सज्जन समागम की उपेक्षा न करे ॥ २४॥

इन्द्रः सतां संमतश्च निवासश्च महात्मनाम् ।
सत्यवादी ह्यनिंद्यश्च धर्मवित्सूक्ष्मनिश्चयः ॥२५॥
तेन ते सह शक्रेण संधिर्भवतु नित्यदा ।
एवं विश्वासमागच्छ मा तेऽभूद् बुद्धिरन्यथा ॥२६॥

इन्द्र सज्जनों में माना हुआ है और अच्छे २ पुरुषों का आश्रय है। यह सत्यवादी, निन्दाहीन, धर्मज्ञाता और सूक्ष्मतत्त्वों का विवेचक हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर इन्द्र के साथ तुमको सदा के लिए सन्धि कर लेनी चाहिए। तुम विश्वास करो और अपनी बुद्धि को उलट फेर में न डालो २५-२६

शल्य उवाच—

महर्षिवचनं श्रुत्वा तानुवाच महाद्युतिः ।
अवश्यं भगवन्तो मे माननीयास्तपस्विनः ॥२७॥
ब्रवीमि यदहं देवास्तत्सर्वं क्रियते यदि ।
ततः सर्वं करिष्यामि यदूचुर्मां द्विजर्षभाः ॥२८॥

शल्य ने कहा—हे राजन्! महर्षियों के वचन सुनकर महा कान्तिमान वृत्रासुर उनसे बोला—हे देवो! मैं इन पूज्य तपस्वियों की बड़ी प्रतिष्ठा करता हूं और इनको पूज्य समझता हूं, परन्तु मैं जो २ कहूंगा-यदि उनको आप स्वीकार करलें, तो जो ये ब्रह्मर्षि कह रहे हैं—मैं वही कर सकता हूं ॥२७-२८॥

न शुष्केण न चार्द्रेण नाश्मना न च दारुणा ।
न शस्त्रेण न चास्त्रेण न दिवा न तथा निशि ॥२९॥
वध्यो भवेयं विप्रेन्द्राः शक्रस्य सह दैवतैः ।
एवं मे रोचते संधिः शक्रेण सह नित्यदा ॥३०॥

हे ब्रह्मर्षियो! सूखे, गीले, किसी पदार्थ तथा पत्थर, लकड़ी, शस्त्र अस्त्र रात या दिन में देवों सहित इन्द्र से न मारा जा सकूं। इस तरह इन्द्र से सदा के लिए सन्धि हो सकती है ॥२९-३०

बाढमित्येव ऋषयस्तमूचुर्भरतर्षभ ।
एवं वृत्ते तु संधाने वृत्रः प्रमुदितोऽभवत् ॥३१॥

हे भरतर्षभ! ऋषियों ने कहा—हां? यह स्वीकार है। जब यह बात हो गई, तो वृत्रासुर बड़ा प्रसन्न हुआ ॥३१॥

युक्तः सदाऽभवच्चापि शक्रो हर्षसमन्वितः ।
वृत्रस्य वधसंयुक्तानुपायानन्वचिन्तयन् ॥३२॥
छिद्रान्वेषी समुद्विग्नः सदा वसति देवराट् ।

इस सन्धि से युक्त होकर इन्द्र भी अत्यन्त हर्षित हुआ और यह वृत्रासुर के वध के लिए उपाय विचारने लगा। यह देवराट् सदा वृत्रासुर के किसी छिद्र की खोज में बड़ी व्याकुलता से रहता था ॥३२॥

स कदाचित्समुद्रांते समपश्यन्महासुरम् ॥३३॥
संध्याकाल उपावृत्ते मुहूर्ते चातिदारुणे ।

इन्द्र ने किसी समय इस महासुर को समुद्र के तट पर देखा। उस समय संध्या काल हो चुका था और अत्यन्त दारुण मुहूर्त उपस्थित हो रहा था ॥३३॥

ततः संचिंत्य भगवान् वरदानं महात्मनः ॥३४॥
संध्येयं वर्त्तते रौद्रा न रात्रिर्दिवसं न च ।

अब भगवान् इन्द्र ने महाबली वृत्रासुर के प्राप्त हुए वरदान का स्मरण किया। इसने सोचा, कि इस समय तो भयंकर संध्या काल हो रहा है, इसकी मृत्यु के नहीं होने का वरदान में मांगा हुआ दिन या रात का समय नहीं है ॥३४॥

वृत्रश्चावश्यवध्योऽयं मम सर्वहरो रिपुः ॥३५॥
यदि वृत्रं न हन्स्यद्य वंचयित्वा महासुरम् ।
महाबलं महाकायं न मे श्रेयो भविष्यति ॥३६॥

आज मुझे वृत्रासुर को अवश्य मार लेना है, क्योंकि यह तो मेरा सब कुछ छीन लेने वाला शत्रु है। यदि मैं इस महाबली, महा-काय, महासुर को वञ्चित करके आज नहीं मार लूंगा, तो मेरा कल्याण नहीं हो सकेगा ॥३५-३६॥

एवं संचिंतयन्नेव शक्रो विष्णुमनुस्मरन् ।
अथ फेनं तदाऽपश्यत् समुद्रे पर्वतो पमम् ॥३७॥

इतना विचार कर इन्द्र ने भगवान् विष्णु का स्मरण किया, इस समय इसने समुद्र पर पर्वत के आकार का फेनों (झागों) का समूह देखा ॥३७॥

नायं शुष्को न चार्द्रोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा ।
एनं क्षेप्स्यामि वृत्रस्य क्षणादेव न शिष्यति ॥३८॥

यह फेन समूह, न तो सूखा है और न गीला है और न शस्त्र कहा जा सकता है। मैं इसको वृत्रासुर पर फेंकता हूं- यह इससे अवश्य नष्ट हो जावेगा ॥३८॥

सवज्रमथ फेनं तं क्षिप्रं वृत्रे निसृष्टवान् ।
प्रविश्य फेनं तं विष्णुरथ वृत्रं व्यनाशयत् ॥३६॥

इन्द्र ने इस फेन को ही वज्र बनाकर वृत्रासुर पर शीघ्रता से फैंका। भगवान् विष्णु ने इस फेन में प्रविष्ट होकर वृत्रासुर का नाश कर दिया ॥३६॥

निहते तु ततो वृत्रे दिशो वितिमिराऽभवन् ।
प्रववौ च शिवो वायुः प्रजाश्च जहृषुस्तथा ॥४०॥

वृत्रासुर के मार लेते ही सारी दिशाओं में प्रकाश हो गया। बड़ा कल्याणकारी वायु चलने लगा और प्रजा बड़ी ही सुखी हो गई ॥४०॥

ततो देवाः स गन्धर्वा यक्षरक्षोमहोरगाः ।
ऋषयश्च महेन्द्रं तमस्तुवन्विविधैः स्तवैः ॥४१॥

अब देव, गन्धर्व, यक्ष, रक्ष, महोरग और ऋषि-मुनियों ने अनेक स्तोत्रों से देवराज की स्तुति की ॥४१॥

नमस्कृतः सर्वभूतैः सर्वभूतान्यसांत्वयत् ।
हत्वा शत्रुं प्रहृष्टात्मा वासवः सहदैवतैः ॥४२॥
विष्णुं त्रिभुवन श्रेष्ठं पूजयामास धर्मवित् ।

सारे देवताओं के साथ प्रहर्षित हुए इन्द्र ने अपने शत्रु, वृत्रासुर को मार कर सारे प्राणियों को सान्त्वना दी। समस्त प्रजा ने

भी इन्द्र को प्रणाम किया। धर्म के जानने वाले इन्द्र ने त्रिभुवन श्रेष्ठ, भगवान् विष्णु की बड़ी पूजा की ॥४२॥

ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयङ्करे ॥ ४३ ॥
अनृते नाभिभूतोऽभूच्छक्रः परमदुर्मनाः ।
त्रैशीर्षयाऽभिभूतश्च सपूर्वं ब्रह्महत्यया ॥ ४४ ॥

देवों को भय उत्पन्न करने वाले, महा-शक्ति-शाली, वृत्रासुर के मारे जाने पर इस छल के व्यवहार से इन्द्र बड़ा दुखी हुआ। यह त्रिशिरा के मारने से पूर्व में ब्रह्म-हत्या से मलिन हो ही रहा था ॥४३-४४॥

सोऽन्तमाश्रित्य लोकानां नष्टसंज्ञो विचेतनः ।
न प्राज्ञायत देवेन्द्रस्त्वभिभूतः सकल्मषैः ॥ ४५ ॥
प्रतिच्छन्नोऽवसच्चाप्सु चेष्टमान इवोरगः ।

इन्द्र! जब लोगों के पास आया, तो यह अचेत और मूर्च्छित सा हो रहा था। पाप से यह इतना मैला हो रहा था, कि कोई यह भी नहीं जान पाता था, कि यह देवेन्द्र है। यह छुपकर पानी में रहने लगा और जल सर्प को तरह चेष्टा करता रहा ॥

ततः प्रनष्टे देवेन्द्रे ब्रह्महत्या भयार्दिते ॥ ४६ ॥
भूमिः प्रध्वस्तसंकाशा निर्वृक्षा शुष्ककानना ।
विच्छिन्नस्रोतसो नद्यः सरांस्यनुदकानि च ॥ ४७ ॥
संक्षोभश्चापि सत्वानामनावृष्टिकृतोऽभवत् ।
देवाश्चापि भृशं त्रस्तास्तथा सर्वे महर्षयः ॥ ४८ ॥

ब्रह्म-हत्या के भय से क्लेशित हुए, देवेन्द्र के अलक्षित हो जाने पर भूमि नष्ट सी हो गई और इसके सारे वृक्ष नष्ट हो गए और वन सूख गए। इस समय सारी नदियां रुक गईं और सरोवर जलहीन हो गए। सारे प्राणियों को अनावृष्टि से बड़ी व्याकुलता हुई एवं सारे महर्षि और देवता भी बड़े दुःखी हुए ॥४६-४८॥

अराजकं जगत्सर्वमभिभूतमुपद्रवैः ।
ततो भीताऽभवन्देवाः को नो राजा भवेदिति ॥४९॥

जब सारा जगत् अराजक हो गया, तो संसार को उपद्रवोंने घेर लिया। अब देवता, बड़े डरे, कि हमारा राजा कौन रहेगा ॥

दिवि देवर्षयश्चापि देवराजविनाकृताः ।
न स्म कश्चन देवानां राज्ये वै कुरुते मतिम् ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि वृत्रवधे इन्द्रविजयो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

स्वर्ग में अनेक देवश्रेष्ठ हैं, परन्तु देवराज, इन्द्र के बिना कोई भी देवता, राजा बनने के लिए तय्यार नहीं हुआ ॥५०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में वृत्र के वध और इन्द्र के विजय का दशवाँ अध्याय पूरा हुआ।



ग्यारहवाँ अध्याय

शल्य उवाच—

ऋषयोथाब्रुवन्सर्वे देवाश्च त्रिदिवेश्वराः ।
अयं वै नहुषः श्रीमान् देवराज्येऽभिषिंच्यताम् ॥१॥
तेजस्वी च यशस्वी च धार्मिकश्चैव नित्यदा ।
ते गत्वा त्वब्रुवन् सर्वे राजानो भव पार्थिव ॥ २ ॥

शल्य ने कहा:—हे भरतर्षभ ! अब ऋषि और स्वर्गाधिपति देवों ने कहा, कि इन श्रीमान् राजा नहुष को देवों के राज्य-सिंहासन पर बैठाओ, क्योंकि यह बड़ा धार्मिक तेजस्वी और यशस्वी है, इन्होंने जाकर नहुष से कहा, कि तुम हमारे राजा बन जाओ ॥१-२॥

स तानुवाच नहुषो देवानृषिगणांस्तथा ।
पितृभिः सहितान् राजन् परीप्सन् हितमात्मनः ॥३॥

हे राजन ! अपने हित की आकांक्षा करते हुए, नहुष ने उन देव, ऋषि और पितरों से कहा॥३॥

दुर्बलोहं न मे शक्तिर्भवतां परिपालने ।
बलवान् जायते राजा बलं शक्रे हि नित्यदा ॥ ४ ॥

हे देवो ! मैं तो एक दुर्बल मनुष्य हूँ; तुम्हारी रक्षा करने की शक्ति मुझ में नहीं है । राजा तो बलवान् होता है और इतना बल तो इन्द्र में ही हो सकता है॥४॥

तमब्रुवन् पुनः सर्वे देवा ऋषिपुरोगमाः ।
अस्माकं तपसा युक्तः पाहि राज्यं त्रिविष्टपे ॥ ५ ॥

ऋषि और सारे देवताओं ने फिर उससे कहा— तुम हमारे तप से युक्त होकर स्वर्ग के राज्य की पालना करो ॥५॥

परस्परभयं घोरमस्माकं हि न संशयः ।
अभिषिच्यस्व राजेन्द्र भव राजा त्रिविष्टपे ॥ ६ ॥

हे राजेन्द्र ! हमको आपस में ही एक दूसरे से ही बड़ा भय हो सकता है, इसमें संदेह नहीं है, इसलिए तुम स्वर्ग के सिंहासन पर अपना अभिषेक कराके राजा बन जाओ ॥६॥

देवदानवयक्षाणामृषीणां रक्षसां तथा ।
पितृगंधर्वभूतानां चक्षुर्विषयवर्तिनाम् ॥ ७ ॥
तेज आदास्यसे पश्यन् बलवांश्च भविष्यसि ।
धर्मं पुरस्कृत्य सदा सर्व लोकाधिपो भव ॥ ८ ॥
ब्रह्मर्षींश्चापि देवांश्च गोपायस्व त्रिविष्टपे ।

देव, दानव, यक्ष, ऋषि, राक्षस, पितृ, गन्धर्व, भूत आदि में से जो तेरे दृष्टिगोचर आ जावेगा, तू उसको देखते ही सारे उसके तेज को खैंच लेगा और बड़ा बलवान् बन जावेगा। तू धर्म को प्रधान मानकर सारे लोक का अधिपति बन जा तथा ब्रह्मर्षि और देवताओं की स्वर्ग में रक्षा करता रह ॥७-८॥

अभिषिक्तः स राजेन्द्र ततो राजा त्रिविष्टपे ॥ ९ ॥
धर्मं पुरस्कृत्य तदा सर्व लोकाधिपोऽभवत् ।

हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर देवों ने राजा नहुष को स्वर्ग के सिंहासन पर बैठा दिया। यह भी धर्म को प्रधान बनाकर सारे लोकों का अधिपति बन गया ॥९॥

सुदुर्लभं वरं लब्ध्वा प्राप्य राज्यं त्रिविष्टपे ॥ १० ॥
धर्मात्मा सततं भूत्वा कामात्मा समपद्यत ।

अत्यन्त दुर्लभ वर पाकर और उससे स्वर्ग का सिंहासन प्राप्त करके, यह राजा नहुष, धर्मात्मा होकर भी कामात्मा बन गया।

देवोद्यानेषु सर्वेषु नंदनोपवनेषु च॥ ११ ॥
कैलासे हिमवत्पृष्ठे मन्दरे श्वेतपर्वते ।
सह्ये महेन्द्रे मलये समुद्रेषु सरित्सु च ॥ १२ ॥
अप्सरोभिः परिवृतो देवकन्या समावृतः ।
नहुषो देवराजोथ क्रीडन् बहुविधं तदा ॥ १३ ॥

यह नहुष देवराज बनकर देवताओं के सारे बगीचे, नन्दन वन, कैलास, हिमालय के शिखर, मन्दराचल, श्वेत-पर्वत सह्य और मलया गिरि, समुद्र, सरित् आदि स्थानों में अप्सरा और देव कन्याओं के साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ा करने लगा ॥११-१३॥

शृण्वन् दिव्या बहुविधाः कथाः श्रतिमनोहराः ।
वादित्राणि च सर्वाणि गीतं च मधुरस्वनम् ॥ १४ ॥

यह इन्द्र कानों को प्रिय लगने वाली अनेक दिव्य कथा सुनता हुआ अनेक तरह के बाजे और मधुर स्वर वाले गीतें सुनने लगा।

विश्वावसुर्नारदश्च गन्धर्वाप्सरसांगणाः ।
ऋतवः षट् च देवेन्द्रं मूर्तिमन्त उपस्थिताः ॥१५॥
मारुतः सुरभिर्वाति मनोज्ञः सुख शीतलः ।

विश्वावसु, नारद, गन्धर्व और अप्सराओं के समूह तथा छःओं ऋतु, मूर्ति धारण करके इस देवेन्द्र की सेवा में उपस्थित हुईं इस समय मनोहर, सुखदायी, शीतल, मन्द, सुगन्ध, वायु चलने लगा।

एवं च क्रीडमानस्य नहुषस्य दुरात्मनः ॥ १६ ॥
संप्राप्ता दर्शनम् देवी शक्रस्य महिषी प्रिया।

इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए कामात्मा नहुष के किसी दिन इन्द्र की प्रिय रानी, इन्द्राणी दृष्टि गोचर हो गई ॥१६॥

स तां सन्दृश्य दुष्टात्मा प्राह सर्वान् सभासदः ॥१७॥
इन्द्रस्य महिषी देवी कस्मान्मां नोपतिष्ठति।

इसको देखकर यह दुष्टात्मा सारे सभासदों से कहने लगा। इन्द्र की रानी इन्द्राणी देवी, मेरे पास क्यों नहीं आती है ॥१७॥

अहमिन्द्रोऽस्मि देवानां लोकानां च तथेश्वरः ॥ १८ ॥
आगच्छतु शचीमह्यं क्षिप्रमद्य निवेशनम्।

मैं ही तो देवों का इन्द्र और लोकों का ईश्वर हूं। आज ही इन्द्राणी, शीघ्र से शीघ्र चली आनी चाहिए ॥१७॥

तच्छ्रुत्वा दुर्मना देवी बृहस्पतिमुवाच ह ॥१९॥
रक्ष मां नहुषाद् ब्रह्मंस्त्वामस्मि शरणं गता।

यह सुनकर इन्द्राणी बड़ी चिन्तित हुई और बृहस्पति से बोली हे ब्रह्मन्! आप मेरी इस नहुष से रक्षा करो, मैं आपके शरण हूं

महाभारत चित्र संख्या ५८



संजय का धृतराष्ट्र के पास जाकर पाण्डवों के समाचार सुनना।

महाभारत उद्योगपर्व अ० ३८ । ७ । पृष्ठ ५३६

सर्वलक्षणसंपन्नां ब्रह्मं स्त्वं मां प्रभाषसे ॥ २० ॥
देवराजस्य दयितामत्यंतं सुखभागिनीम् ।
अवैधव्येन युक्तां चाप्येकपत्नीं पतिव्रताम् ॥२१॥
उक्तवानसि मां पूर्वमृतां तां कुरु वै गिरम् ।

हे ब्रह्मन्! आप मुझे सब लक्षणों से सम्पन्न बताते रहते थे। आप तो पूर्वकाल में कहा करते थे, कि तू देवराज की प्रिय पत्नी, अत्यन्त सुख भोगने वाली, विधवापन से हीन, एक पति में भक्ति रखने वाली पतिव्रता होगी आज तुम अपनी वाणी को सत्य करके दिखलाओ ॥२०-२१॥

नोक्त पूर्वं च भगवन् वृथा ते किंचिदीश्वर ॥ २२ ॥
तस्मादेतद् भवेत्सत्यं त्वयोक्तं द्विजसत्तम ।

हे शक्तिशाली! भगवन्! तुम्हारा कहा हुआ पहिले कभी मिथ्या नहीं हुआ है। हे द्विजराज! अब आपकी यह बात भी सत्य होनी चाहिए ॥२२॥

बृहस्पतिरथोवाच शक्राणीं भयमोहिताम् ॥२३॥
यदुक्तासि मया देवि सत्यं तद् भविता ध्रुवम् ।
द्रक्ष्यसे देवराजानमिन्द्र शीघ्रमिहागं ॥ २४ ॥

भय से विह्वल इन्द्राणी से बृहस्पति कहने लगे—हे देवि! मैंने जो कहा है, वह अवश्य सत्य होगा। अब तुम शीघ्र ही यहां आए हुए देवराज इन्द्र को देखोगी ॥२३-२४॥ २५

न भेतव्यं च नहुषात् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।
समानयिष्ये शक्रेण न चिराद् भवतीमहम् ॥२५॥

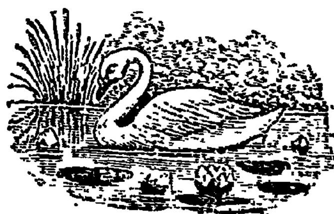
तुमको नहुष से डरना नहीं चाहिए- यह मैं सत्य कह रहा हूं। अब मैं तुम्हारे पास इन्द्र को लाने वाला हूं ॥२५॥

अथ शुश्राव नहुषः शक्राणीं शरणं गताम्।
बृहस्पतेरंगिरसश्चुक्रोध सनृपस्तदा ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
इन्द्राणीभये एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

नहुष ने सुना कि इन्द्राणी अंगिरा पुत्र बृहस्पति के शरण में पहुंच गई, तो वह राजा बड़ा क्रुद्ध हुआ ॥२६॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में इन्द्राणी के भय का ग्यारहवां अध्याय पूरा हुआ।



बारहवां अध्याय

शल्य उवाच—

क्रुद्धं तु नहुषं दृष्ट्वा देवा ऋषिपुरोगमाः ।
अब्रुवन्देवराजानं नहुषं घोरदर्शनम् ॥ १ ॥

शल्य ने कहा-हे राजन्! देव और ऋषियों ने क्रुद्ध हुए भयानक आकार वाले, नहुष को देखकर देवराज बने हुए इस नहुष से कहा ॥१॥

देवराज जहि क्रोधं त्वयि क्रुद्धे जगद्विभो ।
त्रस्तं सासुरगंधर्वसकिन्नरमहोरगम्॥ २ ॥

हे देवराज! त्रिभो! आप क्रोध का परित्याग कर दें। आप के क्रोध करने से असुर, गन्धर्व, किंनर, महोरगों से युक्त, सारा जगत् व्याकुल हो उठा है ॥२॥

जहि क्रोधमिमं साधो न कुप्यन्ति भवद्विधाः ।
परस्य पत्नी सा देवी प्रसीदस्व सुरेश्वर ॥ ३ ॥

हे साधो! आप क्रोध को छोड़दें। आप जैसे महानुभाव क्रोध नहीं किया करते हैं। हे सुरेश्वर! इन्द्राणी दूसरे की पत्नी है, इससे उसके न मिलने पर भी आप प्रसन्न हो जाइए ॥३॥

निवर्तय मनः पापात् परदाराभिमर्षणात् ।
देवराजोसि भद्रं ते प्रजाधर्मेण पालय ॥ ४ ॥

तुम अपने मन को परदारा के भोग के पाप से दूर रखो और प्रजा की धर्म से पालना करते रहो ॥४॥

एवमुक्तो न जग्राह तद्वचः काममोहितः ।
अथ देवानुवाचेदमिन्द्रं प्रति सुराधिपः ॥ ५ ॥

इस प्रकार देव और ऋषियोंके कहने पर भी कामातुर नहुषने उन के कथन पर कुछ ध्यान नहीं दिया और इन्द्र के विषय में देवों से कहने लगा ॥५॥

अहल्या धर्षिता पूर्वमृषिपत्नी यशस्विनी ।
जीवतो भर्तुरिन्द्रेण स वः किं न निवारितः ॥ ६ ॥

हे देवो ! जिसका पति जीवित था, ऐसी यशस्विनी गौतम ऋषि की पत्नी पर इन्द्र ने पूर्वमें बलात्कार किया था,तुम लोगोंने उस को क्यों नहीं रोका ॥६॥

बहूनि च नृशंसानि कृतानीन्द्रेण वै पुरा ।
वैधर्म्यान्युपधाश्चैव स वः किं न निवारितः ॥ ७

इन्द्र ने पूर्व में अनेक नीच कर्म, धर्म हीनता (त्रिशिरा आदि कावध) और छल (वृत्रासुर छलन) किया है, तुमने उसको क्यों नहीं रोका ॥७॥

उपतिष्ठतु देवी मामेतदस्या हितं परम् ।
युष्माकं च सदा देवा शिवमेवं भविष्यति ॥ ८ ॥

देवी इन्द्राणी मेरे पास चली आवे, इसी में उसका बड़ा हित है । हे देवो ! इसी तरह तुम्हारा भी बड़ा ही कल्याण हो सकता है ॥८॥

देवा ऊचु;—

इन्द्राणीमानयिष्यामो यथेच्छसि दिवस्पते ।
जहि क्रोधमिमं वीर प्रीतो भव सुरेश्वर ॥ ९ ॥

हे स्वर्गाधीश्वर ! सुरेश्वर वीर ! आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो हम इन्द्राणी को ले आवेंगे, परन्तु आप क्रोध को छोड़ कर प्रसन्न हो जाइए ॥६॥

शल्य उवाच—

इत्युक्त्वा तं तदा देवा ऋषिभिः सह भारत ।
जग्मुर्बृहस्पतिं वक्तुमिन्द्राणीं चाशुभं वचः ॥ १० ॥

शल्य ने कहा—हे भारत ! इतना कहकर ऋषि मुनियों के साथ देवता, इस अशुभ सम्वाद को सुनाने के लिए बृहस्पति और इन्द्राणी के पास पहुंचे ॥१०॥

जानीमः सर्वथा प्राप्तामिन्द्राणीं तव वेश्मनि ।
दत्ताभयां च विप्रेन्द्र त्वया देवर्षिसत्तम ॥ ११ ॥

हे देवर्षि-सत्तम ! हमको यह ज्ञात है, कि इन्द्राणी आप के भवन पर सुरक्षित है। हे ! विप्रेन्द्र ! आपने उसको अभयदान दे दिया है-हमको यह भी पता है ॥११॥

ते देवाः सहगंधर्वा ऋषयश्च महाद्युते ।
प्रसादयन्ति चेन्द्राणीं नहुषाय प्रदीयताम् ॥ १२ ॥

इन्द्राद्विशिष्टो नहुषो देवराजो महाद्युतिः ।
वृणोत्विमं वरारोहा भर्तृत्वे वरवर्णिनी ॥ १३ ॥

हे महाद्युते ! अब ऋषि और गन्धर्वों के साथ सारे आप से प्रार्थना करते हैं. कि आप इन्द्राणी को नहुप के लिए प्रदान कर दीजिए। नहुष तो इन्द्र से भी श्रेष्ठ महाकान्तिमान् देवों का

राजा है। यह सुन्दरी,सर्वगुणसम्पन्न इन्द्राणी, नहुष को ही अपना पति बना ले ॥१३॥

एवमुक्ते तु सा देवी बाष्पमुत्सृज्य सस्वनम् ।
उवाच रुदती दीना बृहस्पतिमिदं वचः ॥ १४ ॥

देवों के इतना कहते ही इन्द्राणी, जोर से रोने लगी और रोते २ कातर होकर बृहस्पति से यह वचन बोली ॥१४॥

नाहमिच्छामि नहुषं पतिं देवर्षिसत्तम ।
शरणागतास्मि ते ब्रह्मंस्त्रायस्व महतो भयात् ॥१५॥

हे देवर्षिसत्तम ! मैं नहुष को अपना पति बनाना नहीं चाहती हूं । हे ब्रह्मन ! मैं तुम्हारी शरणागत हूं, अब तुम ही इस भय से मेरी रक्षा करो ॥१५॥

शरणागतं न त्यजेयमिन्द्राणि मम निश्चयः ।
धर्मज्ञां सत्यशीलं च न त्यजेयमनिंदिते ॥ १६ ॥

बृहस्पति ने कहा—हे इन्द्राणी ! मैं शरणागत को नहीं छोड़ूंगा, यह मेरा निश्चय है । हे अनन्दिते ! तुम तो धर्मज्ञ और सत्य-शील हो, तुमको मैं कभी छोड़ ही नहीं सकता हूं ॥१६

नाकार्यं कर्तुमिच्छामि ब्राह्मणः सन्विशेषतः ।
श्रुतधर्मा सत्यशीलो जानन्धर्मानुशासनम् ॥ १७ ॥

मैं ब्राह्मण होने के कारण कोइ अकार्य करना नहीं चाहता हूं, क्योंकि मैं वेद का अनुयायी, सत्यधर्म का पालक और धर्म-मार्ग का जानने वाला हूं ॥१७॥

नाहमेतत्करिष्यामि गच्छध्वं वै सुरोत्तमाः ।
अस्मिंश्चार्थे पुरा गीतं ब्रह्मणा श्रूयतामिदम् ॥१८॥

हे देवताओ ! मैं इन्द्राणी को नहीं दे सकता हूं, तुम यहां से चले जाओ। इस विषय में पूर्वकाल में जो ब्रह्मा ने कहा है—वह मैं तुमको सुनाता हूं—तुम सुनो ॥१८॥

न तस्य बीजं रोहति रोहकाले न तस्य वर्षं वर्षति वर्षकाले ।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे न स त्रातारं लभते त्राणमिच्छन्

उस मनुष्य के बोए हुए बीज (कर्म) उगने के समय नहीं उगते हैं और वर्षा के समय उसके स्थान में वर्षा नहीं होती है, जो डरे हुए धार्मिक शरणागत को शत्रु को सौंप देता है। यदि वह शरणागत त्यागी, विपत्ति में अपनी रक्षा चाहता है, तो कोई उसको रक्षक नहीं मिलता है ॥ १९ ॥

मोघमन्नंविन्दति चाप्यचेताःस्वर्गाल्लोकाद्भ्रश्यति नष्टचेष्टः
भीतं प्रपन्नं प्रददाति यो वै न तस्य हव्यं प्रतिगृह्णन्ति देवाः

वह अज्ञानी, जो अन्न प्राप्त करता है वह फल नहीं लाता और वह किं कर्त्तव्य विमूढ़ होकर स्वर्गलोक की प्राप्ति से वंछित हो जाता है। जो मनुष्य भयभीत शरणागत को शत्रु को सौंप देता है, देवता उसके हव्य को ग्रहण नहीं करते हैं ॥ २० ॥

प्रमीयते चास्य प्रजा ह्यकाले सदा विवासं पितरोस्य कुर्वते।
भीतं प्रपन्नम्प्रददाति शत्रवे सेन्द्रा देवाः प्रहरन्त्यस्य वज्रम्

इस धर्मानुसार प्राप्त शरणागत के त्याग करने वाले राजा की प्रजा, बिना मौत मरती है। इसके पितर सदा दुर्गति में पड़े हुए नरक

एतदेवं विजानन्वै न दास्यामि शचीमिमाम् ।
इन्द्राणीं विश्रुतां लोके शक्रस्य महिषीं प्रियाम् ॥२२॥

वास करते हैं । जो भयभीत शरणागत को शत्रु को सौंपता है, उस पर इन्द्रादिदेव, वज्र का प्रहार करते हैं ॥२१॥

मैं यह सब कुछ जानता हूं, इससे लोक विश्रुत, इन्द्र की प्रिय-पत्नी इन्द्राणी को कभी प्रदान नहीं करूंगा ॥२२॥

अस्याहितं भवेद्यच्च मम चापि हितं भवेत् ।
क्रियतां तत्सुरश्रेष्ठा न हि दास्याम्यहं शचीम् ॥२३॥

जो इसका कल्याणकारी कार्य होगा-अब वही मेरा कल्याण कारी कार्य है । हे देवो ! अब तुमको करना हो—वह करो-मैं तो इस इन्द्राणी को आपको प्रदान नहीं करूंगा ॥२३॥

शल्य उवाच—

अथ देवाः सगंधर्वा गुरुमाहुरिदं वचः ।
कथं सुनीतं नु भवेन्मंत्रयस्व बृहस्पते ॥ २४ ॥

अब गन्धर्व सहित देवों ने बृहस्पति से यह वचन कहा—हे बृहस्पते ! तुम यह बात बताओ, कि अब किस रीति से चलना नीति के अनुसार उचित होगा ॥२४॥

बृहस्पतिरुवाच—

नहुषं याचतां देवी किंचित्कालांतरं शुभा ।
इन्द्राणी हितमेतद्धि तथास्माकं भविष्यति ॥२५॥

बृहस्पति बोले—यह इन्द्राणी नहुष से कुछ काल की अवधि प्राप्त कर ले, इसी में इन्द्राणी का हित है और हमारा भी इसी में हित छुपा हुआ है ॥२५॥

बहुविघ्नः सुराः कालः कालः कालं नयिष्यति ।
गर्वितो बलवांश्चापि नहुषो वरसंश्रयात् ॥ २६ ॥

हे देवो ! यह समय बहुत विघ्नों से युक्त है । काल ही विघ्न रहित काल को ले आवेगा । इस समय वर के बल को पाकर राजा नहुष बड़ा बली और अहङ्कारी हो रहा है ॥२६॥

शल्य उवाच—

ततस्तेन तथोक्ते तु प्रीता देवास्तथाब्रुवन् ।
ब्रह्मन्साध्विदमुक्तं ते हितं सर्वं दिवौकसाम् ॥२७॥

शल्य ने कहा—बृहस्पति के इतना कहने पर देवता बड़े प्रसन्न हुए । हे ब्रह्मन ! आपने यह ठीक कहा है—जो सारे देवों का हितकारी है ॥२७॥

एवमेतद् द्विजश्रेष्ठ देवी चेयं प्रसाद्यताम् ।
ततः समस्ता इन्द्राणीं देवाश्चाग्निपुरोगमाः ।
ऊचुर्वचनमव्यग्रा लोकानां हितकाम्यया ॥२८॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! अब सब कुछ ठीक हो गया—तुम जरा उसके लिए इन्द्राणी को तय्यार कर दो। इसके अनन्तर अग्नि आदि सारे देवता इन्द्राणी के पास पहुँचे और घबराहट छोड़कर लोकों के हित की कामना से यह वचन बोले—॥२८॥

देवा ऊचुः—

त्वया जगदिदं सर्वं धृतं स्थावरजंगमम् ।
एकपत्न्यसि सत्या च गच्छस्व नहुषं प्रति ॥२९॥

देवता बोले—हे देवि ! तू ने ही स्थावर जंगम सारे जगत को धारण कर रक्खा है। तू पतिव्रता और सत्यशीला है। अब तुम जरा नहुष के पास चली चलो ॥१६॥

क्षिप्रं त्वामभिकामश्च विनशिष्यति पापकृत् ।
नहुषो देवि शक्रश्च सुरैश्वर्यमवाप्स्यति ॥ ३० ॥

हे देवि ! यह पापी दुरात्मा नहुष तेरी अभिलाषा करने से शीघ्र ही नष्ट हो जावेगा और इन्द्र, शीघ्र ही अपना ऐश्वर्य प्राप्त कर लेगा ॥३०॥

एवं विनिश्चयं कृत्वा इन्द्राणी कार्यसिद्धये ।
अभ्यगच्छत सव्रीडा नहुषं घोरदर्शनम् ॥३१॥

इस प्रकार अपनी कार्य-सिद्धि का निश्चय करके इन्द्राणी लज्जा के साथ घोर दर्शन नहुष के पास चल दी ॥३०॥

दृष्ट्वा तां नहुषश्चापि वयोरूपसमन्विताम् ।
समहृष्यत दुष्टात्मा कामोपहतचेतनः ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इन्द्राणी कालावधियाचने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

कामातुर, दुरात्मा नहुष भी यौवन और रूप से समन्वित इन्द्राणी को देखकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ ॥३२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में इन्द्राणी के कालावधि प्राप्त करने की सम्मति का बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ।

तेरहवां अध्याय

शल्य उवाच—

अथ तामब्रवीद् दृष्ट्वा नहुषो देवराट् तदा ।
त्रयाणामपि लोकाना महामिन्द्रः शुचिस्मिते ॥१॥
भजस्व मां वरारोहे पतित्वे वरवर्णिनि ।

शल्य ने कहा—हे राजन्! अब देवराज नहुष ने बड़ी प्रसन्नता के साथ इन्द्राणी से कहा—हे शुचिस्मिते! मैं तीनों लोकों का स्वामी इन्द्र हूं—हे सर्वाङ्ग-सुन्दरी! वरारोहे! तुम मुझे पति रूप में स्वीकार करो ॥१॥

एवमुक्ता तु सा देवी नहुषेण पतिव्रता ॥ २ ॥
प्रावेपत भयोद्विग्ना प्रवाते कदली यथा ।

हे राजन्! देवराज नहुष के इतना कहने पर वह पतिव्रता इन्द्राणी बड़ी भयभीत हुई और वायु के वेग से कदली के समान काँपने लगी ॥२॥

प्रणम्य सा हि ब्रह्माणं शिरसा तु कृतांजलिः ॥३॥
देवराजमथोवाच नहुषं घोरदर्शनम् ।

इसने हाथ जोड़कर एवं शिर झुकाकर ब्रह्मा को प्रणाम किया और फिर घोर रूपधारी देवराज नहुष से बोली ॥३॥

कालमिच्छाम्यहं लब्धुं त्वत्तः कंचित्सुरेश्वर ॥४॥
न हि विज्ञायते शक्रः किं वा प्राप्तः क्वागतः ।

हे सुरेश्वर! मुझे तुम कुछ काल की अवधि प्रदान करो। इन्द्र का कुछ पता नहीं है, कि वह कहां चला गया या पहुँच गया है ॥ ४ ॥

तत्वमेतत्तु विज्ञाय यदि न ज्ञायते प्रभो ॥ ५ ॥
ततोऽहं त्वा मुपस्थास्ये सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।
एवमुक्तः स इन्द्राण्या नहुषः प्रीतमानभूत् ॥ ६ ॥

हे शक्तिशाली ! तुम प्रथम इस बात का पता लगा लो। यदि उसका पता न लगा, तो मैं तुमको पति बना लूंगी-यह सत्य कहती हूं। इन्द्राणी के इतना कहते ही देवराज नहुष बड़ा प्रसन्न हुआ ॥५-६॥

नहुष उवाच—

एवं भवतु सुश्रोणि यथामामिह भाषसे ।
ज्ञात्वा चागमनं कार्यं सत्यमेतदनुस्मरेः ॥ ७ ॥

हे सुन्दर-नितम्ब-धारिणी ! जैसा—तुम मुझसे कह रही हो—, यही सही—इन्द्र का पता न लगने पर तुमको मेरे पास आना होगा, परन्तु इस सत्य प्रतिज्ञा को याद रखना ॥७॥

नहुषेण विसृष्टा च निश्चक्राम ततः शुभा ।
बृहस्पतिनिकेतं च सा जगाम यशस्विनी ॥ ८ ॥

सुन्दरी, यशस्विनी इन्द्राणी. इन्द्र से छोड़ी हुई वहां से चल कर बृहस्पति के भवन पर पहुंची ॥८॥

तस्याः संश्रुत्य च वचो देवाश्चाग्निपुरोगमाः ।
चिन्तयामासुरेकाग्राः शक्रार्थं राजसत्तम ॥ ९ ॥

हे राज-सत्तम ! इन्द्राणी के वचन सुनकर अग्नि आदि देवों ने इन्द्र का पता लगाने को भगवान् विष्णु का ध्यान किया। देवों के देव, सर्व शक्तिमान,विष्णु वहां आकर उपस्थित हुए ॥८॥

देवदेवेन संगम्य विष्णुना प्रभविष्णुना ।
ऊचुश्चैनं समुद्विग्ना वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥१०॥
ब्रह्महत्याभिभूतो वै शक्रः सुरगणेश्वरः ।
गतिश्च नस्त्वं देवेश पूर्वजो जगतः प्रभुः ॥११ ॥
रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ।

बड़े व्याकुल हुए, वाक्य बोलने में कुशल, देवों ने भगवान् विष्णु से कहा—हे देवेश्वर ! देवों का अधिपति, इन्द्र, ब्रह्म-हत्या से अभिभूत हो रहा है। आप जगत् से पूर्व ही विद्यमान रहने वाले प्रभु और हमारी गति है। सारे प्राणियों की रक्षा के लिए ही तो आप परमात्मा ने विष्णु का रूप धारण किया है ॥१०-११

त्वद्वीर्ये निहते वृत्रे वासवो ब्रह्महत्यया ॥ १२ ॥
वृतः सुरगण श्रेष्ठ मोक्षं तस्य विनिर्दिश ।

हे सुर-श्रेष्ठ ! तुम्हारी शक्ति से ही इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा है। अब वह ब्रह्महत्या में फंस गया है। आप उसको इस ब्रह्म-हत्या से मुक्त करो ॥१२॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा देवानां विष्णुरब्रवीत् ॥ १३ ॥
मामेव यजतां शक्रः पावयिष्यामि वज्रिणम् ।

देवों के इस कथन को सुनकर भगवान् विष्णु बोले—इन्द्र मेरा यजन करे, मैं उसको पवित्र कर दूंगा ॥१३॥

पुण्येन हयमेधेनमामिष्ट्वा पाकशासनः ॥ १४ ॥
पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्वमकुतोभयः ।
स्वकर्मभिश्च नहुषो नाशं यास्यति दुर्मतिः ॥ १५ ॥
किंचित्कालमिदं देवा मर्षयध्वमतन्द्रिताः ।

यदि पवित्र अश्वमेध यज्ञ से इन्द्र मेरा यजन करे, तो फिर निर्भय होकर देवों की इन्द्र पदवी को वह प्राप्त कर लेगा और अपने दुष्कर्मों से यह दुर्मति नहुष, आप नष्ट हो जावेगा। तुम देवता, कुछ काल तक इस बात की सावधानी से प्रतीक्षा करते रहो ॥१४-१५॥

श्रुत्वा विष्णोःशुभां सत्यां वाणीं ताममृतोपमाम् ॥१६

ततः सर्वे सुरगणाः सोपाध्यायाः सहर्षिभिः।

यत्र शक्रो भयोद्विग्नस्तं देशमुपचक्रमुः ॥ १७ ॥

देवता, भगवान् विष्णु की अमृत के तुल्य, सत्य और शुभ वाणी को सुनकर उपाध्याय बृहस्पति और ऋषियों के साथ उस स्थान पर पहुंचे, जहां भयातुर इन्द्र छुपा बैठा था ॥१६-१७॥

तत्राश्वमेधः सुमहान्महेन्द्रस्य महात्मनः।

ववृते पावनार्थं वै ब्रह्महत्यापहो नृप ॥ १८ ॥

हे राजन्! उस स्थान पर महाभाग इन्द्र के पवित्र करने के लिए ब्रह्म-हत्या से छुड़ाने वाला महान् अश्वमेध यज्ञ होने लगा।

विभज्य ब्रह्महत्यां तु वृक्षेषु च नदीषु च।

पर्वतेषु पृथिव्यां च स्त्रीषु चैव युधिष्ठिर ॥ १९ ॥

संविभज्य च भूतेषु विसृज्य च सुरेश्वरः।

विज्वरो धूतपाप्मा च वासवोऽभवदात्मवान् ॥ २० ॥

हे युधिष्ठिर ! यज्ञद्वारा ब्रह्म-हत्या को बांट २ कर उसको वृक्ष, नदी, और स्त्रियों पर फेंक दिया, इस प्रकार ब्रह्महत्या को बांट कर देवेश्वर, इन्द्र उससे छुटकारा पा गया और यह इस समय सारी चिन्ता और पाप से बिलकुल मुक्त हो गया ॥१६-२०॥

अकंपन्नहुषं स्थानाद् दृष्ट्वा बलनिषूदनः ।
तेजोघ्नं सर्वभूतानां वरदानाच्च दुःसहम् ॥ २१ ॥
ततः शचीपतिर्देवः पुनरेव व्यनश्यत ।
अदृश्यः सर्वभूतानां कालाकांक्षी चचार ह ॥२२॥

बल दैत्यनाशक इन्द्र ने सब प्राणियों के तेज का नाशक, वरदान से दुःसह, राजा नहुष को अब भी अपने स्थान से हिलते नहीं देखा, इससे इन्द्र फिर अलक्षित हो गया और सारे प्राणियों को दिखाई न देकर समय की प्रतीक्षा करता हुआ घूमने लगा ॥२१-२२॥

प्रनष्टे तु ततः शक्रे शची शोकसमन्विता ।
हा शक्रेति तदा देवी विललाप सुदुःखिता ॥ २३ ॥

इन्द्र के अदर्शित हो जाने पर इन्द्राणी, बड़ी शोकतुर हुई और हा पति ! हा पति ! करके बड़े दुःख से विलाप करने लगी।

यदि दत्तं यदि हुतं गुरवस्तोषिता यदि ।
एकभर्तृत्व मेवास्तु सत्यं यद्यस्ति वा मयि ॥ २४॥

जो मैंने दान, हवन किया है या पूज्यों की पूजा करके उनको सन्तुष्ट किया है तथा मुझ में कुछ सत्य विद्यमान है, तो मुझे एक पति वाली स्त्री का गौरव ही प्राप्त रहे ॥२४॥

पुण्यां चेमामहं दिव्यां प्रवृत्तामुत्तरायणे ।
देवीं रात्रिं नमस्यामि सिध्यतां मे मनोरथः ॥ २५॥

मैं उत्तरायण के प्रारम्भ में प्रवृत्त हुई, इस दिव्य, पवित्र रात्रि देवी को नमस्कार करती हूं, कि किसी तरह मेरा मनोरथ सिद्ध हो जावे ॥२५॥

प्रयता च निशां देवीमुपातिष्ठत तत्र सा
पतिव्रतात्वात्सत्येन सोपश्रुतिमथाकरोत् ॥ २६ ॥

इन्द्राणी ने बड़ी सावधानी से निशा देवी की उपासना की और पतिव्रता होने के कारण उपश्रुति (सन्देह के निर्णय करने वाली) देवी का आह्वान किया ॥२६॥

यत्रास्ते देवराजोऽसौ तं देशं दर्शयस्व मे ।
इत्याहोपश्रुतिं देवीं सत्यं सत्येन दृश्यताम् ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
उपश्रुतियाचने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इन्द्राणी ने उपश्रुति देवी से कहा—हे देवि ! तुम जहां पर देवराज इन्द्र हैं, मुझे उस स्थान को दिखा दो । और सत्य वस्तु को सत्य से ही प्रदर्शित करो ॥२७॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में उपश्रुति देवी से प्रार्थना करने का तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ ।

चौदहवां अध्याय

शल्य उवाच—

अथैनां रूपिणीं साध्वीमुपातिष्ठदुपश्रुतिः ।
तां वयोरूपसम्पन्नां दृष्ट्वा देवीमुपस्थिताम् ॥१॥
इन्द्राणी संप्रहृष्टात्मा संपूज्यैनामथाब्रवीत् ।
इच्छामि त्वामहं ज्ञातुं का त्वं ब्रूहि वरानने ॥२॥

शल्य ने कहाः— हे राजन् ! इन्द्राणी के समक्ष, उपश्रुति देवी रूप धारण करके खड़ी हो गयी। यौवन और रूप से सम्पन्न, उस स्थान में उपस्थित, देवी को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई इन्द्राणी उसकी पूजाकरके इससे बोली-हे वरानने ! तुम कौन हो मैं तुमको जानना चाहती हूं ॥१-२॥

उपश्रुतिरुवाच —

उपश्रुतिरहं देवि तवांतिकमुपागता ।
दर्शनं चैव संप्राप्ता तव सत्येन भाविनि ॥ ३ ॥

उपश्रुति बोलीः— हे देवि ! मैं उपश्रुति हूं और तुम्हारे पास आई हूं । हे भाविनि ! तेरे सत्य के कारण, मैं तुझे दिखाई दे गई हूँ ॥३॥

पतिव्रता च युक्ता च यमेन नियमेन च ।
दर्शयिष्यामि ते शक्रं देवं वृत्रनिषूदनम् ॥४॥
क्षिप्रमन्वेहि भद्रन्ते द्रक्ष्यसे सुरसत्तमम् ।
ततस्तां प्रहितां देवीमिन्द्राणी सा समन्वगात् ॥ ५ ॥

हे देवि ! तुम पातिव्रता और यम नियमों से युक्त हो। अब मैं तुमको वृत्रासुर नाशक इन्द्रदेव के दर्शन करा दूंगा। तुम शीघ्र मेरे साथ२ चली आवो, तुम अभी इन्द्र को देख सकती हो। इतना कहकर चली हुई उपश्रुति के पीछे इन्द्राणी भी चल दी ॥५॥

देवारण्यान्यतिक्रम्य पर्वतांश्च बहूंस्ततः।
हिमवन्तमतिक्रम्य उत्तरं पार्श्वमागमत् ॥ ६ ॥

अब इन्द्राणी देवों के वन, बहुत से पर्वत तथा हिमालय को उलांघ कर उसके उत्तर पार्श्व पर पहुंची ॥६॥

समुद्रं च समासाद्य बहुयोजनविस्तृतम्।
आससाद महाद्वीपं नानाद्रुमलतावृतम् ॥ ७ ॥

उसके आगे समुद्र पर पहुँच कर इन्द्राणी कई योजन विस्तृत द्रुम लताओं से आच्छन्न, किसी महाद्वीप पर पहुँची ॥७॥

तत्रापश्यत्सरो दिव्यं नानाशकुनिभिर्वृतम्।
शतयोजनविस्तीर्णं तावदेवायतं शुभम् ॥ ८ ॥

यहां इसने अनेक पक्षियों से युक्त, सौ योजन लम्बे चौड़े, बड़े, सुन्दर, दिव्य एक सरोवर को देखा ॥८॥

तत्र दिव्यानि पद्मानि पंचवर्णानि भारत।
षट्पदैरुपगीतानि प्रफुल्लानि सहस्रशः ॥९॥

हे भारत ! उस सरोवर में पांच वर्णों के सहस्रों दिव्य कमल थे। जिन पर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे और जो बड़ी अच्छी तरह से खिले हुए थे ॥९॥

सरसस्तस्य मध्ये तु पद्मनी महती शुभा।
गौरेणोन्नतनालेन पद्मेन महता वृता १०॥

उसी सरोवर के मध्य में बड़ी सुन्दर एक कमलिनी थी, जो श्वेत उन्नत नालधारिणी और विशाल कमल से युक्त थी १०

पद्मस्य भित्वा नालं च विवेश सहिता तया।
बिसतन्तुप्रविष्टं च तत्रापश्यच्छतक्रतुम् ॥११॥

यह इन्द्राणी उन उपश्रुति देवी के साथ कमल के नाल को चीर कर उसमें घुस गई। जब ये कमल नाल के तन्तु में घुसी, तो वहां उन्होंने इन्द्र को देखा॥११॥

तं दृष्ट्वा च सुसूक्ष्मेण रूपेणावस्थितं प्रभुम्।
सूक्ष्मरूपधरादेवी बभूवोपश्रुतिश्च सा॥१२॥

शक्तिशाली इन्द्र को इस तरह सूक्ष्म रूप रख कर स्थित हुआ, वहां देखकर उपश्रुति और इन्द्राणी इन दोनों ने भी सूक्ष्म रूप धारण कर लिया॥१२॥

इन्द्रं तुष्टाव चेन्द्राणी विश्रुतैः पूर्वकर्मभिः।
स्तूयमानस्ततो देवः शचीमाह पुरन्दरः॥१३॥

इन्द्राणी ने इन्द्र के प्रसिद्ध पूर्व कर्मों से इन्द्र की स्तुति की। इन्द्राणी के स्तुति करने पर देवराज इन्द्र बोला॥१३॥

किमर्थमसि संप्राप्ता विज्ञातश्च कथं त्वहम्।
ततः सा कथयामास नहुषस्य विचेष्टितम्॥१४॥

हे इन्द्राणी ! तुम यहाँ कैसे आई और तुमको मेरे यहां होने का पता कैसे लगा। इसने इन्द्र को देवराज नहुप की सारी चेष्टाएँ सुनाईं ॥१४॥

इन्द्र त्वं त्रिषु लोकेषु प्राप्य वीर्यसमन्वितः ।
दर्पाविष्टश्च दुष्टात्मा मामुवाच शतक्रतो ॥१५॥
उपतिष्ठेति स क्रूरः कालं च कृतवान्मम ।
यदि न त्रास्यसि विभो करिष्यति स मां वशे ॥१६॥

हे शतक्रतो ! यह तीनों लोकों की इन्द्र पदवी पाकर बड़ा मदोद्धत हो गया है। इस दुरात्मा ने मद में आविष्ट होकर मुझ से कहा कि तुम मुझे पति, बनाकर मेरे साथ संभोग करो। इस दुष्ट ने इसके लिए मुझ से कुछ समय की अवधि करा ली है। हे विभो ! अब यदि तुम मेरी रक्षा नहीं करोगे, तो वह मुझे अपने वश में कर लेगा ॥१५-१६॥

एतेन चाहं संप्राप्ता द्रुतं शक्र तवांतिकम् ।
जहि रौद्रं महाबाहो नहुषं पापनिश्चयम् ॥१७॥

हे शक्र ! इसी कारण से मैं बड़ी शीघ्रता से तुम्हारे पास आई हूँ। हे महाबाहो ! अब तुम पापकर्म के निश्चयी नहुष का वध कर डालो ॥१७॥

प्रकाशयात्मनात्मानं दैत्यदानवसूदन ।
तेजः समाप्नुहि विभो देवराज्यं प्रशाधि च ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
इंद्राणीन्द्रस्तवे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

दैत्य दानवों के नाशक ! विभो ! अब तुम अपने आपको प्रकट करो तथा अपने पूर्व के तेज को सम्हालो और देवों के राज्य का फिर शासन करो ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तगत सेनोद्योगपर्व में इन्द्राणी द्वारा इन्द्र की स्तुति करने का चौदहवां अध्याय समाप्त हुआ।

पन्द्रहवां अध्याय

शल्य उवाच—

एवमुक्तः स भगवान् शच्या तां पुनरब्रवीत् ।
विक्रमस्य न कालोयं नहुषो बलवत्तरः ॥१॥

शल्य ने कहा-हे राजन् ! इन्द्राणी के इतना कहने पर अत्यन्त तेजस्वी इन्द्र बोला-हे देवि ! अभी पराक्रम दिखाने का समय नहीं आया है, क्योंकि आजकल नहुष, बड़ा बलवान् होरहा है।

विवर्द्धितश्च ऋषिभिर्हव्यकव्यैश्च भाविनि ।
नीतिमत्र विधास्यामि देवि तां कर्तुमर्हसि ॥२॥

हे महाभागे ! ऋषियों ने हव्य कव्य प्रदान करके इसको बहुत बढ़ा दिया है ! हे देवि ! इस समय एक नीति चलता हूं। तुम उस नीति का अवलम्बन करो ॥२॥

गुह्यं चैतत्त्वया कार्यं नाख्यातव्यं शुभे क्वचित् ।
गत्वा नहुषमेकांते ब्रवीहि च सुमध्यमे ॥३॥

ऋषियानेन दिव्येन मामुपेहि जगत्पते ।
एवं तव वशे प्रीता भविष्यामीति तं वद ॥४॥

हे सुमध्यमे ! शुभे ! तुम इस बात को छुपाए रखना. किसी से कहना नहीं । अब तुम एकान्त में नहुष के पास जाओ और उससे कहो ! हे जगत्पते ! तुम दिव्य ऋषियों के यान में बैठ कर मेरे पास आओ । इस प्रकार मैं तुम पर बड़ी प्रसन्न हो कर तुम्हारी आज्ञाकारिणी दासी बन जाऊंगी बस ? अब तुम जाओ और इससे यही कहो ॥३-४॥

इत्युक्ता देवराजेन पत्नी सा कमलेक्षणा ।
एवमस्त्वित्यथोक्त्वा तु जगाम नहुषं प्रति ॥५॥

देवराज के इतना कहने पर कमल के समान नेत्रों वाली, इन्द्राणी, इन्द्र के वचन को स्वीकार करके देवराज नहुष के पास चल दी ॥५॥

नहुष स्तां ततो दृष्ट्वा सस्मितो वाक्यमब्रवीत् ।
स्वगतं ते वरारोहे किं करोमि शुचिस्मिते ॥६॥

देवराज नहुष इन्द्राणी को देखकर मुस्कुराया और कहने लगा । हे शुचिस्मिते ! वरारोहे ! तुम्हारा स्वागत हो, तुम्हारी क्या आज्ञा पूरी करूं ॥६॥

भक्तं मां भज कल्याणि किमिच्छसि मनस्विनि !
तव कल्याणि यत्कार्यं तत्करिष्ये सुमध्यमे ॥७॥

हे कल्याणि ! मनस्विनि ! सुमध्यमे ! अब तुम मुझ प्रेमी को स्वीकार करो। कहो; अब तुम्हारी क्या इच्छा है। मैं अब जो तुम्हारा कार्य शेष हो, उसको करने का तय्यार हूं ॥७॥

न च व्रीडा त्वया कार्या सुश्रोणि मयि विश्वसेः ।
सत्येन वै शपे देवि करिष्ये वचनं तव ॥८॥

हे सुश्रोणि ! तुम को मुझ से लज्जा नहीं करनी चाहिए। तुम मुझ पर विश्वास करो। हे देवि ! मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूं, कि मैं तुम्हारा आज्ञाकारी रहूंगा ॥८॥

इन्द्राण्युवाच—

यो मे कृतस्त्वया कालस्तमाकांक्षे जगत्पते ।
ततस्त्वमेव भर्ता मे भविष्यसि सुराधिप ।

इन्द्राणी बोली-हे जगत्पते ! मैंने जो तुम से समय की अवधि की है, मैं उसके पूरे होने की प्रतीक्षा कर रही हूं। हे सुराधिप ! इस काल के पूरा होते ही तू मेरा भर्ता बन जावेगा ॥९॥

कार्यं च हृदि मेकं तद्देवराजावधारय ।
वक्ष्यामि यदि मे राजन् प्रियमेतत्करिष्यसि ॥१०॥
वाक्यं प्रणयसंयुक्तं ततः स्यां वशगा तव ।

हे देवराज ! मेरे हृदय में एक अभिलाषा है। तुम उसको सुन लो। यदि तुम मेरी इस प्रिय अभिलाषा को पूर्ण कर दो-तो मैं तुमसे यह प्रेम युक्त वचन कहती हूं, कि मैं तुम्हारी दासी हो जाऊंगी ॥१०॥

इंद्रस्य वाजिनो वाहा हस्तिनोथ रथास्तथा ॥११॥
इच्छाम्यहमथापूर्व वाहनं ते सुराधिप ।
यन्न विष्णोर्न रुद्रस्य नासुराणां न रक्षसाम् ॥१२॥

हे सुराधिप ! पूर्व में इन्द्र के घोड़े, हाथी और रथ आदि तो अनेक वाहन थे, परन्तु मैं एक अद्भुत वाहन चाहती हूं। जो वाहन विष्णु, रुद्र, असुर, राक्षस, किसी के पास भी नहीं है॥११-१२॥

वहन्तु त्वां महाभागा ऋषयः संगता विभो ।
सर्वे शिविकया राजन्नेतद्धि मम रोचते ॥१३॥

हे शक्तिशाली ! महाराज ! तुम को बड़े २ प्रतिष्ठित, ऋषि, पालकीमें उठाकर ले चले। मुझे इस गौरव की बड़ी अभिलाषा है।

नासुरेषु न देवेषु तुल्यो भवितुमर्हसि ।
सर्वेषां तेज आदत्से स्वेन वीर्येण दर्शनात् ॥१४॥
न ते ऽग्रतः स्थातुं कश्चिच्छक्नोति वीर्यवान् ।

तुम्हारे तुल्य देव और असुरों में कोई नहीं है। तुम देखते ही अपने बल से सब के तेज को छीन लेते हो तुम्हारे सम्मुख कोई भी शक्तिशाली नहीं ठहर सकता है ॥१४॥

शल्य उवाच—

एवमुक्तस्तु नहुषः प्राहृष्यत तदा किल ।
उवाच वचनं चापि सुरेन्द्रस्तामनिन्दिताम् ॥१५॥
अपूर्वं वाहनमिदं त्वयोक्तं वरवर्णिनि ।
दृढं मे रुचितं देवि त्वद्वशोऽस्मि वरानने ॥१६॥

शल्य ने कहा-हे राजन् ! इतना सुन कर सुरेन्द्र नहुष, बड़ा ही प्रसन्न हुआ और उस सर्वाङ्गसुन्दरी इन्द्राणी से बोला। हे वरवर्णिनि ! तू ने यह तो बड़ा ही अद्भुत वाहन बताया। वरानने। यह तेरी बात मेरे हृदय में अच्छी तरह घर कर गई। मैं तो सब तरह से तेरा अनुचर हूं ॥१५-१६॥

नह्यल्पवीर्यं भवति यो वाहान् कुरुते मुनीन् ।
अहं तपस्वी बलवान् भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥१७॥
मयि क्रुद्धे जगन्न स्यान्मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।

जो मुनियों को वाहन बना ले, यह काम बलहीन का नहीं हो सकता है। मैं बड़ा बलवान् तपस्वी और भूत,भविष्यत, वर्तमानका अधिपति हूं। यदि मैं कुपित हो जाऊँ तो यह जगत ही नहीं रह सकता है, क्योंकि मुझ में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है॥१७॥

देवदानवगन्धर्वाः किन्नरोरगराक्षसाः ॥१८॥
न मे क्रुद्धस्य पर्याप्ताः सर्वे लोकाः शुचिस्मिते ।

हे शुचिस्मिते ! देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर, उरग और राक्षस ही क्या ? मेरे क्रुद्ध होने पर तो सारे लोक ही मेरे सम्मुख खड़े रहने में समर्थ नहीं हैं ॥१८॥

चक्षुषा यं प्रपश्यामि तस्य तेजो हराम्यहम् ॥१९॥
तस्मात्ते वचनं देवि करिष्यामि न संशयः ।

मैं जिसका तेज हरण करना चाहता हूं, उसका तेज आंखों से देखते ही हर लेता हूं। हे देवि ! मैं तेरे वचन को कर दूंगा यह निश्चय है ॥१९॥

सप्तर्षयो मां वक्ष्यन्ति सर्वे ब्रह्मर्षयस्तथा ॥
पश्य माहात्म्ययोगं मे ऋद्धिं च वरवर्णिनि ॥२०॥

(वरवर्णिनी ! सारे सप्तर्षि और ब्रह्मर्षि मेरी पालकी में जुड कर मुझे ले चलेंगे, अब तुम मेरा महत्व और वैभव देखना।।

शल्य उवाच—

एवमुक्त्वा तु तां देवीं विसृज्य च वराननाम् ॥२१॥
विमाने योजयित्वा च ऋषीन्नियम मास्थितान् ।
अब्रह्मण्यो बलोपेतो मत्तो मदबलेन च ॥
कामवृत्तः स दुष्टात्मा वाहयामास तानृषीन् ॥२२॥

शल्य ने कहा—हे भारत ! इतना कहकर नहुष ने इन्द्राणी को विदा किया। अब मद बल में मस्त, ब्राह्मण विरोधी, बलवान्, कामातुर, दुष्टात्मा नहुष, नियम शील, ऋषियों को अपने विमान में जोड़कर चल दिया ॥२१-२२॥

नहुषेण विसृष्टा च बृहस्पति मथाब्रवीत् ।
समयोऽल्पावशेषो मे नहुषेणेह यः कृतः ॥२३॥

नहुष से विदा हुई, इन्द्राणी, बृहस्पति से बोली—हे सुराचार्य! जो समय मैंने नहुष से नियत किया था, वह अब बहुत ही थोड़ा शेष रह गया है ॥२३॥

शक्रं मृगय शीघ्रं त्वं भक्तायाः कुरु मे दयाम् ।
बाढमित्येव भगवान् बृहस्पतिरुवाच ताम् ॥२४॥
न भेतव्यं त्वया देवि नहुषाद् दुष्टचेतसः ।
न ह्येषस्थास्यति चिरं गत एष नराधमः ॥२५॥

अब तुम इन्द्र की खोज और मुझ भक्त नारी पर दया करो। अत्यन्त तेजस्वी बृहस्पति ने कहा—अच्छी बात है। हे देवि! तुम दुरात्मा नहुष से डरो नहीं। यह नीच मनुष्य अब अधिक जीवित नहीं रहेगा, इसको तो तुम गया ही समझो ॥२४-२५॥

अधर्मज्ञो महर्षीणां वाहनाच्च ततः शुभे ।
इष्टिंचाहं करिष्यामि विनाशायास्य दुर्मतेः ॥२६॥
शक्रं चाधिगमिष्यामि मा भैस्त्वं भद्रमस्तु ते ।

हे शुभे! महर्षियों को अपने वाहन में जोड़कर इसने बड़ा अधर्म इकट्ठा कर लिया है। अब मैं भी इस दुरात्मा के विनाश के लिए एक यज्ञ करूंगा। हे देवि! अब मैं इन्द्र का पता लगा लूंगा, तुम डरो नहीं, तुम्हारा कल्याण हो ॥२६॥

ततः प्रज्वाल्य विधिवज्जुहाव परमं हविः ॥२७॥
बृहस्पतिर्महातेजा देवराजोपलब्धये ।
हुत्वाग्निं सोऽब्रवीद्राजञ्छक्रमन्विष्यतामिति ॥२८॥
तस्माच्च भगवान् देवः स्वयमेव हुताशनः ।

अब महा-तेजस्वी बृहस्पति ने देवराज इन्द्र की प्राप्ति के लिए विधिपूर्वक अग्नि जलाकर उसमें हवन करना आरम्भ किया। हे राजन्! हवन करके उसने अग्नि से कहा— कि अब तुम इन्द्र की खोज करो ॥२७-२८॥

स्त्रीवेषमद्भुतं कृत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥२९॥
स दिशः प्रदिशश्चैव पर्वतानि वनानि च ।

पृथिवीं चांतरिक्षं च विचिंत्याथ मनोगतिः ॥३०॥

निमेषांतरमात्रेण बृहस्पति मुपागमत् ।

अब तेजस्वी अग्नि देव, अद्भुत स्त्री का वेष बनाकर उसी स्थान में अलक्षित हो गया। इसने मन की गति से गमन करके दिशा, विदिशा, पर्वत, वन, पृथिवी, अन्तरिक्ष सब कुछ खोज डाला और क्षण मात्र में सब कुछ खोज कर बृहस्पति के पास लौट आया ॥२९-३०॥

अग्निरुवाच—

बृहस्पते न पश्यामि देवराजमिह क्वचित् ।

आपः शेषाः सदा चापः प्रवेष्टुं नोत्सहाम्यहम् ॥३१।

न मे तत्र गतिर्ब्रह्मन्किमन्यत्करवाणि ते ।

तमब्रवीद्देवगुरुरपो विश महाद्युते ॥३२॥

अग्नि ने कहा— हे बृहस्पते ! मैं सब जगह घूम आया, परन्तु मुझको अग्नि का पता नहीं लगा। अब केवल जल शेष रहे हैं और मैं जल में घुस नहीं सकता हूं। हे ब्रह्मन् ! जल में मेरी गति नहीं है। कहिए ? अब अन्य क्या कार्य करूं ? इससे देवों के गुरु बृहस्पति ने कहा— अब तुम जल में भी प्रवेश करो ॥३१-३२॥

अग्निरुवाच—

नापः प्रवेष्टुं शक्ष्यामि क्षयो मेऽत्र भविष्यति ।

शरणं त्वां प्रपन्नोस्मि स्वस्ति तेस्तु महाद्युते ॥३३॥

अग्नि बोला—मैं जल में कैसे घुस सकता हूं ? जल में तो मेरा नाश हो जावेगा ? हे महाद्युते ! तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं तुम्हारी शरण में हूं ॥३३॥

अद्भ्योग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासुयोनिषु शाम्यति ॥३४॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
बृहस्पत्यग्निसम्वादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय और पत्थर से लोह उत्पन्न होता है। इनको सब जगह तेज पहुंच सकता है, परन्तु अपनी योनि में जाकर तो शान्त ही हो जाता है ॥३४॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में बृहस्पति और अग्नि के सम्वाद का पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।



सोलहवां अध्याय

बृहस्पतिरुवाच—

त्वमग्ने सर्वदेवानां मुखं त्वमसि हव्यराट् ।
त्वमंतः सर्वभूतानां गूढश्चरसि साक्षिवत् ॥ १ ॥

बृहस्पति कहने लगा– हे अग्ने ! तुम सारे देवों का मुख और हवि के ले जाने वाले हो तथा तुम ही सारे प्राणियों के भीतर साक्षी की तरह प्रविष्ट हो रहे हो ॥१॥

त्वामाहुरेकं कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः ।
त्वया त्यक्तं जगच्चेदं सद्यो नश्येद् हुताशन ॥ २ ॥

हे हुताशन ! विद्वान लोग तुमको एक अग्नि कहते हैं । तुम एक होकर यज्ञ में तीन रूप (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय) धारण कर लेते हो । यदि तुम इस जगत को छोड़ दो तो सारा जगत् नष्ट हो सकता है ॥२॥

कृत्वा तुभ्यं नमो विप्राः स्वकर्मविजितां गतिम् ।
गच्छन्ति सह पत्नीभिः सुतैरपि च शाश्वतीम् ॥३ ॥

"नमः" शब्द के साथ ब्राह्मण लोग तुझ में हवन करके अपने पुत्र और पत्नियों के साथ, अपने कर्मों से जीते हुई लोकों को गति को प्राप्त होते रहते हैं ॥३॥

त्वमेवाग्ने हव्यवाहस्त्वमेव परमं हविः ।
यजन्ति ऋषैस्त्वामेव यज्ञैश्च परमाध्वरे ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! तुम हव्यवाह और परम हवि रूप हो । बड़े यज्ञों में ऋषि तेरा ही यजन करते रहते में ॥४॥

सृष्ट्वालोकांस्त्रीनिमान्हव्यवाह प्राप्तेकालेपचसिपुनःसमिद्धः
त्वं सर्वस्य भुवनस्य प्रसूतिस्त्वमेवाग्ने भवसि पुनः प्रतिष्ठा

हे हव्यवाह ! तुम तीनों लोकों को रच कर समय पर फिर जाज्वल्यमान होकर उनको जला डालते हो । तुम इन सारे भुवनों की उत्पत्ति का कारण हो और तुम में ही लोक की फिर से स्थिति (प्रलय) है ॥५॥

त्वामग्ने जलदानाहुर्विद्युतश्च मनीषिणः ।
वहन्ति सर्वभूतानि त्वत्तो निष्क्रम्य हेतयः ॥ ६ ॥

हे अग्ने! तुम को मनीषी लोग, मेघ और बिजली भी बताते हैं। तुम से ही ज्वालाएं निकलकर सारे प्राणियों को धारण करती रहती हैं ॥६॥

त्वय्यापो निहिताः सर्वास्त्वयि सर्वमिदं जगत् ।
न तेऽस्त्यविदितं किंचित् त्रिषु लोकेषु पावक ॥ ७ ॥

तुम में सारे जल विद्यमान हैं और तुम में ही यह सारा जगत् ओत प्रोत है। हे पावक! तीनों लोकों में कोई ऐसी वस्तु नहीं हैं, जो तुमको विदित न हो ॥७॥

स्वयोनिं भजते सर्वो विशस्वापो विशंकितः ।
अहं त्वां वर्धयिष्यामि ब्राह्मैर्मंत्रैः सनातनैः ॥ ८ ॥

सारे पदार्थ अपने कारण में लय होते ही हैं। तुम भी अपने कारण भूत जल में प्रवेश करो। मैं तुमको सनातन वेदमन्त्रों से प्रज्वलित रखूंगा ॥८॥

एवं स्तुतो हव्यवाट् स भगवान् कविरुत्तमः ।
बृहस्पतिमथोवाच प्रीतिमान् वाक्यमुत्तमम् ॥ ९ ॥
दर्शयिष्यामि ते शक्रं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते !

बृहस्पति के इतना कहने पर अत्यन्त तेजस्वी कान्तदर्शी अग्नि बड़ा प्रसन्न होकर बृहस्पति से उत्तम वाक्य बोला। हे सुराचार्य! मैं तुमको इन्द्र के दर्शन करा दूंगा-इसे सत्य समझो ॥९॥

शल्य उवाच—

प्रविश्यापस्ततो वन्हिः ससमुद्राः सपल्वलाः ।
आससाद सरस्तच्च गूढो यत्र शतक्रतुः ॥ १० ॥

शल्य ने कहा—हे राजन्! सारे समुद्र और पल्लवों (तलाइयों) के जल में अग्नि, प्रविष्ट हो गया और यह उसी सरोवर पर पहुंचा, जिसमें इन्द्र छुपा बैठा था ॥१०॥

अथ तत्रापि पद्मानि विचिन्वन् भरतर्षभः ।
अपश्यत्स देवेन्द्रं विसमध्यगतं तदा ॥ ११ ॥

हे भरतर्षभ ! उस सरोवर में उसने कमल कोशों को खोजा, वहां उसने कमल तन्तु के बीच में घुसे हुए देवेन्द्र को देखा।११।

आगत्य च ततस्तूर्णं तमाचष्ट बृहस्पतेः ।
अणुमात्रेण वपुषा पद्मतंत्वाश्रितं प्रभुम् ॥ १२ ॥

अग्नि ने शीघ्र आकर बृहस्पति से कहा—कि इन्द्र बहुत सूक्ष्म रूप धारण करके कमल तन्तु के बीच में रह रहा है ॥१२॥

गत्वा देवर्षिगन्धर्वैः सहितोथ बृहस्पतिः ।
पुराणैः कर्मभिर्देवं तुष्टाव बलसूदनम् ॥१३॥

अब देवर्षि और गन्धर्वों के साथ बृहस्पति उस सरोवर पर पहुंचा। यह पुराने कर्मों से बल दैत्य नाशक इन्द्र की स्तुति करने लगा॥१३॥

महासुरो हतः शक्रः नमुचिर्दारुणस्त्वया ।
शम्बरश्च बलश्चैव तथोभौ घोरविक्रमौ ॥ १४ ॥

हे इन्द्र ! तुमने पूर्वकाल में दारुण नमुचि महासुर और घोर पराक्रमी शम्बर और वल का वध किया है ॥१४॥

शतक्रतो विवर्धस्व सर्वान् शत्रून्निषूदय ।
उत्तिष्ठ शक्र संपश्य देवर्षींश्च समागतान् ॥ १५ ॥

हे शतक्रतो ! तुम अपने बल की वृद्धि करो और सारे शत्रुओं का नाश कर दो । हे इन्द्र ! तुम उठो और इन आए हुए देवर्षियों को देखो ॥१५॥

महेंद्र दानवान् हत्वा लोकास्त्रातास्त्वया विभो ।
अपां फेनं समासाद्य विष्णुतेजोतिबृंहितम् ।
त्वया वृत्रो हतः पूर्वं देवराज जगत्पते ॥ १६ ॥

हे देवराज ! जगत्पते ! तुमने दानवों को मार कर तीनों लोकों की रक्षा की है और विष्णु के तेज से परिपुष्ट जल के फेन को लेकर पूर्व में वृत्रासुर को मारा है ॥१६॥

त्वं सर्वभूतेषु शरण्य ईड्यस्त्वया समं विद्यते नेह भूतम्
त्वया धार्यंते सर्वभूतानि शक्र त्वंदेवानां महिमानं चकर्थ

हे शक्र ! तुम सारे भूतों के रक्षक और पूज्य हो। तुम्हारे समान कोई भी प्राणी नहीं है । तुमही सारे भूतों को धारण किए हुए हो । तुमने ही सदा देवों की महिमा बढ़ाई है ॥१७॥

पाहि सर्वांश्च लोकांश्च महेन्द्रबलमाप्नुहि ।
एवं संस्तूयमानश्च सोऽवर्धत शनैः शनैः ॥ १८ ॥

हे महेन्द्र! तुम बल को प्राप्त करो और सारे लोकों की पालना करो। जब देवों ने इस तरह इन्द्र की स्तुति की, तो इन्द्र धीरे २ बढ़ने लगा ॥१८॥

स्वं चैव वपुरास्थाय बभूव सबलान्वितः ।
अब्रवीच्च गुरुं देवो बृहस्पतिमवस्थितम् ॥१९॥

इन्द्र अपने विशाल शरीर को प्राप्त करके बल से समन्वित हो गया और सन्मुख स्थित अपने आचार्य बृहस्पति से कहने लगा

किं कार्यं सर्वशिष्टं वो हतस्त्वाष्ट्रो महासुरः ।
वृत्रश्च सुमहाकायो यो वै लोकाननाशयत् ॥ २० ॥

इन्द्र ने कहा— हे देवो! तुम्हारा अब कौनसा कार्य शेष है। त्वष्टा से उत्पन्न महाकाय वृत्रासुर तो मारा गया, जिसने सारे लोकों को नष्ट सा कर डाला था ॥२०॥

बृहस्पतिरुवाच—

मानुषो नहुषो राजा देवर्षिगण तेजसा ।
देवराज्यमनुप्राप्तः सर्वान्नो बाधते भृशम् ॥२१॥

बृहस्पति बोले— हे इन्द्र! मनुष्य लोक से आया हुआ राजा नहुष, देवर्षियों के तेज से व्याप्त होकर देवों के राज्यासन को प्राप्त हो गया है और वही हमको महा पीड़ा पहुंचा रहा है २१

इन्द्र उवाच—

कथं च नहुषो राज्यं देवानां प्राप दुर्लभम् ।
तपसा केन वा युक्तः किं वीर्यो वा बृहस्पते ॥ २२ ॥

इन्द्र ने कहा—हे बृहस्पते ! राजा नहुष ने देवों का दुर्लभ राज्य कैसे प्राप्त कर लिया। यह किस तप से युक्त है और इसमें कितना पराक्रम है ॥ २२ ॥

बृहस्पतिरुवाच—

देवा भीताः शक्रमकामयंत त्वयात्यक्तं महदैन्द्रं पदंतद्
तदा देवाः पितरोथर्षयश्च गन्धर्वमुख्याश्च समेत्य सर्वे
गत्वाऽब्रुवन्नहुषं तत्र शक्र त्वं नो राजा भव भुवनस्यगोप्ता

बृहस्पति ने कहा– जब तुमने विशाल इन्द्र पदवी के अधिकार का परित्याग कर दिया, तो देवता बड़े डरे और उन्होंने किसी को इन्द्र बनाना [चा]हा। उस समय मुख्य २ देव, पितर, ऋषि और गन्धर्व इकठ्ठे होकर राजा नहुष के पास पहुंचे कि तुम भुवनों के रक्षक हमारे राजा बन जाओ ।।२३।।

तानब्रवीन्नहुषो नास्मि शक्त आप्यायध्वं तपसातजसा माम्
एवमुक्तैर्वर्द्धितश्चापि देवै राजाऽभवन्नहुषो घोरवीर्यः ।

नहुष ने कहा– मैं तुम्हारा राजा बनने के योग्य नहीं हूं। तुम अपने तप और तेज से मुझे परिपुष्ट बनाओ । इसके इतना कहने पर देवों ने अपने तप और तेज से इसको बढ़ा दिया और यह घोर पराक्रमी होकर देवों का राजा बन गया ।।२४।।

त्रैलोक्ये चप्राप्यराज्यंमहर्षीन्कृत्वावाहान्यातिलोकान्दुरात्म
तेजोहरं दृष्टि विषं सुघोरं मा त्वं पश्येनहुषं वै कदाचित्
देवाश्च सर्वे नहषं भृशार्ता न पश्यन्ते गूढ़रूपाश्चरन्तः

यह दुरात्मा, त्रिलोकी का राज्य पाकर और महर्षियों का यान बनाकर लोकों में घूमता है। देवों ने इस की दृष्टि में विष भर दिया है। यह जिसको देखता है, उसी का तेज छीन लेता है तुम कभी उसकी दृष्टि के सामने न आजाना। अब देवता नहुष से बड़े शंकित हैं। वे कहीं दिखाई ही नहीं देते हैं, उनसे छुपते फिरते हैं ॥२५-२६॥

शल्य उवाच—

एवं वदत्यंगिरसां वरिष्ठे बृहस्पतौ लोकपालः कुबेरः
वैवस्वतश्चैव यमः पुराणो देवश्च सोमो वरुणश्चाजगाम

शल्य ने कहा— हे राजन ! अङ्गिरावंश-श्रेष्ठ बृहस्पति के इतना कहते ही लोकपाल कुबेर प्राचीन, देव वैवस्वत यम सोम और वरुण वहां आ गए ॥२७॥

ते वै समागम्य महेन्द्रमूचुर्दिष्ट्यात्वाष्ट्रो निहतश्चैव वृत्रः
दिष्ट्या च त्वां कुशलिनमक्षतं चपश्यामो निहतारिंचशक्र

ये देवता, वहां आकर इन्द्र से कहने लगे-हे इन्द्र ! यह बड़ा अच्छा किया, जो तुमने त्वष्टा के पुत्र वृत्रासुर को मार दिया। यह भी बड़ी अच्छी बात है, जो हम सब तरह अक्षत रहते हुए शत्रु का वध करने वाले तुमको सकुशल देख रहे हैं ॥२८॥

स तान् यथावच्च हि लोकपालान् समेत्य वै प्रीतमना महेन्द्रः
उवाच चैनान् प्रतिभाष्य शक्रः संचोदतिष्यन्नहुषस्यान्तरेण

इन्द्र बड़ी प्रसन्नता से इन लोकपालों से मिला और कुशल प्रश्न के अनन्तर नहुषसे भेद बुद्धि करता हुआ उनसे कहने लगा,

राजा देवानां नहुषो घोररूपस्तत्रसाह्यं दीयतां मेभवद्भिः
ते चाब्रुवन्नहुषो घोररूपो दृष्टीविषस्तस्य बिभीम ईश

हे देवो ! तुम लोगों का राजा निन्दित कर्मकारी नहुप हो गया है। अब तुम उसके हटाने में मेरी सहायता करो। देवोने कहा—हे स्वामिन् ! राजा नहुष, बड़ा भयङ्कर हो गया है, इसकी दृष्टि में विष है। हम तो इससे डरते हैं ॥३०॥

त्वं चेद्राजानं नहुषं पराजयेस्ततो वयं भागमर्हामशक्र।
इन्द्रोऽब्रवीद्भवतु भवानपांपतिर्यमः कुबेरश्च मयाभिषेकम्
संप्राप्नुवंत्वद्य सहैवदेव तौरिपुञ्जयामतां नहुषं घोरदृष्टिम्

हे इन्द्र ! यदि तुम, राजा नहुषको पराजित कर दो, तो हम अपना २ भाग (अधिकार) प्राप्त कर लें। इन्द्र ने कहा—हे वरुण! तुम जलके पूर्ववत् पति रहे। इसी तरह यम और कुवेर को भी देवों के साथ अपने २ अधिकार पर मैंने नियुक्त किया। अब हम सब उस घोर दृष्टि वाले शत्रु, राजा नहुष को जीत लेंगे ॥

ततः शक्रंज्वलनोप्याह भागंप्रयच्छमह्यं तवसाह्यं करिष्ये
तमाह शक्रो भविताऽग्ने तवापि चेन्द्राग्न्योर्वैभागएकोमहाक्रतौ

अब अग्नि ने भी इन्द्र से कहा—तुम मेरा भाग (अधिकार) भी मुझ को प्रदान करो-मैं भी तुम्हारी सहायता करूंगा। इन्द्र ने कहा-हे अग्ने ! अच्छी बात है। यज्ञ में इन्द्र और अग्नि का एक ही भाग होगा ॥३२॥

एवं संचिन्त्य भगवान्महेन्द्रः पाकशासनः ।
कुवेरं सर्वयक्षाणां धनानां च प्रभुं तथा ॥२३॥
वैवस्वतं पितृणां च वरुणं चाप्यपां तथा ।
आधिपत्यं ददौ शक्रः संचिंत्य वरदस्तथा ॥२४॥
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इन्द्र
वरुणादिसम्वादे षोडशोऽध्याय ॥१६॥

शल्य ने कहा—हे राजन् ! इस तरह वरदायी, महातेजस्वी, पाक दैत्य नाशक इन्द्र ने विचार कर सब यक्ष और धन का स्वामित्व कुवेर को पितरों का यम को और जल का वरुण को दे दिया॥२३-२४॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में इन्द्र वरुण आदि के सम्वाद का सोलहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

—o—o—

सत्रहवां अध्याय

शल्य उवाच—

अथ संचिन्तयानस्य देवराजस्य धीमतः ।
नहुषस्य वधोपायं लोकपालैः सदैवतैः ॥१॥
तपस्वी तत्र भगवानगस्त्यः प्रत्यदृश्यत ,

शल्य कहने लगा—हे भारत ! बुद्धिमान् देवराज इन्द्र द्वारा सारे लोकपाल और देवों के साथ राजा नहुष के वध का उपाय सोचते समय तपस्वी भगवान् अगस्त्य मुनि दिखाई पड़े ॥१॥

सोऽब्रवीदर्च्य देवेन्द्रं दिष्ट्या वै वर्धतेभवान् ॥२॥

विश्वरूप विनाशेन वृत्रासुर वधेन च,

अगस्त्य मुनि ने देवेन्द्र की पूजा करके कहा–यह बड़े आनन्द की बात है, कि अब आप विश्वरूप (शम्बर) दैत्य और वृत्रासुर का वध करके उन्नति प्राप्त कर रहे हैं ॥२॥

दिष्ट्याद्य नहुषो भ्रष्टो देवराज्यात्पुरंदर ॥३॥

दिष्ट्या हतारिं पश्यामि भवन्तं बलसूदन,

हे बल-दैत्य-नाशक ! पुरन्दर ! एक अन्य आनन्द का समाचार सुनाता हूं, कि देवों के राज्य से राजा नहुष भी भ्रष्ट हो गया है। अब मैं तो तुमको सारे शत्रुओं के विनाश से युक्त देखता हूं ॥३॥

इन्द्र उवाच—

स्वागतं ते महर्षेस्तु प्रीतोहं दर्शनात्तव,
पाद्यमाचनीयं च गामर्घ्यं च प्रतीच्छ से ॥४॥

इन्द्र बोला—आप महर्षि का स्वागत हो। मैं आपके दर्शन से बड़ा प्रसन्न हुआ हूं। अब आप पाद्य, अर्घ्य, आचमन और गौ को ग्रहण करो ॥४॥

शल्य उवाच—

पूजितं चोपविष्टं तमासने मुनिसत्तमम्।
पर्यपृच्छत देवेशः प्रहृष्टो ब्राह्मणर्षभम् ॥५॥

शल्य ने कहा—हे राजन्! पूजा के अनन्तर आसन पर बैठे हुए मुनि श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि अगस्त्य से देवराज इन्द्र बड़ी प्रसन्नता से पूछने लगा ॥५॥

एतदिच्छामि भगवन् कथ्यमानं द्विजोत्तम ।
परिभ्रष्टः कथं स्वर्गान्नहुषः पापनिश्चयः ॥६॥

हे भगवन्! द्विजश्रेष्ठ! मैं आप से कही हुई इस कथा को सुनना चाहता हूं, कि पाप-निश्चयी राजा नहुष. स्वर्ग से कैसे भ्रष्ट हो गया ?॥६॥

अगस्त्य उवाच—

शृणु शक्र प्रियं वाक्यं यथा राजा दुरात्मवान् ,
स्वर्गाद् भ्रष्टो दुराचारो नहुषो बलदर्पितः ॥७॥

अगस्त्य बोले– हे इन्द्र! तुम इस प्रिय समाचार को सुनो, जिस तरह बलदर्पित, दुराचारी, दुष्टात्मा राजा नहुष स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ है ॥७॥

श्रमार्त्ताश्च वहंतस्तं नहुषं पापकारिणम् ।
देवर्षयो महाभागास्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥८॥
पप्रच्छुर्नहुषं देव संशयं जयतांवर ।
य इमे ब्रह्मणा प्रोक्ता मंत्रा वै प्रोक्षणे गवाम् ॥ ९ ॥
एते प्रमाणं भवत उताहो नेति वासव ।
नहुषो नेति तानाह तमसा मूढचेतनः ॥१०॥

इस पापी नहुष को थके हुए बड़े क्लेशित महाभाग देवर्षि और शुद्धाचारवान् ब्रह्मर्षि यान में ले जा रहे थे। हे जयशील!

राजन्! इन्हों ने राजा नहुष से एक शास्त्र के सन्देह को पूछा-हे देवराज ! नहुष ! वे जो मन्त्र, वेद में गौओं के मारनेमें प्रयुक्त किये गए हैं, तुम उनको प्रमाण मानते हो या नहीं, अज्ञान से मोहित चित्त वाले राजा नहुष ने कहा-इनको मैं प्रमाण नहीं मानता हूं ॥९-१०॥

ऋषय ऊचुः—

अधर्मे संप्रवृत्तस्त्वं धर्मं न प्रतिपद्यसे ।
प्रमाणमेतदस्माकं पूर्वं प्रोक्तं महर्षिभिः ॥ ११ ॥

ऋषि बोले—हे इन्द्र! तुम अब अधर्म में प्रवृत्त हो गए हो—धर्म का प्रतिपादन नहीं करते । हम तो इनको प्रमाण मानते हैं, क्योंकि पूर्वकाल से महर्षि इनको प्रमाण मानते चले आए हैं ॥११॥

अगस्त्य उवाच—

ततो विवदमानः स मुनिभिः सह वासवः ।
अथ मामस्पृशन्मूर्ध्नि पादेनाधर्मपीडितः ॥ १२ ॥

अगस्त्य बोले—हे इन्द्र ! अब राजा नहुष, मुनियों के साथ विवाद करने लगा और अधर्म से व्याप्त होकर उसने यान में नियुक्त मेरे शिर में पैर की ठोकर मारी ॥१२॥

तेनाभूद्धततेजाश्च निःश्रीकश्च महीपतिः ।
ततस्तं तमसा विग्नमवोचं भृशपीडितम् ॥ १३ ॥

इस पैर की ठोकर से राजा नहुष, श्री और तेज से हीन हो गया । अब मलिनतासे व्यग्र, अत्यन्त पीड़ित नहुष से मैंने कहा ।

यस्मात्पूर्वैः कृतं राजन् ब्रह्मर्षिभिरनुष्ठितम्॥
अदृष्टं दूषयसि मे यच्च मूर्ध्न्यस्पृशः पदा ॥ १४ ॥
यच्चापि त्व मृषीन्मूढ ब्रह्मकल्पान् दुरासदान् ॥ १५ ॥
वाहान् कृत्वा वाहयसि तेन स्वर्गाद्धतप्रभः ।
ध्वंस पाप परिभ्रष्टः क्षीणपुण्यो महीतले ॥१६ ॥

हे राजन्! पूर्व काल के महर्षियों द्वारा प्रतिपादित और व्यवहार में लाए हुए पारलौकिक धर्म को धर्म के बिना देखे समझे तुमने दूषित किया है और मेरे शिर में पैर की चोट मारी है, इस के सिवा ब्रह्मा के समान पवित्र दुरासद ऋषियों को वाहन बनाकर उन पर चढ़ फिरते हो। इससे प्रभा और स्वर्ग से भ्रष्ट पाप-युक्त और पुण्य से रहित हो.र पृथिवी पर गिर जाओ ॥१४-१६॥

दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान् ।
विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ १७ ॥

अब तुम दश हजार वर्ष तक महान् सर्प (अजगर) का रूप धारण करके भूमि में पड़े रहोगे और इन वर्षों के पूर्ण हो जाने पर फिर स्वर्ग को प्राप्त कर सकोगे ॥१७॥

एवं भ्रष्टो दुरात्मा स देवराज्यादरिंदम ॥
दिष्ट्या वर्द्धामहे शक्र हतो ब्राह्मणकंटकः ॥ १८ ॥

हे अरिमर्दन! इस तरह यह दुरात्मा देवों के राज्य से भ्रष्ट हो गया है। हे शक्र! यह बड़े आनन्द का समय है, जो हम वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं और यह ब्राह्मणों का शत्रु नष्ट होगया है।

त्रिविष्टपं प्रपद्यस्व पाहि लोकान् शचीपते ।
जितेन्द्रियो जितामित्रः स्तूयमानो महर्षिभिः ॥१९॥

हे शचीपते ! अब तुम स्वर्ग को चलो और लोकों की रक्षा करो । तुम बड़े जितेन्द्रिय और शत्रु-विजयी हो-तुम्हारी महर्षि स्तुति करते रहते हैं ॥१९॥

शल्य उवाच—

ततो देवा भृशं तुष्टा महर्षिगण संवृताः ।
पितरश्चैव यक्षाश्च भुजगा राक्षसास्तथा ॥ २० ॥
गन्धर्वा देवकन्याश्च सर्वे चाप्सरसांगणाः ।
सरांसि सरितः शैलाः सागराश्च विशाम्पते ॥२१॥
उपागम्याब्रुवन्सर्वे दिष्ट्या वर्धसि शत्रुहन् ।

शल्य ने कहा-हे विशाम्पते ! इसके अनन्तर महर्षियों के गण से समन्वित देवता, पितर, यक्ष, भुजग, राक्षस, गन्धर्व, देवकन्या, अप्सराओं का समूह, सरोवर, नदी, पर्वत, सारे मूर्ति धारण करके वहां उपस्थित हुए और इन्द्र से बोले-हे शत्रुहन् ! तुम वृद्धि को प्राप्त हो रहे हो-यह बड़े ही आनन्द की बात है ॥२०-२१॥

हतश्च नहुषः पापो दिष्ट्यागस्त्येन धीमता ।
दिष्ट्या पापसमाचारः कृतः सर्पो महीतले ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
इन्द्रागस्त्यसंवादे नहुषभ्रंशे सप्तदशोऽध्याय ॥ १७ ॥

बुद्धिमान् अगस्थ ने पापी नहुप का ना.. कर दिया और पृथिवी पर उसको सर्प बना दिया-यह सब कुछ अच्छा ही हुआ है ॥२०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में इन्द्र और अगसय के सम्वाद तथा नहुप के स्वर्ग से भ्रष्ट होने का सतरहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

अट्ठारहवाँ अध्याय

शल्य उवाच—

ततः शक्रःस्तूयमानो गन्धर्वाप्सरसांगणैः ॥
ऐरावतं समारुह्यद्विपेन्द्रं लक्षणैर्युतम् ॥ १ ॥
पावकः सुमहातेजाम हर्षिश्च बृहस्पतिः ।
यमश्च वरुणश्चैव कुबेरश्च धनेश्वरः ॥ २ ॥
सर्वैर्देवैः परिवृतः शक्रो वृत्रनिषूदनः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यातस्त्रिभुवनं प्रभुः ॥ ३ ॥

शल्य ने कहा-हे राजन्! अब, गन्धर्व और अप्सराओं के गण से प्रशंसित हुआ शक्तिशाली, वृत्र नाशक इन्द्र उत्तम २ लक्षणों से युक्त, ऐरावत हाथी पर चढ़कर त्रिभुवन की ओर चल दिया। अब देवराज, इन्द्र, महा तेजस्वी अग्नि, महर्षि बृहस्पति, यम, वरुण, धनेश्वर कुबेर आदि अनेक देवों से घिरा

हुआ था, इस समय इस के गुणानुवाद गाते हुए गन्धर्व और अप्सराओं के गण. बड़े हो सुशोभित हुए साथ चल रहे थे ॥१-३॥

स समेत्य महेन्द्राण्या देवराजः शतक्रतुः ।
मुदा परमया युक्तः पालयामास देवराट् ॥ ४ ॥

शतक्रतु देवराज इन्द्र, अपनी प्रियपत्नी इन्द्राणी से मिले। देवराज ने बड़े आनन्द से उसको आश्वासन दिया ॥४॥

ततः स भगवांस्तत्र अंगिराः समदृश्यत ।
अथर्ववेदमंत्रैश्च देवेन्द्रं समपूजयत् ॥ ५ ॥

इसी समय वहां अङ्गिरा मुनि दिखाई दिए, जिन्हों ने वेद मन्त्रों से देवराज इन्द्र की पूजा की ॥५॥

ततस्तु भगवानिन्द्रः संहृष्टः समपद्यत ।
वरं च प्रददौ तस्मै अथर्वांगिरसे तदा ॥ ६ ॥

इस समय भगवान् इन्द्र, अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और उन्होंने अङ्गिरा मुनि के लिए वर प्रदान किया ॥६॥

अथर्वांगिरसो नाम वेदेऽस्मिन् वै भविष्यति ।
उदाहरणमेतद्धि यज्ञभागं च लप्स्यसे ॥ ७ ॥

हे मुने! इस वेद के स्वाध्याय के कारण आपका नाम अथर्वाङ्गिरस प्रसिद्ध होगा और आप को यह भी अधिकार दिया जाता है कि आप यज्ञ का भाग प्राप्त कर सकेंगे ॥७॥

एवं सम्पूज्य भगवानथर्वांगिरसं तदा ।
व्यसर्जयन्महाराज देवराजः शतक्रतुः ॥ ८ ॥

हे महाराज! भगवान् शतक्रतु देवराज इन्द्र ने अथर्वाङ्गिरस का इस तरह आदर करके उसको विदा किया ॥८॥

संपूज्य सर्वांस्त्रिदशानृषींश्चापि तपोधनान् ।
इन्द्रः प्रमुदितो राजन् धर्मेणापालयत्प्रजाः ॥ ९ ॥

हे राजन्! सारे देव और तपोधन महर्षियों की पूजा करके इन्द्र बड़ा प्रसन्न हुआ और धर्म से प्रजा का पालन करने लगा।

एवं दुःखमनुप्राप्तमिन्द्रेण सह भार्यया ।
अज्ञातवासश्च कृतः शत्रूणां वध कांक्षया ॥ १० ॥

हे राजन्! इस समय इन्द्र ने भी अपनी भार्या के साथ दुःख उठाया और शत्रु वध की प्रतीक्षा करते हुए, यह अज्ञातवास किया ॥१०॥

नात्र मन्युस्त्वया कार्यो यत्क्लिष्टोसि महावने ।
द्रौपद्या सह राजेन्द्र भ्रातृभिश्च महात्मभिः ॥ ११ ॥

हे राजेन्द्र! वन में जो तुमने अपनी भार्या द्रौपदी तथा महात्मा भाइयों के साथ क्लेश उठाया है, इसका तुमको शोक नहीं करना चाहिए ॥११॥

एवं त्वमपि राजेन्द राज्यं प्राप्स्यसि भारत ।
वृत्रं हत्वा यथा प्राप्तः शक्रः कौरवनंदन ॥ १२ ॥

हे कौरव-नन्दन! भरत-वंश-श्रेष्ठ! राजन्! जैसे वृत्रासुर को मार कर इन्द्र ने राज्य पाया, वैसे ही तुम भी राज्य को प्राप्त करोगे ॥१२॥

दुराचारश्च नहुषो ब्रह्मद्विट् पापचेतनः ।
अगस्त्यशापाभिहतो विनष्टः शाश्वतीः समाः ॥१३
एवं तव दुरात्मानः शत्रवः शत्रु सूदन ।
क्षिप्रं नाशं गमिष्यन्ति कर्णदुर्योधनादयः ॥ १४ ॥

दुराचारी, ब्रह्मद्वेषी, पापी. राजा नहुष, अगस्त्य के शाप से सहस्रों वर्ष को नष्ट हो गया। हे शत्रु-सूदन! इसी तरह तेरे दुरात्मा शत्रु, कर्ण दुर्योधनादि शीघ्र ही नाश को प्राप्त होंगे १३-१४

ततः सागरपर्यन्तां भोक्ष्यसे मेदिनीमिमाम् ।
भ्रातृभिः संहितो वीर द्रौपद्या च सहानया ॥ १५ ॥

हे वीर! इसके अनन्तर तुम समुद्रपर्यन्त इस पृथिवी को इस द्रौपदी और अपने भाइयों के साथ चिरकाल तक भोगोगे १५

उपाख्यानमिदं शक्र विजयं वेदसम्मितम् ।
राज्ञा व्यूढेष्वनीकेषु श्रोतव्यं जयमिच्छता ॥ १६ ॥

यह इन्द्र विजय नामक उपाख्यान, वेद प्रतिपादित है। जयाभिलाषी राजा को सेनाओं के युद्ध के लिए उपस्थित होने के समय इसको सुनना चाहिए ॥१६॥

तस्मात्संश्रावयामि त्वां विजयं जयतांवर ।
संस्तूयमाना वर्धन्ते महात्मानो युधिष्ठिर ॥ १७ ॥

हे विजेताओं में श्रेष्ठ! युधिष्ठिर! मैंने इसी लिए तुमको यह उपाख्यान सुनाया है। महात्मा राजा इससे इन्द्र की स्तुति करके वृद्धि को प्राप्त कर सकते हैं ॥१७॥

क्षत्रियाणामभावोयं युधिष्ठिर महात्मनाम् ।
दुर्योधनापराधेन भीमार्जुनबलेन च ॥ १८ ॥

हे युधिष्ठिर! दुर्योधन के अपराध से महाबली भीम और अर्जुन द्वारा यह महावीर क्षत्रियों के विनाश का समय आया है।

आख्यानमिन्द्रविजयं य इदं नियतः पठेत् ।
धूतपाप्मा जित स्वर्गः परत्रेह च मोदते ॥ १९ ॥

जो मनुष्य, नियम में स्थित होकर इन्द्र विजय नामक उपाख्यान को सुनता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और स्वर्ग प्राप्त करके परलोक में बड़ा सुखी रहता है तथा जीवन में भी आनन्द से रहता है ॥१९॥

न चारिजं भयं तस्य ना पुत्रो वा भवेन्नरः ।
नापदं प्राप्नुयात्कांचिद्दीर्घमायुश्च विन्दति ।
सर्वत्र जयमाप्नोति न कदाचित्पराजयम्॥ २० ॥

इसके पढ़ने वाले को शत्रु का भय नहीं है और न वह पुत्र हीन रह सकता है। इस पर कोई विपत्ति नहीं आती और वह दीर्घ आयु पाता है। इसकी सदा जय रहती है और वह कभी पराजित नहीं होता ॥२०॥

वैशंपायन उवाच—

एवमाश्वासितो राजा शल्येन भरतर्षभ ।
पूजयामास विधिवच्छल्यं धर्मभृतां वर २१

वैशम्पायन बोले—हे भरतर्षभ ! शल्य ने राजा युधिष्ठिर को इस तरह आश्वासन दिया। धर्मात्माओं में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ने भी शल्य का बड़ा सत्कार किया ॥२१॥

श्रुत्वा तु शल्यवचनं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः
प्रत्युवाच महाबाहुर्मद्रराजमिदं वचः ॥२२॥

महाबाहु कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर मद्रराज शल्य के वचन सुनकर उनसे यह वचन बोला ॥२२॥

भवान्कर्णस्य सारथ्यं करिष्यति न संशयः
तत्र तेजोवधः कार्यः कर्णस्यार्जुनसंस्तवः ॥२३॥

हे महानुभाव ! आप युद्ध में कर्ण के सारथि अवश्य बनोगे-इसमें सन्देह नहीं है। उस समय कर्ण के तेज का नाश और अर्जुन की स्तुति करना ॥२३॥

शल्य उवाच—

एवमेतत्करिष्यामि यथा मां संप्रभाषसे ।
यच्चान्यदपि शक्यामि तत्करिष्याम्यहं तव ॥२४॥

शल्य ने कहा—हे राजन ! आप जैसा कह रहे हैं-मैं वैसा ही करूंगा। इसके सिवा अन्य भी जो कुछ मैं कर सकूंगा, तेरे लिए करूंगा ॥२४॥

वैशम्पायन उवाच—

ततस्त्वामन्त्र्य कौंतेयाञ्छल्यो मद्राधिपस्तदा
जगाम सबलः श्रीमान् दुर्योधनमरिन्दम ॥२५॥
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैनोद्योगपर्वणि
शल्यगमनेऽष्टादशोऽध्यायः ।

वैशम्पायन बोले—हे अरिन्दम ! इसके बाद मद्रदेशाधिपति श्रीमान् शल्य, कुन्तीपुत्रों से विदा लेकर सेना-सहित दुर्योधन के पास चला गया ॥२५॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सैनोद्योगपर्व में शल्य गमन का अट्ठारहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



उन्नीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

युयुधानस्ततो वीरः सात्वतानां महारथः
महता चतुरङ्गेण बलेनागाद्युधिष्ठिरम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले–हे राजन् ! इसके अनन्तर सात्वत-वंश-श्रेष्ठ महारथी वीर युयुधान, एक विशाल चतुरङ्गिणी सेना लेकर राजा युधिष्ठिर के पास चला आया ।

तस्य योधा महावीर्या नाना देश समागताः ।
नानाप्रहरणा वीराः शोभयांचक्रिरे बलम् ॥२॥

महापराक्रमी, अनेक देशोत्पन्न, नाना शस्त्रधारी वीर योद्धा, इस युयुधान की सेना को सुशोभित कर रहे थे ॥२॥

परश्वधैर्भिंदिपालैः शूलतोमरमुद्गरैः ।
परिघैर्यष्टिभिः पाशैः करवालैश्च निर्मलैः ॥३॥
खङ्गकार्मुकनिर्व्यूहैः शरैश्च विविधैरपि ।
तैलधौतैः प्रकाशद्भिः सदाशोभत तैः बलम् ॥४॥

यह विशाल सेना, परशु, भिन्दिपाल, शूल, तोमर, मुद्गर परिघ, यष्टि, पाश, चमकते हुए करवाल. खङ्ग, धनु और अनेक भांति के बाणों से बड़ी सुसज्जित थी । ये शस्त्र, तैल लगा कर रगड़ने से बहुत ही चमक रहे थे ॥३-४॥

तस्य मेघप्रकाशस्य सौवर्णैः शोभितस्य च ।
बभूव रूपं सैन्यस्य मेघस्येव सविद्युतः ॥५॥

मेघ के समान उमड़ती हुई और सुवर्ण के आभूषणों से सुशोभित, सेना का रूप बिजली से युक्त मेघ के समान दिखाई दे रहा था ॥५॥

अक्षौहिणी तु सा सेना तदा यौधिष्ठिरं बलम् ।
प्रविश्यांतर्दधे राजन् सागरं कुनदी यथा ॥६॥

हे राजन् ! यह एक अक्षौहिणी सेना युधिष्ठिर की सेना में प्रविष्ट होकर ऐसे लीन हो गई जैसे-समुद्र में छोटी सी नदी लुप्त हो जाती है ॥६॥

तथैवाक्षौहिणीं गृह्य चेदीनामृषभो बली ।
धृष्टकेतुरुपागच्छत्पांडवानमितौजसः ॥७॥

इसी तरह चेदी देश का अधिपति, धृष्टकेतु, एक अक्षौहिणी सेना लेकर अमित ओजस्वी पाण्डवों के पास आया ॥७॥

मागधश्च जयत्सेनो जारासंधिर्महाबलः ।
अक्षौहिण्यैव सैन्यस्य धर्मराजमुपागमत् ॥८॥

महाबली, मगध देश का स्वामी जरासन्ध-पुत्र, जयत्सेन, एक अक्षौहिणी सेना लेकर धर्मराज की सहायता को आया ॥८॥

तथैव पांड्यो राजेन्द्र सागरानूपवासिभिः ।
वृतो बहुविधैर्योधैर्युधिष्ठिरमुपागमत् ॥९॥

हे राजेन्द्र ! इसी तरह पाण्ड्य देश का अधिपति, सागर के तट के जल प्रधान प्रदेश के निवासी अनेक योद्धाओं से युक्त हो कर राजा युधिष्ठिर के पास आया ॥९॥

तस्य सैन्यमतीवासीत्तस्मिन्बलसमागमे ।
प्रेक्षणीयतरं राजन् सुवेषं बलवत्तदा ॥१०॥

हे राजन ! राजा युधिष्ठिर की सेना में इसकी विशाल सेना बड़ी ही सुन्दर दिखाई देती थी, क्योंकि उसका बड़ा सुन्दर वेश था और वह बड़ी ही बलशालिनी थी ॥१०॥

द्रुपदस्याप्यभूत्सेना नानादेशसमागतैः ।
शोभिता पुरुषैः शूरैः पुत्रैश्चास्य महारथैः ॥११॥

द्रुपदराज की सेना भी अनेक देशों के वीर पुरुषों से तथा इसके महारथी पुत्रों से बड़ी सुशोभित हो रही थी ॥११॥

तथैव राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः ।
पार्वतीयैर्महीपालैः सहितः पांडवानियात् ॥१२॥

बड़ी भारी सेना का अधिपति मत्स्य देश का स्वामी राजा विराट भी, पर्वत प्रदेश के राजाओं को साथ लेकर पाण्डवों की सेना में मिल गया ॥१२॥

इतश्चेतश्च पांडूनां समाजग्मुर्महात्मनाम् ।
अक्षौहिण्यस्तु सप्तैता विविधध्वजसंकुलाः ॥१३॥
युयुत्समानाः कुरुभिः पांडवान्समहर्षयन् ।

इस प्रकार महात्मा पाण्डवों के पास इधर उधर से आकर अनेक भांति की ध्वजा पताकाओं से सुशोभित सात अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हो गई, जो कौरवों से लड़ने को उत्साहित हो रही थी। इस सेना के देखने से पाण्डवों को बड़ा ही हर्ष होता था।

तथैव धार्तराष्ट्राणां हर्षं समभिवर्धयन् ॥१४॥
भगदत्तो महीपालः सेनामक्षौहिणीं ददौ ।

इसी प्रकार धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन के हर्ष को बढ़ाते हुए राजा भगदत्त ने एक अक्षौहिणी सेना दुर्योधन को समर्पित की।

तस्य चीनैः किरातैश्च कांचनैरिव संवृतम् ॥१५॥
बभौ बलमनाधृष्यं कर्णिकारवनं यथा ।

इस भगदत्त की सेना सुवर्ण से आवृत चीन और किरात वीरों से बड़ी ही दुर्धर्ष थी, जो कनेर के वन के समान दिखाई देती थी ॥१५॥

तथा भूरिश्रवाः शूरः शल्यश्च कुरुनन्दन ॥१६॥
दुर्योधनमुपायातावक्षौहिण्या पृथक् पृथक् ।

हे कुरुनन्दन ! शूरवीर, भूरिश्रवा और मद्रराज, शल्य, भिन्न२ एक २ अक्षौहिणी सेना लेकर राजा दुर्योधन का सहायता में पहुँचे ॥१६॥

कृतवर्मा च हार्दिक्यो भोजांधकुकुरैः सह ॥१७॥
अक्षौहिण्यैव सेनाया दुर्योधनमुपागमत ।

हार्दिक्य कृतवर्मा भी भोज, अन्धक और कुकुर-वंशी-क्षत्रियों के साथ एक अक्षौहिणी सेना लेकर दुर्योधन की सहायता को आया ॥१७॥

तस्य तैः पुरुषव्याघ्रैर्वनमालाधरैर्बलम् ॥१८॥
अशोभत यथा मत्तैर्वनप्रक्रीडितैर्गजैः ।

चरणों तक लटकने वाली मालाओं के धारी, महावीरों से इसकी सेना इस तरह शोभित हो रही थी. जैसे क्रीड़ा करते हुए, हाथियों से वन सुशोभित हो रहा हो ॥१८॥

जयद्रथमुखाश्चान्ये सिन्धुसौवीरवासिनः ॥१९॥
आजग्मुः पृथिवीपालाः कंपयंत इवाचलान् ।

सिन्ध और गुजरात के निवासी जयद्रथ आदि अनेक राजा पर्वतों को कम्पाते हुए, राजा दुर्योधन के पास आए ॥१९॥

तेषामक्षौहिणी सेना बहुला विबभौतदा ॥२०॥
विधूयमानो वातेन बहुरूप इवांबुदः ।

यह विशाल एक अक्षौहिणी सेना, वायु से उड़ाये हुए नाना रूपधारी मेघ के समान अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥२०॥

सुदक्षिणश्च कांबोजोयवनैश्च शकैस्तथा ॥२१॥

उपाजगाम कौरव्यमक्षौहिण्या विशांपते ।

हे प्रजापालक! कम्बोज देश का अधिपति सुदक्षिण, यवन और शकों के साथ, एक अक्षौहिणी सेना लेकर कुरुवंशोत्पन्न दुर्योधन की सहायता को आया ॥२१॥

तस्य सेना समावायः शलभानामिवाबभौ ॥२२॥

स च संप्राप्य कौरव्यं तत्रैवांतर्दधे तदा ।

इस सुदक्षिण की सेना का समूह शलभ पक्षियों की तरह सुशोभित हो रहा था। यह राजा कुरुवंश श्रेष्ठ दुर्योधन के पास पहुंच कर उसकी सेना में सम्मिलित हो गया ॥२२॥

तथा माहिष्मतीवासी नीलो नीलायुधैः सह॥२३॥

महीपालो महावीर्यो दक्षिणापथवासिभिः ।

माहिष्मती नगरी का राजा नील, महाबली दक्षिण देश निवासी वीरों के साथ काले, चमकीले अस्त्रों को लिए हुए दुर्योधन की सहायता को आया ॥२३॥

आवंत्यौ च महीपालौ महाबलसुसंवृतौ ॥२४॥

पृथगक्षौहिणीभ्यां तावभियातौ सुयोधनम् ।

अवन्ती देश के बड़ी भारी सेना से सम्पन्न, दो महाबली राजा भी, पृथक्२ अक्षौहिणी सेना लेकर राजा दुर्योधन की सहायता को आए ॥२४॥

केकयाश्च नरव्याघ्राः सोदर्याः पंच पार्थिवाः ॥२५॥
संहर्षयन्तः कौरव्यमक्षौहिण्या समाद्रवन् ।

केकय देश के सहोदर पांच भाई, कुरराज दुर्योधन के हर्ष को बढ़ाते हुए, एक अक्षौहिणी सेना लेकर आए ॥२५॥

ततस्ततस्तु सर्वेषां भूमिपानां महात्मनाम् ॥२६॥
तिस्रोन्याः समवर्तत वाहिन्यो भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ ! इधर उधर से आए हुए महावीर राजाओं की इस तरह तीन और अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हो गई ॥२६॥

एवमेकादशावृत्ताः सेना दुर्योधनस्य ताः ॥२७॥
युयुत्समानाः कौन्तेयान्नानाध्वजसमाकुलाः ।

इस प्रकार अनेक भाँति की ध्वजाओं से व्याप्त पाण्डवों से युद्ध की अभिलाषा करने वाली राजा दुर्योधन की ग्यारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हो गई ॥२७॥

न हास्तिनपुरे राजन्नवकाशोऽभवत्तदा ॥२८॥
राज्ञां स्वबलमुख्यानां प्राधान्येनापि भारत ॥

हे भरतवंशोत्पन्न ! राजन ! अपनी २ सेना के मुख्य २ राजाओं को प्रधानता से स्थान देने के कारण हस्तिनापुर में कोई भी शून्य स्थान दिखाई नहीं देता था ॥२८॥

ततः पंचनदं चैव कृत्स्नं च कुरुजांगलम् ॥२९॥
तथा रोहितकारण्यं मरुभूमिश्च केवला ॥

अहिच्छत्रं कालकूटं गंगाकूलं च भारत ॥३०॥
वारणं वाटधानं यामुनश्चैव पर्वतः ।
एष देशः सुविस्तीर्णः प्रभूतधनधान्यवान् ॥३१॥
बभूव कौरवेयाणां बलेनातीव संवृतः ।

हे भारत ! पञ्चनद, सारा कुरुजाङ्गल प्रदेश रोहितकारण्य, मरुभूमि, अहिच्छत्र, कालकूट, गङ्गाकूल, वारण, वाटधान, यामुन पर्वत आदि प्रदेश बड़े विस्तृत और धन धान्य से भरे हुए थे। यह प्रदेश कौरवों की सेना से बिल्कुल ही भर गया ॥२६-३१॥

तत्र सैन्यं तथा युक्तं ददर्श स पुरोहितः ॥३२॥
यः स पांचालराजेन प्रेषितः कौरवान्प्रति ॥३३॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि पुरोहित सैन्यदर्शने एकोनविंशाऽध्यायः ॥१६॥

॥ समाप्तमिदं सेनोद्योगपर्व ॥

इस प्रकार आकर इकट्ठी होती हुई, सेना को उस पुरोहित ने देखा, जिसको राजा द्रुपद ने कौरवों के पास भेजा था ॥३२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सेनोद्योगपर्व में पुरोहित के सेना देखने का उन्नीसवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर सेनोद्योगपर्व भी समाप्त हो गया।

अथ सञ्जययानपर्व
बीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

स च कौरव्यमासाद्य द्रुपदस्य पुरोहितः ।
सत्कृतो धृतराष्ट्रेण भीष्मेण विदुरेण च ॥१॥
सर्वं कौशल्यमुक्त्वादौ पृष्ट्वा चैवमनामयम् ।
सर्वसेनाप्रणेतृणां मध्ये वाक्य मुवाचह ॥२॥

वैशम्पायन बोले-हे भारत ! द्रुपद का पुरोहित, कुरु-वंश-श्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र के पास पहुचा। राजा धृतराष्ट्र, भीष्म और विदुरने इसका बड़ा आदर किया। इसने सबसे प्रथम अपने पक्ष का कुशल समाचार कह सुनाया और पीछे इनकी कुशल पूछी। इसके अनन्तर यह सारे सेनापतियों के मध्य में यह वचन बोला ॥१-२॥

सर्वैर्भवद्भिर्विदितो राजधर्मः सनातनः ।
वाक्योपादानहेतोस्तु वक्ष्यामि विदिते सति ॥३॥

हे महाभागो ! आप सब लोगों को सनातन राजधर्म का ज्ञान है। जब आपको राजधर्म विदित है, तो आप से कुछ प्रश्नों के उत्तर ग्रहण करने को मैं कुछ कहना चाहता हूं ॥३॥

धृतराष्ट्रश्च पांडुश्च सुतावेकस्य विश्रुतौ ।
तयोः समानं द्रविणं पैतृकं नात्र संशयः ॥४॥

यह अच्छी तरह प्रसिद्ध है, कि धृतराष्ट्र और पाण्डु एक ही पिता विचित्रवीर्य की सन्तान हैं। इसमें कोई संशय नहीं है, कि अपने पिता के धन में इन दोनों का समान भाग है ॥४॥

धृतराष्ट्रस्य ये पुत्राः प्राप्तं तैः पैतृकं वसु ।
पांडुपुत्राः कथंनाम न प्राप्ताः पैतृकं वसु ॥५॥

इनमें जो धृतराष्ट्र के पुत्र हैं, उन्होंने तो अपने पिता का धन प्राप्त कर रखा है और पाण्डु के पुत्र अपने पिता के धन से अभी तक वञ्चित हैं ॥५॥

एवं गते पांडवेयैर्विदितं वः पुरा यथा ।
न प्राप्तं पैतृकं द्रव्यं धृतराष्ट्रेण संवृतम् ॥६॥

आप लोगों को यह भी मालूम है, कि पाण्डवों ने अपने पिता का धन पूर्वकाल में भी नहीं पाया था। उस समय भी उनके भाग को धृतराष्ट्र ने ही हड़प रखा था ॥६॥

प्राणांतिकैरप्युपायैः प्रयतद्भिरनेकशः ।
शेषवंतो न शकिता नेतुं वै यमसादनम् ॥७॥

इन पाण्डवों के मारने के लिए भी अनेक उपाय किये गए, परन्तु आयु शेष होने के कारण वे यमराज के गृह के अतिथि नहीं बनाए जा सके ॥७॥

पुनश्च वर्द्धितं राज्यं स्वबलेन महात्मभिः ।
छद्मनापहृतं क्षुद्रैर्धार्तराष्ट्रैः ससौबलैः ॥८॥

इसके अनन्तर इन वीर पाण्डवों ने अपने राज्य को बढ़ा लिया, परन्तु उसको सुबल-पुत्र शकुनि के सहित छल करके धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधनादिक ने पाण्डवों से छीन लिया ॥८॥

तदप्यनुमतं कर्म यथा युक्तमनेन वै।
वासिताश्च महारण्ये वर्षाणीह त्रयोदश ॥९॥

जिस कार्य का राजा धृतराष्ट्र ने अनुमोदन किया, इन्होंने उसी को ठीक समझा। इस प्रकार इनको तेरह वर्ष तक महारण्य में बसने को बाधित किया गया ॥९॥

सभायां क्लेशितैर्वीरैः सहभार्यैस्तथाभृशम्।
अरण्ये विविधाः क्लेशाः संप्राप्तास्तैः सुदारुणाः १०

इन वीरों ने अपनी भार्या के साथ जहां सभा में अत्यन्त क्लेश उठाया, वहाँ इन्होंने वन में भी बड़े दारुण क्लेश प्राप्त किए हैं ॥१०॥

तथा विराटनगरे योन्यंतरगतैरिव।
प्राप्तः परमसंक्लेशो यथा पापैर्महात्मभिः ॥११॥

विराट नगर में इन महात्माओं ने इतना बड़ा क्लेश उठाया, जितना कोई पापी पापयोनियों में जाकर उठाता है ॥११॥

ते सर्वं पृष्ठतः कृत्वा तत्सर्वं पूर्वकिल्बिषम्।
सामैव कुरुभिः सार्द्धमिच्छति कुरुपुङ्गवा ॥१२॥

अब भी वे कुरुवंश-श्रेष्ठ पाण्डव, इस सारे क्लेश और पूर्व के क्लेश का ध्यान न करके कौरवों के साथ सन्धि करना चाहते हैं ॥१२॥

तेषां च वृत्तमाज्ञाय वृत्तं दुर्योधनस्य च ।
अनुनेतुमिहार्हन्ति धार्तराष्ट्रं सुहृज्जनाः ॥१३॥

इन पाण्डवों की दशा और दुर्योधन के व्यवहार का विचार कर आप मित्र लोग धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन को सब कुछ समझा देवें ॥१३॥

नहि ते विग्रहं वीराः कुर्वंति कुरुभिः सह ।
अविनाशेन लोकस्य कांक्षन्ते पाडवाः स्वकम् ॥१४॥

ये वीर, कौरवों के साथ झगड़ा करना नहीं चाहते हैं। पाण्डवों की तो आन्तरिक इच्छा ही यही है, कि किसी प्रकार से संसार का विनाश न हो ॥१४॥

यश्चापि धार्तराष्ट्रस्य हेतुः स्याद्विग्रहं प्रति
स च हेतुर्न मन्तव्यो बलीयांसस्तथा हि ते ॥१५॥

धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन, जो युद्ध करने में लाभ देखता है, वह लाभ कुछ भी नहीं होगा, क्योंकि पाण्डव बड़े ही बलवान् और शक्ति शाली हैं ॥१५॥

अक्षौहिण्यश्च सप्तैव धर्मपुत्रस्य संगताः ।
युयुत्समानाः कुरुभिः प्रतीक्षन्तेऽस्य शासनम् ॥१६॥

राजा युधिष्ठिर के पास सात अक्षौहिणी सेना पहुँच चुकी है, वह कौरवों से युद्ध करने की अभिलाषा में खड़ी है और केवल धर्मराज की आज्ञा की ही प्रतीक्षा कर रही है ॥१६॥

अपरे पुरुषव्याघ्राः सहस्राक्षौहिणी समाः ।
सात्यकिर्भीमसेनश्च यमौ च सुमहाबलौ ॥१७॥

अन्य बड़े २ पुरुष श्रेष्ठ, महावीर भी सहस्रों अक्षौहिणी के बराबर इनकी सेना में हैं । सात्यकि, भीमसेन, नकुल, सहदेव ऐसे ही महाबली वीर हैं ॥१७॥

एकादशैताः पृतना एकतश्च समागताः ।
एकतश्च महाबाहुर्बहुरूपी धनञ्जयः ॥ १८ ॥
यथा किरीटी सर्वाभ्यः सेनाभ्यो व्यतिरिच्यते ।
एवमेव महाबाहुर्वासुदेवो महाद्युतिः ॥ १९ ॥

एक ओर तो यह आई हुई ग्यारह अक्षौहिणी सेना है और दूसरी ओर अनेक भांति से युद्ध करने वाला महाबाहु अर्जुन हो, तो सारी सेना से यह अर्जुन ही विशेष निकलेगा । उसी तरह से महाबाहु, महातेजस्वी, वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण हैं ।

बहुबलत्वं च सेनानां विक्रमं च किरीटिनः ।
बुद्धिमत्त्वं च कृष्णस्य बुध्वा युध्येत को नरः ॥२०॥

पाण्डवों की सेना की विशालता, अर्जुन का पराक्रम और श्रीकृष्ण की बुद्धिमता देखकर भी कौन ऐसा पुरुष होगा, जो फिर भी लड़ना चाहे ।२०॥

ते भवन्तो यथा धर्म यथा समयमेव च ।
प्रयच्छन्तु प्रदातव्यं मा वः कालोऽत्यगादयम् ॥ २१॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि पुरोहितयाने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अब आप लोग, धर्म और समय के अनुसार विचार करके जो पाण्डवों को देने योग्य भाग है, उसको शीघ्र प्रदान कर दो। अब तुमको समय व्यतीत नहीं करना चाहिए ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सञ्जययानपर्व में पुरोहित के भाषण का बीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



इक्कीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रज्ञावृद्धो महाद्युतिः।
संपूज्यैनं यथा कालं भीष्मो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोलेः— हे राजन्! इस प्रकार पुरोहित के वचन सुनकर अत्यन्त तेजस्वी, बुद्धिमान् भीष्म ने इस पुरोहित की प्रशंसा करके समयानुसार यह वचन कहा ॥१॥

दिष्ट्या कुशलिनः सर्वे सह दामोदरेण ।
दिष्ट्या सहायवन्तश्च दिष्ट्या धर्मे च ते रताः ॥ २ ॥

हे महानुभाव! यह बड़े आनन्द की बात है, कि पाण्डव, श्रीकृष्ण के साथ कुशल से हैं। इसी तरह यह भी हर्ष का स्थान

है, कि आज वीर लोग उनकी सहायता करने को इकट्ठे हो रहे हैं और ये भी धर्म मार्ग में संलग्न हैं ॥२॥

दिष्ट्या च संधिकामास्ते भ्रातरः कुरुनन्दनाः ।
दिष्ट्या न युद्धमनसः पांडवाः सह बांधवैः ॥ ३ ॥

ये कुरु वंश श्रेष्ठ संधि के अभिलाषी हैं और अपने भाइयों के साथ युद्ध करना नहीं चाह रहे हैं, इसका भी उनको धन्यवाद अत्यन्त है ॥३॥

भवता सत्यमुक्तंतु सर्वमेतऽन्न संशयः ।
अतितीक्ष्णांतु ते वाक्यं ब्राह्मण्यादिति मे मतिः ॥४॥

आपने भी जो कुछ कहा है, वह सारा ही उचित है। आपके वाक्य में आवेश की झलक थी, उसका भी कारण ब्रह्मतेज ही समझना चाहिए ॥४॥

असंशयं क्लेशितास्ते वने चेह च पांडवाः ।
प्राप्ताश्च धर्मतः सर्वं पितुर्धनमसंशयम् ॥ ५ ॥

इसमें सन्देह नहीं, कि पाण्डवों को यहां सभा और वन में बहुत ही क्लेश उठाने पड़े हैं और उन्होंने अपने पिता का धन धर्मपूर्वक ही प्राप्त किया था ॥५॥

किरीटी बलवान्पार्थः कृतास्त्रश्च महारथः
को हि पाण्डुसुतं युद्धे विषहेत धनञ्जयम् ॥ ६ ॥

कुन्ती पुत्र अर्जुन बड़ा महारथी और अस्त्रविद्या में कुशल है। युद्ध में किसकी शक्ति है; जो पाण्डु पुत्र अर्जुन का झटका झेल सकेगा ॥६॥

अपि वज्रधरः साक्षात् किमुतान्ये धनुर्भृतः।
त्रयाणामपि लोकानां समर्थ इति मे मतिः ॥ ७ ॥

अर्जुन का युद्ध में सामना इन्द्र भी नहीं कर सकता है। फिर अन्य धनुधारियों की तो चर्चा ही क्या है। अर्जुन तो त्रिलोकी में एक ही माना हुआ वीर है- ऐसा मेरा भी मत है ॥७॥

भीष्मे ब्रुवति तद्वाक्यं धृतमाक्षिप्य मन्युना।
दुर्योधनं समालोक्य कर्णो वचनमब्रवीत् ॥८॥

भीष्म के इतना कहते ही बड़ी बुरी तरह से भीष्म को फटकार कर दुर्योधन की ओर देखता हुआ कर्ण कहने लगा ॥८॥

न तत्राविदितं ब्रह्मन् लोके भूतेन केनचित्।
पुनरुक्तेन किं तेन भाषितेन पुनः पुनः ॥९॥
दुर्योधनार्थे शकुनिर्द्यूते निर्जितवान्पुरा।
समयेन गतोऽरण्यं पांडुपुत्रो युधिष्ठिरः ॥१०॥

हे ब्रह्मन्! किसी भी मनुष्य से यह वृत्तान्त गुप्त नहीं है। अब इसके आगे कहने से क्या लाभ है। राजा दुर्योधन के निमित्त शकुनि ने पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर को जीता था और वह भी अपनी शर्त के अनुसार बन को चला गया ॥१०॥

स तं समयमाश्रित्य राज्यं नेच्छति पैतृकम्।
बलमाश्रित्य मत्स्यानां पांचालानां च मूर्खवत् ॥११॥

धर्मराज, अपनी प्रतिज्ञानुसार वनवास के तेरह वर्ष पूर्ण करके राज्य नहीं लेना चाहते हैं, प्रत्युत वे तो अपने वचन को भङ्ग करके मत्स्य और पाञ्चाल देश के अधिपतियों के बल का आश्रय लेकर मूर्ख की तरह राज्य के अभिलाषी हो रहे हैं ॥११॥

दुर्योधनो भयाद्विद्वन्न दद्यात्पादमन्ततः ।
धर्मस्तु महीं कृत्स्नां प्रदद्याच्छत्रवेपि च ॥ १२ ॥

हे विद्वन्! दुर्योधन भय से तो एक चरण भूमि भी अन्त तक देने को तय्यार नहीं है और धर्मानुसार तो वह सारी पृथिवी को शत्रु के लिए भी दे सकता है ॥१२॥

यदि कांक्षति ते राज्यं पितृपैतामहं पुनः ।
यथाप्रतिज्ञाकाल तं चरेयु र्वनमाश्रिताः॥ १३ ॥

यदि पाण्डव, पिता पितामहों का राज्य सीधी तरह चाहते हैं, तो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वन में रहकर अपने समय को पूर्ण करें ॥१३॥

ततो दुर्योधनस्यांके वर्तं तामकुतोभयाः ।
अधार्मिकीं तु मा बुद्धिं मौर्ख्यात्कुर्वंतु केवलात् ॥१४॥

इसके पीछे वे निर्भय होकर दुर्योधन की गोद में खेलते रहें। उनको मूर्खता से धर्म रहित बुद्धि का आश्रय नहीं लेना चाहिए॥१४॥

अथ ते धर्ममुत्सृज्य युद्धमिच्छन्ति पांडवाः ।
आसाद्य मान्कुरुश्रेष्ठान्स्मरिष्यन्ति वचो मम ॥१५॥

जो पाण्डव, धर्म को छोड़कर युद्ध की अभिलाषा कर रहेहैं। तो इस कुरुवंश श्रेष्ठ दुर्योधन के सन्मुख वे मेरे वचन को याद करेंगे ॥१५॥

भीष्म उवाच—

किं नु राधेय वाचा ते कर्म तत्स्मर्तुमर्हसि ।

एक एव यदा पार्थः षड्रथाञ्जितवान् युधि ॥१६॥

भीष्म ने कहा—हे राधापुत्र ! तेरे इस बकवाद में क्या रक्खा है। क्या तुझे याद नहीं है ? जब अकेले अर्जुन ने तुम छः महारथियों को जीत लिया था। तू बड़ा विजयी है- इसका पता तो उस समय देखकर लग ही गया था ॥१६॥

बहुशो जीयमानस्य कर्म दृष्टं तदैव ते ।

न चेदेवं करिष्यामो यदयं ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।

ध्रुवं युधि हतास्तेन भक्षयिष्याम पांसुकान् ॥१७॥

हे कर्ण ! जो इस ब्राह्मण ने कहा है, यदि हमने वह नहीं किया, तो युद्धभूमि में पड़े हुए, हम अवश्य रेत चाटेंगे ॥१७॥

वैशम्पायन उवाच—

धृतराष्ट्रस्ततो भीष्ममनुमान्य प्रसाद्य च ।

अवभर्त्स्य च राधेयमिदं वचनमब्रवीत् ॥१८॥

वैशम्पायन बोले— हे राजन् ! राजा धृतराष्ट्र ने भीष्म को बढ़ा कर और उसको प्रसन्न करके तथा कर्ण को फटकार कर यह वचन कहा— ॥१८॥

अस्मद्धितं वाक्यमिदं भीष्मः शांतनवोऽब्रवीत् ।
पांडवानां हितं चैव सर्वस्य जगतस्तथा ॥ १६ ॥

जो शान्तनु-पुत्र भीष्म ने वचन कहा है- वह हमारा हितकारी है तथा इसी में पाण्डवों का हित भी है। हम दोनों का ही क्या इसमें तो सारे जगत् का कल्याण छुपा हुआ है ॥१६॥

चिंतयित्वा तु पार्थेभ्यः प्रेषयिष्यामि संजयम् ।
स भवान्प्रतियात्वद्य पांडवानेव माचिरम् ॥ २० ॥

मैं पाण्डवों के विषय में सोच विचार कर आज सञ्जय को भेज देता हूं। हे ब्रह्मन् ! आप तो आज ही पाण्डवों के पास पहुंच जावें- विलम्ब न करें ॥२०॥

स तं सत्कृत्य कौरव्यः प्रेषयामास पांडवान् ।
सभा मध्ये समाहूय संजयं वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि पुरोहितयाने एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

कुरु-वंश-श्रेष्ठ, धृतराष्ट्र ने उस पुरोहित का आदर करके उस को विदा किया और सभा के मध्य में सञ्जय को बुलाकर कहा—

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सञ्जययानपर्व में पुरोहित के लौट आने का इक्कीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

बाईसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

आप्तानाहुः संजय पांडुपुत्रानुपप्लव्ये तान् विजानीहि गत्वा
अजातशत्रुं च सभाजयेथा दिष्ट्यानघस्थानमुपस्थितस्त्वम्

धृतराष्ट्र कहने लगा— हे सञ्जय! तुम उपप्लव्य नामक नगर में जाकर पाण्डवों से मिलो और उनसे बड़े आदर के साथ कहो, कि बड़े हर्ष की बात है, कि तुम तय्यार होकर इस परिस्थिति में पहुंच गए हो ॥१॥

सर्वान्वदेः संजय स्वस्तिमत् यतःकृच्छ्रं वासमतदर्हानिरुष्य
तेषां शांतिर्विद्यतेस्मासु शीघ्रं मिथ्यापेतानामुपकारिणां सतां

हे सञ्जय! तुम उनके पास जाकर हमारी कुशल सूचित करना और उनकी कुशल पूछना। वे वनवास के योग्य नहीं थे, तो भी उन्होंने वनवास पूरा कर लिया है। इन निष्कपट उपकारी सज्जन पाण्डवों का अब भी हम पर क्रोध नहीं है ॥२॥

नाहं क्वचित्संजय पांडवानां मिथ्यावृत्तिं कांचन जात्वपश्यम्
सर्वांश्रियन्त्वात्मवीर्येण लब्ध्वा पर्याकार्षुः पांडवा मह्यमेव

हे सञ्जय! मैं ने पाण्डवों की कभी कोई दुर्वृत्ति नहीं देखी। इन पाण्डवों ने अपने पराक्रम से सारी लक्ष्मी प्राप्त करके भी मेरे अधीन कर दी थी ॥३॥

दोषंह्येषां नाध्यगच्छं परीच्छन्नित्यं कंचिद्येन गर्हेय पार्थान्
धर्मार्थाभ्यां कर्म कुर्वन्ति नित्यं सुखप्रिये नानुरुध्यन्ति कामात्

में प्रयत्न करने पर भी इनका कोई दोष नहीं देख सका, जिससे इनकी कोई निन्दा करता। ये धर्म और अर्थ के अनुसार नित्य काम करते हैं और किसी भी कामना या सुख के प्रेम से धर्म का परित्याग नहीं करते हैं ॥४॥

घर्मं शीतं क्षुत्पिपासे तथैव निद्रां तन्द्रीं क्रोधहर्षौ प्रमादम्
धृत्या चैव प्रज्ञया चाभिभूय धर्मार्थयोगान्प्रयतन्ति पार्थाः

ये पाण्डव, ग्रीष्म, शीत, भूख, प्यास, निद्रा, तन्द्रा, (ऊंघना) क्रोध, हर्ष, प्रमाद को धैर्य और बुद्धि से जीत कर धर्मार्थ सिद्धि के कार्यों को करते रहते हैं ॥५॥

त्यजन्ति मित्रेषु धनानि काले न संवासाज्जीर्यति तेषु मैत्री
यथार्हमानार्थकरा हि पार्थस्तेषां द्वेष्टा नास्त्याजमीढस्य पक्षे
अन्यत्र पापाद्विषमान्मंदबुद्धेर्दुर्योधनात् क्षुद्रतराच्च कर्णात्
तेषां हीमौ हीनसुखप्रियाणां महात्मनां संजनतो हि तेजः

ये समय पर मित्रों के निमित्त धन का व्यवहार करते हैं और बहुत दिन तक न मिलने पर भी इनकी मित्रता क्षीण नहीं होती है। ये कुन्ती-पुत्र, पूज्य व्यक्ति के योग्य उसकी पूजा करते हैं। अजमीढ़-वंशी क्षत्रियों के वश में तो मूर्ख, पापाचारी, हठी दुर्योधन तथा क्षुद्र कर्ण को छोड़कर इन पाण्डवों का कोई विरोधी दृष्टि गोचर होता नहीं है। ये दोनों कर्ण और दुर्योधन ही सुख से हीन, प्रिय पुत्रादि से बिछुड़े हुए, महात्मा पाण्डवों का कोप बढ़ाते रहते हैं ॥६-७॥

उत्थानवीर्यः सुखमेधमानो दुर्योधनः सुकृतं मन्यते तत्
तेषां भागं यच्चमन्येत बालः शक्यं हर्तुं जीवतां पांडवानाम्

सुख में वृद्धि को प्राप्त हुआ, दुर्योधन, आरम्भमें ही पराक्रम दिखा सकता है। यह मूर्ख तो, जीवित पाण्डवों का भाग अपहरण कर लेना सरल समझता है ॥८॥

यस्यार्जुनः पदवीं केशवश्च वृकोदरः सात्यकोऽजातशत्रोः
माद्रीपुत्रौ सृंजयाश्चापि यान्ति पुरायुद्धात्साधुतस्यप्रदानम्

जिस धर्मराज के अनुयायी अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि नकुल, सहदेव तथा सृञ्जय क्षत्रिय हैं, उस युधिष्ठिर के भाग को तो युद्ध से पूर्व ही दे देना चाहिए ॥९॥

स ह्येवैकः पृथिवीं सव्यसाची गांडीवधन्वाप्रणुदेद्रथस्थः
तथा जिष्णुः केशवोप्यप्रधृष्यो लोकत्रय स्याधिपतिर्महात्मा

रथ में बैठा हुआ महारथी, गाण्डीव धनुपधारी, सव्यसाची, अर्जुन अकेला ही इस पृथिवी को कम्पायमान कर सकता है। इसी तरह विजय-शील, दुर्धर्ष, तीनों लोकों का अधिपति, महात्मा कृष्ण भी उनके ही पक्ष में हैं ॥१०॥

तिष्ठेत कस्तस्य मर्त्यः पुरस्ताद्यः सर्वलोकेषु वरेण्य एकः
पर्जन्यघोषान् प्रवपन् शरौघान् पतंगसंघानिव शीघ्रवेगान्

जो सारे लोकों में सर्व-श्रेष्ठ है, उस मनुष्य (अर्जुन) के सम्मुख युद्ध में कौन ठहर सकता है। यह मेघ के समान गर्जते हुए शीघ्रगामी पक्षि-समूहों की तरह बाणों के समूह का छोड़ने वाला है ॥११॥

दिशंह्युदीचीमपिचोत्तरान् कुरून् गाण्डीवधन्वैकरथो जिगाय
धनं चैषामाहरत्सव्यसाची सेनानुगान् द्रविडांश्चैव चक्रे

गाण्डीव धनुष-धारी अकेले ही अर्जुन ने उत्तर दिशा और कुरुदेशों को जीत लिया था। इन सबका धन अर्जुन ही छीन लाया और इसी ने द्रविणों को अपनी सेना का अनुगामी बनाया ॥१२॥

यश्चैव देवान् खांडवे सव्यसाची गाण्डीवधन्वाप्रजिगायसेन्द्रान्
उपाहरत्पाण्डवो जातवेदसे यशोमानं वर्धयन्पाण्डवानाम् १३

गाण्डीव धनुष के धारण करने वाले अर्जुन ने खाण्डव वन में इन्द्र के सहित देवों को भी जीत लिया था। इस पाण्डु-पुत्र पाण्डवों का यश और मान बढ़ाते हुए, अग्नि को खाण्डव वन को जलाने के लिये प्रदान कर दिया ॥१३॥

गदाभृतांनास्तिसमोत्रभीमाद्धस्त्यारोहोनास्तिसमश्चतस्य
रथेऽर्जुनादाहुरहीनसेनं बाह्वोर्बलेनायुतनागवीर्यम् ॥१४॥

भीम के समान कोई गदाधारी नहीं है और न इसके समान कोई हाथी का सवार है। रथ में बैठकर युद्ध करने में भी यह अर्जुन से कम नहीं है। बाहुबल मे इसको दश सहस्र हाथी के बल से युक्त बताया ज ता है ॥१४॥

सुशिक्षितः कृतवैरस्तरस्वी दहेत् क्षुद्रांस्तरसा धार्तराष्ट्रान्।
सदात्यमर्षी न बलात्स शक्यो युद्धे जेतुं वासवेनापि साक्षात्

यह भीम युद्धविद्या का पण्डित और बैर को भूलता नहीं है। यह तेजस्वी अपने वेग से सारे क्षुद्र दुर्योधनादिकों को भस्म कर डालेगा। यह स आवेश में ही भरा रहता है। इसको युद्ध में इन्द्र भी नहीं जीत सकता है ॥१५॥

सुचेतसौबलिनौ शीघ्रहस्तौ सुशिक्षितौ भ्रातरौ फाल्गुनेन।
श्येनौयथापक्षिपूगान् रुजन्तौ माद्रीपुत्रौ शेषयेतां न शत्रून्

बड़े सावधान, बलवान, शीघ्र वेगधारी (फुर्तीले) अर्जुन से युद्ध विद्या के सीखने वाले, दोनों भाई नकुल सहदेव हैं। ये माद्री-पुत्र, पक्षि समूह को बाज की तरह शत्रु को कभी जीवित नहीं छोड़ते हैं ॥१६॥

एतद्बलं पूर्णमस्माकमेवं यत्सत्यं तान्प्राप्य नास्तीति मन्ये।
तेषां मध्ये वर्त्तमानस्तरस्वी धृष्टद्युम्नः पाण्डवानामिहैकः

परन्तु सत्य तो यह है, कि हमारी इतनी विशाल सेना उनके सन्मुख नहीं के बराबर है। उन पाण्डवों के पास एकही वेगशील धृष्टद्युम्न बड़ा बली है ॥१७॥

सहामात्यः सोमकानां प्रबर्हः संत्यक्तात्मापाण्डवार्थेश्रुतोमे
अजातशत्रुंप्रसहेतकोन्यो येषांसस्यादग्रणीर्वृष्णिसिंहः॥१८॥

मुझे यह सब मालूम है, कि यह सोमकवंश में श्रेष्ठ धृष्ट-द्युम्न पाण्डवों के लिए मन्त्रियों सहित जीवन देने को भी तय्यार हो चुका है। जिसकी सेना में प्रधान वृष्णि-सिंह श्रीकृष्ण हैं- उस युधिष्ठिर को युद्ध में कौन सह सकता है ॥१८॥

सहोषितश्चरितार्थो वयस्थो मात्स्येयानामधिपो वै विराटः ।
स वै सपुत्रः पाण्डवार्थे च शश्वद्युधिष्ठिरे भक्त इति श्रुतं मे

एक वर्ष तक साथ रहा हुआ, उपकृत, तरुण, मत्स्य वीरों का अधिपति राजा विराट भी अपने पुत्र के साथ राजा युधिष्ठिर का भक्त हो रहा है- यह मैंने सुना है ॥१६॥

अवरुद्धा रथिनः केकयेभ्यो महेष्वासा भ्रातरः पंच संति ।
केकयेभ्यो राज्यमाकांक्षमाणा युद्धार्थिनश्चानुवसंति पार्थान्

केकय देश से बाहर निकाले हुए, पांच भाई बड़े महारथी और महाधनुर्धर हैं। ये केकय देश का राज्य चाहते हैं, इसी से युद्ध करने की इच्छा से पाण्डवों के साथ मिले हुए हैं ॥२०॥

सर्वांश्चवीरान्पृथिवीपतीनां समागतान्पाण्डवार्थेनिविष्टान् ।
शूरानहंभक्तिमतःशृणोमि प्रीत्यायुक्तान् संश्रितान् धर्मराजम्

अनेक राजाओं के अनेक महावीर, पाण्डवों की सहायता के लिए वहाँ आए हैं। मैं तो यह सुन रहा हूं, कि वे बड़े शूरवीर और बड़े प्रेम से धर्मराज के अनुयायी हैं ॥२१॥

गिर्याश्रया दुर्गनिवासिनश्च योधाः पृथिव्यां कुलजातिशुद्धाः
म्लेच्छाश्चनानायुधवीर्यवन्तः समागतापाण्डवार्थेनिविष्टाः

पर्वतों और दुर्गों के निवासी, पृथिवी पर कुल जाति के अभिमानी, योद्धा तथा अनेक आयुधधारी, महापराक्रमी म्लेछ, पाण्डवों के लिए वहां आकर सेना में प्रविष्ट हो गए हैं ॥२२॥

पाण्ड्यश्च राजा समितीन्द्रकल्पो योधप्रवीरैर्बहुभिः समेतः।
समागतः पाण्डवार्थे महात्मा लोकप्रवीरोऽप्रतिवीर्यतेजाः

पांड्य देश का राजा युद्ध में इन्द्र के समान है। यह अनेक उत्तम २ योद्धाओं के तुल्य है।लोक प्रसिद्ध वीर, अत्यन्त तेजस्वी, यह महात्मा भी पाण्डवों की सहायता को आ गया है॥२३॥

अस्त्रं द्रोणादर्जुनाद्वासुदेवात्कृपाद्भीष्माद्येनवृतंशृणोमि।
यंतंकार्ष्णिप्रतिममाहुरेकं ससात्यकिः पाण्डवार्थे निविष्टः

जिसने अस्त्र विद्या, अर्जुन, श्रीकृष्ण, कृप और भीष्म से सीखी है और जिसको श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के तुल्य माना जाता है, वह सात्यकि भी पाण्डवों के लिए सेना निवेश में पहुंच चुका है॥२४॥

उपाश्रिताश्चेदिकरूषकाश्च सर्वोद्योगैर्भूमिपालाः समेताः।
तेषां मध्येसूर्यमिवातपंतं श्रियावृतंचेदिपतिज्वलन्तं॥२५॥
अस्तंभनीयंयुधिमन्यमानो ज्याकर्षतां श्रेष्ठतमंपृथिव्याम्।
सर्वोत्साहं क्षत्रियाणां निहत्य प्रसह्य कृष्णस्तरसासंममर्द

चेदि और करूषक देश के सारे भूमिपाल इकट्ठे ही जिसके अधीन थे। उन राजाओं में सूर्य की तरह प्रकाशमान, श्रीयुक्त, देदीप्यमान, युद्ध में अपने को अप्रतिहत शक्ति मानने वाले, पृथिवी पर धनुष धारियों में सर्वश्रेष्ठ, चेदिपति शिशुपाल को सारे क्षत्रियों का उत्साह नष्ट करके श्रीकृष्ण ने अपने वेग से मसल डाला॥२५-२६॥

यशोमानौवर्धयन्पाण्डवानां पुराभिनच्छिशुपालंसमीक्ष्य ।
यस्य सर्वे वर्धयंतिस्ममानं करूषराजप्रमुखानरेन्द्राः॥२७॥
तमसह्यं केशवं तत्रमत्वा सुग्रीवयुक्तेन रथेन कृष्णम् ।
संप्राद्रवंश्चेदिपतिंविहाय सिंहंदृष्ट्वा क्षुद्रमृगा इवान्ये ॥२८॥

पूर्व में पाण्डवों के यश और मान को बढ़ाते हुए, श्रीकृष्णने शिशुपाल को विरोधी देख कर नष्ट कर दिया। जिस शिशुपाल के करूषक देश के मुख्य २ राजा मान को बढ़ाया करते थे, उस चेदिपति शिशुपाल को छोड़ कर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सुग्रीव आदि अश्वों से युक्त रथ में बैठे हुए श्रीकृष्णको असह्य मानकर सिंह को देखकर मृगों की भांति कौन राजा नहीं भाग गए ॥२७-२८॥

यस्तं प्रतीपस्तरसाप्रत्युदीयादाभासमानो द्वैरथे वासुदेवम्
सोऽशेत कृष्णेन हतः परासुर्वातेनेवोन्मथितः कर्णिकारः॥

युद्ध में श्रीकृष्ण के विजय की अभिलाषा रखने वाला, श्रीकृष्ण का विरोधी, शिशुपाल ही बड़े वेग से श्रीकृष्ण के प्रतिपक्ष में आया। वही शिशुपाल, वायु से उखाड़े हुए कनेर के वृक्ष को तरह श्रीकृष्ण से मारा हुआ भूमि में सो गया ॥२९॥

पराक्रमं मे यदवेदयन्त तेषामर्थे संजय केशवस्य ।
अनुस्मरंस्तस्यकर्माणिविष्णोर्गावल्गणेनाधिगच्छामिशान्तिम्।

हे गवल्गण के पुत्र! सञ्जय! पाण्डवों की विजय के लिए श्रीकृष्ण के प्रयत्न को जो गुप्तचरों ने मुझे आकर बताया है।

उन श्रीकृष्ण के कर्मों का स्मरण करके मुझे शान्ति प्राप्त नहीं होती है ॥३०॥

न जातु ताञ्छत्रुरन्यः सहेत येषां स स्यादग्रणीर्वृष्णिसिंहः
प्रवेपते मे हृदयं भयेन श्रुत्वा कृष्णावेकरथे समेतौ॥३१॥

उस राजा की शक्ति को कोई नहीं सह सकेगा, जिनका सेना का अग्रणी स्वयं वृष्णिसिंह श्रीकृष्ण है। एक रथ में इकट्ठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन को सुनकर तो भय से मेरा हृदय कांपने लग जाता है ॥३१॥

न चेद्गच्छेत्संगरं मंदबुद्धिस्ताभ्यां लभेच्छर्म तदा सुतो मे
नोचेत्कुरून्सञ्जय निर्दहतामिन्द्राविष्णू दैत्यसेनां यथैव॥३२॥

हे सञ्जय! यदि मन्द बुद्धि मेरा पुत्र दुर्योधन, इन दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुन से युद्ध नहीं छेड़े, तो ही कल्याण प्राप्त कर सकता है। नहीं तो दैत्य सेना को इन्द्र और विष्णु की तरह ये इन्द्र विष्णु के अवतार अर्जुन और श्रीकृष्ण, कौरवों को दग्ध किए विना नहीं छोड़ेंगे ॥३२॥

मतोहिमेशक्रसमोधनञ्जयः सनातनो वृष्णिवीरश्च विष्णुः।
धर्मारामोह्रीनिषेवस्तरस्वी कुंतीपुत्रः पाण्डवोऽजातशत्रुः।

मैं अर्जुन को इन्द्र और वृष्णि वीर श्रीकृष्ण को सनातन पुरुष भगवान् विष्णु मानता हूं। लज्जाशील, वेगवान् कुन्ती-पुत्र पाण्डव राजा युधिष्ठिर धर्म का पुत्र है ॥३३॥

दुर्योधनेननिकृतोमनस्वी नोचेत्क्रुद्धः प्रदहेद्धार्तराष्ट्रान् ।
नाहं तथाह्यर्जुनाद्वासुदेवाद्भीमाद्वाहंयमयोर्वाबिभेमि
यथाराज्ञः क्रोधदीप्तस्यसूत मन्योरहंभीततरः सदैव ।
महातपा ब्रह्मचर्य ण युक्तः संकल्पोयं मानसस्तस्यसिध्येत्

दुर्योधन ने मनस्वी युधिष्ठिर का बड़ा अपमान किया है। यह कहीं कुपित होकर मुझ धृतराष्ट्र के पुत्रोंको दग्ध नहीं कर डाले हे सञ्जय ! मैं इतना अर्जुन, श्रीकृष्ण, भीम, नकुल, सहदेव से नहीं डरता हूं। जितना क्रोध से प्रज्वलित, राजा युधिष्ठिर के क्रोध से डरता हूँ, यह बड़ा तपस्वी ब्रह्मचर्य से युक्त है। इसका तो मानसिक सङ्कल्प ही सिद्ध हो सकता है ॥३४-३५॥

तस्य क्रोधं संजयाहंसमीक्ष्य स्थानेजानन्भृशमस्म्यद्यभीतः
सगच्छशीघ्रं प्रहितो रथेन पांचालराजस्य चमूनिवेशनम्३६

हे सञ्जय ! अब मुझे मालूम हो रहा है, कि उसका क्रोध जगने वाला है। उसका क्रोध करना उचित भी है। आज मैं इतना उसी के क्रोध से डर रहा हूं। अब तू यहाँ से भेजा हुआ, रथ से शीघ्र पाञ्चालराज द्रुपद की सेना में पहुँच जा॥३६॥

अजातशत्रुं कुशलंस्मपृच्छेः पुनः पुनः प्रीतियुक्तंवदेस्त्वम् ।
जनार्दनंचापि समेत्य तात महामात्रं वीर्यवतामुदारम्
अनामयं मद्वचनेनपृच्छेधृतराष्ट्रः पाण्डवैः शांतिमीप्सुः
नतस्यकिञ्चिद्वचनंनकुर्यात् कुन्तीपुत्रोवासुदेवस्यसूत॥३८॥

हे सञ्जय ! तू प्रथम अजातशत्रु युधिष्ठिर से बार २ कुशल पूछकर फिर प्रेमयुक्त बातें बताना। हे तात ! इसके अनन्तर महानुभाव पराक्रमियों में बड़े उदार श्रीकृष्ण से मिलना और मेरी ओर से उनसे भी कुशल पूछना और कहना कि धृतराष्ट्र पाण्डवों के साथ सन्धि चाहता है। हे सूत ! श्रीकृष्ण का कोई ऐसा वचन नहीं है, जिसको कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर नहीं मान लेता हो ॥३८॥

प्रियश्चैषामात्मसमश्चकृष्णो विद्वांश्चैषां कर्मणि नित्ययुक्तः ।
समानीतान्पाण्डवान् सृंजयांश्च जनार्दनंयुयुधानंविराटम्
अनामयंमद्वचनेनपृच्छेः सर्वांस्तथाद्रौपदेयांश्च पंच ।

इन पाण्डवों को श्रीकृष्ण आत्मा के समान अत्यन्त प्रिय है। यह विद्वान् कृष्ण भी इनके कार्य की सिद्धि के लिए नित्य प्रयत्न करता रहता है। इकट्ठे हुए पाण्डव, सृञ्जय, जनार्दन, युयुधान विराट तथा पांचों द्रौपदी-पुत्रों से मेरी ओर से कुशल पूछना ३९

यद्यत्तत्रप्राप्तकालंपरेभ्यस्त्वमन्येथाभारतानांहितञ्च ।
तद्भाषेथाः सञ्जय राजमध्ये न मूर्च्छयेद्यन्नच युद्धहेतुः ॥४०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सञ्जयधृतराष्ट्र-
संदेशे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

हे सञ्जय ! उस समय प्रतिपक्षियों द्वारा जो२ कुछ कहा जावे और जो उसको भरतवंश का हितकारी माने, तो उसका उत्तर तू राज सभा में दे सकता है, परन्तु तेरा वचन क्रोध के बढ़ाने वाला न हो और न युद्ध की भूमिका रचाने वाला हो ॥४०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सञ्जययानपर्व में धृतराष्ट्र संदेश का बाईसवां अध्याय पूरा हुआ।

तेइसवाँ अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धृतराष्ट्रस्य संजयः ।

उपप्लव्यं ययौ द्रष्टुं पाण्डवानमितौजसः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! राजा धृतराष्ट्र के वचन सुनकर सञ्जय अत्यन्त तेजस्वी पाण्डवों से मिलने के लिए उपप्लव्य नगर में पहुंचा ॥१॥

स तु राजानमासाद्य कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।

अभिवाद्य ततः पूर्वं सूतपुत्रोऽभ्यभाषत ॥२॥

सूतपुत्र सञ्जय ने कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर के पास पहुंच कर प्रथम प्रणाम किया और फिर कहा ॥२॥

गावल्गणिः सञ्जयः सूतसूनुरजातशत्रुमवदत्प्रतीतः ।

दिष्ट्या राजंस्त्वामरोगं प्रपश्ये सहायवन्तं च महेन्द्रकल्पम्

गवल्गण का पुत्र सूत, सञ्जय बड़ी, प्रसन्नता से अजातशत्रु धर्मराज से कहने लगा। हे राजन्! इन्द्र के तुल्य आपको सहायताओं से युक्त और नीरोग देख कर आज मैं बड़ा ही आनन्दित हो रहा हूं ॥३॥

अनामयं पृच्छति त्वांबिकेयो वृद्धो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी ।

कच्चिद्भीमः कुशली पाण्डवाग्र्यो धनञ्जयस्तौ चमाद्रीत ज



महाराज धृतराष्ट्र को महात्मा विदुर का धर्मोपदेश
महाभारत उद्योगपर्व अध्याय ३३।८ पृष्ठ ५७६

हे भारत! बुद्धिमान् अम्बिकापुत्र वृद्ध राजा धृतराष्ट्र ने आपकी कुशलता पूछी है और पाण्डव श्रेष्ठ भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तो प्रसन्न हैं ॥४॥

कच्चित्कृष्णा द्रौपदी राजपुत्री सत्यव्रता वीरपत्नी सपुत्रा।
मनस्विनी यत्र च वाञ्छसि त्वमिष्टान्कामान्भारत स्वस्तिकामः

हे भरतर्षभ! सत्यव्रत—परायण, वीरपत्नी, पुत्रवती, मनस्विनी राजपुत्री द्रौपदी कुशल से तो है, जिसका तुम कल्याण चाहते हो और जिसके सुख के लिए ही तुम इष्ट भोगों की अभिलाषा कर रहे हो ॥५॥

युधिष्ठिर उवाच—

गावल्गणे सञ्जय स्वागतं ते प्रियामहे ते वयं दर्शनेन।
अनामयंप्रतिजाने तवाहं सहानुजैः कुशली चास्मि विद्वन् ॥६॥

युधिष्ठिर बोले—हे गवल्गण केपुत्र सञ्जय! तेरा स्वागत हो। हम तेरे दर्शन से बड़े ही प्रसन्न हुए हैं। हे विद्वन्! मैं अनुजों के साथ बड़ी कुशलता से हूँ ॥६॥

चिरादिदं कुशलं भारतस्य श्रुत्वा राज्ञः कुरुवृद्धस्य सूत।
मन्ये साक्षाद् दृष्टमहं नरेन्द्रं दृष्ट्वैव त्वांसञ्जयप्रीतियोगात्

हे सूत! हमने कुरुवंश में वृद्ध, भरतवंश श्रेष्ठ, राजा धृतराष्ट्र की कुशलता आज बहुत दिनों में सुनी है। हे सञ्जय! आज तुमको प्रीति में मग्न देखकर यही प्रतीत हो रहा है, कि हमने धृतराष्ट्र के ही दर्शन कर लिए ॥७॥

पितामहो नः स्थविरो मनस्वी महाप्राज्ञः सर्वधर्मोपपन्नः ।
स कौरव्यः कुशली तात भीष्मो यथापूर्वं वृत्तिरस्त्यस्य कच्चित्

हे तात ! हमारा पितामह, वृद्ध, मनस्वी महाबुद्धिमान, सब धर्मों से युक्त, कुरुवंश श्रेष्ठ भीष्म कुशल तो हैं। वह हम पर पूर्व की तरह स्नेह तो रखता है ॥८॥

कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो वैचित्रवीर्यः कुशली महात्मा ।
महाराजो बाल्हिकः प्रातिपेयः कच्चिद्विद्वान् कुशली सूतपुत्र

विचित्रवीर्य के पुत्र महात्मा राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रों के सहित आनन्द युक्त तो हैं। हे सूतपुत्र विद्वन ! प्रतीप पुत्र महाराज बाह्लिक भी प्रसन्न होंगे ॥९॥

ससोमदत्तःकुशलीतातकच्चिद्भूरिश्रवाः सत्यसन्धः शलश्च ।
द्रोणः सपुत्रश्च कृपश्च विप्रो महेष्वासाः कच्चिदेतेप्यरोगाः१०

हे सूत ! सोमदत्त, भूरिश्रवा सत्यसन्ध, शल द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि महाधनुर्धर आनन्द से तो हैं ॥१०॥

सर्वे कुरुभ्यः स्पृहयन्ति सञ्जय धनुर्धराये पृथिव्यांप्रधानाः ।
महाप्रज्ञाःसर्वशास्त्रावदाता धनुभृतांमुख्यतमाः पृथिव्याम्

हे सञ्जय ! पृथिवी पर प्रधान ये धनुर्धर, कौरवों परप्रेम तो रखते हैं। ये सारे ही बुद्धिमान, सब शास्त्रों में कुशल और धनुष-धारियों में मुख्य हैं ॥११॥

कच्चिन्मानंताततलभन्तएते धनुर्भृतः कच्चिदेतेप्यरोगाः ।
येषांराष्ट्रे निवसतिदर्शनीयो महेष्वासः शीलवान् द्रोणपुत्रः

जिन कौरवों के राष्ट्र में ये धनुर्धर निवास कर रहे हैं, ये उन कौरवों से समय पर मान प्रतिष्ठा तो पाते रहते हैं। ये सब वीर कुशल से तो हैं। बड़ा सुन्दर, महा धनुर्धर, शीलवान् द्रोण-पुत्र आनन्द में है? ॥१२॥

वैश्यापुत्रः कुशली तात कच्चित् महाप्राज्ञो राजपुत्रो युयुत्सुः।
कर्णोमात्यःकुशलीतातकच्चित्सुयोधनोयस्यमन्दोविधेयः १३

हे तात! वैश्यकन्या-पुत्र, महाप्राज्ञ, राज-पुत्र, युयुत्सु आनन्द में है? हे तात? अमात्य कर्ण, सकुशल है, जो कर्ण सुयोधन को अनुचित मार्ग पर ले जाता रहता है॥१३॥

स्त्रियो वृद्धा भारतानांजनन्यो महानस्योदासभार्याश्चसूद।
वध्वः पुत्राभागिनेयाभगिन्यो दौहित्रावाकच्चिदप्यव्यलीकाः

भरत वंशी क्षत्रियों की उत्पादिका माता, वृद्ध स्त्रियां, रसोई बनाने वाली, दासी, वधू, पुत्र, भागिनेय (भानजे) बहन, पुत्री के पुत्र, (दौहिते) आदि सब निष्कपट व्यवहार तो रखते हैं॥

कच्चिद्राजाब्राह्मणानांयथावत् प्रवर्ततेपूर्ववत्तातवृत्तिम्।
कच्चिद्दायादान्मामकान्धार्तराष्ट्रो द्विजातीनांसञ्जयनोपहन्ति

हे तात! राजा दुर्योधन, पूर्व की तरह अब भी ब्राह्मणों को वृत्ति प्रदान करता रहता है या नहीं, हे सञ्जय! कहीं मेरी दी हुई वृत्ति के भोगने वाले क्षत्रिय और ब्राह्मणों की वृत्ति का दुर्योधन ने उपघात तो नहीं कर दिया है॥१४॥

कच्चिद्राजाधृतराष्ट्रः सपुत्र उपेक्षते ब्राह्मणातिक्रमान्वै।
स्वर्गस्यकच्चिन्नतथावर्त्मभूतामुपेक्षते तेषु सदैव वृत्तिम्॥१६॥

राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रों-सहित, ब्राह्मणों के अति-क्रमण की उपेक्षा तो नहीं करते हैं तथा स्वर्ग की सोपान भूत ब्राह्मणों की वृत्ति के विषय में तो राजा धृतराष्ट्र की कोई उपेक्षा नहीं है ? ॥१६॥

एतज्ज्योतिश्चोत्तमंजीवलोके शुक्लं प्रजानां विहितं विधात्रा ।
तेचेद्दोषंननियच्छन्तिमंदाः कृत्स्नोनाशोंभविताकौरवाणाम्

ब्राह्मणों की वृत्ति का उपघात न करना ही परलोक में प्रकाश कारी है और इस लोक में यश का कर्ता है। यह नियम विधाता ने ही प्रजा के हित के लिए रचा है। यदि बुद्धिहीन कौरव, इस दोष का मार्जन नहीं करेंगे, तो उनका बिल्कुल नाश हो जावेगा।

कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो बुभूषते वृत्तिममात्यवर्गे ।
कच्चिन्नभेदेनजिजीविषन्ति सुहृद्रूपादुर्हृदश्चैकमत्यात्॥१८

क्या राजा धृतराष्ट्र, पुत्र सहित, मन्त्रि वर्ग की जीविका का ध्यान तो रखता है ? कहीं वे सुहृद् बने हुए एक मत से शत्रु से मिल कर जीविका करते हुए दुर्जनता का व्यवहार तो नहीं करते हैं ॥१८॥

कच्चिन्नपापंकथयन्ति तात तेपाण्डवानांकुरवः सर्व एव ।
द्रोणः सपुत्रश्चकृपश्चवीरो नास्मासुपापनिवदन्तिकच्चित् १६

हे तात ! वे सारे कौरव हमारा कोई दोष तो नहीं बताते हैं। द्रोण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य हमारे किसी अपराध का उद्घाटन तो नहीं करते हैं? ॥१६॥

कच्चिद्राज्येधृतराष्ट्रं सपुत्रंसमेत्याहुः कुरवः सर्व एव।
कच्चिद्दृष्ट्वा दस्युसंघान्समेतान्स्मरन्तिपार्थस्ययुधांऽ प्रणेतुः

अपने पुत्रों सहित, धृतराष्ट्र के पास आकर राज्य भर के सारे कौरव बातचीत तो करते हैं। क्या चोर लुटेरों के संघों को देखकर कौरव कभी युद्ध करने में कुशल अर्जुन का भी स्मरण करते हैं? ॥२०॥

मौर्वीभुजाग्रप्रहितान्स्मतात दोधूयमानेन धनुर्धरेण।
गाण्डीवनुन्नां स्तनयित्नुघोषानजिह्मगान्कच्चिदनुस्मरन्ति

हे तात! बांकी धनुष की डोरी द्वारा धनुष को कम्पाते हुए, धनुषधारी अर्जुन से फैंके हुए, मेघ के समान शव्दकारी, गाण्डीव धनुष के तीखे बाणों को कभो कौरव याद करते हैं या नहीं ॥२१

न चापश्यं कंचिदहं पृथिव्यां योधं समं वाधिकमर्जुनेन।
यस्यैकषष्टिर्निशितास्तीक्ष्णधाराः सुवाससःसंमतोहस्तवापः

मैंने तो पृथिवी पर अर्जुन के बराबर या उससे अधिक योद्धा देखा नहीं है। जिसके धनुष से तीक्ष्ण धारा वाले, उत्तम पुंख धारी, तीक्ष्ण इकसठ बाण निकलते हैं और जो उत्तम हस्त-त्राण-धारी है ॥२२॥

गदापाणिर्भीमसेनस्तरस्वी प्रवेपयञ्छत्रुसंघाननीके।
नागःप्रभिन्नइवनड्वलेषु चंक्रम्यतेकच्चिदेनंस्मरन्ति ॥२३॥

हाथ में गदा लिए हुए, वेगशील, सेना में शत्रु सङ्घ को कम्पित करते हुए, और तृण प्रदेश में मदोन्मत्त हाथी की तरह घूमते हुए, भीमसेन को कभी कोई याद करता है या नहीं ॥२३॥

माद्रीपुत्रः सहदेवः कलिंगान् समागतानजयद्दन्तकूरे ।
वामेनास्यन्दक्षिणेनैवयोव सहाबलंकच्चिदेनं स्मरन्ति ॥२४॥

दांत चाव २ कर प्रवृत्त हुए, युद्ध में प्र हुए, माद्री-पुत्र सहदेव ने कलिङ्ग देशोद्भव क्षत्रियों को दायें बायें दोनों ओर से बाण फैंक कर जीता था, उस सहदेव को कोई याद करता है या नहीं ॥२४॥

पुरा जेतुं नकुलःप्रेषितोयं शिबींस्त्रिगर्तान्सञ्जयपश्यतस्ते ।
दिशंप्रतीचींवशमानयन्मे माद्रीसुतंकच्चिदेनं स्मरन्ति ॥२५॥

हे सञ्जय ! तेरे देखते २ पूर्वकाल में शिबि और त्रिगर्तों के जीतने को नकुल को भेजा था, जिस नकुल ने पश्चिम दिशा को जीत कर मेरे अधीन कर दिया था, उस माद्री-पुत्र नकुल को कोई याद करता है या नहीं ॥२५॥

पराभवोद्वैतवने य आसीत् दुर्मंत्रिते घोषयात्रागतानाम् ।
तत्रम न्दाञ्छत्रुवशंप्रयातानमोचयद्भीमसेनो जयश्च ॥२६॥

कुत्सित मन्त्रणा करके द्वैतवन में घोषयात्रा के निमित्त पहुंचे हुए, दुर्योधनादि का गन्धर्वों से पराजय हो गया था। वहां उन सारे मन्द बुद्धियों को भीम और अर्जुन ने ही छुड़ाया था।

अहंपश्चादर्जुनमभ्यर क्ष माद्रीपुत्रौभीमसेनोप्यरक्षत् ।
गाण्डीवधन्वाशत्रुसंघानुदस्य स्वस्त्यागमत्कच्चिदेनंस्मरन्ति

मैंने अर्जुन के पीछे से आने वाले शत्रुओं से रक्षा की और माद्री पुत्र नकुल, सहदेव तथा भीम ने भी उसकी रक्षा की। गाण्डीव धनुषधारी वह अर्जुन शत्रु समूह का विध्वंस करके बड़े आनन्द के साथ लौट आया, क्या उसको हस्तिनापुर में कभी कोई याद करता है ? ॥ २७ ॥

न कर्मणासाधु नैकेन नूनं सुखं शक्यं वै भवतीह सञ्जय।
सर्वात्मनापरिजेतुं वयंचेन्न शक्नुमोधृतराष्ट्रस्यपुत्रम् ॥२८॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि
युधिष्ठिरप्रश्ने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

हे सञ्जय ! जब हम सारे दान भेदादि से धृतराष्ट्र-पुत्र के जीतने में समर्थ नहीं हैं, तो फिर एक साम उपाय से उसको कैसे सुख-पूर्वक जीत सकते हैं ॥२८॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सञ्जययानपर्व में युधिष्ठिर के प्रश्न का तेईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



चौबीसवां अध्याय

संजय उवाच—

यथारथ मे पांडव तत्थैव कुरुन्कुरुश्रेष्ठ जनं च पृच्छसि
अनामयास्तात मनस्विनस्ते कुरुश्रेष्ठान्पृच्छसि पार्थ यांस्त्वम्

सञ्जय ने कहा— हे पाण्डव-श्रेष्ठ ! जो तुमने कहा—वह ठीक है। जिन कुरुवंशी क्षत्रिय और कुरुवंश के वीरों के विषय में पूछा है, वह भी तुमने कहा-वैसा ही है। हे तात ! युधिष्ठिर ! जिन कुरुश्रेष्ठो की तुम कुशल पूछ रहे हो, वे मनस्वी सब कुशल-पूर्वक हैं ॥१॥

संत्येववृद्धाःसाधवोधार्त्तराष्ट्रे सन्त्येवपापाःपांडवतस्यविद्धि ·
दद्यादृपुभ्योऽपिहि धार्त्तराष्ट्रःकुतोदायांल्लोपयेद्ब्राह्मणानाम्

हे पाण्डव-श्रेष्ठ ! धृतराष्ट्र-पुत्र के पास जहां पापी मनुष्य रहते हैं, वहां उसके पास वृद्ध और साधु पुरुष भी है। धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन, शत्रुओं को भी कुछ देकर ही चलता है, फिर बान्धव और ब्राह्मणों के भाग को कैसे छीन सकता है ॥२॥

यद् युष्माकं वर्त्तते सौनधर्म्यमद्रुग्धेषु द्रुग्धवत्तन्न साधु ।
मित्रध्रुक्स्यात्धृतराष्ट्रःसपुत्रोयुष्मान्द्विषन्सोधुवृत्तोनसाधुः

यह जो द्रोह नहीं करने वाले तुम से क्रूरता कर रहा हैं, बस यही एक अनुचित कार्य करता है। यह धृतराष्ट्र, पुत्र-सहित

साधु आचरण करने वाले तुमसे मित्र-द्रोह कर रहा है, यह बुरी बात है। तुम जैसे साधु पुरुषों से द्रोह करके ही यह असाधु कहला रहा है ॥२॥

नचानुजानातिभृशंचतप्यतेशोचत्यन्तः स्थविरोऽजातशत्रो
शृणोतिहिब्राह्मणानांसमेत्यमित्रद्रोहःपातकेभ्योगरीयान् ।

हे अजातशत्रो! जब इकट्ठे होकर आते हुए ब्राह्मणों से तुम्हारे साथ दुर्योधन का मित्र-द्रोह सुनता है, जो सब पापों से बड़ा पाप है तो यह वृद्ध राजा इसका अनुमोदन नहीं करता है बल्कि दुर्योधन के ऐसे आचरण को सुन कर भीतर ही भीतर जलता रहता है॥३॥

स्मरन्ति तुभ्यं नरदेव संयुगे युद्धे च जिष्णोश्च युधां प्रणेतुः
समुत्कृष्टे दुंदुभिशंखशब्दे गदापाणिं भीमसेनं स्मरन्ति

हे नरदेव! युद्ध के समय आपको और युद्ध के विजयी अर्जुन को अवश्य सारे कौरव याद करते हैं। तथा दुन्दुभि और शंखों के शब्दों के बजाते ही कौरव वीर, गदापाणि भीमसेन का अवश्य स्मरण करते हैं ॥५॥

माद्रीसुतौ चापि रणाजिमध्ये सर्वादिशः संपतंतौ स्मरन्ति ।
सेनां वर्षंतौ शरवर्षैरजस्रं महारथौ समरे दुःप्रकम्पौ ॥६॥

रण के मध्य में सारी दिशाओं में घूम जाने वाले और लगातार बाण वर्षा से शत्रु सेना को ढ़क देने तथा युद्ध में किसी

तरह नहीं घबड़ाने वाले, महारथी माद्री-पुत्र नकुल सहदेव को भी सब याद करते हैं ॥६॥

नत्वेव मन्ये पुरुषस्य राजन्ननागतं ज्ञायते यद्भविष्यम्
त्वं चेनथा सर्वधर्मोपपन्नः प्राप्तः क्लेशं पांडवकृच्छ्ररूपम्

हे राजन्! मनुष्य के सामने नही आये हुए, भविष्य का कुछ पता नहीं लगता है। हे पाण्डव! यही बात है, जो तुम सर्व-गुण सम्पन्न होकर भी इतने क्लेश पा रहे हो। इस तरह के दुःख तुम्हें उठाने पड़ेंगे, इसे क ... जान सकता था ॥७॥

त्वमेवैतत्कृच्छ्रगतश्च भूयः समीकुर्याः प्रज्ञयाऽजातशत्रो
न कामार्थं सन्त्यजेयुर्हि धर्मं पांडोः सुताः एवेन्द्रकल्पाः
त्वमेवैतत्प्रज्ञयाजातशत्रो समीकुर्या येन शर्माप्नुयुस्ते
धार्तराष्ट्राः पाँडवाः सृंजयाश्च ये चाप्यन्ये सन्निविष्टा नरेन्द्र

तुम पाण्डव-पुत्र किसी कामना के वश होकर धर्म को नहीं छोड़ सकते हैं। तुम तो सारे हो इन्द्र के तुल्य तेजस्वी हो। हे अजातशत्रो! कुछ ऐसी शक्ति से चलो, जिससे सन्धि हो जावे और धृतराष्ट्र पुत्र, तुम पाण्डव, सृञ्जय वंशी तथा अन्य इस युद्ध में सम्मिलित हुए राजा, कल्याण प्राप्त कर लें ॥८॥

यन्मां ब्रवीद् धृतराष्ट्रो निशायामजातशत्रो वचनं पिता ते
सहामात्यः सहपुत्रश्च राजन् समेत्य तां वाचमिमां निबोध

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि संजयवाक्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

हे अजातशत्रो ! राजन् ! यहां आते समय धृतराष्ट्र ने अपने मन्त्री और पुत्रों के साथ मुझ से जो कहा था वह कहा है- तुम उस वचन को सुन लो ॥६॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सञ्जययानपर्व में सञ्जय के कथन का चौबीसवां अध्याय पूरा हुआ

पच्चीसवां अध्याय

युधिष्ठिर उवाच—

समागताः पांडवाः सृंजयाश्च जनार्दनो युयुधानो विराटः
यत्ते वाक्यं धृतराष्ट्रानुशिष्टं गावल्गणे ब्रूहितत्सूतपुत्र १

युधिष्ठिर कहने लगा— हे सूतपुत्र ! सञ्जय ! सारे पाण्डव सृञ्जय, श्रीकृष्ण, युयुधान, विराट आ गए हैं। हे गवल्गण के पुत्र ! अब तुम धृतराष्ट्र का शेष कथन इस सभा में स्पष्ट रूप में उपस्थित करो ॥१॥

संजय उवाच—

अजातशत्रुं च वृकोदरंच धनञ्जयं माद्रवतीसुतौं च ।
आमन्त्रये वासुदेवं च शौरिं युयुधानंचेकितानं विराटम् २
पाञ्चालानामधिपं चैव वृद्धं धृष्टद्युम्नंपार्षतंयाज्ञसेनिं ।
सर्वे वाचं शृणुतेमांमदीयांवक्ष्यामि यां भूतिमिच्छन्कुरूणाम्

सञ्जय बोला— अब अजातशत्रु युधिष्ठिर, वृकोदर, भीम धनञ्जय अर्जुन, माद्रीपुत्र नकुल सहदेव, वसुदेवपुत्र, श्रीकृष्ण युयुधान, चेकितान, विराट, पाञ्चलाधिपति वृद्ध द्रुपद, पर्षतवंशी द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, द्रौपदी आदि सब को अपनी ओर प्रवृत्त करके कुरु वंश के हित की इच्छा में यह वचन कह रहा हूं! तुम उसको ध्यान से सुनो ॥२-३॥

शमं राजा धृतराष्ट्रोभिनंदन्नयोजयत् त्वरमाणो रथं मे
स भ्रातृपुत्रस्वजनस्य राज्ञस्तद्रोचतां पांडवानां शमोस्तु ॥

राजा धृतराष्ट्र ने सन्धि का बड़ा अनुमोदन किया है, इसके लिए उसने बड़ा ही शीघ्र मेरा रथ सजवाया। यह राजा अपने बन्धु बान्धव पुत्र स्वजन तथा राजा दुर्योधन का मंगल चाहता हुआ इस शान्ति के पक्ष में है। यह बात पाण्डवों को भी रुचिकर प्रतीत होनी चाहिए। इस प्रकार सब का कल्याण हो सकता है।

सर्वैधर्मैःसमुपेतास्तुपार्थाः संस्थानेनमार्दवेनाजवेन ।
जाताकुलेह्यनृशंसावदान्या ह्रीनिषेवाःकर्मणांनिश्चयज्ञाः ॥५॥

अकारण कोमलता और सरलता के कारण पाण्डव, सारे धर्मों से समन्वित है। ये पाण्डव उग्रताहीन, उदार, उच्चकुल में उत्पन्न हुए, लज्जाशील और कर्मों की निश्चय सिद्धि के प्रकार के जानने वाले हैं ॥५॥

न युज्यते कर्म युष्मासु हीनं स त्वं हि वंस्तादृशं भीमसेनाः।
उद्भासतेह्यंजनबिंदुवन्नच्छुभ्रे वस्त्रे यद्भवेत्किल्बिषंव ॥६॥

तुम लोग, कभी नीच कर्म नहीं कर सकते हो। तुम में मनो बल विद्यमान है। इसी तरह तुम्हारे पास सेना भी भीषण है। तुम यदि थोड़ी भी बुराई करते तो शुभ्रवस्त्र में काजल की रेखा की तरह वह दिखाई दे सकती थी ॥६॥

सर्वक्षयोदृश्यतेयत्रकृत्स्नः पापोदयोनिरयोऽभावसंस्थः ।
कस्तत्र कुर्याज्जातुकर्मप्रजानन्पराजयोयत्रसमोजयश्च ॥७॥

जिस कर्म के करने से सबका स्पष्ट नाश दिखाई दे रहा है वह युद्ध-कर्म, पाप-युक्त, दुखदायी सबको नाम शेष करने वाला है। इस कर्म के परिणाम को जानता हुआ कौन उसको कर सकता है। इसमें तो विजय होना भी पराजय ही है ॥७॥

तेवैधन्यायैःकृतंज्ञातिकार्यं तेवैपुत्राःसुहृदोबान्धवाश्च ।
उपक्रुष्टं जीवितंसंत्यजेयुर्यतः कुरूणांनियतोवैभवःस्यात् ॥८॥

उन वीरों को ही धन्य समझना चाहिए, जिन्होंने अपनी जाति का कार्य कर दिखाया वेही मित्र और बान्धव भी धन्य हैं। यदि पाण्डवों का निन्दित जीवन होता तो तुम अपने निन्दित जीवन को छोड़ देते, जिससे कौरवों को कभी नहीं डिगने वाला ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता ॥८॥

तेचेत्कुरूननुशिष्याथपार्था निर्णीयसर्वान्द्विषतोनिगृह्य ।
समंवस्तज्जीवितंमृत्युनास्यायज्जीवध्वंज्ञातिवधेनसाधु ॥

अपने शिष्यों के साथ तुम पाण्डव, निश्चय करके सारे कौरव शत्रुओं को मार भी लोगे, तो भी तुम्हारा जीवन मृत्यु के

तुल्य ही माना जावेगा क्योंकि तुम जाति बान्धवों का ही वध करके अच्छी तरह जीना चाहते हो ॥९॥

कोह्येव युष्मान्सहकेशवेन सचेकितानान्पार्षत बाहुगुप्तान्
ससात्यकीन्विषहेतप्रजेतु लब्ध्वापि देवान्सचिवान्सहेन्द्रान्

श्रीकृष्ण, चेकितान, सोमवंशी धृष्टद्युम्न की बाहु से सुरक्षित सात्यकि सहित तुम पाण्डवों को इन्द्रसहित देवों की सहायता पाकर भी कोई प्रतिपक्षी वीर जीत नहीं सकता है ॥१०॥

कोवाकुरून्द्रोणभीष्माभिगुप्तानश्वत्थाम्नाशल्यकृपादिभिश्च
रणेविजेतुं विषहेतराजन् राधेयगुप्तान्सहभूमिपालैः ॥११॥

हे राजन्! द्रोण, भीष्म तथा अश्वत्थामा, शल्य, कृपाचार्य आदि एवं अन्य राजाओं के सहित कर्ण से सुरक्षित कौरवों को युद्ध में कौन सह सकता है ॥११॥

महद्बलं धार्त्तराष्ट्रस्यराज्ञः कोवैशक्तोहंतुमक्षीयमाणः।
सोहंजयेचैवपराजयेच निःश्रेयसंनाधिगच्छामिकिंचित्॥१२॥

राजा दुर्योधन की बड़ी विशाल सेना है। कौन ऐसा वीर है, जो अपने को बचाकर इनका नाश कर दे। इस से तो मैं जय या पराजय किसी में भी इस समय कुछ भी कल्याण नहीं देखता हूँ ॥१२॥

कथं हि नीचाइव दौष्कुलेया निर्धर्मार्थं कर्म कुर्युश्च पार्थाः।
सोहंप्रसाद्यप्रणतोवासुदेवं पंचालानामधिपं चैववृद्धम्॥१३॥

पाण्डव, दुष्कुल में उत्पन्न नीच की भांति, धर्म अर्थ से हीन कर्म कैसे कर सकते हैं। मैं म लोगों को प्रसन्न करने के लिए वासुदेव श्रीकृष्ण और वृद्ध पाञ्चालराज को शिर झुकाता हूं॥१॥

कृताञ्जलिः शरणं वः प्रपद्ये कथं स्वस्ति स्यात्कुरुसृञ्जयानाम्
न ह्येवमेवं वचनं वासुदेवो धनञ्जयो वा जातु किञ्चिन्न कुर्यात्

मैं हाथ जोड़ कर तुम्हारा शरण में उपस्थित हूं। अब तो यही बताओ कि कौरव और सृञ्जयों आदि वीरोंका कैसे कल्याण हो सकेगा। मेरे इन वचनों को अर्जुन और श्रीकृष्ण कभी उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखेंगे। वे इस पर कोई कार्यवाही न करें, ऐसा नहीं हो सकता है॥१४॥

प्राणान्दद्याद्याचमानः कुतोऽन्यदेतद्विद्वन्साधनार्थं ब्रवीमि।
एतद्राज्ञो भीष्मपुरोगमस्य मतं यद्वः शान्तिरिहोत्तमा स्यात्

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि
सञ्जयवाक्ये पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

हे विद्वन! यदि कोई इस तरह हाथ जोड़ कर याचना करे तो साधु पुरुष, उस को प्राण दान तक दे सकते हैं। मैने भी तुम से यह वाक्य सन्धि करने को कहे हैं। यही मत भीष्म की अनुमति से राजा धृतराष्ट्र का है। इसी तरह तुम लोगों को सर्वोत्तम शक्ति प्राप्त हो सकती है॥१५॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सञ्जययानपर्व में सञ्जय वाक्य का पच्चीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

छब्बीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच—

कांनुवाचं सञ्जयमेशृणोपि युद्धैषिणींयेनयुद्धाद्बिभेपि ।
अयुद्धं वैतातयुद्धाद्गरीयः कस्तल्लब्ध्वाजातुयुद्ध्येतसूत ॥१॥

युधिष्ठिर बोले-हे सूतपुत्र सञ्जय ! तुम ने मेरी कौन सी ऐसी बात सुनी, जिस से मेरे युद्ध करने की अभिलाषा टपकती हो। फिर तुम किस कारण से युद्ध से डरते हो। हे तात ! युद्ध की अपेक्षा युद्ध का टला देना ही गौरव शाली है। यदि युद्ध नहीं करने का मार्ग मिलता हो, तो कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो फिर भी युद्ध करना चाहेगा ॥१॥

अकुर्वतश्चेत्पुरुषस्यसञ्जय सिध्येत्सङ्कल्पोमनसायंयमिच्छेत्
नकर्मकुर्याद्विदितंममैतदन्यत्रयुद्धाद्बहुयल्लघीयः ॥२॥

हे सञ्जय ! जब युद्ध नहीं करने से ही पुरुष के मनकी अभिलाषा सिद्ध हो सकती है, तो फिर युद्ध कभी नहीं करना चाहिए मुझे यह विदित है। यदि युद्ध नहीं करने पर छोटा भी कार्य सिद्ध हो तो-उसका भी स्वीकार कर लेना उत्तम है ॥२॥

कुतोयुद्धंजातुनरोवगच्छेत्कोदेवशप्तोहिवृणीतयुद्धम् ।
सुखैषिणःकर्मकुर्वन्तिपार्था धर्मादहीनंयच्चलोकस्यपथ्यम् ॥३॥

कौन ऐसा मनुष्य है, जो युद्ध का अनुमोदन करेगा। किस पर परमात्मा का कोप है, जो युद्ध का अभिलाषी बनना चाहता है। सुख के अभिलाषी पाण्डव तो धर्म से हीन और लोक का हितकारी कर्म करना चाहते हैं ॥३॥

धर्मोदयंसुखमाशंसमानाः कृच्छ्रोपायन्तन्ततःकर्मदुःखं ।
सुखंप्रेप्सुर्विजिघांसुश्चदुःखं यइन्द्रियाणांप्रीतिरसानुगामी ४

जिसमें धर्म का लाभ हो, पाण्डव उस सुख की इच्छा करते हैं, युद्ध तो क्लेश साध्य और वास्तव में दुःख का हेतु है। जो इन्द्रियों से प्रेम करने वाला उनका अनुगामी है, वही इन्द्रियों के सुखों के पीछे दौड़ता है और इन्द्रियों के विरुद्ध विषयों को दुःख मान कर छोड़ना चाहता है ॥४॥

कामाभिध्यास्वशरीरंदुनोति ययाप्रमुक्तोनकरोतिदुःखं ।
यथैध्यमानस्यसमिद्धतेजसो भूयोबलंवर्धते पावकस्य ॥५॥
कामार्थलाभेन तथैव भूयो न तृप्यते सर्पिषेवाग्निरिद्धः ।
संपश्येमंभोगचयंमहान्तं सहास्माभिर्धृतराष्ट्रस्यराज्ञः ॥६॥

जो भोग विलास की कामना करने वाले हैं, वे अपने शरीर को पीड़ित करते हैं। यदि इस विषयाभिलाषा से मनुष्य मुक्त हो जावे, तो दुःख से ही छूट जाता है। प्रज्वलित अग्नि में इन्धन डालने से जैसे अग्नि का तेज बढ़ता है, वैसे ही कामोपभोग से विषयाग्नि बढ़ता है, शान्त नहीं होता, जैसे घृत से अग्नि बढ़ता है, शान्त नहीं होता। हमारे साथ किए हुए व्यवहार को देखते हुए यही ज्ञात होता है, कि राजा धृतराष्ट्र की भोग कामना बढ़ती ही जा रही है ॥५-६॥

नाश्रेयानीश्वरो विग्रहाणां नाश्रेयान्वै गीतशब्दं शृणोति ।
नाश्रेयान्वैसेवतेमाल्यगन्धान्नवाप्यश्रेयाननुलेपनानि ॥७॥

नाश्रेयान्वैप्रावारानुसंविवस्ते कथंत्वस्मान्संप्रणुदेत्कुरुभ्यः।
अत्रैवस्यादबुधस्यैवकामः प्रायः शरीरे हृदयं दुनोति॥८॥

जो पुण्य-हीन हैं, वह अन्य पुरुषों का अधिपति नहीं होता और न पुण्य-हीन कर्ण-प्रिय गीत आदि को सुन पाता है। इसी तरह पुण्य-हीन, माल्य, गन्ध और केशरादि के अनुलेपों को पा सकता है और न दिव्य वस्त्रों को ही पहन सकता है। राजा धृतराष्ट्र एक तरह से पुण्यवान् है, जिसने हमको दोषी समझ कर कौरवों से दूर कर दिया और इस कार्य में वह कृतार्थ हो गया। इस विषय में चिन्ता करना अज्ञानी का ही काम है, जो चिन्ता शरीर के भीतर हृदय को जलाती रहती है॥७-८॥

स्वयं राजा विषमस्थःपरेषु सामर्थ्यमन्विच्छति तन्नसाधु।
यथात्मनःपश्यति वृत्तमेव तथापरेषामपिसोऽभ्युपैति॥९॥

राजा धृतराष्ट्र दुर्योधन, अपने को भोग-वासना-रूपी संकट में फंसा हुआ देखकर भी अन्य में उसको छोड़ देने की सामर्थ्य देखना चाहते हैं—यह ठीक नहीं है। ये जो अपने भीतर द्वेष आदि का अनुभव करते हैं, उसकी ही अन्य में भी कल्पना कर लेते हैं॥९॥

आसन्नमग्निं तु निदाघकाले गंभीरकक्षे गहने विसृज्य।
यथाविवृद्धं वायुवशेनशोचेत्क्षेमंमुमुक्षुःशिशिरव्यपाये १०

वन में तृण समूह की ढेरी में शीतकाल के समाप्त होने पर आए हुए ग्रीष्म समय में अग्नि को डाल देने और उसके प्रज्वलित हो जाने पर जैसे सुख हीन पुरुष क्लेश पाता है, वैसे ही [illegible] हीन विषयाभिलाषी दुःख पाता है॥१०॥

प्राप्तैश्वर्यो धृतराष्ट्रोद्यराजा लालप्यते संजय कस्य हेतोः।
प्रगृह्यदुर्बुद्धिमनार्जवेरत पुत्रंमन्दंमूढमन्त्रिणन्तु ॥११॥

हे सञ्जय ! ऐश्वर्यशाली राजा धृतराष्ट्र, अपने पुत्र, दुर्बुद्धि उद्दण्ड, अज्ञानी, मूर्ख ज्ञ म मन्त्रियों से हीन दुर्योधन का पक्ष लेकर फिर ऐसी बातें कैसे बनाता है ॥११॥

अनाप्तवच्चाप्ततमस्यवाचः सुयोधनोविदुरस्यावमत्य।
सुतस्यराजाधृतराष्ट्रःप्रियैषी सम्बुध्यमानोविशतेऽधर्मएव१२

सर्वोत्तम आप्त विदुर की बात का अनाप्त पुरुष की तरह तिरस्कार करके दुर्योधन निःशङ्क रहता है। राजा धृतराष्ट्र, सब कुछ समझता है, परन्तु अपने पुत्र का पक्षपाती होने और केवल उसी का सुख चाहने से अधर्म में लिपटा जा रहा है ॥१२॥

मेधाविनं ह्यर्थकामं कुरूणां बहुश्रुतं वाग्मिनं शीलवन्तम्।
स तंराजाधृतराष्ट्रःकुरुभ्यो न सस्मारविदुरंपुत्रकाम्यात १३

राजा धृतराष्ट्र भी मेधावी कौरवों के हितैषी, विद्वान् बोलने वाले, शीलवान्, विदुर की बात का कौरवों के हित के ध्यान से आदर नहीं करता है। इसका कारण केवल पुत्र का अनुचित प्रेम ही है ॥१३॥

मानघ्नस्यासौमानकामस्यचेर्षोः संरम्भिणश्चार्थधर्मातिगस्य
दुर्भाषिणोमन्युवशानुगस्य कामात्मनोदौर्हृदैर्भावितस्य१४
अनेयस्या श्रेयसो दीर्घमन्योर्मित्रद्रुहः सञ्जयपापबुद्धेः।
सुतस्यराजाधृतराष्ट्रःप्रियैषी प्रपश्यमानःप्राजहाद्धर्मकामौ

पूज्यों के मान के विधातक, अपना मान चाहने वाले, ईर्ष्यालु, क्रोधी, अर्थ धर्म के त्यागी, कटुभाषी, क्रोध के परवश, इच्छाओं के पीछे दौड़ने वाले, दुर्भावनाधारी कर्णादि के सहचर, समझाने से नहीं मानने वाले, भाग्यहीन, देर तक क्रोध को स्थायी रखने वाले, मित्रद्रोही, पापी, अपने पुत्र दुर्योधन का प्रिय चाहता हुआ राजा धृतराष्ट्र, सब कुछ देखता हुआ भी धर्म और अर्थ का नाश कर रहा है ॥१४-१५॥

तदेवमेसञ्जयदीव्यतोभून्मतिः कुरूणामागतःस्यादभावः।
काव्यांवाचंविदुरोभाषमाणो न विंदतेयद्धार्तराष्ट्रात्प्रशंसाम्

हे सञ्जय ! जब मैं पासे फैंक रहा था, तब ही उनका असद्-व्यवहार देखकर मुझे निश्चित हो गया था, कि अब कौरवों का विनाश उपस्थित होगा। उस समय विदुर ने बड़ी अच्छी विद्वत्ता-पूर्ण बात कही थी, परन्तु धृतराष्ट्र-पुत्र से उस विदुर को कोई प्रतिष्ठा नहीं मिली ॥१६॥

क्षत्तुर्यदानान्ववर्त्तंत बुद्धिं कृच्छ्रं कुरून्सूत तदाभ्याजगाम ।
यावत्प्रज्ञामन्ववर्तंत तस्य तावत्तेषांराष्ट्रवृद्धिर्बभूव ॥१७॥

हे सूत! जब कौरवों ने विदुर की बात का आदर नहीं किया, तो उसी समय से कौरवों को विपत्ति काल उपस्थित हो गया--यह समझ लो। जब तक उन्होंने विदुर का कथन स्वीकार किया, तब तक उनके राष्ट्र की वृद्धि होती चली गई ॥१७॥

तदर्थलुब्धस्य निबोध मेद्य ये मन्त्रिणो धार्त्तराष्ट्रस्य सूत ।
दुःशासनःशकुनिस्सूतपुत्रौ गावल्गणेपश्यसंमोहमस्य ॥१८॥

हे गवल्गण पुत्र ! सूतराज ! तुम, अर्थ के लोलुप दुर्योधन के जो मन्त्री हैं, उनको तो देखो। दुःशासन, शकुनि, सूत-पुत्र कर्ण इसके मन्त्री बने हैं—यह इसका कितना अज्ञान है ॥१८॥

सोऽहंनपश्यामिपरीक्षमाणः कथंस्वस्तिस्यात्कुरुसृंजयानाम्
आत्तैश्वर्योधृतराष्ट्रःपरेभ्यः प्रव्राजितेविदुरेदीर्घदृष्टौ॥१९॥

मैं बहुत कुछ सूक्ष्म दृष्टि से देखता हूं, तो भी कौरव और पाण्डव पक्ष के कल्याणका मार्ग नहीं देखता हूं, जब कि दीर्घ-दृष्टि विदुर को ऐश्वर्य मद मोहित धृतराष्ट्र ने घर से ही निकाल दिया है ॥१९॥

आशंसतेवैधृतराष्ट्रःसपुत्रो महाराज्यमसपत्नंपृथिव्याम् ।
तस्मिन्शमःकेवलंनोपलभ्यः सर्वस्वकंमद्गतेमन्यतेथ म् २०

पुत्र सहित धृतराष्ट्र सारी पृथिवी का शत्रु रहित राज्य चाहता है। मेरे वनमें चले जाने पर तो यह सारा राज्य ही अपना समझता है, उससे सन्धि कैसे हो सकेगी-यह समझ में नहीं आता है ॥२०

यत्तत्कर्णोमन्यतेपारणीयं युद्धे गृहीतायुधमर्जुनं वै ।
आसंश्चयुद्धानिपुरामहान्ति कथं कर्णोनाभवद्द्वीप एषाम् २१

युद्ध में शस्त्र धारी अर्जुन को कर्ण जीतना चाहता है, परन्तु पूर्व में अर्जुन के साथ अनेक युद्ध हो चुके, उनमें कौरवों का आश्रयदायी कर्ण क्यों नहीं बना ॥२१॥

कर्णश्च जानाति सुयोधनश्च द्रोणश्च जानाति पितामहश्च ।
अन्येच ये कुरवस्तत्र सन्ति यथार्जुनान्नास्त्यपरोधनुर्धरः ।।

कर्ण, सुयोधन, द्रोण, पितामह भीष्म तथा अन्य सब कौरव जानते हैं, कि अर्जुन के बराबर कोई दूसरा धनुर्धर वीर नहीं है ॥२२॥

जानन्त्येतत् स्वयःसर्वएव येचाप्यन्येभूमिपालाःसमेताः ।
दुर्योधनेराज्यमिहाभवत्तथा अरिन्दमेफाल्गुनेऽविद्यमाने २३

सारे कौरव तथा उनकी सहायता में इकट्ठे हुए सारे राजा यह जानते हैं, कि यदि अरिमर्दन अर्जुन नहीं होता तो दुर्योधन क्या राज्य कर लेता अर्थात् आज तक गन्धर्वों के बन्धन में ही पड़ा रहता ॥२३॥

तेनानुबंधंमन्यतेधार्त्तराष्ट्रः शक्यं हर्तुं पाण्डवानांममत्वम् ।
किरीटिनातालमात्रायुधेन तद्वेदिनासंयुगंतत्रगत्वा । २४॥

पाण्डवों का जिस पर ममत्व है, उस राज्य को धृतराष्ट्र-पुत्र, दुर्योधन, चार हाथ लम्बे धनुष के धारी, युद्ध विद्या के ज्ञाता, अर्जुन से युद्ध करके अपहरण कर लेना चाहता है ॥२४॥

गाण्डीवविस्फारितशब्दमाजावश्रृण्वानाधार्त्तराष्ट्राध्रियन्ते ।
क्रुद्धं नचेदीक्षतेभीमसेनं सुयोधनोमन्यते सिद्धमर्थम् ॥२५॥

धृतराष्ट्र-पुत्र, यह सब कुछ तब तक ही सम्भव समझते हैं, जब तक उन्होंने युद्ध में गाण्डीव-ध्वनि को नहीं सुना है । जब तक सुयोधन ने युद्ध में क्रुद्ध भीमसेन को नहीं देखा, तभी तक वह अपने काम को सिद्ध मानता है ॥२५॥

इन्द्रोऽप्येतस्मात्प्रहर्तुमैश्वर्यं नो जीवति भीमसेने ।
धनञ्जये नकुले चैव सूत तथा वीरे सहदेवे सहिष्णौ ॥ २६ ॥

हे तात ! भीमसेन के जीवित रहते पर इन्द्र भी हमारे ऐश्वर्य को नहीं छीन सकता है। इसी तरह अर्जुन, नकुल, सब कुछ कष्ट सह लेने वाले वीर सहदेव के रहने पर कौन हमारे स्वत्व को छीन सकता है ॥२६॥

स चेदेतां प्रतिपद्येत बुद्धिं वृद्धो राजा सह पुत्रेण सूत ।
एवं रणे पाण्डवकोपदग्धा न नश्येयुः सञ्जय धार्तराष्ट्राः ॥ २७ ॥

हे सूत ! वृद्ध राजा धृतराष्ट्र, यदि यह समझता हो, कि हम उनका राज्य छीन लेंगे तो सञ्जय ! इस दशा में क्या पाण्डवों की कोप की आग से धृतराष्ट्र पुत्र नष्ट नहीं हो जायेंगे ॥२७॥

जानासि त्वं क्लेशमस्मासु वृत्तं त्वां पूजयन्सञ्जयाहं क्षमेयम् ।
यच्चास्माकं कौरवैर्भूतपूर्वं या नो वृत्तिर्धार्तराष्ट्रे तदासीत् ॥ २८ ॥

हे सञ्जय ! तू जानता है, जो क्लेश वन में हम पर पड़े हैं, परन्तु हम तेरे आदर (लिहाज) से उन सबको क्षमा कर सकते हैं। तू यह भी जानता है, कि कौरवों ने पूर्वकाल में हमारे साथ कैसा व्यवहार किया और हमने उनके साथ क्या किया ॥२८॥

अद्यापि तत्तत्र तथैव वर्ततां शान्तिं गमिष्यामि यथा त्वमात्थ ।
इन्द्रप्रस्थे भवतु ममैव राज्यं सुयोधनो यच्छतु भारताग्र्यः ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि
युधिष्ठिरवाक्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अब भी सब कुछ वैसा ही हो सकता है जैसा तुम कह रहे हो और उसीतरह शान्ति हो सकती है, जो भरतवंशश्रेष्ठ सुयोधन, इन्द्रप्रस्थ में मेरा राज्य स्वीकार करके उसको मुझे प्रदान करदे।

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सञ्जययानपर्व में
युधिष्ठिर वाक्य का छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

सत्ताईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

धर्मे नित्या पाण्डव ते विचेष्टा लोके श्रुता दृश्यते चापि पार्थ
महास्रावं जीवितं चाप्यनित्यं संपश्य त्वं पाण्डव माव्यनीनशः

सञ्जय बोला— हे पार्थ! आपकी चेष्टा धर्मानुसार है, यह लोक में प्रसिद्ध है और देखा भी जा रहा है। हे पाण्डव! आप अपनी कीर्ति को स्थायी और जीवन को विनाशी समझकर अपनी कीर्ति का नाश न करें ॥१॥

नचेद्भागंकुरवोन्यत्रयुद्धात्प्रयच्छेरंस्तुभ्यमजातशत्रो।
भैक्षचर्यामन्धकवृष्णिराज्ये श्रेयोमन्येनतुयुद्धेनराज्यम् ॥२॥

हे अजात-शत्रो! यदि तुमको कौरव, युद्ध के बिना अपना भाग (राज्य) प्रदान न करें, तो तुम अन्धक और वृष्णि वंश के राज्यों में भीख मांगकर भी खा लोगे, तो तुम्हारा कल्याण होगा,

परन्तु युद्ध से राज्य-प्राप्ति भी अच्छी नहीं है अर्थात् सन्धि में थोड़ा भी मिले, तो सन्तोष करके अपनी कीर्ति की रक्षा करो ॥२॥

अल्पकालंजीवितंयन्मनुष्ये महास्रावंनित्यदुःखंचलञ्च ।
भूयश्चतद्यशसोनानुरूपं तस्मात्पापंपाण्डवमाकृथास्त्वम्॥३॥

मनुष्य का जीवन बहुत ही थोड़े समय तक रहता है । यह अत्यन्त चञ्चल, नित्य दुःखमय और अ नत्य है । हे पाण्डव ! इस तरह करना तुम्हारे यश के अनुकूल नहीं है, इससे तुम युद्ध के लिए प्रेरणा करके पाप न करना ॥३॥

कामामनुष्यंप्रजयन्तएते धर्मस्ययेविघ्नमूलंनरेन्द्र ।
पूर्वंनरस्तान्मतिमान्प्रणिघ्नन् लोकेप्रशंसांलभतेनवद्याम्॥४

हे नरेन्द्र ! भोगों की लालसाएँ मनुष्य को सताती रहती हैं, जो धर्म में विघ्न-भूत है । बुद्धिमान् मनुष्य, प्रथम इनका समुच्छेद करे । इनके समुच्छेद करने से ही लोक में सर्वोत्तम प्रशंसा प्राप्त होती है ॥४॥

निबन्धनीह्यर्थतृष्णेह पार्थ तामिच्छतां बाध्यते धर्म एव ।
धर्मंतुयःप्रवृणीतेसबुद्धः कामगृध्नो हीयतेर्थानुरोधात् ॥५॥

हे पार्थ ! अर्थ तृष्णा बन्धन-कारिणी है । यदि मनुष्य अर्थ-तृष्णा में फँस जाता है, तो धर्म की बाधा हो जाती है । जो धर्म का पक्षपाती है, वही ज्ञानी है । जो काम वासना में लिपटा है, वह अपनी अर्थ सिद्धि से च्युत हो जाता है ॥५॥

धर्मंकृत्वाकर्मणांतातमुख्यं महाप्रतापः सवितेवभाति ।
हीनोहिधर्मेणमहीमपीमां लब्ध्वानरःसीदतिपापबुद्धिः ॥६॥

हे तात ! अर्थ, काम आदि पुरुषार्थों में जो धर्म को प्रधान मानता है, वह महाप्रतापी सूर्य की तरह चमकने लगता है, परन्तु जो धर्म से हीन है, वह पाप बुद्धि मनुष्य सारी पृथिवी को पाकर भी उससे वञ्चित होकर क्लेश में फँस जाता है ॥६॥

वेदोधीतश्चरितंब्रह्मचर्यं यज्ञैरिष्टं ब्राह्मणेभ्यश्च दत्तम् ।
परंस्थानंमन्यमानेनभूय आत्माद्त्तो वर्षपूगंसुखेभ्यः ॥७॥

तुमने वेद का अध्ययन, ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान, यज्ञों से यजन और ब्राह्मणों को दान देकर सन्तुष्ट किया है। इसके सिवा परलोक में आस्था रखने वाले आपने बहुत वर्षों तक अपने आपको सुख से वञ्चित रखा है ॥७॥

सुखप्रियेसेवमानोतिवेलं योगाभ्यासे योन करोतिकर्म ।
वित्तक्षयेहीनसुखोतिवेलं दुःखंशेते कामवेगप्रणुन्नः ॥८॥

बहुत काल तक भोग विलासों में लिपटा हुआ, जो मनुष्य योगाभ्यास में परिश्रम नहीं कर सकता है, वह काम वासना से प्रेरित हुआ धन के क्षीण होने पर अत्यन्त दुःख में निमग्न हो जाता है ॥८॥

एवंपुनर्ब्रह्मचर्याप्रसक्तो हित्वाधर्मं यः प्रकरोत्यधर्मम् ।
अश्रद्दधत्परलोकायमूढो हित्वादेहंतप्यतेप्रेत्यमन्दः ॥९॥

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य तथा धर्माचरण को छोड़ कर अधर्माचरण करता है एवं जो मूर्ख, परलोक में श्रद्धा नहीं रखता, वह अज्ञानी मरने के अनन्तर देह छोड़कर बड़ा सन्तप्त होता है ॥९

नकर्मणांविप्रणाशोस्त्यमुत्र पुण्यानां वाप्यथवापापकानां ।
पूर्वंकर्तुर्गच्छति पुण्यपापं पश्चात्त्वेनमनुयात्येव कर्ता ॥१०॥

इस लोक से मृत्यु प्राप्त करने पर भी पुण्य अथवा पापों का नाश नहीं होता है, वे परलोक में अवश्य भोगने पड़ते हैं। प्रथम तो पाप पुण्य मनुष्य के पीछे जाते हैं और फिर कर्ता मनुष्य को इनके पीछे चलना पड़ता है ॥१०॥

न्यायोपेतं ब्राह्मणेभ्योथ दत्तं श्रद्धापूतं गन्धरसोपपन्नम् ।
अन्वाहार्येषूत्तमदक्षिणेषु तथारूपङ्कर्म विख्यायते ते ११

तुमने उत्तम २ दक्षिणा वाले, श्रौतकर्मों में न्यायानुकूल, श्रद्धा से युक्त, गन्ध रस से समन्वित दान, ब्राह्मणों को दे रखे हैं। इस तरह के प्रशंसनीय तुम्हारे कर्म जगत् में विख्यात हैं ॥११॥

इह क्षेत्रे क्रियते पार्थकार्य न वै किंचित् क्रियते प्रेत्यकार्यम्
कृतं त्वयापारलौक्यं च कर्म पुण्यं महत्सद्भिरतिप्रशस्तम्

हे पार्थ! इसी देह में धर्म किया जा सकता है। मरने के अनन्तर कोई पुण्य कार्य नहीं किया जा सकता। तुमने तो सज्जनों से प्रशंसित बड़े २ परलोक में हितकारी पुण्य कार्य कर रखे हैं ॥१२॥

जहातिमृत्युंचजरांभयञ्च नक्षुत्पिपासेमनसोऽप्रियाणि ।
नकर्तव्यांविद्यतेतत्रकिंचिदन्यत्रचेवेन्द्रियप्रीणनाद्धि ॥१३॥

यद्यपि स्वर्गलोक में मृत्यु, जरा, भय, भूख, प्यास तथा मन के अप्रिय पदार्थों का अभाव रहता है, परन्तु वहाँ अपनी इन्द्रियों की तृप्ति के सिवा कुछ नवीन करने को नहीं मिलता है, क्योंकि स्वर्गलोक भोग लोक है ॥१३॥

एवं रूपं कर्मफलं नरेन्द्र मात्रावहं हृदयस्य प्रियेण।
स क्रोधजं पाण्डवहर्षजञ्च लोकावुभौ माप्रहासीश्चिराय १४

हे नरेन्द्र ! इस प्रकार हृदय की प्रीति द्वारा इन्द्रिय मात्र की प्रीति करने वाले कर्मफल होते हैं। हे पाण्डव ! तुम क्रोध और हर्ष से उत्पन्न कर्मों को करके चिरकाल के लिए दोनों लोकों का त्याग न करो ॥१४॥

अन्तं गत्वा कर्मणां मा प्रजह्याः सत्यं दमञ्चार्जवमानृशंस्यम्
अश्वमेधं राजसूयं त्यजेथाः पापस्यान्तं कर्मणो मा पुनर्गाः १५

तुम कर्मों का त्याग करके भी सत्य, मन का विजय, सरलता, उदारता आदि कर्मों को न छोड़ना। इसी तरह निष्काम रूप से अश्वमेध राजसुय यज्ञ भी कर सकते हो, परन्तु तुम पाप कर्मों के समीप न चले जाना ॥१५॥

तच्चेदेवं द्वेषरूपेण पार्थाः करिष्यध्वं कर्म पापं चिराय ।
निवसध्वं वर्षपूगान्वनेषु दुःखं वासं पाण्डवा धर्म एव १६

हे पार्थ ! यदि तुम लोग, द्वेष के वश में होकर युद्ध रूप पाप कर्म को करोगे-तो उससे तो अनेक वर्ष तक, वन में वास करके दुःख उठाते रहना अच्छा है। हे पाण्डवों ! इस समय यही धर्म समझो ॥१६॥

अप्रव्रज्येमाः समहित्त्वोपुरस्तादात्माधीनं यद्बलं ह्य तदासीत्।
नित्यश्चवश्याःसचिवास्तवेमे जनार्दनोयुयुधानश्चवीरः १७

इन राज्यादि पदार्थों को छोड़ कर यदि वन में नहीं जाना चाहते हो, तो पूर्व में भी वन में क्यों गए थे। तब भी तो तुम्हारा बल (सेना) और सचिव तुम्हारे अधीन थे तथा जनार्दन और वीर युयुधान सब तुम्हारे साथी थे ॥१७॥

मत्स्यो राजा रुक्मरथः सपुत्रः प्रहारिभिः सह पुत्रैर्विराटः ।
राजानश्चये विजिताः पुरस्तात्त्वामेव ते संश्रयेयुः समस्ताः १८

मत्स्य वंशी पुत्र सहित राजा रुक्म रथ तथा प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ पुत्रों के साथ राजा विराट तथा पूर्व में जाते हुए सारे राजा तुम्हारे ही तो अधीन और आश्रित थे ॥१८॥

महासहायः प्रतपन बलस्थः पुरस्कृतो वासुदेवार्जुनाभ्याम् ।
वरान्हनिष्यन्द्विषतो रङ्गमध्ये व्यनेष्यथा धार्तराष्ट्रस्य दर्पम्

तुम पूर्व में भी महा सहायता को प्राप्त हुए, सेना सहित, प्रताप युक्त तथा श्रीकृष्ण और अर्जुन से समन्वित थे। तुम उस समय भी युद्ध स्थल में वीर शत्रुओं का वध करके राजा दुर्योधन का घमण्ड चूर कर सकते थे ॥१९॥

बलं कस्माद्वर्धयित्वा परस्य निजान्कस्मात्कर्शयित्वा सहायान्
निरुष्य कस्माद्वर्षपूगान्वनेषु युयुत्ससे पाण्डव हीन कालम् २०

हे पाण्डव ! अब शत्रु का बल बढ़ा कर और अपने सहायक न्यून करके एवं अनेक वर्ष वन में दुःख उठाकर भी समय के विरुद्ध क्यों युद्ध करना चाह रहे हो ॥२०॥

अप्राज्ञोवापाण्डव युध्यमानोऽधर्मज्ञोवाभूतिमथोभ्युपैति ।
प्रज्ञावान्वाबुध्यमानोपिधर्मं संरंभाद्वासोपिभूतेरपैति २१

हे पाण्डव ! मूर्ख, अधार्मिक, युद्ध करता हुआ भी दैव के अनुकूल होने पर ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेता है, परन्तु दैव के विरुद्ध होने पर बुद्धिमान् धर्म का ज्ञाता मनुष्य भी ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो सकता है ॥२१॥

नाधर्मेतेधीयतेपार्थबुद्धि र्नसम्रम्भात्कर्मचकर्थ पापम् ।
अरथकिंतत्कारणं स्यहेतोः प्रज्ञाविरुद्धं कर्मचिकीर्षसीदम्

हे पार्थ ! तुम्हारी बुद्धि अधर्म प्रवृत्त ही नहीं होती है और न तुम आवेश में आकर पाप कर्म के करने में प्रवृत्त हो सकते हो। अब तुम इसका कारण बताओ, जिससे अपनी बुद्धि के विरुद्ध भी इस दूषित कर्म युद्ध के करने में प्रवृत्त हो रहे हो ॥२२॥

अव्याधिजंकटुकंशीर्षरोगि यशोमुषंपापफलोदयम्वा ।
सतांपे यंयन्नपिबन्त्यसन्तो मन्युं महाराजपिबप्रशाम्य ॥२३॥

हे महाराज ! व्याधि से उत्पन्न, बड़ा कडुआ, शिर को चक्कर देने वाला, यशका नाशक, पाप के फल का उदयकारी, सज्जनों के पी जाने योग्य, क्रोध को अज्ञानी, दुष्ट नहीं पी सकते हैं हे राजन् ! आप इसको पी जाओ और शान्ति करो ॥२३॥

पापानुबन्धंकोनुतंकामयेत क्षमैवतेज्यायसीनोतभोगाः ।
यत्रभीष्मःशांतनवोहतः स्याद्यत्रद्रोणःसहपुत्रोहतःस्यात् २४

यह क्रोध अन्य युद्ध तो पाप का मूल है, उसकी कौन महात्मा अभिलाषा कर सकता है। तुम तो क्षमा को ही बड़ा समझते हो, भोगों को बड़ा नहीं मानते हो। उन भोगों को कौन अच्छा कह सकता है, जिनमें शान्तनु पुत्र भीष्म और पुत्र सहित द्रोण के मारे जाने का सन्देह (गुमान) हो ॥ २४॥

कृपःशल्यःसौमदत्तिर्विकर्णो विविंशतिःकर्णदुर्योधनौच ।
एतान्हत्वाकीदृशंतत्सुखंस्याद्यद्विंद्धेथास्तन्नुब्रूहिपार्थ २५

कृप, शल्य, सोमदत्त का पुत्र, विकर्ण, विविंशति, कर्ण, दुर्योधन आदि को मार कर जिस सुख को प्राप्त करना चाहते हो, वह सुख कितना अच्छा है, यह तो बताओ ॥२५॥

लब्ध्वापीमांपृथिवींसागरांतां जरामृत्यूनैवहित्वंप्रजह्याः ।
प्रियाप्रियेसुखदुःखेचराजन्नेवंविद्वान्नैवयुद्धंकुरुत्वम् २६

हे राजन! तुम सागर-पर्यन्त पृथिवी को पाकर भी जरा मृत्यु से नहीं छूट सकोगे और न तुम्हें सुख दुःख प्रिय अप्रिय आदि द्वन्द्वों से छुटकारा मिलेगा, यह समझ कर तुमको युद्ध नहीं करना चाहिए ॥२६॥

अमात्यानांयदिकामस्यहेतोरेवंयुक्तंकर्मचिकीर्षसित्वम् ।
अपक्रामेःस्वंप्रदायैवतेषां मागास्त्वं वैदेवयानात्पथोद्य॥२७

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि
सञ्जयवाक्येसप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

यदि तुम अपने आश्रित, पुत्र, स्त्री, मन्त्री आदि के सुख के लिए इस कुत्सित कर्म युद्ध को करना चाहते हो-तो तुम इनको कुछ धन देकर अपना मार्ग पकड़ो। कहीं तुम देवयान मार्ग से अपने आपको भ्रष्ट मत कर लेना ॥७॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सञ्जययानपर्व में सञ्जय वाक्य का सत्ताईसवां अध्याय पूरा हुआ।

अट्ठाईसवां अध्याय

युधिष्ठिर उवाच—

असंशयं सञ्जयसत्यमेतद्धर्मोवरःकर्मणांयत्त्वमात्थ।
ज्ञात्वातुमांसंजयगर्हयेस्त्वं यदिधर्मंयद्यधर्मंचरेयम् ॥१॥

युधिष्ठिर बोले--हे सञ्जय! तुम्हारा यह कथन बिल्कुल ठीक है, सांसारिक कर्मों में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। जब तुम मेरे धर्म और अधर्म की परीक्षा कर लो और मैं अधर्म का आचरण करू, तो तुम मेरी निन्दा करना ॥१॥

यत्राधर्मोधर्मरूपाणिधत्ते धर्मःकृत्स्नोदृश्यतेऽधर्मरूपः।
बिभ्रद्धर्मोधर्मरूपंतथाच विद्वांसस्तंसम्प्रपश्यन्तिबुद्ध्या ॥२

कहीं तो अधर्म भी धर्म सा दिखाई देता है, कहीं पर सर्वाङ्ग-सुन्दर धर्म भी अधर्म दिखाई देने लगता है और कहीं धर्म

धर्म रूप से ही प्रतीत होता है। विद्वान् लोग अपनी बुद्धि से विचार कर इसको देखते हैं ॥२॥

एवंतथैवापदि लिंगमेतद्धर्माधर्मौनित्यवृत्ती भजेताम् ।
आद्यं लिंगंयस्यतस्यप्रमाणमापद्धर्मं सञ्जयतंनिबोध ॥३॥

हे सञ्जय! इस प्रकार आपत्काल में स्पष्ट अधर्म भी धर्म हो जाता है और ब्राह्मणका धर्म अन्य वर्ण को अधर्म माना गया है। इस तरह धर्म अधर्म नित्य अदलने बदलते रहते हैं। जो धर्म जिसका प्रथम बता दिया गया, उसका वही प्रमाण है अन्य को उसका व्यवहार करना, तो आपत्ति काल में ही धर्म माना जा सकेगा ॥३॥

लुप्तायान्तुप्रकृतौ येन कर्म निष्पादयेत्तत्परीप्सेद्विहीनः ।
प्रकृतिस्थश्चापदि वर्तमान उभौगर्ह्यौ भवतःसञ्जयै तौ ॥४॥

हे सञ्जय! वर्णों के शास्त्रानुसार निश्चित किये हुए धर्मों के बिल्कुल लुप्त हो जाने पर परवश होकर अन्य वर्ण के कर्मों को मनुष्य, ग्रहण कर सकता है। यदि आपत्काल के आने पर अपने कर्म से वृत्ति प्राप्त हो सकती है, तो अपना कर्म ही करना चाहिए। इन सब बातों का यही सारांश है, कि आपत्काल में अन्य का धर्म लाभ से आचरण करे, तो निन्दित है और अन्य के धर्म को स्वीकार किए विना काम न चलने पर भी हठ से अन्य के धर्म को स्वीकार न करे, तो भी अधर्म ही माना गया ॥४॥

अविनाशमिच्छतां ब्राह्मणानां प्रायश्चित्तं विहितं यद्विधात्रा।
सम्पश्येथाः कर्मसु वर्तमानान् विकर्मस्थान्सञ्जयगर्हयेस्त्वम्

ब्राह्मणों का विनाश न हो जावे, यह विचार कर ही विधाता ने इस प्रकार आपद्धर्म की व्यवस्था की है। आपद्धर्म का आचरण करके प्रायश्चित किया जा सकता है। हे सञ्जय! यदि तू उपर्युक्त व्यवस्था के विरुद्ध हमको अपने कर्मों में संलग्न देखता है, तो विरुद्ध कर्म के आचरण करने वाले हम लोगों की निन्दा कर सकता है ॥५॥

मनीषिणां सत्त्वविच्छेदनाय विधीयते सत्सु वृत्तिः सदैव।
अब्राह्मणाःसन्तितुयेनवैद्याः सर्वोत्सङ्गंसाधुमन्येततेभ्यः ६

ज्ञानी मनुष्यों को माया के बन्धनों के मुक्त करने के लिए धार्मिक कुलों में भिक्षा आदि से वृत्ति कर लेना, शास्त्रानुसार उचित ही है, परन्तु जो अब्राह्मण और विद्याहीन हैं, उनके लिए इस तरह भिक्षा करना सब तरह अनुचित ही माना गया है ॥६॥

तदध्वानः पितरो ये च पूर्वे पितामहा येच तेभ्यः परेऽन्ये।
यज्ञैषिणोयेचहिकर्मकुर्युर्नान्यस्ततोनास्तिकोऽस्मीतिमन्ये ॥७॥

मेरे पिता, पितामह तथा उनसे पूर्वज जिस मार्ग को मानते रहे और वे यज्ञशील रह कर जिन कामों को करते हैं, मैं उनसे भिन्न किसी मार्ग को नहीं मानता हूँ, इससे मैं भी आस्तिक ही हूं, नास्तिक नहीं हूं ॥७॥

यत्किंचनेदंवित्तमस्यांपृथिव्यां यद्देवानांत्रिदशानांपरंयत्।
प्रजापत्यन्त्रिदिवंब्रह्मलोकन्नाधर्मतःसञ्जयकामयेयम् ॥८॥

हे सञ्जय! जो कुछ द्रव्य इस पृथिवी पर है और जो स्वर्ग-लोक में देव या इन्द्रके पास है। इसके सिवा प्रजापति का लोक, स्वर्गलोक और ब्रह्म-लोक का राज्य है, मैं अधर्म से इस सबकी आकांक्षा नहीं करता हूं ॥८॥

धर्मेश्वरःकुशलोनीतिमांश्चाप्युपासिताब्राह्मणानांमनीषी।
नानाविधांश्चैवमहाबलांश्च राजन्यभोजाननुशास्तिकृष्णः॥६॥
यदिह्यहंविसृजन्सामगर्त्यो नियुध्यमानोयदिजह्यांस्वधर्मम्।
महायशाःकेशवस्तद्ब्रवीतु वासुदेवस्तूभयोरर्थकामः॥१०॥

धर्म के ज्ञाता, कुशल, नीतिमान्, ब्राह्मणों के उपासक, मनीषी तथा अनेक महाबली क्षत्रिय वंश एवं भोजवंश के शासक श्रीकृष्ण हैं। यदि मैं सन्धि का परित्याग करता हूं, या युद्ध की प्रेरणा कर के स्वधर्म का परित्याग करता तो महायशस्वी श्रीकृष्ण इस बात को कहदें। वे तो दोनों पक्ष के स्वार्थ की सिद्धि चाहते हैं ॥१०॥

शैनेयोयञ्चेदयश्चांधकाश्चवार्ष्णेयभोजाःकुकुराःसृञ्जयाश्च।
उपासीनावासुदेवस्यबुद्धिं निगृह्यशत्रून् सुहृदोनन्दयन्ति११

शिनिप्रवीर सात्यकि, चेदिवंशज, अन्धक, वृष्णि, भोज, कुकुर सृञ्जय, ये सब श्रीकृष्ण की आज्ञा में चलने वाले हैं, जो शत्रु को जीतकर मित्रों को आनन्दित करने वाले हैं ॥११॥

वृष्ण्यन्धकाह्युग्रसेनादयोवै कृष्णप्रणीताःसर्वएवेन्द्रकल्पाः
मनस्विनःसत्यपरायणाश्च महाबलायादवाभोगवन्तः॥१२॥

वृष्णि,अन्धक,उग्रसेनादि भोजवंशी इन्द्रके तुल्य क्षत्रिय राजा श्रीकृष्ण की ही नीति पर चलने वाले हैं। इसी तरह मनस्वी, सत्यपरायण, महाबली यादव और भोगवान क्षत्रिय हैं ॥१२॥

काश्योबभ्रुः श्रियमुत्तमांगतो लब्ध्वाकृष्णंभ्रातरमीशितारम्
यस्मैकामान्वर्षतिवासुदेवो ग्रीष्मात्ययेमेघइवप्रजाभ्यः ॥१३॥

काशीराज बभ्रु अपने भ्राता श्रीकृष्ण को अपना स्वामी मान कर उत्तम राज्यलक्ष्मी को प्राप्त हुआ है। इसके मनोरथों को श्रीकृष्ण भी इस तरह पूरा करते हैं, जिस तरह ग्रीष्म काल के व्यतीत होने पर मेघ प्रजा की अभिलाषाओं को पूरा करता है।

ईदृशोयंकेशवस्तातविद्वान् विद्धिह्येनं कर्मणांनिश्चयज्ञम् ।
प्रियश्चनःसाधुतमश्चकृष्णो नातिक्रामेवचनंकेशवस्य ॥१४॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि
युधिष्ठिरवाक्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

हे तात ! इस प्रकार की शक्ति रखने वाले विद्वान श्रीकृष्ण है। इनको तुम कर्मके निश्चय करने वालों में सर्व-श्रेष्ठ समझो। ये श्रीकृष्ण हमारा प्रेमी और सर्वोत्तम व्यक्ति है, मैं इन केशव के वचनों को कभी नहीं उलांघ सकता हूं ॥१४॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सञ्जययानपर्व में युधिष्ठिर कथन का अट्ठाईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

उनतीसवां अध्याय

वासुदेव उवाच—

अविनाशंसञ्जयपाण्डवानामिच्छाम्यहं भूतिमेषां प्रियञ्च ।
तथा राज्ञो धृतराष्ट्रस्य सूत समाशंसेबहुपुत्रस्यवृद्धिम् ॥१॥

वासुदेव बोले—हे सञ्जय! मैं पाण्डवों के अविनाश, कल्याण और हित को चाहता रहता हूं और इसी तरह अनेक पुत्रों से युक्त राजा धृतराष्ट्र की भी वृद्धि की इच्छा करता हूं॥१॥

कामोहिमेसञ्जयनित्यमेव नान्यद्ब्रूयांतान्प्रतिशाम्यतेति
राज्ञश्चहिप्रियमेतच्छृणोमि मन्ये चैतत्पांडवानां समक्षम् ॥२॥

हे सञ्जय! मेरी सबसे बड़ी कामना ही यह है, कि इनमें मेल हो जावे। मैं पाण्डवों से इसके सिवा अन्य कुछ कहता ही नहीं हूं, कि शान्ति करो। राजा युधिष्ठिर को भी शान्ति से ही प्रिय वचन सुनता हूं। यह बात मैं पाण्डवों के सम्मुख स्वीकार करता हूं॥२॥

सुदुष्करस्तत्र शमो हि नूनं प्रदर्शितः सञ्जय पांडवेन ।
यस्मिन्गृद्धोधृतराष्ट्रःसपुत्रः कस्मादेषांकलहोनावमूर्च्छेत्॥३॥

हे सञ्जय! सन्धि होना बड़ी कठिन सी वात हो रही है, जिसका दिग्दर्शन धर्मराज ने करा दिया। जब राजा धृतराष्ट्र, अपने पुत्रों सहित इनके राज्य का भी लालच कर रहा है, तो फिर इनका कलह क्यों नहीं बढेगा॥३॥

न त्वं धर्मं विचरं सञ्जयेह मत्तश्च जानासि युधिष्ठिराच्च ।
अथोकस्मात्सञ्जयपांडवस्य उत्साहिनःपूरयतःस्वकर्म॥४॥

संजय ! तुम जानते हो, कि मुझे या राजा युधिष्ठिर को धर्म का लोभ नहीं हो सकता है। हे सूत ! अपने कर्म को अच्छी तरह पालन करने वाले उत्साही युधिष्ठिर का धर्म लोप कहना कैसे सम्भव हो सकता है ॥४॥

यथाख्यातमावसतःकुटुम्बे पुरा कस्मात्साधुविलोपमात्थ ।
अस्मिन्विधौवर्त मानेयथावदुच्चावचोमतयो ब्राह्मणानाम् ॥५

प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि के साथ अपने कुटुम्ब और गृहस्थ धर्म का निर्वाह करने वाले राजा युधिष्ठिर को अपने भाग के ग्रहण करने की अभिलाषा का तू सदाचार या धर्म का लोप कैसे बता रहा है। परिग्रह छोड़कर वन में निवास करने की उत्कृष्ट बुद्धि तो ब्राह्मणों में उचित है ॥५॥

कर्मणाहुः सिद्धिमेकेपरत्र हित्वा कर्म विद्यया सिद्धिमेके ।
नाभुञ्जानोभक्ष्यभोज्यस्यतृप्येद्विद्वानपीहविहितंब्राह्मणानाम्

कोई तो गृहस्थ—धर्म में रहकर कर्म-योग द्वारा पारलौकिक सिद्धि (मोक्ष) मानते हैं और कुछ कर्मों का परित्याग करके ज्ञान योग से सिद्धि का प्रतिपादन करते हैं; परन्तु ज्ञानी मनुष्य भी खाने पीने के साधनों के बिना अपना निर्वाह नहीं कर सकता है, इससे उन ज्ञानियों को वृत्ति भी इन कर्म योगियों के आश्रित ही है ॥६॥

यावैविद्याःसाधयन्तीहकर्म तासांफलंविद्यतेनेतरासाम् ।
तत्रेहवैदृष्टफलन्तुकर्म पीत्वोदकंशाम्यतितृष्णयार्तः ॥७॥

जो ज्ञान, कर्म की सिद्धि का प्रतिपादक है, उसी ज्ञान का कुछ फल है, अन्य कर्म योग हीन ज्ञान योग का कोई फल नहीं है। कर्म का तो प्रत्यक्ष फल है। इधर जल पीओ और उधर जल पीने वाले प्यासे मनुष्य की प्यास शान्त हो जाती है ॥७॥

सोयं विधिर्विहितः कर्मणैव सम्वर्तते सञ्जय तत्र कर्म।
तत्रयोन्यत्कर्मणःसाधुमन्येन्मोघंतस्यालपितन्दुर्बलस्य ॥८॥

हे सञ्जय! यह ज्ञान योग की विधि तो कर्म के सहारे ही चलती है। क्योंकि ज्ञान मार्ग में चलने वाले को भी तो कर्म ही करने पड़ते हैं। इससे जो कर्म योग के सिवा अन्य (कर्म-सन्यास) को उत्तम कहता है, उस दुर्बल का कथन व्यर्थ ही समझना चाहिए ॥८॥

कर्मणामी भान्तिदेवाःपरत्र कर्मणैवेह प्लवते मातरिश्वा।
अहोरात्रेविदधत्कर्मणैव अतन्द्रितोनित्यमुदेति सूर्यः ॥९॥

कर्म से तो ये सारे देव (नक्षत्र) चमक रहे हैं और कर्म से ही वायु चलता है। रात दिन भी कर्म की व्यवस्था से ही होते हैं और बिना कुछ हेर फेर के कर्म द्वारा ही नित्य सूर्य निकलता रहता है ॥९॥

मासार्धमासानथ नक्षत्रयोगानतन्द्रितश्चन्द्रमाश्चाभ्युपैति।
अतन्द्रितो दहते जातवेदाः समिध्यमानः कर्मकुर्वन् प्रजाभ्यः

मास, पक्ष, नक्षत्र के योगों को नियमानुसार चन्द्रमा नित्य भोगता रहता है तथा पुत्र के सुख के लिए कर्म करता हुआ प्रज्वलित अग्नि बिना प्रमाद किए जलता रहता है ॥१०॥

अतन्द्रिता भारमिमं महान्तं बिभर्ति देवी पृथिवी बलेन ।
अतन्द्रिताः शीघ्रमपो वहन्ति सन्तर्पयन्त्यः सर्वभूतानि नद्यः ॥११

यह पृथिवी देवी भी बड़ी सावधानी से इस महान् भार को अपने ऊपर धारण किए हुए है। कर्म के नियमों को ठीक २ रूप में धारण करती हुई, नदियां भी सारे प्राणियों को सन्तापित करती हुई नित्य बहती हैं ॥११॥

अतन्द्रितो वर्षति भूरितेजाः सन्नादयन्नन्तरिक्षं दिशश्च ।
अतन्द्रितो ब्रह्मचर्यं चचार श्रेष्ठत्वमिच्छन्बलभिद् देवतानाम्

अत्यन्त तेज से युक्त मेघ भी आकाश और दिशाओं को अपनी गर्जना से शब्दायमान करता हुआ, नियमानुसार बरसता रहता है। देवों में श्रेष्ठ पदवी की अभिलाषा करता हुआ, इन्द्र भी कर्म योग के अनुसार ही ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करता है १२

हित्वा सुखं मनसश्च प्रियाणि तेन शक्रः कर्मणा श्रैष्ठ्यमाप ।
सत्यं धर्मं पालयन्नप्रमत्तो दमं तितिक्षां समतां प्रियं च ॥१३॥

मन के प्रिय इन्द्रिय भोगों के छोड़ने कर्म-योग का अनुष्ठान करने से ही इन्द्र को श्रेष्ठता मिली हुई है। यह बिना किसी प्रमाद के सत्य, दम, सहनशीलता, समानता और प्रेम का पालन करता रहता है ॥१३॥

एतानिसर्वाण्युपसेवमानः सदेवराज्यंमघवान्प्राप्य मुख्यम् ।
बृहस्पतिर्ब्रह्मचर्यंचचारसमाहितःसंशितात्मायथावत्॥१४॥

उपर्युक्त इन सब धर्मों के सेवन करते हुए ही इन्द्र ने देवों का मुख्य राज्य पाया है तथा महात्मा बृहस्पति ने भी बड़ी सावधानी से ठीक २ अपने ब्रह्मचर्य को पूरा किया है ॥१४॥

हित्वा सुखं प्रतिरुध्येन्द्रियाणि तेन देवानामगमद्गौरवं सः ।
तथा नक्षत्राणिकर्मणामुत्रभांति रुद्रादित्यावसवोथापिविश्वे

इस बृहस्पति ने भी अपने विषय सुखों को छोड़ कर और इन्द्रिय का विजय करके देवों में गौरव प्राप्त किया है। ये अन्तरिक्ष में नक्षत्र, रुद्र, आदित्य, वसु आदि सारे देव, कर्म से ही चमक रहे हैं ॥१५॥

यमो राजा वैश्रवणः कुबेरो गन्धर्वयक्षाप्सरसश्च सूत ।
ब्रह्मविद्यां ब्रह्मचर्यं क्रियाश्च निषेवमाणाऋषयोमुत्रभांति॥१६

हे सूत ! यमराज, वैश्रवण कुबेर, गन्धर्व, यक्ष, अप्सरा तथा अन्य ऋषि भी देवलोक में ब्रह्मचर्य, ब्रह्मज्ञान और कर्म—याग के अवलम्ब से ही देदीप्यमान हो रहे हैं ॥१६॥

जानन्निमं सर्वलोकस्यधर्मं विप्रेंद्राणां क्षत्रियाणांविशां च ।
सकस्मात्त्वंजानतांज्ञानवान्सन् व्यायच्छसेसञ्जयकौरवार्थे ॥

हे सञ्जय ! तू सारे लोक के धर्म तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के धर्मों को जानता हुआ एवं विद्वानों में समझदार विद्वान होकर भी कौरवों के पक्ष की कैसे बातें बना रहा है ॥१७॥

आम्नायेषु नित्यसंयोगमस्य तथाश्वमेधे राजसूये च विद्धि ।
संयुज्यते धनुषा वर्मणा च हस्त्यश्वाद्यै रथ शस्त्रैश्च भूयः ॥

इस धर्मराज का वेदादि सच्छास्त्रों में अच्छा प्रवेश है और अश्वमेध राजसूय आदि यज्ञ कर चुका है। इसके सिवा धनुष, कवच, हाथी, घोड़े, रथ, शस्त्र आदि से अच्छी तरह सम्पन्न और सुसज्जित है ॥१८॥

ते चेदिमे कौरवाणामुपायमवगच्छेयुरवधेनैव पार्थाः ।
धर्मत्राणं पुण्य मेषांकृतंस्यादार्यैवृत्तेभीमसेनंनिगृह्य ॥१९॥

ये पाण्डव, अपने राज्य की प्राप्ति का उपाय, कौरवों का बिना वध किए, जो सन्धि से करना चाह रहे हैं, इस में भीमसेन को आर्य आचरण में बल-पूर्वक चलाकर ये बड़ा ही पुण्य का काम कर रहे हैं ॥१९॥

ते चेत्पित्र्ये कर्मणिवर्तमाना आपद्येरन् दिष्टवशेन मृत्युम् ।
यथाशक्त्या पूरयन्तःस्वकर्म तदप्येषांनिधनंस्यात्प्रशस्तम् ॥

यदि ये पाण्डव अपने कुलक्रमागत युद्ध—धर्म का निर्वाह करते हुए, दैववश से मृत्यु को भी प्राप्त हो जावे, तो स्वधर्मानुसार अपने कर्म का पालन करने से इनको यह मृत्यु भी प्रशंसनीय ही है ॥२०॥

उताहो त्वं मन्यसेशाम्यमेव राज्ञांयुद्धेवर्तते धर्म तन्त्रम् ।
अयुद्धे वावर्तते धर्मतन्त्रं तथैवतेवाचमिमां शृणोमि ॥२१॥

हे सञ्जय ! तुम इस समय जो राज्य का परित्याग करके सन्यास रूप शान्ति का उपदेश कर रहे हो, तो जरा यह बताओ, कि राजाओं का कर्म धर्मानुसार युद्ध करना है या युद्ध छोड़कर वन में भाग जाना है। मैं इस विषय में तुम्हारी वाणी को फिर सुनना चाहता हूं ॥२१॥

चातुर्वर्ण्यस्यप्रथमंसम्विभागमवैत्तत्वंसञ्जयस्वंचकर्म ।
निशम्याथोपाण्डवानांचकर्म प्रशंसवानिंदवायामतिस्ते २२

हे सञ्जय ! तू प्रथम चातुर्वर्ण्य के कर्मों के विभाग पर दृष्टि डाल और फिर अपने कर्म के आग्रह को देख। इस तरह पाण्डवों की वृत्ति को देखकर फिर तेरी जैसी इच्छा हो, उसके अनुसार पाण्डवों की निन्दा या प्रशंसा कर-तुझे अधिकार है ॥२२॥

अधीयीतब्राह्मणोवैयजेत दद्यादीयात्तीर्थमुख्यानिचैव ।
अध्यापयेद्याजयेच्चापियाज्यान् प्रतिग्रहान्वाविहितान्प्रतीच्छेत्

ब्राह्मण वेद का अध्ययन, यजन, दान का ग्रहण और उत्तमर तीर्थों की यात्रा करे। अध्ययन या यज्ञ के अधिकारियों को अध्ययन या यज्ञ कराने तथा धर्म प्रतिपादित दान भी ग्रहण कर ले ॥२३॥

तथाराजन्योरक्षणंवैप्रजानां कृत्वाधर्मेणाप्रमत्तोथदत्वा ।
यज्ञैरिष्ट्वासर्ववेदानधीत्य दारान्कृत्वापुण्यकृदावसेद्गृहान्

पुण्यात्मा क्षत्रिय, बड़ी सावधानी से प्रजा का रक्षण, दान, यज्ञों से यजन और वेदों का अध्ययन करे तथा गृहस्थ धर्म

(स्त्री-आदि) को स्वीकार करके घरमें धर्म-पूर्वक निवास करे। इस तरह धर्मात्मा क्षत्रिय, धर्म का निर्वाह करके अन्त में अपनी इच्छानुसार पुण्यतम ब्रह्मलोक को प्राप्त कर सकता है ॥२४॥

स धर्मात्मा धर्ममधीत्यपुण्यं यदिच्छयाव्रजतिब्रह्मलोकम् ।
वैश्योधीत्यकृषिगोरक्षपण्यैर्वित्तंचिन्वन्पालयन्नप्रमत्तः॥ २५ ॥

वैश्य भी वेदाध्ययन करके कृषि, गोरक्षा और व्यापार से धन को इकट्ठा करे और उस धन को बड़ी सावधानी से समय आने पर मनुष्य मात्र के पालन में लगा देवे। पुण्यात्मा धर्मशील वैश्य भी ब्राह्मण क्षत्रियों की सहायता करता हुआ, अपने गृहस्थ धर्म का आचरण करे ॥२५॥

प्रियन्कुर्वन्ब्राह्मणक्षत्रियाणां धर्मशीलःपुण्यकृदावसेद्गृहान्
परिचर्यावन्दनंब्राह्मणानां नाधीयीत प्रतिषिद्धोस्य यज्ञः।

ब्राह्मणों की सेवा शुश्रूषा में तत्पर हुआ शूद्र, नित्य सावधानी से अपने कल्याण मार्ग की प्राप्ति करे। इसको वेदाध्ययन या यज्ञ के करने की भी आवश्यकता नहीं है। प्राचीन काल से शूद्र धर्म इतना ही चला आ रहा है ॥२६॥

नित्योत्थितोभूतयेऽतन्द्रितःस्यादेवंस्मृतः शूद्रधर्मःपुराणः
एतान्राजापालयन्नप्रमत्तो नियोजयन्सर्ववर्णान्स्वधर्मे ।
अकामात्मासमवृत्तिःप्रजासु नाधार्मिकाननुरुध्येतकामात् २७

प्रमाद छोड़ कर इन धर्मों का निर्वाह करता हुआ और प्रजा को अपने २ धर्मों में चलाता हुआ, राजा काम वासना से रहित होकर प्रजा में सम वृत्ति रखे तथा अधार्मिक पुरुषों का पक्ष ग्रहण न करे ॥२७॥

श्रेयांस्तस्माद्यदि विद्येत कश्चिदभिज्ञातः सर्वधर्मोपपन्नः।
सतंद्रष्टुमनुशिष्यन्प्रजानां नचेतद्बुध्येदितितास्मिन्नसाधुः॥

सब धर्मों से युक्त, पूर्वोक्त धर्म से भी श्रेष्ठ तर, यदि कोई धर्म, कल्याणकारी होगा- तो यह उस धर्म को देखने का विचार करेगा और प्रजा को सिखावेगा। राजा युधिष्ठिर में ऐसा गुण नहीं है, यह जो जानता है, उस पुरुष को तो असाधु ही मानना चाहिए ॥२८॥

यदागृध्येत्परभूतौनृशंसो विधिप्रकोपाद्बलमाददानः।
ततोराज्ञामभवद्युद्धमेतत्तत्रजातंवर्मशस्त्रंधनुश्च ॥२६॥
इन्द्रेणैतद्दस्युवधायकर्म उत्पादितं वर्म शस्त्रं धनुश्च ॥३०॥

विधाता के कोप से जब कोई राजा के नीच विचार से सेना के बल द्वारा दूसरे के ऐश्वर्य छीनने का लालच करता है, तो राजाओं में युद्ध की आग भड़क उठती है और उस समय कवच, शस्त्र और धनुष का प्रयोग चल पड़ता है। इन्द्र ने दस्युओं के वध के लिए ही युद्ध कर्म और कवच, शस्त्र और धनुष की रचना की है ॥२६-३०॥

तत्रपुण्यंदस्युवधेनलभ्यते सोयंदोषःकुरुभिस्तीव्ररूपः।
अधर्मज्ञैर्धर्ममबुध्यमानैः प्रादुर्भूतःसञ्जयसाधुतन्न॥३१॥

उस युद्ध में राज्य लोलुप डाकू राजा के मार देने में पुण्य ही मिलता है। धर्म के नहीं जानने वाले, अधर्मी कौरवों में यह बुराई बड़े तीव्र रूप से उत्पन्न हो गई है। हे सञ्जय! यह अच्छा नहीं है ॥३१॥

अत्र राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो धर्म्यं हरेत्पाण्डवानामकस्मात्
नावेक्षन्ते राजधर्मं पुराणं तदन्वयाः कुरवः सर्व एव ॥३२॥

अब पुत्रों के साथ राजा धृतराष्ट्र भी पाण्डवों के धर्मानुसार प्राप्त करने योग्य राज्यांश को अचानक छीनना चाहता है। यह राजा, प्राचीन राजधर्म की परवाह नहीं करता है और इसके अनुयायी सारे कौरव भी ऐसे ही हो रहे हैं ॥३२॥

स्तेनो हरेद्यत्र धनं ह्यदृष्टः प्रसह्य वा यत्र हरेत दृष्टः ।
उभौ गर्ह्यौ भवतःसञ्जयैतौ किंवैपृथक्त्वंधृतराष्ट्रस्यपुत्रे ३३

हे सञ्जय ! चोर धन को बिना देखे अपहरण करता है और डाकू देखते २ बलपूर्वक छीन लेता है। ये दोनों ही निन्दनीय माने गए हैं। अब तुम यह तो बताओ, कि धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन में चोर डाकुओं से क्या भेद है ॥३३॥

सोयंलोभान्मन्यतेधर्ममेतं यमिच्छतिक्रोधवशानुगामी ।
भागःपुनःपांडवानांनिविष्टस्तन्नः कस्मादाददीरन्परेवै ३४

दुर्योधन तो इतना क्रोध के अनुगामी हो गया है, कि छल से छीने हुए राज्य को भी लोभ वश धर्मानुसार प्राप्त हुआ ही मानता है। पाण्डवों का राज्य तो इन कौरवों के पास न्यास (धरोहर) के रूप में ही था। अब इनके भाग को ये विरोधी कैसे ग्रहण करना चाह रहे हैं ॥३४॥

अस्मिन्पदेयुध्यतांनोवधोपिश्लाघ्यःपित्र्यं परराज्याद्विशिष्टम्
एतान्धर्मान्कौरवाणां पुराणानाचक्षीथाःसञ्जय राजमध्ये ।

इस अवश्य ग्रहण करने योग्य अपने भाग के ग्रहण करने में युद्ध करते हुए हमारा वध भी हो जावे, तो प्रशंसनीय ही है। पिता का छोटा राज्य भी अन्य से प्राप्त विशाल राज्य से अच्छा माना गया है। हे सञ्जय! तू कौरवों के इन प्राचीन धर्मों का राज-सभा में वर्णन करना ॥३५॥

एतेमदान्मृत्युवशाभिपन्नाः समानीता धार्तराष्ट्रेण मूढाः।
इदंपुनःकर्मपापीयएव सभामध्येपश्यवृत्तं कुरूणाम् ॥३६॥

अपने मद में र हुए धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन ने मृत्यु के वशीभूत होकर इन राजाओं को इकट्ठा कर लिया है। सभा के मध्य में इस तरह के कौरवों के आचरण पाप पूर्ण ही हैं। सञ्जय! तू इस पर कुछ विचार करके देख ॥३६॥

प्रियांभार्यांद्रौपदींपांडवानां यशस्विनींशील वृत्तोपपन्नाम्।
यदुपैक्षन्तकुरवोभीष्ममुख्याः कामानुगेनोपरुद्धांव्रजन्तीम्

शील वृत्त से सम्पन्न यशस्विनी पाण्डवों की प्रिय भार्या द्रौपदी को रजोवती अवस्था में सभा ले जाने पर भी भीष्म आदि मुख्य २ कौरव उस की उपेक्षा करते रहे, क्या यह पाप कर्म नहीं है? ॥३७॥

तं चेत्तदा ते सकुमारवृद्धा अवारयिष्यन्कुरवः समेताः।
मम प्रियं धृतराष्ट्रोऽकरिष्यत् पुत्राणां च कृतमस्याभविष्यत्

यदि उस समय बालक से लेकर वृद्ध तक सारे कौरव दुःशासन को रोक देते या राजा धृतराष्ट्र रोक देता, तो मैं इस को

बड़ा अच्छा समझता और इससे धृतराष्ट्र के पुत्रों का कल्याण ही होता ॥३८॥

दुःशासनःप्रातिलोम्यान्निनायसभामध्येश्वशुराणांचकृष्णाम्
सा तत्र नीता करुणं व्यपेक्षद्यतुर्नाथमवाप किंचित् ॥३९॥

धर्म का लोप करके दुःशासन द्रौपदी को श्वसुरों के सन्मुख सभा में ले आया। द्रौपदी बड़े दीन स्वर में रोयी चिल्लायी, परन्तु विदुर के सिवा उस समय उसकी रक्षा करने वाला कोई भी नहीं हुआ ॥३९॥

कार्पण्यादेव सहितास्तत्र भूपा नाशक्नुवन्प्रतिवक्तुंसभायाम्
एकःक्षत्ता धर्म्यमर्थंब्रुवाणोधर्मंबुद्ध्याप्रत्युवाचाल्पबुद्धिम्

अपने आत्मा की दुर्बलता से अनेक इकट्ठे राजा राजसभा में कुछ नहीं कह सके। हां ? एक विदुर ने हा धर्म और नीति को सोचकर क्षुद्र, बुद्धि दुर्योधन को धर्मानुसार बात कही थी। हे सञ्जय! इन सब बातों को भुला कर आज तू सभा में धर्मराज को ही धर्म का उपदेश कर रहा है ॥४०॥

अनुध्वा त्वं धर्ममेतं सभायामथेच्छसे पाण्डवस्योपदेष्टुम्
कृष्णात्वेतत्कर्म चकार शुद्धं सुदुष्करं तत्र सभां समेत्य
येन कृच्छ्रात्पाण्डवानुज्जहार तथात्मानं नौरिव सागरौघात्

द्रौपदी ने तो उस सभा में पहुंचकर शुद्ध और दुष्कर कर्म कर दिखाया, जो उसने समुद्र से नौका की तरह अपने आप और पाण्डवों का उस विपत्ति से उद्धार कर लिया ॥४१॥

यत्राब्रवीत् सूतपुत्रःसभायां कृष्णां स्थितां श्वसुराणां समीपे
न ते गतिर्विद्यते याज्ञसेनि प्रपद्य दासीधार्तराष्ट्रस्य वेश्म
पराजितास्ते पतयो न संति पतिं चान्यंभाविनि त्वं वृणीष्व

उस समय सभा में अपने श्वसुर के सम्मुख खड़ी हुई द्रौपदी से सूत-पुत्र कर्ण ने कहा था- हे याज्ञसेनि! अब तुझे कोई मार्ग नहीं है। अब तो तू दासी बनकर दुर्योधन के महल में चली जा। हे भाविनी! तेरे पति पराजित हो गए हैं, इससे वे अब तेरे पति ही नहीं रहे। अब तो तू अन्य पति को वर ले ॥४२-४३॥

यो बीभत्सोर्हृदये प्रोत आसीदस्थिच्छिदन् मर्मघाती सुघोरः
कर्णाच्छरोवाङ्मयस्तिग्मतेजाःप्रतिष्ठितो हृदये फाल्गुनस्य

यह कर्ण के मुख से निकला हुआ बाणों का शर, अर्जुन के हृदय में घुस गया है। इस मर्मघाती, घोर, तीक्ष्ण वचनरूपी शर ने अर्जुन की अस्थि छेद डाली और यह अभी तक अर्जुन के हृदय में गड़ा हुआ है ॥४४॥

कृष्णाजिनानिपरिधित्समानान्दुशासनः कटुकान्यभ्यभाषत्
एते सर्वे षढतिला विनष्टाः क्षयं गता नरकं दीर्घकालम्॥

जब पाण्डव, कृष्ण मृग के चर्म धारण कर रहे थे, तब दुःशासन ने भी बड़े ही कटु शब्दों का प्रयोग किया था, कि ये क्लीव पाण्डव, अब नष्ट हो गए और चिरकाल के लिए दुःख के गड्ढे में गिर गए हैं ॥४५॥

गांधारराजःशकुनिर्निकृत्या यदब्रवीत् द्यूतकाले स पार्थम्
पराजितो नंदनः किं तवास्ति कृष्णाया त्वं दीव्य वै याज्ञसेन्या

गान्धारराज शकुनि ने छल से जीत कर द्यूत के समय धर्मराज से कहा था—कि तुम्हारा छोटा भाई भी जीत लिया। अब तुम्हारे पास क्या है; अब तो तुम याज्ञसेनी द्रौपदी को दाव पर रखकर खेल सकते हो ॥४६॥

जानासित्वं सञ्जयसर्वमेतत् द्यूतेवाक्यंगर्ह्यमेवंयथोक्तम् ।
स्वयं त्वहंप्रार्थये तत्रगन्तुं समाधातुं कार्यमेतद्विपन्नम् ॥४७

हे सञ्जय ! तू सब कुछ जानता है, जो २ निन्दित वचन द्यूत के समय बोले गए हैं, परन्तु मैं तो इस बिगड़े हुए काम को बनाने के लिए हस्तिनापुर स्वयं जाना चाह रहा हूँ ॥४७॥

अहापयित्वा यदि पांडवार्थं शमं कुरूणामपिचेच्छकेयम् ।
पुण्यञ्चमेस्याच्चरितंमहोदयं मुच्येरंश्चकुरवोमृत्युपाशात् ४८

यदि पाण्डवों का स्वार्थ नष्ट न करके मैं कौरवों से सन्धि करने में कृत-कार्य हो गया, तो मुझे बड़ा ही पुण्य और मेरा चरित बड़ा ही प्रशँसनीय हो जावेगा तथा कौरव भी मृत्यु की पाश से छुटकारा पा जावेंगे ॥४८॥

अपिमेवाचंभाषमाणस्यकाव्यां धर्मारामामर्थवतीमहिंस्राम्।
अवेक्षेरन्धार्तराष्ट्राःसमक्षंमांचप्राप्तं कुरवःपूजयेयुः ॥४९॥

विद्वानों के सम्मत, धर्मानुकूल, सार्थक, युद्ध—विरोधी, उचित रीति से कहे हुए मेरे कथन को समक्ष में सुन कर उस पर

धृतराष्ट्र-पुत्र विचार कर सकता है तथा अन्य कौरव, उस समय वहां मेरे आगमन को आदर की दृष्टि से देख सकते हैं ॥४६॥

अतोन्यथा रथिना फाल्गुनेन भीमेन चैवाहवदंशितेन ।
परासक्तान्धार्तराष्ट्रांश्चविद्धि प्रदह्यमानान्कर्मणास्वेनपापान्

यदि मेरी बात को उन्होंने नहीं माना, तो महारथी अर्जुन और युद्ध को सन्नद्ध भीमसेन द्वारा सम्पत्ति से विहीन हुए, पापी धृतराष्ट्र-पुत्रों को अपने कर्म से सन्तापित होते हुए देख लेना ॥५०॥

पराजितान्पांडवेयांस्तुवाचो रौद्रारुक्षाभाषत धार्तराष्ट्रः ।
गदाहस्तो भीमसेनोऽप्रमत्तो दुर्योधनंस्मारयिताहिकाले५१

दुर्योधन ने द्यूत में पराजित पाण्डवों से मर्म के छेद देने वाली रूक्ष वाणी कही थी। युद्ध के समय गदा धारी भीमसेन बड़ी सावधानी से युद्ध करता हुआ, दुर्योधन को उस अनुचित कृत्य को याद दिलावेगा ॥५१॥

सुयोधनोमन्युमयोमहाद्रुमःस्कन्धःकर्णःशकुनिस्तस्यशाखा
दुःशासनःपुष्पफलेसमृद्धे मूलंराजाधृतराष्ट्रोमनीषी॥५२॥

दुर्योधन एक क्रोध का विशाल वृक्ष है। इसका स्कन्ध कर्ण और इसकी शाखा शकुनि तथा वृद्धि युक्त पुष्प फल दुःशासन और इसका मूल मनीषी राजा धृतराष्ट्र है ॥५२॥

युधिष्ठिरोधर्ममयोमहाद्रुमः स्कन्धोर्जुनोभीमसेनोस्य[illegible]ाखा
माद्रीपुत्रौ पुष्पफले समृद्धे मूलं त्वहं ब्रह्मच ब्राह्मणाश्च ।

वनं राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो व्याघ्रास्ते वै सञ्जय पांडुपुत्राः
मा वनं छिंधि स व्याघ्रं मा व्याघ्रा नीनशन्वनात् ॥५४

हे सञ्जय! इस तरह युधिष्ठिर भी एक धर्म का विशाल वृक्ष है। इसके स्कन्ध अर्जुन और शाखा भीमसेन हैं। इसके समृद्ध पुष्प फल माद्री-पुत्र नकुल सहदेव और मूल में वेद या ब्राह्मण हैं! राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रों सहित वन है और इसमें वे ही पाण्डु-पुत्र सिंह के सदृश हैं। अब न तो व्याघ्रों सहित वन को काटना चाहिए और न वन से व्याघ्र निकालने ही उचित हैं ॥५३-५४॥

निर्वनो वध्यते व्याघ्रो निर्व्याघ्रं छिद्यते वनम्।
तस्माद् व्याघ्रो वनं रक्षेद्वनं व्याघ्रं च पालयेत् ५५

यदि वन नहीं होगा, तो सिंह मार लिए जा सकते हैं और विना सिंह के वन भी काट लिया जाता है। इससे सिंह वन की और वन सिंह की रक्षा करता रहे ॥५५॥

लता धर्मा धार्तराष्ट्राः शाखा सञ्जय पांडवाः।
न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता ॥५६॥

हे सञ्जय! धृतराष्ट्र-पुत्र लता वेले हैं और पाण्डव शाखा के तुल्य हैं। महा वृक्ष की शाखा का अवलम्ब लिए विना कभी भी लता नहीं बढ़ सकती है ॥५६॥

स्थिता शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिन्दमाः।
यत्कृत्यं धृतराष्ट्रस्य तत्करोतु नराधिपः ॥५७॥

पाण्डव, सेवा करने को भी उपस्थित हैं और ये अरिन्दम युद्ध को भी उपस्थित हैं। अब राजा धृतराष्ट्र को उचित लगे, उसे ही वह स्वीकार कर ले ॥५७॥

स्थिताः शमे महात्मानः पाण्डवा धर्मचारिणः।
योधाः समर्थास्तद्वाचक्षीथा यथातथम् ॥५८॥
इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि
कृष्णवाक्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

हे विद्वन्! धर्म से व्यवहार करने वाले, पाण्डव, सन्धि के लिए उपस्थित हैं। तथा ये सब तरह योद्धा और समर्थ हैं, तुम यह भी अच्छी तरह उनको समझा देना ॥५८

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सञ्जययानपर्व में कृष्ण वाक्य का उनतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

तीसवां अध्याय

संजय उवाच—

आमन्त्रये त्वां नरदेवदेव गच्छाम्यहं पांडवस्वस्ति तेऽस्तु।
कच्चिन्न वाचावृजिनंहिकिंचिदुच्चारितम्मेमनसो भिषंगात्॥१

सञ्जय बोला—हे नरदेवदेव! पाण्डव! मैं आप से विदा चाहता हूं और अब जाता हूं, आपका कल्याण होवे। मैंने कुछ मन के आवेश में आकर वाणी से अनुचित तो नहीं कह दिया।

जनार्दनम्भीमसेनार्जुनौच माद्रीसुतौसात्यकिंचेकितानम् ।
आमन्त्र्यगच्छामिशिवंसुखंवः सौम्येनमांपश्यतचक्षुषानृपाः

श्रीकृष्ण, भीमसेन, अर्जुन, माद्री-पुत्र, नकुल, सहदेव, सात्यकि, चेकितान आदि राजाओं से मैं अनुज्ञा (इजाजत) लेकर जाता हूँ । अब तुम्हें सुख और कल्याण प्राप्त होवे । हे नृप ! तुम मुझे कृपा दृष्टि से देखते रहना ॥२॥

युधिष्ठिर उवाच—

अनुज्ञातःसञ्जयस्वस्तिगच्छ ननःस्मरस्यप्रियञ्जातुविद्वन्
विद्मश्चत्वांतेचवयश्चसर्वे शुद्धात्मानंमध्यगतंसभास्थम् ॥३॥

युधिष्ठिर ने कहा— हे सञ्जय ! तुमको विदा दी जाती है, अब तुम जाओ—तुम्हारा कल्याण हो । हे विद्वन ! कभी हमारा अप्रिय मत विचारना । हम और वे सारे कौरव, तुमको सभ्य, शुद्धात्मा मध्यस्थ पुरुष मानते हैं ॥३॥

आप्तोदूतःसञ्जयसुप्रयोसि कल्याणवाक्शीलवांस्तृप्तिमांश्च
नमुह्येस्त्वंसञ्जयजातुमत्या नचक्रुध्येरुच्यमानोदुरुक्तैः॥४॥

हे सञ्जय ! तुम आप्त दूत, प्रिय, कल्याण वाणी वाले, शील-वान् और कृतार्थ हो । तुम्हारी बुद्धि कभी मोहित नहीं हो सकती है और न कटु वचन बोलने पर तुम क्रोध करते हो ॥४॥

नमर्मगांजातुवक्तासिरूक्षां नोपश्रुतिंकटुकांनोतमुक्ताम् ।
धर्मारमा मंचतीमहिंसामेतां वाचं तव जानीम सूत ॥५॥

हे सूत ! तुम मर्म के छेदन करने वाली, रूक्ष, नीरस, अप्रकृत, कार्य की सिद्धि से शून्य वाणी नहीं बोलते हो। हम तो तुम्हारी वाणी को धर्मानुकूल, सार्थक और हिंसाकर्म (युद्ध) से शून्य मानते हैं ॥५॥

त्वमेवः प्रियतमोसि दूत इहा गच्छेद्विदुरो वा द्वितीयः ।
अभीक्ष्णदृष्टोसिपुराहिनस्त्वं धनञ्जयस्यात्मसमःसखासि६

आप तो हमारे ही प्रिय दूत हो और द्वितीय विदुर के समान होकर यहां आये हो। पूर्वकाल में तुम बार २ मिलते रहते थे और अर्जुन के तो आत्मा के समान प्रिय सखा थे ॥६॥

इतोगत्वासञ्जयक्षिप्रमेव उपातिष्ठेथाब्राह्मणान् ये तदर्हाः ।
विशुद्धवीर्याश्चरणोपपन्नाः कुलेजाताःसर्वधर्मोपपन्नाः॥७॥

हे सञ्जय ! यहां से जाते ही शीघ्र उन उत्तम ब्राह्मणों के पास पहुंचना, जो पूजा के योग्य, विशुद्ध, तेजवाले, वेदशाखाध्यायी, कुलीन और सारे धर्मों से सम्पन्न हो ॥७॥

स्वाध्यायिनोब्राह्मणाभिक्षवश्च तपस्विनायेचनित्यावनेषु ।
अभिवाद्यावैमद्वचनेनवृद्धास्तथेतरेषां कुशलं वदेथाः॥८॥

जो तपस्वी, नित्य वनवासी, स्वाध्याय शील, भिक्षु ब्राह्मण हों, उन वृद्धों को मेरी ओर से प्रणाम कहना और इतर जनों से कुशल समाचार कह देना ॥८॥

पुरोहितं धृतराष्ट्रस्य राज्ञस्तथा चार्यानृत्विजो ये च तस्य ।
तैश्चत्वं तात सहितैर्यथार्हं संगच्छेथाः कुशलेनैव सूत॥९॥

हे तात ! राजा धृतराष्ट्र के पुरोहित, आचार्य, ऋत्विक् उन सब से यथा-योग्य मिलना और कुशल प्रश्न के अनन्तर हमारी कुशल कह देना ॥९॥

अश्रोत्रियायेचवसान्तवृद्धा मनस्विनःशीलवलोपपन्नाः ।
आशंसन्तोस्माकमनुस्मरन्तो यथाशक्तिधर्ममात्रांचरन्तः१०
श्लाघस्वमांकुशलिनंस्मतेभ्यो ह्यनामयन्तातपृच्छेर्जघन्यम् ।
ये जीवन्ति व्यवहारेणराष्ट्रे येपालयन्तोनिवसन्तिराष्ट्रे ११

जो वेद के नहीं पढ़े हुए, वृद्ध, मनस्वी, शील वल से युक्त हमारा कल्याण चाह रहे हैं तथा यथाशक्ति धर्म का आचरण करते हुए हमको याद कर लेते हैं, तुम उनको प्रथम प्रशंसा करना और हमारी कुशलता कह कर फिर उनसे कुशल पूछना। जो वैश्य, राष्ट्र में व्यवहार करके जीविका चलाते हैं तथा जो क्षत्रिय राष्ट्र में प्रजा का पालन करते हुए, रहते हैं, उनसे भी कुशल कह कर कुशल पूछ लेना ।।१०-११॥

आचार्य इष्टोनयगो विधेयो वेदानभीप्सन्ब्रह्मचर्यं चचार ।
योस्त्रञ्चतुष्पात्पुनरेवचक्रे द्रोणःप्रसन्नोभिवाद्यस्त्वयासौ१२

जो आचार्य, प्रेमी, नीतिमान्, पूज्य, वेदाध्ययन के ध्यान से ब्रह्मचर्य का पालक है तथा जिसने चतुष्पात(मंत्र,उपचार, प्रयोग, संहार) अस्त्रों का प्रयोग विशेष रीति से सिखाया, उन प्रसन्न होते हुए द्रोणाचार्य को प्रणाम कहना ॥१२॥

अधीतविद्यश्चरणोपपन्नो योऽस्त्रश्चतुष्पात्पुनरेवचक्रे ।
गन्धर्वपुत्रप्रतिमन्तरस्विनं तमश्वत्थामानंकुशलंस्मपृच्छेः१३

विद्वान्, वेद के ज्ञाता, चतुष्पात् अस्त्रों के व्याख्याता, गन्धर्व पुत्र के समान गान में कुशल, महा-वेग-शील, अश्वत्थामा से भी कुशल पूछना ॥१३॥

शारद्वतस्यावसथंस्मगत्वा महारथस्यात्मविदांवरस्य ।
त्वंमामभीक्ष्णम्परिकीर्तयन्वैकृपस्यपादौसञ्जयपाणिनास्पृशेः

हे सञ्जय ! आत्म-ज्ञानियों में श्रेष्ठ, शारद्वान्-पुत्र महारथी कृपाचार्य के भवन पर जाकर और मेरा नाम लेकर उनके चरण छूना ॥१४॥

यस्मिन् शौर्यमानृशंस्यन्तपश्च प्रज्ञाशीलं श्रुतिसत्वेधृतिश्च ।
पादौ गृहीत्वाकुरुसत्तमस्य भीष्मस्यमांतत्रनिवेदयेथाः॥१५

जिस में शूरता, उदारता, तप, बुद्धि, शील, विद्या, मनोबल और धैर्य, उत्तम रीति से विद्यमान हैं, उन कुरु-वंश-श्रेष्ठ भीष्म के चरणों को मेरा नाम लेकर स्पर्श करना ॥१५॥

प्रज्ञाचक्षुर्यः प्रणेता कुरूणां बहुश्रुतो वृद्धसेवी मनीषी ।
तस्मैराज्ञेस्थविरायाभिवाद्य आचक्षीथाःसञ्जयमामरोगम्१६

हे सञ्जय ! कुरुवंश का राजा, विद्याव्यसनी, वृद्धों का सेवक, बुद्धि की आंखों वाला, राजा धृतराष्ट्र सब कुछ समझने वाला है। तुम उस वृद्ध राजा को मेरी ओर से प्रणाम करके मेरी कुशल कह देना ॥१६॥

ज्येष्ठः पुत्रो धृतराष्ट्रस्य मन्दो मूर्खःशठःसञ्जय पापशीलः ।
प्रशास्तावैपृथिवीयेनसर्वा सुयोधनंकुशलंतातपृच्छेः॥१७॥

हे तात ! सञ्जय ! धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र, परिणाम का नहीं देखने वाला, बेसमझ, चालाक और अन्याय शील है तथा जो सारी पृथिवी का शासन कर रहा है, तुम उससे भी मेरी ओर से कुशल पूछना ॥७॥

भ्राता कनीयानपितस्यमन्दस्तथाशीलःसञ्जय सोपिशश्वत् ।
महेष्वासःशूरतमःकुरूणां दुःशासनःकुशलंतातवाच्यः॥१८

हे सञ्जय ! राजा दुर्योधन का छोटा भाई, दुर्योधन की तरह ही बेसमझ और सदा उसके से काम ही करने वाला है । जो कुरुओं में बड़ा शूरवीर और महा धनुर्धर है- हे तात ! तुम उससे भी मेरी ओर से कुशल पूछना ॥१८॥

यस्य कामोवर्ततेनित्यमेव नान्यच्छमाद्भारतानामितिस्म ।
सबाल्हिकानामृषभोमनीषीत्वयाभिवाद्यःसञ्जय साधुशीलः

हे सञ्जय ! जिसके चित्त में इन भारत क्षत्रियों में सन्धि कराने की ही लगी रहता है, उस उत्तम आचारवान् बाल्हिक वीरों में श्रेष्ठ, मनीषी, बाल्हिकराज को मेरा प्रणाम कहना ॥१६॥

गुणैरनेकैः प्रवरैश्च युक्तो विज्ञानवान्नैव च निष्ठुरोयः ।
स्नेहादमर्षसहतेसदैव ससोमदत्तः पूजनीयो मतो मे ॥२०॥

जो अनेक उत्तम २ गुणों से युक्त, बुद्धिमान् तथा कठोर प्रकृति का नहीं है । जो अपने स्नेह से हम लोगों के क्रोध को

सदा सह लेता है, उस पूज्यनीय सोमदत्त को मेरा प्रणाम निवेदन करना ॥२०॥

अर्हत्तमः कुरुषु सौमदत्तिः सनोभ्राता सञ्जय मत्सखा च ।
महेष्वासः रथिनामुत्तमार्हः महामात्यः कुशलंतस्यपृच्छेः २१

हे सञ्जय! कौरवों में माननीय, सोमदत्त-पुत्र हमारा भाई और मेरा मित्र है। यह मन्त्रि के सहित महाधनुर्धर और महारथियों में श्रेष्ठ है। तुम प्रेम पूर्वक मेरी ओर से इसकी कुशल पूछना ॥२१॥

ये चैवान्ये कुरुमुख्या युवानः पुत्राः पौत्रा भ्रातरश्चैव ये नः ।
यं यमेषांमन्यसेये नयाग्यन्त तत्प्रोच्या नामयंसूत वाच्याः २२

हे सूत! जो कुरु-वंश में मुख्य युवा हमारे पुत्र, पौत्र या भ्राता हैं, तुम जिन २ को जैसा २ योग्य समझो, उससे उसी तरह कुशल पूछना और कह देना ॥२२॥

येराजानःपाण्डवायोधनाय समानीताधार्तराष्ट्रेणकेचित् ।
वशातयःशाल्वकाःकेकयाश्च तथांबष्ठायेत्रिगर्ताश्चमुख्याः२३
प्राच्योदिच्यादाक्षिणात्याश्चशूरास्तथाप्रतीच्याःपार्वतीयाश्चसर्वे
अनृशंसाः शीलवृत्तोपपन्नास्तेषांसर्वेषांकुशलंसूतपृच्छेः॥२४॥

हे सूत! हम पाण्डवों से युद्ध करने के लिए धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन ने जो वशाति, शाल्वक, केकय, अम्बष्ठ, त्रिगर्त तथा पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण एवं पर्वतीय मुख्य २ राजा इकट्ठे किये हैं, उनमें जो भी उदार और धर्मशील हो, उन २ सबसे मेरी ओर से कुशल पूछना ॥२३-२४॥

हस्त्यारोहा रथिनःसादिनश्च पदातयश्चार्यसंघामहान्तः ।
आख्यायमांकुशलिनंस्मनित्यमनामयंपरिपृच्छेःसमग्रान् २५

जो हाथी, घोड़े, रथों के सवार तथा वीर पदातियों के उत्तम उत्तम संघ हैं, उन सबसे मेरी कुशल कह कर उनकी कुशल पूछना ॥२५॥

तथाराज्ञोह्यर्थयुक्तानमात्यान् दौवारिकान्ये चसेनांनयन्ति
आयव्यय येगणयन्तिनित्यमर्थांश्चये महतश्चिंतयन्ति ॥२६॥

राजा धृतराष्ट्र के अर्थ मन्त्री अन्य मन्त्री, द्वारपाल, पांच प्रकार की सेना के नेता, आय और व्यय की गणना तथा उलझन के प्रश्नों पर विचार करने वाले मन्त्री आदि से मेरी कुशल कह कर मेरी ओर से उनकी कुशल पूछना ॥२६॥

वृन्दारकंकुरुमध्य ष्वमूढं महाप्रज्ञंसर्वधर्मोपपन्नम् ।
नतस्ययुद्धंरोचतेवैकदाचिद्वैश्यापुत्रं कुशलंतातपृच्छेः २७

कुरुओं में श्रेष्ठ, समझदार, महा बुद्धिमान, सब धर्मों से युक्त, राजा धृतराष्ट्र का वैश्यकन्या में उत्पन्न पुत्र युयुत्सु है। यह हम दोनों के युद्ध को पसन्द नहीं करता। हे तात! तुम इनकी कुशल पूछना ॥२७॥

निकर्तनेदेवनेयोऽद्वितीयश्छन्नोपधःसाधुदेवीमताक्षः ।
योदुर्जयोदेवरथेनसंख्ये सचित्रसेनःकुशलंतातवाच्यः॥२८

हे तात! जो छल करके खेलने में अद्वितीय है तथा पांसों की नसों का जानने वाला और छल छुपाकर खेलने वाला, अच्छा

खिलारी है। जिसको युद्ध में भीष्म भी नहीं जीत सका। उस चित्रसेन से कुशल पूछना ॥२८॥

गांधारराजःशकुनिःपार्वतयो निकर्तनेयोऽद्वितीयोऽक्षदेवी।
मानंकुर्वन्धार्तराष्ट्रस्यसूत मिथ्याबुद्धेःकुशलंतातपृच्छेः

पर्वत प्रदेश गान्धार का अधिपति, छल से पांसों के फैंकने में अद्वितीय, दुर्योधन के महत्व को स्थापन करने में प्रयत्नशील, अज्ञानी शकुनि से भी कुशल पूछना ॥२९॥

यःपाण्डवानेकरथेनवीरःसमुत्सहत्यप्रधृष्यान्विजेतुम्।
योमुह्यतांमोहयिताद्वितीयो वैकर्तनःकुशलं तस्यपृच्छेः॥३०।

जो वीर, अकेला ही दुर्धर्ष पाण्डवों के जीतने का उत्साह करता रहता है। जो भूल करने वाले दुर्योधनादिकों को अधिक भूल भूलैय्या में डालता रहता है, उस सूर्य-पुत्र कर्ण से भी तुम कुशल पूछना ॥३०॥

स एव भक्तःसगुरुःस भर्ता स वै पिता स च माता सुहृच्च
अगाधबुद्धिर्विदुरो दीर्घदर्शी सनोमन्त्रीकुशलंतस्यपृच्छेः३१।

हे तात! जो हमारा भक्त, पूज्य, स्वामी, पिता, माता और मित्र है। जो विशाल बुद्धि, दीर्घदर्शी हमारा मन्त्री भी है, तुम उन विदुर से कुशल पूछना ॥३१॥

वृद्धाः स्त्रियो याश्चगुणोपपन्ना ज्ञायन्ते नः सञ्जय मातरस्ताः
ताभिःसर्वाभिःसहिताभिःसमेत्यस्त्रीभिःसवृद्धाभिरभिवादं च

हे सञ्जय ! जो हमारे कुल की वृद्ध, गुणों से युक्त, माता बहिनें हैं, उन सब से एक बार ही मिलकर हमारा प्रणाम कह देना ॥ ३२ ॥

कच्चित्पुत्राजीवपुत्राःसुसम्यग्वर्ततेवोवृत्तिमनृशंसरूपाः ।
इतिस्मोक्त्वासञ्जयब्रूहिपश्चादजातशत्रुःकुशलीसपुत्रः॥३३॥

हे सञ्जय ! इन वृद्धा स्त्रियों से पूछना, कि तुम्हारे पुत्र पौत्र, तुम्हारे साथ उदार और उचित व्यवहार तो करते हैं । इतना कह कर उनसे कह देना, कि युधिष्ठिर भी अपने पुत्रादि के साथ कुशल से है ॥३३॥

यानोभार्याःसञ्जयवेत्थतत्र तासांसर्वासांकुशलन्तातपृच्छेः।
सुसंगुप्ताःसुरभयोनवद्याःकच्चिद्गृहानावसथाप्रमत्ताः॥३४।

हे सञ्जय ! वहाँ हमारी जिन छोटे बड़े भाइयोंकी बधुओंको देखो, उन सबसे कुशल पूछना । वे सुरक्षित, कीर्तियुक्त,प्रशंसनीय होकर सावधानी से तो अपने गृहस्थ धर्म का पालन कर रही हैं ।

कच्चिद्वृत्तिंश्वशुरेषुभद्राः कल्याणींवर्तध्वमनृशंसरूपाम् ।
यथाचवःस्युःपतयोऽनुकूला स्तथावृत्तिमात्मनःस्थापयध्वम्

तुम सब अपने २ श्वसुरोंसे तो उदार और कल्याणकारी व्यवहार करती हो तथा जिस तरह तुम्हारे पति तुम्हारे अनुकूल रह सके,तुम उनके साथ वैसाही उत्तम व्यवहार तो करती रहती हो ।

यानःस्नुषाःसञ्जयवेत्थतत्र प्राप्ताःकुलेभ्यश्चगुणोपपन्नाः
प्रजावत्यो ब्रूहिसमेत्यताश्च युधिष्ठिरो वोभ्यवदत्प्रसन्नः ।

हे सञ्जय! जो गुणवती पुत्र-वधुएँ अच्छे २ कुलों से आई हैं, उन सब से कह देना, कि राजा युधिष्ठिर ने तुम सबको पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया है॥ ३६॥

कन्यास्त्र जेथाः सदनेषुसञ्जय अनामयंमद्वचनेन पृष्ट्वा।
कल्याणाः संतुपतयोनुकूला यूयम्पतीनां भवतानुकूलाः ३७

हे सञ्जय! तुम महलों में जाकर हमारी कन्याओं से हमारा प्रेमालिङ्गन कहना और उनसे मेरी ओर से कुशल पूछना, कि तुम्हारे सुयोग्य पति तुम्हारे अनुकूल तो हैं और तुम भी पतियों के अनुकूल आचरण तो करती हो॥ ३७॥

अलङ्कृता वस्त्रवत्यःसुगन्धा अबीभत्सा सुखिता भोगवत्य
लघुयासान्दर्शनंवाक्चलघ्वी वेशस्त्रियःकुशलंतातपृच्छेः३८

अलङ्कारों से युक्त, वस्त्रधारिणी, सुगन्धित द्रव्यों को लगाए हुए, सुन्दर, सुखमयी, भोग विलासों से युक्त, मन को आकर्षण करने वाली और वाणी से चित्त को हरने वाली, राजकुल की वेश्याओं से कुशल पूछना॥ ३८॥

दास्यः स्युर्याश्चदासाः कुणांतदाश्रियाबहवकुब्जखञ्जाः
आख्यायमांकुशलिनंस्मतेभ्योप्यनामयं परिपृच्छेर्जघन्यम्

कौरवों के दास दासी, रानवास में रहने वाले कुबड़े, लंगड़े सेवकों से मेरी कुशलता कह कर पीछे उनकी कुशलता पूछना ३९

कच्चिद्वृत्तिं वर्तते वै पुराणीं कच्चिद्भोगान्धार्तराष्ट्रो ददाति
अङ्गहीनान्कृपणान्वामनान्वा यानानृशंस्योधृतराष्ट्रोबिभर्ति

प्राचीन काल से चली आने वाली वृत्तियां और भोगों के साधनों को धृतराष्ट्र-पुत्र सबको देता तो होगा, तुम अंगहीन दरिद्री कुबड़े आदि दया के योग्य मनुष्यों से मेरी ओर से पूछना, कि धृतराष्ट्र तुम्हारा भरण-पोषण तो करता रहता है ॥ ४० ॥

अन्धांश्चसर्वान्स्थविरांस्तथैव हस्त्याजीवाबहवोयेत्रसन्ति ।
आख्यायमांकुशलिनंस्मतेभ्योऽप्यनामयंपरिपृच्छेर्जघन्यम्

अन्धे और वृद्ध हुए पुरुष तथा जो पुण्यशालाओं से अपनी जीविका पाते हैं, उन सबसे मेरा कुशल कह कर फिर उनसे कुशल पूछना ॥ ४१ ॥

माभैष्ट दुःखेन कुजीवितेन नूनं कृतं परलोकेषु पापम् ।
निगृह्यशत्रून्सुहृदोनुगृह्यवासोभिरन्नेनचवोभरिष्ये॥४२॥

अब तुम इस दुःखपूर्ण कुजीवन से मत डरो। तुमने पूर्व जन्म में कोई पाप ही किया था। अब मैं शत्रुओं को मार कर मित्रों को आनन्दित करूंगा। तब तुमको भी अन्न वस्त्र से सुखी बना दूंगा ॥ ४२ ॥

सन्त्येवमे ब्राह्मणेभ्यःकृतानिभाविन्यथोनोबतवर्तयन्ति ।
तान्पश्यामियुक्तरूपांस्तथैव तामेवसिद्धिंश्रावयेथानृपन्तम्

राजा दुर्योधन से कहना, कि मैंने कुछ ब्राह्मणों को वृत्तियाँ नियत कर रखी थी। तुम्हारे अधिकारी उनको ठीक नहीं दे रहे हैं। मैं उनको उन्हीं वृत्तियों से युक्त देखना चाहता हूं और वे वृत्तियाँ, ज्यों का त्यों जारी कर दी-इसकी सूचना भी दूत द्वारा मेरे पास आ जानी चाहिए ॥४३॥

येचानाथा दुर्बलाः सर्वकालमात्मन्येव प्रयतंतेथ मूढाः।
तांश्चापि त्वंकृपणान्सर्वथैवास्मद्वाक्यात्कुशलंतातपृच्छेः॥४४

हे तात ! जो सब तरह से दुर्बल और अनाथ हैं। जो अशक्त कर्म करने का उत्साह मात्र करते हैं और कर्म करने की शक्ति नहीं रखते हैं। उन दीन जनों से भी मेरी ओर से कुशल पूछना ॥४४॥

येचाप्यन्येसंश्रिताधार्तराष्ट्रान्नानादिग्भ्योऽभ्यागताःसूतपुत्र।
दृष्ट्वातांश्चैवार्हतश्चापिसर्वान्संपृच्छेथाः कुशलंचाव्ययञ्च

हे सूतपुत्र ! अनेक देशों से आये हुए, धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन के आश्रित, सब तरह की पूजा से युक्त, अतिथियों से मेरी ओर से कुशल और निरामय पूछना ॥४५॥

एवंसर्वानागताभ्यागतांश्च राज्ञोदूतान्सर्वदिग्भ्योभ्युपेतान्।
दृष्ट्वासर्वान्कुशलन्तांश्चसूत पश्चादहंकुशलीतिप्रवाच्यः ४६

हे तात ! इस प्रकार आए हुए, अभ्यागत तथा सारी दिशाओं से आए हुए राजा धृतराष्ट्र के सारे दूतों से कुशल पूछना और फिर मेरी उनसे कुशल कह देना ॥४६॥

नहीदृशाःसन्तिपरेपृथिव्यां येयोधकाधार्तराष्ट्रेणलब्धाः ।
धर्मस्तुनित्योममधर्मएव महाबलःशत्रुनिबर्हणाय ॥४७॥

यद्यपि पृथिवी पर ऐसे अन्य योद्धा नहीं हैं, जैसे दुर्योधन को मिले हुए हैं, परन्तु धर्म ही नित्य और शत्रु के जीतने में महाबली है ॥४७॥

इदं पुनर्वचनं धार्तराष्ट्रं सुयोधनं सञ्जय श्रावयेथाः ।
यस्तेशरीरेहृदयंदुनोति कामःकुरूनसपत्नोनुशिष्याम् ४८

नविद्यतेयुक्तिरेतस्यकाचिन्नैवंविधाःस्यामयथाप्रियन्ते ।
ददस्ववाशक्रपुरींममैव युध्यस्ववाभारतमुख्यवीर ॥४९॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि
युधिष्ठिरसन्देशे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

हे सञ्जय! धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन को यह वचन अच्छी तरह सुना देना, कि जो यह कामना तेरे हृदय को बार २ क्लेशित करती रहती है, कि मैं शत्रुहीन होकर कौरवों का शासन करूँ, वह ठीक नहीं है। इस तरह हमारा तुम्हारा प्रेम स्थायी नहीं हो सकता। हे भारत-मुख्य-वीर! अब तुम या तो हमारी इन्द्रप्रस्थ नगरी को प्रदान कर दो या युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो जाओ ॥४८-४९॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सञ्जययानपर्व में युधिष्ठिर सन्देश का तीसवां अध्याय सम्पूर्ण

इकतीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच—

उत संतमसंतं वा बालं वृद्धं च सञ्जय ।
उताबलं बलीयांसं धाता प्रकुरुते वशे ॥१॥

युधिष्ठिर बोले—हे सञ्जय ! दुष्ट, सज्जन, बाल, वृद्ध, निर्बल और बलवान्, सब विधाता के वश में घूम रहे हैं ॥१॥

उत बालाय पाण्डित्यं पण्डितायोत बालताम् ।
ददाति सर्वमीशानः पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरन् ॥२॥

सर्व शक्तिमान्, ईश्वर, पूर्व की प्रेरणा से मूर्ख को पण्डिताई और पण्डित को मूर्खता देता रहता है ॥२॥

बलं जिज्ञासमानस्य आचक्षीथ यथातथम् ।
अथ मन्त्रं मन्त्रयित्वा याथातथ्येन हृष्टवत् ॥३॥
गावल्गणे कुरून् गत्वा धृतराष्ट्रं महाबलम् ।
अभिवाद्योपसंगृह्य ततः पृच्छेरनामयम् ॥४॥
ब्रूयाश्चैनं त्वमासीनं कुरुभिः परिवारितम् ।
तवैव राजन् वीर्येण सुखं जीवन्ति पांडवाः ॥५॥

हे गवल्गण के पुत्र ! सञ्जय ! सेना की जिज्ञासा करने वाले दुर्योधन को सेना की स्थिति बता देना । इस तरह दुर्योधन के पास बड़ी प्रसन्नता से ठीक २ बातचीत करके कौरव-वीरों के मध्य में स्थित महाबली राजा धृतराष्ट्र के पास पहुँचना और

उनके चरणों को छूकर तथा प्रणाम करके कुशल पूछना और कौरवों से घिर कर बैठे हुए उन, राजा धृतराष्ट्र से कहना—हे राजन्! तुम्हारे बल से पाण्डव विराट नगरी में सुख से जीवित हैं ॥२—५॥

तव प्रसादाद्बालास्ते प्राप्ता राज्यमरिन्दम ।
राज्ये तान् स्थापयित्वाग्र नोपेक्षस्व विनश्यतः ॥६॥

हे अरिन्दम! पूर्व में आपकी कृपा से उन तुम्हारे बालकों को राज्य मिल गया था। तुम अपने आगे ही उनके राज्य पर उनको बैठा दो। अब तुम इनके क्लेश की उपेक्षा न करो ॥६॥

सर्वमप्येतदेकस्य नालं सञ्जय कस्यचित् ।
तात संहत्य जीवामो द्विषतां मावशं गमः ॥७॥

हे सञ्जय! तुम कहना कि सब लोग अकेले २ रहकर शक्ति प्राप्त नहीं कर सकते हैं। हे राजन! हम इकट्ठे रहकर जीवन यात्रा पूरी करना चाहते हैं। इससे तुमको कोई भी शत्रु, पराजित नहीं कर सकेगा ॥७॥

तथा भीष्मं शांतनवं भारतानां पितामहम् ।
शिरसाभिवदेथास्त्वं मम नाम प्रकीर्तयन् ॥८॥

इसी तरह शान्तनु-पुत्र, भरतवंशजों के पितामह, भीष्म से हमारी कुशल कहते हुए, यह बात शिर झुकाकर कहना ॥८॥

अभिवाद्य च वक्तव्यस्ततोस्माकं पितामहः ।
भवता शंतनोर्वंशो निमग्नः पुनरुद्धृतः ॥९॥

हे तात ! तुम हमारे पितामह भीष्मसे यह बात अवश्य कहना, कि अब तुम इस डूबते हुए शान्तनु के वंश का पुनरुद्धार करो।

सत्वं कुरु तथा तात स्वमतेन पितामह।

यथा जीवन्ति ते पौत्राः प्रीतिमन्तः परस्परम् ॥१०॥

हे तात ! पितामह ! अब तुम अपनी बुद्धि से विचार कर कोई ऐसा मार्ग निकालो, जिससे तुम्हारे पौत्र, परस्पर प्रीतियुक्त होकर जीवित रह सकें ॥ १० ॥

तथैव विदुरं ब्रूयाः कुरूणां मन्त्रधारिणम्।

अयुद्धं सौम्य भाषस्व हितकामो युधिष्ठिरे ॥११॥

हे सञ्जय ! इसी तरह कौरवों के मन्त्री, विदुर से कहना-हे सौम्य ! तुम युद्ध नहीं होने की ही मन्त्रणा देना, क्योंकि तुम तो युधिष्ठिर के हित के पक्ष में हो ॥ ११ ॥

अथ दुर्योधनं ब्रूया राजपुत्रममर्षणम्।

मध्ये कुरूणामासीनमनुनीय पुनः पुनः ॥१२॥

अपापां यदुपेक्षस्त्वं कृष्णामेतां सभागताम्।

तद्दुःखमतितिक्षाम मावधीष्व कुरूनिति ॥१३॥

इसके अनन्तर असहनशील कौरवों के मध्य में बैठे हुए राजपुत्र दुर्योधन से बार २ समझा कर कह देना, कि निरपराध द्रौपदी को सभा में लाने पर जो तुमने इसकी उपेक्षा की इसको पाण्डव नहीं सह सकते हैं। अब तुम शान्त होओ और कौरवों के नाश का कारण न बनो ॥ १३ ॥

एवम्पूर्वापरान्क्लेशानतितीक्षन्त पाण्डवाः ।
बलीयांसोपि सन्तो यत्तत्सर्वं कुरवो विदुः ॥१४॥

यन्नः प्रव्राजयेः सौम्य अजिनैः प्रतिवासितान् ।
तद् दुःखमतितीक्षाम मावधीत्त्व कुरूनिति ॥१५॥

इस प्रकार अब तक पूर्वकाल और वन के क्लेशों को पाण्डव सहते रहे हैं। वे सब तरह बलवान् और शक्तिशाली हैं, यह सब कौरव भी जानते हैं। हे सौम्य! तुमने कृष्ण मृग चर्म धारण कराके जो हमको वन २ में भटकाया है—हम इस दुःख को भी याद करके आवेश में आ रहे हैं। अब तुम कौरव वंश के नाश का कारण न बनो ॥ १६ ॥

यत्कुन्तीं समतिक्रम्य कृष्णां केशेष्वधर्षयत् ।
दुःशासनस्तेऽनुमते तच्चास्माभिरुपेक्षितम् ॥१६॥

कुन्ती का ध्यान (लिहाज) न करके भी तेरी अनुमति से दुःशासन ने जो द्रौपदी के केश पकड़ कर उसका तिरस्कार किया, हमने तो यह भी सह लिया ॥ १६ ॥

अथोचितं स्वकं भागं लभेमहि परन्तप ।
निवर्तय परद्रव्याद्बुद्धिं गृद्धां नरर्षभ ॥१७॥

हे परन्तप! हम तो अपना उचित भाग ही पाना चाहते हैं। हे नरर्षभ! अब तुम अपनी लालची बुद्धि को अन्य के धन हरण से हटा लो ॥ १७ ॥

शान्तिरेवं भवेद्राजन् प्रीतिश्चैव परस्परम् ।
राज्यैकदेशमपि नः प्रयच्छ शममिच्छताम् ॥१८॥

हे राजन ! इस तरह शान्त होकर हम दोनों में परस्पर प्रीति हो जावेगी। हमको हमारे राज्य का कुछ भाग भी दे दोगे, तो हम सन्धि कर लेंगे ॥ १८ ॥

अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम् ।
अवसानं भवत्वत्र किंचिदेकं च पञ्चमम् ॥१९॥

अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत तथा एक कोई अन्य पांचवां नगर दे दो-तो हमारे तुम्हारे युद्ध की समाप्ति हो सकती है ॥ १९ ॥

भ्रातृणां देहि पञ्चानां पञ्चग्रामान्सुयोधन ।
शांतिर्नोस्तु महाप्राज्ञ ज्ञातिभिः सहसञ्जय ॥२०॥

हे सुयोधन ! पाँच ग्राम पांच भाइयों को दे दो। हे महाप्राज्ञ ! सञ्जय ! इस तरह हमारी अपने बन्धुओं के साथ सन्धि हो सकती है ॥२०॥

भ्राताभ्रातर मन्वेतु पितापुत्रेण युज्यताम्
स्मयमानाः समायान्तु पाञ्चालाः कुरुभिः सह ॥२१॥

इस दशा में भाई से भाई और पिता से पुत्र मिल जावेंगे तथा परस्पर हँसते हुए, पांचाल वीर, कौरवों के साथ सहयोग प्राप्त करेंगे ॥२१॥

अक्षतान् कुरुपाञ्चालन् पश्येयमिति कामये।
सर्वेषु मनसस्तात शाम्याम भरतर्षभ ॥२२॥

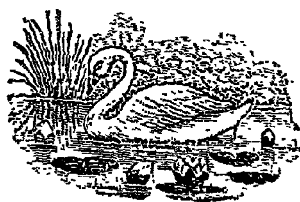
हे सुयोधन! मैं तो कौरव और पाञ्चालों को अक्षत देखना चाहता हूँ। हे भरतर्षभ! इस तरह हम बिल्कुल प्रसन्न होकर शान्त हो जावेंगे॥२२॥

अलमेव शमायास्मि तथा युद्धाय सञ्जय।
धर्मार्थयोरलश्चाहं मृदवे दारुणाय च॥२३॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि
युधिष्ठिरसन्देशे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

हे सञ्जय! मैं सन्धि करने में समर्थ हूं और युद्ध करने की भी शक्ति रखता हूँ। मैं धर्म भी जानता हूं और राजनीति के दाव पेच भी मुझसे छुपे नहीं है। मृदु और कठोर सब कुछ होना जानता हूं ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सञ्जययानपर्व में राजा युधिष्ठिर के सन्देश का इकतीसवां अध्याय पूरा हुआ।



बत्तीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

अनुज्ञातः पाण्डवेन प्रययौ सञ्जयस्तदा ।
शासनं धृतराष्ट्रस्य सर्वं कृत्वा महात्मनः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! महात्मा राजा धृतराष्ट्र की समस्त आज्ञाओं को पूरा करके और राजा युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर सञ्जय चल दिया ॥१॥

संप्राप्य हास्तिनपुरं शीघ्रमेव प्रविश्य च ।
अन्तः पुरं समास्थाय द्वाःस्थं वचनमब्रवीत् ॥२॥

सञ्जय हास्तिनापुर पहुँचा और शीघ्र नगर में घुसकर राज-द्वार पर जा खड़ा हुआ। उसने वहां द्वारपाल से कहा ॥२॥

आचक्ष्व धृतराष्ट्राय द्वाःस्थ मां समुपागतम् ।
सकाशात् पाण्डुपुत्राणां सञ्जयम्मा चिरं कृथाः ॥३॥

हे द्वारपाल! तुम राजा धृतराष्ट्र से मेरे आने की सूचना कर दो, कि सञ्जय पाण्डवों के पास से लौट आया है ॥३॥

जागर्ति चेदभिवदेस्त्वं हि द्वाःस्थ प्रविशेयं विदितो भूमिपस्य ।
निवेद्यमत्रात्यायिकं हि मेऽस्ति द्वाःस्थोऽथ श्रुत्वा नृपतिं जगाद ॥४॥

हे द्वारपाल! यदि राजा धृतराष्ट्र जाग रहे हों—तो तुम कह दो, उनकी आज्ञा होते ही मैं भीतर जाना चाहता हूँ। तुम जाकर

सूचना करो, क्योंकि मुझे बड़ा ही आवश्यक कार्य है। द्वारपाल ने राजा से इस तरह निवेदन किया ॥४॥

द्वाःस्थ उवाच—

सञ्जयोयं भूमिपते नमस्ते दिदृक्षया द्वारमुपागतस्ते ।
प्राप्तो दूतः पाण्डवानां सकाशात् प्रशाधि राजन् किमयं करोतु ॥

द्वारपाल बोला—हे भूमिपते! आपको नमस्कार है। सञ्जय, आपके मिलने को द्वार पर खड़ा है। यह पाण्डवों के पास से दूत कार्य सम्पादन करके आया हुआ, अपने को कह रहा है। हे राजन्! कहिए-क्या आज्ञा है ॥५॥

धृतराष्ट्र उवाच—

आचक्ष्व मां कुशलिनं कल्पमस्मै प्रवेश्यतां स्वागतं सञ्जयाय ।
नचाहमेतस्य भवाम्यकल्पः समे कस्माद्द्वारि तिष्ठेच्च सक्तः ॥

धृतराष्ट्र बोला-हे द्वारपाल! सञ्जय से कह दो, कि मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ, तुम सञ्जय का मेरी ओर से स्वागत करके उनको कह दो, कि मैं तुम्हारे मिलने में कभी असमर्थ नहीं हूं, उसका प्रवेश तो बे रोक टोक है, फिर वह द्वार पर ही क्यों खड़ा है ॥६॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः प्रविश्यानुमते नृपस्य महद्वेश्म प्राज्ञशूरार्यगुप्तम् ।
सिंहासनस्थं पार्थिवमाससाद वैचित्रवीर्यं प्रांजलिः सूतपुत्रः

वैशम्पायन बोले-राजा की आज्ञा पाकर बुद्धिमान आर्य वीरों से सुरक्षित, राजा के महल में सञ्जय प्रविष्ट हुआ। हाथ जोड़े हुए, सूतपुत्र सञ्जय, सिंहासन पर बैठे हुए, विचित्रवीर्य के पुत्र राजा धृतराष्ट्र के पास पहुंचा ॥७॥

संजय उवाच—

सञ्जयोहंभूमिपनेनमस्ते प्राप्तोस्मिगत्वानरदेवपाण्डवान् ।
अभिवाद्यत्वांपाण्डुपुत्रोमनस्वी युधिष्ठिरःकुशलंचान्वपृच्छत्

सञ्जय बोला-हे भूमिपते ! मैं सञ्जय आपको प्रणाम करता हूं। हे नरदेव ! मैं पाण्डवों के पास जाकर लौट आया हूं। पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर ने तुमको प्रणाम करके तुम्हारी कुशल पूछी है ॥८॥

स ते पुत्रान्पृच्छति प्रीयमाणः कच्चित्पुत्रैःप्रीयसे नप्तृभिश्च ।
तथा सुहृद्भिः सचिवैश्च राजन् ये चापि त्वामुपजीवन्ति तैश्च ॥

राजा युधिष्ठिर ने बड़ो प्रीति से तुम्हारे पुत्रों के समाचार पूछे और कहा-कि राजा अपने पुत्र, पौत्रों तथा मित्र, मन्त्री एवं वृत्ति पाने वाले पुरुषों के साथ आनन्द से तो है ॥९॥

धृतराष्ट्र उवाच—

अभिनन्द्यत्वांतातवदामिसंञ्जय अजातशत्रुंचसुखेनपार्थम् ।
कच्चित्सराजाकुशलीसपुत्रः सहामात्यःसानुजःकौरवाणाम्

धृतराष्ट्र ने कहा—हे तात ! सञ्जय ! अजातशत्रु युधिष्ठिर का सुख से अभिनन्दन करके तुम से पूछता हूं, कि कौरवों का राजा धर्म-राज. अपने मन्त्री, पुत्र और भाइयों के साथ कुशलता से युक्त तो है ॥१०॥

संजय उवाच—

सहामात्यःकुशलीपाण्डुपुत्रो वुभूषते यच्चतेऽग्रेत्मनोभूत !
निर्णिक्तधर्मार्थकरो मनस्वी वहुश्रुतो दृष्टिमान्शीलवांश्च ॥

सञ्जय बोला—हे राजन् ! पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर, अपने मन्त्रियों के साथ आनन्द में हैं। जो द्रव्य या राज्य पूर्व में तुम से पाया था, वह उस अपने भाग को अब ग्रहण करना चाहता है। यह मनस्वी, बड़े उत्तम प्रकार से धर्म और नीति का विवेचन करना जानता है। धर्मराज बड़ा विद्वान,दीर्घ-दर्शी और शील गुण से समन्वित है ॥११॥

परोधर्मात्पाण्डवस्या शंस्यं धर्मःपरोवित्तचयान्मतोस्य ।
सुखप्रियेधर्महीनेऽनपार्थेऽनुरुध्यते भारत तस्यवुद्धिः॥१२॥

यज्ञादि-धर्म से उदारता आदि गुणों को यह श्रेष्ठ मानता है तथा धन के इकट्ठा करने से धर्म में उसका व्यय कर देना इसका मुख्य धर्म हो रहा है। हे भारत ! धर्मराज की बुद्धि, धर्म-हीन भोग विलासों में नहीं लगती, प्रत्युत सार्थक कर्मों में इसकी वुद्धि प्रवृत्त होती रहती है ॥१२॥

परप्रयुक्तः पुरुषो विचेष्टते सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा।
इमंदृष्ट्वानियमंपाण्डवस्य मन्येपरंकर्मदैवंमनुष्यात्॥ १३॥

कर्मों से प्रेरित हुआ मनुष्य, रस्सो से बंधी हुई कठपुतली की भांति नाचता रहता है। मैं ईश्वर के इस नियम को देखकर यह जान गया हूं,कि पुरुषार्थ से प्रबल दैव होता है ॥१३॥

इमं च दृष्ट्वा तव कर्म दोषं पापोदर्कं घोरमवर्णरूपम्।
यावत्परःकामयतेतिवेलं तावन्नरोयंलभते प्रशंसाम् ॥१४॥

तुम्हारे इस धर्म विरुद्ध, अवर्णनीय, पाप-पूर्ण, अनुचित, घोर कर्म को देखकर समझ रहा हूं,कि तुम बलशाली होनेसे जो समय को टला रहे हो, इस काल में विरोधी मनुष्य, अपनी प्रशंसा को फैला लेगा ॥१४॥

अजातशत्रुस्तुविहाय पापं जीर्णान्त्वचंसर्प इवासमर्थाम् ।
विरोचतेऽहार्यवृत्तेन वीरो युधिष्ठिरस्त्वयि पापं विसृज्य॥१५

उपयोग में नहीं आने वाली, सांप की कांचली की तरह पापों को छोड़कर, स्वाभाविक धर्म वृत्ति से धर्मराज व्यवहार कर रहा है। उसने तो इस तरह व्यवहार करके सारा पाप, तुम पर छोड़ दिया है ॥१५॥

हन्तात्मनःकर्मनिबोध राजन् धर्मार्थयुक्तादार्यवृत्तादपेतम्।
उपक्रोशंचेह गतोसि राजन् भूयश्च पापं प्रसजेद मुत्र ॥१६

हे राजन्! आप, धर्म और नीति से हीन, आर्य व्यवहार से रहित, अपने कर्मों को तो देखो। तुम इस लोक में निन्दा को प्राप्त हो चुके हो और अन्त में यह पाप, परलोक में भी लिपटा ही रहेगा ॥१६॥

सत्वमर्थंसंशयितं विना तैराशंससेपुत्रवशानुगोऽस्य।
अधर्मशब्दश्च महान्पृथिव्यां नेदं कर्मत्वत्समंभारताग्र्य ॥१७

हे भरत वंशश्रेष्ठ! तुम पाण्डवों को छोड़ कर अपने पुत्र के प्रेम में लिपटे हुए अनिश्चित कार्य के सिद्ध करने को उसके पीछे २ दौड़ रहे हो - इससे तुम्हारी संसार में बड़ी अकीर्ति हो चुकी। हे राजन्! यह कर्म तो तुम्हारे योग्य नहीं है ॥ १७ ॥

हीनप्रज्ञो दौष्कुलेयो नृशंसो दीर्घवैरी क्षत्रविद्यास्वधीरः।
एवंधर्मानापदः संश्रयेयुर्हीनवीर्यो यश्चभवेदशिष्टः॥१८॥

बुद्धि विहीन, दुष्कुल में उत्पन्न, नीच, दीर्घ वैर कराने वाला क्षत्र विद्या में अधीर, पराक्रम-हीन, शिष्टाचार से शून्य पुरुष, आपत्तियों को प्राप्त होता रहता है ॥ १८ ॥

कुलेजातोबलवान् योयशस्वी बहुश्रुतःसुखजीवी यतात्मा।
धर्माधर्मौग्रथितौ योबिभर्ति सह्यस्य दिष्टस्यवशादुपैति ॥१९

कुल में उत्पन्न, बलवान्, यशस्वी, विद्वान, धर्म से जीविका करने वाला जितेन्द्रिय ही दैव के अनुकूल सम्पत्ति को पा लेता तथा जो जुड़े हुए धर्माधर्म की व्यवस्था को जानता है। वह सम्पत्ति को पा लेता है॥ १९ ॥

कथंहिमन्त्राग्र्यधरोमनीषी धर्मार्थयोरापदिसम्प्रणेता ।
एवमुक्तःसर्वमन्त्रैरहीनो नरोनृशंसंकर्मकुर्यादमूढः ॥२०॥

मन्त्रणा देने में कुशल भीष्म आदि का सहचर, स्वयं बुद्धिमान, आपत्काल में भी धर्म और अर्थ की व्यवस्था कर देने वाला सब प्रकार के श्रेष्ठ विचारों से संयुक्त, अज्ञान से हीन, तुम जैसा मनुष्य भी, ऐसा कुत्सित कर्म कैसे कर लेता है ॥२०॥

तवह्येमेमन्त्रविदःसमेत्य समासतेकर्मसुनित्ययुक्ताः ।
तेषामयम्बलवान्निश्चयश्च कुरुक्षये नियमेनोदपादि ॥२१॥

मन्त्र के जानने वाले तुम्हारे कर्ण आदि मन्त्री, नित्य विचार करने बैठते हैं। उन्होंने जो यह दृढ़ता से निश्चय कर लिया है, कि पाण्डवों को राज्य नहीं देना है। यह निश्चय दैव के नियमानुसार, कौरवों के नाश के लिए किया गया है ॥ २१ ॥

अकालिकंकुरवोनाभविष्यन् पापेनचेत्पापमजातशत्रुः ।
इच्छेज्जातुत्वयिपापंविसृज्य निन्दाचेयन्तवलोकेऽभविष्यत्

यदि पाप कर्म के कारण अकाल में ही कौरवों का विनाश हो गया, तो धर्मराज, इसका दोष तुम पर ही रख रहा है। यदि उसने इस दोष को तुम पर डाल दिया, तो संसार में तुम्हारी बड़ी निन्दा होगी ॥ २२ ॥

किमन्यत्रविषयादीश्वराणां यत्रपार्थःपरलोकंसमद्रष्ट्म् ।
अत्यक्रामत्सतथासम्मतःस्यान्नसंशयोनास्तिमनुष्यकारः २३

दैव की प्रेरणा के विना कुछ नहीं है। इसी से अर्जुन परलोक में पहुंच गया और वहां उसका इतना आदर हुआ। इसमें सन्देह नहीं है, कि पुरुषार्थ कुछ नहीं है॥ २३॥

एतान्गुणान्कर्मकृतानवेक्ष्य भावाभावौवर्तमानावनित्यौ।
बलिर्हिराजापारमविंदमानो नान्यत्कालात्कारणंतत्रमेने२४

ये शौर्य आदि गुण कर्मानुसार घटते बढ़ते हैं, इसलिए ऐश्वर्य और अनैश्वर्य अनित्य हैं। राजा बलि ने पूर्व कर्म का पार न पाकर ही काल से अन्य कार्य की सिद्धि का दूसरा कारण नहीं माना है॥ २४॥

चक्षुःश्रोत्रेनासिकात्वक्चजिह्वाज्ञानस्यैतान्यायतनानिजन्तोः
तानिप्रीतान्येवतृष्णाक्षयांते तान्यव्यथोदुःखहीनःप्रणुद्यात्२५

चक्षु, कर्ण, नासिका, त्वचा, जिह्वा, ये इन्द्रियां ही मनुष्य को ज्ञान कराने का हेतु हैं, ये इन्द्रियां, भोगों से तृप्त नहीं होती हैं, इनकी तृप्ति तो कर्म के क्षय होने से ही होगी। मनुष्य इन इन्द्रियों का विना व्यथा और दुःख के अभ्यास करता हुआ, इनके विषयों से पृथक करता रहे॥२५॥

नत्वेवमन्ये पुरुषस्य कर्म संवर्तते सुप्रयुक्तं यथावत्।
मातुःपितुःकर्मणाभिप्रसूतः सम्वर्धतेविधिवद्भोजनेन ॥२६॥

मैं यह नहीं मानता हूं, कि मनुष्य का अच्छी तरह आचरण में लाया हुआ आधुनिक कर्म ही फल दे देता है। मनुष्य, पूर्व कर्म से प्रेरित होकर ही माता पिता के सम्पर्क से उत्पन्न होता है और पूर्व कर्म के योग से ही भोजनादि से वृद्धि पाकर बढ़ जाता है॥ २६॥

महाभारत चित्र संख्या :



महाराज धृतराष्ट्र को सनत्सुजात ऋषि का धर्मोपदेश

महाभारत उद्योगपर्व अध्याय ४२-३ पृष्ठ ७०१

प्रिया प्रिये सुख दुःखे च राजन्निंदाप्रशंसे च भजन्तएव।
परस्त्वेनंगर्हयतेपराधे प्रशंसतेसाधुवृत्तंतमेव ॥२७॥

हे राजन्! संसार में प्रिय, अप्रिय, सुख, दुःख, निन्दा, प्रशंसा, होती ही रहतीं हैं, परन्तु वस्तुतः निन्दा उसी की माननी चाहिए, जिसका अपराध है। जो साधु-वृत्ति का पुरुष है, उसकी तो प्रशंसा ही रहती है ॥२७॥

स त्वां गर्हे भारतानां विरोधादंतो नूनं भविताऽयं प्रजानाम्।
नो चेदिदं तव कर्मापराधात्कुरून्दहेत्कृष्णवर्त्मेव कक्षम् २८

भरतवंश में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित कर देने से हम लोग तुम्हारी निन्दा करते हैं। इस तुम्हारे विरोध से प्रजा का अवश्य नाश होगा। यदि तेरे अपराध (तेरी ग़लती) से यह काम नहीं किया जाता, तो अग्नि से भस्म हुए तृण समूह की तरह कौरव वंश भी दग्ध नहीं होता ॥ २८ ॥

त्वमेवैको जातु पुत्रस्य राजन्वशं गत्वा सर्वलोके नरेन्द्र।
कामात्मनःश्लाघनो द्यूतकाले नागाःशमं पश्य विपाकमस्य ॥

हे राजन्! हे नरेन्द्र! इस सारे संसार में इस तरह पुत्र के वश में तो हमने आपको ही देखा है। आपने तो कामनाओं के परतन्त्र दुर्योधन की प्रशंसा की। उस समय भी तुमने इस कलह को शान्त नहीं किया। अब तुम इसका परिणाम देखो ॥ २९ ॥

अनाप्तानां संग्रहात्त्वं नरेन्द्र तथाऽप्तानां निग्रहाच्चैव राजन्
भूमिं स्फीतां दुर्बलत्वादनंतामशक्तस्त्वं रक्षितुं कौरवेय ॥३०

हे कुरुवंशोत्पन्न राजाओं में श्रेष्ठ ! राजन् ! तुमने अपूज्यों का आदर और पूज्यों का तिरस्कार किया है। अब तुम इन कर्मों से दुर्बल और अशक्त हुए इस विशाल फैली हुई भूमि का शासन नहीं कर सकते हो ॥ ३० ॥

अनुज्ञातो रथवेगावधूतः श्रान्तोऽभिपद्ये शयनं नृसिंह ।
प्रातः श्रोतारः कुरवः सभायामजातशत्रोर्वचनं समेताः ॥

हे नर-श्रेष्ठ ! अब तो मैं रथ में बैठ कर आने से थक सा रहा हूं। यदि आज्ञा हो, तो शयन के लिए चला जाऊं। प्रातःकाल तुम सारे कौरव सभा में इकट्ठे होकर अजातशत्रु धर्मराज के बचनों को सुन लेना ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—
अनुज्ञातोऽस्याऽऽवसथं परेहि प्रपद्यस्व शयनं सूतपुत्र ।
आप्ताः श्रोतारःकुरवःसभायामजातशत्रोर्वचनं त्वयोक्तम्

इति श्रीमहाभारत संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि
संजययानपर्वणि धृतराष्ट्रसंजयसंवादे
द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३२॥
समाप्तं चेदं संजययानपर्व ।

धृतराष्ट्र बोला—हे सूतपुत्र ! अब तुमको आज्ञा है, तुम घर जाओ और शयन करो। प्रातःकाल सारे सभा में आए हुए कौरव इकट्ठे ही तुम से कहे हुए धर्मराज के वचन को सुनेंगे।

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सञ्जययानपर्व में धृतराष्ट्र और सञ्जय के यान का बत्तीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ और यहीं पर सञ्जययानपर्व भी समाप्त हो गया।

अथ प्रजागरपर्व
तेतीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

द्वाःस्थं प्राह महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
विदुरं द्रष्टुमिच्छामि तमिहाऽऽनय मा चिरम् ॥ १

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! महा बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र ने द्वारपाल से कहा—मैं इस समय विदुर से मिलना चाहता हूं, तुम उनको शीघ्र यहां ले आओ ॥ १ ॥

प्रहितो धृतराष्ट्रेण दूतः क्षत्तारमब्रवीत् ।
ईश्वरस्त्वां महाराजो महाप्राज्ञ दिदृक्षति ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र का भेजा हुआ दूत विदुर से जाकर बोला—हे महाप्राज्ञ ! आपको महाराज धृतराष्ट्र मिलना चाहते हैं ॥ २ ॥

एवमुक्तस्तु विदुरः प्राप्य राजनिवेशनम् ।
अब्रवीद् धृतराष्ट्राय द्वाःस्थं मां प्रतिवेदय ॥३॥

विदुर यह सुन कर राज-भवन को चल दिया और वहां पहुंच कर द्वारपाल से बोला-कि तुम राजा धृतराष्ट्र से मेरे आगमन की सूचना कर दो ॥ ३ ॥

द्वाःस्थ उवाच—

विदुरोऽयमनुप्राप्तो राजेन्द्र तव शासनात् ।
द्रष्टुमिच्छति ते पादौ किं करोतु प्रशाधि माम् ॥ ४

द्वारपाल ने राजा से कहा—हे राजेन्द्र! आपकी आज्ञा से विदुर आ गए हैं। अब वह आपके चरणों के दर्शन करना चाहते हैं, कहिए-मुझे क्या आज्ञा है॥ ४॥

धृतराष्ट्र उवाच—

प्रवेशय महाप्राज्ञं विदुरं दीर्घदर्शिनम्।
अहं हि विदुरस्याऽस्य नाऽकल्पो जातु दर्शने॥५॥

धृतराष्ट्र बोला—हे द्वारपाल! तुम महाबुद्धिशाली, दीर्घदर्शी विदुर को शीघ्र लाओ। मैं विदुर से मिलने में कभी असमथ नहीं हूं॥ ५॥

द्वाःस्थ उवाच—

प्रविशांऽतःपुरं क्षत्तर्महाराजस्य धीमतः
नहि ते दर्शनेऽकल्पो जातु राजाऽब्रवीद्धि माम्॥६॥

द्वारपाल बोला—हे विदुर! आप प्रज्ञाशील महाराज धृतराष्ट्र के अन्तःपुर (कमरे) में प्रवेश करो। राजा ने कहा है, कि हम विदुर से मिलने में कभी असमर्थ नहीं हैं॥ ६॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः प्रविश्य विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम्।
अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यं चिन्तयानं नराधिपम्॥७॥

वैशम्पायन बोले—अब विदुर राजा धृतराष्ट्र के भवन में प्रविष्ट होकर चिन्ता करते हुए राजा से हाथ जोड़ कर यह वचन बोला॥ ७॥

विदुरोऽहं महाप्राज्ञ संप्राप्तस्तव शासनात् ।
यदि किंचन कर्तव्यमयमस्मि प्रशाधि माम् ॥८॥

हे महाप्राज्ञ ! मैं विदुर हूं और आपकी आज्ञा से उपस्थित हुआ हूं। यदि कोई आज्ञा हो, तो कहिये—मैं खड़ा हूं ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—

सञ्जयो विदुर प्राप्तो गर्हयित्वा च मां गतः ।
अजातशत्रोः श्वो वाक्यं सभामध्ये स वक्ष्यति ॥९॥

धृतराष्ट्र बोला—हे विदुर ! अभी सञ्जय पाण्डवों के पास से आया था और वह मेरा ही दोष बता कर गया है। अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर ने क्या कहा—यह कल सभा के मध्य में सुनावेगा ॥ ९ ॥

तस्याऽद्य कुरुवीरस्य न विज्ञातं वचो मया ।
तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत्प्रजागरम् ॥१०॥

कुरवीर युधिष्ठिर ने क्या कहा—मुझे इसका कुछ भी पता नहीं चला- यह चिन्ता मेरे शरीर को जला सी रही है। इसने तो मेरी नींद भी उड़ा दी ॥१०॥

जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदनुपश्यसि ।
तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि॥११॥

मैं बड़ा चिन्तातुर हुआ जाग रहा हूं, अब तुम हमारा जिसमें हित समझो - वह बताओ। हे तात ! तुम ही हम लोगों में धर्म और राजनीति में कुशल हो ॥११॥

यतःप्राप्तःसञ्जयःपाण्डवेभ्यो न मे यथावन्मनसःप्रशांतिः
सर्वेन्द्रियाण्यप्रकृतिं गतानि किं वक्ष्यतीत्येवमेऽद्य प्रचिन्ता

जब से सञ्जय पाण्डवों के पास से आया है, तब से मेरे मन को शान्ति नहीं है। मेरी सारी इन्द्रियां शून्य सी हो गईं और मुझे यही चिन्ता हो रही, कि न जाने सञ्जय क्या कहेगा १२

विदुर उवाच—

अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम्।
हृतस्वं कामिनं चोरमाविशंति प्रजागराः ॥१३॥

विदुर ने कहा—हे राजन्! बलवान् से विरोध करने वाले, साधनों से हीन दुर्बल पुरुष, धन के छीने जाने वाले तथा कामी और चोर को नींद नहीं आया करती है ॥१३॥

कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप।
कच्चिच्च परवित्तेषु गृद्ध्यन्न परितप्यसे ॥१४॥

हे नराधिप! इनमें से किसी दोषों ने तो तुमको नहीं पकड़ लिया है। तुम अन्य को धन के छीनने की चिन्ता में तो चिन्तित नहीं हो ॥१४॥

धृतराष्ट्र उवाच—

श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं परं नैःश्रेयसं वचः।
अस्मिन् राजर्षिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसम्मतः ॥१५॥

धृतराष्ट्र बोला—हे विदुर! मैं तुम्हारे धर्मयुक्त कल्याणकारी वचन सुनना चाहता हूं। इस समय इस कौरव-वंश में तुम ही बुद्धिमानों में श्रेष्ठ माने जाते हो ॥१५॥

विदुर उवाच—

राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्याधिपो भवेत् ।
प्रेष्यस्ते प्रेषितश्चैव धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः ॥१॥

विदुर ने कहा—हे धृतराष्ट्र ! राजा युधिष्ठिर, इतने उत्तम गुणों से युक्त है, कि वह त्रिलोकी का भी अधिपति हो सकता है। वह तुम्हारा दास है, परन्तु तुमने उसको भी वन में निकाल दिया ॥१॥

विपरीततरश्च त्वं भागधेयो न सम्मतः ।
अर्चिषां प्रक्षयाच्चैव धर्मात्मा धर्मकोविदः ॥२॥

तुम धर्मात्मा और धर्म के जानने वाले हो—तो भी उलटा ही व्यवहार कर रहे हो। तुमने अपने नेत्रों की ज्योति से हीन हो जाने से ही राज्य नहीं पाया। इससे तुम्हारा भाग्य उत्तम नहीं दिखाई देता है ॥२॥

आनृशंस्यादनुक्रोशाद्धर्मात्सत्यात्पराक्रमात् ।
गुरुत्वात्त्वयि संप्रेक्ष्य बहून् क्लेशांस्तितिक्षते ॥३॥

युधिष्ठिर, उदारता, दयालुता, धर्म, सत्य, पराक्रम और तुम्हें पूज्य मानने से तथा तुम पर श्रद्धा रख कर ही अनेक क्लेश सह रहा है ॥३॥

दुर्योधने सौबले च कर्णे दुःशासने तथा।
एतेष्वैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥४॥

दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासन, इनको राज्यैश्वर्य की रस्सी पकड़ा कर क्या तुम कल्याण की आशा करते हो ? ॥४॥

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥५॥

आत्मज्ञान, उद्योग के आरम्भ का क्लेश, सहनशीलता, धर्म जिसको पुरुषार्थ से पृथक् नहीं कर देते वही पण्डित कहाता है ॥ ५ ॥

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।
अनास्तिकः श्रद्धान एतत्पण्डितलक्षणम् ॥१६॥

जो मनुष्य, उत्तम कर्मों का सेवन करता है और निन्दितों से बचता है तथा नास्तिकता को छोड़ कर श्रद्धा से चलता है, वही पण्डित कहाता है ॥१६॥

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्री स्तम्भो मान्यमानिता।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ १७ ॥

क्रोध, हर्ष, घमण्ड, लज्जा, जड़ता, अभिमान, जिसको पुरुषार्थ से पृथक् नहीं खैंच ले जाते हैं। उसको ही पण्डित कहते हैं ॥१७॥

यस्य कृत्यं न जानंति मंत्रं वा मंत्रितं परे ।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पंडित उच्यते ॥ १८ ॥

जिसके उद्योग या मन्त्र को प्रतिपक्षी नहीं जान पाते हैं और काय के सिद्ध हो जाने पर ही विरोधियों को उसके उद्योग का पता लगता है - वही पण्डित कहाता है ॥१८॥

यस्य कृत्यं न विघ्नंति शीतमुष्णं भयं रतिः ।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पंडित उच्यते ॥ १९ ॥

जिसके काम में शीत, उष्ण, भय और रति, (स्त्री प्रेम) धन और दरिद्र विघ्न नहीं कर पाते हैं, वही पण्डित कहाता है ॥ १९ ॥

यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते ।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पंडित उच्यते ॥ २० ॥

जिसकी संसार के अनुभव से फैली हुई बुद्धि धर्म और अर्थ का साधन बनती है और जो भोग विलासों की अपेक्षा अपने कार्य की सिद्धि को प्रधान मानता है, वही पण्डित कहाता है ॥२०॥

यथाशक्ति चिकीर्षंति यथाशक्ति च कुर्वते ।
न किंचिदवमन्यन्ते नराः पंडितबुद्धयः ॥२१॥

जो पण्डित होते हैं, वे यथाशक्ति काम करने की इच्छा करते हैं और उस इच्छा को सफल कर दिखाते हैं। ये अपने कार्य की सिद्धि में किसी भी छोटी बड़ी बात का परित्याग नहीं करते हैं ॥२१॥

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति विज्ञायचार्थं भजते न कामात्
नासंपृष्टो व्युपयुंक्ते परार्थे तत्प्रज्ञानं प्रथमं पंडितस्य ॥२२॥

पण्डित जन, किसी बात के तत्त्व को शीघ्र जान लेते हैं और फिर भी उसके विषय में देर तक सुनते रहते हैं। ये किसी काय

में राग-द्वेष से प्रवृत्त नहीं होते और न बिना पूछे किसी अन्य के कार्य में हाथ डालते हैं। पण्डित का यह सर्वोत्कृष्ट ज्ञान माना गया है ॥ २२॥

नाप्राप्यमभिवांच्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम् ।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पंडितबुद्धयः ॥ २३ ॥

जो अप्राप्य वस्तु है, पण्डित उसको नहीं चाहते और नष्ट हुई की चिन्ता नहीं करते हैं। पण्डित मनुष्य, आपत्ति में भी मोहित नहीं होता है ॥ २३ ॥

निश्चित्य यः प्रक्रमते नांतर्वसति कर्मणः ।
अवंध्यकालो वश्यात्मा स वै पंडित उच्यते ॥ २४ ॥

जो जितेन्द्रिय, मनुष्य, कार्य के तत्व (पहलुओं) को विचार कर उसका आरम्भ करता है और फिर उसको बीच में नहीं छोड़ता तथा अपने समय को व्यर्थ नहीं जाने देता है, वही पण्डित है ॥ २४ ॥

आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते ।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पंडिता भरतर्षभ ॥२५ ॥

हे भरतर्षभ ! पण्डित मनुष्य,आर्य कर्मों में प्रसन्न रहते हैं और ऐश्वर्योत्पादक कर्म करते हैं तथा हितकारी मनुष्य की कभी निन्दा या अपमान नहीं करते ॥ २५ ॥

न हृष्यत्यात्मसंमाने नावमानेन तप्यते ।
गांगो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पंडित उच्यते ॥२६॥

पण्डित लोग, अपने सम्मान होने पर कभी फूल कर लक्ष्य-च्युत नहीं होते और न कभी अपमान से कार्यच्युत होते हैं। जो गङ्गा-ह्रद (समुद्र) की तरह व्याकुलता से हीन होता है, वही पण्डित कहाता है॥ २६॥

तत्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम् ।
उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पंडित उच्यते ॥ २७॥

सब भूतों के तत्व का जानने वाला, सब कर्मों के करने की विधि का ज्ञाता अपने कार्य के सफल बनाने की बुद्धि रखने वाला, मनुष्य ही मनुष्य समाज के मध्य में पण्डित माना गया है ॥ २७॥

प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् ।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पंण्डित उच्यते ॥२८॥

जो बोलने में कुशल, अद्भुत २ ढंग से कथा (व्याख्यान) कहने वाला, तर्क वितर्क कर्त्ता और प्रतिभाशाली है तथा ग्रन्थ के अभिप्राय को शीघ्र समझ लेता है, वही पण्डित कहाता है ॥२८

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असंभिन्नार्यमर्यादः पंडिताख्यां लभेत सः ॥ २९॥

जिसको बुद्धि के अनुसार शास्त्र का ज्ञान है और शास्त्र के अनुसार जिसकी बुद्धि है तथा जिसने मर्यादा को नहीं तोड़ा है, वही पण्डित कहा जा सकता है ॥२९॥

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः ।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥ ३० ॥

जिसको शास्त्र का ज्ञान नहीं, जो बड़ा उद्धत है, दरिद्र होकर धनवानों के से मनोरथ करता है तथा बिना उद्योग ही (रसायन आदि उपायों से) धन कमाने का प्रयत्न करता है, वह मूर्ख कहाता है ॥३०॥

स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति ।
मिथ्याचरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते ॥३१॥

जो अपने कार्य की सिद्धि का प्रयत्न न करके ऐसे कार्य में प्रवृत्त हो, जो विरोधी को सफल बनाने वाला है तथा जो मित्र के साथ कपट रखता है, वह मूर्ख कहाता है ॥३१॥

अकामान्कामयति यः कामयानान्परित्यजेत् ।
बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम् ॥३२॥

जो कामनाएँ नहीं करनी चाहिए, उन्हें करे और करने योग्य कामनाओं को न करे तथा जो बलवानों से द्वेष करे, उसे मूर्ख कहते हैं ॥३२॥

अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च ।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम् ॥३३॥

जो विरोधी को मित्र और मित्र से द्वेष करके उसे हानि पहुंचाता है तथा बुरे कर्मों का आरम्भ करता है—वह मूढ़ कहाता है ॥३३॥

संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते ।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ ॥३४॥

हे भरतर्षभ ! जो कामों को विस्तार दे दे, सब पर सन्देह रखे तथा शीघ्रता के कामों में देर लगावे, वह मूर्ख है ॥३४॥

श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति दैवतानि न चार्चति ।
सुहृन्मित्रं न लभते तमाहुर्मूढचेतसम् ॥३५॥

जो पितरों का श्राद्ध और देवों की पूजा न करे तथा आप किसी का मित्र न हो और अन्य किसी को मित्र न बनावे, उसे मूर्ख कहते हैं ॥३५॥

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते ।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ॥३६॥

मूर्ख मनुष्य, विना बुलाए जाता है और विना पूछे ही बहुत बोलता है तथा विश्वास नहीं करने योग्य मनुष्य का विश्वास करता है ॥ ३६ ॥

परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा ।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ॥३७॥

आप उसी दोष में फँसा होकर भी उसी दोष के कारण दूसरे की निन्दा करे तथा असमर्थ होकर क्रोध करे, वह मनुष्य अत्यन्त मूर्ख माना गया है ॥ ३७ ॥

आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम् ।
अलभ्यमिच्छन्नैष्कर्म्यान्मूढबुद्धिरिहोच्यते ॥३८॥

धर्म और नीति को छोड़कर तथा अपने बल का न तोल कर बिना उद्योग अलभ्भ पदार्थ की प्राप्ति की इच्छा करे. वह पुरुष मूर्ख है ॥३८॥

अशिष्यं शास्ति यो राजन्यश्च शून्यमुपासने।
कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढचेतसम् ॥३९॥

हे राजन ! जो शिष्य न बनकर विद्या ग्रहण करना चाहे, उसको पढ़ा दे और आप निठल्ला बैठा रहे तथा कृपण स्वामी या यजमान की उपासना करे, यह भी मूर्ख ही कहाता है ॥३९॥

अर्थं महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव वा।
विचरत्यसमुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते ॥४०॥

जो महाधनराशि, विद्या, ऐश्वर्य पाकर भी बिना अहङ्कार रहता है, वह पण्डित कहाता है ॥४०॥

एकः सम्पन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम्।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः ॥४१॥

जो सेवकों को बिना दिए अकेला ही उत्तम २ भोजन कर ले और उत्तम २ वस्त्र धारण करे, इस पुरुष से अधिक नीच कौन हो सकता है ॥४१॥

एकः पापानि कुरुते फलं भुंक्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ॥४२॥

एक मनुष्य पाप कर्म करके धन कमाता है और सारा कुटुम्ब उससे आनन्द उड़ाता है। आनन्द उड़ाने वाले पाप से

छुटे रहते हैं और पाप कर्म करके लाने वाला ही उस पाप में लिपटता है ॥४२॥

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता ।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद्राष्ट्रं सराजकम् ॥४३॥

धनुषधारी से छोड़ा हुआ बाण, किसी एक मनुष्य को मारता है या मार भी नहीं सकता है, परन्तु बुद्धिमान् की छोड़ी हुई बुद्धि, राजा के साथ राष्ट्र तक का नाश कर देती है ॥४३॥

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु ।
पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव॥४४॥

हे राजन् ! आप अपनी एक बुद्धि से शत्रु और मित्र इन दो का निश्चय करके साम, दान, भेद और दण्ड इन चारों से मित्र, उदासीन और शत्रु इन तीन को वश में करो। पांचों इन्द्रियों को वश में करके सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय इन छः का ज्ञान प्राप्त करो। स्त्री, जुआ, आखेट, मद्यपान, कठोर वचन, महादण्ड और प्रयोजन- दूषण इन सात बातों को छोड़ कर ही राजा सुखी बन सकता है ॥४४॥

एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते ।
सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविस्रवः ॥४५॥

विषपान एक का वध करता है और शस्त्र से भी एक ही मनुष्य मारा जा सकता है, परन्तु मन्त्र का फूट निकलना, प्रजा और राष्ट्र सहित राजा को मार लेता है ॥४५॥

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान्न चिन्तयेत् ॥
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥४६॥

मनुष्य अकेला ही सेवकों के बिना स्वादु पदार्थ का भोजन न करे और न अकेला किसी विषय पर विचार न करे। मार्ग में अकेला न जावे और सोते हुए मनुष्यों में अकेला न जागे ॥४६॥

एकमेवाद्वितीयं तद्यद्राजन्नावबुध्यसे।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ॥ ४७ ॥

हे राजन्! समुद्र को पार करने वाली नौका की तरह स्वर्गका अद्वितीय सोपान (सीढ़ी) सत्य है। क्या तुम यह नहीं जानते हो?

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥ ४८ ॥
सोऽस्य दोषो न मंतव्यः क्षमा हि परमं बलम्।
क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ॥४९॥

क्षमा-शील, पुरुषों में एक ही बुराई है, दूसरी नहीं, क्षमा युक्त, पुरुष को लोग, अशक्त समझने लगते हैं, परन्तु समझदार मनुष्यों को यह दोष नहीं मानना चाहिए, क्षमा तो बड़ा बल है। क्षमा गुण, अशक्तों का ही क्या शक्ति-शालियों का भी भूषण है? ॥४८-४९॥

क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते।
शांतिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः ॥ ५० ॥

संसार में क्षमा वशीकरण मन्त्र है तथा क्षमा से क्या कार्य सिद्ध नहीं हो सकता है। जिसके हाथ में शान्ति का खड्ग है, उसका दुर्जन क्या कर सकता है ॥५०॥

अतृणे पतितो वन्हिः स्वयमेवोपशाम्यति ।
अक्षमावान्परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत् ॥ ५१ ॥

विना तृण के स्थान में पड़ी हुई अग्नि, स्वयं ही शान्त हो जाती है। जो क्षमा शील नहीं है, वह अपने आपको बड़ी विपत्ति में फंसा लेता है ॥५१॥

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शांतिरुत्तमा ।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ॥ ५२ ॥

एक धर्म ही बड़ा कल्याणकारी है और क्षमा ही परम शान्ति है। विद्या बड़ी तृप्ति का साधन है और अहिंसा सुख उत्पन्न करने वाली है ॥५२॥

द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव ।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥ ५३ ॥

बिल में आये हुए जन्तुओं को सर्प की तरह यह भूमि, किसी से विरोध नहीं करने वाले राजा और विदेश में जाकर उद्योग नहीं करने वाले ब्राह्मण इन दोनों को निगल जाती है ॥५३॥

द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिँल्लोके विरोचते ।
अब्रुवन्परुषं किंचिदसतोऽनर्चयंस्तथा ॥ ५४ ॥

मनुष्य, इस संसार में दो कामों को करता हुआ बड़ी उन्नति पाता है। एक तो किसी से कठोर न बोले और एक दुष्ट पुरुषों का आदर न करे ॥५४॥

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र परप्रत्ययकारिणौ ।

स्त्रियः कामितकामिन्यो लोकः पूजितपूजकः ॥५५॥

हे पुरुषव्याघ्र! इस संसार में दो प्रकार के मनुष्य दूसरे के विश्वास पर चलते हैं। एक तो जिन पुरुषों को स्त्री चाहती है, उसको दूसरी भी चाहने लगती है और संसार में भी जिसकी पूजा एक करने लगता है, उस मनुष्य की दूसरा भी पूजा करने लग जाता है ॥५५॥

द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषिणौ ।

यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ॥५६॥

शरीर के सुखाने वाले दो बड़े काँटे हैं, जो निर्धन होकर धनवानों के से भोगों की लालसा करता है और दूसरा जो निर्बल होकर क्रोध करता है ॥५६॥

द्वावेव न विराजेते विपरीतेन कर्मणा ।

गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवांश्चैव भिक्षुकः ॥५७॥

इस संसार में विपरीत काम करने से इन दोनों की शोभा नहीं है। एक तो जो गृहस्थी होकर उद्योग नहीं करता और दूसरा काम पर लगा हुआ भी भिक्षा मांगता है ॥५७॥

द्वाविमौ पुरुषौ राजन्स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥५८॥

हे राजन्! दो पुरुष, संसार में स्वर्ग के भी ऊपर स्थित होते हैं, जो शक्तिशाली होकर क्षमा करता है तथा जो दरिद्री होकर कुछ दान देता रहता है॥५८॥

न्यायादागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ।
अपात्रेप्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम् ॥५९॥

न्याय से कमाये हुए धन में ये दो बड़े दोष माने गए हैं, जो अपात्र को दान दे दिया जाता है और पात्र को दान नहीं दिया जाता॥५९॥

द्वावंभसि निवेष्टव्यौ गले बध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥६०॥

इन दो के गले में पत्थर बांध कर उनको जल में डुबा देना चाहिए। जो धनवान् होकर दान न दे और दरिद्री होकर कष्ट-सहिष्णु न होवे॥ ६०॥

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमंडलभेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥६१॥

हे पुरुष व्याघ्र! एक तो कर्म-योगी परिव्राट् [संन्यासी] और एक जो रण में सन्मुख युद्ध करके मारा जाता है, ये दोनों पुरुष, सूर्य मण्डल को भेद करके ऊर्ध्व-गति को प्राप्त करते हैं।६१

त्रयोपायो मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ ।
कनीयान्मध्यमः श्रेष्ठ इति वेदविदो विदुः ॥६२॥

हे भरतर्षभ ! वेद के जानने वाले विद्वान् उत्तम, मध्यम और लघु ये तीन प्रकार के उपाय बताते हैं ॥ ६२ ॥

त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः ।
नियोजयेद्यथावत्तांस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥६३॥

हे राजन् ! उत्तम, मध्यम और लघु ये तीन तरह के पुरुष बताये हैं। इन तीनों को यथायोग्य तीन प्रकार के कर्मों में नियुक्त करे ॥ ६३ ॥

त्रय एवाधना राजन्भार्या दासस्तथा सुतः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥६४॥

हे राजन् ! भार्या, दास और पुत्र ये तीनों ही धनहीन कहाते हैं। इनको जो वस्तु प्राप्त होती है- वह इनके स्वामी की ही होती है ॥ ६४ ॥

हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥६५॥

अन्य का धन छीनना, अन्य की स्त्री पर हाथ डालना और मित्रों का परित्याग कर देना, ये तीनों बुराई पतन करने वाली हैं ॥ ६५ ॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥६६॥

काम, क्रोध, लोभ, ये तीनों नरक (दुःख) के द्वार और अपनी आत्मा के घातक हैं, इससे इन तीनों को छोड़ दे ॥६६॥

वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च भारत ।
शत्रोश्च मोक्षणं कृच्छ्रात्त्रीणि चैकं च तत्समम् ॥६७॥

हे भारत ! वरदान पाना, राज्यप्राप्ति, पुत्रजन्म तथा शत्रु रूपी विपत्ति से छुटकारा पाना, इनमें पूर्व की तीनों के बराबर सुखदायी चौथी बात है ॥ ६७ ॥

भक्तं च भजमानं च तवास्मीति च वादिनम् ।
त्रीनेताञ्छरणं प्राप्तान्विषमेऽपि न सन्त्यजेत् ॥६८॥

अपना भक्त सेवक और मैं तुम्हारी शरणागत हूं-ऐसा कहने वाले इन तीन प्रकार के पुरुषों को विपत्ति में भी न छोड़े ॥६८॥

चत्वारिराज्ञातुमहाबलेन वर्ज्यान्याहुःपण्डितास्तानिविद्यात्
अल्पप्रज्ञैःसह मन्त्रं न कुर्यान्न दीर्घसूत्रैरभसैश्चारणैश्च ॥६९॥

छोटी बुद्धि वाले, दीर्घ-सूत्री, क्षिप्रकारी (जल्दबाज) और स्तुति करने वाले के साथ कभी मन्त्रणा न करे । महाबली राजा को इन चारों बातों को छोड़ देना चाहिए, यह पण्डितों ने कहा है ॥६९॥

चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु श्रियाभिजुष्टस्यगृहस्य धर्मे ।
वृद्धोज्ञातिरवसन्नःकुलीनः सखादरिद्रोभगिनीचानपत्या७०

हे तात ! वृद्ध कुटुम्बी, विपद्ग्रस्त कुलीन पुरुष, दरिद्री मित्र और पुत्र-हीन भगिनी ये चार आपके सदृश सम्पत्तिशालियों के घर में सदा निवास करने चाहिए ॥७०॥

चत्वार्याह महाराज साद्यस्कानि बृहस्पतिः ।
पृच्छते त्रिदशेंद्राय तानीमानी निबोध मे ॥७१॥
देवतानां च संकल्पमनुभावं च धीमताम् ।
विनयं कृतविद्यानां विनाशं पापकर्मणाम् ॥७२॥

हे महाराज ! बृहस्पति ने इन्द्र के पूछने पर चार बातें तत्काल फल देने वाली बताई हैं- तुम उनको सुनो। एक तो देवों की इच्छा, द्वितीय बुद्धिमानों की चेष्टा, तीसरे विद्वानों का विनय और चौथे पापियों का विनाश शीघ्र हो जाता है ॥७१-७२॥

चत्वारिकर्माण्यभयङ्कराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ।
मानाग्निहोत्रमुतमानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ॥७३॥

मान के साथ किए हुए अग्निहोत्र, मौन, अध्ययन और यज्ञ, निर्भय कर देते हैं और जो इनको उलटे ढंग से करता है, ये उसका नाश भी कर देते हैं ॥७३॥

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः ।
पिता माताऽग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ ॥७४॥

हे भरतर्षभ ! मनुष्य को इन पांच अग्नियों—(१) पिता (२) माता (३) अग्नि (४) आत्मा और (५) गुरु की अवश्य सेवा करनी चाहिए ॥७४॥

पञ्चैव पूजयन्लोके यशः प्राप्नोति केवलम् ।
देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च भिक्षूनतिथिपञ्चमान् ॥७५॥

देव, पितर, मनुष्य, भिक्षु और पांचवां अतिथि इन पांचों की पूजा करता हुआ मनुष्य, जगत् में यश ही बटोरता है ॥७५॥

पञ्च त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि।
मित्राण्यमित्रा मध्यस्था उपजीव्योपजीविनः ॥७६॥

हे राजन्! तुम जहां २ जाओगे, वहीं मित्र, शत्रु, उदासीन, अपने ऊपर उपकार कराने वाला और उपकारक ये पांच व्यक्ति तुम्हारे साथ २ जावेंगे ॥ ७६ ॥

पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्य छिद्रं चेदेकछिद्रियम्।
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥७७॥

पांच इन्द्रिय धारी पुरुष के एक दोष पूर्ण छिद्र (बुराई) उत्पन्न हो जावे, तो इसकी बुद्धि से उत्तम बात इस तरह टपक जाती है जैसे फटी मशक या फूटे वस्त्र से पानी निकल जाता है ॥७७॥

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥७८॥

अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता इन छः दोषों को छोड़ देना चाहिए ॥ ७८ ॥

षडिमान्पुरुषो जह्याद्भिन्नां नावमिवार्णवे।
अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम् ॥ ७९॥
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम् ॥८०॥

मनुष्य, समुद्र में टूटी नौका की तरह नहीं बोलने वाले आचार्य, अनपढ़ ऋत्विक्, अरक्षक राजा, अप्रिय बोलने वाली भार्या, गाँव में भाग आने की जल्दी वाले ग्वाल, वन की इच्छा वाले नाई, इन छः को छोड़ दे ॥ ७९-८० ॥

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन ।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः ॥८१॥

पुरुष, सत्य, दान, अनालस्य, अनिन्दा, क्षमा और धैर्य इन छः गुणों को कभी न छोड़े ॥ ८१ ॥

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्

हे राजन्! नित्य धन का आगम, आरोग्यता, प्यारी और प्रिय बोलने वाली भार्या, आज्ञाकारी पुत्र और धन उत्पन्न कराने वाली विद्या ये छः प्राणिमात्र के सुख के साधन हैं ॥८२॥

षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति ।
न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः ॥८३॥

मनुष्य के स्वभाव में मिलने वाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मान इन पर जो अधिकार पाये हुए हैं, वे जितेन्द्रिय, पापों से क्या? किसी भी अनर्थ से युक्त नहीं होता हैं ॥ ८३ ॥

षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोपलभ्यते ।
चौराः प्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु चिकित्सकाः ॥८४॥

प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः ।
राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः ॥८५॥

छः पुरुष, इन छः प्रकार के पुरुषों से अपनी जीविका चलाते हैं । यहां सातवें की चर्चा नहीं की जाती है । (१) चौर प्रमादी से (२) वैद्य रोगी से (३) व्यभिचारिणी स्त्री कामियों से (४) यज्ञ करने वाले याजकों से, (५) राजा झगड़ा करने वालों से और (६) पण्डित मूर्खों से वृत्ति करते हैं ॥ ८४-८५ ॥

षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात् ।
गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसङ्गतिः ॥८६॥

यदि कुछ काल भी इनकी देख भाल छोड़ दी जावे, तो गाय, सेवा, खेती, भार्या, विद्या और वृषल (धर्महीन) की सङ्गति ये छः बातें शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं ॥ ८६ ॥

षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम् ।
आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम् ॥
नारीं विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम् ।
नावं निस्तीर्णकान्तारा आतुराश्च चिकित्सकम् ॥८८

पढ़ लेने पर शिष्य आचार्य को, विवाह होनेपर पुत्र माता को, कामहीन पुरुष स्त्री को, काम सिद्ध करने वाले मनुष्य उपकारक को, समुद्र पार करने वाला नाव को, रोगी वैद्य को, ये छः अपने पूर्व उपकारी को छोड़ देते हैं, ऐसा प्रायः देखने में आता है ।८७

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः सद्भिर्मनुष्यैः सह संप्रयोगः ।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः षट् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ।

हे राजन्! आरोग्य, ऋणाभाव, विदेश का निवास, सज्जनों के साथ सङ्गति, अपने पुरुषार्थ से जीविका, निर्भय निवास-ये छः पुरुष को सुख के कारण हैं॥ ८९॥

ईर्ष्युर्घृणी न सन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः॥९०॥

ईर्ष्या और घृणा करने वाला असन्तोषी, क्रोधी, नित्य शङ्का करने वाला और पर-भाग्य पर जीवन धारी, ये छः नित्य दुःखी माने गए हैं॥९०॥

सप्त दोषाः सदा राज्ञा हातव्या व्यसनोदयाः।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः॥९१॥
स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमम्।
महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च॥९२॥

राजाओं का अधोलिखित आपत्ति लाने वाले सात दोषों को छोड़ देने चाहिए। इन दोषों में लिप्त हुए बड़े २ बद्धमूल शक्तिशाली राजा भी नष्ट हो जाते हैं। स्त्री, जुआ, शिकार, सुरापान, कठोर भाषण, छठा कठोरता के साथ दण्ड और सातवाँ दोष दूषित नीति पर चलना है॥ ९१-९२॥

अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यतः।
ब्राह्मणान्प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते॥९३॥
ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति।
रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाभिनन्दति॥ ९४॥

नैनान्स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति ।
एतान्दोषान्नरः प्राज्ञो बुध्येद् बुध्वा विसर्जयेत् ॥६५॥

ब्राह्मणों का अनिष्ट चिन्तन, ब्राह्मणों से द्वेष, ब्राह्मणों का धन खाना, ब्राह्मणों को मारने की इच्छा करना, ब्राह्मणों की निन्दा में प्रसन्न होना, ब्राह्मणों की प्रशंसा से अप्रसन्न होना, काम पड़ने पर ब्राह्मण को याद न करना, किसी याचना पर फटकार देना, ये आठों दोष नष्ट होने वाले पुरुष या राजा के पूर्व कारण बनते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य, इन दोषों का तत्व समझ कर इनको छोड दे ॥६३—६५॥

अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत ।
वर्तमानानि दृश्यंते तान्येव स्वसुखान्यपि ॥ ६६ ॥
समागमश्च सखिभिर्महांश्चैव धनागमः ।
पुत्रेण च परिष्वंगः सन्निपातश्च मैथुने ॥ ६७ ॥
समये च प्रियालापः स्वयूथ्येषु समुन्नतिः ।
अभिप्रेतश्च लाभश्च पूजा च जनसंसदि ॥ ६८ ॥

हे भारत ! नवनीत (मक्खन) की भांति, हर्ष के ये आठ स्थान हैं। मित्रों के साथ मेल, धन की प्राप्ति, पुत्र का आलिङ्गन मैथुन में प्रेमपूर्वक एकाग्रता, समय पर प्रेमीजनों से बातचीत, अपने समान वर्ग में उन्नति, अभीष्ट का लाभ, जन समूह में पूजा, ये आठ बातें सदा सुख देने वाली मानी गई हैं ॥६६-६८॥

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ९९

बुद्धि, कुलीनता, जितेन्द्रियता, विद्या, पराक्रम, सार-युक्त स्वल्प-भाषण, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता- ये आठ गुण पुरुषों को संसार में चमका देते हैं ॥९९॥

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पंचसाक्षिकम् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः १००

यह शरीर रूपी भवन, नव इन्द्रियों के रन्ध्र रूपी द्वारों से युक्त है। वात पित्त और कफ ये तीन इस भवन की स्थूणी हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच इसके साक्षी (साथी) हैं। यह शरीर आत्मा से युक्त है-ऐसा जो जान लेता है, वही विद्वान्, उत्तम कवि है ॥१००॥

दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान् ।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥१०१॥
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पंडितः ॥१०२ ॥

हे धृतराष्ट्र! मत्त, (अहंकारी) प्रमत्त, (गफलती) उन्मत्त, (पागल) थका हुआ, क्रुद्ध, भूखा, शीघ्रता करने वाला, लोभी, भयभीत, कामी, ये दश मनुष्य, धर्म को नहीं पहिचानते हैं। तुम इनको समझ लो। पण्डित को भी चाहिए—इन पुरुषों से अधिक मेल मिलाप न रखे ॥१०२॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पुत्रार्थमसुरेन्द्रेण गीतं चैक सुधन्वना ॥ १०३ ॥

इस स्थान पर एक पुराना इतिहास कहा जा सकता है, जो असुरेन्द्र सुधन्वा ने पुत्र के लिए कहा था ॥१०३॥

यः काममन्यू प्रजहाति राजा पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च ।
विशेषविच्छ्रुतवान्क्षिप्रकारी तं सर्वलोकः कुरुते प्रमाणम् ॥

जो राजा, काम और क्रोध को छोड़ कर सत्पुरुषों में धन को प्रदान करता है, जो विशेष २ अनुभव की बातों का जानने वाला तथा शास्त्रों का ज्ञाता है, उस राजा की सब लोग प्रतिष्ठा करते हैं ॥१०४॥

जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान्विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम्
जानाति मात्रां च तथा क्षमां च तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा

जो मनुष्यों में विश्वास उत्पन्न करना जानता है तथा जिसका अपराध प्रकट हुआ उसको दण्ड दे देता है एवं जो दण्ड की मात्रा और क्षमाके स्थानों को जानता है, उस राजा को राज्यलक्ष्मी पूर्ण रूप से प्राप्ति होती हैं ॥१०५॥

सुदुर्बलं नावजानाति कंचिद्युक्तो रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम् ।
न विग्रहं रोचयते बलस्थैः काले च यो विक्रमते स धीरः ।

जो राजा, किसी भी शत्रु को दुर्बल : नहीं जानता और शत्रु के साथ बड़ी बुद्धि और युक्ति से व्यवहार करता है एवं

जो कभी बलवानों के साथ युद्ध नहीं ठानता और जो समय पर पराक्रम भी दिखाता है- वही सच्चा धीर पुरुष है ॥१०६॥

प्राप्यापदं न व्यथते कदाचिदुद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः ।
दुःखं च काले सहते महात्मा धुरन्धरस्तस्य जिताःसपत्नाः

जो राजा या मनुष्य, विपत्ति को प्राप्त होकर नहीं घबड़ाता और बड़ी सावधानी से उद्योग करता रहता है। जो धुरन्धर महात्मा समय पर कष्ट सह लेता है, उसके शत्रु तो जीते हुए ही पड़े हैं ॥१०७॥

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः पापैः संधिं परदाराभिमर्शनम्
दम्भं स्तैन्यं पैशुनं मद्यपानं न सेवते यश्च सुखी सदैव

निरर्थक किस्से, घर से बाहर निवास, पापियों से मेल, पर-स्त्री सेवन, पाखण्ड, चोरी, चुगली और मद्यपान इन बातों को जो सेवन नहीं करता, वही सदा सुखी माना गया है ॥१०८॥

न संरंभेणारभते त्रिवर्गमाकारितः शंसति तत्वमेव ।
न मित्रार्थे रोचयते विवादं नापूजितः कुप्यति चाप्यमूढः

जो कभी आवेग में आकर धर्म, अर्थ और काम की व्याख्या नहीं करता तथा पूछने पर जो धर्म के तत्व का कथन करता है। जिसको मित्र के साथ विवाद अच्छा नहीं लगता, जो आदर न पाकर भी कुपित नहीं हो उठता, वही पण्डित माना गया है॥१०९॥

न योऽभ्यसूयत्यनुकंपते च न दुर्बलः प्रातिभाव्यं करोति
नात्याह किंचित्क्षमते विवादं सर्वत्र तादृग्लभते प्रशंसाम्

जो किसी की निन्दा नहीं करता, किन्तु सब पर कृपा करता रहता है,जो दुर्बल होकर किसी से झगड़ा नहीं करता,जो अधिक नहीं बोलता और विवाद को क्षमा कर देता है, वही मनुष्य सर्वत्र प्रशंसा पाता है॥ ११० ॥

यो नोद्धतं कुरुते जातु वेषं न पौरुषेणापि विकत्थतेऽन्यान्
न मूर्च्छितः कटुकान्याह किञ्चित्प्रियं सदा तं कुरुते जनो हि

जो कभी उद्धत वेष धारण न करे और न अपने पराक्रम की प्रशंसा करके अन्य की निन्दा करे, जो क्रोध में भर कर कभी कटु वचन नहीं बोले, उस मनुष्य से सारे मनुष्य प्रेम करने लगते हैं॥ १११ ॥

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति ।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः

जो शान्त हुए वैर को फिर प्रदीप्त नहीं करता, जो न कभी दुरभिमान करे और न नीचा बने तथा मैं विपत्ति में फंसा हूं- यह जानकर कभी अकार्य नहीं करे, उस सदाचारी पुरुष को सारे उत्तम पुरुष आर्य कहते हैं॥ ११२ ॥

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः ।
दत्वा च पश्चात्कुरुते न तापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः

जो अपने सुख में हर्ष नहीं करता और अन्य के दुःख में प्रसन्न नहीं होता, जो दान देकर पीछे पछताता नहीं है, वही सत्पुरुष और आर्य कहाता है॥११३॥

देशाचारान्समयाञ्जातिधर्मान्बुभूषते यः स परावरज्ञः ।
स यत्र तत्राभिगतः सदैव महाजनस्याधिपत्यं करोति

जो मनुष्य, इधर उधर का सारा अनुभव प्राप्त करके देशाचार, समय, जाति धर्म जानता है, वह कहीं भी चला जावे, जहाँ जावेगा, वहीं वह जन-समूह का अधिपति बन जावेगा ॥११४॥

दम्भं मोहं मत्सरं पापकृत्यं राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम् ।
मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं यः प्रज्ञावान्वर्जयेत्स प्रधानः ॥

जो बुद्धिमान् , दम्भ, मोह, ईर्ष्या-द्वेष, पाप कर्म, राजा से द्वेष, चुगली, समूह से वैर तथा मत्त, उन्मत्त और दुर्जनों के साथ विवाद का परित्याग करता है, वही प्रधान है ॥ ११५ ॥

दानं होमं दैवतं मंगलानि प्रायश्चित्तान्विविधांल्लोकवादान्
एतानि यः कुरुते नैत्यकानि तस्योत्थानं देवताराधयन्ति ॥

जो दान, होम, देवों की पूजा, मङ्गलकार्य, प्रायश्चित्त, अनेक लोकों की चर्चा, नित्य करता है, उसके सफलता का देवता उद्योग करते रहते हैं ॥ ११६ ॥

समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः समैः सख्यं व्यवहारं कथां च
गुणैर्विशिष्टांश्च पुरो दधाति विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः

जो समान जनों के साथ विवाह, मित्रता, व्यवहार, बातचीत करता है, हीन आचरणों वालों से इन बातों को नहीं करता तथा गुणों से श्रेष्ठ जनों को आगे करता है, उस विद्वान् राजा या पुरुष की नीति सुनीति कहाती है ॥ ११७॥

मितं भुंक्ते संविभज्याश्रितेभ्यो मितंस्वपित्यमितंकर्मकृत्वा
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः संस्तमात्मवन्तंप्रजहात्यनर्थः ॥

अपने आश्रित जनों को देकर आप थोड़ा खाता है, अधिक काम करके भी थोड़ा सोता है। विरोधियों के भी याचना करने पर उनकी अभिलाषा पूरी करता है, उस आत्मवान् पुरुष से अनर्थ दूर भाग जाता है ॥११८॥

चिकीर्षितं विप्रकृतं च यस्य नान्ये जनाःकर्मजानन्तिकिञ्चित्
मन्त्रेगुप्ते सम्यगनुष्ठिते च नाल्पोऽप्यस्यच्यवते कश्चिदर्थः

जिस राजा के भविष्य में करने योग्य कार्य तथा किसी के विरोध एव उपायों को कोई नहीं जान पावे तथा सुगुप्त मन्त्र के अच्छी तरह प्रयुक्त कर देने पर ही लोग उसे जान सके—उस राजा का स्वार्थ थोड़ा भी नष्ट नहीं होता है ॥११९॥

यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः सत्यो मृदुर्मानकृच्छुद्धभावः।
अतीव स ज्ञायते ज्ञातिमध्ये महामणिर्जात्य इव प्रसन्नः ॥

जो सब प्राणियों के साथ मेल करने में तत्पर है, जो सत्य व्यवहार करने वाला, शुद्ध अन्तःकरण धारी है, वह अपनी जाति के मध्य में ऐसे चमकता है जैसे उत्तम जाति को महामणि अन्य मणियों में चमकती है ॥१२०॥

य आत्मनाऽपत्रपते भृशं नरः स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत
अनंततेजाः सुमनाः समाहितः स तेजसा सूर्य इवावभासते

जो अपने आप लज्जित सा रहता है, वही सारे संसार का पूज्य होता है तथा अत्यन्त तेजस्वी, सावधान और प्रसन्न चित्त-धारी पुरुष ही संसार में सूर्य की भांति चमक उठता है ॥१२१॥

वनेजाताःशापदग्धस्यराज्ञः पाण्डोःपुत्राःपञ्चपञ्चेन्द्रकल्पाः
त्वयैवबाला वर्धिताःशिक्षिताश्च तवादेशंपालयन्त्यांबिकेय॥

हे आम्बिका पुत्र ! शाप—दग्ध राजा पाण्डु के ये इन्द्र के समान तेजस्वी पांच पुत्र वन में उत्पन्न हुए हैं। हे राजन ! इन बालकों को तुम्हीं ने पाला, बढ़ाया और पढ़ाया है। ये आपकी आज्ञा पालन करने को तय्यार हैं ॥१२२॥

प्रदायैषामुचितं तात राज्यं सुखी पुत्रैः सहितो मोदमानः ।
न देवानांनापि च मानुषाणां भविष्यसि त्वं तर्कणीयोनरेन्द्र
इति श्रीमहाभारत वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि
विदुरनीतिवाक्ये त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३३॥

हे तात ! तुम इनका उचित राज्य देकर, अपने पुत्रों के साथ आनन्द उड़ाते हुए सुख से रहो। हे नरेन्द्र ! ऐसा कर लेने के अनन्तर तुम पर मनुष्य क्या देवता भी आक्रमण करने का विचार नहीं कर सकेंगे ॥१२३॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत प्रजागरपर्व में विदुर-नीति का तेवीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



चौतीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

जाग्रतो दह्यमानस्य यत्कार्यमनुपश्यसि ।
तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥१॥

धृतराष्ट्र कहने लगा—हे तात ! मैं रात भर चिन्तातुर होकर जागता हूं । अब जो मेरा कर्तव्य तुम्हें दिखाई दे-वह मुझे बताओ, क्योंकि तुम धर्म और अर्थ नीति दोनों के जानने वाले हो ॥१॥

त्वं मां यथावद्विदुर प्रशाधि प्रज्ञापूर्वं सर्वमजातशत्रोः ।
यन्मन्यसे पथ्यमदीनसत्व श्रेयस्करं ब्रूहि तद्वै कुरूणाम् २

हे महात्मन् ! विदुर ! धर्मराज के विषय में तुम मुझे बुद्धि-पूर्वक ठीक २ वह बातें बता दो, जिसे तुम कौरव वंश के लिए हितकारी मानते हो ॥ २ ॥

पापांशकी पापमेवानुपश्यन्पृच्छामि त्वां व्याकुलेनात्मनाहम्
कवे तन्मे ब्रूहि सर्वं यथावन्मनीषितं सर्वमजातशत्रोः॥३॥

हे विद्वन् ! मैं तो कुनीति का विचार करता रहता हूं, इससे मुझे तो बुरा ही बुरा दृष्टिगोचर होता है। अब मैं बड़ा व्याकुल होकर तुम से पूछता हूं, कि अजातशत्रु युधिष्ठिर क्या चाहता है? यह ठीक २ कहो ॥ ३ ॥

विदुर उवाच—

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम् ।
अपृष्टस्तस्य तद्ब्रूयाद्यस्य नेच्छेत्पराभवम् ॥४॥

तस्माद्वक्ष्यामि ते राजन् हितं यत्स्यात् कुरून्प्रति ।
वचः श्रेयस्करं धर्म्यं ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥५॥

विदुर बोला—शुभ प्रतीत हो या अशुभ,अप्रिय लगे या प्रिय, बुद्धिमान् मनुष्य जिसका हित चाहे,उसको बिना पूछे भी कह दे। हे राजन ! इसलिये जो कौरवों का हित होगा, वही धर्मानुकूल, कल्याणकारी वचन कहूंगा—तुम मुझसे उस वचान को सुनो ॥ ४-८ ॥

मिथ्योपेतानि कर्माणि सिद्ध्येयुर्यानि भारत ।
अनुपायप्रयुक्तानि मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥६॥

हे भारत ! जो अधर्म पूर्ण कार्य अनुचित उपायों से सिद्ध भी हो जावे, तो भी उन कार्यों के सिद्ध करने में तुमको अपना मन नहीं चलाना चाहिए ॥ ६ ॥

तथैव योगविहितं यत्तु कर्म न सिद्ध्यति ।
उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः ॥७॥

इसी तरह विचार पूर्वक उत्तम नीति द्वारा काम करने पर भी यदि वह सिद्ध न हो-तो बुद्धिमान् मनुष्य को इस विषय में अपने मन को मैला नहीं करना चाहिए ॥७॥

अनुबन्धानपेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु ।
सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत् ॥८॥

फल वाले कर्मों के फलों पर प्रथम दृष्टि डाल ले। प्रत्येक कर्म को विचार कर करे, काम के करने में कभी जल्दी नहीं करनी चाहिए ॥८॥

अनुबन्धं च सम्प्रेक्ष्य विपाकं चैव कर्मणाम्।
उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा ॥९॥

कार्य के अनुबन्ध (पहलू) और परिणाम पर विचार करे तथा अपनी उन्नति की ओर देखकर मनुष्य कार्य में प्रवृत्त या निवृत्त होवे ॥९॥

यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये।
कोशे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते ॥१०॥

जो राजा, स्थान, वृद्धि, क्षय, कोश, राष्ट्र और दण्ड का प्रमाण नहीं जानता है—वह राज्य का शासन नहीं कर सकता है ॥१०॥

यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तान्यनुपश्यति।
युक्तो धर्मार्थयोर्ज्ञाने स राज्यमधिगच्छति ॥११॥

जो उपर्युक्त बातों के प्रमाणों को ठीक २ जानता है तथा धर्म और नीति के ज्ञान से युक्त है, वही राज्य-शासन कर सकता है ॥११॥

न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसांप्रतम्।
श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम् ॥१२॥

मैंने राज्य को प्राप्त कर लिया—यह समझ कर जो उद्धतता से चलता है, वह नष्ट हो जाता है, क्योंकि अविनय तो राज्य-लक्ष्मी को इस तरह नष्ट कर देता है जैसे जरा (बुढ़ापा) रूप का नाश कर देती है ॥१२॥

भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं मत्स्यो बडिशमायसम् ।
लोभाभिपाती ग्रसते नानुबन्धमवेक्षते ॥१३॥

उत्तम भक्ष्य से प्रतिच्छन्न, लोहे के कांटे को लोभ में ग्रस्त, मछली निगल जाती है। यह उसका अनुबन्ध (आगा पीछा) नहीं देखती ॥१३॥

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत् ।
हितं च परिणामे यत्तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥१४॥

जो ग्रास खाया जा सके या खाया हुआ पच जावे एवं पचने पर हितकारी हो—उसे ही कल्याण चाहने वाले मनुष्य को खाना चाहिए ॥१४॥

वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः ।
स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति ॥१५॥

जो मनुष्य, वनस्पति के कच्चे फलों को तोड़ता है, उसे कोई स्वाद तो मिलता नहीं है, सिर्फ वह वनस्पति के बीजों का ही नाश कर देता है ॥१५॥

यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम् ।
फलाद्रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः ॥१६॥

जो समय पर पके हुए फलों को तोड़ता है, वह फल के रस का भी स्वाद लेता है और बीज से फिर फल प्राप्त कर लेता है ॥१६॥

यथा मधुसमादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः ।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ॥१७॥

भ्रमर पुष्पों की रक्षा करता हुआ ही मधु (शहद) को बटोरता है, इसी तरह बिना किसी को कष्ट पहुंचाए, धन को इकट्ठा करो ॥१७॥

पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत् ।
मालाकार इवारामे न यथांगारकारकः ॥१८॥

माली की तरह बाग में फूल २ को तोड़ ले, परन्तु अग्नि जलाने वाले की तरह वृक्ष को जड़ से न काटे ॥१८॥

किन्नु मे स्यादिदं कृत्वा किन्नु मे स्यादकुर्वतः ।
इति कर्माणि सञ्चिन्त्य कुर्याद्वा पुरुषो न वा ॥१९॥

इसके करने से क्या होगा और इसको नहीं करने से क्या होगा, इस प्रकार कर्मों का विचार करके बुद्धिमान मनुष्य, कार्य का आरम्भ या परित्याग करे ॥१९॥

अनारभ्या भवन्त्यर्थाः केचिन्नित्यं तथाऽगताः ।
कृतः पुरुषकारो हि भवेद्येषु निरर्थकः ॥२०॥

कुछ कामों का स्वरूप ही ऐसा है, कि वे आरम्भ नहीं किए जा सकते हैं। इन कामों के आरम्भ करने में पुरुषार्थ निरर्थक हो जाता है ॥२०॥

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षंढं पतिमिव स्त्रियः ॥२१॥

जिसका अनुग्रह और कोप निरर्थक है, उसको प्रजा, भर्ता नहीं बनाना चाहती है- जैसे स्त्री नपुंसक को पति नहीं बनाती है ॥२१॥

कांश्चिदर्थान्नरः प्राज्ञो लघुमूलान्महाफलान् ।
क्षिप्रमारभते कर्तुं न विघ्नयति तादृशान् ॥२२॥

बुद्धिमान् मनुष्य, स्वल्प मूल वाले (अल्प परिश्रम साध्य) और महा फल दायी कामों का शीघ्र आरम्भ कर देते हैं, वे उनमें कुछ भी विघ्न नहीं आने देते ॥२२॥

ऋजु पश्यति यः सर्वं चक्षुषाऽनुपिबन्निव ।
आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः ॥२३॥

जो प्रेम भरी दृष्टि से सारी प्रजा को सरलता से देखता है, उसके चुपचाप बैठे रहने पर भी प्रजा उससे प्रेम करती है ॥२३॥

सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद् दुरारुहः ।
अपक्वः पक्वसंकाशो न तु शीर्येत कर्हिचित् ॥२४॥

जिस वृक्ष में पुष्प अच्छे हों और फल न लगते हों और फल लगे हों, परन्तु उस पर चढ़ा न जाता हो तथा जिसका विना पका फल ही पका सा दीखता हो और कभी पक कर फटता न हो, इसी वृक्ष की तरह नीतिमान् राजा को होना चाहिए ॥२४॥

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् ।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति ॥२५॥

चक्षु, मन, वाणी और कर्म इन चारों से जो प्रजा को सन्तुष्ट करता है, उस से प्रजा बड़ी प्रसन्न रहती है ॥२५॥

यस्मात्त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव ।
सागरांतामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते ॥२६॥

जिससे व्याध से मृग की तरह प्रजा डरती रहती है,वह समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का राज्य पाकर भी उससे च्युत नहीं होता है ॥२६॥

पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान्स्वेन कर्मणा ।
वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः ॥ २७ ॥

जिसने अपने कर्म से पिता पितामहों का राज्य पाया, वह राजा मेघ को वायु की तरह अनय में वर्तमान हुआ राज्य को नष्ट कर देता है ॥२७॥

धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः ।
वसुधा वसुसंपूर्णा वर्धते भूतिवर्धनी ॥ २८ ॥

जो आदि काल से सज्जनों से व्यवहार में लाए हुए, धार्मिक आचरण को करता है, उसको धन से भरी हुई पृथ्वी, ऐश्वर्य के बढ़ाने वाली होती है ॥२८॥

अथ संत्यजतो धर्ममधर्मं चानुतिष्ठतः ।
प्रतिसंवेष्टिते भूमिरग्नौचर्माहितं यथा ॥ २९ ॥

धर्म को छोड़ने और अधर्म का आचरण करने वाले राजा की भूमि ऐसे सुकड़ जाती है—जैसे अग्नि में चमड़ा सुकड़ जाता है ॥२९॥

य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने ।
स एव यत्नः कर्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने ॥ ३० ॥

जितना प्रयत्न शत्रु के राज्य के मर्दन के लिए करना पड़ता है, उतना ही प्रयत्न अपने राष्ट्र की रक्षा में करना चाहिए ॥२०॥

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत् ।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते ॥ २१ ॥

धर्म से राज्य को प्राप्त करे और धर्म से उसका पालन करे। जो धर्म के अनुसार राज्यलक्ष्मी को पाता है, वह न तो राज्यलक्ष्मी को छोड़ता है और न राज्यलक्ष्मी उसको छोड़ती है ॥२१॥

अप्युन्मत्तात्प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः ।
सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव काञ्चनम् ॥ २२ ॥

निरर्थक बकते हुए पागल और कच्चा पक्का बोलते हुए बालक के वचनों से भी पत्थरों से सुवर्ण के समान सार ग्रहण किया जा सकता है ॥२२॥

सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः ।
सञ्चिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा ॥ ३३॥

अच्छी तरह कही हुई उत्तम बात और उत्तम कर्मों को इधर उधर से शिला चुगने वाले मुनि के कण इकट्ठे करने के समान इकट्ठा कर ले ॥३३॥

गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः ।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥ ३४ ॥

गायें सूंघकर, ब्राह्मण वेद से, राजा गुप्तचरों से पदार्थों को देखते हैं। आखों से तो साधारण मनुष्य देखा करते हैं ॥३४॥

भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा।
अथ या सुदुहा राजन्नैव तां वितुदंत्यपि ॥ ३५ ॥

हे राजन्! जो गौ, क्लेश से दुग्ध देती है, वह बड़ा क्लेश उठाती है और जो गाय अच्छी तरह दूध दे देती है, उसको कोई पीड़ा नहीं पहुंचाता है ॥३५॥

यदतप्तं प्रणमति न तत्सन्तापयन्त्यपि।
यच्च स्वयं न तद् दारु न तत्सन्तापयन्त्यपि ॥ ३६ ॥
एतयोपमया धीरः सन्नमेत बलीयसे।
इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे ॥ ३७ ॥

जो धातु बिना तपाये ही मुड़ जावे, उसके तपाने की क्या आवश्यकता है अथवा जो काष्ठ स्वयं मुड़ जावे, उसके मोड़ने को कोई भी सन्ताप नहीं दिया जाता है। इन दोनों उदाहरणों को देखकर बुद्धिमान्, बलवान् के सामने झुक जावे, जो बलवान् को झुकता है, वह तो इन्द्र के झुकने के तुल्य है ॥३६-३७॥

पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मंत्रिबान्धवाः।
पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेदबान्धवाः ॥३८

पशुओं के बान्धव मेघ, राजा के मन्त्री, स्त्रियों के रक्षक, पति और ब्राह्मणों के बान्धव वेद हैं ॥३८॥

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥ ३९ ॥

धर्म की सत्य से, विद्या की अभ्यास से, रूप की सम्भालने धोने से और कुल का सदाचार से रक्षा होती है ॥३६॥

मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षात्यनुक्रमः ।
आभीक्ष्णदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचेलतः ॥४०॥

तोलने से धान्य, घुमाने चलाने से अश्व, देखभाल से गाय और मैले वस्त्रों से स्त्री की रक्षा होती है ॥४०॥

न कालं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः ।
अन्तोष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते ॥ ४१ ॥

मेरे मत में तो सदाचार हीन पुरुष के कुल का गौरव रह नहीं सकता है। जो अन्त के वर्ण में उत्पन्न हुआ है, उनके यहाँ भी सदाचार का ही महत्व है॥४१॥

य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये ।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनंतकः ॥ ४२ ॥

जो दूसरे का धन, रूप, पराक्रम, कुल, सुख, भाग्य और सत्कार को देखकर जलता है, उसके इस व्याधि की कोई चिकित्सा नहीं है ॥४२॥

अकार्यकरणाद्भीतः कार्याणां च विवर्जनात् ।
अकाले मन्त्रभेदाच्च येन माद्येन्न तत्पिबेत् ॥ ४३ ॥

जो बुरे काम करने और कार्य की सिद्धि नहीं होने एवं कार्य से प्रथम मंत्र भेद हो जाने से डरता है, उसको जिन

काम क्रोध आदि से मोह उत्पन्न हो, उनको स्वीकार नहीं करना चाहिए ॥४३॥

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः।
मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः ॥ ४४ ॥

अहङ्कारियों को विद्या, धन और सहायकों का बड़ा मद होता है, परन्तु ये ही सज्जनों के नम्र बनाने के हेतु हैं ॥४४॥

असन्तोऽभ्यर्थिताः सद्भिः क्वचित्कार्ये कदाचन
तावन्न तस्य सुकृतं किंचित्कार्यं कदाचन।
मन्यंते संतमात्मानमसंतमपि विश्रुतम् ॥ ४५ ॥

कभी किसी कार्य के लिए सज्जनों द्वारा असज्जनों से अप्रार्थना की, तो उसने सज्जन का कार्य सिद्ध तो नहीं किया और उसकी प्रार्थना मात्र से अपने को सज्जन मान बैठता है, यद्यपि स्वयं दुष्टता में प्रसिद्ध है ॥४५॥

गतिरात्मवतां संतः संत एव सतां गतिः।
असतां च गतिं संतो न त्वसंतः सतां गतिः ॥

सज्जन ही महात्माओं के आश्रय और सज्जन ही सज्जनों की गति है। सज्जन तो दुष्टों के भी आश्रय हैं, परन्तु दुष्ट किसी का आश्रय नहीं हो सकते हैं ॥४६॥

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम् ॥ ४७॥

वस्त्रधारी, सभा को जीत लेता है। गौ पालने वाले की मिष्ट भोजन की आशा पूरी हो जाती है, जिसके पास सवारी है, उसका मार्ग जीता ही पड़ा है और शीलवान पुरुष ने तो सब कुछ जीत रखा है ॥४७॥

शीलं प्रधानं पुरुषे तद्यस्येह प्रणश्यति।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः ॥ ४८ ॥

पुरुष में शील ही प्रधान है। जिसका शील नष्ट हो गया, उसके जीवन, धन और बन्धुओं के रहने से भी कोई प्रशंसा नहीं है ॥४८॥

आढ्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम्।
तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ ॥ ४६ ॥

हे भरतर्षभ! धनाढ्य मनुष्य मांस का, साधारण गोरस से उत्पन्न पदार्थों का और दरिद्री तेल के बने पदार्थों का अधिक भोजन करता है ॥४६॥

संपन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा ॥ ५० ॥

दरिद्री कुछ भी खावे, सदा अच्छा ही भोजन करते हैं, क्योंकि वे भूख में खाते हैं। जो भूख स्वाद उत्पन्न करती है, वह धनवानों को दुर्लभ है ॥५०॥

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते ॥ ५१ ॥

यह अधिकता से देखा जाता है, कि धनवानों में भोग की शक्ति नहीं होती। हे महीपते! दरिद्रियों के खाया हुआ तो काष्ठ भी पच जाता है ॥५१॥

अवृत्तिर्भयमंत्यानां मध्यानां मरणाद्भयम्।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात्परं भयम् ॥ ५२ ॥

क्षुद्र मनुष्यों को जीविका नहीं होने का बड़ा भय रहता है और मध्यमों को मृत्यु का भय है। इसी तरह उत्तम जनों को अपमान से बड़ा ही भय लगा रहता है ॥५२॥

ऐश्वर्यमदपापिष्ठा मदाः पानमदादयः।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि नाऽपतित्वा विबुध्यते ॥ ५३ ॥

ऐश्वर्य के मद में फंसा हुआ मनुष्य अधिक पापी है। सुरा पान आदि का मद तो कोरे मद कर देने वाले हैं, परन्तु ऐश्वर्य के मद में उन्मत्त पुरुष, विना गिरे चेत नहीं कर सकता है ॥५३॥

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्तमानैरनिग्रहैः।
तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव ॥ ५४ ॥

इन्द्रियों के विषयों में वर्तमान, नहीं जीती हुई इन्द्रियों से यह संसार तपाया जा रहा है- जैसे बड़े ग्रहों से छोटे तारे मन्द कर दिए जाते हैं ॥५४॥

यो जितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्मकर्षिणा।
आपदस्तस्य वर्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराट् ॥ ५५ ॥

आत्मा को पीछे खैंच ले जाने वाले, इन्द्रियों के पञ्चवर्ग से युक्त हुए पुरुष की आपत्तियां इस तरह बढ़ती हैं- जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा बढ़ता है ॥५५॥

अविजित्य यथाऽऽत्मानममात्यान्विजिगीषते ।
अमित्रान्वाऽजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते ॥५६

जो अपने को न जीतकर अमात्यों को जीतना चाहता है तथा बिना मन्त्रियों के जीते शत्रु के जीतने की अभिलाषा करता है, वह स्वयं परवश होकर अपने स्वार्थ से भ्रष्ट हो जाता है ॥५६

आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण योजयेत् ।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते ॥५७॥

जो प्रथम अपने मन को शत्रु समझकर जीत लेता है, वह पीछे मन्त्री और उससे पीछे शत्रुओं को जीतता है। मन के जीते बिना जीतने की इच्छा करना व्यर्थ है ॥५७॥

वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदंडं विकारिषु ।
परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥५८॥

जितेन्द्रिय, मन के विजयी, दुष्टों को दण्ड देने वाले, विचार कर कार्य कर्त्ता और अत्यन्त धीर पुरुष की सेवा स्वयं लक्ष्मी, करती है ॥५८॥

रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः ॥

हे राजन! पुरुष का शरीर रथ है। जीती हुई इन्द्रियां इसके अश्व हैं। इन इन्द्रिय रूपी अश्वों को अधिकार (काबू) में कर लेने पर उन उत्तम अश्वों से सावधान पुरुष, महारथी की भांति बड़ी कुशलता से सुख से अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाता है॥५९॥

एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम्।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम्॥६०॥

यदि इन इन्द्रिय रूपी अश्वों को नहीं रोका जा सका, तो ये पुरुष को मार देने में समर्थ हो जाते हैं जैसे उद्दण्ड, अशिक्षित अश्व, मार्ग में कुसारथि का नाश कर देते हैं॥६०॥

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः।
इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुःखं मन्यते सुखम्॥६१॥

इन्द्रियों से जीता हुआ मूर्ख पुरुष, अनर्थ को अर्थ, और अर्थ को अनर्थ समझने लगता है तथा वह दुःख को भी सुख मानने लगता है॥६१॥

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते॥६२॥

जो धर्म और नीति को छोड़कर इन्द्रियों के वश में चल पड़ता है, वह बहुत ही शीघ्र लक्ष्मी, धन और स्त्रियों से रहित हो जाता है॥६२॥

अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः।
इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद्भ्रश्यते हि सः॥६३॥

जो धन का स्वामी होता है, वह इन्द्रियों का स्वामी नहीं बन पाता है, परन्तु इन्द्रियों के स्वामी बने विना, वह धन के ऐश्वर्य से भी भ्रष्ट हो जाता है ॥६३॥

आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः ।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥६४॥

मन, बुद्धि और इन्द्रियों को वश में करके अपने आप आत्मा का उद्धार करे, क्योंकि आत्मा का आत्मा ही बन्धु और आत्मा का आत्मा ही शत्रु है ॥६४॥

बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनैवात्माऽऽत्मना जितः ।
स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः ॥६५॥

जिसने अपनी आत्मा को जीत लिया है, उसका आत्मा ही बन्धु है। जीता हुआ आत्मा, बन्धु और नहीं जीता हुआ आत्मा, शत्रु माना गया है ॥६५॥

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुरू ।
कामश्च राजन्क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः ॥६६॥

जैसे छोटे छेद के जाल में बड़ी मछली नहीं पकड़ी जाती, इसी तरह काम और क्रोध भी हाथ नहीं आते हैं और ये ज्ञान को लुप्त कर देते हैं ॥६६॥

समवेक्ष्येह धर्मार्थौ सम्भारान्योऽधिगच्छति ।
स वै सम्भृतसम्भारः सततं सुखमेधते ॥६७॥

जो धर्म और नीति का ध्यान रखकर अपनी साधन सामग्री इकट्ठी करता है, वह साधन सामग्री इकट्ठी कर लेने पर बड़ा सुख प्राप्त करता है ॥६७॥

यः पञ्चाभ्यन्तरान्शत्रूनविजित्य मनोमयान्।
जिगीषति रिपूनन्यान्रिपवोऽभिभवन्ति तम् ॥६८॥

जो अपने भीतर रहने वाले, मन सहित पांचों इन्द्रिय रूपी शत्रुओं को विना जीते अन्य शत्रुओं को जीतना चाहता है, उसको उसके शत्रु ही जीत लेते हैं ॥६८॥

दृश्यन्ते हि महात्मानो बध्यमानाः स्वकर्मभिः।
इन्द्रियाणामनीशत्वाद्राजानो राज्यविभ्रमैः ॥६९॥

बड़े २ महात्मा भी इन्द्रियों के परवश हुए, अपने २ कर्मों में बंधे हुए हैं और इसी तरह इन्द्रियों के चक्कर में पड़े हुए राजा भी राज्यमद में उन्मत्त हैं ॥६९॥

असन्त्यागात्पापकृतामपापांस्तुल्योदण्डःस्पृशतेमिश्रभावात्
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात्तस्मात्पापैःसहसन्धिनकुर्यात् ॥

पापियों के परित्याग किए विना, पापहीन मनुष्यों को भी समान ही दण्ड प्राप्त होता है, क्योंकि वे दोनों मिले हुए हैं, जैसे शुष्क काष्ठ के योग से गीला काष्ठ जल जाता है, इसलिए पापियों के साथ सन्धि न करे ॥७०॥

निजानुत्पततः शत्रून्पञ्च पञ्च प्रयोजनान्।
यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद् ग्रसते नरम् ॥७१॥

उद्धत होते हुए पांच विषयों वाले अपने पांच इन्द्रिय रूपी शत्रुओं को जो अज्ञान से वश में नहीं करता है, उस मनुष्य को आपत्तियां दबा लेती हैं ॥७१॥

अनसूयाऽऽर्जवं शौचं सन्तोषः प्रियवादिता ।
दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम् ॥७२॥

किसी की निन्दा करना, सरलता, शौच, सन्तोष, प्रियवादीपन, दम, सत्य, किसी काम से उदासीन न होना आदि गुण दुरात्माओं में नहीं हो सकते हैं ॥७२॥

आत्मज्ञानमनायासस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
वाक्चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत ॥७३॥

हे भारत ! आत्मज्ञान, धैर्य, क्षमा, धर्मशीलता, वाणी का रक्षा, (मौन) दान, ये बातें नीच पुरुषों में नहीं हो सकती हैं ॥७३॥

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान् ।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते ॥७४॥

अज्ञानी मनुष्य, कटु वचन और निन्दा से महात्माओं को क्लेशित करते रहते हैं। जो निन्दा करता है, वह पाप का ग्रहण करता है और जो क्षमा करता है, वह पाप से छुट जाता है ॥७४॥

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम् ।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम् ॥७५॥

असाधु पुरुषों का बल हिंसा, राजाओं का बल दण्ड, स्त्रियों का बल सेवा और गुण वालों का बल क्षमा है ॥७५॥

वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः ।
अर्थवच्च विचित्रञ्च न शक्यं बहुभाषितुम् ॥७६॥

राजा को वाणी का रोक लेना बड़ा कठिन गुण माना गया है। कोई भी मनुष्य, अर्थ वाला और विचित्र कथन अधिक नहीं कर सकता है, इससे अधिक बोलना अच्छा नहीं है ॥७६॥

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक्सुभाषिता ।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते ॥७७॥

हे राजन्! अच्छी तरह विचित्र बोली हुई वाणी, अनेक प्रकार के कल्याणों को प्रदान करती है और वही वाणी, अनुचित रीति से बोल दी जाती है, तो बड़ा अनर्थ खड़ा कर देती है ॥७७॥

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥७८॥

कुल्हाड़ी से काटा हुआ वन और बाण का घाव भर आता है, परन्तु वाणी से किया हुआ कठोर भाषण रूपी भयानक घाव कभी नहीं भरता है ॥७८॥

कर्णिनालिकनाराचान्निरहरन्ति शरीरतः ।
वाक्शल्यस्तु न निर्हन्तु शक्यो हृदिशयो हि सः ७६

कर्णि, नालीक, नाराच, बाणों को शरीर से खैंचा जा सकता है; परन्तु वाणी का बाण, हृदय में घुसा हुआ, फिर किसी तरह भी नहीं निकाला जा सकता है ॥७६॥

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि
परस्य नाममर्मसु ते पतन्ति तान्पण्डितो नावसृजेत्परेभ्यः॥

मुख रूपी धनुष से वाणी के बाण निकलते हैं, जिनसे बिंधा हुआ पुरुष, रात दिन पुकारता रहता है। ये बाण, मर्म स्थान को छोड़कर अन्यत्र गड़ते ही नहीं हैं। पण्डित मनुष्य, इन बाणों को कभी किसी पर न छोड़े ॥८०॥

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्।
बुद्धिं तस्यापकर्षंति सोऽवाचीनानि पश्यति ॥८१॥

परमात्मा, जिस पुरुष का पराभव करना चाहता है, उसकी प्रथम बुद्धि का नाश करता है। जब बुद्धि नष्ट हो जाती है, तो वह कुत्सित बातों की ओर चल पड़ता है॥८१॥

बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते।
अनयो नयसङ्काशो हृदयान्नापसर्पति ॥८२॥

जब बुद्धि कलुषित हो गई और विनाश उपस्थित हो गया, तो अनीति भी नीति सी प्रतीत होने लगती है और वह हृदय से हटती ही नहीं है॥८२॥

सेयंबुद्धिः परीता ते पुत्राणां भरतर्षभ।
पांडवानां विरोधेन न चैनानवबुध्यसे ॥८३॥

हे भरतर्षभ! इसी तरह तेरे पुत्रों की बुद्धि भी विपरीत हो चली है, जो ये पाण्डवों से विरोध कर रहे हैं। क्या तुम यह नहीं जान रहे हो? ॥८३॥

राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्ययस्यापि यो भवेत् ।
शिष्यस्ते शासिता सोऽस्तु धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः ॥८४॥

हे धृतराष्ट्र! जो सब लक्षणों से सम्पन्न है, वह युधिष्ठिर त्रिलोकी का भी राजा हो सकता है। यह तो तेरा दास है, इससे हमारे मत में तो यही राजा होना चाहिए ॥८४॥

अतीव सर्वान्पुत्रांस्ते भागधेयपुरस्कृतः ।
तेजसा प्रज्ञया चैव युक्तो धर्मार्थतत्त्ववित् ॥८५॥

यह तेरे सब पुत्रों से अधिक भाग्यवान्, तेजस्वी, धर्म अर्थ के तत्व का ज्ञाता और बुद्धिमान् है ॥८५॥

अनुक्रोशादानृशंस्याद्योऽसौ धर्मभृतां वरः ।
गौरवात्तव राजेन्द्र बहून्क्लेशांस्तितिक्षति ॥८६॥

इति श्रीमहाभात शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरनीतिवाक्ये
चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३४॥

यह धर्मात्मा अपनी करुणा और उदारता तथा तुम्हारे गौरव से ही इन अनेक क्लेशों को सह रहा है ॥८६॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत प्रजागरपर्व में विदुर नीति
का चौंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

पैंतीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

ब्रूहि भूयो महाबुद्धे धर्मार्थसहितं वचः।
शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिर्विचित्राणीह भाषसे ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे महाबुद्धे ! अभी तुम धर्म और नीति से युक्त और अधिक विवेचन करो। तुम्हारे कथन को सुनते २ तृप्ति नहीं होती है। तुम तो बड़ा विचित्र बोल रहे हो ॥१॥

विदुर उवाच—

सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम्।
उभे त्वेते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते ॥२॥

विदुर कहने लगा—हे राजन् ! सब तीर्थों में स्नान करना या सब प्राणियों से सरलता या समानता से वर्ताव करना, यह दो बातें हैं। ये दोनों या तो बराबर हैं या इनमें सरलता तथा सबसे समान वर्ताव (आर्जव) उत्तम है ॥२॥

आर्जवं प्रतिपद्यस्व पुत्रेषु सततं विभो।
इह कीर्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥३

हे विभो ! तुम सदा अपने पुत्रों को समान दृष्टि से देखो। इस तरह इस लोक में परम कीर्ति पाकर मरने के अनन्तर स्वर्ग को प्राप्त करोगे ॥३॥

यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य पुण्या लोके प्रगीयते ।
तावत्स पुरुषव्याघ्र स्वर्गलोके महीयते ॥४॥

हे पुरुष-व्याघ्र! जब तक मनुष्य की पवित्र कीर्ति संसार में गाई जाती है, तब तक पुरुष स्वर्ग लोक में सुशोभित होता है ॥४॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
विरोचनस्य सम्वादं केशिन्यर्थे सुधन्वना ॥५॥

इस विषय में एक पुराना इतिहास है, जो केशिनी के निमित्त सुन्धवा के साथ विरोचन के सम्वाद रूप में कहा जाता है ॥५॥

स्वयम्वरे स्थिता कन्या केशिनी नाम नामतः ।
रूपेणाप्रतिमा राजन् विशिष्टपतिकाम्यया ॥६॥
विरोचनोऽथ दैतेयस्तदा तत्राजगाम ह ।
प्राप्तुमिच्छंस्ततस्तत्र दैत्येन्द्रम्प्राह केशिनी ॥७॥

हे राजन्! एक सर्वाङ्ग-सुन्दरी केशिनी नामक कन्या उत्तम पति की प्राप्ति के लिए स्वयम्वर में खड़ी थी। उस समय वहां विरोचन दैत्य आकर खड़ा हुआ। यह इस कन्या को ग्रहण करना चाहता था। कन्या ने दैत्य से कहा॥६-७॥

केशिन्युवाच—

किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांसो दितिजाः स्विद्विरोचन।
अथ केन स्म पर्यङ्कं सुधन्वा नाधिरोहति ॥८॥

केशिनी बोली—हे विरोचन ! तुम यह बताओ, कि ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं, या दैत्य। यदि ब्राह्मण श्रेष्ट होते हैं, तो मैं फिर सुधन्वा ब्राह्मण से क्यों न विवाह करूं ? ॥८॥

विरोचन उवाच—

प्राजापत्यास्तु वै श्रेष्ठा वयं केशिनि सत्तमाः।
अस्माकं खल्विमे लोकाः के देवाः के द्विजातयः॥९॥

विरोचन ने कहा—हमारी उत्पत्ति प्रजापति से है, इससे हम प्राजापत्य कहाते हैं और हम ही श्रेष्ठ हैं। ये लोक तो सारे हमारे ही हैं। हमारे सन्मुख देवता और ब्राह्मण किस गिनती में हैं ॥८॥

केशिन्युवाच—

इहैवावां प्रतीक्षाव उपस्थाने विरोचन।
सुधन्वा प्रातरागन्ता पश्येयं वां समागतौ ॥१०॥

केशिनी बोली—हे विरोचन ! हम दोनों इसी स्थान पर प्रतीक्षा करें। प्रातःकाल सुन्धवा मुझे लेने आवेगा। मैं उस समय तुम दोनों का बलाबल देखूंगी ॥१०॥

विरोचन उवाच—

तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे।
सुधन्वानं च मां चैव प्रातर्द्रष्टाऽसि सङ्गतौ ॥११॥

विरोचन बोला—हे भद्रे ! अच्छी बात है-जैसा तुम कह रही हो, वैसा ही करूंगा। तुम प्रातःकाल सुधन्वा और मेरा बलाबल देख लेना ॥११॥

विदुर उवाच—

अतीतायां च शर्वर्यामुदिते सूर्यमण्डले।
अथाजगाम तं देशं सुधन्वा राजसत्तम।
विरोचनो यत्र विभो केशिन्या सहितः स्थितः ॥१२॥
सुधन्वा च समागच्छत्प्राह्लादिं केशिनीं तथा।

विदुर ने कहा—हे राज-सत्तम रात के समाप्त होने और सूर्य के निकल आने पर उस स्थान पर सुधन्वा आया। हे विभो! जहां केशिनी के साथ विरोचन उपस्थित था, वहीं प्रह्लाद पुत्र विरोचन और केशिनी के पास सुधन्वा भी आ गया ॥१२॥

समागतं द्विजं दृष्ट्वा केशिनी भरतर्षभ।
प्रत्युत्थायासनं तस्मै पाद्यमर्घ्यं ददौ पुनः ॥१३॥

हे भरतर्षभ! केशिनी ने आए हुए सुधन्वा को देखकर उसके लिए उठकर आसन, पाद्य और अर्घ्य दिया ॥१३॥

सुधन्वोवाच—

अनालभे हिरण्मयं प्रह्लादे ते वरासनम्।
एकत्वमुपसम्पन्नो न त्वासेऽहं त्वया सह ॥१४॥

विरोचन के बैठने को कहने पर सुधन्वा बोला—हे प्रह्लाद-पुत्र विरोचन! मैं तुम्हारे सुवर्ण के आसनों पर नहीं बैठूंगा। इस तरह तो तुम मेरे समान हो जावोगे, इसलिए मैं तो तेरे साथ नहीं बैठ सकता हूं ॥१४॥

विरोचन उवाच—

तवार्हंतं तु फलकं कूर्चं वाप्यथवा बृसी।

सुधन्वन्न त्वमर्होऽसि मया सह समासनम् ॥१५॥

विरोचन बोला—हां ठीक है, तुम्हारे लिए तो कोई काठ का पट्टा, चटाई या कुशा का आसन चाहिए। हे सुधन्वन्! सचमुच? तुम मेरे साथ सुवर्ण के आसन पर बैठने के योग्य नहीं हो ॥१५॥

सुधन्वोवाच—

पिता पुत्रौ सहासीतां द्वौ विप्रौ क्षत्रियावपि।

वृद्धौ वैश्यौ च शूद्रौ च न त्वन्यावितरेतरम् ॥ १६॥

पिता हि ते समासीनमुपासीतैव मामधः।

बालः सुखैधितो गेहे न त्वं किंचन बुध्यसे ॥१७॥

सुधन्वा बोला—एक आसन पर पिता पुत्र, दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो वैश्य और दो शूद्र बैठ सकते हैं, परन्तु इनमें एक साथ दूसरा अर्थात् ब्राह्मण के साथ क्षत्रिय नहीं बैठ सकता है। जब मैं उच्च आसन पर बैठता था, तो तेरा पिता नीचे बैठ जाया करता था। तुम उस समय बच्चे थे और सुख से घर में खेलते कूदते थे। तुमको इन बातों का कुछ भी पता नहीं है १६

विरोचन उवाच—

हिरण्यं च गवाश्वं च यद्वित्तमसुरेषु नः।

सुधन्वन्विपणे तेन प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः ॥ १८ ॥

विरोचन ने कहा—सुवर्ण, गौ, अश्व तथा अन्य भी जो कुछ धन हम असुरों के पास हैं- हे सुधन्वन् ! उसको शर्त पर लगाते हैं। चलो ? इस विषय का किसी से निर्णय करा लें, जो इस विषय को समझता हो ।।१८।।

सुधन्वोवाच—

हिरण्यं च गवाश्वं च तवैवास्तु विरोचन ।
प्राणयोस्तु पणं कृत्वा प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः ।।१९।।

सुधन्वा ने कहा—हे विरोचन ! तुम्हारी सुवर्ण, गाय, अश्व तुम्हारे पास रहें। हम तो इस विषय में प्राणों की बाजी लगा कर निर्णय करावगे ।।१९।।

विरोचन उवाच—

आवां कुत्र गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते ।
न तु देवेष्वहं स्थाता न मनुष्येषु कर्हिचित् ।। २० ।।

विरोचन बोला—अच्छी बात है, हम दोनों कहीं इस प्रश्न को पूछने चलेंगे तथा अपने २ प्राणों को दाव पर लगावेंगे। मैं देव या मनुष्यों को इस विषय का निर्णायक नहीं बनाऊंगा।

सुधन्वोवाच—

पितरं ते गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते ।
पुत्रस्यापि स हेतोर्हि प्रह्लादो नानृतं वदेत् ।। २१ ।।

सुधन्वा ने कहा—अच्छा ? चलो, हम तेरे पिता प्रह्लाद के ही पास चलते हैं। वह महात्मा प्रह्लाद, तेरे पुत्र होने के कारण कभी झूँठा निर्णय नहीं करेगा ।।२१।।

विदुर उवाच—

एवं कृतपणौ क्रुद्धौ तत्राभिजग्मतुस्तदा ।

विरोचनसुधन्वानौ प्रह्लादो यत्र तिष्ठति ॥ २२ ॥

विदुर ने कहा—हे राजन्! इस तरह प्राण की बाजी लगाकर क्रोध में भरे हुए, ये दोनों विरोचन और सुधन्वा, वहाँ पहुंचे, जहां दैत्यराज प्रह्लाद था ॥२२॥

प्रह्लाद उवाच—

इमौ तौ संप्रदृश्येते याभ्यां न चरितं सह ।

आशीविषाविव क्रुद्धावेकमार्गाविहागतौ ॥ २३ ॥

प्रह्लाद विचारने लगा आज तो यह दो व्यक्ति साथ आ रहे हैं, जो कभी साथ नहीं देखे । ये सर्पों की तरह क्रोध में भरे हुए हैं और एक मार्ग से ही यहीं चले आ रहे हैं ॥२३॥

किं वै सहैवं चरथो न पुरा चरथः सह ।

विरोचनैतत् पृच्छामि किं ते सख्यं सुधन्वना ॥२४॥

ये तो कभी साथ नहीं रहे, आज कैसे साथ २ आ रहे हैं । हे विरोचन! तुम यह तो बताओ, कि तुम्हारा सुधन्वा से कब मेल हो गया ।२४॥

विरोचन उवाच—

न मे सुधन्वना सख्यं प्राणयोर्विपणावहे ।

प्रह्लाद तत्त्वं पृच्छामि मा प्रश्नमनृतं वदेः ॥ २५ ॥

विरोचन बोला—हे पिता! मेरी सुधन्वा से मित्रता नहीं हुई है। मैं तो इसके साथ प्राणों की बाजी लगाकर आया हूं। सुधन्वा ने कहा—हे प्रह्लाद! मैं एक प्रश्न पूछता हूं, तुम इस प्रश्न का मिथ्या विवेचन न करना ॥२५॥

प्रह्लाद उवाच—

उदकं मधुपर्कं वाऽप्यानयन्तु सुधन्वने।
ब्रह्मन्नभ्यर्चनीयोऽसि श्वेता गौः पीवरी कृता ॥२६॥

प्रह्लाद बोला—सुधन्वा के लिए जल और मधुपर्क उपस्थित करो। हे ब्रह्मन्! तुम पूजनीय हो- यह पुष्ट श्वेत गौ आपकी भेंट है ॥२६॥

सुधन्वोवाच—

उदकं मधुपर्कं च पथिष्वेवार्पितं मम।
प्रह्लाद त्वं तु मे तथ्यं प्रश्नं प्रब्रूहि पृच्छतः।
किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांस उताहो स्विद्विरोचनः२७

सुधन्वा ने कहा—हे प्रह्लाद! मैंने जल और मधुपर्क तो एक स्थान पर मार्ग में ग्रहण कर लिया। अब तो मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूं, तुम उसका निर्णय कर दो। तुम यह बताओ कि ब्राह्मण उत्तम है या यह विरोचन श्रेष्ठ है॥२७॥

प्रह्लाद उवाच—

पुत्र एको मम ब्रह्मंस्त्वं च साक्षादिहास्थितः।
तयोर्विवदतोः प्रश्नं कथमस्मद्विधो वदेत् ॥ २८ ॥

प्रह्लाद ने कहा—हे भगवन्! मेरे तो एक ही पुत्र है और तुम भी स्वयं विश्वास करके मेरे पास आए हो। मैं इस दशा में तुम दोनों के विवाद में कैसे प्रश्न का विवेचन कर सकता हूं ॥ २८ ॥

सुधन्वोवाच—

गां प्रदद्यास्त्वौरसाय यद्वाऽन्यत्स्यात्प्रियं धनम्।
द्वयोर्विवदतोस्तथ्यं वाच्यं च मतिमंस्त्वया ॥ २९॥

सुधन्वा ने कहा—हे मतिमन्! आप पुत्र को अपनी गायें तथा अन्य सारे प्रिय धन के देने में स्वतन्त्र हैं। परन्तु हम दोनों के विवाद में आप हमारे प्रश्न का सत्य २ निर्णय कर दीजिए ॥२९॥

प्रह्लाद उवाच—

अथ यो नैव प्रब्रूयात्सत्यं वा यदि वाऽनृतम्।
एतत्सुधन्वन्पृच्छामि दुर्विवक्ता स्म किं वसेत् ॥३०॥

प्रह्लाद ने पूछा—हे सुधन्वन्! जो इस तरह की उलझन में सत्य या झूंठ कुछ भी न कहे तथा झूंठ कह दे, उसको किस दुःख की प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥

सुधन्वोवाच—

यां रात्रिमधिविन्ना स्त्री यां चैवाक्षपराजितः।
यां च भाराभितप्तांगो दुर्विवक्ता स्म तां वसेत् ॥३१॥

सुधन्वा ने कहा-जैसे अधिविन्ना (सपत्नी वाली) स्त्री को अकेले में रात भर कष्ट होता है तथा जो जुआ में हार आता है और जो भार से पीड़ित है, इनको जितना क्लेश होता है, उतना ही मिथ्याभाषी भी सन्तप्त होता है ॥ ३१ ॥

नगरे प्रतिरुद्धः सन् बहिर्द्वारे बुभुक्षितः।
अमित्रान्भूयसः पश्येद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥३२॥

जो राजा झूंठा निर्णय करता है, वह नगर के द्वार में भूखा बन्द हुआ अपने शत्रुओं को नगर में प्रवेश करता।देखता है ॥३२

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ ३३ ॥

पशु के मोह से पांच, गौ के मोह से दश, अश्व के मोह से सौ और मनुष्यों के मोह में आकर मिथ्या बोलने वाला सहस्र पूर्वजों का पतन करता है ॥ ३३ ॥

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन्।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदेः ॥ ३४ ॥

जो सुवर्ण के लिय झूंठ कहता है, वह उत्पन्न अनुत्पन्न परिवार का पतन करता है और जो मनुष्य भूमि के लिये मिथ्या भाषण करता है, वह सब पूर्वज और परिवार का पतन कर लेता है ॥ ३४ ॥

प्रह्लाद उवाच—

मत्तः श्रेयानंगिरा वै सुधन्वा त्वद्विरोचन।
माताऽस्य श्रेयसी मातुस्तस्मात् त्वं तेन वै जितः ॥३५

प्रह्लाद ने कहा—हे विरोचन! मुझ से श्रेष्ठ सुधन्वा का पिता और तुझ से सुधन्वा तथा तेरी माता से उत्तम सुधन्वा की माता है, इससे सुधन्वा ने तुझे जीत लिया है ॥ ३५ ॥

विरोचन सुधन्वाऽयं प्राणानामीश्वरस्तव ।
सुधन्वन्पुनरिच्छामि त्वया दत्तं विरोचनम् ॥ ३६ ॥

हे विरोचन ! अब यह सुधन्वा तेरे प्राणों का स्वामी हो गया है। हे सुधन्वन् ! अब तुम विरोचन को मुझे प्रदान करो॥३६॥

सुधन्वोवाच—

यद्धर्ममवृणीथास्त्वं न कामादनृतं वदीः ।
पुनर्ददामि ते पुत्रं तस्मात्प्रह्लाद दुर्लभम् ॥ ३७ ॥

सुधन्वा बोला—हे दैत्यराज ! प्रह्लाद ! तुमने जो धर्म-पूर्वक निर्णय कर दिया और पुत्र के प्रेम से मिथ्या निर्णय नहीं किया, इससे मैं दुर्लभ रत्न पुत्र को तुमको अर्पण करता हूँ ॥३७॥

एष प्रह्लाद पुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः ।
पादप्रक्षालनं कुर्यात्कुमार्याः सन्निधौ मम ॥ ३८ ॥

हे प्रह्लाद ! मैंने तुम्हारे पुत्र को प्राण-दान दे दिए हैं, परन्तु अब यह उस कुमारी केशिनी के सामने मेरे चरणों को धोवे ।३८॥

विदुर उवाच—

तस्माद्राजेन्द्र भूम्यर्थे नानृतं वक्तुमर्हसि ।
मागमः स सुतामात्यो नाशं पुत्रार्थमब्रुवम् ॥ ३९ ॥

विदुर बोले—हे राजेन्द्र ! इसी तरह भूमि के लिए तुमको मिथ्या व्यवहार नहीं करना चाहिए। तुम अपने पुत्र और मन्त्रियों के साथ नाश को प्राप्त न होओ, यह मैं तुमको कहे देता हूं ।३९।

न देवा दंडमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।
यन्तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम्॥४०

देवता दण्ड लेकर पशु पालक की भांति किसी की रक्षा नहीं करते हैं। वे तो जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसको बुद्धि से संयुक्त कर देते हैं ॥४०॥

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।
तथा तथाऽस्य सर्वार्थाः सिध्यन्ते नात्र संशयः ॥४१

जैसे २ मनुष्य, कल्याणकारी कामों में अपने मन को लगाता है, वैसे २ ही उसके सारे कार्य सिद्ध होते चले जाते हैं—इसमें संशय नहीं है ॥४१॥

नैनं छंदांसि वृजिनोत्तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम्
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छंदांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले ४२

छल से युक्त, मायावी को वेद भी पाप से नहीं बचा सकते हैं। अन्त में पक्ष उत्पन्न हो जाने पर घोंसले को पक्षी की तरह, वेद भी इस पापी पुरुष को छोड़ देते हैं ॥४२॥

मद्यपानं कलहं पूगवैरं भार्यापत्योरन्तरं ज्ञातिभेदम् ।
राजद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं वर्ज्यान्याहुर्यश्च पंथाः प्रदुष्टः

महात्मा लोग, मद्यपान, कलह, समूह से वैर, भार्या और पुत्र से मन में छुपाव, जाति में भेद, राजा से वैर, स्त्री पुरुष का झगड़ा कराना आदि कामों का निषेध करते हैं। इसी तरह जो कोई अन्य दूषित मार्ग हों, उनको भी बुद्धिमान मनुष्य छोड़ देता है ॥४३॥

सामुद्रिकं वणिजं चोरपूर्वं शलाकधूर्तञ्च चिकित्सकञ्च।
अरिं च मित्रं च कुशीलवं च नैतान्साक्ष्ये त्वधिकुर्वीत सप्त

हाथ की रेखा देखने वाले, वणिक्, चोर, पासे फेंकने में धूर्त, वैद्य, शत्रु, मित्र, नट, भडुवे आदि सात व्यक्तियों को साक्षी न बनावे ॥४४॥

मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः।
एतानि चत्वार्यभयंकराणि भयं प्रयच्छंत्ययथाकृतानि ॥

विधि-पूर्वक अग्निहोत्र, मौन, अध्ययन और यज्ञ-ये चार मनुष्य को निर्भय कर देते हैं और अनुचित रीति से किये हुए ये चारों कार्य, मनुष्य के भय के उत्पादक हैं ॥ ४५ ॥

आगारदाही गरदः कुंडाशी सोमविक्रयी।
पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक्पारदारिकः ॥४६॥
भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात्पानपो द्विजः।
अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः ॥४७॥
स्रुवप्रग्रहणो व्रात्यः कीनाशश्चात्मवानपि।
रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात्सर्वे ब्रह्महभिः समाः ॥४८॥

घर में आग लगाने वाला, विषदायी, व्यभिचार से उत्पन्न मनुष्य के भोजन करने वाला, सोम का विक्रयी धनुषवाण वनाने वाला, अन्य के दोष दर्शक, मित्रद्रोही, व्यभिचारी, गर्भपात कराने वाला, गुरु-पत्नी-गामी, मद्य-पान-कर्ता द्विज, वहुत क्रोधी, कव्वे के समान नीच वृत्ति धारी, नास्तिक, वेद निन्दक कुत्सित

प्रतिग्रही, संस्कार-हीन, हिंसक, समर्थ होकर शरणागत की रक्षा नहीं करने वाला—ये सब ब्रह्म-घातक तुल्य, पापी माने गए हैं ॥४६—४८॥

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः
शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः कृच्छ्रेष्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च

तृणों की प्रज्वलित आग में भी सुवर्ण दिखाई दे जाता है। हैं आचार से भद्र पुरुष और व्यवहार से साधु पुरुष का ज्ञान होता है। भय में शूर, कार्य को कठिनाई में धीर और कठिन आपत्तियों में मित्र तथा शत्रुओं का पता लगता हैं ॥४९॥

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान्धर्मचर्यामसूया
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः

बुढ़ापा, रूप, आशा, धैर्य, मृत्यु, प्राण, परनिन्दा, धर्म, क्रोध, लक्ष्मी, अनार्य पुरुष की सेवा, शील, काम वेग, लज्जा और सब कुछ उत्तम गुणों को अभिमान हर लेता हैं ॥ ५० ॥

श्रीर्मंगलात्प्रभवति प्रागल्भ्यात्संप्रवर्धते।
दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं संयमात्प्रतितिष्ठति ॥५१॥

लक्ष्मी उत्तम कर्मों से होती है और भाषण के गुण से बढ़ती है, चतुराई से इसकी जड़ जम जाती हैं और जितेन्द्रिता से यह स्थिर होती हैं ॥५१॥

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयंति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च
पराक्रमश्चाऽबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥

प्रज्ञा, कुलीनता, मन और इन्द्रियों का जय, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, अधिक-भाषण का त्याग, यथाशक्ति दान, कृतज्ञता-ये आठ गुण पुरुष को चमकादेते हैं ॥५२॥

एतान् गुणांस्तात महानुभावानेको गुणः संश्रयते प्रसह्य।
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान् गुणानेष गुणो विभाति

हे तात ! इन सारे उत्तम २ गुणों से भी एक अन्य उत्तम गुण माना है, जिससे राजा का आश्रय प्राप्त होता है। राजा जब मनुष्य का सत्कार करता है, तो उस समय वह गुण सब गुणों से अधिक दिखाई देने लगता है ॥५३॥

अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि।
चत्वार्येषामन्वेतानि सद्भिश्चत्वारि चैषामनुयांति संतः॥

हे नृप ! संसार में स्वर्गलोक प्राप्त कराने वाले आठ गुण माने हैं। इनमें चार गुणों के पीछे २ महात्मा लोग चलते हैं और चार गुण महात्माओं के पीछे दौड़ते हैं ॥५४॥

यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः।
दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः॥

यज्ञ, दान, अध्ययन और तप इन चार गुणों को सज्जन सेवन करते रहते हैं। दम, सत्य, सरलता, उदारता-ये चार गुण, महात्मा के पास स्वयं चले जाते हैं ॥५५॥

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥५६॥

तत्र पूर्वचतुर्वर्गो दंभार्थमपि सेव्यते
उत्तरश्च चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति ।। ५७ ।।

यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, घृणा, अलोभ—ये आठ धर्म के मार्ग माने गए हैं। इनमें प्रथम के चार दम्भ के लिए भी व्यवहार में लाये जा सकते हैं, परन्तु उत्तर के चार तो महात्मा में ही दिखाई देते हैं, ये क्षुद्र जीव में नहीं हो सकते हैं ।।५७।।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धो न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्म
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्

वह सभा नहीं माननी चाहिए, जिसमें वृद्ध नहीं है और वे वृद्ध नहीं है, जो धर्म की बात न कहे। वह धर्म भी नहीं है, जिसमें सत्य का निर्देश न हो और वह सत्य भी नहीं है, जिसमें छल किया गया हो ।।५८।।

सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम् ।
शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशेमे स्वर्गयोनयः ।।५९।।

सत्य, रूप, शास्त्र, विद्या, कुलीनता, शील, बल, धन, शूरता, अद्भुत भाषण—ये दश स्वर्ग के कारण हैं ।।५९।।

पापं कुर्वन्पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम् ।
पुण्यं कुर्वन्पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते ।।६०।।

जो पापी है, वह पाप कर्म करता है और उसको फल भी पाप पूर्ण ही मिलता है। जो पुण्यात्मा पुण्य करता है, वह अन्त में अत्यन्त पुण्य को प्राप्त करता है ॥६०॥

तस्मात्पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः ।
पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥६१॥
नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः ।

इससे धर्मात्मा पुरुष को पाप में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। यदि पाप का बार २ आचरण किया जावेगा, तो वह पाप, बुद्धि का नाश कर देगा। जिसकी बुद्धि नष्ट हो गई, वह मनुष्य फिर नित्य ही पाप कर्म करने लगता है ॥६१॥

पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥ ६१ ॥
वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः ।
पुण्यं कुर्वन्पुण्यकीर्तिः पुण्यं स्थानं स्म गच्छति ।
तस्मात्पुण्यं निषेवत पुरुषः सुसमाहितः ॥६३॥

यदि पुण्य को बार २ किया जावेगा, तो यह पुण्य, बुद्धि को बढ़ावेगा। जब बुद्धि, बढ़ जावेगी, तो यह नित्य ही पुण्य-कार्य करने लगेगा। पुण्यों को करता हुआ पुण्यात्मा, पुण्य लोकों को प्राप्त होता है, इससे सावधान पुरुष, नित्य पुण्य कार्यों का सेवन करे ॥६२-६३॥

असूयको दंदशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः ।
स कृच्छ्रं महदाप्नोति न चिरात्पापमाचरन् ॥६४॥

अन्य की निन्दा करने वाला, दूसरे से मर्मच्छेदी वचन बोलने वाला, कठोर, स्थिर-वैर-धारी, दुष्ट पुरुष, पाप कर्मों का आचरण करता हुआ शीघ्र ही बड़ी विपत्ति में फंस जाता है ॥६४॥

अनसूयुः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन्सदा ।
न कृच्छ्रं महदाप्नोति सर्वत्रच विरोचते ।

जो अन्य की निन्दा नहीं करता तथा जो बुद्धिमान है और शुभ कर्मों का आचरण करता है, वह कभी बड़ी विपत्ति में नहीं फंसता और उसका सर्वत्र आदर होता है ॥६५॥

प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः ।
प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम् ॥६५

जो विद्वानों से अपनी बुद्धि की वृद्धि करता रहता है, वही पण्डित है। बुद्धिमान ही धर्म और अर्थ को पाकर सुख-पूर्वक वृद्धि को प्राप्त करता है ॥६६॥

दिवसेनैव तत्कुर्याद्येन रात्रौ सुखं वसेत् ।
अष्टमासेन तत्कुर्याद्येन वर्षाः सुखं वसेत् ॥६७

दिन में वही कार्य करना चाहिए, जिससे रात में सुख रहे। आठ महीने तक ऐसे कार्य करने उचित हैं, जिनसे वर्षों सुख में व्यतीत होवे ॥६७॥

पूर्वे वयसि तत्कुर्याद्येन वृद्धः सुखं वसेत् ।
यावज्जीवेन तत्कुर्याद्येन प्रेत्य सुखं वसेत् ॥६८

अपनी पूर्व की आयु में वैसा ही कर्म करना चाहिए, जिससे बुढ़ापे में सुख से दिन कटें। यावज्जीवन ऐसे कर्म करने चाहिए, जिनसे मरने के अनन्तर भी सुख मिले ॥६८॥

जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम्।
शूरं विजितसंग्रामं गतपारं तपस्विनम् ॥ ६९॥

जब अन्न अच्छी तरह पच जावे, तो उस अन्न की, सदाचार से यौवन बीत जावे, तो स्त्री की, संग्राम जीतने पर शूरवीर की और अपनी तपस्या को पार कर लेने पर तपस्वी की प्रशंसा करनी चाहिए ॥६९॥

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते।
असंवृतं तद्भवति ततोऽन्यदवदीर्यते ॥७०॥

जो अधर्म से प्राप्त किये हुए धन से अपनी बुराई ढकने का प्रयत्न किया जाता है, वह बुराई तो ढकी नहीं जाती है, किन्तु अन्य दोष भी प्रकट हो जाते हैं॥७०॥

गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम्।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥७१

उत्तम शिष्यों का शासक गुरु, दुरात्माओं का शासक राजा और छुपे पाप करने वालों पर शासन करने वाला विवस्वान् पुत्र यमराज है ॥७१॥

ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम्।
प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च ॥७२॥

ऋषि, नदी, महात्माओं के कुल और स्त्रियों के दुश्चरितों के उत्पत्ति स्थान को कोई नहीं पा सकता है ॥७२॥

द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी।
क्षत्रियः शीलभाग्राजंश्चिरं पालयते महीम् ॥७३॥

हे राजन्! ब्राह्मणों की पूजा में संलग्न, दाता, जाति के सन्मुख नम्र, सुशील क्षत्रिय ही, चिरकाल तक पृथिवी का शासन कर सकता है ॥ ७३॥

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥७४॥

सुवर्ण से भरी हुई पृथिवी को शूरवीर, विद्वान् और सेवा कर्म में कुशल सेवक—ये तीन मनुष्य खोजते हैं॥७४॥

बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत।
तानि जंघाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च ॥७५॥

हे भरत! बुद्धि स विचार करके किये गये कर्म श्रेष्ठ होते हैं और जो बुद्धि से हीन बाहुबल से साध्य हैं, वे मध्यम तथा तीसरे कर्म जंघा को पीड़ित करने वाले,भार ढ़ोहने के कर्म हैं—ये अधम कर्म कहाते हैं ॥७५॥

दुर्योधनेऽथ शकुनौ मूढ़े दुःशासने तथा।
कर्ण चैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥७६॥

दुर्योधन, शकुनि, मूढ़ दुःशासन तथा कर्ण के अधीन ऐश्वर्य करके तुम कैसे कल्याण पा सकते हो? ॥७६॥

सर्वैर्गुणैरुपेतास्तु पांडवा भरतर्षभ ।
पितृवन्त्वयि वर्तन्ते तेषु वर्त्तस्व पुत्रवत् ॥७७॥

इति श्रीमहाभारत वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३५॥

हे भरतर्षभ ! पाण्डव सब गुणों से युक्त हैं । वे तुम्हारे साथ पिता का व्यवहार करते हैं, तुम उनके साथ पुत्र का सा व्यवहार करो ॥७७॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत प्रजागरपर्व में विदुर के हितकारी वाक्य कहने का पैंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

छत्तीसवां अध्याय

विदुर उवाच—

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
आत्रेयस्य च सम्वादं साध्यानां चेति नः श्रुतम् ॥१॥

विदुर बोले—हे राजन् ! इस जगह एक पुरातन इतिहास है। यह इतिहास साध्य संज्ञक देवता और आत्रेय नामक ऋषि का सम्वाद है ॥१॥

चरन्तं हंसरूपेण महर्षिं संशितव्रतम् ।
साध्या देवा महाप्राज्ञं पर्यपृच्छन्त वै पुरा ॥२॥

यह आत्रेय ऋषि, परम हंस के रूप में विचर रहे थे। इस समय उनके पास साध्य देवों ने आकर कहा ॥२॥

साध्या ऊचुः—

साध्यादेवावयमेतेमहर्षेदृष्ट्वा भवन्तंनशक्नुमोऽनुमातुम् ।
श्रुतेनधीरोबुद्धिमांस्त्वंमतो नः काव्यांवाचंवक्तुमर्हस्युदाराम् ।

साध्य देव बोले—हे महर्षि ! साध्य संज्ञक देवता हैं। आपको देखकर आपके विषय में कुछ भी अनुमान नहीं लगा सकते हैं। हम तो यह समझते हैं, कि तुम शास्त्र में धीर और बुद्धिमान् हो। अब आप हमें कुछ कल्याणकारी वाणी का उपदेश करो ॥३॥

हंस उवाच—

एतत्कार्यममराः संश्रुतं मे धृतिः शमः सत्यधर्मानुवृत्तिः ।
ग्रन्थिंविनीयहृदयस्यसर्वं प्रियाप्रियेचात्मसमंनयीत ॥४॥

परम हंस ने कहा—हे देवो ! तुम यह बात ध्यान से सुनो। धैर्य, मन और इन्द्रियों का जय, सत्य धर्म का सेवन सदा करते रहना चाहिए। इस प्रकार हृदय की सारी गांठ खोलकर प्रिय और अप्रिय सबको अपने आत्मा के समान समझो ॥४॥

अक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः ।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥५॥

जो क्रोध से दुर्वचन कह रहा है, उससे दुर्वचन आदि कुछ नहीं कहने चाहिए। जो सहन-शील है, उसका रुका हुआ

क्रोध, क्रोध में दुर्वचन कहते हुए मनुष्य को दग्ध कर देता है और क्रोध के जीतने वाले को पुण्य होता है ॥५॥

नाक्रोशीस्यान्नावमानीपरस्य मित्रद्रोहीनातनीचोपसेवी ।
न चाभिमानी न च हीनवृत्तो रूक्षां वाचं रुशतीं वर्जयीत ॥६॥

किसी के मर्मच्छेदी वचन कहने वाला, अन्य का तिरस्कार कर्त्ता, मित्रद्रोही, नीच सेवक, अभिमानी, क्षुद्र आचरण करने वाला कभी न बने और न कभी रूखी और क्रोध पूर्ण वाणी बोले ॥६॥

मर्माण्यस्थीनिहृदयंतथाऽसून् रूक्षावाचोनिर्दहन्तीहपुंसाम्
तस्माद्वाचंमुशतीं रूक्षरूपां धर्मारामो नित्यशो वर्जयीत ॥७॥

रूखा बोलना, पुरुष के मर्म, हड्डी, हृदय और प्राणों को भेद डालती है। यही कारण है, कि रोप पूर्ण रूखी वाणी, धर्मात्मा पुरुष नहीं बोला करते हैं ॥७॥

अरुंतुदं परुषं रूक्षवाचं वाक्कंटकैर्वितुदंतं मनुष्यान् ।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वै वहन्तम्

मर्मच्छेदी रूखी, कठोर वाणी, बोलने वाले तथा अपने वाणी रूपी कांटों से मनुष्यों को पीड़ित करने वाले, मनुष्य को मनुष्यों के मध्य में महा अमङ्गलकारी समझना चाहिए। वह तो अपने मुख में कूड़ा कचरा लिए फिरता है ॥८॥

परश्चेदेनमभिविद्ध्येत बाणैर्भृशं सुतीक्ष्णैरनलार्कदीप्तैः ।
सविद्ध्यमानोऽप्यतिदह्यमानो विद्यात्कविःसुकृतंमे दधाति ॥

आग और सूर्य के समान तीक्ष्ण, बाणों से यदि दूसरा अत्यन्त बेधन करे, परन्तु एक इन से विंधा हुआ और दह्यमान हुआ भी चुप रहे, तो वही समझदार है और मेरी सम्मति में वही अच्छा कर रहा है ॥९॥

यदि सन्तं सेवति यद्यसंतं तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रंगवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमभ्युपैति ॥

मनुष्य,सज्जन या असज्जन,तपस्वी या चोर किसी की भी सङ्गति करे, जैसे वस्त्र रंग में रंग जाता है, वैसे ही वह मनुष्य सहचारी मनुष्य के रंग में रंग जाता है ॥१०॥

अतिवादं न प्रवदेन्न वादयेद्यः समाहतः प्रतिहन्यान्न घातयेत्
हन्तुं च यो नेच्छति पापकं वै तस्मै देवाःस्पृहयंत्यागताय

न तो अधिक विवाद करे और न अन्य को विवाद करने को प्रेरित करे। अन्य से समाहत हुआ भी न मारे और न मरवावे। जो किसी भी प्राणी को मारना नहीं चाहता है, उसके आने पर देवता बड़े प्रसन्न होते हैं ॥११॥

अव्याहृतंव्याहृताच्छ्रेय आहुःसत्यंवदेद्व्याहृतंतद्द्वितीयम्
प्रियं वदेद्व्ययाहृतं तत्तृतीयं धर्म्यं वदेद्व्याहृतं तच्चतुर्थम्॥

बोलने की अपेक्षा तो मौन ही अच्छा कहा है। यदि बोलना ही हो तो सत्य बोले। तीसरे-सदा प्रिय बोलने की चेष्टा करे और चौथे जो भाषण करना हो-वह धर्म युक्त हो ॥१२॥

यादृशैः सन्निविशते यादृशांश्चोपसेवते ।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति पूरुषः ॥१३॥

मनुष्य जैसे मनुष्यों की संगति में रहता है, जैसे मनुष्य की सेवा करता है तथा जैसा बनना चाहता है, वैसा ही हो जाता है ॥१३॥

यतो यतो निवर्तते ततस्ततोविमुच्यते ।
निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि ॥१४॥

ज्यों २ मनुष्य संसारी झगड़ों से निवृत्त होता है, त्यों २ वह मुक्त होता जाता है। जब यह सब बातों से निवृत्त हो जाता है, तब इसको अणुमात्र भी दुःख शेष नहीं रह जाता है ॥१४॥

न जीयते चानुजिगीषतेऽन्यान्न वैरकृच्चाप्रतिघातकश्च ।
निंदा प्रशंसा सुसमस्वभावो न शोचते हृष्यति नैव चायम्

यह पुरुष, अन्य पुरुषों को जीतता नहीं है और न जीतना चाहता है। यह किसी से वैर नहीं करता और न यह किसी का घातक होता है। किसी की निन्दा और प्रशंसा में समान रहता है। यह न तो कभी चिन्ता करता है और न कभी हर्षित होता है ॥१५॥

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः।
सत्यवादी मृदुर्दांतो यः स उत्तमपूरूषः ॥१६॥

यह तो सबकी उन्नति ही चाहता है- अवनति नहीं चाहता है। जो पुरुष, सत्यवादी, कोमल प्रकृति और उदार हैं, वही उत्तम पुरुष है ॥१६॥

नानर्थकं सांत्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च ।
रंध्रं परस्य जानाति यः स मध्यमपूरुषः ॥१७॥

जो अनर्थक बातों से अपने चित्त को न समझावे। जो प्रतिज्ञात धन को दे दे। शत्रु के छिद्रों को देखता रहे —वह मध्यम पुरुष कहाता है ॥१७॥

दुःशासनस्तूपहतोऽभिशस्तो नावर्तते मन्युवशात्कृतघ्नः ।
न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः१८

गन्धर्व आदि से छुड़ाकर पाण्डवों ने क्षत विक्षत दुःशासन पर उपकार किया है, परन्तु यह कृतघ्न क्रोध से कुछ भी नहीं मानता है। यह दुरात्मा किसी का मित्र नहीं है। बस ? अधम पुरुष का यही स्वरूप है ॥१८॥

न श्रद्धाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्मशंकितः ।
निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः ॥१९॥

जो कल्याणकारी वचनों को न माने और अपने पराये सब पर अविश्वास करे तथा मित्रों का भी तिरस्कार कर दे,—वही अधम पुरुष है ॥१९॥

उत्तमानेव सेवेत प्राप्तकाले तु मध्यमान् ।
अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥२०॥

पुरुष सदा उत्तमों का सेवन करे और समय पर मध्यमों से भी मिल सकता है, परन्तु जो अपना कल्याण चाहे—वह अधमों का सेवन न करे ॥२०॥

प्राप्नोति वै वित्तमसद्बलेन नित्योत्थानात्प्रज्ञया पौरुषेण।
न त्वेव सम्यग्लभते प्रशंसां न वृत्तमाप्नोति महाकुलानाम्

धन बुरे उपायों से भी मिल सकता है, परन्तु मनुष्य, नित्य के उद्योग, बुद्धि और पुरुपार्थ के विना धन पाकर भी प्रशंसा नहीं पाता है और न उत्तम कुलवालों के से आचरण कर पाता है।

धृतराष्ट्र उवाच—

महाकुलेभ्यः स्पृहयन्ति देवा धर्मार्थनित्याश्च बहुश्रुताश्च।
पृच्छामि त्वां विदुर प्रश्नमेतं भवन्ति वै कानि महाकुलानि

धृतराष्ट्र बोले—देवता और धर्म तथा नीति के ज्ञाता विद्वान् पुरुष, उत्तम कुल वालों से ही मिलना चाहते हैं। हे विदुर! मैं तुम से पूछना चाहता हूं, कि उत्तम कुल कौन से कहाते हैं॥२२॥

विदुर उवाच—

तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः पुण्या विवाहाःसततान्नदानम्
येष्वेवैते सप्त गुणा वसंति सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि

विदुर बोले- जिन कुलों में तप दम, ब्रह्मज्ञान, यज्ञ, पुण्यकारी कार्य, शास्त्रोक्त विवाह, और अन्न दान ये सात बातें होती रहती है, वे ही महाकुल कहाते हैं॥२३॥

येषां न वृत्तं व्यथते न योनिश्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम्।
येकीर्तिमिच्छन्तिकुले विशिष्टां त्यक्तानृतास्तानिमहाकुलानि

जिन का आचार कभी शिथिल नहीं होता; जिससे उसके माता पिता क्लेश नहीं पाते; जो अपने कुल की विशेष कीर्ति चाहते रहते हैं; जिन्होंने मिथ्या व्यवहार का त्याग कर दिया है, वे हीं महाकुल हैं॥२४॥

अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च ॥२५॥

यज्ञ नहीं करने, अनुचित विवाह सम्बन्ध कर लेने, वेदाध्ययन का परित्याग तथा धर्म के अतिक्रमण से उत्तम कुल भी नीच कुल बन जाते हैं ॥२५॥

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥२६॥

देवों के द्रव्य के नाश, ब्राह्मणों के द्रव्य का अपहरण और ब्राह्मणों के तिरस्कार करने से उत्तम भी नीच कुल माने जाने लगते हैं ॥२६॥

ब्राह्मणानां परिभवात्परिवादाच्च भारत ।
कुलान्यकुलतां यान्ति न्यासापहरणेन च ॥२७॥

हे भारत ! ब्राह्मणों के तिरस्कार परिवाद(निन्दा) तथा धरोहर मार जाने पर उत्तम कुल भी नीच कुल कहाते हैं ॥२७॥

कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः ।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥२८॥

जो कुल, गौ, पुरुष और धन से युक्त हैं, परन्तु आचार से हीन है, वे कुल उत्तम कुलों की गणना में नहीं आ सकते हैं ॥२८

वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि ।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ॥२९॥

जो कुल, सदाचार से युक्त और धन से हीन भी हैं तो भी वे कुलों की गणना में आ जाते हैं और वे ही बड़ा यश पाते हैं ॥२६॥

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्तमेति च याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥३०॥

बड़े यत्न से आचार की रक्षा करे, धन तो ऐसे ही आता जाता रहता है। जो धन से क्षीण है, तो भी सदाचारी क्षीण नहीं कहाता और जो सदाचार से हीन है, वह धन भी क्षीण ही कहाता है ॥ ३० ॥

गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धया ।
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥३१॥

गौ पशु, अश्व तथा कृषि आदि से समृद्धशाली कुल भी यदि सदाचार से हीन हैं, तो वो उन्नत कुल नहीं हो सकता है ॥३१

मा नः कुले वैरकृत्कश्चिदस्तु राजाऽमात्यो मा परस्वापहारी ।
मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः

हमारे कुल में वैर करने वाला कोई नहीं होना चाहिए और न कोई राजा मन्त्री अन्य के द्रव्य का अपहरण करने वाला हो मित्रद्रोही, कपटी, असत्य व्यवहार करने वाला या पितर देव अतिथियों से पूर्व भोजन करने वाला न होना चाहिए ॥३२॥

यश्च नो ब्राह्मणान् हन्याद्यश्च नो ब्राह्मणान् द्विषेत् ।
न नः स समितिं गच्छेद्यश्च नो निर्वपेत्कृषिम् ॥३३॥

जो ब्राह्मणों से द्वेष करे और ब्राह्मणों का वध करे, वह मनुष्य हमारी सभा में नहीं आना चाहिए और न वह हमारे साथ कृषि (कर्म) कर सकता है ॥३३॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनता ।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यंते कदाचन ॥३४॥

तृण, भूमि, जल और मीठी सत्य वाणी-ये चार बातें सज्जनों के घर से कभी नहीं हटती हैं ॥३४॥

श्रद्धया परया राजन्नुपनीतानि सत्कृतिम् ।
प्रवृत्तानि महाप्राज्ञ धर्मिणां पुण्यकर्मिणाम् ॥३५॥

हे राजन् ! हे महाप्राज्ञ ! पुण्य शील धर्मात्माओं में अत्यन्त श्रद्धा के साथ सत्कार करने की प्रवृत्ति बढ़ी रहती हैं ॥३५॥

सूक्ष्मोऽपिभारंनृपतेस्यंदनोवैशक्तोवोढुंनतथाऽन्येमहीजाः ।
एवं युक्ता भारसहा भवन्ति महाकुलीना न तथाऽन्ये मनुष्याः

हे नृपते ! छोटा सा रथ भी बोझ को ढोह ले जाता है, अन्य वृक्ष रथ के आकार में आए बिना भार को नहीं ले जा सकते हैं। इसी तरह महा कुलीन पुरुष ही भार के सहने में समर्थ है, साधारण मनुष्य भार को नहीं सह सकते हैं ॥३६॥

न तन्मित्रं यस्य कोपाद्बिभेति यद्वाऽमित्रं शंकितेनोपचर्यम्
यस्मिन्मित्रे पितरीवाश्वसीत तद्वै मित्रं संगतानीतराणि ॥३७

वह मित्र नहीं है, जिसको कोप से भय रहता है। उसको तो अमित्र ही जानना चाहिए, इससे तो शङ्का के साथ ही व्यव-

हार करना चाहिए, जिस मित्र में पिता के तुल्य विश्वास हो, वह मित्र है, अन्य तो सामान्य मिलना जुलना कहाता है ॥३७॥

यः कश्चिदप्यसंबद्धो मित्रभावेन वर्तते ।
स एव बंधुस्तन्मित्रं सागतिस्तत्परायणम् ॥३८॥

जो कोई अपरिचित भी मित्र भाव से वर्ताव करता है, वही बन्धु, मित्र, गति और रक्षक है ॥३८॥

चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः ।
पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसंग्रहः ॥३९॥

वृद्धों की उपासना नहीं करने वाले, चञ्चल चित्त और चञ्चल बुद्धि पुरुष के मित्र स्थिर नहीं रहते हैं ॥३९॥

चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम् ।
अर्थाः समभिवर्तन्ते हंसाः शुष्कं सरो यथा ॥४०॥

चञ्चल चित्त वाले, क्षुद्रात्मा, इन्द्रियों के वश में होने वाले पुरुष के कार्य इस तरह नष्ट हो जाते हैं, जैसे शुष्क सरोवर पर से हंस भाग जाते हैं ॥४०॥

अकस्मादेव कुप्यंति प्रसीदंत्यनिमित्ततः ।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा ॥४१॥

जो अचानक कुपित हो जावे और विना निमित्त ही प्रसन्न हो जावे। यह स्वभाव चञ्चल मेघ के समान असाधु पुरुषों का है ॥४१॥

सत्कृताश्च कृतार्थाश्च मित्राणां न भवंति ये ।
तान्मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुंजते ॥४२॥

जो मित्रों के सत्कार करने वाले तथा मित्रों के कार्य कर देने वाले नहीं होते, उन मरे हुए कृतघ्नों के मांस को मांसाहारी कव्वे चील जन्तु भी नहीं खाते है ॥४२॥

अर्चयेदेव मित्राणि सति वाऽसतिवा धने ।
नानर्थयन्प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम् ॥४३॥

धन के होने या न होने पर भी मित्रों का आदर करना चाहिए । बिना मित्रों के स्वागत किए, मित्र के गौरव आदि का भी पता नहीं लगता है ॥४३॥

सन्तापाद्भ्रश्यते रूपं सन्तापाद् भ्रश्यते बलम् ।
सन्तापाद् भ्रश्यते ज्ञानं संतापाद्व्याधिमृच्छति ॥४४॥

सन्ताप से रूप, बल, ज्ञान, नष्ट हो जाता है और सन्ताप से व्याधि बढ़ जाती है ॥४४॥

अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते ।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मा स्म शोके मनः कृथाः ॥४५॥

शोक से कुछ मिलता नहीं है, केवल शरीर जलता रहता है तथा शत्रु प्रसन्न होते हैं, इससे शोक कभी नहीं करना चाहिए ।

पुनर्नरो म्रियते जायते च पुनर्नरो हीयते वर्द्धते च ।
पुनर्नरो याचति याच्यते च पुनर्नरः शोचति शोच्यते च

मनुष्य बार २ मरता है और बार २ उत्पन्न होता है, मनुष्य बार २ घटता है और बार २ बढ़ता है। कभी कोई मनुष्य याचना करता है और कभी उससे कोई मांगते हैं। कभी मनुष्य शोक करता हैं और कभी उस मनुष्य का कोई शोक करता है ॥४६॥

सुखं च दुःखं च भवाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च
पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति तस्माद्धीरो न च हृष्येन्न शोचेत्

सुख, दुःख, जन्म, अजन्म, लाभ, हानि, मरना, जीना, क्रम से होते रहते हैं। इसको स्वभाव जानकर धीर मनुष्य कभी प्रसन्न और चिन्तातुर न होवे ॥४७॥

चलानि हीमानि षडिन्द्रियाणि तेषां यद्यद्वर्द्धते यत्र यत्र।
ततस्ततः स्रवते बुद्धिरस्य च्छिद्रोदकुंभादिव नित्यमंभः ॥

ये छटे मन सहित पांचों इन्द्रियां बड़ी चञ्चल हैं। इनमें जिस इन्द्रिय का भोग अधिक बढ़ता जावेगा, उधर २ से ही मनुष्य की बुद्धि छिद्र वाले जल के कुंभ से जल के समान टपकती जावेगी ॥४८॥

धृतराष्ट्र उवाचः—

तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया ॥
मंदानां मम पुत्राणां युद्धेनांतं करिष्यति ॥४९॥

धृतराष्ट्र ने कहा-राजा युधिष्ठिर को मिथ्या व्यवहार से मैंने ऐसा क्रुद्ध कर दिया है, जैसे शरीर में अग्नि छुपा लिया हो; अब यह मेरे मूर्ख पुत्रों का युद्ध में नाश करके रहेगा ॥४९॥

नित्योद्विग्नमिदं सर्वं नित्योद्विग्नमिदं मनः।
यत्तत्पदमनुद्विग्नं तन्मे वद महामते ॥५०॥

हे महामते ! यह सारा परिवार घबड़ा रहा है और मेरा मन भी नित्य उद्विग्न रहता है। अब जो घबराहट का स्थान न होवे—आप उसे मुझे बताइए ॥५०॥

विदुर उवाच—

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्।
नान्यत्र लोभसंत्यागाच्छान्तिं पश्यामि तेऽनघ॥५१॥

विदुर ने कहा—हे अनघ ! ज्ञान, तप, इन्द्रिय-निग्रह, लोभ-परित्याग के सिवा मैं अन्य कहीं भी तुम्हारे चित्त को शान्ति होती नहीं देखता ॥५१॥

बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विंदते महत्।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शांतिं योगेन विन्दति ॥५२॥

बुद्धि से भय नष्ट होता है, तप से महत् पद की प्राप्ति होती है। गुरुकी सेवा से ज्ञान और योग से शान्ति मिलती है ॥५२॥

अनाश्रिता दानपुण्यं वेदपुण्यमनाश्रिताः।
रागद्वेषविनिर्मुक्ता विचरंतीह मोक्षिणः ॥५३॥

निष्काम, दान, पुण्य और वेदाध्ययन करके रागद्वेष से रहित मुमुक्षु जन संसार में विचरा करते हैं ॥५३॥

स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः।
तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते ॥५४॥

अच्छी तरह पढ़ा हुआ शास्त्र, उत्तम ढंग से किया हुआ युद्ध और उत्तम रीति से सम्पादित कर्म तथा अच्छी तरह किया हुआ तप अन्त में सुख प्रदान करता है ॥५४॥

स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना नवैभिन्नाजातुनिद्रांलभंते ।
न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः

हे राजन् ! जो भयातुर हैं, उनको उत्तम शयन प्राप्त होने पर भी नींद नहीं आती है । उनको न स्त्रियों में आनन्द और न मागध-सूतों की प्रशंसा में सुख मिलता है ॥५५॥

न वै भिन्ना जातु चरंति धर्मं न वै सुखं प्राप्नुवंतीह भिन्नाः
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवंति न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति

जो आपस में एक दूसरे से भिन्न हो गए हैं, वे धर्म नहीं कर सकते और न भेद को प्राप्त हुए सुख पाते हैं । उनको न गौरव मिलता है और न पृथक् हुए जनों को कोई शान्ति मिलती है ॥५६

न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम् ।
भिन्नानां वै मनुजेन्द्र परायणं न विद्यते किंचिदन्यद्विनाशात्

हितकारी भोजन भी इनको स्वाद नहीं देता और न उनको योग-क्षेम प्राप्त होता है । हे मनुजेन्द्र ! इस प्रकार झगड़ने वालों का कोई रक्षक नहीं है । उनको विनाश होने के सिवा अन्य मार्ग ही नहीं है ॥५७॥

सम्पन्नं गोषु संभाव्यं संभाव्यं ब्राह्मणे तपः ।
सम्भाव्यं चापलं स्त्रीषु सम्भाव्यं ज्ञातितो भयम् ५८

गौओं में सम्पत्ति, ब्राह्मण में तप, स्त्रियों में चपलता और जाति वालों से भय हुआ ही करता है ॥५८॥

तंतवोऽप्यायिता नित्यं तनवो बहुलाः समा ।
बहून्बहुत्वोदायासान्सहन्तीत्युपमा सताम् ॥५९॥

यदि पतले २ बहुत से तन्तुओं को बल दे दिया जावे, तो बहुतों के एक हो जाने से वे दुर्बल तन्तु भी बहुत से झटकों को झेल लेते हैं, यही सज्जनों की दशा है ॥५९॥

धूमायंते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च ।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥६०॥

हे भरतर्षभ ! पृथक् २ काष्ठ, धुआं देता रहता है और इकट्ठे हुए काष्ठ जलने लगते हैं। हे धृतराष्ट्र ! इसी तरह जलती हुई लकड़ी के समान भाइयों का स्वभाव समझना चाहिए अर्थात् इकट्ठा रहने पर ही भाई तेजस्वी होते हैं ॥६०॥

ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ।
वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतन्ति ते ॥६१॥

हे धृतराष्ट्र ! जो शूरवीर, ब्राह्मण, स्त्री जाति और गौओं में अपनी शक्ति दिखाते हैं; वे वृन्त (डंठल) से अलग हुए पके फल के समान गिर जाते हैं ॥६१॥

महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः ।
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात् ॥६२॥

एक बहुत बड़ा अकेला अच्छी तरह खड़ा हुआ, महान् वृक्ष भी बल-पूर्वक वायु से स्कन्धों सहित उखाड़कर नष्ट-भ्रष्ट किया जा सकता है ॥६२॥

अथ ये सहिता वृक्षाः संघशः सुप्रतिष्ठिताः ।
ते हि शीघ्रतमान् वातान्सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात् ॥६३

जो वृक्ष, इकट्ठे ही संघ रूप से खड़े हैं, वे बड़ी से बड़ी आँधी को सह लेते हैं, क्योंकि वे एक दूसरे पर अवलम्बित रहते हैं ॥६३॥

एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम् ।
शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम् ॥६४॥

इसी तरह गुणों से युक्त, मनुष्य को भी उसके शत्रु ऐसे जीत लेना समझते हैं- जैसे वायु अकेले वृक्ष को समझता है ।

अन्योन्यसमुपष्टंभादन्योन्योपाश्रयेण च ।
ज्ञातयः संप्रवर्द्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत ॥६५॥

एक एक के आधार और एक एक के सहारे से जातियाँ सरोवरमें कमल के समान बढ़ने लगती हैं ॥६५॥

अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः ।
येषां चान्नानि भुञ्जीत ये च स्युः शरणागताः ॥६६॥

ब्राह्मण, गाय, जाति, शिशु, स्त्री और शरणागत ये अवध्य माने गए हैं तथा जिसका अन्न खाया - वह भी अवध्य ही है ।

न मनुष्ये गुणः कश्चिद्राजन्सधनतामृते ।
अनातुरत्वाद्भद्रं ते मृतकल्पा हि रोगिणः ॥६७॥

हे राजन् ! धन को छोड़कर मनुष्य में अन्य कोई गुण ही नहीं माना गया है, क्योंकि उसके कोई व्याधि शेष नहीं रह जाती है । रोगी तो मृतक के बराबर ही माने गए हैं ॥६७॥

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम्
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य॥

व्याधि से अनुत्पन्न, कडुआ, पापानुबन्धी, कठोर, तीक्ष्ण, उष्ण, शिर को चक्कर देने वाला क्रोध है । यह सज्जनों के पी जाने योग्य है । इसको दुर्जन नहीं पी सकते हैं । हे महाराज ! आप इसको पी जाओ और शान्त हो जाओ ॥६७॥

रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम्
दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव न बुध्यन्ते धनभोगान्नसौख्यम्॥

रोगी किसी भी पुण्य के फल का स्वाद नहीं ले सकता है और न विषयों का स्वाद ही उठा सकता है । रोगी सदा दुःख से युक्त होते हैं, वे न तो धन का भोगकर सकते हैं और न सुख ही पा सकते हैं ॥६९॥

पुरा ह्युक्तं नाकरोस्त्वं वचो मे द्यूते जितां द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन् ।
दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां कितवत्वं पण्डिता वर्जयन्ति ७०

हे राजन् ! द्यूत में जीती हुई द्रौपदी को देखकर मैंने जो वचन कहा था-तुमने उस समय मेरे वचन को नहीं माना । मैंने

कहा था, कि तुम दुर्योधन को रोको। द्यूत खेलने में कपट करना पण्डितों ने अच्छा नहीं माना है ॥७०॥

न तद्बलं यन्मृदुना विरुध्यते सूक्ष्मो धर्मस्तरसा सेवितव्यः
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्रीमृ दुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान्॥

वह बल नहीं माना जा सकता है, जिसका कोमल-प्रकृति मनुष्य पर प्रयोग किया जाता है। सूक्ष्म धर्म की बड़े ध्यान और शीघ्रता से सेवा करनी चाहिए। क्रूरता से प्राप्त की हुई लक्ष्मी नाश कर देती है और कोमलता से प्राप्त की हुई पुत्र पौत्रों तक चली जाती है ॥७१॥

धार्तराष्ट्राः पाण्डवान्पालयन्तु पांडोः सुतास्तव पुत्रांश्च पांतु
एकारिमित्राःकुरवो ह्येककार्या जीवन्तुराजन्सुखिनःसमृद्धाः

दुर्योधनादि पाण्डवों की रक्षा करें और पाण्डव, तेरे पुत्र दुर्योधनादि की रक्षा करें। हे राजन! इन दोनों में से एक का जो वैरी वह इनका वैरी और जो दोनों का मित्र, वह इन दोनों का मित्र है। इस प्रकार एक लक्ष्य बनाकर ये कौरव वंशोत्पन्न तेरे पुत्र और पाण्डव सुखी और समृद्धिशाली होकर चिरकाल तक जीवित रहें ॥७२॥

मेढीभूतः कौरवाणां त्वमद्य त्वयाधीनं कुरुकुलमाजमीढ।
पार्थान्बालान्वनवासप्रतप्तान् गोपायस्व स्वं यशस्तातरक्षन्

हे अजमीढ-वंशोत्पन्न! धृतराष्ट्र! तुम ही इस कुरु कुल की मेढ़ हो। यह कुरुकुल, अब तुम्हारे ही आधीन है।

हे तात ! अब आप बनवास से क्लेशित, बालक पाण्डवों की पालना करके अपने यश की रक्षा करो ॥७३॥

संधत्स्व त्वं कौरव पांडुपुत्रैर्मा तेऽन्तरं रिपवः प्रार्थयन्तु ।
सत्ये स्थितास्ते नरदेव सर्वे दुर्योधनं स्थापय त्वं नरेन्द्र॥

इति श्रीमहाभारत वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि
विदुर हित वाक्ये षटत्रिंशोत्तमोऽध्यायः ॥३६॥

हे कौरव-श्रेष्ठ ! अब तुम पाण्डवों से सन्धि कर लो । तुम्हारे शत्रु, तुम्हारे इस छिद्र का पता न लगा लें । हे नरदेव ! सारे पाण्डव सत्य में स्थित हैं । हे नरेन्द्र ! अब तुम दुर्योधन को संसार में जीवित रहने दो ॥७४॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत प्रजागरपर्व में विदुर के
हितकारी वाक्य कथन का छत्तीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



सैंतीसवां अध्याय

विदुर उवाच—

सप्तदशेमान् राजेन्द्र मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
वैचित्रवीर्य पुरुषानाकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः ॥१॥
दानवेन्द्रस्य च धनुरनाभ्यं नमतोऽब्रवीत् ।
अथो मरीचिनः पादानग्राह्यान् गृह्णतस्तथा ॥२॥

विदुर ने कहा—हे विचित्रवीर्य के पुत्र! राजेन्द्र! अधोलिखित सत्रह प्रकार के पुरुषों को देखकर स्वायम्भुव मनु ने कहा है—कि ये पुरुष मुट्ठी में आकाश को लेना चाहते हैं तथा मेघ के नहीं झुकने वाले धनुष को झुकाने की इच्छा करते हैं एवं नहीं पकड़ने में आने वाली चन्द्र सूर्य की किरणों के पकड़ने की इच्छा करते हैं अर्थात् अधोलिखित बातें करने में कोई फल नहीं है ॥१-२॥

यश्चाशिष्यं शास्ति वै यश्च तुष्येद्यश्चातिवेलं भजते द्विषन्तम्
स्त्रियश्चयोरक्षतिभद्रमश्नुते यश्चायाच्यंयाचते कत्थते वा ॥
यश्चाभिजातः प्रकरोत्यकार्यं यश्चाबलो बलिना नित्यवैरी ।
अश्रद्दधानाय च यो ब्रवीति यश्चाकाम्यं कामयते नरेन्द्र ॥
वध्वाऽवहासंश्वशुरोमन्यते यो वध्वाऽवसन्नभयोमानकामः ।
परक्षेत्रे निर्वपति यश्च बीजं स्त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम्
यश्चापिलब्ध्वानस्मरामीतिवादीदत्वाचयःकत्थतियाच्यमानः
यश्चासतः सत्वमुपानयीत एतान्नयन्ति निरयं पाशहस्ताः

हे नरेन्द्र! वे सत्रह प्रकार के पुरुष ये माने गए हैं (१) जो कुशिष्य को पढ़ावे, (२) जो स्त्री-पुत्रादि के रक्षा के भार के होने पर भी थोड़े में ही सन्तोष करे, (३) अपने शत्रु की भी सेवा करने को तत्पर हो जावे, (४) पर-स्त्रियों को अपने पास रखकर भी कल्याण चाहे, (५) नहीं मांगने योग्य से मांगे, (६) उपदेश के अयोग्य को उपदेश देवे, (७)

कुलीन होकर अकार्य करे (८) निर्बल होकर बलवान् के साथ सदा वैर रखे, (९) श्रद्धाहीन को धर्म का कथन करे (१०) नहीं चाहने वाले की कामना करे, (११) जो श्वसुर होकर पुत्र वधू से उपहास करे, (१२) अपनी पुत्र वधू से मिलकर भी निर्भयता होकर मान का अभिलाषी हो, (१३) परक्षेत्र (स्त्री) में बीज डाले (१४) स्त्रियों से बहुत देर तक बातचीत करता रहे (१५) सहायता पाकरभी 'मुझे स्मरण नहीं" इस तरह कह दे, (१६) मांगता हुआ भी अपनी डींग मारे (१७) एवं दुष्ट को साधु पुरुष बताने का हठ करे, इनको पाश-धारी यमराज नरकलोक में ले जाता है ॥३-६॥

यस्मिन्यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः
मायाचारोमाययावर्तितव्यःसाध्वाचारःसाधुनाप्रत्युपेयः ॥

जो मनुष्य, हमारे साथ जैसा वर्ताव करता है, उसके साथ वैसा वर्ताव ही धर्म है। छली के साथ छल से वर्तना चाहिए, और शुद्ध आचार वाले के साथ शुद्धता से वर्तना उचित है॥७॥

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान्धर्मचर्यामसूया
कामो ह्रियं वृत्तमनार्यसेवा क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः

बुढापा रूप को, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, निन्दा धर्म को, काम लज्जा को, अनार्य सेवा सदाचार को, क्रोध लक्ष्मी को और अभिमान सब कुछ को नष्ट कर देता है ॥८॥

धृतराष्ट्र उवाच—

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा।
नाप्नोत्यथ च तत्सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥९॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! सारे वेदों में पुरुष को सौ वर्ष की आयु बताई है। यह पुरुष, उस सारी शत वर्ष की आयु को किन कारणों से नहीं भोग पाता है ॥९॥

विदुर उवाच—

अतिमानोऽतिवादश्च तथाऽत्यागो नराधिप।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट् ॥
एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्।
एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते ॥११॥

विदुर बोले—हे नराधिप! अत्यन्त घमण्ड, अधिक बकवाद बहुत लोभ, क्रोध, अपना ही अपना पेट भरना और मित्र-द्रोह ये छः काम बड़े तीक्ष्ण लोहे के शस्त्र हैं, जो आयु को काटते रहते हैं। ये काम ही मनुष्य को मारते हैं-मृत्यु किसी मनुष्य को नहीं मारती हैं॥ १०-११॥

विश्वस्तस्यैति यो दारान् यश्चापि गुरुतल्पगः।
वृषलीपतिर्द्विजो यश्च पानपश्चैव भारत ॥१२॥
आदेशकृद् वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्च यः।
शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः।
एतैः समेत्य कर्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः ॥१३॥

हे भारत ! जो पुरुष, विश्वासी की स्त्रियों के साथ व्यभिचार गुरु-पत्नी के साथ गमन, धर्महीन स्त्री का पति, द्विज होकर मद्य पायी, सबका सेवक, द्विजों की वृत्तिका विघातक, द्विजों से बलात् आज्ञा कराने वाला और शरणागत नाशक हो, ये सारे ब्रह्म-घातक के समान माने गए हैं। इनके साथ मिलने से भी मनुष्य को प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥१२-१३॥

गृहीतवाक्यो नयविद्वदान्यः शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च ।
नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान्

जो विद्वानों के वाक्यों का ग्रहण करने वाला, नीति का ज्ञाता, उदार, देवातिथि से शेषान्न का भोक्ता, अहिंसक, अनर्थ बिना किए न घबड़ाने वाला, कृतज्ञ, सत्य आचारवान्, कोमल-प्रकृति, विद्वान्, स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥१४॥

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ १५ ॥

(हे राजन् ! सदा प्रिय बोलने वाले पुरुष सुलभ हैं, परन्तु अप्रिय सत्य के वक्ता श्रोता दोनों ही पुरुष दुर्लभ हैं ॥१५॥

यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये ।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् ॥१६॥

जो धर्म का आश्रय लेकर और स्वामी को यह बात प्रिय लगेगी या अप्रिय—इस ध्यान को छोड़कर जो पुरुष, हितकारी बात कह देता है, उस सेवक से ही राजा सहायता युक्त है॥१६॥

त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ १७ ॥

कुल की रक्षा के लिए एक पुरुष को, ग्राम की रक्षा के लिए कुल को, देश की रक्षा के लिए ग्राम को तथा आत्मा के विकास के लिए पृथिवी मात्र को छोड़ दे अर्थात् समस्त संसार के उपकार के लिए अपने देश को भी छोड़ दे ॥१७॥

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ १८ ॥

अपने को आपत्ति से बचाने को धन की रक्षा करे और धन से अपनी स्त्रियों को बचावे एवं धन और स्त्रियों से भी आत्मा अर्थात् समस्त संसार की रक्षा करे ॥१८॥

द्यूतमेतत्पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम् ।
तस्मात् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥१९॥

पूर्व काल से यह देखा गया है, कि द्यूत (जुआ) मनुष्यों में वैर करा देती है, इसलिए हंसी में भी कभी मनुष्य, द्यूत का नाम भी न लेवे ॥१९॥

उक्तं मया द्यूतकालेऽपि राजन्नेदं युक्तं वचनं प्रातिपेय ।
तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य न रोचते तव वैचित्रवीर्य ॥२०॥

हे प्रतीपवंशोत्पन्न ! राजन् ! मैंने द्यूत के समय भी कहा था, कि यह वचन कहना ठीक नहीं है । हे वैचित्रवीर्य ! रोगी को पथ्य आहार के तुल्य तुमको मेरा यह वचन अच्छा नहीं मालूम हुआ ॥

काकैरिमाश्चित्रबर्हान्मयूरान्पराजयेथाः पांडवान्धार्तराष्ट्रैः ।
हित्वा सिंहान् क्रोष्टुकान्गूहमानः प्राप्तेकाले शोचितात्वंनरेंद्र

हे नरेन्द्र ! तुम चित्र पक्षधारी मयूरों के तुल्य पाण्डवों को काक के समान आचरण वाले, दुर्योधनादि से हराना चाहते हो । तुम सिंह को मारकर गीदड़ों की रक्षा कर रहे हो—इस तरह एक दिन तुमको अवश्य सोच करना पड़ेगा ॥२१॥

यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य
तस्मिन्भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति न चैनमापत्सु परित्यजन्ति

हे तात ! जो राजा अपने भक्त, हितकारी सेवक पर कभी क्रोध नहीं करता है—उस स्वामी का ही सेवक विश्वास करते हैं और उसको आपत्ति में भी नहीं छोड़ते हैं ॥२२॥

न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन राज्यं धनं संजिघृक्षेदपूर्वम् ।
त्यजन्तिह्येनंवंचितावैविरुद्धाःस्निग्धाह्यमात्यापरीहीनभोगाः

राजाओं को चाहिए, कि अपने सेवकों की वृत्ति का विघात करके राज्य और धन की आकांक्षा न करे । भृत्यों की वृत्ति के विघातक राजा के धोखा खाये हुए हितकारी प्रेमी मन्त्री भी भोगों से हीन होने पर विरुद्ध हो जाते हैं और अपने स्वामी को छोड़ देते हैं ॥२३॥

कृत्यानिपूर्वपरिसंख्यायसर्वाण्यायव्ययेवानुरूपाञ्चवृत्तिम्
संगृह्णीयादनुरूपान्सहायान् सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि

राजा प्रथम सारे कामों को पड़ताले, फिर आय व्यय को देखकर सेवकों की वृत्ति नियत करे। जो अपने अनुकूल हों, उन सहायकों का संग्रह करे, क्योंकि सहायकों से दुष्कर काम भी पूरे हो जाते हैं ॥२४॥

अभिप्रायंयोविदित्वातुभर्तुःसर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्री
वक्ता हितानामनुरक्तआर्यः शक्ति ज्ञआत्मेवहिसोऽनुकम्प्यः

जो सेवक, राजा का अभिप्राय जानकर आलस्य हीन हुआ सब कामों को पूरा करता है। जो प्रेमी, आर्य, हित का कहने वाला और राजा की शक्ति का ज्ञाता है, उस सेवक का राजा को अपने समान ही ध्यान रखना चाहिए ॥२५॥

वाक्यन्तुयोनाद्रियतेऽनुशिष्टःप्रत्याहयश्चापि नियुज्यमानः
प्रज्ञाभिमानीप्रतिकूलवादीत्याज्यः स तादृक्त्वरयैव भृत्यः

आज्ञा देने पर जो आज्ञा का आदर न करे और किसी काम पर लगाया हुआ उलटा उत्तर दे दे। अपनी बुद्धि के अभिमानी, प्रतिकूल बोलने वाले, सेवक को राजा शीघ्र ही त्याग दे ॥२६॥

अस्तब्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः।
अरोगजातीयमुदारवाक्यं दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ॥२७

जो जड़ता से रहित, कायरता को पास नहीं आने देने वाला, दीर्घसूत्रीपन का त्यागी, दयालु, स्पष्टवादी, शत्रु से अपनी ओर नहीं मिलाया जाने वाला, रोगहीन, उदारता से बोलने वाला है—वही इन आठ गुणों से युक्त पुरुष, दूत बनाने के योग्य है ॥२७॥

न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले।
नचत्वरेनिशितिष्ठेन्निगूढोनराजकाम्यांयोषितंप्रार्थयीत ॥

सावधान पुरुष, असमय में विश्वास करके शत्रु के घर पर न जावे, न द्वार के चबूतरे पर छुपकर खड़ा होवे और न राजा की चाही हुई स्त्री की कभी कामना करे ॥२८॥

न निह्नवं मन्त्रगतस्य गच्छेत्संसृष्टमन्त्रस्य कुसंगतस्य।
न च ब्रूयान्नाश्वसिमि त्वयीतिसकारणं व्यपदेशं तु कुर्यात्

मन्त्रणा करते हुए या कुसंगी पुरुषों से बातचीत करते हुए राजा के पास छुपकर न जावे। राजा से यह न कहे, कि मैं तुम पर विश्वास नहीं करता हूं। यदि राजा के किसी कार्य का निषेध करना है, तो उसको कारण बता कर निषेध करना चाहिए ॥२६॥

घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः पुत्रो भ्राता विधवा वालपुत्रा
सेनाजीवी चोद्धृतभूतिरेव व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते ॥

घृणा करने वाला राजा, कुलटा स्त्री, राजा का सेवक, पुत्र और भाई, बालक-पुत्र-वाली विधवा, सेनापति और राजा से अधिकार च्युत पुरुष से कोई एकान्त में बातचीत न करे ॥३०॥

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा चकौल्यं च श्रुतं दमश्च
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ३१

बुद्धि, कुलीनता, शास्त्र, मन का विजय, पराक्रम, अधिक न बोलना, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता ये आठ गुण मनुष्य को संसार में चमका देते हैं ॥३१॥

एतान्गुणांस्तात महानुभावानेको गुणः संश्रयते प्रसह्य ।
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान्गुणानेष गुणो बिभर्ति ॥

हे तात ! इन उत्तम २ गुणों से अधिक एक गुण और माना है। राजा जिस गुण के कारण मनुष्य का सत्कार करता है—वह गुण सब गुणों को अपने पेट में रख लेता है ॥३२॥

गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः ।
स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः

स्नान करने वाले पुरुष को बल, रूप, स्वर और वर्ण की शुद्धि, स्पर्श, गन्ध, शुद्धि, शोभा और सुकुमारता प्राप्त होती है तथा उत्तम २ स्त्रियाँ उसकी प्रशंसा करती हैं ॥३३॥

गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च ।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति ॥

थोड़ा खाने वाले को अधोलिखित छः गुण प्राप्त होते हैं। आरोग्य, आयु, बल, सुख, बली सन्तान प्राप्त होती है और इसको कोई "पेटार्थी" कहकर निंदा नहीं कर सकता है ॥३४॥

अकर्मशीलं च महाशनं च लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम् ।
अदेशकालज्ञमनिष्टवेषमेतान्गृहे न प्रतिवासयेत ॥३५॥

कर्महीन, अधिकभोजी, संसार का द्वेषी, मायावी, नीच, देशकाल का नहीं जानने वाला, अनिष्ट वेषधारी पुरुष को घर में नहीं बसाना चाहिए ॥३५॥

कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम् ।
निष्ठूरिणं कृतवैरं कृतघ्नमेतान्भृशार्तोऽपि न जातु याचेत् ॥

कायर, निन्दक, शास्त्रहीन, जंगली, धूत, अमान्यों का मानने वाले, कठोर, वैर मानने वाले और कृतघ्न की विपत्ति में फंसने पर भी कभी याचना न करे ।।३६॥

संक्लिष्टकर्माणमतिप्रमादं नित्यानृतं चादृढभक्तिकं च ।
विसृष्टरागं पटुमानिनं चाप्येतान्न सेवेत नराधमान् षट् ॥

कुत्सित कर्मकारी, अत्यन्त प्रमादो, नित्य मिथ्या भाषी, शिथिल भक्ति वाले, प्रेमहीन, अत्यन्त मानी—इन छः प्रकार के पुरुषों की साधु पुरुष कभी सेवा न करे ॥३२

सहायबन्धना ह्यर्थाः सहायाश्चार्थबन्धनाः ।
अन्योन्यबन्धनावेतौ विनान्योन्यं न सिद्ध्यतः ॥३८

सहायकों से धन और धन से सहायक मिलते हैं। ये तो एक दूसरे पर अवलम्बित हैं। इनमें एक के विना दूसरे की सिद्धि नहीं है ॥३८॥

उत्पाद्यपुत्राननृणांश्चकृत्वावृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय कांचित्
स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत्

पुत्र उत्पन्न करके और उनस अपने को उऋण बनाकर तथा उसकी वृत्ति लगाकर एवं अपनी सारी कन्याओं का विवाह करके मनुष्य वन में सुशोभित हो सकता है ॥३९॥

हितं यत्सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम् ।
तत्कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये ॥४०॥

जो सब प्राणियों का हितकारी और सुखकारी कार्य हो, उसी को ईश्वरार्पण बुद्धि से करे- इसी में सब कार्यों की सिद्धि है॥४०

बुद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्वमुत्थानमेव च ।
व्यवसायश्च यस्य स्यात्तस्याऽवृत्तिभयं कुतः ॥४१॥

बुद्धि, प्रभाव, तेज, वल, उठने की इच्छा, उद्योग-ये जिसमें विद्यमान हैं- उसको जीविका का क्या भय हो सकता है ॥४१॥

पश्य दोषान्पाण्डवैर्विग्रहे त्वं यत्र व्यथेयुरपि देवाः सशक्राः
पुत्रैर्वैरं नित्यमुद्विग्नवासो यशः प्रणाशो द्विषतश्च हर्षः ४२

हे राजेन्द्र ! जिन पाण्डवों से इन्द्रादि देव भी डरते हैं, तुम उन पाण्डवों से विग्रह करने में इन दोषों पर ध्यान दो, कि तुम्हारे पुत्रों में वैर हो गया, चित्त व्याकुल रहने लगा, यश का नाश हो चला और शत्रुओं को प्रसन्नता हो रही है ॥४२॥

भीष्मस्य कोपस्तव चैव कल्पः द्रोणस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य ।
उत्सादयेल्लोकमिमं प्रवृद्धः श्वेतो ग्रहस्तिर्यगिवापतन् खे ४३

भीष्म, द्रोण और राजा युधिष्ठिर का कोप, तेरा यह ढ़ंग, बढ़े हुए तीखे धूमकेतु तारे के समान सारे जगत् का नाश कर सकता है ॥४३॥

तव पुत्रशतं चैव कर्णः पञ्च च पाण्डवाः ।
पृथिवीमनुशासेयुरखिलां सागराम्बराम् ॥४४॥

तेरे सौ पुत्र, कर्ण और पांचों पाण्डव, यदि मिल जावें तो समुद्र सहित पृथिवी का शासन कर सकते हैं ॥४४॥

धार्तराष्ट्र वनं राजन् व्याघ्राः पाण्डुसुता मताः ।
मा वनं छिंधि सव्याघ्रं मा व्याघ्रा नीनशन्वनात् ४५

हे राजन् ! तेरे पुत्र दुर्योधन आदि वन हैं, पाण्डव व्याघ्र हैं। तुम व्याघ्र-सहित इस वन को मत काटो और न इस वन से व्याघ्रों को नष्ट करो ॥४५॥

न स्याद्वनमृते व्याघ्रान् व्याघ्रा स्युर्ऋते वनम् ।
वनं हि रक्ष्यते व्याघ्रैर्व्याघ्रान् रक्षति काननम् ॥४६॥

वन के विना व्याघ्र और व्याघ्रों के विना वन नहीं रह सकता है। व्याघ्र तो वन की रक्षा करते हैं और वन व्याघ्रों को बचाए रखता है ॥४६॥

न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान् ।
यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः ॥४७॥

तुम्हारे पुत्र अन्य का कल्याण नहीं चाहते और न अन्य के गुणों को देखते हैं। ये पापी तो उनके दोष ही दोष देखना चाहते हैं ॥४७॥

अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत्।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम् ॥४८॥

जो अपने कार्य की सिद्धि करना चाहे-वह प्रारम्भ से ही धर्म का आचरण करे। धर्म से अर्थ कभी पृथक् नहीं होता है-जैसे स्वर्ग लोक से अमृत नहीं नष्ट होता है ॥४८॥

यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः ।
तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या ॥४९॥

जिसका आत्मा पाप से निवृत्त हो गया और कल्याण में लग गया है, उसी ने कामों के बिगड़ने सुधरने का तत्व जाना है ॥४९॥

यो धर्ममर्थं कामं च यथाकालं निषेवते ।
धर्मार्थकामसंयोगं सोऽमुत्रेह च विन्दति ॥५०॥

जो धर्म, अर्थ और काम का यथाकाल सेवन करना जानता है, वही इस लोक में धर्म, अर्थ और काम तथा परलोक में सुख पाता है ॥५०॥

सन्नियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः ।
स श्रियो भाजनं राजन् यश्चापत्सु न मुह्यति ॥५१॥

हे राजन्! जो क्रोध और हर्ष के उठे हुए वेग को रोक लेता है और आपत्ति में मोहित नहीं होता-वही लक्ष्मी का पात्र बनता है॥

बलं पञ्चविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे ।
यत्तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते ॥५२॥
अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते ।
तृतीयं धनलाभं तु बलमाहुर्मनीषिणः ॥५३॥
यत्त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहं बलम् ।
अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम् ॥५४॥

येन त्वेतानि सर्वाणि संगृहीतानि भारत ।
यद्बलानां बलं श्रेष्ठं तत्प्रज्ञाबलमुच्यते ॥५५॥
महते योऽपकाराय नरस्य प्रभवेन्नरः ।
तेन वैरं समासज्य दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ॥५६॥

राजाओं में पांच बल माने गए हैं । एक तो बाहुओं का बल है, जो कनिष्ठ है । उत्तम २ मन्त्रियों का प्राप्त होना, द्वितीय बल माना गया है । तीसरा धन का बल महात्माओं ने बताया है । हे राजन् ! चौथा पिता पितामह का स्वाभाविक बल है, जो अभिजात (कुल) बल कहाता है । हे भारत ! इन चारों बलों को जिसने अपने भीतर कर लिया है, वह पांचवां बुद्धि का बल है। जो सब बलों में उत्तम है । इसी बल के कारण मनुष्य, मनुष्य का बड़ा अपकार कर सकता है । बुद्धिमान् से वैर करके "मैं दूर हूँ" ऐसा मानकर तसल्ली नहीं मिलती ॥५२-५६॥

स्त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्यायप्रभुशत्रुषु ।
भोगेष्वायुषि विश्वासं कः प्राज्ञः कर्त्तुमर्हति ॥५७॥

कौन ऐसा बुद्धिमान् मनुष्य है, जो स्त्री, राजा, सांप, स्वाध्याय, स्वामी, शत्रु, भोग और आयु पर विश्वास करे ॥५७॥

प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तोश्चिकित्सकाः सन्ति न चौषधानि
न होममन्त्रा न च मंगलानि नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः

बुद्धि के बाण से मारे हुए मनुष्य का वैद्य, औषध, होम-मन्त्र तथा अन्य मङ्गल कार्य कल्याण नहीं कर सकते हैं और न

अथर्व वेद के मन्त्र और न सिद्ध भेषज (दवा) उसको बचा सकती हैं ॥५८॥

सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत ।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः ॥५९॥

हे भारत! सर्प, अग्नि, सिंह, कुल-पुत्र—इनका मनुष्य को तिरस्कार नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये बड़े ही तेजस्वी होते हैं।

अग्निस्तेजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु ।
न चोपयुंक्ते तद्दारु यावन्नोद्दीप्यते परैः ॥६०॥

अग्नि का तेज लोक में सबसे अधिक है, जो काष्ठ में छुपा रहता है। परन्तु वह तेज काष्ठ में दिखाई नहीं देता है, जब तक दूसरा मनुष्य उसको प्रदीप्त न कर दे ॥६०॥

स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते ।
तद्दारु च वनं चान्यन्निर्दहत्याशु तेजसा ॥६१॥

जब लकड़ियों को मथ कर आग दीप्त कर ली जाती है, तो वही काष्ठ खण्ड, अपने तेज से सारे वन तथा अन्य वस्तुओं को जला डालता है ॥६१॥

एवमेव कुले जाताः पावकोपमतेजसः ।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ॥६२॥

इसी तरह कुल में उत्पन्न पुरुष, अग्नि के समान तेज को धारण किए रहते हैं। ये अपने आकार को छुपाए हुए रहा करते हैं और काष्ठ में अग्नि की भांति छुपे रहते हैं ॥६२॥

लताधर्मा त्वं सपुत्रः शाखाः पांडुसुता मताः ।
न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता ॥६३॥

तुम तो लता के आकारधारी हो और पाण्डव शाखा माने गए हैं। लता, महाद्रुम का आश्रय लिए बिना कभी नहीं बढ़ सकती है ॥६३॥

वनं राजंस्तव पुत्रोऽम्बिकेय सिंहान्वने पांडवांस्तात विद्धि
सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत् सिंहा विनश्येयुर्हि ऋते वनेन ॥
इति श्रीमहाभारते वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि
विदुरवाक्ये सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३७॥

हे अम्बिका—पुत्र! राजन्! तेरा पुत्र दुर्योधन वन है। हे तात! इस वन में पाण्डवों को सिंह समझो। सिंहों के बिना वन नष्ट हो जाता है और बिना वन के सिंह नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥६४॥

इति श्री महाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत प्रजागरपर्व में विदुर-वाक्य का सैंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



अड़तीसवां अध्याय

विदुर उवाच—

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥१॥

विदुर ने कहा—हे राजन्! वृद्ध के घर पर आने पर युवा पुरुषों के प्राण ऊपर को उठने लगते हैं परन्तु जब युवा प्रत्युत्थान और प्रणाम कर लेता है, तब वे प्राण, ठीक हो जाते हैं ॥१॥

पीठं दत्वा साधवेऽभ्यागताय आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः

गृहस्थो, आए हुए उत्तम अभ्यागत के लिए आसन देकर पानी लावे और उसके चरण धोवे । गृहस्थी को चाहिए, कि अतिथि का कुशल पूछ कर अपनी अवस्था का अतिथि से कथन करे। धीर पुरुष, धर्म का ध्यान करके उसको भोजन करावे ॥२॥

यस्योदकं मधुपर्कं च गां च न मन्त्रवित्प्रतिगृह्णाति गेहे
लोभाद्भयादथ कार्पण्यतो वा तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्याः

जिस घर में वेद का ज्ञाता ब्राह्मण, अर्घ्यजल, मधुपर्क, गौ किसी लोभ, भय और कृपणता के कारण नहीं पाता है, उनके जीवन को आर्य पुरुष व्यर्थ मानते हैं ॥३॥

चिकित्सकःशल्यकर्ताऽवकीर्णी स्तेनःक्रूरोमद्यपोभ्रूणहाच।
सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च भृशं प्रियोऽप्यतिथिर्नोदकार्हः

वैद्य, बाण बनाने वाला, ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट, चोर, क्रूर, मद्यपायी, गर्भपात कराने वाला, सेना में नौकर, वेद का विक्रयी, प्रिय अतिथि भी जलादि आदर के ग्रहण करने का अधिकारी नहीं है।

अविक्रेयं लवणं पक्कमन्नं दधि क्षीरं मधु तैलं घृतं च।
तिला मांसं फलमूलानि शाकं रक्तं वासः सर्वगन्धा गुडाश्च

लवण, पक्का अन्न, दधि, दूध, शहद, तेल, घी, तिल, मांस, फल, फूल, शाक, लालवस्त्र, सब सुगन्धि द्रव्य तथा गुड़—ये अतिथि को बेचने नहीं चाहिए ॥५॥

अरोषणोयःसमलोष्टाश्मकाञ्चनःप्रहीणशोकोगतसन्धिविग्रहः
निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः

क्रोध नहीं करने वाला, मिट्टी पत्थर और सुवर्ण को समान जानने वाला, शोकहीन, सन्धि और विग्रह के झगड़ों से विरक्त, निन्दा प्रशंसा से रहित, किसी का प्रिय अप्रिय नहीं जानने वाला, उदासीन महात्मा ही अतिथि या भिक्षुक होना चाहिए ॥६॥

नीवारमूलेंगुदशाकवृत्तिः सुसंयतात्माग्निकार्येषु चोद्य।
वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः॥७॥

जो नीवार, (मुनि धान्य) कन्द मूल फल इंगुदी, शाका का भक्षक, अपनी आत्मा को वश में रखने वाला, हवन आदि में तत्पर, वनवासी, अतिथियों की सेवा में प्रमाद नहीं करने वाला, धर्म की धुर का धारक, तपस्वी ही पुण्यात्मा है ॥७॥

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः ॥८॥

बुद्धिमान् का अपकार करके दूर रहने पर भी किसी को अपने आपको निश्चिन्त नहीं समझना चाहिए। बुद्धिमान् की भुजा बड़ी लम्बी होती हैं, जिनसे अपमानित बुद्धिमान् अपमान करने वाले को मार बैठता है ॥८॥

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नाति विश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥९॥

जो विश्वास के योग्य नहीं उसका विश्वास न करे और जो विश्वास के योग्य है, उसका भी विश्वास न करे। यदि विश्वासी से भय उत्पन्न हो जावेगा—तो वह इसका जड़ से उच्छेद कर देगा ॥९॥

अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियम्वदः ।
श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत् ॥१०॥

ईर्ष्या न करने वाला, अपनी स्त्रियों का रक्षक, जिसका जितना भाग है, उसका देने वाला, प्रिय भाषी, स्त्रियों से स्पष्ट और मधुर बोलने वाला होकर भी उनके वश में नहीं होने वाला मनुष्य होना चाहिए ॥१०॥

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः ॥११॥

ये स्त्रियां बड़ी पूजनीय, पवित्र और घर की देवी तथा घर की लक्ष्मी है। इनकी विशेष रीति से रक्षा करनी चाहिए ॥११॥

पितुरन्तः पुरं दद्यान्मातुर्दद्यान्महानसम् ।
गोषु चात्मसमं दद्यात्स्वयमेव कृषिं व्रजेत् ॥१२॥
भृत्यैर्वाणिज्यचारं च पुत्रैः सेवेत च द्विजान् ।

पिता को घर की रक्षा, माता को रसोई और भाई को गौओं का अधिकार देकर आप खेती आदि की पड़ताल करे और सेवकों से वाणिज्य तथा पुत्रों से ब्राह्मण और अतिथियों की सेवा करावे ॥१२॥

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥१३॥
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ।

जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय, पत्थर से लोह उत्पन्न हुआ है। अग्नि, क्षत्रिय और लोह का तेज सर्वत्र फैलता है, परन्तु अपनी योनि (कारण) में जाकर शान्त हो जाता है ॥१३॥

नित्यं सन्तः कुले जाताः पावकोपमतेजसः ॥१४॥
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ।

कुल में उत्पन्न उत्तम मनुष्य, अग्नि के तुल्य तेजस्वी होते हैं और ये अपने स्वरूप को ढके हुए सब पर क्षमा करते हैं- जैसे काष्ठ में अग्नि चुपचाप स्थित रहता है ॥१४॥

यस्य मन्त्रं न जानन्ति बाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये ॥१५॥
स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते ।

जिस राजा के विचार को बाहर भीतर के कोई पुरुष न जान सके, वही सब ओर दृष्टि रखने वाला, राजा चिरकाल तक ऐश्वर्य भोगता है ॥१५॥

करिष्यन्न प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत् ॥१६॥

धर्मकामार्थकार्याणि तथा मन्त्रो न भिद्यते ।

जो राजा, धर्म, काम और अर्थ सिद्धि के कार्यों को मैं भविष्य में ऐसे २ कर डालूंगा—यह न कहे, किन्तु करके ही दिखावे । इस तरह करने वाले राजा के मन्त्र का भेद नहीं हो सकता है॥१६॥

गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ॥१७॥

अरण्ये निःशलाके वा तत्र मन्त्रोऽभिधीयते ॥

यदि उपर्युक्त रीति से राजा नहीं करेगा—तो पर्वत की चोटी, महल, शून्य स्थान, वन या खुले स्थान कहीं भी क्यों न मन्त्रणा कर ले—वह मन्त्र, खुल ही जावेगा ॥१७॥

नासुहृत्परमं मंत्रं भारतार्हति वेदितुम् ॥ १८ ॥

अपण्डितो वाऽपि सुहृत् पण्डितो वाऽप्यनात्मवान् ।

हे भारत ! अपने विचार को अपने परम सुहृद् को छोड़कर किसी से न कहे अथवा जो सुहृद् पण्डित न हो, उससे भी न कहे और अपनी जिह्वा को वश में नहीं रखने वाला पण्डित सुहृद् भी है, तो भी उससे न कहे ॥१८॥

नापरीक्ष्य महीपालः कुर्यात्सचिवमात्मनः ॥ १६॥
अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च।

राजा बिना परीक्षा किए किसी को मन्त्री न बनावे, क्योंकि मन्त्री के अधीन ही धन की प्राप्ति है और उसी के अधीन मंत्र की रक्षा है ॥१६॥

कृतानि सर्वकार्याणि यो यस्य पारिषदा विदुः ॥२०
धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तमः।
गूढ़मन्त्रस्य नृपतेस्यस्य सिद्धिरसंशयम् ॥ २१ ॥

जिस राजा के धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी कार्यों के कर लेने पर ही उसके सभासद् उन कार्यों को जाने, वही राजा सब राजाओं में श्रेष्ठ है। जो राजा अपने मन्त्र को छुपाए रखता है, उसकी निश्चय सिद्धि होती है ॥२०-२१॥

अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति।
स तेषां विपरिभ्रंशाद् भ्रश्यते जीवितादपि ॥ २२ ॥

जो राजा, अनुचित कामों को अज्ञान में फसकर करने लगता है, वह उन कार्यों से भ्रष्ट होकर अपने जीवन तक से हाथ धो बैठता है ॥२२॥

कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम्।
तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम् ॥ २३ ॥

उत्तम कर्मों का करना ही सुखकारी है। उत्तम कामों का तो नहीं करना ही पश्चात्ताप का बढ़ाने वाला है ॥२३॥

अनधीत्य यथा वेदान्न विप्रः श्राद्धमर्हति ।
एवमश्रुतषाड्गुण्यो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥ २४ ॥

वेद के पढ़े बिना ब्राह्मण, जैसे श्राद्ध का अधिकारी नहीं है—वैसे ही सन्धि, विग्रह आदि छः गुणों के तत्व को नहीं जानने वाला सभासद् राजा के मन्त्र के सुनने का अधिकारी नहीं है ॥२४॥

स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः ।
अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप ॥ २५ ॥

हे नृप ! जो राजा, समय, असमय, वृद्धि, क्षय, सन्धि, विग्रह आदि षड् गुण और अपनी शक्ति को जानता है तथा जिसने धर्माचार का तिरस्कार नहीं किया है, उस राजा के वश में पृथिवी हो जाती है ॥२५॥

अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्वाऽन्ववेक्षिणः ।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुदैव वसुन्धरा ॥ २६ ॥

जिस राजा का क्रोध और हर्ष फल लाने वाले हैं तथा जो कामों को करके उनकी स्वयं पड़ताल करता है एवं जो अपने आधीन कोश (खजाने) को रखता है, उस राजा को पृथिवी धन देने वाली होती है ॥२६॥

नाममात्रेण तुष्येतच्छत्रेण च महीपतिः ।
भृत्येभ्यो विसृजेदर्थानेकः सर्वहरो भवेत् ॥ २७ ॥

जो राजा, अपने नाम और छत्र पर सन्तोष करता है और धन को भृत्यों को अर्पण करता रहता है, वह अकेला ही राजा सब कुछ करने में समर्थ है ॥२७॥

ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्ता वेद स्त्रियं तदा।
अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजनमेव च ॥ २८ ॥

ब्राह्मण के स्वरूप को ब्राह्मण, स्त्री के स्वरूप को भर्ता, मन्त्री के स्वरूप को राजा तथा एक राजा दूसरे राजा के स्वरूप को जान सकता है ॥२८॥

न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः।
न्यग्भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद्बले सति ॥
अहताद्धि भयं तस्माज्जायते न चिरादिव ॥ २९ ॥

वध के योग्य शत्रु के पकड़ में आ जाने पर उसे छोड़ना नहीं चाहिए। यदि कोई कमज़ोरी हो, तो नीचा पड़ जावे और बल होने पर वध्य शत्रु को मार दे। यदि दुष्ट शत्रु को नहीं मारा जावेगा, तो उस से बहुत शीघ्र ही भय खड़ा हो जावेगा ॥२९॥

दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च।
नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च ॥ ३० ॥

देवता, राजा, ब्राह्मण, वृद्ध, बालक और रोगी पर आये हुए क्रोध को सदा रोकते रहना चाहिए ॥३०॥

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम्।
कीर्तिञ्च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते ॥ ३१ ॥

मूर्खों के करने योग्य, निरर्थक कलह को विद्वान मनुष्य न करे। इससे इसको कीर्ति प्राप्त होती है और यह विपत्तियों से बचा रहता है ॥३१॥

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ॥३२॥

जिसका अनुग्रह निष्फल और क्रोध भी निरर्थक है, उसको कोई भी स्वामी बनाना नहीं चाहता है। जैसे नपुंसक को स्त्रियाँ पति बनाना नहीं चाहती हैं ॥३२॥

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये ।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञोजानाति नेतरः ॥३३॥

बुद्धि, धन लाभ करने वाली नहीं है और न मूर्खता दरिद्र का ही कारण है, सैकड़ों बुद्धिमान दरिद्र और सैकड़ों मूर्ख धनवान् है। इस संसार के तत्व का जान लेना ही बुद्धिमान का काम है। मूर्ख इस संसार के अदलने बदलने के चक्करों को नहीं जान सकता है ॥३३॥

विद्योशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्च भारत ।
धनाभिजातवृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते ॥३४॥

हे भारत ! विद्या, शील, वयोवृद्ध, बुद्धि. वृद्ध, धन और कुल वृद्धों की मूर्ख, निन्दा करता रहता है ॥३४॥

अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम् ।
अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा ॥३५॥

दुराचारी, मूर्ख, निन्दक, अधार्मिक कटुभाषी और क्रोधी पर शीघ्र ही विपत्ति आती हैं ॥३५॥

अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः ।
आवर्त्तयन्ति भूतानि सम्यक् प्रणिहिता च वाक् ३६

किसी के साथ छल या विवाद न करना, दान देना, कार्य करने योग्य समय का अतिक्रमण नहीं करना और उचित रीति से वाणी का प्रयोग करना, प्राणियों के कल्याण का कारण है ॥

अविसम्वादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजुः ।
अपि संक्षीणकोशोऽपि लभते परिवारणम् ॥३७॥

व्यर्थ विवाद नहीं करने वाला, चतुर, कृतज्ञ, बुद्धिमान्, सरल प्रकृति, राजा, धन कोष से हीन होकर भी शत्रु के रोक देने में समर्थ हो जाता है ॥३७॥

धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा ।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैता समिधः श्रियः ॥३८॥

धैर्य, मन और इन्द्रियों का विजय, शौच, दया, कोमल वाणी, मित्रों से द्रोह का अभाव, ये सात बातें ऐश्वर्य के बढ़ाने वाली हैं।

असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः ।
तादृङ् नराधिपो लोके वर्जनीयो नराधिप ॥३९॥

हे नराधिप ! जो अपने भाग के पाने वाले को भाग नहीं देने वाला, दुष्टात्मा, कृतघ्न, निर्लज्ज, राजा है, उस को सब कोई छोड़ देने के योग्य मानते हैं ॥३९॥

न च रात्रौ सुखं शेते ससर्प इव वेश्मनि ।
यः कोपयति निर्दोषं सदोषाऽभ्यन्तरं जनम् ॥४०॥

जो राजा, निर्दोष या सदोष अपने भीतरी मनुष्य को कुपित कर देता है, वह सर्प वाले घर में सोने के समान रात में सुख से सो नहीं सकता है ॥४०॥

येषु दुष्टेषु दोषः स्याद्योगक्षेमस्य भारत ।
सदा प्रसादनं तेषां देवतानामिवाचरेत् ॥४१॥

हे भारत ! जिनके अप्रसन्न करने में कल्याण की हानि होती दिखाई दे, उनको सदा देवों की तरह प्रसन्न करता रहे ॥४१॥

येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च ।
ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः ॥४२॥

जो कार्य, स्त्री, प्रमादी, पतित और अनाचारी के अधीन होते हैं । उनके सिद्ध होने में संशय ही मानना चाहिए ॥४२॥

यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता ।
मज्जन्ति तेऽवशा राजन्नद्यामश्मप्लवा इव ॥४३॥

हे राजन् ! जहां स्त्री, कपटी, बालक, शासक होता है, वे परवश होकर नदी में पत्थर की नौका की तरह डूब जाते हैं ।

प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत ।
तानहं पण्डितान्मन्ये विशेषा हि प्रसंगिनः ॥४४॥

हे भारत ! जो अपने प्रयोजन (भाग) को ही चाहता है, अन्य के भाग को ग्रहण करने की इच्छा नहीं करता है ।

मैं उन पुरुषों को ही पण्डित मानता हूं। विशेष भाग को इच्छा करने वाले तो लोभी कहाते हैं ॥४४॥

यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः ॥४५॥

जिस राजा को धूर्त, चारण, भाट और वेश्या प्रशंसा करती हैं, वह मनुष्य, (राजा) जीवित नहीं माना जा सकता है ॥४५॥

हित्वा तान्परमेष्वासान् पाण्डवानमितौजसः।
आहितं भारतैश्वर्यं त्वया दुर्योधने महत् ॥४६॥

हे भारत ! तूने अत्यन्त तेजस्वी, महाधनुर्धर पाण्डवों को छोड़कर सारा महान ऐश्वर्य दुर्योधन को सौंप दिया है ॥४६॥

तं द्रक्ष्यसि परिभ्रष्टं तस्मात्त्वमचिरादिव।
ऐश्वर्यमदसंमूढं बलिं लोकत्रयादिव ॥४७॥

इति श्रीमहाभारत वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अब तुम, तीनों लोकों से बलि की तरह ऐश्वर्य के मद में मत्त दुर्योधन को ऐश्वर्य से भ्रष्ट होता हुआ देखोगे ॥४७॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत प्रजागरपर्व में विदुर वाक्य का अड़तीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



उनतालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

अनीश्वरोऽयं पुरुषो भवाभवे सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा।
धात्रा तु दिष्टस्य वशे कृतोऽयं तस्माद्वद त्वं श्रवणे धृतोऽहम्

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! यह पुरुष, जन्म मरण में सूत्र से बधीं हुई कठपुतली की तरह बंधा हुआ परतन्त्र है। विधाता ने इसको दैव (कर्मों) के वश में कर रखा है। अब तुम कुछ और सुनाओ। मैं बड़ी सावधान से सुन रहा हूं ॥१॥

विदुर उवाच—

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ।
लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च भारत ॥२॥

विदुर बोले—हे भारत! किसी वचन के कहने का समय न आने पर यदि उस वचन को बृहस्पति भी कहता है, तो उसकी बुद्धि का अज्ञान ही प्रकट नहीं होता, किन्तु वह तिरस्कार भी पाता है ॥२॥

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः।
मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः ॥३॥

कोई तो दान, कोई प्रिय भाषण तथा कोई उत्तम सम्मति देकर प्रिय होता है—परन्तु वास्तव में प्रिय तो आत्मीय जन ही है ॥३॥

द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पंडितः ।
प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह ॥४॥

सदाचारी, बुद्धिमान और विद्वान से द्वेष न करे। जो अपना प्रिय है, उसके लिए शुभ कार्य और जो दुष्ट है, उसके लिए अशुभ कार्य करे ॥४॥

उक्तं मया जातमात्रेऽपि राजन्दुर्योधनं त्यज पुत्र त्वमेकम् ।
तस्य त्यागात्पुत्रशतस्य वृद्धिरस्यात्यागात्पुत्रशतस्य नाशः

हे राजन्! मैंने तो जन्म के समय ही कहा था, कि तुम अपने इस एक पुत्र दुर्योधन का त्याग कर दो। इसके त्यागने से शतपुत्रों की वृद्धि होगी और इसके परित्याग नहीं करने से सौ पुत्रों का नाश होगा ॥५॥

न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत ।
क्षयोऽपि बहु मन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत् ॥६॥

उस वृद्धि को वृद्धि नहीं समझना चाहिए, जो वृद्धि क्षय करने वाली हो। जो क्षय वृद्धि करने वाला है, उस क्षय का भी गौरव है ॥६॥

न स क्षयो महाराज यः क्षयो वृद्धिमावहेत् ।
क्षयः स त्विह मंतव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत् ॥७॥

हे महाराज! वह क्षय कहां है? जो अन्त में वृद्धि कर दे। क्षय तो माना ही वह जावेगा, जो लाभ होने पर भी घातक हो ॥७॥

समृद्धा गुणतः केचिद्भवन्ति धनतोऽपरे ।
धनवृद्धान्गुणैर्हीनान्धृतराष्ट्र विवर्जय ॥८॥

हे धृतराष्ट्र! कोई तो गुण से बढ़ते हैं और कोई धन से बढ़े हुए माने जाते हैं, परन्तु जो धन में बढ़े हुए भी गुणों से हीन हैं—उनका आदर नहीं होना चाहिए ॥८॥

धृतराष्ट्र उवाच—

सर्वं त्वमायतीयुक्तं भाषसे प्राज्ञसम्मतम् ।
न चोत्सहे सुतं त्यक्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥९॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! तुम उत्तर काल में सामने आने वाले, प्राज्ञों से सम्मत वचन का ही कथन करते हो, परन्तु मैं क्या करूं, मुझसे अपने पुत्र छोड़े ही नहीं जाते। अब तो जिधर धर्म है, उधर का ही विजय होगा ॥९॥

विदुर उवाच—

अतीवगुणसम्पन्नो न जातु विनयान्वितः ।
सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमुपेक्षते ॥१०॥

विदुर बोले—हे राजन्! जो गुणों से सम्पन्न और विनयी है, वह प्राणियों के थोड़े भी क्लेश को नहीं सह सकता है ॥१०॥

परापवादनिरताः परदुःखोदयेषु च ।
परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः ॥११॥

जो अत्यन्त उद्धत मनुष्य हैं, वे दूसरे की निन्दा अन्य के दुःखों का उदय तथा परस्पर विरोध के लिए प्रयत्न करते रहते हैं ॥११॥

सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद्भयम् ।
अर्थादाने महान्दोषः प्रदाने च महद्भयम् ॥१२॥

जिनके दर्शन में ही दोष लगाता है, उनके साथ रहने में तो बड़ा ही भय है। उनसे धन लेने में महा दोष और देने में महा-भय खड़ा कर लेना है ॥१२॥

ये वै भेदेनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः ।
ते पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः ॥१३॥

जो अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए लोगों में फूट कराने वाले निर्लज्ज दुष्ट पुरुष हैं, वह पापी कहलाते हैं। उनका संवास भी निन्दित है ॥१३॥

युक्ताश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत् ।
निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति ॥१४॥
या चैव फलानिर्वृत्तिः सौहृदे चैव यत्सुखम् ।

जो इनके अतिरिक्त अन्य दोषों से युक्त पुरुष हैं, उनका भी साथ छोड़ देना चाहिए, क्योंकि किसी प्रकार से स्नेह में कमी आ जाने पर इन नीचों में मनुष्योचित प्रीति की भी न्यूनता हो जाती है। स्नेह में जिस सुख और फल प्राप्ति होनी चाहिए, वह भी नहीं हो पाती है ॥१४॥

यतते चापवादाय यत्नमारभते क्षये ॥ १५ ॥
अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शांतिमधिगच्छति ।

यह नीच पुरुष, निन्दा करने पर उतारू हो जाता है और पूर्व के क्षय का प्रयत्न करने लगता है। यदि किसी भूल से थोड़ा

भी अपराध हो जावे, तो इसको बदला लिए बिना चैन नहीं पड़ता है ॥१५॥

तादृशैः संगतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ॥ १६ ॥

निशम्य निपुणं बुद्ध्या विद्वान्दूराद्विवर्जयेत ।

इस तरह के नीच, हिंसक, अनुदार, पुरुषों को अपनी सूक्ष्म बुद्धि से देखकर विद्वान इन दुष्टों का संग दूर से ही छोड़ दे १६

यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम् ॥ १७ ॥

स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानंत्यमश्नुते ।

जो अपने दरिद्री, दीन, आतुर भाई का उपकार करता है, वह पुत्र और पशुओं से युक्त होकर अत्यन्त कल्याण पाता है॥१७॥

ज्ञातयो वर्द्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम् ॥१८॥

कुलवृद्धिं च राजेन्द्र तस्मात्साधु समाचार ।

जो अपना कल्याण चाहे, उसे अपने बन्धु बान्धवों की वृद्धि करनी चाहिए । हे राजेन्द्र! इस तरह तुमको भी अपने कुल वालों की वृद्धि करनी चाहिए ॥१८॥

श्रेयसा योच्यते राजन् कुर्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम् ॥

विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ ।

किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकांक्षिणः ॥ २० ॥

प्रसादं कुरु वीराणां पांडवानां विशाम्पते ।

हे राजेन्द्र! जो बान्धवों का सत्कार करता है, वह कल्याण से युक्त हो जाता है । हे भरतर्षभ! आपको तो गुणहीन बान्धवों की भी रक्षा करनी चाहिए, फिर गुणवान् तेरे अनुग्रह के अभि-

लाषी पाण्डवों की चर्चा ही क्या है। हे विशाम्पते! अब तुमको वीर पाण्डवों पर कृपा कर देना चाहिए ॥१९—२०॥

दीयन्तां ग्रामकाः केचित्तेषां वृत्त्यर्थमीश्वर ॥२१॥
एवं लोके यशः प्राप्तं भविष्यति नराधिप।

हे स्वामिन्! अब तुम उनकी वृत्ति के लिए कुछ ग्राम दे दो। हे नराधिप! इस तरह लोक में तुमको यश की प्राप्ति होगी ॥२१॥

वृद्धेन हि त्वया कार्यं पुत्राणां तात शासनम् ॥२२॥
मया चापि हितं वाच्यं विद्धि मां त्वद्धितैषिणम्।

हे तात! तुम वृद्ध हो—अपने पुत्रों पर शासन करो। मैं भी तुम से हित की बात कह रहा हूं—तुम मुझे अपना हितैषी समझो ॥२२॥

ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्त्तव्यः शुभार्थिना।
सुखानि सहभोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ ॥ २३ ॥

हे तात! कल्याण चाहने वाले मनुष्य को अपने बान्धवों से झगड़ा नहीं करना चाहिए। हे भरतर्षभ! भाई बन्धुओं के साथ तो सुख से भोजन करना उचित है ॥२४॥

सम्भोजनं संकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम्।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन ॥ २४॥

बान्धवों के साथ भोजन, वार्तालाप, परस्पर प्रीति ही करनी चाहिए—उनके साथ विरोध करना उचित नहीं है ॥२४॥

ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च।
सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च ॥ २५ ॥

जाति बन्धु ही तिराते हैं और वे ही डुबो देते हैं। जो सदाचारी बान्धव हैं, वे उद्धार कर देते हैं और जो दुराचारी हैं—वे डुबो देते हैं ॥२५॥

सुवृत्तो भव राजेन्द्र पाण्डवान्प्रति मानद।
अधर्षणीयः शत्रूणां तैर्वृतस्त्वं भविष्यसि ॥ २६ ॥

हे मान के प्रदाता! राजेन्द्र! अब आप पाण्डवों के प्रति उत्तम व्यवहार करो। तुम उन पाण्डवों से युक्त होने पर शत्रुओं के आक्रमणों से निश्चिन्त हो जाओगे ॥२६॥

श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति।
दिग्धहस्तं मृग इव स एनस्तस्य विन्दति ॥ २७ ॥

जिस लक्ष्मीवान् बान्धव को देखकर उसके अन्य बान्धव बाणधारी व्याधे से मृग के सदृश घबड़ाते हैं, तो वह लक्ष्मीवान् बन्धु, उनके पापों को प्राप्त करता है ॥२७॥

पश्चादपि नरश्रेष्ठ तव तापो भविष्यति।
तान्वा हतान्सुतान्वाऽपि श्रुत्वा तदनुचिन्तय ॥ २८ ॥

हे नरश्रेष्ठ! तुमको अपने पुत्र या पाण्डवों की मृत्यु सुनकर पीछे भी तो पछताना होगा—इससे तुम इस विषय पर अभी विचार कर लो ॥२८॥

येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा।
आदावेव न तत्कुर्यादध्रुवे जीविते सति ॥ २९ ॥

जिस काम से अन्त में खाट में पड़कर सन्तप्त होना पड़े—उसको प्रथम से ही नहीं करना चाहिए। इस अस्थायी जीवन के लिए पापकर्म करना ही अच्छा नहीं है ॥२९॥

न कश्चिन्नापनयते पुमानन्यत्र भार्गवात्।
शेषसंप्रतिपत्तिस्तु बुद्धिमत्स्वेव तिष्ठति ॥ ३० ॥

शुक्राचार्य को छोड़कर कोई पुरुष भी ऐसा नहीं है—जिससे चूक नहीं बन पड़ती हो, परन्तु आगे को सम्हल जाना ही बुद्धिमानों का काम है ॥३०॥

दुर्योधनेन यद्येतत्पापं तेषु पुरा कृतम्।
त्वया तत्कुलवृद्धेन प्रत्यानेयं नरेश्वर ॥ ३१ ॥

हे नरेश्वर! यदि दुर्योधन ने पूर्वकाल में उनके साथ अधर्म-पूर्ण व्यवहार किया, तो तुम कुल वृद्ध को उस पाप का परिमार्जन कर देना चाहिए ॥३१॥

तांस्त्वं पदे प्रतिष्ठाप्य लोके विगतकल्मषः।
भविष्यति नरश्रेष्ठ पूजनीयो मनीषिणाम् ॥ ३२ ॥

हे नरश्रेष्ठ! तुम उनको अपने स्थान पर स्थापित करके संसार में दोष रहित हो जाओगे और उत्तम पुरुषों में तुम बड़े आदरणीय माने जाओगे ॥३२॥

सुव्याहृतानि धीराणां फलतः परिचिन्त्य यः ।
अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति ॥ ३३ ॥

जो विद्वानों के कथन से होने वाले फल पर दृष्टि रखता है तथा कार्यों को करता है, वह चिरकाल तक यश का पात्र बनता है ॥३३॥

अलभ्यमुपयुक्तं हि ज्ञानं सुकुशलैरपि ।
उपलभ्यं चाविदितं विदितं चाननुष्ठितम् ॥ ३४ ॥
पापोदयफलं विद्वान् यो नारभति वर्द्धते ॥ ३५ ॥

अच्छे २ चतुर पुरुषों से भी ज्ञान का अच्छी तरह उपयोग (प्राप्ति) नहीं होता है। यदि ज्ञान की प्राप्ति भी कर ली, तो उनका तत्व नहीं समझते और तत्व जानकर भी उसका व्यवहार नहीं हैं। जो विद्वान् पाप के फल से भरा हुआ कर्म है, उसका आरम्भ न करके ही वृद्धि को प्राप्त करता है ॥३४-३५॥

यस्तु पूर्वकृतं पापमविमृश्यानुवर्तते ॥ ३६ ॥
अगाधपंके दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते ।

जो मनुष्य पूर्व में किए हुए अनुचित कर्म पर विचार न करके उसी हठ को पकड़े रहता है, वह मूर्ख गहरी कीचड़ वाले जलाशय में फंस जाता है ॥३६॥

मंत्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत् ॥ ३७ ॥
अर्थसंततिकामश्च रक्षेदेतानि नित्यशः ।

बुद्धिमान् राजा, मन्त्र भेद के इन छः मार्गों को समझ ले। अपने स्वार्थ को सिद्धि के विचार से इन छः मार्गों की सदा रक्षा करें ॥३७॥

मदं स्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसंभवम् ॥ ३८ ॥
दुष्टामात्येषु विश्रंभं दूताच्चाकुशलादपि ।
द्वाराण्येतानि यो ज्ञात्वा संवृणोति सदा नृप ॥ ३९॥
त्रिवर्गाचरणे युक्तः स शत्रूनधितिष्ठति ।

मद, स्वप्न, अज्ञान. अपने शरीर में होने वाले विकार, दुष्ट मन्त्रियों पर विश्वास, अकुशल दूत, ये छः मार्ग हैं। हे नृप! इन छः द्वारों को जानकर जो इनको सदा ढकता रहता है। वही अर्थ, धर्म और काम की सिद्धि पाता है और वही शत्रुओं पर अधिकार जमा लेता है ॥३८-३९॥

न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य वा ॥ ४० ॥
धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि ।

शास्त्र का अनुशीलन किए बिना तथा वृद्धों के बिना सेवन किए, बृहस्पति के समान पुरुष भी धर्म और राजनीति के तत्वों को स्वयं नहीं जान पाते है ॥४०॥

नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति ॥ ४१ ॥
अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम् ।

समुद्र में गिरा हुआ नष्ट हो जाता है,नहीं सुनने वाले से कही हुई बात नष्ट हो जाती है, आत्म बल-हीन पुरुष में शास्त्र ज्ञान नष्ट हो जाता है और भस्म में हवन निष्फल हो जाता है ॥४१॥

मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्ध्या संपाद्य चासकृत् ॥४२
श्रुत्वा दृष्ट्वाऽथ विज्ञाय प्राज्ञैर्मैत्रीं समाचरेत् ।

बुद्धिमान् पुरुष, अपनी मति से परीक्षा करके और बार २ बुद्धि से पड़ताल करके तथा सुन देख और समझकर बुद्धिमानों के साथ मैत्री करे ॥४२॥

अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः ॥ ४३ ॥
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ।

विनय अपयश, पराक्रम, विपत्ति, क्षमा क्रोध और आचार बुरे लक्षणों का नाश कर देता है ॥४३॥

परिच्छदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया ॥ ४४ ॥
परीक्षेत कुलं राजन् भोजनाच्छादनेन च ।

हे राजन ! सम्बन्धी, सहचर, आदि परिच्छद, माता, घर का ढंग, कर्म, भोजन, वस्त्र आदि से बुद्धिमान् मनुष्य, कुल की परीक्षा करे ॥४४॥

उपस्थितस्य कामस्य प्रतिवादो न विद्यते ॥४५॥
अपि निर्मुक्तदेहस्य कामरक्तस्य किं पुनः ।

कामनाओं की प्राप्ति होने पर कोई विरक्त मनुष्य भी उसका त्याग नहीं कर सकता है, फिर कामी मनुष्य का तो कहना ही क्या है ॥४५॥

प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम् ॥४६॥
मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत् ।

विद्वानों के सेवक, वैद्य, धार्मिक, देखने में उत्तम, मित्रों से युक्त, श्रेष्ठ वाक्य बोलने वाले, मित्र की सब तरह से सहायता करनी चाहिए ॥४६॥

दुष्कुलीनोऽकुलीनो वा मर्यादां यो न लङ्घयेत् ॥४७॥
धर्मापेक्षी मृदुर्ह्रीमान् स कुलीनशताद्वरः ।

जो दुष्कुलीन या अकुलीन मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता तथा धर्म की अपेक्षा रखने वाला, कोमल प्रकृति, लज्जाशील पुरुष है, वह सैकड़ों उत्तम कुलीनों से उत्तम है ॥४७॥

ययोश्चित्तेन वा चित्तं निभृतं निभृतेन वा ॥४८॥
समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यति ।

जिन दो व्यक्तियों का चित्त से चित्त, स्वभाव से स्वभाव, और बुद्धि से बुद्धि, मिल जाती है, उनकी मैत्री कभी नष्ट नहीं होती है ॥४८॥

दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव ॥४९॥
विवर्जयीत मेधावी तस्मिन्मैत्री प्रणश्यति ।

जो दुर्बुद्धि, ज्ञानहीन, तृण से ढ़के हुए कूप के तुल्य हैं, बुद्धिमान मनुष्य, उसका त्याग कर दे—क्योंकि उससे की हुई मैत्री नष्ट हो जाती है ॥४९॥

अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च ॥५०॥
तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद् बुधः ।

अहंकारी, मूर्ख, अनुचित साहस करने वाला तथा धर्महीन पुरुष से बुद्धिमान मनुष्य मैत्री न करे ॥५०॥

कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम् ॥५१॥
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते ।

जो कृतज्ञ, धार्मिक, सत्यवादी, उदार, दृढ़ भक्त, जितेन्द्रिय, धार्मिक, मर्यादा में चलने वाला है, ऐसे मित्र को कभी नहीं छोड़ना चाहिए ॥५१॥

इंद्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनाऽपि विशिष्यते ॥५२॥
अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद्दैवतान्यपि ।

इन्द्रियों का रोक लेना मृत्यु से भी कठिन है। यदि इन इन्द्रियों को बिल्कुल बे लगाम छोड़ दिया जावे, तो वे देवों को भी व्याकुल कर देती हैं ॥ ५२॥

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः ॥५३॥
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना ।

सब प्राणियों से नम्र व्यवहार, अनिन्दा, क्षमा, धैर्य और मित्रों का अपमान न करना, आयु के बढ़ाने वाले माने गए हैं ॥

अपनीतं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते ॥५४॥
मतिमास्थाय सुदृढां तदकापुरुषव्रतम् ।

बिगड़े कार्य को जो नीति पूर्वक दृढ़ बुद्धि का आश्रय लेकर बनाना चाहता है, वही वीर पुरुष कहाता है और इस तरह कार्य की सिद्धि करना ही वीर पुरुष का व्रत है ॥५५ ॥

आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तदात्वे दृढनिश्चयः ॥५५॥
अतीते कार्यशेषज्ञो नरोऽर्थैर्न प्रहीयते ।

भविष्य काल में आने वाले विघ्नों का घातक, वर्तमान काल में अपने कार्य के पूरा करने का दृढ़ निश्चयी, भूतकाल में कार्य के शेष का विचार करने वाला ही अपनी अर्थ सिद्धि से च्युत नहीं होता है ॥५५॥

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते ॥५६॥
तदेवापहरत्येनं तस्मात्कल्याणमाचरेत् ।

मनुष्य, मन, वाणी और कर्म से जिस बातका सदा आचरण करता रहता है, वही विचार उसको अपनी ओर खैंच लेता है, इससे सदा कल्याणकारी शुभ विचार करने चाहिए ॥५६॥

मंगलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम् ॥५७॥
भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्णदर्शनम् ।

माङ्गलिक कार्य करना, कर्मशील, शास्त्राभ्यास, उद्योग, सरलता और विद्वानों का सत्संग, ये सदा कल्याण के करने वाले हैं ॥५७॥

अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च ॥५८॥
महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानन्त्यमश्नुते ।

किसी उद्योग से विरक्त नहीं हो जाना ही लक्ष्मी, लाभ और शुभ का मूल कारण है। जो अपने उद्योग में विघ्न आने पर उदासीन नहीं होता है, वही अत्यन्त सुख को प्राप्त करता है।

नातः श्रीमत्तरं किंचिदन्यत्पथ्यतमं मतम् ॥५९॥
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा ।

हे तात ! इससे अधिक कल्याणकारी, और हितकारी वस्तु नहीं है, जो शक्तिशाली होकर सदा क्षमा करते रहना है ॥५९॥

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात् ।
अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता ॥६०॥

अशक्त को तो सब पर क्षमा करनी ही पड़ती है, परन्तु शक्तिमान्, धर्म सोचकर ही क्षमा करता है। जो लाभ और हानि को समान समझता है, वही महात्मा क्षमा कर सकता है ॥६०॥

यत्सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते ।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत् ॥६१॥

जिन सुखों के सेवन करने से धर्म और अर्थ से मनुष्य हीन नहीं होता है, उसका इच्छानुसार सेवन कर सकता है, परन्तु मूढ़ों की तरह विषयाभिलाषा में अनुरक्त न होना चाहिये ॥६१॥

दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च ।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः ॥६२॥

दुःखार्त्त, प्रमत्त, नास्तिक, आलसी, अनुदार को लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती है और न उत्साह हीन पुरुषों को लक्ष्मी मिलती है॥६२॥

आर्जवेन नरं युक्तमार्जवात्सव्यपत्रपम् ।
अशक्तं मन्यमानास्ते धर्षयन्ति कुबुद्धयः ॥६३॥

सरलता से युक्त तथा सरलता से लज्जाशील मनुष्य को अशक्त मानकर दुष्ट पुरुष, इनको क्लेशित या अपमानित करते रहते हैं ॥६३॥

अत्यार्यमतिदातारं मतिशूरमतिव्रतम् ।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥६४॥

अत्यन्त श्रेष्ठ, दानी, शूरवीर, दृढ़ प्रतिज्ञ, बुद्धि के अभिमानी पुरुष के पास भय से लक्ष्मी जाती ही नहीं है ॥६४॥

न चातिगुणवत्स्वेषा नात्यन्तं निर्गुणेषु च ।
नैषा गुणान्कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते ।
उन्मत्ता गौरिवान्धा श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते ॥६५

यह लक्ष्मी अत्यन्त गुणवान् और अत्यन्त निर्गुणों के पास नहीं जाती है । न तो यह गुणों पर लुब्ध होती है और न यह निरगुणता को ही पसन्द करती है । यह अन्धी लक्ष्मी तो उन्मत्त अन्धी गौ के समान कहीं पर ही स्थित हो जाती है ॥६५॥

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम् ।
रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम् ॥६६॥

वेदों को पढ़ने से यज्ञ याग आदिका ज्ञान होता है । शास्त्र ज्ञान से शील और सदाचार प्राप्त होना फल है । स्त्री ग्रहण करने का सम्भोग सुख और पुत्र प्राप्ति फल है तथा धन का दान और भोग फल है ॥६६॥

अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात् ॥६७॥

अधर्म से उपार्जित किए हुए धन से जो पारलौकिक क्रियाएँ की जावेंगी—उनका परलोक में फल नहीं मिलेगा, क्योंकि ये तो अधर्मोपार्जित धन से की गई हैं ॥६७॥

कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे ।
उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्ववतां भयम् ॥६८॥

महावन या विकट वनप्रदेश, कठिन विपत्ति, घबराहट के समय तथा शस्त्र उठा लेने पर भी मनस्वी पुरुषों को कोई भय नहीं होता है ॥६८॥

उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः ।
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु ॥६९॥

उद्योग, जितेन्द्रियता, चतुराई, अप्रमाद, धैर्य, स्मृति, कार्य का आरम्भ ही उन्नति का मूल है ॥६९॥

तपोबलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम् ।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम् ॥७०॥

तपस्वियों का तप, ब्रह्मज्ञानियों का ब्रह्म, दुष्टों का हिंसा और क्षमाशीलों का क्षमा बल है ॥७०॥

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥७१॥

जल, मूल, फल, दूध, घृत रूप हवि, ब्राह्मणों की इच्छापूर्ति गुरु का वचन, औषध—ये आठ व्रत के घातक नहीं हैं ॥७१॥

न तत्परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः
संग्रहेणैष धर्मः स्यात्कामादन्यः प्रवर्तते ७२

जो अपनी आत्मा के प्रतिकूल हो—वह अन्य से नहीं करना चाहिए, संक्षेप से यही धर्म का लक्षण कहा है अन्य धर्म तो काम के अनुसार प्रवृत्त होते रहते हैं ॥७ ॥

अक्रोधेन जयेत् क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्
जयेत्कदर्यं दानेन जयेत्सत्येन चानृतम् ॥७३॥

क्रोध छोड़कर अन्य के क्रोध को जीते, असाधु पुरुष को साधु आचार से विजय करे। कंजूस को दान और सत्य से झूंठ को जीत लेवे ॥७३॥

स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरो चण्डे पुरुषमानिनि ।
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके॥७४॥

स्त्रियों में धूर्तता करने वाले, डरपोक, क्रोधी, अहंकारी पुरुष, चोर, कृतघ्न और नास्तिक का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए ॥७४॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि संप्रवर्धंते कीर्तिरायुर्यशो बलम् ॥७५॥

जो प्रणाम में तत्पर और नित्य वृद्धों का सेवक है, उसके आयु, कीर्ति, यश और बल ये चारों बढ़ जाते हैं ॥७५॥

अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा ।
अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥७६॥

जो धन अत्यन्त क्लेश, धर्म के अतिक्रमण या शत्रु के प्रणिपात से प्राप्त हो, उस धन के ग्रहण करने की मनुष्य कभी अभिलाषा न करे ॥७६॥

अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम् ।
निराहाराःप्रजाः शोच्याःशोच्यं राज्यमराजकम्॥७७॥

विद्याहीन पुरुष और बिना सन्तान मैथुन, सोचने के योग्य है, इस तरह भूखी मरती हुई प्रजा और उपद्रव वाले राजा की चिन्ता करनी चाहिए ॥७७॥

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा ।
असंभोगो जरा स्त्रीणां वाक् शल्यं मनसो जरा॥७८॥

देहधारियों को मार्ग चलना जरावस्था है, पर्वतों को जल प्रवाह जरा है । स्त्रियों को सम्भोग प्राप्त नहीं होने की चिन्ता जरावस्था है और मन का बुढ़ापा मर्मभेदी वचन हैं ॥७८॥

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम् ।
मलं पृथिव्या वाह्लीकः पुरुषस्यानृतं मलम् ॥७९॥
कौतुहलमला साध्वी विप्रवासमलाः स्त्रियः ॥८०॥
सुवर्णस्य मलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु ।
ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम् ॥८१॥

अभ्यास नहीं करना वेद का, नियमशील नहीं रहना ब्राह्मण का, बाह्लीक देश पृथिवी का, मिथ्या भाषण मनुष्य का, अन्य से परिहास करना साध्वी स्त्री का, पति का विदेश रहना कामिनी का, चान्दी सुवर्ण का, रांग चांदी का, शीसा रांग का और लोहा शीशे का मल माना गया है ॥७६ ८१॥

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत्स्त्रियः ।
नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत् ॥८२॥

सोने से निद्रा की, कामोपभोग से स्त्री की, इन्धन से अग्नि की तृप्ति नहीं होती है और न सुरापान से सुरा पीने वाले का मन तृप्त होता है ॥८२॥

यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः ।
अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम् ॥८३॥

जिसने दान से मित्र, युद्ध में पराक्रम दिखाकर शत्रु, अन्नपान प्रदान करके भार्या जीत ली है, उसका ही जीवन सफल है ॥८३

सहस्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा ।
धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथञ्चन्न जीव्यते ॥८४॥

जिनके पास हजार रुपये हैं, वे भी जीते हैं और सौ रुपये वाले भी जीते ही हैं। हे धृतराष्ट्र! तुम लालच को छोड़ दो, यह हो नहीं सकता है, कि कुछ कम द्रव्य होने पर मनुष्य, जीवित ही नहीं रह सकता हो ॥८४॥

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥८५॥

पृथिवी पर जितने चावल, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्री हैं, ये सब तृष्णा वाले की पूर्ति करने को पर्याप्त नहीं है, यह विचार कर विद्वान, तृष्णा के चक्कर में नहीं पड़ता है ॥८५॥

राजन्भूयो ब्रवीमि त्वां पुत्रेषु सममाचर ।
समता यदि ते राजन् स्वेषु पाण्डुसुतेषु वा ॥८६॥
इति श्रीमहाभारते वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि
विदुरहितवाक्ये एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

हे राजन ! यदि आपकी अपने और पाण्डु के पुत्रों में समान दृष्टि है, तो हम आप से फिर कह देते हैं, कि आप उनके साथ समान ही व्यवहार करें ॥८६॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत प्रजागरपर्व में विदुर हित वाक्य का उनतालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

चालीसवां अध्याय

विदुर उवाच—

योऽभ्यर्चितः सद्भिरसज्जमानः करोत्यर्थं शक्तिमहापयित्वा
क्षिप्रं यशस्तंसमुपैति सन्तमलं प्रसन्ना हि सुखाय सन्तः॥१॥

विदुर ने कहा—हे राजन् ! सज्जनों से प्रशंसा का पात्र विषयों में अलिप्त, जो मनुष्य, अपनी शक्ति को नहीं छोड़कर

काम को करता रहता है, उन सज्जनों को बहुत शीघ्र यश प्राप्त हो जाता है। जब सज्जन प्रसन्न होते हैं; तो वे महात्मा संसार के कल्याण करने के लिए सर्वथा समर्थ हो जाते हैं ॥१॥

महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं यः सन्त्यजत्यनपाकृष्ट एव।
सुखं सुदुःखान्यवमुच्य शेते जीर्णां त्वचं सर्प इवावमुच्य।

जो विपद् ग्रस्त महात्मा, अधर्म से युक्त अत्यन्त स्वार्थ सिद्धि को भी नहीं करता है, वह दुःखों से पार होकर जीर्ण कांचली को छोड़कर सुख से विचरने वाले सर्प के समान सुखी हो जाता है ॥२॥

अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥३॥

छल कपट से उन्नति करना, राजा से किसी की चुगली करना, गुरु की निन्दा - ये ब्रह्महत्या के समान पाप माने गए हैं ॥३॥

असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः।
अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः ॥४॥

किसी की निन्दा एक दम मृत्यु है, अधिक विवाद, लक्ष्मी का नाश है। गुरु के उपदेश को न सुनना, शीघ्रता और आत्म-प्रशंसा—ये विद्या के तीन शत्रु हैं ॥४॥

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च ॥५॥
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः।

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम् ।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम् ॥६॥

आलस्य; मद, मोह, चपलता, गोष्ठी, जड़ता, अभिमान, अदान—ये सात विद्यार्थियों के दोष माने गए हैं। सुखार्थी को विद्या और विद्यार्थी को सुख नहीं है। जो सुखार्थी हो, वह विद्या की अभिलाषा और विद्यार्थी सुख की अभिलाषा का परित्याग कर दे ॥५-६॥

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।
नांतकःसर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥७॥

काष्ठों से अग्नि, नदियों से समुद्र, सब प्राणियों से काल और पुरुषों से कामिनी सन्तुष्ट नहीं होती हैं ॥७॥

आशाधृतिहन्तिसमृद्धिमन्तकः क्रोधःश्रियंहन्तियशःकदर्यता
अपालनं हन्ति पशूंश्च राजन्नेकःक्रुद्धो ब्राह्मणो हन्तिराष्ट्रम्

हे राजन् ! लालसा धैर्य को, काल समृद्धि को, क्रोध लक्ष्मी को, कायरता यश को, अपालन, पशु को और क्रुद्ध ब्राह्मण, राष्ट्र को नष्ट कर देता है ॥८॥

अजाश्च कांस्यं रजतं च नित्यं मध्वाकर्षः शकुनिः श्रोत्रियश्च
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीन एतानि ते सन्तु गृहे सदैव ॥९॥

अजादि पशु, कांसी चाँदी के पात्र, मिष्टान्न, पक्षी, वेदपाठी, वृद्ध बन्धु, विपद् ग्रस्त कुलीन आपके घर में सदा निवास करते रहें ॥९॥

अजोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी ।
विषमौदुंबरं शंखः स्वर्णनाभोऽथ रोचना ॥१०॥
गृहे स्थापयितव्यानि धन्यानि मनुरब्रवीत् ।
देवब्राह्मणपूजार्थमतीथीनां च भारत ॥११॥

अजा, गाय, बैल, चन्दन, वीणा, शीशा, शहद, घृत, लोहा, तांबा, शंख, शालग्राम, गोरोचन और इन उत्तम वस्तुओं को घर में रखना चाहिए—ऐसा मनु जी ने कहा है। हे भारत ! इन वस्तुओं की देवता, अतिथि और ब्राह्मण की पूजा के लिए आवश्यकता होती है ॥१०—११॥

इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम् ।
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः

हे तात ! मैं आप से सर्वोत्तम पुण्यजनक एक विशेष बात कह देता हूं। किसी काम, भय, लोभ तथा प्राणों का भय के आ जाने पर भी धर्म को कभी न छोड़े ॥१२॥

नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवोनित्योहेतुरस्य त्वनित्यः
त्यक्त्वानित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये संतुष्य त्वं तोषपरोहिलाभः

धर्म नित्य है, सुख दुःख अनित्य हैं, जीव नित्य है, परन्तु इसका कारण अविद्या अनित्य है। तुम अनित्य को छोड़कर नित्य वस्तु से प्रेम करो। इस प्रकार प्रसन्न रहो, प्रसन्न रहना ही बड़ा लाभ है ॥१३॥

महाबलान्पश्य महानुभावान् प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम्
राज्यानि हित्वा विपुलांश्चभोगान् गतान्नरेंद्रान्वशमन्तकस्य

हे राजन्! आप, महाबली, महानुभाव, धन धान्य से पूर्ण भूमि का शासन करके और विपुल भोग तथा राज्य सुखों को छोड़कर काल के वश में हुए अनेक राजाओं को देखो॥१४॥

मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति
तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्ति चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति

हे राजन्! मनुष्य, दुःख दायी, मृत पुत्र को घर से बाहर निकाल कर श्मशान में ले जाते हैं। ये इसके लिए बाल खोल कर रोते भी जाते हैं और काष्ठ की तरह अग्नि में भी डाल देते हैं॥१५॥

अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुंक्ते वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून्
द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः

मरे हुए मनुष्य का धन कोई भोगता है और मनुष्य के माँस आदि को पक्षी या अग्नि चाट जाते हैं। मनुष्य तो केवल पाप और पुण्य इन दोनों से लिप्त होकर अकेला ही परलोक को जाता है॥१६॥

उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातयो सुहृदः सुताः।
अपुष्प।नफलान् वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः॥१७॥

हे तात! जैसे पुष्प और फल से हीन वृक्ष को पक्षी छोड़ जाते हैं, वैसे ही बान्धव, मित्र, पुत्रादि इस मृतक को छोड़कर लौट आते हैं॥१७॥

अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयं कृतम् ।
तस्मात्तु पुरुषो यत्नाद्धर्मं संचिनुयाच्छनैः ॥१८॥

चिता की अग्नि में डाले हुए पुरुष के पीछे उसके किए हुए कर्म जाते हैं। यही कारण है, कि पुरुषों को धीरे २ धर्म का संग्रह करना चाहिए ॥१८॥

अस्माल्लोकादूर्ध्वममुष्य चाधो महत्तमस्तिष्ठति ह्यंधकारम् ।
तद्वै महामोहनमिन्द्रियाणां बुद्ध्यस्व मा त्वां प्रलभेत राजन्

हे राजन्! इस लोक के ऊपर नीचे महाघोर अन्धकार है जो इन्द्रियों को मोहित करने वाला है। तुम इसको समझ लो, कि कहीं तुमको इस अन्धकार की प्राप्ति न हो जावे ॥१९॥

इदं वचः शक्ष्यसि चेद्यथावन्निशम्य सर्वं प्रतिपत्तुमेव ।
यशः परं प्राप्स्यसि जीवलोके भयं न चामुत्र न चेह तेऽस्ति

यदि तुम मेरे वचनों को सुनकर इनका ठीक २ तत्व जानकर व्यवहार करोगे, तो तुमको संसार में बड़ा यश प्राप्त होगा और इस लोक तथा परलोक में कोई भय नहीं रहेगा ॥२०॥

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था सत्योदया धृतिकूला दयोर्मिः
तस्यां स्नातःपूयतेपुण्यकर्मा पुण्योह्यात्मानित्यमला एव ॥

हे भारत! आत्मा नदी है, जिसके पुण्यकार्य तीर्थ, सत्य, उत्पत्ति का स्थान, धैर्य तट, दया लहरें हैं। पुण्यात्मा मनुष्य, इस में स्नान करने से पवित्र हो जाता है। आत्मा स्वयं पवित्र और माया रहित है ॥२१॥

कामक्रोधग्राहवतीं पंचेन्द्रियजलां नदीम् ।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि सन्तर ॥२३॥

हे राजन् ! काम क्रोध के ग्राहों से पूर्ण, पांच इन्द्रियों के जल से समन्वित, नदी को धैर्य युक्त नौका का आश्रय लेकर इस आवागमन के चक्र रूप दुर्ग संसार से पार हो जाओ ॥२३॥

प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं विद्यावृद्धं वयसा चापि वृद्धम् ।
कार्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य यः सम्पृच्छेन्न समुह्येत्कदाचित् ॥

बुद्धि, धर्म, विद्या और वय में वृद्ध अपने बान्धवों को कार्य अकार्य की उलझन के समय आदर-पूर्वक प्रसन्न करके उनसे जो पूछता रहता है, वह कभी विपत्ति पड़ने पर मोहित नहीं होता है।

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा ।
चक्षुः श्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा ॥२४॥

धैर्य से लिङ्गेन्द्रिय और उदर, नेत्रों से हाथ और पैर, मन से आंख और कान तथा कर्म से मन और वाणी की रक्षा करे।

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी
सत्यं ब्रुवन् गुरवे कर्म कुर्वन्न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात्

जो ब्राह्मण, नित्य स्नान, संध्या, तर्पण, यज्ञोपवीत धारण, वेदाध्ययन करता है और पतित अन्न का ग्रहण नहीं करता तथा सत्य भाषण करता हुआ गुरु की सेवा करता है; वह ब्राह्मण ब्रह्मलोक की प्राप्ति से वञ्चित नहीं होता है ॥२५॥

अधीत्यवेदान्परिसंस्तीर्यचाग्नीनिष्ट्वायज्ञैः पालयित्वाप्रजाश्च
गोब्राह्मणार्थंशस्त्रपूतान्तरात्माहतःसंग्रामेक्षत्रियः स्वर्गमेति

जो वेदों को पढ़कर और अग्नि को प्रज्वलित करके एवं उसमें यज्ञ सम्पादन करके प्रजा का पालन करता है और गो ब्राह्मणों के निमित्त शस्त्राघात से अपने आपको पवित्र कर लेता है, वह मरा हुआ क्षत्रिय स्वर्ग को जाता है ॥२६॥

वैश्योऽधीत्यब्राह्मणान्क्षत्रियांश्चधनैःकालेसंविभज्याश्रितांश्च
त्रेतापूतं धूममाघ्राय पुण्यं प्रेत्य स्वर्गे दिव्यसुखानि भुंक्ते ॥

वैश्य भी वेदादि का अध्ययन करके ब्राह्मण क्षत्रिय के निमित्त अपने धन को अर्पण करे और अपने आश्रित सेवकों को समय पर धन देता रहे तथा त्रेताग्नि से पवित्र धूम को ग्रहण करे, वह मर कर स्वर्ग में दिव्य सुखों को भोगता है ॥२७॥

ब्रह्मक्षत्रं वैश्यवर्णं च शूद्रः क्रमेणैतान्न्यायतः पूजयानः ।
तुष्टेष्वेतेष्वव्यथो दग्धपापस्त्यक्त्वा देहं स्वर्गसुखानि भुंक्ते

शूद्र, ब्रह्म, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण की न्यायानुसार सेवा करने वाला होना चाहिए। यदि ये चारों वर्ण इसकी सेवा से सन्तुष्ट हो जाते हैं, तो इसके पाप दग्ध हो जाते हैं और यह सब क्लेशों से छुटकारा पा लेता है। जब यह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, तो स्वर्ग-सुखों को प्राप्त करता है ॥२८॥

चातुर्वर्ण्यस्यैष धर्मस्तवोक्तो हेतुं चानुब्रुवतो मे निबोध ।
क्षात्राद्धर्माद्धीयते पांडुपुत्रस्तं त्वं राजन् राजधर्मे नियुंक्ष्व

हे राजन ! मैंने यह तुम से चारों वर्णों के धर्मों का निरूपण किया है । अब यह सब कुछ कहते हुए मुझसे इसका कारण सुनो । पाण्डु-पुत्र, युधिष्ठिर क्षात्र धर्म राज्य से वियुक्त है, तुम इनको राजधर्म में नियुक्त करो ॥२९॥

धृतराष्ट्र उवाच—

एवमेतद्यथा त्वं मामनुशाससि नित्यदा ।
ममापि च मतिः सौम्य भवत्येवं यथाऽऽत्थ माम् ॥३०॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सौम्य ! जैसा तुम कह रहे हो-ऐसा ही है । जैसा तुमने कहा है-ऐसा ही मुझे जचता है ॥३०॥

सा तु बुद्धिः कृताऽप्येवं पांडवान्प्रति मे सदा ।
दुर्योधनं समासाद्य पुनर्विपरिवर्तते ॥३१॥

मैंने पाण्डवों के विषय में यह सब कुछ तुम्हारे कथन के अनुसार कई बार निश्चय किया है, परन्तु दुर्योधन के मिलते ही सब कुछ बदल जाता है ॥३१॥

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं भूतेन केनचित् ।
दिष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ॥३२॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

कोई भी प्राणी दैव का उल्लङ्घन नहीं कर सकता है । मैं तो दैव को प्रधान मानता हूं, पुरुषार्थ तो निरर्थक ही है ॥३२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत प्रजागरपर्व में विदुर वाक्य का चालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

अथ सनत्सुजातपर्व

इकतालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

अनुक्तं यदि ते किंचिद्वाचा विदुर विद्यते ।
तन्मे शुश्रूषतो ब्रूहि विचित्राणि हि भाषसे ॥१॥

धृतराष्ट्र कहने लगा—हे विदुर! अब यदि तुम्हारा कुछ कथन शेष है, तो मैं सुनना चाहता हूं; तुम बड़ा ही विचित्र कहते हो, कुछ और सुनाओ ॥१॥

विदुर उवाच—

धृतराष्ट्र कुमारो वै यः पुराणः सनातनः ।
सनत्सुजातः प्रोवाच मृत्युर्नास्तीति भारत ॥२॥

विदुर ने कहा—हे भरतवंशोत्पन्न! धृतराष्ट्र! प्राचीन सनातन कुमार सनत्सुजात ने कहा, कि संसार में मृत्यु कोई वस्तु नहीं है।

स ते गुह्यान्प्रकाशांश्च सर्वान् हृदयसंश्रयान् ।
प्रवक्ष्यति महाराज सर्व बुद्धिमतां वरः ॥३॥

हे महाराज! वे ही हृदय में वर्तमान, सारे गुप्त और खुले भेदों को आप पर प्रकट करेंगे, क्योंकि वे सब बुद्धिमानों में श्रेष्ठ है॥३॥

धृतराष्ट्र उवाच—

किं त्वं न वेद तद्भूयो यन्मे ब्रूयात्सनातनः ।
त्वमेव विदुर ब्रूहि प्रज्ञाशेषोऽस्ति चेत्तव ॥४॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! क्या तुम नहीं जानते हो? जो आगे सनातन कुमार मुझ से कहेगा। यदि तुम्हारी बुद्धि में अन्य कुछ शेष है, तो तुम ही सुनाइए ॥४॥

विदुर उवाच—

शूद्रयोनावहं जातो नातोऽन्यद्वक्तुमुत्सहे ।
कुमारस्य तु या बुद्धिर्वेद तां शाश्वतीमहम् ॥५॥

विदुर ने कहा—मैं शूद्रा स्त्री में उत्पन्न हुआ हूँ, इससे आगे कुछ नहीं कह सकता हूँ। सनातन कुमार में जो उत्तम बुद्धि है, मैं उसको जानता हूँ ॥५॥

ब्राह्मीं हि योनिमापन्नः सुगुह्यमपि यो वदेत् ।
न तेन गर्ह्यो देवानां तस्मादेतद्ब्रवीमि ते ॥६॥

वह ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न है, इससे सुगुप्त विषयों का भी विवेचन कर सकता है। वह देवों से भी किसी प्रकार कम नहीं है, इससे मैं कहता हूँ ॥६॥

धृतराष्ट्र उवाच—

ब्रवीहि विदुर त्वं मे पुराणं तं सनातनम् ।
कथमेतेन देहेन स्यादिहैव समागमः ॥७॥

धृतराष्ट्र बोला—हे विदुर ! तुम पुराण, सनातन, सनत्सुजात के इसी देह से मेरा समागम हो जावे, ऐसा उपाय बताओ ॥७॥

वैशम्पायन उवाच—

चिन्तयामास विदुरस्तमृषिं संशितव्रतम् ।
स च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा दर्शयामास भारत ॥८॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! विदुर ने प्रशंसनीय व्रत वाले सनत्सुजात का स्मरण किया। उसने विदुर का स्मरण जान के वहीं दर्शन दिया ॥८॥

स चैनं प्रतिजग्राह विधिदृष्टेन कर्मणा ।
सुखोपविष्टं विश्रान्तमथैनं विदुरोऽब्रवीत् ॥९॥

विदुर ने शास्त्रीय विधि के अनुसार इसका स्वागत किया। जब यह सुख से बैठ गया और इसने कुछ विश्राम ले लिया, तो विदुर ने कहा ॥९॥

भगवन् संशयः कश्चिद्धृतराष्ट्रस्य मानसे ।
यो न शक्यो मया वक्तुं त्वमस्मै वक्तुमर्हसि ॥१०॥

हे भगवन् ! राजा धृतराष्ट्र के मन में कुछ संशय है। इसका निवारण मैं नहीं कर सकता हूँ। हे भगवन् ! इसको आप ही निवृत्त कर सकते हैं ॥१०॥

यं श्रुत्वाऽयं मनुष्येन्द्रः सर्वदुःखातिगो भवेत् ।
लाभालाभौ प्रियद्वेष्यौ यथैनं न जरान्तकौ ॥११॥

विषहेरन्नभयामर्षौ क्षुत्पिपासे मदोद्भवौ ।
अरतिश्चैव तन्द्री च कामक्रोधौ क्षयोदयौ ॥१२॥

इति श्रीमहाभारत वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरकृतसनत्सुजातप्रार्थने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

तुम्हारे उपदेश को सुनकर राजा धृतराष्ट्र, लाभालाभ, प्रिय अप्रिय, जरा मृत्यु, भय, क्रोध, भूख, प्यास, मद, अहंकार, चिन्ता, आलस्य, काम, क्रोध, अवनति, उन्नति सबको सह लेगा तथा सब प्रकार क्लेशों को कुछ नहीं गिनेगा ॥११-१२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत प्रजागरपर्व में विदुर की सनत्सुजात से प्रार्थना करने का इकतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।



बयालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी संपूज्य वाक्यं विदुरेरितं तत् ।
सनत्सुजातं रहिते महात्मा पप्रच्छ बुद्धिं परमां बुभूषन् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—बुद्धिमान महात्मा धृतराष्ट्र ने विदुर के कहे हुए वाक्य का अनुमोदन करके और अपनी बुद्धि को बढ़ाने की इच्छा से सनत्सुजात से पूछा ॥१॥

धृतराष्ट्र उवाच—

सनत्सुजात यदिदं शृणोमि न मृत्युरस्तीति तव प्रवादम्
देवासुरा ह्याचरन्ब्रह्मचर्यममृत्यवे तत्कतरन्नु सत्यम् ॥२॥

धृतराष्ट्र बोला—हे सनत्सुजात ! मैंने सुना है, कि आप यह कहते हैं, कि मृत्यु कोई पदार्थ नहीं है। देव और असुरों ने मृत्यु के जीतने को ब्रह्मचर्य का आचरण किया—इसमें कौनसा सत्य है ॥२॥

सनत्सुजात उवाच—

अपृच्छः कर्मणा यच्च मृत्युर्नास्तीति चापरम् ।
शृणु मे ब्रुवतो राजन्यथैतन्माऽविशंकिथाः ॥३॥

सनत्सुजात बोला—हे राजन् ! आपने एक तो यह पूछा, कि ब्रह्मचर्य आदि से मृत्यु जीती जाती है और दूसरा प्रश्न आपका यह है, कि मृत्यु स्वरूप से ही कोई वस्तु नहीं है। हे राजन् ! अब तुम जिस प्रकार यह बात है, वह सुनो। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें ॥३॥

उभे सत्येक्षत्रियैतस्यविद्धिमोहान्मृत्युःसम्मतोऽयंकवीनाम्
प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि तथाऽप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि ॥४॥

हे क्षत्रियश्रेष्ठ ! तुम इन दोनों बातों को सत्य समझो। विद्वान् यह मानते हैं, कि मोह से मृत्यु होती है, परन्तु मैं प्रमाद से मृत्यु और अप्रमाद से अमृत (मोक्ष) की प्राप्ति है—ऐसा कहता हूं ॥४॥

प्रमोदाद्वै असुराः पराभवन्नप्रमादाद्ब्रह्मभूता भवन्ति ।
नैव मृत्युर्व्याघ्र इवात्ति जन्तून्न ह्यस्य रूपमुपलभ्यते हि ॥५॥

प्रमाद से ही असुरों का पराजय हुआ और अप्रमाद से महात्मा ब्रह्मीभूत (ब्रह्म में लीन) हो जाते हैं—यह मृत्यु व्याघ्र की भाँति प्राणियों को नहीं खाती है, क्योंकि किसी ने इसको मूर्तिमान् नहीं देखा है ॥५॥

यमं त्वेके मृत्युमतोऽन्यमाहुरात्मावसन्नममृतं ब्रह्मचर्यम् ।
पितृलोकेराज्यमनुशास्तिदेवःशिवःशिवानामशिवोऽशिवानाम्

कोई २ यमराज को मृत्यु कहते हैं, परन्तु मृत्यु तो इससे भिन्न है तथा मनुष्य को प्राप्त हुआ ब्रह्मचर्य, अमृत है। यमराज तो पितृलोक में शासन करता है। जो उत्तम पुरुषों से उत्तम व्यवहार और दुष्टों के ऊपर दण्ड प्रयोग करके भयङ्कर रूप धारी होता है ॥६॥

अस्यादेशान्निःसरते नराणां क्रोधः प्रमादोलोभरूपश्च मृत्युः
अहं गतेनैव चरन्विमार्गान्न चात्मनो योगमुपैति कश्चित् ॥

इसी यम की प्रेरणा से क्रोध, प्रमाद, लोभ मृत्यु रूप होकर प्राप्त होते हैं। मनुष्य अहङ्कार से उलटे मार्गों पर चलता हुआ, अपने आत्मा के उद्धार के किसी योग को नहीं पाता है ॥७॥

ते मोहितास्तद्वशे वर्तमाना इतः प्रेतास्तत्र पुनः पतन्ति ।
ततस्तान्देवा अनुविप्लवन्ते अतो मृत्युर्मरणाख्यामुपैति ॥

काम, क्रोध आदि में वर्तमान होने से लोग मोहित हो जाते हैं और इधर मर कर अन्य लोकों में जाते हैं। इसके बाद देवता, उनको फिर इसी लोक में लौटा देते हैं। इस तरह आने जाने रूप मरण को लोग मृत्यु कहते हैं ॥८॥

कर्मोदये कर्मफलानुरागास्तत्रानु ते यांति न तरन्ति मृत्युम्
सदर्थयोगानवगमात्समन्तात्प्रवर्तते भोगयोगेन देही ॥९॥

जब मनुष्य के कर्मों का उदय होता है, तब वह उसमें राग-द्वेष करने लगता है। इस तरह से ये जन्म मरण के चक्कर में घूमते रहते हैं और मृत्यु को पार नहीं कर सकते हैं तथा उत्तम योग की प्राप्ति के विना भोग योग में लिप्त होकर प्राणी इधर उधर घूमता है ॥९॥

तद्वै महामोहनमिन्द्रियाणां मिथ्यार्थयोगस्य गतिर्हि नित्या
मिथ्यार्थयोगाभिहतान्तरात्मास्मरन्नुपास्तेविषयान्समन्तात्

इस प्रकार राग द्वेष में लिप्त होना, इन्द्रियों को मोहित कर देता है। मिथ्या व्यवहार के योग से प्राणी को नित्य जन्म मरण के चक्कर में आना ही पड़ता है। जब मिथ्या आचरण से आत्मा ढक जाता है, तो सब ओर से विषयों की परम्परा में लिप्त हो जाता है ॥१०॥

अभिध्या वै प्रथमं हन्ति लोकान्कामक्रोधावनुगृह्याशु पश्चात्
एते बालान्मृत्यवे प्रापयन्ति धीरास्तु धैर्येण तरन्ति मृत्युम्

विषयों की अभिलाषा लोकों का प्रथम नाश करती है और काम क्रोध इसके पीछे लगे रहते हैं। ये सब मूर्खों को मृत्यु में फंसाते रहते हैं, परन्तु जो धीर होते हैं, वे अपने धैर्य से उसको पार कर जाते हैं ॥११॥

सोऽभिध्यायन्नुत्पतितान्निहन्यादनादरेणाप्रतिबुद्ध्यमानः ।
नैनंमृत्युर्मृत्युरिवात्तिभूत्वा एवंविद्वान्योविनिहन्तिकामान् ॥

सब तरह से ज्ञान युक्त हुआ यह धीर पुरुष, कामादि की निःसारता का मनन करता हुआ कामादि के अनादर से काम क्रोधादि का नाश कर लेता है। इस धीर पुरुष को, समर्थ होकर मृत्यु नहीं खा सकती है, क्योंकि यह कामादि निरर्थकता को जानकर उनको नष्ट कर लेता है ॥१२॥

कामानुसारी पुरुषः कामाननु विनश्यति ।
कामान् व्युदस्य धुनुते यत्किञ्चित्पुरुषो रजः ॥१३॥

जो मनुष्य, अपनी कामनाओं के पीछे दौड़ता है, वह कामनाओं के पीछे दौड़ने से नष्ट हो जाता है। धीर पुरुष, कामनाओं का नाश करके ही जो कुछ रजोगुण शेष रहता है, उसका भी नाश कर लेता है ॥१३॥

तमोऽप्रकाशो भूतानां नरकोऽयं प्रदृश्यते ।
मुह्यन्त इव धावन्ति गच्छन्तः श्वभ्रवत्सुखम् ॥ १४ ॥

तम नाम अन्धेरे का है और यही अन्धेरा (अज्ञान) नरक है। इन विषयों में लिपटा हुआ पुरुष, अचेत हुआ सा दौड़ता है और दौड़ते २ अन्धकूप से में गिर जाता है ॥१४॥

अमूढवृत्तेः पुरुषस्येह कुर्यात्किं वै मृत्युस्तार्ण इवास्य व्याघ्रः
अमन्यमानःक्षत्रियकिंचिदन्यन्नाधीयीतनिर्णुदन्निवास्यचायुः

हे राजन ! ज्ञानी पुरुष का मृत्यु-तिनकों से बने हुए सिंह के समान कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। इन विषय भोगों को मनुष्य की आयु का विघातक जानकर इनका सेवन न करे, क्योंकि आत्मा के अतिरिक्त तो कोई सत्य वस्तु नहीं है ॥१५॥

सक्रोधलोभोमोहवानन्तरात्मा स वै मृत्युस्त्वच्छरीरे यः एषः
एवं मृत्युं जायमानं विदित्वा ज्ञाने तिष्ठन्न बिभेतीह मृत्योः
विनश्यते विषये तस्य मृत्युर्मृत्योर्यथा विषयं प्राप्य मर्त्यः

हे राजन ! क्रोध लोभ के सहित, मोह से युक्त आपकी अन्तरात्मा है और यही मृत्यु होकर आपके शरीर में प्रविष्ट है। इस प्रकार उत्पन्न मृत्यु को जानकर ज्ञान से लीन हो जावे, तो फिर पुरुष मृत्यु से नहीं डर सकता है। उसके पास आने में तो स्वयं मृत्यु इस तरह डरती है जैसे मृत्यु के पास मनुष्य डरता है ॥१६॥

धृतराष्ट्र उवाच—

यानेवाहुरिज्यया साधुलोकान्द्विजातीनांपुण्यतमान्सनातनान्
तेषां परार्थं कथयन्तीह वेदा एतद्विद्वान्नोपैति कथं नु कर्म

धृतराष्ट्र ने कहा—द्विजातियों को उत्तम २ यज्ञों से पुण्यतम सनातन लोकों की प्राप्ति होती है, वेद इस विषय का प्रतिपादन करते हैं। जब यह बात है, तो विद्वान् क्यों न कर्मकाण्ड का आचरण करे ॥१७॥

सनत्सुजात उवाच—

एवं ह्यविद्वानुपयाति तत्र तत्रार्थजातं च वदन्ति वेदाः।
अनीह आयाति परं परमात्मा प्रयाति मार्गेण निहत्य मार्गान्

सनत्सुजात ने कहा—जो विद्वान् नहीं है, वे ही यह बात कहते हैं और वे ही ऐसा कहते हैं, कि वेद केवल कर्मकाण्ड को ही कहता है। कर्म मार्ग में फँसा हुआ सर्वोत्कृष्ट आत्मा, परवश योनियों में आता जाता है, परन्तु ज्ञानमार्ग से अन्य मार्गों को दग्ध करके यह परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ॥१८॥

धृतराष्ट्र उवाच—

को सौ नियुंक्ते तमजं पुराणं स चेदिदं सर्वमनुक्रमेण।
किंवाऽस्य कार्यमथवा सुखं च तन्मे विद्वन् ब्रूहि सर्वं यथावत्

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विद्वन्! उस अज पुराण पुरुष को कौन प्रेरित करता है, जो यह इस सारे जगत् को अनुक्रम से रचता और संहार करता है। उसको इस झंझट में पड़ने से क्या प्रयोजन और क्या आनन्द है। हे महाभाग! आप हमको यह सब कुछ सुनाइए ॥१९॥

सनत्सुजात उवाच—

दोषो महानत्र विभेदयोगे ह्यनादियोगेन भवन्ति नित्याः
तथाऽस्य नाधिक्यमपैति किञ्चिदनादियोगेन भवन्ति पुंसः

सनत्सुजात ने कहा—यदि जीव ब्रह्म का वास्तव में भेद माना जावेगा, तो बड़ा दोष खड़ा हो जावेगा, परन्तु अनादि

माया के योग से जीवात्मा नित्य है। यह सृष्टि जीव के सुख दुःख के भोग के लिए है, परन्तु जीव ब्रह्म की एकता होने पर भी ब्रह्म का इससे कोई महत्व नष्ट नहीं होता है, क्योंकि अनादि माया के योग से यह सब कुछ जीवात्मा का धर्म हो रहा है ॥२०॥

य एतद्वा भगवान्स नित्यो विकारयोगेन करोति विश्वम्।
तथा च तच्छक्तिरिति स्म मन्यते तथार्थयोगे च भवन्ति वेदाः॥

वह सनातन ईश्वर, माया के योग से इस जगत् को बनाता है। यह माया भी उस परब्रह्म की एक अतर्क्य शक्ति है और इसी बात का वास्तव में वेद उपदेश कर रहे हैं ॥२१॥

धृतराष्ट्र उवाच—

येऽस्मिन्धर्मान्नाचरन्तीह केचित्तथा धर्मान्केचिदिहाचरन्ति
धर्मः पापेन प्रति हन्यते स्विदुताहो धर्मः प्रतिहन्ति पापम्

धृतराष्ट्र बोले—हे महाभाग ! इस जगत् में कुछ तो अग्निहोत्र आदि अपने धर्मों का आचरण नहीं करते हैं और कुछ इन धर्मों का आचरण करते रहते हैं। जो धर्म का आचरण नहीं करते धर्मशास्त्र की आज्ञानुकूल पाप होकर उनके धर्म का नाश होता है या नहीं या जो अग्निहोत्र कर रहे हैं, वे अपने धर्म के सेवन से पाप का नाश कर लेते हैं या नहीं ॥२२॥

सनत्सुजात उवाच—

उभयमेव तत्रोपयुज्यते फलं धर्मस्यैवेतरस्य च ॥२३॥
तस्मिन्स्थितौवाऽप्युभयंहिनित्यज्ञानेनविद्वान्प्रतिहन्ति सिद्धम्
तथाऽन्यथा पुण्यमुपेति देही तथागतं पापमुपैति सिद्धम् ॥

सनत्सुजात ने कहा—इस संसार में धर्म और अधर्म दोनों का फल अवश्य मिलता है, परन्तु ज्ञानयोग या कर्मयोग में स्थित होने पर अदृष्ट भूत पाप-पुण्य का नित्य ज्ञान से विद्वान् नाश कर लेता है। यदि मनुष्य धर्म का आचरण करता है, तो पुण्य को प्राप्त करता है और यदि अधर्म का आचरण करता है, तो पाप को प्राप्त करता है ॥२३-२४॥

गत्वोभयंकर्मणायुज्यतेस्थिरंशुभस्यपापस्यसचापिकर्मणः।
धर्मेण पापं प्रणुदतीह विद्वान् धर्मो बलीयानिति तस्य सिद्धिः

यदि मनुष्य, पाप पुण्य दोनों ही प्रकार के कर्म कर रहा है, तो शुभ और अशुभ (पाप) कर्म दोनों का ही फल भोगता है। धर्म से विद्वान पाप का नाश कर लेता है, क्योंकि जगत में धर्म ही बलवान् है, इससे धर्म की ही सिद्धि है ॥२५॥

धृतराष्ट्र उवाच—

यानिहाहुःस्वस्यधर्मस्यलोकान्द्विजातीनांपुण्यकृतांसनातनान्
तेषांक्रमान्कथयतोऽपिचान्यन्नैतद्विद्वन्वेत्तुमिच्छामि कर्म॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विद्वन्! पुण्य करने वाले द्विजातियों के अपने धर्म से प्राप्त होने वाले सनातन लोकों का आप क्रम से कथन कीजिए, हम अन्य कर्मों को सुनना नहीं चाहते हैं ॥२६॥

सनत्सुजात उवाच—

येषां व्रतेऽथ विस्पर्धा बले बलवतामिव।
ते ब्राह्मणा इतः प्रेत्य ब्रह्मलोकप्रकाशकाः ॥२७॥

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन्! एक बलवान् जैसे दूसरे बलवाले से भिड़ने की स्पर्धा रखता हैं, ऐसे ही जो ब्राह्मण भी अपने व्रत नियम में अन्य तपस्वी ब्राह्मण से स्पर्धा रखते हैं, वे ही यहां से मृत्यु को प्राप्त करके ब्रह्मलोक के प्रकाशक होते हैं ॥२७॥

येषां धर्मे च विस्पर्धा तेषां तज्ज्ञानसाधनम्।
ते ब्राह्मणा इतो मुक्ताः स्वर्गं यान्ति त्रिविष्टपम् ६८

जिन ब्राह्मणों को धर्म के साधन की स्पर्धा हैं, उनकी यह स्पर्धा ज्ञान के बढ़ाने वाली है। वे ब्राह्मण सांसारिक क्लेशों से छुटकारा पाकर सुखदायी स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं ॥२८॥

तस्य सम्यक् समाचारमाहुर्वेदविदो जनाः।
नैनं मन्येत भूयिष्ठं बाह्यमाभ्यन्तरं जनम् ॥२९॥

ऐसे ज्ञानी मनुष्य का आचरण वेद के जानने वालों ने ऐसा कहा है, कि इस प्रकार ज्ञान लीन समदृष्टि पुरुष को अपना या पराया न समझे अर्थात् यह सब का समान होता है, किसी का भीतरी या बाहरी नहीं होता ॥२९॥

यत्र मन्येत भूयिष्ठं प्रावृषीव तृणोलपम्।
अन्नं पानं ब्राह्मणस्य तज्जीवेन्नानुसंज्वरेत् ॥४०॥

वर्षा ऋतु में हरित तृण और लताओं की तरह जहां अन्न जल परिपूर्ण हो, वहीं उत्तम ब्राह्मण, भोजन या जीविका करे, कभी कहीं किसी दरिद्री गृहस्थ को जाकर पीड़ित न करे ॥३०॥

यत्राकथयमानस्य प्रयच्छत्यशिवं भयम् ।
अतिरिक्तमिवाकुर्वन्स श्रेयान्नेतरो जनः ॥६१॥

जिस स्थान पर अपना गौरव दिखाए विना अत्यन्त भय की आशङ्का हो, तो भी अपने को विशेष न कहता हुआ ब्राह्मण ही श्रेष्ठ माना गया है —अपना महत्व सूचित करने वाला उत्तम नहीं है ॥३१॥

यो वा कथयमानस्य ह्यात्मानं नानुसंज्वरेत् ।
ब्रह्मस्वं नोपभुञ्जीत तदन्नं संमतं सताम् ॥३२॥

कभी ऐसा ही समय उपस्थित हो जावे, कि विना अपना स्वरूप बताए काम ही न चले, तो अपने को पीड़ित भी न करे, परन्तु ऐसे समय पर भी ब्राह्मण का अपहरण कर लाये हुए धन को उपभोग में न लावे। इसके सिवा अन्य अन्न सज्जनों ने ग्राह्य माना है ॥३२॥

यथास्वं वान्तमश्नाति श्वा वै नित्यमभूतये ।
एवं ते वान्तमश्नन्ति स्ववीर्यस्योपसेवनात् ॥३३॥

अपने अमङ्गल के लिए जैसे कुत्ता नित्य वान्त (उलटी) को खाता है, इसी तरह वे सन्यासी वान्त खाते हैं, जो अपने गौरव का परिचय देते हैं॥३३॥

नित्यमज्ञातचर्या मे इति मन्येत ब्राह्मणः ।
ज्ञातीनां तु वसन्मध्ये तं विदुर्ब्राह्मणं बुधाः ॥३४॥

जो अपने बन्धु बान्धवों के मध्य में रहता हुआ भी अपनी चर्या (महत्व) को छुपाता रहे, उसीको विद्वान् ब्राह्मण कहते हैं ॥३४

को ह्यनन्तरमात्मानं ब्राह्मणो हन्तुमर्हति ।
निर्लिङ्गमचलं शुद्धं सर्वद्वैतविवर्जितम् ॥३५॥
तस्माद्धि क्षत्रियस्यापि ब्रह्म वसति पश्यति । ॥३६॥

कौन ऐसा सच्चा ब्राह्मण होगा, जो अन्तर हीन आत्मा का हनन करना चाहेगा ? यह आत्मा, किसी भी लक्षण में नहीं आने वाला, अचल, शुद्ध और सब प्रकार के द्वैत से रहित है, इसीलिए क्षत्रिय आदि का भी ब्रह्म, (आत्मा) इसी तरह सर्वत्र व्यापक देखा जाता है ॥३५-३६॥

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते
किं तेन न कृतं पापं चौरेणाऽऽत्मापहारिणा ॥३७॥

जो अन्यथा भूत आत्मा को अन्यथा रूप से देखता है, उस आत्मा के हनन करने वाले चोर ने क्या पाप नहीं किया ॥३७॥

अश्रान्तः स्यादनादाता संमतो निरुपद्रवः ।
शिष्टो न शिष्टवत्स स्याद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित्कविः ॥३८॥

जो आत्मा की खोज में नहीं थकता, दान नहीं लेता, माननीय, आधि-व्याधि से रहित, अच्छा होकर भी साधारण दिखाई देने वाला, ब्रह्मज्ञानी, क्रान्तदर्शी ब्राह्मण होता है ॥३८॥

अनाढ्या मानुषे वित्ते आढ्या दैवे तथा क्रतौ ।
ते दुर्धर्षा दुष्प्रकंप्यास्तान्विद्याद् ब्रह्मणस्तनुम् ॥३९॥

जो मनुष्यों के धनादि में दरिद्री और देव तथा यज्ञ सम्बधी द्रव्य में धनाढ्य हैं, वे बड़े दुर्धर्ष, और दुष्प्रकम्प्य होते हैं, उनके शरीर को ही ब्राह्मण शरीर जानना चाहिए ॥३६॥

सर्वान्स्विष्टकृतो देवान्विद्याद्य इह कश्चन।

न समानो ब्राह्मणस्य तस्मिन्प्रयतते स्वयम् ॥४०॥

हवि के भोक्ता सारे देवों को जो जानता है, वह भी ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण के समान नहीं है, क्योंकि वह आचरण से ब्रह्मप्राप्ति का प्रयत्न करता है ॥४०॥

यमप्रयतमानं तु मानयन्ति स मानितः।

न मान्यमानो मन्येत न मान्यमभिसंज्वरेत् ॥४१॥

जो मान कराने का प्रयत्न नहीं करता और लोग यदि उसको मानते हैं, तो वही सचमुच मान्य है। आप प्रतिष्ठा पाकर अहङ्कारी न बने और प्रतिष्ठित को देखकर जले नहीं ॥४१॥

लोकः स्वभाववृत्तिर्हि निमेषोन्मेषवत्सदा।

विद्वांसो मानयन्तीह इति मन्येत मानितः ॥४२॥

संसार की स्वभाव की वृत्ति ही आंखों के पलक उठाने और गिराने के तुल्य है अर्थात् कभी किसी और कभी किसी को आदर देती है। जब योग्य पुरुष को मान प्राप्त हो, तो वह समझे, कि विद्वान् मान दिया ही करते हैं—इसमें मेरा क्या महत्व है ॥४२॥

अधर्मनिपुणा मूढा लोके मायाविशारदाः।

न मान्यं मानयिष्यन्ति मान्यानामवमानिनः ॥४३॥

जो संसार में माया में निपुण हैं, वे अधर्म में भी निपुण हैं। ये मान्य पुरुष का मान्य नहीं करते, अपितु मान्यजनों का, अपमान करते रहते हैं ॥४३॥

न वै मानं च मौनं च सहितौ वसतः सदा।
अयं हि लोको मानस्य असौ मौनस्य तद्विदुः॥४४॥

मान और मौन कभी एक स्थान पर साथ नहीं रहते हैं। मान से तो इस लोक में महत्व मिलता है और मौन से परलोक में मान मिलता है ॥४४॥

श्रीः सुखस्येह संवासः सा चापि परिपन्थिनी।
ब्राह्मी सुदुर्लभा श्रीर्हि प्रज्ञाहीनेन क्षत्रिय ॥४६॥

हे राजन्! लक्ष्मी सुख का घर है और यह लक्ष्मी ब्रह्मज्ञान की विरोधिनी है। प्रज्ञाहीन मनुष्य को ब्राह्मी श्री बड़ी दुर्लभ होती है ॥४५॥

द्वाराणि तस्येह वदन्ति सन्तो बहुप्रकाराणि दुराधराणि।
सत्यार्जवे ह्रीर्दमशौचविद्या यथा न मोहप्रतिबोधनानि ४६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि
द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४२॥

सत्य, सरलता, लज्जा, जितेन्द्रियता, शौच, विद्या—ये जिस तरह मोह के उद्बुद्ध करने वाले न हो सके, उसी तरह व्यवहार करे, तो ये सारे ब्रह्मज्ञान के दुष्प्राप अनेक द्वार हो जाते हैं, ऐसा महात्मा कहते हैं ॥४६॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सनत्सुजातपर्व में सनत्सुजात के उपदेश का बयालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

तेतालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

कस्यैष मौनः कतरन्नु मौनं प्रब्रूहि विद्वान्निह मौनभावम्
मौनेन विद्वानुत याति मौनं कथं मुने मौनमिहाऽऽचरन्ति

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विद्वन् ! यह मौन कहां से आता है ! क्या है ? तुम इस मौन या मौन भाव का विवेचन करो। हे मुने ! विद्वान् क्या मौन से ही मौन पाते हैं ? ये किस तरह मौन का आचरण करते हैं ॥१॥

सनत्सुजात उवाच—

यतो न वेदा मनसा सहैनमनुप्रविशयन्ति ततोऽथ मौनम् ।
यत्रोत्थितो वेदशब्दस्तथाऽयं स तन्मयत्वेन विभाति

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन् ! जहां मन के साथ वेद वाणी का भी प्रवेश नहीं है, वही मौन (ब्रह्म) माना गया है। वहां से ही यह वेद शब्द उठा है और यह वेद शब्द, उसमें ही तल्लीन होता है ॥२॥

धृतराष्ट्र उवाच—

ऋचो यजूंषि यो वेद सामवेदं च वेद यः ।
पापानि कुर्वन्पापेन लिप्यते किं न लिप्यते ॥३॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को जानते हैं, वे भी यदि पाप करते हैं, तो वे पाप में लिप्त होते हैं या नहीं ॥३॥

सनत्सुजात उवाच—

नैनं सामान्यृचो वाऽपि न यजूंष्यविचक्षणम् ।
त्रायन्ते कर्मणः पापान्न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम् ॥४॥

सनत्सुजात बोले—हे राजन् ! इस अज्ञानी को साम, ऋक् या यजुर्वेद कोई भी पाप कर्म से नहीं बचा सकता है—यह मैं तुझ से मिथ्या नहीं कहता हूं ॥४॥

न च्छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम्
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले ५

छल से युक्त मायावी पुरुष का वेद भी उद्धार नहीं कर सकते हैं । पापों के परिणाम के समय जैसे पक्षी घौसलों को छोड़ देते हैं, वैसे ही वेद भी इनको छोड़ देते हैं ॥५॥

धृतराष्ट्र उवाच—

न चेद्वेदा विना धर्मं त्रातुं शक्ता विचक्षण ।
अथ कस्मात्प्रलापोऽयं ब्राह्मणानां सनातनः ॥६॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विचक्षण ! यदि वेद, ज्ञान, धर्माचरण के विना, पापी पुरुष का उद्धार नहीं कर सकते हैं, तो फिर क्या ब्राह्मणों की सनातन किम्वदन्ती "कि वेद पापी का उद्धार करता है" झूँठी है ॥६॥

सनत्सुजात उवाच—

तस्यैव नामादिविशेषरूपैरिदं जगद्भाति महानुभाव ।
निर्दिश्य सम्यक्प्रवदन्ति वेदास्तद्विश्ववैरूप्यमुदहरन्ति ७

सनत्सुजात ने कहा—हे महानुभाव! नाम—रूपात्मक यह जगत् उस ब्रह्म से प्रकाशमान है। इसी बात को खोलकर वेद बताते हैं। इसी से ब्रह्म को विश्व वैरूप्य कहा है, क्योंकि वही विश्वाकार है ॥७॥

तदर्थमुक्तं तप एतदिज्या ताभ्यामसौ पुण्यमुपैति विद्वान्
पुण्येन पापं विनिहत्य पश्चात्संजायते ज्ञानविदीपितात्मा ॥

इस ब्रह्म के लिए ही तप और यज्ञ है, इन तप और यज्ञ से ही विद्वान मनुष्य, पुण्य को प्राप्त करता है! इस पुण्याचरण से धीरे २ पापों के आचरण का अभ्यास छूट जाता है और इस तरह विद्वान् मनुष्य, पापों से छुटकारा पाकर ज्ञान से प्रदीप्त हो जाता है ॥८॥

ज्ञानेन चाऽऽत्मानमुपैति विद्वानथाऽन्यथा वर्गफलानुकाङ्क्षी
अस्मिन्कृतं तत्परिगृह्य सर्वममुत्र भुंक्ते पुनरेति मार्गम् ॥९॥

इस तरह विद्वान्, ज्ञान से आत्मा को पा लेता है। यदि इस पुरुष की इच्छा काम, अर्थ शेष रह गई, तो यह सारे भोगों को स्वर्गलोक में भोगता है और फिर वहां से इसी लोक में आता है ॥९॥

अस्मिंल्लोके तपस्तप्तं फलमन्यत्र भुज्यते ।
ब्राह्मणानामिमे लोका धात्वे तपसि तिष्ठताम् ॥१०॥

इस लोक में किए हुए तप का फल अन्य लोक में मिलता है। नित्य तप में स्थित, ब्राह्मणों के ये लोक माने गए हैं ॥१०॥

धृतराष्ट्र उवाच—

कथं समृद्धमसमृद्धं तपो भवति केवलम् ।
सनत्सुजात तद् ब्रूहि यथा विद्याम तद्वयम् ॥११॥

धृतराष्ट्र बोले—एक तप, कभी समृद्धिशाली और कभी निष्फल कैसे हो जाता है। हे सनत्सुजात! तुम इस ढंग से बताओ, जिस तरह हम भी समझ जावें ॥११॥

सनत्सुजात उवाच—

निष्कल्मषं तपस्त्वेतत्केवलं परिचक्षते ।
एतत्समृद्धमप्यृद्धं तपो भवति केवलम् ॥१२॥

सनत्सुजात ने कहा—जो तप केवल तप के लिए अर्थात निष्काम भाव से किया जाता है—वही तप सर्वोत्तम है। इसी तप को केवल समृद्ध या तप कहते हैं ॥१२॥

तपोमूलमिदं सर्वं यन्मां पृच्छसि क्षत्रिय ।
तपसा वेदविद्वांसः परं त्वमृतमाप्नुयुः ॥१३॥

हे राजन्! जो तुम, मुझसे पूछ रहे हो—यह सब तपोमूल है, वेद क विद्वान, तप से ही परम पद को पा लेते हैं ॥१३॥

धृतराष्ट्र उवाच—

कल्मषं तपसो ब्रूहि श्रुतं निष्कल्मषं तपः ।
सनत्सुजात येनेदं विद्यां गुह्यं सनातनम् ॥१४॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सनत्सुजात! आप से निष्कल्मष तप सुना है—आप अब हमें तप के कल्मष को बतावें, जिससे हम भी सनातन रहस्य का पता लगा लें ॥१४॥

सनत्सुजात उवाच—

क्रोधादयो द्वादश यस्य दोषास्तथा नृशंसानि दशत्रि राज
धर्मादयोद्वादशैते पितृणां शास्त्रे गुणायेविदिताद्विजानाम् ॥

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन्! तप के क्रोध आदि बारह और विकत्थनादि तेरह दोष माने हैं। धर्म आदि बारह गुण, पूज्य ब्राह्मणों ने शास्त्रों में कहे हैं, तुम सुनो ॥१५॥

क्रोधःकामोलोभमोहौविधित्साऽकृपाऽसूयेमानशोकौस्पृहा च
ईर्ष्या जुगुप्सा च मनुष्यदोषा वर्ज्याः सदा द्वादशैते नराणाम्

क्रोध, काम, लोभ, मोह, असन्तोष, दया का अभाव, निन्दा, मान, शोक, लालच, ईर्ष्या, घृणा—ये मनुष्य दोष या तप के दोष हैं। मनुष्यों को इन दोषों से बचते रहना चाहिए ॥१६॥

एकैकः पर्युपास्तेह मनुष्यान्मनुजर्षभ।
लिप्समानोऽन्तरं तेषां मृगाणामिव लुब्धकः ॥१७॥

हे मनुजर्षभ! इन दोषों में मनुष्य, यदि एक का भी सेवन करता है, तो व्याध, एक मृग के बाद जैसे—दूसरे मृग को ग्रहण करना चाहता है—ऐसे ही यह इन दोषों में भी फंस जाता है।

विकत्थनः स्पृहयालुर्मनस्वी बिभ्रत्कोपं चपलोऽरक्षणश्च।
एतान्पापाः षण्नराः पापधर्मान्प्रकुर्वते नो त्रसन्तः सुदुर्गे॥

संभोगसंविद्विषमोऽतिमानी दत्त्वानुतापी कृपणो बलीयान् ।
वर्गप्रशंसी वनितासु द्वेष्टा एते परे सप्त नृशंसवर्गाः ॥१९॥

अपनी प्रशंसा करने वाला, लालची, अहंकारी, क्रोधी, चञ्चल और किसी की रक्षा नहीं करने वाला, मनुष्य, इन पाप कर्मों को करते हैं । ये छः प्रकार के पापी, विपत्ति में अपने को फंसता देखकर भी नहीं डरते हैं । संभोगपरायण, कठिन, अत्यन्तमानी, दान देकर पश्चाताप करने वाला, अत्यन्त कृपण, अर्थ और काम का प्रशंसक, स्त्रियों से झगड़ा करने वाला—ये सात प्रकार के मनुष्य, नीच कहाते हैं—इस तरह ये तेरह दोष हुए ॥१९॥

धर्मश्च सत्यं च दमस्तपश्च अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षाऽनसूया
यज्ञश्च दानं च धृतिः श्रुतं च व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य
यस्त्वेतेभ्य प्रभवेद् द्वादशभ्यः सर्वामपीमां पृथिवीं सशिष्यात् ।
त्रिभिर्द्वाभ्यामेकतो वाऽर्थितो यस्तस्य स्वमस्तीति स वेदितव्यः ॥

धर्म, सत्य, जितेन्द्रियता, तप, डाह नहीं करना, लज्जा, सहनशीलता, अनिन्दा, यज्ञ, दान, धैर्य और शास्त्र, ये बारह ब्राह्मण के गुण माने गए हैं । जो ब्राह्मण इन बारह गुणों को धारण करता है, वह सारी पृथिवी का शासन कर सकता है । इन गुणों में से जो तीन, दो वा एक का भी ग्रहण कर लेता है—उसको सब कुछ धन मिल गया—यह समझना चाहिए ॥२०-२१॥

दमस्त्यागोऽप्रमादश्च एतेष्वमृतमाहितम् ।
तानि सत्यमुखान्याहुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ॥२२॥

इन्द्रिय-निग्रह, त्याग, अप्रमाद, इनमें ही अमृत रखा हुआ है। इनको ही बुद्धिमान् ब्राह्मण, सत्य के उत्पादक कहते हैं ॥२२॥

दमो ह्यष्टादश गुणः प्रतिकूलं कृताकृते।
अनृतं चाऽभ्यसूया च कामार्थौ च तथा स्पृहा॥२३॥
क्रोधः शोकस्तथा तृष्णा लोभः पैशुन्यमेव च।
मत्सरश्च विहिंसा च परितापस्तथाऽरतिः॥२४॥
अपस्मारश्चाऽतिवादस्तथा संभावनाऽऽत्मनि।
एतैर्विमुक्तो दोषैर्यः स दान्तः सद्भिरुच्यते ॥२५॥

दम (इन्द्रिय-निग्रह) के अठारह गुण हैं। कर्म, अकर्म से प्रतिकूल होना अर्थात् हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना, मिथ्या भाषण, निन्दा, काम, धन का लालच, विषयाभिलाषा, शोक, तृष्णा, लोभ, पिशुनता, (चुगली) डाह, हिंसा, सन्ताप, चिन्ता, अपस्मार (बेहोशी) अत्यन्त विवाद, अपने को सब कुछ समझना— इन अट्ठारह दोषों से मुक्त हुए पुरुष को सज्जनों ने उदार कहा है ॥२३-२५॥

मदोऽष्टादशदोषः स्यात्त्यागो भवति षड्विधः।
विपर्ययाः स्मृता ये ते मददोषा उदाहृताः ॥२६॥
श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागस्तृतीयो दुष्करो भवेत्।
तेन दुःखं तरत्येव भिन्नं तस्मिन् जितं कृते ॥२७॥

मद में भी अट्ठारह दोष माने गए हैं और त्याग छः प्रकार का है। इन उपर्युक्त दोषों का ग्रहण करना अष्टादश, मद (घमंड)

के दोष माने हैं। ये छः प्रकार के त्याग बड़े उत्तम हैं, इनमें तीसरा बड़ा दुष्कर माना गया है। यदि इस तीसरे त्याग को कर लिया—तो इसके करने पर अन्य भी जीते हुए ही समझने चाहिए ॥२६-२७॥

श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागः श्रियं प्राप्य न हृष्यति।
इष्टापूर्ते द्वितीयं स्यान्नित्यवैराग्ययोगतः ॥२८॥
कामत्यागश्च राजेन्द्र स तृतीय इति स्मृतः।
अप्यवाच्यं वदन्त्येतं स तृतीयो गुणः स्मृतः ॥२९॥

हे राजेन्द्र! छः प्रकार का त्याग माना गया है। प्रथम लक्ष्मी पाकर मदान्ध नहीं होना, दूसरे वैराग्य के साथ यज्ञ याग, कूप, बावड़ी आदि बनाना, तीसरे काम वासना का परित्याग कर देना ये तीन गुण माने हैं। इसमें तीसरा ऐसा गुण है, जिससे किसी अन्य को नहीं प्राप्त होने वाली प्रशंसा इसको प्राप्त हो जाती है।।२८—२९॥

त्यक्तैर्द्रव्यैर्यद्भवति नोपयुक्तैश्च कामतः।
न च द्रव्यैस्तद्भवति नोपयुक्तैश्च कामतः ॥३०॥
न च कर्मस्वसिद्धेषु दुःखं तेन च न ग्लपेत्।

यह त्याग भोग्य वस्तुओं के परित्याग से जैसे सिद्ध होता है, वैसा उसके भोगने से नहीं होता है। भोगाभिलाषा द्रव्य और उनकी प्राप्ति से समाप्त नहीं होती है। इस प्रकार भोगाभिलाषा

छोड़ देने पर कर्मों के असिद्ध हो जाने पर दुःख नहीं होता और इससे मनुष्य, चिन्तित नहीं होता है ॥३०॥

सर्वैरेव गुणैर्युक्तो द्रव्यवानपि यो भवेत ॥३१॥
अप्रिये च समुत्पन्ने व्यथां जातु न गच्छति।

जो सब गुणों से युक्त और द्रव्यवान भी है, तो भी विषयाभिलाषा के विजय करने पर अप्रिय वस्तु के संभोग होने पर वह उससे कभी व्यथा नहीं मानता है ॥३१॥

इष्टान्पुत्रांश्च दारांश्च न याचेत कदाचन ॥३२॥
अर्हते याचमानाय प्रदेयं तच्छुभं भवेत्।

अपने प्रिय, पुत्र,स्त्रिय आदि की कभी अभिलाषा न करे, जो योग्य हो, वह जगत् के कल्याण के लिए इनकी याचना भी करे, तो धर्म की रक्षा के निमित्त इनका भी त्याग कर दे, इस प्रकार छः गुण माने गए हैं ॥३२॥

अप्रमादी भवेदेतैः स चाऽप्यष्टगुणो भवेत् ॥३३॥
सत्यं ध्यानं समाधानं चोद्यं वैराग्यमेव च।
अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च तथाऽसंग्रहमेव च ॥३४॥
एवं दोषा मदस्योक्तास्तान्दोषान्परिवर्जयेत्।

इन छः गुणों से मनुष्य प्रमाद हीन होता है और उसके भी आठ गुण माने हैं। सत्य, ध्यान, समाधि, विचार वैराग्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, असंग्रह—ये अहंकार से उत्पन्न होने वाले दोष हैं, इनका भी परित्याग कर दे ॥३३-३४॥

तथा त्यागोऽप्रमादश्च स चाऽप्यष्टगुणो मतः ॥३५॥
अष्टौ दोषाः प्रमादस्य तान्दोषान्परिवर्जयेत्।

इसी तरह त्याग और प्रमाद भी आठ तरह के गुणों से युक्त माना है। प्रमाद के भी आठ दोष हैं, इन दोषों का त्याग कर देना चाहिए ॥३५॥

इंद्रियेभ्यश्च पञ्चभ्यो मनसश्चैव भारत।
अतीतानागतेभ्यश्च मुक्त्युपेतः सुखी भवेत् ॥३६॥

हे भारत! पांच इन्द्रिय और छठा मन, इनके भूत और भविष्यत सारे संस्कारों का नाश करके मनुष्य, मुक्ति से युक्त होकर सुखी होता है ॥३६॥

सत्यात्मा भव राजेन्द्र सत्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः।
तांस्तु सत्यमुखानाहुः सत्ये ह्यमृतमाहितम् ३७

हे राजेन्द्र! तुम सत्य के सेवन करने वाले बनो, सत्य से ही लोकों की स्थिति है। इन लोकों में सत्य को ही मुख्य माना है और सत्य में ही अमृत रखा हुआ है ॥३७॥

निवृत्तेनैव दोषेण तपोव्रतमिहाऽऽचरेत्।
एतद्धातृकृतं वृत्तं सत्यमेव सतां व्रतम् ॥३८॥

जब मनुष्य के इन्द्रिय और मन के दोष निवृत्त हो जावें, तो वह तप का व्रत धारण करे, यही विधाता का नियम है और सत्य ही सज्जनों का व्रत है ॥३८॥

दोषैरेतैर्वियुक्तस्तु गुणैरेतैः समन्वितः ।
एतत्समृद्धमत्यर्थं तपो भवति केवलम् ॥३६॥

इन दोषों से रहित और गुणों से युक्त मनुष्य, इस अत्यन्त समृद्ध केवल तप को प्राप्त कर सकता है ॥३६॥

यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र संक्षेपात्प्रब्रवीमि ते ।
एतत्पापहरं पुण्यं जन्ममृत्युजरापहम् ॥४०॥

हे राजन्! आप जो मुझसे पूछ रहे हैं, संक्षेप में कहता हूँ, कि यह पाप नाशक और जरा मृत्यु का विघातक है ॥४०॥

धृतराष्ट्र उवाच—

आख्यानपञ्चमैर्वेदैर्भूयिष्ठं कथ्यते जनः ।
तथा चान्ये चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च तथा परे ॥४१॥
द्विवेदाश्चैकवेदाश्चाऽप्यनृचाश्च तथा परे ।
तेषां तु कतरः स स्याद्यमहं वेद वै द्विजम् ॥४२॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे ब्रह्मन्! लोग इतिहास को मिलाकर पांच वेद कोई चार और कोई तीन ही बताते हैं। कोई दो वेद और कोई एक वेद तथा कोई ब्राह्मण वेद ही नहीं मानते। इन ब्राह्मणों में हम किसको समझे, कि यह सच्चा ब्राह्मण है ॥४१-४२॥

सनत्सुजात उवाच—

एकस्य वेदस्याऽज्ञानाद्वेदास्ते बहवः कृताः ।
सत्यस्यैकस्य राजेन्द्र सत्ये कश्चिदवस्थितः ॥४३॥

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन्! वेद तो एक ही है, हम लोगों ने अज्ञान से अनेक वेद बना लिए हैं। सच्चाई एक होती है और उस एक सच्चाई में ही कुछ रखा होता है ॥४३॥

एवं वेदमविज्ञाय प्राज्ञोऽहमिति मन्यते।
दानमध्ययनं यज्ञो लोभादेतत्प्रवर्तते ॥४४

इस तरह वेद को बिना जाने मैं ही ज्ञानी हूं—ऐसा लोग अहंकार करने लगते हैं और वेद को यज्ञ याग परक रूप देकर स्वर्गादि के लोभ से दान, वेद पाठ और यज्ञ करने में प्रवृत्त होते हैं ॥४४॥

सत्यात्प्रच्यवमानानां संकल्पश्च तथा भवेत्।
ततो यज्ञः प्रतायेत सत्यस्यैवाऽवधारणात् ॥४५॥
मनसाऽन्यस्य भवति वाचाऽन्यस्याऽथ कर्मणा।

यह सकाम वासना वेद के सत्य अर्थ के बिना जाने होती है। जब मनुष्य सत्य को जान लेता है, तो वह इस प्रकार के यज्ञों का विस्तार करता है। कोई मनुष्य, मनोमय यज्ञ, कोई वाणीमय और कोई कर्तव्य कर्म मय यज्ञ करने लगता है ॥४५॥

संकल्पसिद्धः पुरुषः संकल्पानधितिष्ठति ॥४६॥
अनैभृत्येन चैतस्य दीक्षितव्रतमाचरेत्।

इस प्रकार पुरुष का संकल्प सिद्ध होता है और वह अपने अभीष्ट लोकों को प्राप्त करता है। इस प्रकार चुपचाप इस दीक्षित व्रत का आचरण करे ॥४६॥

नासैतद्धातु निर्वृत्तं सत्यमेव सतां परम् ॥४७॥
ज्ञानं वै नाम प्रत्यक्षं परोक्षं जायते तपः ।
विद्याद्बहुपठन्तं तु द्विजं वै बहुपाठिनम् ॥४८॥

यह विधाता का निर्मित किया हुआ और सज्जनों का परम मान्य व्रत है । ज्ञान तो प्रत्यक्ष फल देने वाला है तप (कर्म मय यज्ञ) परोक्ष (अन्य लोकों) में फल देता है । इस प्रकार बहुत कुछ पढ़ने पढ़ाने वाले ब्राह्मण को ही विद्वान् मानना चाहिए ॥४७—४८॥

तस्मात् क्षत्रिय मा मंस्था जल्पितेनैव वै द्विजम् ।
य एव सत्यान्नाऽपैति स ज्ञेयो ब्राह्मणस्त्वया ॥४९॥

हे राजेन्द्र ! इसलिए कुछ अण्ट सण्ट मार देने वाले ब्राह्मण का तू आदर न कर —किन्तु जो सत्य मार्ग से च्युत नहीं है— उसको ही तू ब्राह्मण समझ ॥४९॥

छन्दांसि नाम क्षत्रिय तान्यथर्वा पुरा जगौ महर्षिसंघ एषः
छन्दोविदस्ते य उत नाऽधीतवेदा न वेदवेद्यस्य विदुर्हि तत्त्वम्

हे राजन् ! कुछ छन्द हैं, जिनको मुनिसंघ ने अथर्वा (अथर्ववेद) के नाम से कहा है । इस अथर्ववेद के जानने वाले कुछ छन्दों के ज्ञाता कहे जा सकते हैं, वे समग्र वेद के ज्ञाता नहीं कहला सकते हैं । वे वेद से जानने योग्य ब्रह्म का पूरा तत्त्व भी जान पाते हैं ॥५०॥

छन्दांसि नाम द्विपदां वरिष्ठ स्वच्छन्दयोगेन भवन्ति तत्र ।
छन्दोविदस्ते न च तानधीत्य गता न वेद्यस्य न वेदमार्याः

हे मनुष्यश्रेष्ठ ! वे फुटकर छन्द स्वतन्त्रता से छांटे हुए हैं, इसी से इन थोड़े से छन्दों के जानने वाले उन छन्दों को पढ़कर भी सारे वेद और ब्रह्म का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते हैं ।।५१।।

नवेदानांवेदिताकश्चिदस्तिकश्चित्त्वेतान्बुद्ध्यते वापिराजन् ।
यो वेद वेदान्न सवेदवेद्यं सत्ये स्थितो यस्तु स वेद वेद्यम् ।।

हे राजन् ! प्रत्येक मनुष्य, वेद को नहीं जान पाता है—इन वेदों को कोई ही मनुष्य जान पाता है । कोई वेद को जानकर भी वेद प्रतिपादित ब्रह्म को नहीं जान पाता है, परन्तु जो सत्य में स्थित है, वही वेद्य वस्तु ब्रह्म को जान सकता है ।।५२।।

न वेदानां वेदिता कश्चिदस्ति वेद्यं न वेदं न विदुर्न वेद्यम्
यो वेद वेदं स च वेद वेद्यं यो वेद वेद्यं न स वेद सत्यम्

सामान्य मनुष्य, कोई ऐसा नहीं है, जो वेदों को जान सके । चक्षु आदि इन्द्रियों से जानने योग्य पदार्थों से न तो वेद ही जाना जाता है और न परमवेद्य परमात्मा का ही कुछ ज्ञान होता है । जो, वेद को जान लेता है, वही वेद्य (इन्द्रियमेय जगत्) को जान सकता है, परन्तु जो वेद्य (जगत्) को जान भी ले, तो भी वह सत्य वस्तु ब्रह्म को नहीं जान सकता है ।।५३।।

यो वेद वेदान्स च वेद वेद्यं न तं विदुर्वेदविदो न वेदाः ।
तथापि वेदेन विदन्दि वेदं ये ब्राह्मणा वेदविदा भवन्ति ।।

जो वेद को जानता है, वह वेद्य (ब्रह्म) को भी जान लेता है अथवा यों कहो—कि उस ब्रह्म को न वेद के जानने वाले जानते हैं और न वेद ही जानता है। हां ? जो वेद के ज्ञाता ब्राह्मण होते हैं, प्रथम वे वेद का अर्थ वेद से जानते हैं और फिर उस ब्रह्म को जान लेते हैं ॥५४॥

धामांशभागस्य तथा हि वेदा यथा च शाखा हि महीरुहस्य
संवेदने चैव यथामनन्ति तस्मिन्हि सत्ये परमात्मनोर्थे।

तेज के धाम परब्रह्म के वेद इसी तरह सूचक है। जैसे वृक्ष की शाखा चन्द्रमा के सूचन में स्थूल लक्ष्य है। चन्द्रमा के ज्ञान में मनीषी—जैसे शाखा को मानते हैं, वैसे ही सत्य परमात्म तत्व में वेद का उपयोग है ॥५५॥

अभिजानामि ब्राह्मण्यं व्याख्यातारं विचक्षणम्।
यश्छिन्नविचिकित्सः स व्याचष्टे सर्वसंशयान् ॥५६॥

मैं तो उसको ही ब्राह्मण समझता हूं, जो वेद का व्याख्याता और पण्डित हैं। पण्डित भी ऐसा होना चाहिए—जो सारे संशयों को काटकर सन्देह स्थलों की व्याख्या कर दे ॥५६॥

नास्य पर्येषणं गच्छेत्प्राचीनं नोत दक्षिणम्।
नार्वाचीनं कुतस्तिर्यङ् नादिशन्तु कथञ्चन ॥५७॥

इस परब्रह्म के अन्वेषण में पूर्व या दक्षिण को नहीं जाना पड़ता है न पश्चिम और न उत्तर को जाना है, इन अग्नेयादि उपदिशाओं का तो कहना ही क्या है—ये सारी दिशाएँ उसका निर्देश नहीं कर सकती हैं ॥५७॥

तस्य पर्येषणं गच्छेत्प्रत्यर्थिषु कथञ्चन ।
अविचिन्वन्निमं वेदे तपः पश्यति तं प्रभुम् ॥५८॥
तूष्णींभूत उपासीत न चेष्टेन्मनसापि च ।
उपावर्तस्व तद् ब्रह्म अन्तरात्मनि विश्रुतम् ॥५६॥

उस परमात्मा का अन्वेषण (खोज) तो अन्य पुरुष में ही हो सकता है अर्थात् अन्य को आत्मा को अपनी ही आत्मा (अद्वैत) मानने से होता है। इस प्रभु को वेद में नहीं खोजता हुआ जिज्ञासु, तप (अद्वैत के व्यवहार) के द्वारा ही पा सकता है। इसकी उपासना करने वाला चुपचाप स्थित होवे और मन से भी चेष्टा न करे। अपनी अन्तरात्मा में ही उस विश्रुत (प्रसिद्ध) ब्रह्म का आलोकन करे ॥५६॥

मौनान्न स मुनिर्भवति नारण्यवसनान्मुनिः ।
स्वलक्षणं तु यो वेद स मुनिः श्रेष्ठ उच्यते ॥६०॥

कोई मनुष्य, मौन से या वनवास से मुनि नहीं हो सकता है। जो अपनी आत्मा की परिभाषा जान लेता है, वही मुनि कहाता है ॥६०॥

सर्वार्थानां व्याकरणाद्वैयाकरण उच्यते ।
तन्मूलतो व्याकरणं व्याकरोतीति तत्तथा ॥६१॥

पूर्वोक्त मुनि सारे तत्वों के अलग २ जान लेने से वैयाकरण (तत्वज्ञ) कहाता है। इसी के आधार पर तो व्याकरण (पृथक्-

रण) है—क्योंकि पृथक् २ निर्वचन कर देना ही तो व्याकरण की व्युत्पत्ति है ॥६१॥

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः ।
सत्ये वै ब्राह्मणस्तिष्ठंस्तद्विद्वान्सर्वविद्भवेत् ॥६२॥

जो लोक के अन्तर्गत आत्मा का प्रत्यक्षानुभव करता है—वह मनुष्य सर्वदर्शी कहाता है। जो ब्राह्मण (ब्रह्म) सत्य में स्थित है, वही विद्वान् और सर्वज्ञ माना है ॥६२॥

धर्मादिषु स्थितोप्येवं क्षत्रिय ब्रह्म पश्यति ।
वेदानां चानुपूर्व्येण एतद् बुद्ध्वा ब्रवीमि ते ॥६३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि सनत्सुजातवाक्ये त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

हे राजन्! जो अपने धर्मों में स्थित ब्राह्मण है—वह ब्रह्म को वेद के ज्ञान के क्रम से जान सकता है। यही समझकर मैंने तुमको यह कहा है ॥६३॥

इति श्री महाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सनत्सुजात पर्व में सनत्सुजात के वाक्य का तेतालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

चवालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

सनत्सुजात यामिमां परां त्वं ब्राह्मीं वाचं वदसे विश्वरूपाम्
परां हि कामेन सुदुर्लभां कथां प्रब्रूहि मे वाक्यमिदं कुमार

धृतराष्ट्र कहने लगा—हे सनत्सुजात ! कुमार ! जो तुम विश्व को एक आत्मा के रूप में प्रतिपादन करने वाली ब्रह्ममयी वाणी कह रहे हो, यह बड़ी ही दुर्लभ कथा है ; बड़ी कामना करने पर भी इसकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। आप इन वाक्यों की फिर व्याख्या करें ॥१॥

सनत्सुजात उवाच—

नैतद्ब्रह्म त्वरमाणेन लभ्यं यन्मां पृच्छन्नतिहृष्यस्यतीव ।
बुद्धौ विलीने मनसि प्रचिंत्या विद्या हि सा ब्रह्मचर्येणलभ्या

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन ! जो तुम मुझसे ब्रह्म का वर्णन सुनते हुए बड़े प्रसन्न होते हो—यह ब्रह्म, बड़ी शीघ्रता से नहीं प्राप्त हो सकता है। मनन करने से अविद्या, बुद्धि में लीन हो जाती है, तब यह ब्रह्मविद्या ब्रह्मचर्य से प्राप्त होती है ॥२॥

धृतराष्ट्र उवाच—

अत्यन्तविद्यामितियत्सनातनीं ब्रवीषि त्वं ब्रह्मचर्येणसिद्धाम्
अनारभ्यां वसतीह कार्यकाले कथं ब्राह्मण्यममृतत्वं लभेत

धृतराष्ट्र ने कहा—हे ब्रह्मन्! जो यह सर्व श्रेष्ठ सनातन विद्या है—इसको तुम ब्रह्मचर्य से प्राप्त होने वाली बता रहे हो। इसका कोई प्रारम्भ नहीं है—यह तो विचार करने के समय अपने आप ही प्राप्त होती है—तो फिर मनुष्य अपने प्रयत्न से ब्राह्मण्य या अमृत कैसे प्राप्त कर सकता है? ॥३॥

सनत्सुजात उवाच—

अव्यक्तविद्यामभिधास्येपुराणींबुद्ध्याचतेपांब्रह्मचर्येणसिद्धाम्
यांप्राप्यैनंमर्त्यलोकंत्यजन्तियावैविद्यागुरुवृद्धेषु नित्या ४

सनत्सुजात ने कहा—मैं तुमको प्राचीन छुपी हुई विद्या को बताता हूं—जो इन्द्रियों के रहते हुए भी बुद्धि और ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त की जा सकती है। इस ब्रह्म विद्या को जानकर मनुष्य इस मृत्युलोक का मोह छोड़ देता है। यह विद्या पूज्य वृद्धों में नित्य विद्यमान रहती है ॥४॥

धृतराष्ट्र उवाच—

ब्रह्मचर्येण या विद्या शक्या वेदितुमञ्जसा।
तत्कथं ब्रह्मचर्यं स्यादेतद् ब्रह्मन्ब्रवीहि मे ॥५॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे ब्रह्मन्! जिस ब्रह्मचर्य से यह ब्रह्म विद्या शीघ्र जान ली जाती है, वह ब्रह्मचर्य कैसे होता है—यह मुझे बताओ ॥५॥

सनत्सुजात उवाच—

आचार्ययोनिमिह ये प्रविश्य भूत्वा गर्भे ब्रह्मचर्यं चरन्ति।
इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति प्रहाय देहं परमं यान्ति योगम्

सनत्सुजात ने कहा---जब विद्यार्थी, आचार्य कुल में प्रवेश करके और विद्या का गर्भ धारण करके ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, तो वे इस लोक में शास्त्र के ज्ञाता और इस देह के छोड़ने के अनन्तर सद्गति प्राप्त करते हैं ॥६॥

अस्मिँल्लोके वै जयन्तीह कामान्ब्राह्मीं स्थितिं ह्यनुतितिक्षमाणाः
त आत्मानं निर्हरन्तीह देहान्मुंजादिषीकामिव सत्त्वसंस्थाः

जो पुरुष, ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करने के लिए इस लोक में कामवासनाओं को जीतते हैं, वह सात्त्विकी पुरुष अपने आत्मा को देह से अलग कर लेता है, जैसे लोग मुञ्ज से इषीका (तुली) को निकाल लेते हैं ॥७॥

शरीरमेतौ कुरुतः पिता माता च भारत ।
आचार्यशास्ता या जातिः सा पुण्या साऽजराऽमरा

हे भारत ! माता और पिता इस शरीर को बनाते हैं, परन्तु शिक्षा देने वाला आचार्य, जिस नवीन जन्म को दे देता है, वह जन्म अजर और अमर है ॥८॥

यः प्रावृणोत्यवितथेन वर्णानृतं कुर्वन्नमृतं सम्प्रयच्छन् ।
तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत्कृतमस्य जानन्

जो आचार्य नहीं बदलने वाले सत्य का प्रकाश और मोक्ष ज्ञान देते हुए प्रत्येक वर्ण को सचाई से युक्त करते हैं, उन आचार्यों के उपकार को मानता हुआ, मनुष्य उस आचार्य को माता पिता के तुल्य ही पूज्य माने और उससे कभी द्रोह न करें।

गुरुं शिष्योनित्यमभिवादयीत स्वाध्यायमिच्छेच्छुचिरप्रमत्तः
मानं न कुर्यान्नादधीत रोषमेष प्रथमो ब्रह्मचर्यस्य पादः ॥

शिष्य नित्य गुरु का अभिवादन (सेवा) करे और सावधान तथा पवित्र आचरण से वेदाध्ययन और ब्रह्मचर्य का आचरण करे। यह कभी अहङ्कार और क्रोध न करे, यही ब्रह्मचर्य का प्रथम प्रकार है ॥१०॥

शिष्यवृत्तिक्रमेणैव विद्यामाप्नोति यः शुचिः ।
ब्रह्मचर्यव्रतस्याऽस्य प्रथमः पादः उच्यते ॥११॥

जो शुद्धाचारी ब्रह्मचारी, शिष्य—वृत्ति के अनुसार विद्या ग्रहण करता रहता है—यही इस ब्रह्मचर्य व्रत की प्रथम कक्षा है।

आचार्यस्य प्रियं कुर्यात्प्राणैरपि धनैरपि ।
कर्मणा मनसा वाचा द्वितीयः पाद उच्यते ॥१२॥

ब्रह्मचारी, प्राण, धन, कर्म, मन और वाणी से आचार्य का हित करता रहे, यह ब्रह्मचर्य का द्वितीय पाद है ॥१२॥

समा गुरौ यथा वृत्तिर्गुरुपत्न्यां यथाऽऽचरेत् ।
तत्पुत्रे च तथा कुर्वन् द्वितीयः पाद उच्यते ॥१३॥

जिस प्रकार गुरु के साथ साधुवृत्ति करनी है, उसी तरह गुरु पत्नी और गुरुपुत्र से भी पूज्य व्यवहार करे, तो यह ब्रह्मचर्य का द्वितीय पाद कहाता है ॥१३॥

आचार्येणाऽऽत्मकृतं विजानञ्ज्ञात्वाचाऽर्थंभावितोऽस्मीत्यनेन। यन्मन्यते तं प्रतिहृष्टबुद्धिःस वै तृतीयो ब्रह्मचर्यस्य पादः

आचार्य द्वारा किए हुए अपने ऊपर उपकारों और आचार्य ने मुझे सुयोग्य बनाया है, इस तत्व को जानता हुआ जो, विद्यार्थी आचार्य को पूज्य मान कर प्रसन्न होता है, यह ब्रह्मचर्य व्रत की तीसरी कक्षा है ॥१४॥

नाऽचार्यस्याऽनपाकृत्य प्रवासं प्राज्ञः कुर्वीत नैतदहं करोमि। इतीवमन्येत न भाषयेत स वै चतुर्थो ब्रह्मचर्यस्य पादः ।

आचार्य का ऋण बिना चुकाए कोई बुद्धिमान ब्रह्मचारी, आश्रम से घर न जावे और वह यह जानता रहे—कि जब तक मैं इस ऋण को नहीं चुका लूंगा—यहां से गमन नहीं करूंगा। कभी गुरु के सन्मुख युक्ति विहीन बातें न बोले—यह ब्रह्मचर्य का चतुर्थ पाद है ॥१५॥

कालेन पादं लभते तथार्थं ततश्च पादं गुरुयोगतश्च । उत्साहयोगेन च पादमृच्छेच्छास्त्रेण पादं च ततोऽभियाति

काल के यापन से ब्रह्मचारी को प्रथम पाद, गुरु सेवा से द्वितीय पाद, उत्साह से तृतीय और शास्त्र प्राप्ति के अनन्तर चौथे पाद की सिद्धि होती है ॥१६॥

धर्मादयो द्वादश यस्य रूपमन्यानि चांगानि तथा बलं च आचार्ययोगे फलतीति चाऽऽहुर्ब्रह्मार्थयोगेन च ब्रह्मचर्यम्

इस ब्रह्मचर्य के धर्म आदि पूर्वोक्त बारह गुण माने गए हैं। इसी तरह इसके अन्य भी अङ्ग और बल हैं। आचार्य के संयोग से ही ये गुण विकसित होते हैं और वेद के योग से ब्रह्मचर्य फल लाता है ॥१७॥

एवं प्रवृत्तो यदुपालभेत वै धनमाचार्याय तदनु प्रयच्छेत्
सतां वृत्तिं बहुगुणामेवमेति गुरोः पुत्रे भवति च वृत्तिरेषा

इस ब्रह्मचर्य की अवस्था में जो धन मिले, उस धन को आचार्य के लिए प्रदान कर दे। विद्यार्थी, श्रेष्ठ पुरुषों की सी बहुत गुणवाली वृत्ति का आचरण करे और गुरु के पुत्र में भी इसी सद्वृत्ति को करता रहे ॥१८॥

एवं वसन्सर्वतो वर्धतीह बहून्पुत्रांल्लभते च प्रतिष्ठाम् ।
वर्षंति चास्मै प्रदिशो दिशश्च वसन्त्यस्मिन्ब्रह्मचर्ये जनाश्च

इस तरह आचार्य कुल में वास करता हुआ, ब्रह्मचारी, सब प्रकार की उन्नति करता है। यह फिर गृहस्थ में आकर बहुत पुत्र और प्रतिष्ठा पाता है। इसको दिशा, विदिशाएं सब कुछ सुख बरसाती हैं और ब्रह्मचर्य दशा में रहते हुए, प्रत्येक जन इसके लिए सहायता को उपस्थित होता है ॥१९॥

एतेन ब्रह्मचर्येण देवा देवत्वमाप्नुवन् ।
ऋषयश्च महाभागा ब्रह्मलोकं मनीषिणः ॥२०॥

इस ब्रह्मचर्य से ही देवों ने देवत्व और मनीषी महाभाग ऋषियों ने ब्रह्मलोक की प्राप्ति की है ॥२०॥

गन्धर्वाणामनेनैव रूपमप्सरसामभूत् ।
एतेन ब्रह्मचर्येण सूर्योऽप्यह्नाय जायते ॥२१॥

गन्धर्व और अप्सराओं का सौंदर्य भी इस ब्रह्मचर्य से ही प्रकाशित होता हैं । इसी ब्रह्मचर्य से नित्य सूर्य उदय होता हैं ॥२१॥

आकांक्षयार्थस्य संयोगाद्रसभेदार्थिनामिव ।
एवं ह्येते समाज्ञाय तादृग्भावं गता इमे ॥२२॥

पारद की गुटिका से सिद्धि प्राप्त करने वालों के तुल्य अपने अर्थ की सिद्धि की आकांक्षा करके और ब्रह्मचर्य से ही उसकी सिद्धि देखकर साधु पुरुष, इस ब्रह्मचर्य का सेवन करते हैं।

य आश्रयेत्पावयेच्चापि राजन्सर्वं शरीरं तपसा तप्यमानः ।
एतेन वै बाल्यमभ्येति विद्वान्मृत्युं तथा स जयत्यन्तकाले

हे राजन् ! जो इस ब्रह्मचर्य का आश्रय लेता है,वह इस ब्रह्मचर्य रूप तप से अपने शरीर को तपाकर पवित्र कर लेता है । इस ब्रह्मचर्य से पुरुष, सदा शक्तिशालीबना रहता है और वह अन्त काल में मृत्यु को भी जींत लेता हैं ॥ २३ ॥

अन्तवतः क्षत्रिय ते जयन्ति लोकाञ्जनाः कर्मणा निर्मलेन
ब्रह्मैव विद्वांस्तेनचाभ्येति सर्वनान्यः पन्था अयनायविद्यते

हे राजन् ! इस ब्रह्मचर्य रूप कर्म से मनुष्य, इन विनाशी लोकों को जीतकर ब्रह्म को जान लेते हैं और इसी से ये ब्रह्म में लीन हो जाते हैं, इस ब्रह्मचर्य के विना ब्रह्म प्राप्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है ॥२४॥

धृतराष्ट्र उवाच—

आभाति शुक्लमिव लोहितमिवाथो कृष्णमथांजनं काद्रवं वा
सद्ब्रह्मणः पश्यति योऽत्र विद्वान्कथं रूपं तदमृतमक्षरं पदम्

धृतराष्ट्र ने कहा—इस संसार में शुक्ल, लाल, अञ्जन सा कृष्ण वर्ण तथा अन्य पीत आदि वर्ण दिखाई देते हैं, जो विद्वान् उस उत्तम ब्रह्म को देखता हैं, वह किस रूप में देखता है? तथा वह अक्षर और अमर किस रूप का धारी है?॥२६॥

सनत्सुजात उवाच—

आभाति शुक्लमिवलोहितमिवाथो कृष्णमायसमर्कवर्णम्
न पृथिव्यां तिष्ठति नाऽन्तरिक्षे नैतत्समुद्रे सलिलं बिभर्ति
न तारकासु न च विद्युदाश्रितं न चाऽभ्रेषु दृश्यते रूपमस्य
न चापि वायौ न च देवतासु नैतच्चन्द्रे दृश्यते नोतसूर्ये

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन्! शुक्ल, लाल, लोह सा काला सूर्य का वर्ण—ये सब उसी ब्रह्म से चमकते हैं। यह ब्रह्म, पृथिवी और आकाश में कहीं बैठा नहीं है—जो गोरा या काला हो। यह समुद्र में जल को पकड़े हुए नहीं बैठा है। तारे भी बिजली के आधार पर नहीं हैं और न इसका बादलों में रूप दिखाई देता है। यह वायु, देवता, चन्द्र और सूर्य किसी के आधार पर निर्भर नहीं है॥२७॥

नैवर्क्षु तन्न यजुष्षु नाऽथर्वसु न दृश्यते वै विमलेषु सामसु
रथन्तरे बार्हद्रथे वाऽपि राजन्महाव्रते नैव दृश्येद् ध्रुवं तत्

ब्रह्म, ऋक् , यजु, अथर्व और निर्मल सामवेद से भी पूर्ण रूप से नहीं बताया जा सकता है। इसका रथन्तर और बार्हद्रथ संज्ञक वेद के भाग भी पूर्ण परिचय नहीं दे सकते और न इस का महाव्रत में ही कहीं पता लगता है ॥२८॥

अपारणीयं तमसः परस्तात्तदन्तकोऽप्येति विनाशकाले।
अणीयो रूपं क्षुरधारया समं महच्च रूपं तद्वै पर्वतेभ्यः२९

इस ब्रह्म का पार नहीं है। वह तम से परे है। प्रलय के समय काल भी ब्रह्म में ही लीन हो जाता है। उस ब्रह्म का क्षुर-धारा से अधिक सूक्ष्म रूप है और वह पर्वतों से भी अधिक विशाल है ॥२९॥

सा प्रतिष्ठा तदमृतं लोकस्तद् ब्रह्म तद्यशः।
भूतानि जज्ञिरे तस्मात्प्रलयं यांति तत्र हि ॥३०॥

वह सबका आधार, अमृत, लोकों में व्यापक, बृहत् और यशस्वी है। उसी से प्राणी उत्पन्न होते हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं ॥३०॥

अनामयं तन्महदुद्यतं यशो वाचो विकारं कवयो वदन्ति
यस्मिन् जगत्सर्वमिदं प्रतिष्ठितं ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति
इति श्रीमहाभारते वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि
सनत्सुजातवाक्ये चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४४॥

सब विद्वान, बुराइयों से हीन, महान, विशाल यशधारी, वाणी के वर्णन में आने वाले, पदार्थों से भिन्न, ब्रह्म का कथन

करते हैं। यह सारा जगत् उसी के आधार पर प्रतिष्ठित है। जो उसको जान लेते हैं, वे अमृत हो जाते हैं ॥३१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सनत्सुजातपर्व में सनत्सुजात के उपदेश का चवालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

पैतालीसवां अध्याय

सनत्सुजात उवाच—

शोकः क्रोधश्च लोभश्च कामो मानः परासुता।
ईर्ष्या मोहो विधित्सा च कृपाऽसूया जुगुप्सुता ॥१॥
द्वादशैते महादोषा मनुष्यप्राणनाशनाः।

सनत्सुजात बोले—हे राजन्! शोक, क्रोध, लोभ, काम, मान, अत्यन्त निद्रा, ईर्ष्या, (डाह) मोह, सब कुछ मैं ही करता हूं—ऐसा अहङ्कार, कायरता, निन्दा और निन्दित कर्म-ये बारह महादोष, मनुष्य के प्राण-नाशक है ॥१॥

एकैकमेते राजेन्द्र मनुष्यान्पर्युपासते।
यैराविष्टो नरः पापं मूढसंज्ञो व्यवस्यति ॥२॥

हे राजेन्द्र! इनमें से एक भी दोष यदि मनुष्य को प्राप्त हो जाता है, तो ये सारे ही उसको प्राप्त हो जाते हैं। इनसे आविष्ट हुआ मनुष्य, अज्ञानी होकर पाप कर्म करने लगता है ॥२॥

स्पृहयालुरुग्रःपरुषो वावदान्यः क्रोधं बिभ्रन्मनसा वै विकत्थी
नृशंसधर्माः षडिमे जना वै प्राप्य्ऽप्यर्थं नोत सभाजयन्ते

विषयाभिलाषी, उग्र और कठोरप्रकृति, अनुदार, क्रोधी, मन से भी आत्मप्रशंसक, कुत्सित कर्मकारी-ये छः तरह के पुरुष, अपने अर्थ की सिद्धि पाकर भी उससे संयुक्त नहीं रहते हैं ॥३॥

सम्भोगसंविद्विषमोऽतिमानी दत्वा विकत्थी कृपणो दुर्बलश्च
बहुप्रशंसी वनिताद्विट् सदैव सप्तैवोक्ताः पापशीलानृशंसाः

मैथुनाभिलाषी, विषम स्वभावधारी, अत्यन्त अभिमानी, कृपण होकर बड़ाई मारने वाला, दुर्बल, अहङ्कारी, अपनी साध्वी स्त्री का द्वेषी, इन सात दोषों से युक्त पुरुष, पापी और नीच माना गया है ॥४॥

धर्मश्च सत्यञ्च तपो दमश्च अमात्सर्य ह्रीस्तितिक्षाऽनसूया।
दानं श्रुतं चैव धृतिः क्षमा च महाव्रता द्वादश ब्राह्मणस्य

धर्म, सत्य, तप, जितेन्द्रियता, किसी से डाह नहीं करना, लज्जा, सहन-शीलता, अनिन्दा, दान, शास्त्र, धैर्य, क्षमा—ये बारह ब्राह्मण के महाव्रत हैं ॥५॥

योनैतेभ्यःप्रच्यवेद्द्वादशभ्यः सर्वामपीमांपृथिवींसशिष्यात्
त्रिभिर्द्वाभ्यामेकतोवाऽर्थितोयोनाऽस्यस्वमस्तीतिचवेदितव्यम्

जो ब्राह्मण इन बारह महाव्रतों का परित्याग नहीं करता, वह सारी पृथिवी को शिष्य बना सकता है। इन गुणों में से ब्राह्मण

एक, दो, तीन गुणों का भी संग्रह कर ले, तो यह धनी नहीं है—ऐसा नहीं समझना चाहिए अर्थात् ब्राह्मण को इनमें से एक दो गुण की प्राप्ति भी ब्रह्मवर्चस्वी बना देती हैं ॥६॥

दमस्त्यागोऽथाऽप्रमाद इत्येतेष्वमृतं स्थितम् ।
एतानि ब्रह्ममुख्यानां ब्राह्मणानां मनीषिणाम् ॥७॥

दम, त्याग और अप्रमाद—इन तीनों में अमृत स्थित है। मनीषी ब्राह्मणों में मुख्य ब्राह्मणों के ये अवश्य ग्रहण करने योग्य गुण हैं ॥७॥

सद्वाऽसद्वा परिवादो ब्राह्मणस्य न शस्यते ।
नरकप्रतिष्ठास्ते स्युर्य एवं कुर्वते जनाः ॥८॥

सत्य वा झूँठ कैसी भी निन्दा हो—ब्राह्मण को नहीं करनी चाहिए या ब्राह्मण की नहीं करनी चाहिए। जो ऐसा करते हैं—वे मनुष्य नरक को जाते हैं ॥८॥

मदोऽष्टादशदोषः स स्यात्पुरा योऽप्रकीर्तितः ।
लोकद्वेष्यं प्रातिकूल्यमभ्यसूया मृषा वचः ॥९॥
कामक्रोधौ पारतन्त्र्यं परिवादोऽथ पैशुनम् ।
अर्थहानिर्विवादश्च मात्सर्यं प्राणपीडनम् ॥१०॥
ईर्ष्या मोदोऽतिवादश्च संज्ञानाशोऽभ्यसूयिता ।
तस्मात्प्राज्ञो न माद्येत सदा ह्येतद्विगर्हितम् ॥११॥

अभिमान में आठ दोष पहिले ही गिना दिए हैं। मद में लोक से द्वेष, सब के विरुद्ध आचरण, निन्दा, मिथ्या भाषण,

काम, क्रोध, परतन्त्रता, अन्य के दोष दिखाना, पिशुनता, (चुगली) धन की हानि, विवाद, डाह, प्राणों को पीड़ा, ईर्ष्या, हर्षोन्मत्त, बकवाद, ज्ञानहीनता, घृणा आदि दोष भी होते हैं, इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को कभी मदोन्मत्त नहीं होना चाहिए—यह सदा विगर्हित है ॥११॥

सौहृदे वै षड्गुणा वेदितव्याः प्रिये हृष्यन्त्यप्रिये च व्यथन्ते
स्यादात्मनःसुचिरं याचतेयो ददात्ययाच्यमपिदेयं खलुस्यात्

मित्रता में छः गुण माने गए हैं—अपने मित्र, अपना प्रिय कार्य सम्पादित होने पर प्रसन्न और अप्रिय कार्य उपस्थित होने पर क्लेशित होते है। जो मित्रों की चीज है, यदि आवश्यकता के समय उसकी याचना की तो वह प्राप्त हो सकती है। सच्चा मित्र अदेय वस्तु को भी देने योग्य मानता है--यही क्या? समय पर दे ही देता है ॥१२॥

इष्टान्पुत्रान्विभवान्स्वांश्च दारानभ्यर्थितश्चाऽर्हति शुद्धभावः
त्यक्तद्रव्यः संवसेन्नेह कामाद्भुंक्ते कर्म स्वाशिषं बाधते च

जो शुद्ध भाव मित्र हैं, वे मित्र के धर्मानुकूल कार्य की सिद्धि के लिए प्रिय पुत्र, अपनी सम्पत्ति, और स्त्रियोंको भी कठिनाई के समय सहायता को भेज देता है। यह अपने द्रव्य से सहायता करके भी किसी प्रत्युपकार की वाञ्छा नहीं रखता है। सन्मित्र तो अपने कर्म से ही अपनी सहायता करना चाहता है—यह अपनी सारी स्वार्थमयी इच्छाओं को रोक लेता है ॥१३॥

द्रव्यवान् गुणवानेवं त्यागी भवति सात्विकः ।
पञ्चभूतानि पञ्चभ्यो निवर्तयति तादृशः ॥१४॥

जो सात्विक गृहस्थी, द्रव्यवान्, गुणवान् और त्यागी होते हैं, वे अपनी पांचों इन्द्रियों को पांचों विषयों से रोक लेते हैं ॥१४

एतत्समृद्धमप्यूर्ध्वं तपो भवति केवलम् ।
सत्वात्प्रच्यवमानानां सङ्कल्पेन समाहितम् ॥१५॥

यह समृद्ध और सर्वोत्कृष्ट केवल तप है, जो इस समय आत्मिक योग से च्युत नहीं होते हैं, उनकी संकल्प से ही सिद्धि होने लगती है ॥१५॥

यतो यज्ञाः प्रवर्धन्ते सत्यस्यैवाऽवरोधनात् ।
मनसाऽन्यस्य भवति वाचाऽन्यस्याऽथ कर्मणा॥१६॥

सत्य आत्मा के ज्ञान के अवरोध (रुकावट) से ही इन सकाम यज्ञ यागों की प्रवृत्ति होती है। इनसे किसी को मन, किसी को वाणी और किसी को कर्म की सिद्धि प्राप्त होती है॥१६

सङ्कल्पसिद्धं पुरुषमसङ्कल्पोऽधितिष्ठति ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण किञ्चाऽन्यदपि मे शृणु ॥१७॥

जिस पुरुष की संकल्प सिद्धि हो जाती है—वह फिर कुछ संकल्प करता भी नहीं है और जो सच्चा ब्राह्मण होता है, वह तो बिल्कुल ही असंकल्प हो जाता है। अब मैं तुमको इस विषय में कुछ और बताता हूं—तुम सुनो ॥१७॥

अध्यापयेन्महदेतद्यशस्यं वाचो विकाराः कवयो वदन्ति ।
अस्मिन्योगे सर्वमिदं प्रतिष्ठितं ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति

इस महान् आत्मज्ञान को ही सारे मनुष्यों को सिखावे, इसके अतिरिक्त अन्य शास्त्रों को तो विद्वान् वाणी के विकार मानते हैं। इस आत्मयोग में सब कुछ स्थित है—जो इसको जान लेते हैं—वे अमृत हो जाते हैं ॥१८॥

न कर्मणा सुकृतेनैव राजन्सत्यं जयेज्जुहुयाद्वा यजेद्वा।
नैतेन बालोऽमृत्युमभ्येति राजन् रतिंचाऽसौ न लभत्यंतकाले

हे राजन्! उत्तम रीति से सम्पादित किए हुए यज्ञादि सकाम कर्मों से सत्य ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती है, चाहे कितना ही हवन या यजन किया जावे। हे राजन्! अज्ञानी मनुष्य कभी मृत्यु को पार नहीं कर सकता है और न यह अन्त काल में आनन्द ही पा सकता है ॥१९॥

तूष्णीमेक उपासीत चेष्टेत मनसाऽपि न ।
तथा संस्तुतिनिंदाभ्यां प्रीतिरोषौ विवर्जयेत् ॥२०॥

ज्ञानी मनुष्य चुपचाप ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय करता है-वह मन तक से चेष्टा नहीं करता है। यह ज्ञानी, प्रशंसा और निन्दा में प्रीति और कोप का परित्याग कर देता है ॥२०॥

अत्रैव तिष्ठन् चत्रिय ब्रह्माऽऽविशति पश्यति ।
वेदेषु चाऽनुपूर्व्येण एतद्विद्वन्ब्रवीमि ते ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्य-मुद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि सनत्सुजातवाक्ये पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४५॥

हे राजन ! ज्ञानी मनुष्य, इसी देह से ब्रह्म में प्रविष्ट होकर जीवन्मुक्त हो जाता है और ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सनत्सुजातपर्व में सनत्सुजात के वाक्य का पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

छियालीसवां अध्याय

सनत्सुजात उवाच—

यत्तच्छुक्रं महज्जोतिर्दीप्यमानं महायशः ।
तद्वै देवा उपासते तस्मात्सूर्यो विराजते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥१॥

सनत्सुजात कहने लगे—हे राजन ! जो शुक्र, महान, दीप्यमान, ज्योति है, जो महान यश है, देवता (विद्वान)उसी की उपासना करते हैं। यह सूर्य, उसी ब्रह्म से प्रकाशमान है। उस सनातन, तेजो रूप ब्रह्म को योगी लोग ही देख पाते हैं ॥१॥

शुक्राद्ब्रह्म प्रभवति ब्रह्म शुक्रेण वर्द्धते ।
तच्छुक्रं ज्योतिषां मध्येऽतप्तं तपति तापनम् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥२॥

उस तेजो रूप परब्रह्म से माया (प्रकृति) का आविर्भाव होता है। ब्रह्म तो अपने तेज से स्वयं सबसे उत्कृष्ट है। मैं तो सारी सूर्य आदि ज्योतियों से उसी को तेजो मय मानता हूं, वही इन नहीं तपने वाले, तेजस्वी पदार्थों के तपाने में भी समर्थ है। इस तेजोरूप सनातन ब्रह्म को योगी जन ही देख सकते हैं ॥२॥

अपोऽथअद्भ्यःसलिलस्यमध्ये उभौदेवौ शिश्रियातेऽन्तरिक्षे
अतन्द्रितः सवितुर्विवस्वानुभो बिभर्ति पृथिवीं दिवं च।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्त सनातनम् ॥३॥

माया से जलादि तत्व और जलादितत्वों के मध्य में स्थित अन्तरिक्ष में ये दो प्रकाशमान देव (सूर्य चन्द्र) प्रकाशित हो रहे हैं इनमें सर्वोत्पादक पर ब्रह्म से उत्पन्न सूर्य और चन्द्र, नित्य नियम से पृथिवी और द्युलोक इन दोनों के धारक हैं, इन सबके प्रकाशक सनातन ब्रह्म को योगी देख पाते हैं ॥३॥

उभौ च देवौ पृथिवीं दिवं च दिशः शुक्रो भुवनं विभर्ति।
तस्माद्दिशः सरितश्च स्रवन्ति तस्मात्समुद्रा विहिता महान्तः
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥४॥

इन दोनों देव (सूर्य चन्द्रमा) पृथिवी, द्युलोक दिशा और भुवनों को तेजोमय ब्रह्म धारण किए हुए हैं, उसी ब्रह्म से दिशा उत्पन्न होती है, नदी बहती हैं और बड़े २ समुद्र बने हुए हैं। इस सनातन ब्रह्म को योगी देख पाते हैं ॥४॥

चक्रे रथस्य तिष्ठन्तोऽभ्र वस्याऽव्ययकर्मणः ।
केतुमन्तं वहन्त्यश्वास्तं दिव्यमजरं दिवि ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ।।५।।

लगातार चलने और निरन्तर क्रिया करने वाले, रथ के चक्र पर चमकने वाली किरणें, किरणधारी उस दिव्य,अजर तेज (सूर्य) को द्युलोक में धारण किए हुए हैं या लगातार जन्म मरण में प्राप्त होने वाले, कर्मकारी, शरीर रूपी रथ के कर्म चक्र में फँसे हुए जीव, हृदयाकाश में तेजस्वी अजर तेज को प्राप्त करते हैं। इस ब्रह्म (सूर्य के धारक)को योगी जन ही देख पाते हैं ।।५।।

न सादृश्ये तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम्
मनीषयाऽथो मनसा हृदा च य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ।।६।।

कोई संसार में ऐसा रूप नहीं है, जो इस ब्रह्म के बराबर हो सके और न इस रूप को कोई देख ही सकता है। जो बुद्धि, मन और हृदय से इनको देखता है, वही इसको जानता है और वही अमृत हो जाता है। योगी जन ही उस सनातन ब्रह्म को देख पाते हैं ।।६।।

द्वादशपूगां सरितं पिबन्तो देवरक्षिताम् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ।।७।।

जीवात्मा से सुरक्षित, द्वादश, (दशेन्द्रिय, मन, बुद्धि) मार्गों से बहने वाली अविद्या रूप नदी का पान कर जाने वाले योगी जन ही उस सनातन ब्रह्म को देख पाते हैं ।।७।।

तदर्धमासं पिबति सञ्चित्य भ्रमरो मधु।
ईशानः सर्वभूतेषु हविर्भूतमकल्पयत्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥८॥

जैसे भ्रमर मधु का सञ्चय करके उसको अर्ध-मास तक खाता रहता है, उसी तरह यह जीवात्मा भी कर्मों का सञ्चय करके कर्म फल भोगता है। यह भ्रमर रूपी जीवात्मा, सब भूत (तत्वों) का स्वामी है, इसने ही यज्ञ (कर्म) को रच रखा है। कोई योगी आत्मा ही उस सनातन ब्रह्म को देख पाते हैं ॥८॥

हिरण्यपर्णमश्वत्थमभिपद्य ह्यपक्षकाः।
ते तत्र पक्षिणो भूत्वा प्रपतन्ति यथादिशम्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥९॥

पक्ष (कर्मों) से हीन (आत्मा) हिरण्य के पर्ण वाले अश्वत्थ (माया) में लिपट कर अनादि काल से पक्ष (कर्म) वाले (जीवात्मा) हो रहे हैं और अपने २ कर्मानुसार दिशाओं (योनियों) में गिर (जन्म ले) रहे हैं। इनमें जो योगी हैं, वे ही सनातन ब्रह्म को देख पाते हैं ॥९॥

पूर्णात्पूर्णान्युद्धरन्ति पूर्णात्पूर्णानि चक्रिरे।
हरन्ति पूर्णात्पूर्णानि पूर्णमेवाऽवशिष्यते।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥१०॥

पूर्ण से पूर्ण ही उत्पन्न होता है और पूर्ण, पूर्ण को ही बनाता है। पूर्ण से पूर्ण का ही संहार होता है और अन्त में पूर्ण ही शेष

रहता है अर्थात् पूर्ण ब्रह्म का अंश जीवात्मा भी परब्रह्म ही है। इस परब्रह्म को योगी जन देख पाते हैं ॥१०॥

तस्माद्वै वायुरायातस्तस्मिंश्च प्रयतः सदा।
तस्मादग्निश्च सोमश्च तस्मिंश्च प्राण आततः ॥११॥

उस ब्रह्म से वायु विस्तृत हुआ, उसी में चलता रहता है। उसी ब्रह्म में अग्नि, सोम और प्राण, वायु विकास पाते हैं ॥११॥

सर्वमेव ततो विद्यात्तत्तद्वक्तुं न शक्नुमः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥१२॥

यह सारा जगत्, उसी ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है, हम भिन्न २ करके उस ब्रह्म का वर्णन नहीं कर सकते हैं, उस सनातन ब्रह्म का तो योगी जन ही साक्षात्कार कर पाते हैं ॥१२॥

अपानं गिरति प्राणः प्राणं गिरति चन्द्रमाः।
आदित्यो गिरते चन्द्रमादित्यं गिरते परः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥१३॥

प्राण अपान को, चन्द्रमा (मन) प्राण को, आदित्य (बुद्धि) चन्द्र (मन) को और आदित्य (बुद्धि) को पर (आत्मा) में लीन होता हुआ जानो। इस परमात्मा सनातन ब्रह्म को योगी ही देख सकते हैं ॥१३॥

एकं पादं नोत्क्षिपति सलिलाद्धंस उच्चरन्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥१४॥

पानी से निकल कर खड़ा हुआ हंस कभी २ एक पाद को नहीं निकालता है। इसी तरह गुप्त सनातन ब्रह्म को योगी ही देख पाते हैं ॥१४॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा लिङ्गस्य योगेन स याति नित्यम्।
तमीशमीड्यमनुकल्पमाद्यं पश्यन्ति मूढा न विराजमानम्
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥१५॥

अंगुष्ठ प्रमाण शरीर में निवास करने वाला जीवात्मा है। यह लिङ्ग शरीर के योग से नित्य घूमता रहता है। उस स्तुति करने योग्य, सर्वेश्वर, प्रत्येक सृष्टि के रचने वाले, सब के आदि भूत, विराजमान ब्रह्म को मूर्ख जन, नहीं जान सकते हैं। उस सनातन ब्रह्म को तो योगीजन ही देख सकते हैं ॥१५॥

असाधना वाऽपि ससाधना वा समानमेतद्दृश्यते मानुषेषु
समानमेतदमृतस्येतरस्य मुक्तास्तत्र मध्व उत्सं समापुः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥१६॥

साधना करने वाले असाधना करने वाले पुरुषों में ब्रह्म, समान रूप से दिखाई देता है। मुक्त और बद्ध पुरुष इन दोनों में भी ब्रह्म समान ही है, परन्तु माया से मुक्त हुए आनन्द स्वरूप प्राप्त करके ब्रह्म को पराकाष्ठा को प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे ही योगी सनातन ब्रह्म को जान पाते हैं ॥१६॥

उभौलोकौविद्ययाव्याप्ययाति तदाहुतं चाऽऽहुतमग्निहोत्रम्
मा ते ब्राह्मी लघुतामादधीत प्रज्ञानं स्यान्नाम धीरा लभन्ते
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥१७॥

मनुष्य, ज्ञान से युक्त होकर मर्त्यलोक और ब्रह्मलोक दोनों में घूमता है अर्थात् मर्त्यलोक में जीवन्मुक्त और ब्रह्मलोक में स्वच्छन्द घूमता है। यह ब्राह्मी स्थिति मनुष्य की लघुता नहीं करती है। ये धीर, अपनी प्रज्ञान संज्ञा को प्राप्त हो जाते हैं। इस सनातन ब्रह्म को योगीजन ही देखते हैं ॥१७॥

एवंरूपो महात्मा स पावकं पुरुषो गिरन्।
यो वै तं वेद पुरुषं तस्येहाऽर्थो न रिष्यते।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥१८॥

महान आत्मा का यही स्वरूप है। यह पुरुष, सबको पवित्र करता है। जो इस पुरुष को जान लेता है—उसको कुछ भी काम शेष नहीं रह जाता है। इस सनातन ब्रह्म को योगीजन ही देख सकते हैं ॥१८॥

यः सहस्रं सहस्राणां पक्षान्सन्तत्य सम्पतेत्।
मध्यमे मध्य आगच्छेदपि चेत्स्यान्मनोजवः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥१९॥

जो ब्रह्म, सहस्रों में सहस्र (लाखों) पक्षों को फैलाकर उड़ते हैं, वे वेगशीलों के मध्य में भी पहुंच जाते हैं—चाहे वे वेगवान् पदार्थ मन के समान वेगशील ही क्यों न हो। ऐसे सनातन ब्रह्म को योगी ही देख सकते हैं ॥१९॥

न दर्शने तिष्ठति रूपमस्य पश्यन्ति चेनं सुविशुद्धसत्वाः।
हितो मनीषी मनसा न तप्यते ये प्रव्रजेयुरमृतास्ते भवन्ति
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥२०॥

इस ब्रह्म का रूप देखने में नहीं आता है। जिनके मन बिल्कुल शुद्ध हो गए हैं, वे ही इस रूप को देख सकते हैं। सबका हितकारी, ज्ञानी, जब मन में किसी प्रकार का चिन्ता नहीं करता, तब यदि वह संन्यास का ग्रहण कर लेता है—तो वह अमृत हो जाता है—जा ऐसा करते हैं, वे सब अमृत ही हैं। ऐसे सनातन ब्रह्म को ज्ञान योगी ही देख सकते हैं ॥२०॥

गूहन्ति सर्पा इव गह्वराणि स्वशिक्षया स्वेन वृत्तेन मर्त्याः
तेषु प्रमुह्यन्ति जना विमूढा यथाऽध्वानं मोहयन्ते भयाय।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥२१॥

मनुष्य अपनी शिक्षा और आचरण से सर्प की भांति अपने मर्मस्थानों को सुगुप्त रखना चाहते हैं। मूर्ख मनुष्य ऐसा करने में भूल कर बैठता है, जैसे भय के कारण लोग मार्ग से मोहित हो जाते हैं। ऐसे सनातन ब्रह्म का योगी जन ही ध्यान कर सकते हैं।

नाऽहंसदाऽसत्कृतःस्यांनमृत्युर्नचाऽमृत्युरमृतंमेकुतःस्यात्
सत्यानृते सत्यसमानबन्धे सतश्च योनिरसतश्चैक एव।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥२२॥

न तो मैं सदा सत्कार से हीन हूं और न मेरी कभी मृत्यु है एवं न अमृत्यु ही है। जब यह दशा है, तो अमृत वहां से प्राप्त हो सकता है—यह कैसे कहा जा सकता है, कि सत और असत् इनका सत्य और समान योग्य हैं। इस सारे सत् और असत का एक ब्रह्म ही योनि है। उस ब्रह्म को योगी जन देख पाते हैं ॥२२॥

न साधुना नोत असाधुना वाऽसमानमेतद् दृश्यते मानुषेषु
समानमेतदमृतस्य विद्यादेवं युक्तो मधु तद्वै परीप्सेत् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥२३॥

ब्रह्म, मनुष्यों में साधु पुरुष या असाधु किसी के समान नहीं है। यह तो अमृत के समान धर्म वाला है। जो इस तरह करता है—वही मिष्ट पदार्थ को प्राप्त करता है। इस सनातन ब्रह्म को योगीजन देखते रहते हैं ॥२३॥

नाऽस्याऽतिवादाहृदयंतापयन्तिनाऽनधीतंनाऽऽहुतमग्निहोत्रम्
मनो ब्राह्मी लघुतामादधीत प्रज्ञां चाऽस्मै नाम धीरा लभन्ते
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥२४॥

इस ब्रह्मज्ञानी के हृदय को निन्दा-वाद, पीड़ित नहीं कर सकते हैं और कुछ नहीं पढ़ना तथा यज्ञ नहीं करना भी पीड़ा का कारण नहीं है। ब्राह्मी स्थिति, इसके मन को हलका बना देती है और इस मन के हलका करने के लिए धीर लोग, ज्ञान की प्राप्ति करते हैं। इस ज्ञान स्वरूप सनातन ब्रह्म को योगी जन ही जानते है ॥२४॥

एवं यः सर्वभूतेषु आत्मानमनुपश्यति ।
अन्यत्राऽन्यत्र युक्तेषु किं स शोचेत्ततः परम् ॥२५॥

जो मनुष्य, सब प्राणियों में एक आतमा को देखते हैं, वे अन्य मनुष्यों को अन्य २ विषयों में फंसा देखकर भी वे उनका कुछ शोक नहीं करते हैं ॥२५॥

यथोदपाने महति सर्वतः संप्लुतोदके ।
एवं सर्वेषु वेदेषु आत्मानमनुजानतः ॥२६॥

सब ओर से जल के प्रवाह आने पर जैसे बड़े से बड़े कुँए का कुछ भी प्रयोजन नहीं रह जाता है—इतना ही वेद के कर्मकाण्ड में आत्मा के पहिचान लेने वाले का प्रयोजन रह जाता है ॥२६॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो महात्मा न दृश्यतेऽसौ हृदि सन्निविष्टः
अजश्चरोदिवारात्रमतन्द्रितश्चसतंमत्वाकविरास्तेप्रसन्नः ॥

अंगुष्ठ मात्र, आत्मा का प्रमाण कल्पना किया गया है। वह हृदय में संनिविष्ट हुआ भी दिखाई नहीं देता है। वह आत्मा अज, सब प्राणियों में विद्यमान, रात दिन सावधान है। जो इस को जान लेता है—वह बड़ा प्रसन्न कवि (ज्ञानी) माना जाता है।

अहमेव स्मृतो माता पिता पुत्रोऽस्म्यहं पुनः ।
आत्माऽहमपि सर्वस्य यच्च नाऽस्ति यदस्ति च ॥२८

मैं ही माता, मैं ही पिता और मैं ही पुत्र हूं, जो हो चुके और आगे होने वाले हैं, मै उन सबका आत्मा हूं ॥२८॥

पितामहोऽस्मि स्थविरः पिता पुत्रश्च भारत ।
ममैव यूयमात्मस्था न मे यूयं न वो वयम् ॥२६॥

हे भारत ! मैं ही पितामह ,मैं ही वृद्ध, मैं ही पिता और पुत्र हूं। तुम मेरी ही आत्मा में स्थित हो, परन्तु मैं तुम्हारा और तुम मेरे नहीं हो ॥२६॥

आत्मैव स्थानं मम जन्म चाऽऽत्मा ओतप्रोतोऽहमजरप्रतिष्ठः
अजश्चरो दिवारात्रमतन्द्रितोऽहं मां विज्ञाय कविरास्ते प्रसन्नः

आत्मा ही मेरा स्थान और आत्मा ही मेरा जन्म है। मैं सारे ही ब्रह्माण्ड में ओतप्रोत और अजर रूप से स्थित हूं। अज होकर भी आलस्य रहित होकर सब में व्याप्त हूं—मुझे जानकर ही मनुष्य शुद्ध विद्वान् होता है ॥३०॥

अणोरणीयान्सुमनाः सर्वभूतेषु जाग्रति।
पितरं सर्वभूतेषु पुष्करे निहितं विदुः ॥३१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सनत्सुजातवाक्ये षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥

समाप्तमिदं सनत्सुजातपर्व ॥

अणु से भी सूक्ष्म शुद्ध आत्मा सब भूतों में विद्यमान है। सब प्राणियों के पालक उस आत्मा को हृदय कमल में योगीजन ही देख पाते हैं ॥३१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सनत्सुजातपर्व में सनत्सुजात के कथन का छियालीसवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर सनत्सुजातपर्व भी समाप्त हो गया।

अथ यानसन्धिपर्व
सैतालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

एवं सनत्सुजातेन विदुरेण च धीमता ।
सार्धं कथयतो राज्ञः सा व्यतीयाय शर्वरी ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इस प्रकार सनत्सुजात और बुद्धिमान् विदुर के साथ बात करते २ राजा धृतराष्ट्र की रात व्यतीत हो गई ॥१॥

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां राजानः सर्व एव ते ।
सभामाविविशुर्हृष्टाः सूतस्योपदिदृक्षया ॥२॥

उस रात के व्यतीत होने पर सारे राजा, सञ्जय के मुखसे पाण्डवों के विचार सुनने के लिए बड़ी प्रसन्नता से राज-सभा में प्रविष्ट हुए ॥२॥

शुश्रूषमाणाः पार्थानां वाचो धर्मार्थसंहिताः ।
धृतराष्ट्रमुखाः सर्वे ययू राजसभां शुभाम् ॥३॥

ये सारे धृतराष्ट्र आदि राजा, पाण्डवों के धर्म और नीति के अनुसार वचन सुनने की इच्छा से अपनी सुन्दर राजसभा में पहुंचे ॥३॥

सुधावदातां विस्तीर्णां कनकाजिरभूषिताम् ।
चन्द्रप्रभां सुरुचिरां सिक्तां चन्दनवारिणा ॥४॥

रुचिरैरासनैः स्तीर्णा काञ्चनैर्दारवैरपि ।
अश्मसारमयैर्दान्तैः स्वास्तीर्णैः सोत्तरच्छदैः ॥५॥

यह सभा, सुधा (कली) से स्वच्छ, लम्बी चौड़ी, सुवर्ण जड़े हुए आँगन वाली, चन्द्रमा के तुल्य श्वेत, सुन्दर, चन्दन के जल से सींची हुई, सुन्दर सोने और लकड़ी के आसनों से सुशोभित, तथा उत्तम २ लोह के विशाल, सुन्दर बिछोने से युक्त, आसनों से अलंकृत थी ॥४-५॥

भीष्मो द्रोणः कृपः शल्यः कृतवर्मा जयद्रथः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तश्च वाह्लिकः ॥६॥
विदुरश्च महाप्राज्ञो युयुत्सुश्च महारथः ।
सर्वे च सहिताः शूराः पार्थिवा भरतर्षभ ॥७॥

हे भरतर्षभ ! भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य, कृतवर्मा, जयद्रथ, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, वाह्लिक, महाप्राज्ञ विदुर, महारथी युयुत्सु—ये सारे शूरवीर महारथी इकट्ठे ही धृतराष्ट्र के साथ राजसभा में प्रविष्ट हुए ॥६-७॥

धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विविशुस्तां सभां शुभाम् ।
दुःशासनश्चित्रसेनः शकुनिश्चापि सौबलः ॥८॥
दुर्मुखो दुःसहः कर्ण उलूकोऽथ विविंशतिः ।
कुरुराजं पुरस्कृत्य दुर्योधनममर्षणम् ॥९॥
विविशुस्तां सभां राजन्सुरा शक्रसदो यथा ।

हे राजन्! दुःशासन, चित्रसेन, सुबल-पुत्र शकुनि, दुर्मुख, दुःसह, कर्ण, उलूक, विविंशति आदि कौरव वीर, असहिष्णु कुरुराज दुर्योधन के साथ इन्द्र की सभा में देवों के समान, कौरव, राजसभा में प्रविष्ट हुए ॥८-९॥

आविशद्भिस्तदा राजञ्शूरैः परिघबाहुभिः ॥१०॥
शुशुभे सा सभा राजन्सिंहैरिव गिरेर्गुहा ।

हे राजन्! परिघ (अर्गला) के समान भुजाधारी, घुसते हुए कौरव शूरवीरों से यह राजसभा ऐसी प्रतीत होती थी जैसी—सिंहों से पर्वत की गुफा सुशोभित होती है ॥१०॥

ते प्रविश्य महेष्वासाः सभां सर्वे महौजसः ॥११॥
आसनानि विचित्राणि भेजिरे सूर्यवर्चसः ।

ये सारे महाधनुर्धर, महा ओजस्वी वीर, राजसभा में प्रविष्ट होकर सूर्य के समान चमचमाते हुए विचित्र आसनों पर जा बैठे ॥११॥

आसनस्थेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत ॥१२॥
द्वाःस्थो निवेदयामास सूतपुत्रमुपस्थितम् ।
अयं सरथ आयाति योऽयासीत्पाण्डवान्प्रति ॥१३॥
दूतो नस्तूर्णमायातः सैन्धवैः साधुवाहिभिः ।
उपेयाय स तु क्षिप्रं रथात्प्रस्कन्द्य कुण्डली ।
प्रविवेश सभां पूर्णां महीपालैर्महात्मभिः ॥१४॥

हे भारत! इन सब राजाओं के आसनों पर बैठ जाने के बाद द्वारपाल ने आकर कहा, कि सूत-पुत्र, सञ्जय उत्तम प्रकार से रथ को ले जाने वाले अश्वों से युक्त रथ में बैठा हुआ, बड़ी शीघ्रता से आकर उपस्थित हो गया है, जो पाण्डवों के पास से लौटकर आया है। रथ से उतर कर कुण्डलधारी, सञ्जय, वहां आया और अनेक वीर राजाओं के साथ २ खचाखच भरी हुई सभा में प्रविष्ट हुआ॥१२-१४॥

सञ्जय उवाच—

प्राप्तोऽस्मि पाण्डवान्गत्वा तं विजानीत कौरवाः।
यथावयः कुरून्सर्वान् प्रतिनन्दन्ति पाण्डवाः॥१५॥
अभिवादयन्ति वृद्धांश्च वयस्यांश्च वयस्यवत्।
यूनश्चाऽभ्यवदन्पार्थाः प्रतिपूज्य यथावयः॥१६॥

सञ्जय ने कहा—हे कौरव-वीरो! मैं पाण्डवों के पास जाकर लौट आया हूं—यह आप लोगों को ज्ञात होगा। पाण्डवों ने जिस कुरुवीर की जैसी आयु है, उसी के अनुसार शिष्टाचार कहा है। उन्होंने वृद्धों को प्रणाम, अपनी आयु वालों से आयु वालों के व्यवहार के तुल्य नमस्कार तथा कौरव युवकों को अपनी २ आयु के अनुसार अभिवादन किया है॥१५-१६॥

यथाऽहं धृतराष्ट्रेण शिष्टः पूर्वमितो गतः।
अब्रुवं पाण्डवान्गत्वा तन्निबोधत पार्थिवः॥१७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयप्रत्यागमने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

हे महीपालो ! जिस तरह यहां से जाने समय राजा धृतराष्ट्रने मुझे पूर्वकाल में समझा दिया था, उसी तरह मैंने जाकर पाण्डवों को कह दिया—तुम उस सारे प्रकरण को सुन लो ॥१७॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसंधिपर्व में संजय के लौट आने का सतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

अड़तालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

पृच्छामि त्वां संजय राजमध्ये किमब्रवीद्वाक्यमदीनसत्त्वः।
धनंजयस्तात युधां प्रणेता दुरात्मनां जीवितच्छिन्महात्मा

धृतराष्ट्र बोला—हे सञ्जय ! सब से प्रथम मैं तुमसे यह पूछता हूं, कि महाबली, दुष्टों के जीवनों का अन्त कर देने वाले, युद्ध विजयी, महात्मा अर्जुन ने राजाओं के मध्य में क्या कहा ?

संजय उवाच—

दुर्योधनो वाचमिमां शृणोतु यदब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानः।
युधिष्ठिरस्याऽनुमते महात्मा धनंजयः शृण्वतः केशवस्य ॥

सञ्जय बोला—युद्ध के अभिलाषी, अर्जुन ने श्रीकृष्ण के सुनते २ राजा युधिष्ठिर की सम्मति से जो बात कही है—उसको दुर्योधन ध्यान से सुन ले ॥२॥

अन्वत्रस्तो बाहुवीर्यं विदान उपह्वरे वासुदेवस्य धीरः ।
अवोचन्मांयोत्स्यमानःकिरीटीमध्येब्रूयाधार्तराष्ट्रं कुरूणाम्

निर्भीक, बाहुबल में प्रौढ़, धीर, युद्ध के अभिलाषी, अर्जुनने श्रीकृष्ण की उपस्थिति में मुझसे कहा—हे सञ्जय! तुम कौरवों की सभा में राजा दुर्योधन से कह देना ॥३॥

संशृण्वतस्तस्य दुर्भाषिणो वै दुरात्मनः सूतपुत्रस्य सूत ।
यो योद्धुमाशंसति मां सदैव मन्दप्रज्ञः कालपक्वोऽतिमूढः

यह बात तुम दुर्योधन से भी उसी समय कहना, जिस समय कटुभाषी, दुरात्मा, सूत-पुत्र कर्ण सुन रहा हो, जो बुद्धिहीन, मूर्ख, काल का ग्रास, कर्ण मुझसे सदा युद्ध की अभिलाषा करता रहता है ॥४॥

येवैराजानःपांडवायोधनायसमानीताःशृण्वतां चापि तेषाम्
यथा समग्रं वचनं मयोक्तं सहामात्यं श्रावयेथा नृपं तत् ॥

जो राजा पाण्डवों से युद्ध करने आए हो, उनके और मन्त्रियों के सुनते हुए ही मेरे समस्त वचनों को राजसभा में उस राजा को सुना देना ॥५॥

यथा नूनं देवराजस्य देवाः शुश्रूषंते वज्रहस्तस्य सर्वे ।
तथाऽशृण्वन्पांडवाःसृंजयाश्चकिरीटिनावाचमुक्तांसमर्थाम्

जिस तरह देवता, वज्रधारी इन्द्र के वचन को सुनना चाहते हैं, वैसे ही सारे पाण्डव और सृञ्जयों ने अर्जुन की कही हुई, ओज भरी वाणी सुनी ।।६।।

इत्यब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानो गांडीवधन्वा लोहितपद्मनेत्रः ।
न चेद्राज्यं मुंचति धार्तराष्ट्रो युधिष्ठिरस्याऽऽजमीढस्य राज्ञः
अस्ति नूनं कर्म कृतं पुरस्तादनिर्विष्टं पापकं धार्तराष्ट्रैः ।
येषां युद्धं भीमसेनार्जुनाभ्यां तथाऽश्विभ्यां वासुदेवेन चैव
शैनेयेन ध्रुवमात्तायुधेन धृष्टद्युम्नेनाऽथ शिखंडिना च ।
युधिष्ठिरेणेंद्रकल्पेन चैव योऽपध्यानान्निर्दहेद्गां दिवं च ६
तैश्चेद्योद्धं मन्यते धार्तराष्ट्रो निर्वृत्तोऽर्थः सकलः पांडवानाम्
मा तत्कार्षीः पांडवस्यऽर्थहेतोरुपैहि युद्धं यदि मन्यसे त्वम्

युद्ध के अभिलाषी, लाल कमल के समान नेत्रधारी, गाण्डीव के धर्ता, अर्जुन ने यह कहा है, कि यदि अजमीढ़ वंश श्रेष्ठ, राजा युधिष्ठिर का राज्य को राजा दुर्योधन नहीं छोड़ेगा, तो यह निश्चय है, धृतराष्ट्र-पुत्रों का कोई पूर्व जन्म कृत अवश्य कोई पाप कर्म, अभी भोगना शेष पड़ा है, क्योंकि जिस पाप कर्म के उदय से जिनका भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण, शास्त्रधारी शिनि-पुत्र सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा जो विचार मात्र से पृथिवी और द्युलोक को भस्म कर दे, ऐसे इन्द्र सदृश युधिष्ठिर के साथ युद्ध ठन ही क्या गया, जो इनसे युद्ध करने का हौसला कर रहे हैं, इससे तो आज पाण्डवों का सारा

स्वार्थ ही सिद्ध हो गया। अब तुम दुर्योधन से यह कहना, कि पाण्डवों का हित समझ कर सन्धि के प्रस्ताव को ही स्वीकार नहीं करो, यदि तुम्हारी इच्छा है, तो तुम प्रथम युद्ध कर लो १०

यां तां वने दुःखशय्यामवात्सीत्प्रव्राजितः पांडवो धर्मचारी
आप्नोतु तां दुःखतरामनर्थामंत्यां शय्यां धार्तराष्ट्रः परासुः

धर्म का आचरण करने वाले राजा युधिष्ठिर ने वनवास में दुःख की शय्या पर जो दुःख उठाए हैं, उसी अनर्थकारी दुःख शय्या को अन्त में मरकर अब धृतराष्ट्र-पुत्र, दुर्योधन, प्राप्त करे।

ह्रिया ज्ञानेन तपसा दमेन शौर्येणाऽथो धर्मगुप्त्या धनेन
अन्यायवृत्तिः कुरुपाण्डवेयानध्यातिष्ठद्धार्तराष्ट्र दुरात्मा

लज्जा, ज्ञान, तप, जितेन्द्रियता, शौर्य, धर्म की रक्षा, धन से युक्त, कुरुवंश श्रेष्ठ पाण्डवों की प्रजा को अन्यायशील, धृतराष्ट्र पुत्र, दुरात्मा, दुर्योधन ने दबा रखी है ॥१२॥

मायोपधः प्रणिपातार्जवाभ्यां तपोदमाभ्यां धर्मगुप्त्या बलेन
सत्यं ब्रुवन्प्रतिपन्नोनृपो नस्तितिक्षमाणः क्लिश्यमानोऽतिवेलम्

प्रणिपात, (प्रणाम) सरलता, तप, दम, धर्म रक्षा, बल से युक्त, सत्यवादी, हमारा राजा युधिष्ठिर, तुम्हारे सारे छल कपटों को सहता हुआ, बहुत काल से क्लेश उठा रहा है ॥१३॥

यदा ज्येष्ठः पाण्डवः संशितात्मा क्रोधं यत्तं वर्षपूगान्सुघोरम्
अवस्रष्टा कुरुषूद्वृत्तचेतास्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

जब उज्ज्वल आत्मा अन्त में उद्धत चित्त वाला होकर बहुत वर्षों तक घोर रुके हुए क्रोध को राजा युधिष्ठिर कौरवों पर छोड़ेगा और युद्ध में तत्पर होगा, तो उस समय दुर्योधन, अपने कर्मों का पश्चात्ताप करेगा ॥१४॥

कृष्णवर्त्मेव ज्वलितः समिद्धो यथा दहेत्कक्षमग्निर्निदाघे ।
एवं दग्धा धार्तराष्ट्रस्य सेनां युधिष्ठिरः क्रोधदीप्तोऽन्ववेक्ष्य

ग्रीष्म ऋतु में प्रज्वलित, बढ़ा हुआ, कृष्ण धूम छोड़ने वाला अग्नि जैसे तृण के ढेर को जलाकर भस्म कर देता है, इसी तरह क्रोध से भरा हुआ, युधिष्ठिर, दुर्योधन की सेना को देखकर दग्ध कर डालेगा ॥१५॥

यदा द्रष्टा भीमसेनं रथस्थं गदाहस्तं क्रोधविषं वमन्तम् ।
अमर्षणं पाण्डवं भीमवेगं तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

जब राजा दुर्योधन रथ में बैठे हुए, गदाधारी, क्रोध के विष को उगलते हुए, असहन शील, भयानक वेगधारी भीमसेन को देखेगा, तो उस समय युद्ध में दुर्योधन सन्तप्त होगा ॥१६॥

सेनाग्रगं दंशितं भीमसेनं स्वालक्षण्यं वीरहणं परेषाम् ।
अन्तं चमूमंतकसन्निकाशं तदा स्मर्ता वचनस्याऽतिमानी

सेना के अग्रभाग में चलने वाले, युद्ध के लिए तैय्यार, वीरों के लक्षण धारी, शत्रुओं के वीरों के घातक, अन्तक समान शत्रु-सेना के घातक, भीमसेन को देखकर अत्यन्त अभिमानी दुर्योधन हमारे वचनों को याद करेगा ॥१७॥

यदा द्रष्टा भीमसेनेन नागान् निपातितान् गिरिकूटप्रकाशान्
कुम्भैरिवाऽसृग्वमतोभिन्नकुम्भांस्तदायुद्धं धार्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत्

पर्वत के शिखर के समान विशाल, भीमसेन से गिराए हुए भिन्न मस्तक वाले, घड़ों से गिरते हुए सलिल के सदृश रक्त की धारा छोड़ते हुए, अपने हाथियों को जब युद्ध में भीमसेन देखेगा-तब इस समय को याद करके सन्तप्त होगा ॥१८॥

महासिंहो गाव इव प्रविश्य गदापाणिर्धार्तराष्ट्रानुपेत्य ।
यदाभीमोभीमरूपोनिहन्ता तदायुद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

युद्ध में प्रविष्ट होकर गदापाणि, भीषण रूपधारी, भीम, धृतराष्ट्र पुत्रों के पास पहुंच कर गायों को सिंह की तरह नाश करेगा, तब इस युद्ध का दुर्योधन को सन्ताप होगा ॥१९॥

महाभये वीतभयः कृतास्त्रः समागमे शत्रुबलावमर्दी ।
सकृद्रथेनाऽप्रतिमान्रथौघान् पदातिसङ्घान्गदयोऽभिनिघ्नन्
शैक्येननागांस्तरसाविगृह्णन् यदाछेत्ताधार्तराष्ट्रस्यसैन्यम्
छिन्दन्वनं परशुनेव शूरस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

महाभय के समय में भी जो निर्भय रहता है, ऐसा अस्त्र-विद्या में कुशल युद्ध में शत्रु सेना नाशक, एक रथ से ही अद्भुतर अनेक रथ समूहों का नाश करने वाला, छींके पर रखी रहने वाली गदा से पैदलों के समूह तथा हाथियों को वेग से मारता तथा परशु से वन को काटने के तुल्य धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन की सेना को काटता हुआ, युद्ध में शूर वीर भीमसेन दिखाई देगा-तब यह दुर्योधन सन्ताप करेगा ॥२०-२१॥

तृणप्रायं ज्वलनेनेव दग्धं ग्रामं यथा धार्तराष्ट्रान् समीक्ष्य
पक्वं सस्यं वैद्युतेनेव दग्धं परासिक्तं विपुलं स्वं बलौघम्
हतप्रवीरं विमुखं भयात् पराङ्मुखं प्रायशोऽधृष्टयोधम् ।
शस्त्रार्चिषा भीमसेनेन दग्धं तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥

छान छप्परों वाले गांव को अग्नि से और पके हुए अनाज को बिजली से दग्ध हुए के समान अपनी विपुल भयातुर, वीरों के घात हो जाने से भाग निकली हुई, कायर योद्धाओं वाली, पीठ दिखाये हुए घबराई हुई सेना को भीमसेन द्वारा शस्त्र की ज्वाला से जलाई हुई देखेगा—तब युद्ध में राजा दुर्योधन चिन्ता करेगा ॥२२—२३॥

उपासङ्गानाचरेद्दक्षिणेन वराङ्गानां नकुलश्चित्रयोधी ।
यदा रथाग्र्यो रथिनः प्रचेता तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥

विचित्र युद्ध करने वाला, महारथी श्रेष्ठ, नकुल अपने रथियों को सावधान करके लड़ने वाला उत्तम अंगों पर धारण किये हुए तूणीरों से जब दायीं ओर से बाण फैंकेगा—तब युद्ध में दुर्योधनको सन्ताप होगा ॥२४॥

सुखोचिता दुःखशय्यां वनेषु दीर्घं कालं नकुलो यामशेत
आशीविषः क्रुद्ध इवोद्वमन्विषं तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥

सुख के योग्य, नकुल ने वन में बहुत दिन तक दुःख की शय्या पर शयन किया है। जब यह क्रुद्ध हुए सर्प की तरह विष का वमन करेगा -तब युद्ध में दुर्योधन सन्तापित होगा ॥२५॥

त्यक्तात्मानः पार्थिवा योधनाय समादिष्टा धर्मराजेन सूत
रथैः शुभ्रैः शैन्यमभिद्रवन्तो दृष्ट्वा पश्चात्तप्स्यते धार्तराष्ट्रः

हे सूत! धर्मराज की आज्ञा में परायण, पाण्डव, जब युद्ध के लिए अपने आप को भूल जावेंगे और जब शुभ्र रथों से सेना में इधर उधर घूमेंगे-उस समय इस दशा को देख कर दुर्योधन सन्ताप करेगा ॥२६॥

शिशून्कृतास्त्रानशिशुप्रकाशान्यदा द्रष्टा कौरवः पञ्च शूरान्
त्यक्त्वाप्राणान्कौरवानाद्रवन्तस्तदायुद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

युवाओं के सदृश तेजस्वी, शस्त्र विद्या में कुशल, पांचों द्रौपदी के शूरवीर बालकों को प्राणों का मोह छोड़ कर कौरव वीरों पर टूट पड़ते हुए, जब दुर्योधन देखेगा—उस समय युद्ध में यह पछतावेगा ॥२७॥

यदा गतोद्वाहमकूजनाक्षं सुवर्णतारं रथमाततायी।
दान्तैर्युक्तं सहदेवोऽतिरूढः शिरांसि राज्ञां क्षेप्स्यते मार्गणौघैः
महाभये संप्रवृत्ते रथस्थं विवर्तमानं समरे कृतास्त्रम्।
सर्वा दिशःसम्पतन्तं समीक्ष्य तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

जब सब तरह से महारथी के धारण के योग्य, शब्द हीन अक्ष के धारो, सुवर्णों के तारों वाले, ऊंचे २ कान्त के दांतों से युक्त रथ में सेनाघाती सहदेव चढ़ेगा और जब वह अपने बाण समूह से राजाओं के शिर काटेगा-तो उस समय दुर्योधन, महा भय के उपस्थित होने पर रथ में स्थित, बार २ अस्त्र चलाने में

कुशल, युद्ध में इधर उधर घूमते हुए तथा सारी दिशाओं में चक्कर लगाते हुए सहदेव को देखेगा,तब वह सन्तापित होगा ॥२८-२९॥

ह्रीनिषेवो निपुणः सत्यवादी महाबलः सर्वधर्मोपपन्नः ।
गान्धारिमार्छंस्तुमुले क्षिप्रकारी क्षेप्ता जनान् सहदेवस्तरस्वी

लज्जा शील, चतुर, शीघ्र कार्य करने वाला, वीर मनुष्यों को इधर उधर बखेर देने में कुशल, सत्यवादी, महाबली, सब धर्मों से युक्त, वेगवान, सहदेव, तुमुल युद्ध में जब गान्धार राज-पुत्र शकुनि पर आक्रमण करेगा- तो इसको देख कर दुर्योधन को इस अपने कर्तव्य पर शोक होगा ॥३०॥

यदा द्रष्टा द्रौपदेयान्महेषून् शूरान्कृतास्त्रान्रथयुद्धकोविदान्
आशीविषान्घोरविषानिवायतस्तदायुद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

महाधनुर्धर, अस्त्र विद्या में कुशल, रथ युद्ध में कोविद, शूरवीर द्रौपदी पुत्रों को घोर विष धारी भुजङ्गराज के तुल्य आगे बढ़ते हुए देख कर दुर्योधन युद्ध करने का सन्ताप करेगा ॥३१

यदाऽभिमन्युः परवीरघाती शरैः परान्मेघ इवाऽभिवर्षन् ।
विगाहिता कृष्णसमः कृतास्त्रस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

शत्रुओं के वीरों का घातक, बाणों से मेघ की तरह शत्रुओं पर वर्षा करता हुआ, श्रीकृष्ण के समान अस्त्र विद्या में निपुण, अभिमन्यु, जब युद्ध का आलोडन करेगा- तब दुर्योधन इस युद्ध को अनुचित मानेगा ॥३२॥

यदा द्रष्टा बालमबालवीर्यं द्विषच्चमूं मृत्युमिवोत्पतन्तम् ।
सौभद्रमिन्द्रप्रतिमं कृतास्त्रं तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥

युवा वीरों के समान पराक्रमी, शत्रु सेना में मृत्यु की तरह उछलते हुए, इन्द्र के सदृश, अस्त्रीपटु, सुभद्रातनय बालक अभिमन्यु को जब दुर्योधन देखेगा- तब वह इस युद्ध के अनौचित्य को समझ सकेगा ॥३३॥

प्रभद्रकाः शीघ्रतरा युवानो विशारदाः सिंहसमानवीर्याः ।
यदाक्षेप्तारो धार्तराष्ट्रान्ससैन्यांस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥

सिंह के समान पराक्रमी, युद्ध विशारद, युवा, प्रभद्रक संज्ञक वीर, जब सेना सहित धृतराष्ट्र-पुत्रों को रण में व्याकुल कर देंगे- तब दुर्योधन इस युद्ध को अनुचित समझ कर सन्ताप करेगा ।

वृद्धौ विराटद्रुपदौ महारथौ पृथक्चमूभ्यामभिवर्तमानौ ।
यदा द्रष्टारौ धार्तराष्ट्रान्ससैन्यांस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥

महारथी, वृद्ध विराट और द्रुपद, पृथक् २ सेना लेकर आये हुए, जब सैन्य सहित दुर्योधन की ओर क्रोध भरी दृष्टि से देखेंगे—तब दुर्योधन युद्ध का सन्ताप करेगा ॥३५॥

यदा कृतास्त्रो द्रुपदः प्रचिन्वन् शिरांसि यूनां समरे रथस्थः
क्रुद्धः शरैश्छेत्स्यति चापमुक्तैस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥

जब रथ में बैठा हुआ, शस्त्रविद्या में कुशल क्रुद्ध द्रुपदराज, युद्ध में युवा सैनिकों के शिरों को लक्ष्य करके धनुष से मुक्त बाणों से उनको काटेगा—तब वह धार्तराष्ट्र युद्ध को अनुचित कहेगा ॥३६॥

यदा विराटः परवीरघाती ममत्तरे शत्रुचमूं प्रवेष्टा।
मत्स्यैः सार्धमनृशंसरूपैस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

शत्रुओं के वीरों का घातक, विराट राज, जब शत्रु सेना में प्रविष्ट हुआ, क्रूर कर्मकारी मत्स्यों को साथ लेकर घोर संग्राम में शत्रु सेना का विध्वंस करेगा—तब दुर्योधन इस युद्ध का सन्ताप करेगा ॥३७॥

ज्येष्ठं मात्स्यमनृशंसार्यरूपं विराटपुत्रं रथिनं पुरस्तात्।
यदा द्रष्टा दंशितं पाण्डवार्थे तदायुद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

मत्स्यराज के ज्येष्ठ पुत्र, उदार और उत्तम रूपधारी, महारथियों में अग्रणी, उत्तर को पाण्डवों के कार्य की सिद्धि के लिए जब दुर्योधन सन्नद्ध देखेगा। —तब वह इस युद्ध की चिन्ता करेगा ॥२८॥

रणे हते कौरवाणां प्रवीरे शिखण्डिना सत्तमे शान्तनूजे।
न जातु नःशत्रवो धारयेयुरसंशयं सत्यमेतद्ब्रवीमि ॥३९॥

कौरवों के वीर श्रेष्ठ शान्तनु-पुत्र भीष्म को शिखण्डी द्वारा रण में मार लेने पर मैं सत्य कहता हूं, कि फिर कोई शत्रु वीर हमसे जीवित नहीं बच सकेगा ॥२९॥

यदा शिखण्डी रथिनःप्रचिन्वन्भीष्मं रथेनाऽभियात वरूथी
दिव्यैर्हयैरवमृद्नन्रथौघांस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

युद्ध कुशल वीरों के यूथ को लेकर महारथियों को खोजता हुआ, शिखण्डी, भीष्म को लक्ष्य करके जब रथ को लेकर अपने

दिव्य रथ से अन्य रथों का चूर्ण करता हुआ आगे बढ़ेगा—तो उस समय दुर्योधन उस युद्ध का सन्ताप करेगा ॥४०॥

यदा द्रष्टा सृञ्जयानामनीके धृष्टद्युम्नं प्रमुखे रोचमानम् ।
अस्त्रं यस्मै गुह्यमुवाच धीमान्द्रोणस्तदा तप्स्यति धार्तराष्ट्रः ॥

जब दुर्योधन सृञ्जयों की प्रमुख सेना में चमकते हुए धृष्टद्युम्न को देखेगा—जिसको द्रोणाचार्य ने गुप्त-शस्त्रों का प्रयोग भी सिखा दिया है, तो उस समय दुर्योधन, अवश्य पश्चाताप करेगा ॥४१॥

यदा स सेनापतिरप्रमेयः परामृद्नन्निषुभिर्धार्तराष्ट्रान् ।
द्रोणं रणे शत्रुसहोऽभियाता तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥

जब अवितर्क्य बलशाली शत्रु के बल का सहने वाला सेनापति (धृष्टद्युम्न) बाणों से धृतराष्ट्र-पुत्रों को व्याकुल करता हुआ रण में द्रोण के पास पहुंचेगा—तब इस युद्ध को दुर्योधन अनुचित मानेगा ॥४२॥

ह्रीमान्मनीषी बलवान्मनस्वी स लक्ष्मीवान्सोमकानां प्रबर्हः ।
न जातु तं शत्रवोऽन्ये सहेरन्येषां स स्यादग्रणीर्वृष्णिसिंहः ॥

लज्जाशील, बुद्धिमान् महाबली, मनस्वी कान्तिमान् सोमक वंश श्रेष्ठ सेनापति धृष्टद्युम्न हैं। इस धृष्टद्युम्न को युद्ध में कोई नहीं सह सकता है, क्योंकि इनका अग्रणी वृष्णि—सिंह श्रीकृष्ण हैं ॥४३॥

इदं च ब्रूया मा वृणीष्वेति लोके युद्धेऽद्वितीयं सचिवं रथस्थम् ।
शिनेर्नप्तारं प्रवृणीम सात्यकिं महाबलं वीतभयं कृतास्त्रम् ॥

यदि तू यह कहे, कि युद्ध में अद्वितीय सहचर, किसी महारथी को ग्रहण कर लो—तो मैं कहता हूं, कि हम शिनि के पौत्र, महाबली, निर्भय, अस्त्र कुशल सात्यकि का ही वरण करेंगे ॥४४॥

महोरस्को दीर्घबाहुः प्रमाथी युद्धेऽद्वितीयः परमास्त्रवेदी शिनेर्नप्ता तालमात्रायुधोऽयं महारथो वीतभयः कृतास्त्रः

यह सात्यकि, बड़ी छाती वाला, दीर्घ बाहुधारी, युद्ध में अद्वितीय मन्थन करने वाला और दिव्य अस्त्रों का चलाना जानता है। यह शिनि का पौत्र महारथी सात्यकि, ताल वृक्ष के सदृश लम्बे शस्त्रों का धारक, निडर और अस्त्र विद्या में कुशल है ॥४५॥

यदा शिनीनामधिपो मयोक्तः शरैः परान्मेघ इव प्रवर्षन् । प्रच्छादयिष्यत्यरिहायोधमुख्यांस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

जिस शिनि वंश प्रवीर का मैंने जिक्र किया है, जब यह अरिन्दम! शत्रुओं पर मेघ की तरह बाणों की वर्षा करेगा—तो तुम्हारे मुख्य २ योद्धाओं का आच्छादन कर लेगा— उस समय दुर्योधन युद्ध के लिए पछतावा करेगा ॥४६॥

यदा धृतिं कुरुते योत्स्यमानः स दीर्घबाहुर्दृढधन्वा महात्मा सिंहस्येव गन्धमाघ्राय गावः संचेष्टन्ते शत्रवोऽस्माद्रणाग्रे !

यह दृढ़ धनुषधारी, दीर्घ--बाहु, महावीर, धैर्य धारण करके जब युद्ध में पैर जमाता है, तो सिंह की गन्ध सूंघकर जैसे गाय भाग जाती है, वैसे—ही इस सात्यकि के सामने से रण में शत्रु भाग निकलते हैं ॥४७॥

स दीर्घबाहुर्दृढधन्वा महात्मा भिन्द्याद्गिरीन्संहरेत्सर्वलोकान्
अस्त्रे कृती निपुणः क्षिप्रहस्तो दिवि स्थितः सूर्य इवाऽभिभाति

यह दीर्घ बाहु, दृढ़ धनुषधारी, महात्मा सात्यकि, पर्वतों को छिन्न भिन्न कर सकता है और सब लोकों का संहार कर सकता है। यह अस्त्र चलाने में दक्ष, कृतार्थ और क्षिप्रकारी (फुर्तीला) है, जो आकाश में स्थित सूर्य के समान शोभित है ॥४८॥

चित्रः सूक्ष्मः सुकृतो यादवस्य अस्त्रे योगो वृष्णिसिंहस्य भूयान्
यथाविधं योगमाहुः प्रशस्तं सर्वैर्गुणैः सात्यकिस्तैरुपेतः

विचित्र, सूक्ष्म, अच्छी तरह से यदुवंशोत्पन्न श्रीकृष्ण का अस्त्रों के प्रयोग करने में जितना कौशल है और सब से अच्छा प्रयोग का प्रकार कहला सकता है, उन सब गुणों से सात्यकि युक्त है ॥४९॥

हिरण्मयं श्वेतहयैश्चतुर्भिर्यदा युक्तं स्यन्दनं माधवस्य ।
द्रष्टा युद्धे सात्यकेर्धार्तराष्ट्रस्तदा तप्स्यत्यकृतात्मा स मन्दः

सुनहरी, चार श्वेत अश्वों से युक्त, कान्तिमान् सात्यकि के रथ को जब दुर्योधन देखेगा--तब यह मूर्ख कार्य से हीन हुआ पश्चाताप करेगा ॥५०॥

यदा रथं हेममणिप्रकाशं श्वेताश्वयुक्तं वानरकेतुमुग्रम् ।
दृष्ट्वा ममाऽप्यास्थितं केशवेन तदा तप्स्यत्यकृतात्मा स मन्दः

जब सुवर्ण में जड़ी हुई, मणियों के प्रकाश से युक्त, श्वेत अश्वों सहित, वानर की ध्वजा वाले मुझ उग्र प्रकृति को केशव

के साथ रथ में बैठा हुआ देखेगा—तब दुर्योधन इस युद्ध का सन्ताप करेगा ॥५१॥

यदा मौर्व्यास्तलनिष्पेषमुग्रं महाशब्दं वज्रनिष्पेषतुल्यम् ।
विधूयमानस्यमहारणेमया सगाण्डिवस्यश्रोऽगतिमन्दबुद्धिः

वज्र के टकराने के तुल्य, करतल से मौर्वी (धनुषकी डोरी)के टकराने से उत्पन्न, महायुद्ध में मुझ से कंपाये हुए धनुष का उग्र शब्द अब मूर्ख दुर्योधन को सुनना ही पड़ेगा ॥५२॥

तदा मूढो धृतराष्ट्रस्य पुत्रस्तप्ता युद्धे दुर्मतिर्दुःसहायः ।
दृष्ट्वा सैन्यं बालवर्षान्धकारे प्रभज्यन्तं गोकुलवद्रणाग्रे

नवीन मेघ से की हुई वर्षा के समान बाणों से किये हुए अन्धकार वाले रण के अग्र भाग में भागती हुई सेना को देखकर दुष्ट सहायकों वाला दुरात्मा मूर्ख दुर्योधन, अवश्य सन्ताप करेगा ॥५३॥

बलाहकादुच्चरतः सुभीमान्विद्युत्स्फुलिङ्गानिव घोररूपान्
सहस्रघ्नान्द्विषतां संगरेषु अस्थिच्छिदो मर्मभिदः सुपुङ्खान्
यदाद्रष्टाज्यामुखाद्बाणसंघान्गांडीवमुक्तानापततःशिताग्रान्
हयांगजान्वर्मिणश्चाऽऽददानांस्तदायुद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

मेघों से निकलती हुई बिजली की चिनगारियों के तुल्य घोर भयानक, सहस्रों को मार देने वाले युद्ध में शत्रुओं की अस्थियों के भेदक, मर्मच्छेदी, उत्तम (बाणमूल) धारी, धनुष की डोरी से निकले हुए तीक्ष्ण, गाण्डीव धनुष से छोड़े हुए हाथी, घोड़े और

कवच धारी योद्धाओं को वींध देने वाले वाण संघों को देखकर दुर्योधन को इस युद्ध का पश्चात्ताप होगा ॥५४—५५॥

यदा मन्दः परवाणान्विमुक्तान्ममेषुभिर्ह्रियमाणान्प्रतीपम्
तिर्यग्विध्यच्छिद्यमानान्पृषत्कैस्तदायुद्धं धार्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत्

जब मूर्ख दुर्योधन शत्रु वीरों के छोड़े हुए वाणों को मेरे उलटे वाणों से काट डाले जाएंगे तथा मेरे तीखे वाणों से अपने योद्धाओं को छिन्न भिन्न देखेगा, तव उसको इस युद्ध का पश्चात्ताप होगा ॥५६॥

यदा विपाठामद्भुजविप्रमुक्ता द्विजाः फलानीव महीरुहाग्रात्
प्रचेतार उत्तमांगानि यूनां तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत्

जब मेरी भुजाओं से छोड़े हुए वाण वृक्ष के अग्र भाग से काट २ कर फलों को पक्षी की तरह युवा वीरों के शिरों को काट २ कर ढेर लगा देंगे—तब धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन को इस युद्ध का सन्ताप होगा ॥५७॥

यदाद्रष्टापततःस्यन्दनेभ्योमहागजेभ्योऽश्वगतान्सुयोधनान्
शरैर्हतान्पातितांश्चैव रंगे तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

जब सुयोधन, रण भूमि में वाणों के द्वारा रथ तथा बड़े २ हाथियों से वीरों को तथा अश्वों से अश्वारोहियों को गिरते देखेगा, तो उस समय यह युद्ध को बुरा कहेगा ॥५८॥

असंप्राप्तानस्त्रपथं परस्य यदा द्रष्टा नश्यतो धार्तराष्ट्रान्
यकुर्वतःकर्मबुद्धेसमन्तात्तदायुद्धंधार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥

जब अपने भाइयों को दुर्योधन, शत्रु के बाण के भाग में प्राप्त होने से पूर्व ही भागते देखेगा और कुछ भी युद्ध कौशल दिखाते नहीं देखेगा, तब दुर्योधन इस युद्धकी चिन्ता करेगा ॥५६॥

पदातिसंघान्रथसंघान्समन्ताद्व्यात्ताननःकालइवाऽऽततेषुः
प्राणोत्स्याभिज्वलितैर्बाणवर्षैःशत्रूंस्तदातप्स्यतिमन्दबुद्धिः।

पैदल और रथ समूह तथा शत्रुओं को मुख खोले हुए, काल की तरह चारों ओर से घेर कर विस्तृत धनुष धारी मैं, अपनी बाण वर्षा से छिन्न भिन्न करूंगा—तब यह मन्द-बुद्धि दुर्योधन पछतावेगा ॥६०॥

सर्वा दिशः संपतता रथेन रजोध्वस्तं गांडिवेन प्रकृत्तम्
यदा द्रष्टा स्वबलं संप्रमूढं तदा पश्चात्तप्स्यति मन्दबुद्धिः।

सब दिशाओं में दौड़ते हुए रथ से मिट्टी में सनी हुई और गाण्डीव धनुष से छिन्न भिन्न, मोहित अपनी सेना को देखकर मन्दबुद्धि दुर्योधन पछतावेगा ॥६१॥

कांदिग्भूतं छिन्नगात्रं विसंज्ञं दुर्योधनो द्रक्ष्यति सर्वसैन्यम्
हताश्ववीराग्र्यनरेन्द्रनागं पिपासितं श्रान्तपत्रं भयार्तम् ॥

इस समय घबराई सी हुई, छिन्न भिन्न शरीर वाली, अचेत अश्व, वीर, राजा और हाथियों के मारे जाने से भयातुर, प्यासी, बाण हीन सारी सेना को दुर्योधन देखेगा ॥६२॥

आर्तस्वरं हन्यमानं हतं च विकीर्णकेशास्थिकपालसंघम्।
प्रजापतेः कर्म यथार्थनिष्ठितं तदा दृष्ट्वा तप्स्यति मंदबुद्धिः

दीन स्वर करती हुई, मारी हुई और मारी जाती हुई, बिखरे हुए केश, हड्डी और कपाल समूह वाली प्रजापति देवता के निमित्त हिंसक कर्मकाण्डियों द्वारा सम्पादित की हुई विधि के समान युद्ध-क्षेत्र को देखकर मन्दबुद्धि दुर्योधन सन्ताप करेगा।

यदा रथे गांडिवं वासुदेवं दिव्यं शंखं पांचजन्यं हयांश्च।
तूणावक्षय्यौ देवदत्तंच मांच दृष्ट्वा युद्धे धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्

जब रथ में गाण्डीव धनुष, श्रीकृष्ण, दिव्य शंख पाञ्चजन्य श्वेत हय, अक्षय तूणीर, देवदत्त शंख और मुझे देखकर युद्ध में दुर्योधन सन्तप्त होगा ॥६४॥

उद्वर्तयिन्दस्युसंघान्समेतान्प्रवर्तयन्युगमन्यद्युगांते ।
यदा धक्ष्याम्यग्निवत्कौरवेयांस्तदा तप्तो धृतराष्ट्रः सपुत्रः

इकट्ठे हुए दुष्ट सैनिकों के समूह को एक युग के अनन्तर अन्य युग को प्रवृत्त करता हुआ सा जब मैं छिन्न भिन्न करूंगा तथा अग्नि के तुल्य कौरवों को जलाऊँगा, तब अपने पुत्र दुर्योधन के साथ धृतराष्ट्र सन्तप्त होगा ॥६५॥

सभ्राता वै सहसैन्यः सभृत्यो भ्रष्टेश्वर्यः क्रोधवशोऽल्पचेताः
दर्पस्य॰ऽन्ते निहतो वेपमानः पश्चान्मन्दस्तप्स्यति धार्तराष्ट्रः

अपने भाई, सेना भृत्यों के साथ ऐश्वर्य से भ्रष्ट हुआ, क्रोधी क्षुद्रबुद्धि दुर्योधन, अपने गर्व को चूर करा कर जब मारा हुआ भूमि में पड़ा हुआ फड़केगा, तब यह मन्दबुद्धि अपने किये पर पश्चात्ताप करेगा ॥६६॥

पूर्वाह्णे मां कृतजप्यं कदाचिद्विप्रः प्रोवाचोदकांते मनोज्ञम्
कर्तव्यं ते दुष्करं कर्म पार्थ योद्धव्यं ते शत्रुभिःसव्यसाचिन्
इन्द्रो वा ते हरिवान्वज्रहस्तःपुरस्ताद्यातु समरेऽरीन्विनिघ्नन्
सुग्रीवयुक्तेन रथेन वा ते पश्चात्कृष्णो रक्षतु वासुदेवः॥६८॥
वव्रे चाऽहं वज्रहस्तान्महेन्द्रादस्मिन्युद्धे वासुदेवं सहायम्
स मे लब्धो दस्युवधाय कृष्णो मन्ये चैतद्विहितं दैवतैर्मे

कभी प्रातःकाल जप सन्ध्या के अन्त में मुझ शान्त चित्त के सम्मुख आकर कोई ब्राह्मण कहेगा, कि हे अर्जुन! अब तुमको दुष्कर कर्म करना होगा—हे सव्यसाचिन्! तुमको शत्रुओं से लड़ना है, अब तुम को शत्रुओं का नाश करता हुआ युद्ध में सेना के अग्रगामी अपने हरित अश्वों के साथ वज्रधारी, इन्द्र प्रदान किया जा सकता है, या सुग्रीव आदि अश्वों वाले रथ के साथ पीछे से तेरी रक्षा करने वाला श्रीकृष्ण दिया जा सकता है, तो मैं इस समय वज्रधारी, इन्द्र की अपेक्षा, इस युद्ध में श्रीकृष्ण की सहायता ही चाहूंगा, क्योंकि यह श्रीकृष्ण, दुष्टों के वध के पर्याप्त हैं, मैं तो यह समझता हूँ, कि मुझे यह सुयोग देवों ने ही जुटाया है ॥६६॥

अयुद्ध्यमानो मनसाऽपियस्य जयं कृष्णःपुरुषस्याऽभिनन्देत्
एवं सर्वान्स व्यतीयादमित्रान्सेन्द्रान्देवान्मानुषे नातिचिन्ता

यदि श्रीकृष्ण युद्ध भी नहीं करे और मन से भी जिस पुरुष की जय की अभिलाषा करता है, वह इस इच्छा से ही इन्द्र

आदि सारे देवों को विजय कर सकता है, मनुष्य के विजय की कुछ चिन्ता ही नहीं है ॥७०॥

स बाहुभ्यां सागरमुत्तितीर्षेन्महोदधिं सलिलस्याऽप्रमेयम्
तेजस्विनं कृष्णमत्यन्तशूरं युद्धेन यो वासुदेवं जिगीषेत्

जो मनुष्य अत्यन्त शूरवीर श्रीकृष्ण को युद्ध में जीतना चाहता है, वह जल से भरे हुए अगाध विचार में नहीं आने वाले समुद्र को भुजाओं से तैर कर पार करना चाहता है ॥७१॥

गिरिं य इच्छेत्तु तलेन भेत्तुं शिलोच्चयं श्वेतमतिप्रमाणम्
तस्यैव पाणिःसनखोविशीर्येन्नचापिकिञ्चित्सगिरेस्तुकुर्यात्

जो हाथों से बड़ी २ शिला वाले श्वेत पर्वत को फोड़ देना चाहता है, वह अपने ही नख सहित हाथों में चोट पहुंचावेगा, इससे पर्वत का कुछ बिगाड़ नहीं हो सकता है ॥७२॥

अग्निं समिद्धं शमयेद्भुजाभ्यां चन्द्रं च सूर्यं च निवारयेत्
हरेद्देवानाममृतं प्रसह्य युद्धेन यो वासुदेवं जिगीषेत् ॥७३॥

जो युद्ध करके श्रीकृष्ण को जीतना चाहता है—वह जलती हुई आग को बुझा देना और चन्द्र सूर्य को बल पूर्वक ढक देना चाहता है ॥७३॥

यो रुक्मिणीमेकरथेन भोजानुत्साद्य राज्ञः समरे प्रसह्य ।
उवाह भार्यां यशसा ज्वलन्तीं यस्यां जज्ञे रौक्मिणेयो महात्मा

जो अकेला ही युद्ध में बलपूर्वक भोजवंशी राजाओं को पराजित करके यश से देदीप्यमान उस रुक्मिणी को छीन लाया, जिसमें अत्यन्त तेजस्वी प्रद्युम्न ने जन्म लिया है ॥७४॥

अयं गान्धारांस्तरसा संप्रमथ्य जित्वा पुत्रान्नग्नजितः समग्रान्
बद्धं मुमोच विनदन्तं प्रसह्य सुदर्शनं वै देवतानां ललामम्

श्रीकृष्ण ने ही गांधार देशों के वीर तथा नग्नजित राजा के सारे पुत्रों को जीतकर देवों के प्रिय, वन्धन में पड़े हुए क्लेश से शब्द करते हुए, राजा सुदर्शन को छुड़ाया ॥७५॥

अयं कपाटेन जघान पाण्ड्यं तथा कलिङ्गान्दन्तकूरे ममर्द
अनेन दग्धा वर्षपूगान्विनाथा वाराणसी नगरी सम्बभूव

इसने ही शिर तोड़कर पाण्ड्य देश के राजा तथा दांत तोड़कर कलिङ्ग देश के वीरों का मर्दन किया है। इससे ही जलाई हुई काशी नगरी अनेक वर्षों तक अनाथ को तरह पड़ी रही ॥७६॥

अयं स्म युद्धे मन्यतेऽन्यैरजेयं तमेकलव्यं नामनिषादराजम्
वेगेनैव शैलमभिहत्य जंभः शेते कृष्णेन हतः परासुः

जिसको अन्य लोग युद्ध में अजेय मानते थे, वह निषादराज एकलव्य, वेग से शैल का चूर्ण करके सोते हुए जम्भासुर की तरह श्रीकृष्ण से मारा हुआ पड़ा सो रहा है ॥७७॥

तथोग्रसेनस्य सुतं सुदुष्टं वृष्ण्यन्धकानां मध्यगतं सभास्थम्
अपातयद्बलदेवद्वितीयो हत्वा ददौ चोग्रसेनाय राज्यम् ७८

उग्रसेन के दुष्ट पुत्र, वृष्णि और अन्धकों की सभा में बैठे हुए कंस को बलराम को साथ लिए हुए, इसी श्रीकृष्ण ने मार गिराया और उग्रसेन को राज्य प्रदान किया है ॥७८॥

अथ सौभं योधयामास खस्थं विभीषणं माययाशाल्वराजम्
सौभद्वारि प्रत्यगृह्णाच्छतघ्नीं दोर्भ्यां क एनं विषहेतमर्त्यः

इसका आकाशचारी, सौभ नगर के शाल्वराज से युद्ध हुआ, जो बड़ा भीषण और मायावी था। सौभ नगर के द्वार पर श्रीकृष्ण ने हाथों से ही शतघ्नी को छीन लिया। कौन मनुष्य ऐसा है, जो भुजाओं से उनके साथ युद्ध कर सकता है ॥७८॥

प्राग्ज्योतिषं नाम बभूव दुर्गं पुरं घोरमसुराणामसह्यम् ।
महाबलो नरकस्तत्र भौमो जहाराऽदित्या मणिकुंडले शुभे
न तं देवाः सह शक्रेण शेकुः समागता युधि मृत्योरभीताः
दृष्ट्वा च तं विक्रमं केशवस्य बलं तथैवाऽस्त्रमवारणीयम्
जानन्तोऽस्य प्रकृतिं केशवस्य न्ययोजयन्दस्युवधाय कृष्णम्
स तत्कर्म प्रतिशुश्राव दुष्करमैश्वर्यवान्सिद्धिषु वासुदेवः ॥

प्राग्ज्योतिष पुर नाम का असुरों का एक असह्य घोर दुर्ग था। उसमें महाबली भीषण घोर नरकासुर रहता था, जिसने अदिति के मणि-कुण्डल छीन लिए थे। मृत्यु से नहीं डरने वाले, देवता, इन्द्र के सहित भी युद्ध में उसका सामना नहीं कर सके। वहां भी श्रीकृष्ण का बल और नहीं रुकने वाले अस्त्र तथा श्रीकृष्ण के देवों की रक्षा की प्रकृति देखकर देवों ने श्रीकृष्ण को

ही उन दुष्टों के वध के लिए नियुक्त किया। सिद्धियों में ऐश्वर्य शाली श्रीकृष्ण ने इस दुष्कर कर्म को भी स्वीकार कर लिया।८२

निर्मोचनेषट्सहस्राणिहत्वासंच्छिद्यपाशान्सहसाक्षुरांतान्।
मुरं हत्वा विनिहत्यौघरक्षो निर्मोचनं चापि जगाम वीरः॥

निर्मोचन नगर में क्षुरों से युक्त पाशों को छिन्न भिन्न करके और छः हजार वीरों को मार कर तथा राक्षस समूह के साथ मुर दैत्य का वध करके श्रीकृष्ण निर्मोचन नगर में घुस गए ॥८३

तत्रैव तेनाऽस्य बभूव युद्धं महाबलेनाऽतिबलस्य विष्णोः
शेते स कृष्णेन हतः परासुर्वातेनेवमथितः कर्णिकारः ॥

वहां पर महाबली नरकासुर के साथ अत्यन्त बलवान् विष्णुके अवतार,श्रीकृष्णकेसाथ युद्ध हुआ,वायुसे उखाड़े हुए कर्णिकार के तुल्य वह मुर दैत्य नष्ट होकर भूमि में लेट गया। ॥८४॥

आहृत्य कृष्णो मणिकुंडले ते हत्वा च भौमं नरकं मुरं च
श्रिया वृतो यशसा चैव विद्वान्प्रत्याजगामाऽप्रतिमप्रभावः

श्रीकृष्ण उन अदिति के मणि जटित कुण्डल लेकर और वहां भौम, नरक तथ मुर दैत्य को मार कर यह विद्वान, यश और लक्ष्मी से सुशोभित होकर अद्वितीय प्रभाव के साथ लौट आया।

अस्मै वराण्यददंस्तत्र देवा दृष्ट्वा भीमं कर्म कृतं रणे तत्
श्रमश्चतेयुद्ध्यमानस्यनस्यादाकाशेचाऽप्सुचतेक्रमः स्यात्
शस्त्राणि गात्रे न च ते क्रमेरन्नित्येव कृष्णश्च ततः कृतार्थः

एवंरूपे वासुदेवेऽप्रमेये महाबले गुणसम्पत्सदैव ॥८७॥
तमसह्यं विष्णुमनन्तवीर्यमाशंसते धार्तराष्ट्रो विजेतुम् ।

इस प्रकार रण में भीम कर्मको देखकर देवों ने इन श्रीकृष्ण को वरदान दिया, कि युद्ध करते २ तुमको थकावट नहीं होगी और तुम आकाश तथा पानी में जा और आ सकोगे और तुम्हारे शरीर में शस्त्र न लगेगा। यह सुनकर श्रीकृष्ण कृतार्थ होगए। इस प्रकार अवितर्क महाबली श्रीकृष्ण, सदा गुण सम्पत्ति से युक्त रहता है, उसी असह्य अत्यन्त शक्तिशाली, विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण को आज दुर्योधन जीतना चाहता है ॥८८॥

सदाह्येनं तर्कयते दुरात्मा तच्चाऽप्ययं सहतेऽस्मान्समीक्ष्य
शक्यं मम कृष्णस्य चैव यो मन्यते कलहं मंप्रसह्य ।
पर्यागतं हर्तुं पांडवानां ममत्वं तद्वेदिता संयुगं तत्र गत्वा

वह दुरात्मा दुर्योधन सदा इन पर आक्षेप करता रहता है, परन्तु ये हमारा ध्यान (लिहाज) करके कुछ नहीं करता है। यह मुझमें और श्रीकृष्ण में परिस्थिति को विरुद्ध करके बलात् कलह कराना चाहता है। क्या यह श्रीकृष्ण से पाण्डवों की प्रीति का नाश कर सकता है। इसको तो यह युद्ध में पहुंच कर ही देख सकेगा।॥८९॥

नमस्कृत्वा शांतनवाय राज्ञे द्रोणायाऽथो सहपुत्राय चैव ।
शारद्वतायाऽप्रतिद्वंद्विने च योत्स्याम्यहं राज्यमभीप्समानः

अपने राज्य के ग्रहण करने का अभिलाषी, मैं शान्तनु-पुत्र राजा भीष्म, अश्वत्थामा सहित द्रोणाचार्य और अप्रतिद्वन्द्वी शरद्वान-पुत्र. कृपाचार्य को प्रणाम करके उनसे युद्ध अवश्य करूंगा ॥६०॥

धर्मेणाऽऽप्तांनिधनंतस्यमन्येगोयोत्स्यत पांडवैःपापबुद्धिः ।
मिथ्याग्लहेनिर्जितावैनृशंसैःसंवत्सरान्वै द्वादश राजपुत्रोः

काल धर्म के अनुसार उसकी मृत्यु आ गई समझो, जो पाप बुद्धि, पाण्डवों से युद्ध करना चाहता है। हम राजपुत्रों को नीचोंने मिथ्या जुआ में हरा कर बारह वर्ष तक के लिए वनवास में भेज दिया ॥६१॥

वासः कृच्छ्रो विहितश्चाऽप्यरण्ये दीर्घं कालं चैकमज्ञातवर्षम्
तेऽहिकस्माज्जीवतांपाण्डवानांनन्दिष्यन्तेधार्तराष्ट्राःपदस्थाः

हमने दीर्घकाल तक वनवास किया और एक वर्ष तक अज्ञातवास भी पूरा कर दिया। अब हम पाण्डवों के जीवित रहने पर राज्य पद पर बैठे हुए, धृतराष्ट्र-पुत्र कैसे आनन्द मना सकते हैं ॥६२॥

ते चेदस्मान्युद्ध्यमानाञ्जयेयुर्देवैर्महेन्द्रप्रमुखैः सहायैः ।
धर्मादधर्मश्चरितो गरीयांस्ततो ध्रुवं नास्ति कृतं च साधु

यदि धृतराष्ट्र-पुत्र, इन्द्र आदि मुख्य २ देवताओं की सहायता से युद्ध करते हुए हमको जीत लेंगे, तो यही कहना होगा, कि धर्म से अधर्म का आचरण बलवान है और संसार में पुण्य-कार्य करना कुछ अच्छा नहीं है॥६३॥ ५०

न चेदिमं पुरुषं कर्मबद्धं न चेदस्मान्मन्यतेऽसौ विशिष्टान्
आशंसेऽहं वासुदेवद्वितीयो दुर्योधनं सानुबन्धं निहन्तुम् ॥

यदि दुर्योधन मनुष्य को कर्मों से बँधा हुआ न मानकर नास्तिक हो जावेगा या अपने अहंकार से हमको अपने से तुच्छ मानेगा, तो मैं सहायकों के साथ दुर्योधन को मारे विना नहीं छोड़ूँगा, इसके लिए मुझे केवल श्रीकृष्ण की सहायता पर्याप्त है।

न चेदिदं कर्म नरेन्द्र वन्ध्यं न चेद्भवेत्सुकृतं निष्फलं वा।
इदञ्च तच्चाऽभिसमीक्ष्य नूनं पराजयो धार्तराष्ट्रस्य साधुः

हे राजन्! यदि दुर्योधन का पाप कर्म निष्फल नहीं है और हमारा सुकृत निरर्थक नहीं है, तो इस सब परिस्थिति को देखकर तो यही ज्ञात होता है, कि धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन का अवश्य पराजय होगा ॥६५॥

प्रत्यक्षं वः कुरवो यद्ब्रवीमि युध्यमाना धार्तराष्ट्रा न सन्ति
अन्यत्रयुद्धात्कुरवोयदिस्युर्न युद्धेवशेषइहाऽस्तिकश्चित् ॥

हे कौरवो! तुम से मैं प्रत्यक्ष कहे देता हूं, कि यदि धृतराष्ट्र-पुत्र युद्ध करेंगे, तो वे अवश्य नष्ट हो जायेंगे। युद्ध नहीं करने पर तो कौरव जैसे तैसे बच सकते हैं, परन्तु युद्ध करने पर वे किसी भी तरह नहीं बच सकेंगे ॥६॥

हत्वा त्वहं धार्तराष्ट्रान्सकर्णान्राज्यं कुरूणामवजेता समग्रम्
यद्वःकार्य तत्कुरुध्वंयथास्वमिष्टान्दारानात्मभोगान्भजध्वम्

मैं कर्ण के साथ सारे धृतराष्ट्र-पुत्रों को मार कर अपना राज्य वापिस छीन लूंगा। अब तुमको जो कुछ करना हो, कर लो और जो कुछ अभिलाषित स्त्री भोग आदि भोगना हो, भोग लो॥९७॥

अप्येवंनोब्राह्मणाःसन्तिवृद्धा बहुश्रुताशीलवन्तःकुलीनाः
सांवत्सरा ज्योतिषि चाऽभियुक्ता नक्षत्रयोगेषु च निश्चयज्ञाः
उच्चावचं दैवयुक्तं रहस्यं दिव्याः प्रश्ना मृगचक्रा मुहूर्ताः
क्षयं महान्तं कुरुसृञ्जयानां निवेदयन्ते पाण्डवानां जयश्च

इसके सिवा, बहुश्रुत, शीलवान्, कुलीन, संवत्सर के फल के जानने वाले, ज्योतिष के ज्ञाता, नक्षत्रों के योगों के विशेषज्ञ, दैव की इच्छा के रहस्य को अच्छी तरह जान लेने वाले, वृद्ध ब्राह्मण, दिव्य प्रश्न, शृगालादि मृगों द्वारा जाने हुए शकुन, मुहूर्त-ये सब, कौरव और सृञ्जयों (पाञ्चालों) का महान् क्षय और पाण्डवों का विजय बता रहे हैं ॥९९॥

यथोहिनोमन्यतेऽजातशत्रुः संसिद्धार्थो द्विषतां निग्रहाय ।
जनार्दनश्चाऽप्यपरोक्षविद्यो न संशयं पश्यति वृष्णिसिंहः

अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर भी वैरियों का पराजय और हमारे कार्यों की सिद्धि का समय आ चुका है—यह मानता है। श्रीकृष्ण भी सारे भविष्य का प्रत्यक्ष की तरह अनुमान कर लेने वाले हैं। यह वृष्णिसिंह कभी संशय की बात नहीं देख सकता है अर्थात् उनके निश्चय में कभी फर्क नहीं हो सकता है ॥१००

अहं तथैवं खलुभावि रूपं पश्यामि बुद्ध्या स्वयमप्रमत्तः
दृष्टिश्च मे न व्यथते पुराणी सयुध्यमाना धार्तराष्ट्रानसन्ति

मैं प्रमाद नहीं करने वाला हूँ, मैं स्वयं भी अपनी बुद्धि से भविष्य को सामने खड़ा देख रहा हूँ। मेरी प्राचीन योग दृष्टि में कुछ भी न्यूनता नहीं आई है, मुझे तो यही निश्चय है, कि युद्ध करने पर धृतराष्ट्र-पुत्र नहीं रह सकेंगे ॥१०१॥

अनालब्धं जृम्भति गाण्डिवं धनुरनाहता कम्पति मे धनुर्ज्या
बाणाश्च मे तूणमुखाद्विसृज्य मुहुर्मुहुर्गन्तुमुशन्ति चैव ।

बिना खैंचे ही मेरा गाण्डीव धनुष चढ़ता है और खैंची हुई मेरी धनुष की डोरी चढ़ती है। मेरे तूणीर के मुख से निकल २ कर बार २ बाण, उड़ना चाह रहे हैं ॥१०२॥

खड्गः कोशान्निःसरति प्रसन्नो हित्वेव जीर्णामुरगस्त्वचं स्वाम्
ध्वजे वाचो रौद्ररूपा भवन्ति कदा रथे योक्ष्यते ते किरीटिन्

चमकता हुआ खड्ग, कोश (म्यान) से निकलता है; जैसे—सर्प अपनी जीर्ण त्वचा (कांचली) को छोड़ देता है। ध्वजा से भी रौद्र वाणी निकलती है, कि हे अर्जुन ! हमको कब रथ पर चढ़ावेगे ॥१०३॥

गोमायुसंघाश्च नदन्ति रात्रौ रक्षांस्यथो निष्पतन्त्यन्तरिक्षात्
मृगाः शृगालाः शितिकंठाश्च काका गृध्रा बकाश्चैव तरक्षवश्च
सुवर्णपत्राश्च पतन्ति पश्चाद् दृष्ट्वा रथं श्वेतहयप्रयुक्तम् ।
अहं ह्येकः पार्थिवान्सर्वयोधाञ्शरान्वर्षन्मृत्युलोकं नयेयम्

गीदड़ों का समूह, रात में शब्द करता है और राक्षस अन्तरिक्ष से गिरते हैं। मृग, शृगाल, मोर, कौए, गीध, बक, चीते, सुवर्ण की सी पांखों वाले पक्षी और वन्ते जीव जन्तु, श्वेत अश्वों से युक्त रथ को देखकर पीछे भागते हैं। मैं इस दशा में अकेला ही सारे योद्धा और राजाओं पर बाण वर्षा करता हुआ, उनको स्वर्गलोक पहुंचा दूंगा ॥१०४-१०५॥

समाददानः पृथगस्त्रमार्गान्यथाऽग्निरिद्धो गहनं निदाघे।
स्थूणाकर्णंपाशुपतंमहास्त्रंब्राह्मं चाऽस्त्रं यच्चशक्रोऽप्यदान्मे
वधे धृतो वेगवतः प्रमुंचन्नाऽहं प्रजाः किंचिदिहाऽवशिष्ये
शांन्तिलप्स्येपरमोह्य षभावःस्थिरोममब्रूहिगावल्गणे तान्

मैं ग्रीष्मकाल में वनको जलाते हुए, प्रज्वलित अग्निके तुल्य अनेक अस्त्रों के मार्गों को स्वीकार करूंगा। मैं स्थूलाकर्ण, पाशुपत, महान् अस्त्र ब्रह्मास्त्र तथा जो इन्द्र ने प्रदान किए हैं, उन वेगशील सारे अस्त्रों को वध के लिए प्रयोग करता हुआ प्रजा में से किसी को भी शेष नहीं छोड़ूंगा। हे सञ्जय! मैं तो यही चाह रहा हूं, कि किसी तरह शान्ति प्राप्त कर लूं, इसके लिए तुम ही कोई मार्ग बताओ ॥१०६-१०७॥

ये वै जय्याः समरे सूत लब्ध्वा देवानपीन्द्रप्रमुखान्समेतान्
तैर्मन्यते कलहं सम्प्रसह्य स धार्तराष्ट्रः पश्यत मोहमस्य ॥

हे सूत! जिन पाण्डवों को इन्द्रादि देवों की सहायता पाकर ही कोई जीत सकता है, उन पाण्डवों से यह दुर्योधन अपना बल लगाकर कलह कर लेना चाहता है—जरा तुम इसका अज्ञान तो देखो ॥१०८॥

वृद्धो भीष्मःशान्तनवःकृपश्च द्रोणः सपुत्रो विदुरश्च धीमान्
एते सर्वे यद्वदन्ते तदस्तु आयुष्मन्तः कुरवः सन्तु सर्वे ॥
इति श्रीमहाभारते वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि
अर्जुनवाक्यनिवेदनेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

शान्तनु-पुत्र, वृद्ध भीष्म, कृप, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, बुद्धिमान् विदुर, जो वचन कह रहे हैं—वह सत्य हो जावे, कि हम सब कुरुवंशोत्पन्न धृतराष्ट्र-पुत्र और पाण्डव सारे चिरकाल तक जीवित रहें ॥१०६॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में अर्जुन वाक्य का अड़तालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

उनचासवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

समवेतेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत! उन सारे राजाओं के इकट्ठे हो जाने पर राजा दुर्योधन से शान्तनुपुत्र भीष्म ने यह वचन कहा।

बृहस्पतिश्चोशना च ब्रह्माणं पर्युपस्थितौ ।
मरुतश्च सहेन्द्रेण वसवश्चाऽग्निना सह ॥२॥

आदित्याश्चैव साध्याश्च ये च सप्तर्षयो दिवि ।
विश्वावसुश्च गन्धर्वः शुभाश्चाऽप्सरसां गणाः ॥३॥
नमस्कृत्योपजग्मुस्ते लोकवृद्धं पितामहम् ।
परिवार्य च विश्वेशं पर्यासत दिवौकसः ॥४॥

हे राजन् ! एक बार बृहस्पति और शुक्राचार्य ब्रह्माजी के पास गए । इस समय ब्रह्माजी के पास इन्द्र के साथ सारे मरुत्संज्ञक देव, अग्नि के साथ वसु, आदित्य, साध्य, द्युलोक निवासी सप्तर्षि, विश्वावसु गन्धर्व, सुन्दर अप्सराओं के गण, लोक गुरु ब्रह्मा को प्रणाम करके अपने २ स्थान पर जा बैठे । अब ये देवता भी विश्वेश्वर ब्रह्माजी को घेर कर बैठ गए ॥२-४॥

तेषां मनश्च तेजश्चाऽप्याददानाविवौजसा ।
पूर्वदेवौ व्यतिक्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥५॥

इन सब ब्रह्मादि देवों के मन और तेज को अपने ओज से फीका करते हुए, नर नारायण ऋषि, पूर्व में स्थित देवों को उलांघ कर चल दिए ॥५॥

बृहस्पतिस्तु पप्रच्छ ब्रह्माणं काविमाविति ।
भवन्तं नोपतिष्ठेते तौ नः शंस पितामह ॥६॥

बृहस्पति ने ब्रह्माजी से पूछा—कि ये कौन हैं ? हे पितामह ! ये आपकी सेवा में कैसे उपस्थित नहीं रहे—अब तुम इनका मुझे रहस्य बताओ ॥६॥

ब्रह्मोवाच—

यावेतौ पृथिवीं द्यां च भासयन्तौ तपस्विनौ ।
ज्वलंतौ रोचमानौ च व्याप्याऽतीतौ महाबलौ ॥७॥
नरनारायणावेतौ लोकाल्लोकं समास्थितौ ।
ऊर्जितौ स्वेन तपसा महासत्वपराक्रमौ ॥८॥
एतौ हि कर्मणा लोकं नन्दयामासतुध्रुवम् ।
द्विधा भूतौ महाप्राज्ञौ विद्धि ब्रह्मन् परन्तपौ ।
असुराणां विनाशाय देवगन्धर्वपूजितौ ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—हे देवो! जो ये दो तपस्वी पृथिवी और द्युलोक को चमका रहे हैं तथा जो देदीप्यमान हुए बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं, जो महाबली तुम लोगों को चीर फाड़कर निकल गए हैं—ये नर नारायण नामक ऋषि हैं। ये एक लोक से अन्य लोक में घूमते रहते हैं। ये महाबली और पराक्रमी अपने तप से बढ़े हुए हैं, इन्होंने ही अपने कर्म से लोकों को आनन्दित किया है। हे ब्रह्मन्! ये महा बुद्धिमान द्विधा रूप में स्थित और शत्रुओं के वीरों के घातक हैं। ये नर नारायण, सुरों के विनाश के लिए देव गन्धर्वों से पूजे जाते हैं॥ ७-९ ॥

वैशम्पायन उवाच—

जगाम शक्रस्तच्छ्रुत्वा यत्र तौ तेपतुस्तपः ।
सार्धं देवगणैः सर्वैर्बृहस्पतिपुरोगमैः ॥१०॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इतना सुनकर जहां ये दोनों ऋषि तप कर रहे थे, वहां इन्द्र, बृहस्पति आदि सारे देवों को लेकर पहुंचे ॥१०॥

तदा देवासुरे युद्धे भये जाते दिवौकसाम्।
अयाचत महात्मानौ नरनारायणौ वरम् ॥११॥

देवों के भयकारी देवासुर संग्राम के उपस्थित होने पर इन्द्र ने इन नर नारायण दोनों ऋषियों से वर मांगा ॥ ११॥

तावब्रूतां वृणीष्वेति तदा भरतसत्तम।
अथैतावब्रवीच्छक्रः साह्यं न क्रियतामिति ॥१२॥

हे भरतसत्तम! इन दोनों महात्माओं ने कहा—कि तुम वर मांग लो। उस समय इन्द्र ने कहा-कि तुम हमारी सहायता करो।

ततस्तौ शक्रमब्रूतां करिष्यावो यदिच्छसि।
ताभ्यां च सहितः शक्रो विजिग्ये दैत्यदानवान्॥१३॥

इन्होंने इन्द्र से कहा—कि हम वही करेंगे, जैसा तुम कह रहे हो। इन दोनों की सहायता से इन्द्र ने दैत्य और दानवों को जीत लिया ॥१३॥

नर इन्द्रस्य संग्रामे हत्वा शत्रून्परन्तपः।
पौलोमान्कालखञ्जांश्च सहस्राणि शतानि च ॥१४॥

शत्रु-विजयी, नर नामक ऋषि ने संग्राम में इन्द्र के शत्रु पौलोम, कालखञ्ज संज्ञक लाखों दैत्य मार गिराए ॥१४॥

एष श्रान्ते रथे तिष्ठन् भल्लेनाऽपाहरच्छिरः ।
जम्भस्य ग्रसमानस्य तदा ह्यर्जुन आहवे ॥१५॥

एक समय इन्द्र को निगल जाने की चेष्टा करते हुए जम्भासुर के शिर को घूमते हुए रथ में बैठे हुए नरावतार अर्जुन ने बाण से काट डाला ॥१५॥

एष पारे समुद्रस्य हिरण्यपुरमारुजत् ।
जित्वा षष्टिं सहस्राणि निवातकवचान्रणे ॥१६॥

अर्जुनने समुद्र के पार हिरण्यपुर को जा पीड़ित किया । वहां रण में इसने आठ हजार निवातकवचों को जीत लिया ॥१६॥

एष देवान्सहेन्द्रेण जित्वा पुरपुरञ्जयः ।
अतर्पयन्महाबाहुरर्जुनो जातवेदसम् ॥१७॥

शत्रु पुर के विजयी अर्जुन ने इन्द्र के साथ सारे देवों को जीत कर खाण्डव वन में अग्नि को तृप्त किया है ॥१७॥

नारायणस्तथैवाऽत्र भूयसोऽन्याञ्जघान ह ।
एवमेतौ महावीर्यौ तौ पश्यत समागतौ ॥१८॥

नारायणावतार श्रीकृष्ण ने भी अनेक दैत्यों को मारा है । ये वे ही दोनों नर नारायण नामक महात्मा हैं, जो यहां उपस्थित हैं । ये बड़े पराक्रमी हैं ॥१८॥

वासुदेवार्जुनौ वीरौ समवेतौ महारथौ ।
नरनारायणौ देवौ पूर्वदेवाविति श्रुतिः ॥१९॥

ये महारथी, एकता को प्राप्त हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन वीर, नर नारायण हैं। वेद के अनुसार ये पूर्वकाल में देव थे ॥१६॥

अजेयौ मानुषे लोके सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
एषः नारायणः कृष्णः फाल्गुनश्च नरः स्मृतः ।
नारायणो नरश्चैव सत्त्वमे द्विधा कृतम् ॥२०॥

ये दोनों इन्द्र के साथ देव और असुरों से भी इस मनुष्य लोक में दुर्जय हैं। इन में नारायण श्रीकृष्ण और नर अर्जुन है। नर और नारायण का एक मन और दो देह है ॥२०॥

एतौ हि कर्मणा लोकानश्नुवातेऽक्षयान्ध्रुवान् ।
तत्र तत्रैव जायेते युद्ध काले पुनः पुनः ॥२१॥

ये अपने कर्मों से अक्षय और ध्रुव लोकों को प्राप्त करते हैं और दैत्यों के साथ युद्ध उपस्थित होने पर फिर अपने को आविर्भूत कर लेते हैं ॥२१॥

तस्मात्कर्मैव कर्तव्यमिति होवाच नारदः ।
एतद्धि सर्वमाचष्ट वृष्णिचक्रस्य वेदवित् ॥२२॥

वेद के ज्ञाता नारद ने इसी लिए वृष्णिवंशजों के सम्मुख कहा है, कि इनका दुष्टों के साथ युद्ध करना ही कर्तव्य है ॥२२॥

शङ्खचक्रगदाहस्तं यदा द्रक्ष्यसि केशवम् ।
पर्याददानं चाऽस्त्राणि भीमधन्वानमर्जुनम् ॥२३॥
सनातनौ महात्मानौ कृष्णावेकरथे स्थितौ ।
दुर्योधन तदा तात स्मर्ताऽसि वचनं मम ॥२४॥

जिस समय दुर्योधन, शङ्ख, चक्र, गदा, हाथ में लिए हुए, श्रीकृष्ण और अस्त्र लिए हुए भीम धनुप धारी अर्जुन को एवं इन सनातन महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन को एक रथ में बैठे हुए देखेगा—तब मेरे वचनों का स्मरण करेगा ॥२३—२४॥

नो चेदयमभावः स्यात् कुरूणां प्रत्युपस्थितः ।
अर्थाच्च तातधर्माच्च तव बुद्धि रुपप्लुता ॥२५॥

यदि दुर्योधन ने इस पर ध्यान नहीं दिया, तो कौरव वीरों का विनाश उपस्थित हो गया है—यही समझ लेना चाहिए। हे तात! दुर्योधन! तेरी बुद्धि अधर्म और धन के लालच में फंस गई है ॥२५॥

न चेद्ग्रहीष्यसे वाक्यं श्रोताऽसि सुबहून्हतान् ।
तवैव हि मतं सर्वे कुरवः पर्युपासते ॥२६॥

हे दुर्योधन! यदि तुम हमारे वचनों को नहीं सुनोगे—तो अपने अनेक वीरों के हत होने के समाचार को अवश्य ही सुनोगे। ये सारे कौरव तेरे शासन में चलने वाले हैं ॥२६॥

त्रयाणामेव च मतं तत्त्वमेकोऽनुमन्यसे ।
रामेण चैव सप्तस्य कर्णस्य भरतर्षभ ॥२७॥
दुर्जाते सूतपुत्रस्य शकुनेः सौबलस्य च ।
तथा क्षुद्रस्य पापस्य भ्रातुर्दुःशासनस्य च ॥२८॥

हे भरतर्षभ! तुम अकेले ही परशुराम के शापसे दग्ध दुरात्मा सूत-पुत्र कर्ण, सुबल-पुत्र शकुनि तथा क्षुद्र पापी अपने भाई दुःशासन—इन तीन की सम्मति को ही तत्वभूत मानते हो ॥२७-२८॥

कर्ण उवाच—

नैदमायुष्मता वाच्यं यन्मामात्थ पितामह ।
क्षत्रधर्मे स्थितो ह्यस्मि स्वधर्मादनपेयिवान् ॥२६॥

कर्ण बोला—हे पितामह! तुम जैसे योग्य पुरुषको मेरे विषय में ऐसे वचन नहीं कहने चाहिए थे। मैं क्षात्र धर्म में स्थित हूँ और अपने धर्म से भ्रष्ट नहीं हूं ॥२६॥

किं चाऽन्यन्मयि दुर्वृत्तं येन मां परिगर्हसे ।
न हि मे वृजिनं किञ्चिद्धार्तराष्ट्रा विदुः क्वचित्॥३०॥

क्या तुमने मुझ में कोई दुराचार देखा है, जो तुम मेरी निन्दा कर रहे हो और न मुझ में इन धृतराष्ट्र—पुत्रों ने कभी कोई दोष देखा है ॥३०॥

नाऽचरं वृजिनं किञ्चिद्धार्तराष्ट्रस्य नित्यशः ।
अहं हि पाण्डवान्सर्वान्हनिष्यामि रणे स्थितान्॥३१॥

मैं कभी धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन का अहित नहीं चाहता हूं और न इनके विरुद्ध कोई आचरण करता हूँ। मैं तो रण के उपस्थित होने पर सारे पाण्डवों को मार के दिखा दूँगा ॥३१॥

प्राग्विरुद्धैः शमं सद्भिः कथं वा क्रियते पुनः ।
राज्ञो हि धृतराष्ट्रस्य सर्वं कार्यं प्रियं मया ।
तथा दुर्योधनस्यापि स हि राज्ये समाहितः ॥३२॥

जिनसे पहिले विरोध हो चुका, अब उनके साथ सन्धि कैसे की जा सकती है। मुझे तो राजा धृतराष्ट्र का सब कुछ प्रिय

करना है। इसी तरह दुर्योधन का भी हित मुझे अभीष्ट है। यह अपने राज्यशासन को बड़ी उत्तम रीति से चला रहा है ॥३२॥

वैशम्पायन उवाच—

कर्णस्य तु वचः श्रुत्वा भीष्मः शान्तनवः पुनः ।
धृतराष्ट्रं महाराज सम्भाष्येदं वचोऽब्रवीत् ॥३३॥

वैशम्पायन बोले—हे महाराज ! कर्ण के ये वचन सुनकर शान्तनु-पुत्र, भीष्म, धृतराष्ट्र की ओर प्रवृत्त होकर यह वचन बोला ॥३३॥

यदयं कत्थते नित्यं हन्ताऽहं पाण्डवानिति ।
नाऽयं कलाऽपि संपूर्णा पाण्डवानां महात्मनाम् ॥३४

जो यह कर्ण नित्य अपनी प्रशंसा करता है, कि मैं पाण्डवों को मार लूँगा, परन्तु इनमें महावीर पाण्डवों की कला के समान भी वीरता नहीं है ॥३४॥

अनयो योऽयमागन्ता पुत्राणां ते दुरात्मनाम् ।
तदस्य कर्म जानीहि सूतपुत्रस्य दुर्मतेः ॥३५॥

हे राजन् ! जो तुम्हारे पुत्र में अनीति दिखाई देती है, वह भी इस दुर्मति सूत-पुत्र कर्ण का ही काम है,यह निश्चय समझो।

एतमाश्रित्य पुत्रस्ते मन्दबुद्धिः सुयोधनः ।
अवामन्यत तान्वीरान्देवपुत्रानरिंदमान् ॥३६॥

इसके अवलम्ब से ही यह तेरा मन्दबुद्धि सुयोधन, उन शत्रु-विजयी देवोपम वीर पाण्डवों का अपमान करता रहता है ॥३६॥

किं चाऽप्येतेन तत्कर्म कृतपूर्वं सुदुष्करम् ।
तैर्यथा पांडवैः सर्वैरेकैकेन कृतं पुरा ॥३७॥

क्या कभी इसने ऐसा दुष्कर कर्म कर दिखाया ? जैसा एक एक पाण्डव ने पूर्वकाल में कर रखा है ॥३७॥

दृष्ट्वा विराटनगरे भ्रातरं निहतं प्रियम् ।
धनञ्जयेन विक्रम्य किमनेन तदा कृतम् ॥३८॥

विराट नगर में अपने प्रिय भाई को अर्जुन द्वारा मरा हुआ देखकर भी इसने उस समय क्या किया ? ॥३८॥

सहितान्हि कुरून्सर्वानभियातो धनंजयः ।
प्रमथ्य चाऽच्छिन्नद्वासः किमयं प्रोषितस्तदा ॥३९॥

विराट नगर में सारे इकट्ठे कौरवों के सामने अकेला अर्जुन चला आया और इसने सबको पराजित करके सब के कपड़े छीन लिए—तो क्या उस समय कर्ण कहीं विदेश चला गया था ॥३९॥

गन्धर्वैर्घोषयात्रायां ह्रियते यत्सुतस्तव ।
क्व तदा सूतपुत्रोऽभूद्य इदानीं वृषायते ॥४०॥

जब घोष यात्रा के समय गन्धर्वों ने तुम्हारे पुत्र को बांध (कैद कर) लिया—तो उस समय सूत-पुत्र कहां था, जो इस समय सांड की तरह खुरी कर रहा है ॥४०॥

ननु तत्रापि भीमेन पार्थेन च महात्मना ।
यमाभ्यामेव संगम्य गन्धर्वास्ते पराजिताः ॥४१॥

वहां भी भीमसेन और महाबली अर्जुन तथा नकुल, सहदेव ने पहुंच कर उन गन्धर्वों को पराजित किया ॥४१॥

एतान्यस्य मृषोक्तानि बहूनि भरतर्षभ ।
विकत्थनस्य भद्रं ते सदा धर्मार्थलोपिनः ॥४२॥

हे भरतर्षभ ! इस प्रकार मिथ्या गर्वोक्ति से भरी हुई बहुत सी अपनी आत्मप्रशंसा धर्म और नीति के लोप करने वाले कर्ण के कथन में सुनी जाती है ॥४२॥

भीष्मस्य तु वचः श्रुत्वा भारद्वाजो महामनाः ।
धृतराष्ट्रमुवाचेदं राजमध्येऽभिपूजयन् ॥४३॥

भीष्म के ये वचन सुनकर भरद्वाज-पुत्र मनस्वी द्रोणाचार्य, उनका अनुमोदन करता हुआ राजसभा में धृतराष्ट्र से बोला ॥४३॥

यदाह भरतश्रेष्ठो भीष्मस्तत्क्रियतां नृप ।
न काममर्थलिप्सूनां वचनं कर्तुमर्हसि ॥४४॥
परा युद्धात्साधु मन्ये पांडवैः सह संगतम् ।

हे राजन ! जो कुछ भरतवंशश्रेष्ठ भीष्म ने कहा है—वह करो। कभी धनलोलुप मनुष्यों के वचनों के अनुसार काम नहीं कर बैठना चाहिए। मैं तो पाण्डवों से युद्ध करने की अपेक्षा उनसे सन्धि कर लेना ही श्रेष्ठ समझता हूं ॥४४॥

यद्वाक्यमर्जुनेनोक्तं संजयेन निवेदितम् ॥४५॥
सर्वं तदपि जानामि करिष्यति च पांडवः ।
न ह्यस्य त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्ति धनुर्धरः ॥४६॥

जो वाक्य अर्जुन ने कहा और सञ्जय ने यहां सुनाया है, मैं तो यह भी मानता हूं, कि पाण्डु-पुत्र, अर्जुन, यह सब कुछ सत्य करके दिखा सकता है। इस अर्जुन के समान तीनों लोक में कोई धनुषधारी वीर नहीं है ॥४५-४६॥

अनादृत्य तु तद्वाक्यमर्थवद् द्रोणभीष्मयोः ।
ततः स संजयं राजा पर्यपृच्छत पांडवान् ॥४७॥

इन भीष्म और द्रोण के सार्थक वचनों की उपेक्षा करके राजा धृतराष्ट्र, सञ्जय से फिर पाण्डवों के विषय में पूछने लगा ॥४७॥

तदैव कुरवः सर्वे निराशा जीवितेऽभवन् ।
भीष्मद्रोणौ यदा राजा न सम्यगनुभाषते ॥४८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि भीष्मद्रोणवाक्ये
ऊनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

इस समय सारे कौरव वीरों ने देख लिया, कि राजा धृतराष्ट्र ने भीष्म और द्रोण से ठीक भाषण नहीं किया--इससे उनको अपने जीवन में बिल्कुल निराशा हो गई ॥४८॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में भीष्म, द्रोण के वचन का उनचासवां अध्याय समाप्त हुआ।

पचासवां अध्याय

धृतराष्ट्रो उवाच—

किमसौ पांडवो राजा धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत ।
श्रुत्वेह बहुला सेनाः प्रीत्यर्थं नः समागताः ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! हमारी प्रीति से इकट्ठी हुई बहुत सी सेना को सुनकर धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने क्या कहा ।

किमसौ चेष्टते सूत योत्स्यमानो युधिष्ठिरः ।
के वाऽस्य भ्रातृपुत्राणां पश्यंत्याज्ञेप्सवो मुखम् ॥२॥

हे सूत-पुत्र ! युद्ध की इच्छा करने वाला युधिष्ठिर अब क्या चेष्टा कर रहा है । इसके भाई और पुत्रों में कौन २ उसकी आज्ञा के अभिलाषी उसके मुख की ओर देख रहे हैं ॥२॥

केस्विदेनं वारयन्ति युद्धाच्छाम्येति वा पुनः ।
निकृत्या कोपितं मन्दैर्धर्मज्ञं धर्मचारिणम् ॥३॥

कौन इसको ऐसी सम्मति दे रहे हैं, कि तुम शान्ति करो और युद्ध न करो । धर्म के ज्ञाता, धर्म के अनुसार चलने वाले जिस धर्मराज को मेरे पुत्रों ने छल करके कुपित कर दिया है ॥३॥

सञ्जय उवाच—

राज्ञो मुखमुदीक्षन्ते पाञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
युधिष्ठिरस्य भद्रन्ते स सर्वाननुशास्ति च ॥४॥

सञ्जय ने कहा—राजा युधिष्ठिर के मुख की ओर सारे भीम आदि पाण्डवों के साथ सारे पाञ्चाल देख रहे हैं। राजा युधिष्ठिर ही इन सबका अनुशासन कर रहा है ॥४॥

पृथग्भूताः पाण्डवानां पाञ्चालानां रथव्रजाः ।

आयान्तमभिनन्दन्ति कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥५॥

पाण्डव और पाञ्चालों के पृथक् २ रथ समूह आये हुए, कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर का स्वागत करते हैं ॥५॥

नभः सूर्यमिवोद्यन्तं कौन्तेयं दीप्ततेजसम् ।

पाञ्चालाः प्रतिनन्दन्ति तेजोराशिमिवोदितम् ॥६॥

आकाश में उदित होते हुए तेजोराशि सूर्य के समान तेजस्वी कुन्ती-पुत्र का पाञ्चाल बड़ा ही अभिनन्दन करते हैं ॥६॥

आगोपालाविपालाश्च नन्दमाना युधिष्ठिरम् ।

पाञ्चालाः केकया मत्स्याः प्रतिनन्दन्ति पाण्डवम् ॥७

गौ, भेड़, बकरी पालने वालों से लेकर उच्च २ क्षत्रिय, पाञ्चाल, केकय और मत्स्य, पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर को हर तरह से आनन्दित करने को उद्यत हैं ॥७॥

ब्राह्मण्यो राजपुत्र्यश्च विशां दुहितरश्च याः ।

क्रीडन्त्योऽभिसमायान्ति पार्थं सन्नद्धमीक्षितुम् ॥८॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की कन्याएँ युद्ध यात्रा को सन्नद्ध हुए राजा युधिष्ठिर को आनन्द के साथ देखने को आती हैं ॥८॥

धृतराष्ट्र उवाच—

सञ्जयाऽऽचक्ष्व येनाऽस्मान्पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ।
धृष्टद्युम्नस्य सैन्येन सोमकानां बलेन च ॥९॥

धृतराष्ट्र बोला—हे सञ्जय ! जिस धृष्टद्युम्न की सेना और सोमक वंश वालों के बल पर हमसे पाण्डव लड़ना चाहते हैं—अब तुम उनकी अवस्था सुनाओ ॥९॥

वैशम्पायन उवाच—

गावल्गणिस्तु तत् पृष्टः सभायां कुरुसंसदि ।
निःश्वस्य सुभृशं दीर्घं मुहुः सञ्चिन्तयन्निव ॥१०॥
तत्राऽनिमित्ततो दैवात्सूतं कश्मलमाविशत् ।
तदाऽऽचचक्षे विदुरः सभायां राजसंसदि ॥११॥
सञ्जयोऽयं महाराज मूर्छितः पतितो भुवि ।
वाचं न सृजते काञ्चिद्धीनप्रज्ञाऽल्पचेतनः ॥१२॥

वैशम्पायन बोले—गावल्गण के पुत्र सञ्जय से कुरु सभा में जब धृतराष्ट्र ने इतना पूछा—तो सञ्जय ने लम्बी सांस भरी और विचार किया। इस समय बिना किसी निमित्त के अचानक सूत-पुत्र सञ्जय को मोह प्राप्त हो गया । अब देदीप्यमान राज-सभा में विदुर बोला—हे महाराज ! यह सञ्जय मूर्छित होकर भूमि पर गिर गया है । इस समय इसकी चेतना और बुद्धि लुप्त सी हो गई है । इससे यह कुछ भी बोलने में समर्थ नहीं है ।

धृतराष्ट्र उवाच—

अपश्यत्सञ्जयो नूनं कुन्तीपुत्रान्महारथान्।
तैरस्य पुरुषव्याघ्रैर्भृशमुद्वेजितं मनः ॥१३॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! सञ्जय ने महारथी कुन्ती-पुत्र को देखा है—उन पुरुष प्रवीरों के देखने से ही इसका मन घवरा गया है ॥१३॥

वैशम्पायन उवाच—

सञ्जयश्चेतनां लब्ध्वा प्रत्याश्वस्येदमब्रवीत्।
धृतराष्ट्र महाराज सभायां कुरुसंसदि ॥१४॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन! इतने में ही सञ्जय को चेत हो आया। वह कुछ श्वांस लेकर कौरव वीरों की राजसभा में बोला—

सञ्जय उवाच—

दृष्टवानस्मि राजेन्द्र कुन्तीपुत्रान्महारथान्!
मत्स्यराजगृहावासनिरोधेनाऽवकर्शितान् ॥१५॥

हे महाराज! धृतराष्ट्र! राजेन्द्र! मैंने कुन्ती-पुत्र, महारथी, मत्स्यराज के घर पर निवास करने से कृश, पाण्डवों को देखा है ॥१५॥

शृणु यैर्हि महाराज पाण्डवा अभ्ययुञ्जत।
धृष्टद्युम्नेन वीरेण युद्धे वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥१६॥

हे महाराज! जिनको साथ लेकर पाण्डव, युद्ध करना चाहते हैं, तुम उनको सुनो! पाण्डव तुम्हारे साथ युद्ध में धृष्टद्युम्न को साथ लेकर भिड़ जाना चाहते हैं ॥१६॥

यो नैव रोषान्न भयान्न लोभान्नाऽर्थकारणात् ।
न हेतुवादाद्धर्मात्मा सत्यं जह्यात्कदाचन ॥१७॥
यः प्रमाणं महाराज धर्मे धर्मभृतां वरः ।
अजातशत्रुणा तेन पांडवा अभ्ययुंजत ॥१८॥

यह धर्मात्मा धृष्टद्युम्न, रोष, भय, लोभ, अर्थ-प्राप्त तथा किसी भी कुतर्क से सत्य को छोड़ने को तैयार नहीं है। हे महाराज ! यह वीर धर्मात्माओं में श्रेष्ठ और धर्म में प्रमाण माना गया है। उसी शत्रु विजयी वीर धृष्टद्युम्न की सहायता से पांडव तुम से लड़ जाना चाहते हैं ॥१७-१८॥

यस्य बाहुबले तुल्यः पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।
यो वै सर्वान्महीपालान्वशे चक्रे धनुर्धरः ।
यः काशीनङ्गमगधान्कलिंगांश्च युधाऽजयत् ॥१९॥
तेन वो भीमसेनेन पांडवा अभ्ययुञ्जत ।

जिसके बाहुबल की पृथिवी में कोई भी बराबरी नहीं कर सकता है, जिस धनुर्धर ने सारे राजाओं को वश में कर लिया है, जिसने युद्ध करके काशी, अङ्ग, मगध और कलिङ्ग को जीत लिया है, उसी भीमसेन को सहायता से पाण्डव तुम से लड़ना चाहते है ॥१९॥

यस्य वीर्येण सहसा चत्वारो भुवि पांडवाः ॥२०॥
निःसृत्य जतुगेहाद्वै हिडिंबात्पुरुषादकात् ।
यश्चैषामभवद् द्वीपः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥२१॥

याज्ञसेनीमथो यत्र सिंधुराजोऽपकृष्टवान् ।
तत्रैषामभवद् द्वीपः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः २२॥

जिसके वीर्य से चारों पाण्डव, पृथिवी पर जतु (लाख) के घर से निकल भागे तथा पुरुष-भक्षक हिडिम्ब राक्षस से कुन्ती-पुत्र वृकोदर ही इन सारे पाण्डवों का रक्षक बना। जब वन में सिन्धुराज जयद्रथ ने द्रौपदी का अपहरण किया, तब भी इनका रक्षक कुन्ती-पुत्र वृकोदर भीमसेन ही हुआ है ॥२०-२२॥

यश्च तान्संगतान्सर्वान्पांडवान्वारणावते ।
दह्यतो मोचयामास तेन वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥२३॥

जिसने वारणावत नगर में सारे इकट्ठे पाण्डवों को जलने से बचाया, वे सारे पाण्डव उसी भीमसेन के बल पर तुमसे लड़ने की तय्यारी कर रहे हैं ॥२३॥

कृष्णायां चरता प्रीतिं येन क्रोधवशा हताः ।
प्रविश्य विषमं घोरं पर्वतं गन्धमादनम् ॥२४॥

द्रौपदी की प्रीति सम्पादन करने के लिए ही जिसने क्रोध के वश में हुए यक्षों को विषम और घोर गन्ध मादन पर्वत पर प्रविष्ट होकर नष्ट किया ॥२४॥

यस्य नागायुतैर्वीर्यं भुजयोः सारमर्पितम् ।
तेन वो भीमसेनेन पांडवा अभ्ययुञ्जत ॥२५॥

जिसकी भुजाओं में दश हजार हाथी का पराक्रम और बल है। उसी भीमसेन के बल पर पाण्डव, तुम से लड़ने को तैयारी कर रहे हैं ॥२५॥

कृष्णाद्वितीयो विक्रम्य तुष्ट्यर्थं जातवेदसः ।
अजयद्यः पुरा वीरो युद्ध्यमानं पुरन्दरम् ॥२६॥
यः स साक्षान्महादेवं गिरिशं शूलपाणिनम् ।
तोषयामास युद्धेन देवदेवमुमापतिम् ॥२७॥

श्रीकृष्ण को साथ लेकर जिस वीर अर्जुन ने अग्नि की प्रसन्नता के लिए पराक्रम करके युद्ध करते हुए इन्द्र को भी जीत लिया। जिसने कैलाशवासी, शूलपाणि, साक्षात उमापति देवाधिदेव महादेव को युद्ध द्वारा सन्तुष्ट कर दिया ॥२६-२७॥

यश्च सर्वान्वशे चक्रे लोकपालान्धनुर्धरः ।
तेन वो विजयेनाऽऽजौ पांडवा अभ्ययुञ्जत॥२८॥

जिस धनुर्धर ने सारे लोकपालों को अपने वश में कर लिया, उसी अर्जुनके भरोसे पर पाण्डव, तुमसे लड़ना चाहते हैं।

यः प्रतीचीं दिशं चक्रे वशे म्लेच्छगणायुताम् ।
स तत्र नकुलो योद्धा चित्रयोधी व्यवस्थितः॥२९॥

जिसने पश्चिम दिशा में जाकर हजारों की संख्या में म्लेच्छ गणों को वश में कर लिया, उनके साथ वही विचित्र ढंग से युद्ध करने वाला नकुल है। हे कौरव्य ! उसी धनुर्धर, अत्यन्त सुन्दर माद्री-पुत्र नकुल के बल पर पाण्डव तुमसे युद्ध में लड़ना चाहते हैं ॥२९॥

तेन वो दर्शनीयेन वीरेणाऽतिधनुर्भृता ।
माद्रीपुत्रेण कौरव्य पांडवा अभ्ययुञ्जत ॥३०॥

यः काशीनङ्गमगधान्कलिंगांश्च युधाऽजयत् ।
तेन वः सहदेवेन पांडवा अभ्ययुञ्जत ॥३१॥

जिसने काशी, अङ्ग, मगध, कलिङ्ग देशों को युद्ध में जीता, उसी सहदेव के कारण पाण्डव युद्ध के लिए उत्सुक हो रहे हैं ३१;

यस्य वीर्येण सदृशाश्चत्वारो भुवि मानवाः ।
अश्वत्थामाधृष्टकेतू रुक्मी प्रद्युम्न एव च ॥३२॥
तेन वः सहदेवेन युद्धं राजन्महात्ययम् ।
यवीयसा नृवीरेण माद्रिनन्दिकरेण च ॥३३॥

जिसके पराक्रम के बराबर पृथिवी पर अश्वत्थामा, धृष्टकेतु रुक्मी और प्रद्युम्न ये चार वीर हैं। हे राजन्! उसी माद्री के आनन्द करने वाले, महावीर युवा सहदेव के साथ तुम्हारे लिए युद्ध बड़ा क्लेशकारी होगा ॥३२-३३॥

तपश्चचार या घोरं काशिकन्या पुरा सती ।
भीष्मस्य वधमिच्छन्ति प्रेत्याऽपि भरतर्षभ ॥३४॥
पाञ्चालस्य सुता जज्ञे दैवाच्च स पुनः पुमान् ।
स्त्रीपुंसोः पुरुषव्याघ्र यः स वेद गुणागुणान्॥३५॥
यः कलिङ्गान्समापेदे पाञ्चाल्यो युद्धदुर्मदः ।
शिखण्डिना वः कुरवः कृतास्त्रेणाऽभ्ययुञ्जत॥३६॥

हे भरतर्षभ ! जिस सती काशिराज कन्या ने मरकर भी भीष्म के वध करने को घोर तप किया, जो पाञ्चालराज की कन्या होकर भी फिर पुरुष बन गया, जो पुरुष-श्रेष्ठ स्त्री और

पुरुष दोनों जाति के गुण अवगुणों को जानता था। हे कौरवो! जिस पाञ्चाल राजपुत्र युद्धदुर्मद शिखण्डी ने कलिंग देश को जीता, उसी शस्त्रधारी शिखण्डी के भरोसे पर पाण्डव तुमसे लड़ना चाहते हैं ॥३६॥

यं यक्षः पुरुषं चक्रे भीष्मस्य निधनेच्छया ।
महेष्वासेन रौद्रेण पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥३७॥

जिसको किसी यक्ष ने भीष्म के वध के लिए पुरुष बना दिया है। उसी महाधनुर्धर, भीषण शिखण्डी के बल पर पाण्डव तुमसे लड़ना चाहते हैं ॥३७॥

महेष्वासा राजपुत्रा भ्रातरः पञ्च केकयाः ।
आमुक्तकवचाः शूरास्तैश्च वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥३८॥

केकय देश के पांच भाई, महाधनुर्धर राजपुत्र आए हुए हैं। जिन्होंने कवच धारण किए हुए हैं, उन्हीं शूरवीरों के भरोसे पर पाण्डव तुमसे लड़ना चाहते हैं ॥३८॥

यो दीर्घबाहुः क्षिप्रास्त्रो धृतिमान्सत्यविक्रमः ।
तेन वो वृष्णिवीरेण युयुधानेन सङ्गरः ॥३९॥

जो दीर्घ बाहुधारी, शीघ्रता से शस्त्र फैंकने वाला, धैर्यशील, सत्य पराक्रमी है उसी वृष्णि वीर युयुधान के साथ तुम्हारा युद्ध होगा ॥३९॥

य आसीच्छरणं काले पाण्डवानां महात्मनाम् ।
रणे तेन विराटेन भविता वः समागमः ॥४०॥

जो समय पर महावीर पाण्डवों का रक्षक बना, उसी विराट के साथ रण में तुम्हारा समागम होगा ॥४०॥

यः स काशिपती राजा वाराणस्यां महारथः ।
स तेषामभवद्योद्धा तेन वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥४१॥

जो काशीपति महारथी राजा वाराणसी (काशी) नगरी में रहता है, वह उनका योद्धा होगा, जिसका तुम्हारे साथ युद्ध होना है ॥४१॥

शिशुभिर्दुजयैः संख्ये द्रौपदेयैर्महात्मभिः ।
आशीविषसमस्पर्शैः पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥४२॥

युद्ध में दुर्जय द्रौपदी के वीर बालक पुत्र,सर्प के समान भयंकर है, उनके बल पर निर्भर होकर ही पाण्डव तुम से लड़ना चाहते हैं ॥१५॥

यः कृष्णसदृशो वीर्ये युधिष्ठिरसमो दमे ।
तेनाऽभिमन्युना संख्ये पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥४३॥

जो श्रीकृष्ण के समान पराक्रमी और राजा युधिष्ठिर के तुल्य जितेन्द्रिय है, उसी अभिमन्यु के बल के भरोसे पाण्डव, तुमसे युद्ध करना चाहते हैं ॥४३॥

यश्चैवाऽप्रतिमो वीर्ये धृष्टकेतुर्महायशाः ।
दुःसहः समरे क्रुद्धः शैशुपालिर्महारथः ॥४४॥
तेन चैदिराजेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ।
अक्षौहिण्या परिवृतः पांडवान्योऽभिसंश्रितः ॥४५॥

जो पराक्रम में अद्वितीय, महायशस्वी धृष्टकेतु है, यह महारथी, शिशुपाल पुत्र भी क्रुद्ध हुआ युद्ध में बड़ा दुःसह है। उसी चेदिराज के बल पर पाण्डव लड़ना चाहते हैं। यह शिशुपाल-पुत्र एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवों की सहायता को आया है ॥४४-४५॥

यः संश्रयः पांडवानां देवानामिव वासवः।
तेन वो वासुदेवेन पांडवा अभ्ययुञ्जत ॥४६॥

जो देवों को इन्द्र के तुल्य पाण्डवों का रक्षक है, उसी वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण के बल पर पाण्डव तुमसे लड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं ॥४६॥

तथा चेदिपतेर्भ्राता शरभो भरतर्षभ।
करकर्षेण सहितस्ताभ्यां वस्तेऽभ्ययुंजत ॥४७॥

हे भरतर्षभ ! इसी तरह चेदिपति धृष्टकेतु का भाई शरभ, करकर्ष के सहित पाण्डवों की सहायता को आया है—इन दोनों के बल पर भरोसा करके पाण्डव लड़ने को उद्यत हैं ॥४७॥

जारासन्धिः सहदेवो जयत्सेनश्च तावुभौ।
युद्धे प्रतिरथे वीरौ पांडवार्थे व्यवस्थितौ ॥४८॥

जरासन्ध का पुत्र सहदेव और जयत्सेन—ये दोनों पाण्डवों की सहायता के लिए तुम्हारे सम्मुख युद्ध के लिये तैयार हो रहे हैं ॥४८॥

द्रुपदश्च महातेजा बलेन महता वृतः ।
त्यक्तात्मा पांडवार्थाय योत्स्यमानो व्यवस्थितः ॥४९॥

बड़ी भारी सेना के साथ महातेजस्वी द्रुपदराज युद्ध की इच्छा से पाण्डवों को अपना जीवन दान देकर वहां उपस्थित है ॥४९॥

एते चाऽन्ये च बहवः प्राच्योदीच्या महीक्षितः ।
शतशो यानुपाश्रित्य धर्मराजो व्यवस्थितः ॥५०॥

इति श्रीमहाभारते संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयवाक्ये पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

इस प्रकार ये तथा अन्य पूर्व उत्तर के अनेक सैकड़ों राजाओं का आश्रय लेकर धर्मराज युद्ध की प्रतीक्षा में उपस्थित हैं ॥५०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में सञ्जय वाक्य का पचासवां अध्याय समाप्त हुआ ।

इक्यावनवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

सर्व एते महोत्साहा ये त्वया परिकीर्तिताः ।
एकतस्त्वेव ते सर्वे समेता भीम एकतः ॥१॥

धृतराष्ट्र बोला—हे सञ्जय ! जिन सारे महोत्साही वीरों का तू ने नाम सुनाए हैं, वे सारे एक ओर रहें और भीम एक ओर है अर्थात् इन सारे बली राजाओं के समान अकेला भीम बली है ।

भीमसेनाद्धि मे भूयो भयं सञ्जायते महत्।
क्रुद्धादमर्षणात्तात व्याघ्रादिव महारुरोः ॥२॥

हे तात! मुझे कुपित और आवेश में भरे हुए भीमसेन से, महाभय लगता है—जैसे महा-मृग को सिंह से भय लगा रहता है ॥२॥

जागर्मि रात्रयः सर्वा दीर्घमुष्णं च निःश्वसन् ।
भीतो वृकोदरात्तात सिंहात्पशुरिवाऽपरः ॥३॥

हे तात! मैं लम्बी उष्ण श्वास लेकर रात भर भीमसेन से भयभीत हुआ जागता रहता हूं, जैसे—सिंह से प्रत्येक पशु डरता हुआ जागता है ॥३॥

न हि तस्य महाबाहोः शक्रप्रतिमतेजसः ।
सैन्येऽस्मिन्प्रतिपश्यामि य एनं विषहेद्युधि ॥४॥

इन्द्र के समान पराक्रमी, महाबाहु भीम के तुल्य, मैं इस हमारी सेना में किसी को नहीं देखता हूं, जो युद्ध में उसका सामना कर सके ॥४॥

अमर्षणश्च कौन्तेयो दृढवैरश्च पांडवः ।
अनर्महासी सोन्मादस्तिर्यक्प्रेक्षी महास्वनः ॥५॥
महावेगो महोत्साहो महाबाहुर्महाबलः ।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धे नांतं करिष्यति ॥६॥

यह कुन्तीपुत्र पाण्डव भीमसेन, बड़ा क्रोधी, तेजस्वी, वैर को दृढ़ रखने वाला, कभी उपहास में भी नहीं हंसने वाला, मदो-

न्मत्त, निरछा देखने वाला, भीषण शब्दकारी, महावेग, महोत्साही, महाबाहु, महाबली है। मुझे तो यही दिखाई देता है, कि यह मेरे मूर्ख पुत्रों का अवश्य नाश करेगा ॥५-६॥

उरुग्राहगृहीतानां गदां बिभ्रद्वृकोदरः ।
कुरूणामृषभो युद्धे दण्डपाणिरिवांऽतकः ॥७॥

दृढ़ पकड़ पकड़ने वाले कौरवों में वीर, भीमसेन, युद्ध में गदा को धारण किए हुए, दण्ड धारक यम सा प्रतीत होगा ॥७॥

अष्टास्रिमायसीं घोरां गदां कांचन भूषणाम् ।
मनसाऽहं प्रपश्यामि ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम् ॥८॥

आठ कोणों से युक्त, लोह की बनी हुई, काञ्चन से जड़ी हुई, ब्रह्म, दण्ड के समान उद्यत, भीम की गदा मेरे मन के आगे चक्कर सा लगाती रहती है ॥८॥

तथा मृगाणां यूथेषु सिंहो जातबलश्चरेत् ।
मामकेषु तथा भीमो बलेषु विचरिष्यति ॥९॥

बलवान् सिंह जैसे—मृगों के यूथ में विचर सकता है, इसी तरह मेरी सेना में भीम घूमेगा ॥९॥

सर्वेषां मम पुत्राणां स एकः क्रूरविक्रमः ।
बह्वाशी विप्रतीपश्च बाल्येऽपि रभसः सदा ॥१०॥

वही क्रूर—पराक्रमी, अकेला भीम बड़ा वेगशील है, जो बचपन में ही मेरे सारे पुत्रों के विरुद्ध रहा करता था। यह बहुत भोजन कर जाता है और बड़ा वेगशील है ॥१०॥

उद्वेपते मे हृदयं ये मे दुर्योधनादयः ।
बाल्येऽपि तेन युद्ध्यंतो वारणेनेव मर्दिताः ॥११॥

उसके स्मरण से ही मेरा हृदय कांपने लगता है। यह तो बचपन में ही मेरे दुर्योधन आदि पुत्रों को हाथी की भांति मसल डालता था ॥११॥

तस्य वीर्येण संक्लिष्टा नित्यमेव सुता मम ।
स एव हेतुर्भेदस्य भीमो भीमपराक्रमः ॥१२॥

उसी भीम के पराक्रम से मेरे पुत्र क्लेशित हैं। इस सारे झगड़े का कारण ही भीम-पराक्रमी भीम है ॥१२॥

ग्रसमानमनीकानि नरवारणवाजिनाम् ।
पश्यामीनाऽग्रतो भीमं क्रोधमूर्छितमाहवे ॥१३॥

हाथी, घोड़े और मनुष्यों की सेना का विध्वंस करता हुआ, क्रोध में भरा हुआ भीमसेन, मुझे युद्ध में घूमता सा दिखाई दे रहा है ॥१३॥

अस्त्रे द्रोणार्जुनसमं वायुवेगसमं जवे ।
महेश्वरसमं क्रोधे को हन्याद्भीममाहवे ॥१४॥

अस्त्र में द्रोण और अर्जुन के समान, वेग में वायु तुल्य और क्रोध में महेश्वर सदृश भीम को युद्ध में कौन मार सकता है ॥१४॥

सञ्जयाऽऽचक्ष्व मे शूरं भीमसेनममर्षणम् ।
अतिलाभं तु मन्येऽहं यत्तेन रिपुघातिना ॥१५॥

तदैव न हताः सर्वे पुत्रा मम मनस्विना ।
येन भीमबला यक्षा राक्षसाश्च पुरा हताः ॥१६॥

हे सञ्जय ! मुझे तो तुम क्रोधी वीर भीमसेन की अवस्था सुनाओ । मैं तो यही लाभ मान रहा हूं, कि जो शत्रु घाती सावधान मनस्वी भीम ने उसी द्यूत के समय मेरे पुत्रों का वध नहीं कर डाला । इसने तो पूर्व में भयानक बल धारी यक्ष और राक्षस तक मार रखे हैं ॥१५-१६॥

कथं तस्य रणे वेगं मानुषः प्रसहिष्यति ।
न स जातु वशे तस्थौ मम बाल्येऽपि सञ्जय ॥१७॥

हे सञ्जय ! कौन ऐसा मनुष्य होगा—जो रण में उसके आक्रमण को सह सकेगा । वह तो बचपन में भी मेरे वश में नहीं था ॥१७॥

किं पुनर्मम दुष्पुत्रैः क्लिष्टः सम्प्रति पांडवः ।
निष्ठुरो रोषणोऽत्यर्थं भज्येताऽपि न सन्नमेत् ।
तिर्यक्प्रेक्षी संहतभ्रूः कथं शाम्येद् वृकोदरः ॥१८॥

इस समय तो मेरे दुष्ट पुत्रों ने उस पाण्डु-पुत्र भीम को कुपित कर रखा है । यह बड़ा निठुर और क्रोधी है । यह टूट जावेगा—परन्तु झुकना नहीं जानता है । यह टेढ़ा २ देखने वाला, टेढ़ी भोंहों का धारी, भीमसेन, कैसे शान्त किया जा सकता है ॥१८॥

शूरस्तथाऽप्रतिबलो गौरस्ताल इवोन्नतः ।
प्रमाणतो भीमसेनः प्रादेशेनाऽधिकोऽर्जुनात् ॥१६॥

यह बड़ा शूरवीर, महाबली, गौर वर्ण और ताल वृक्ष की तरह ऊंचा है। यह भीमसेन, नाप में अर्जुन से भी एक प्रादेश (बालिश्त) ऊंचा है ॥१६॥

जवेन वाजिनोऽत्येति बलेनाऽत्येति कुंजरान् ।
अव्यक्तजल्पी मध्वक्षो मध्यमः पांडवो बली ॥२०॥

यह वेग में अश्व और बल में हाथियों का अतिक्रमण कर जाता है। यह गम्भीर स्वर में बोलने वाला और मधु के समान वर्ण वाली आंखों का धारक मध्यम पाण्डु-पुत्र, भीम बड़ा ही शक्तिशाली है ॥२०॥

इति बाल्ये श्रुतः पूर्वं मया व्यासमुखात्पुरा ।
रूपतो वीर्यतश्चैव याथातथ्येन पांडवः ॥२१॥
आयसेन स दंडेन रथान्नागान्नरान्हयान् ।
हनिष्यति रणे क्रुद्धो रौद्रः क्रूरपराक्रमः ॥२२॥
अमर्षी नित्यसंरब्धो भीम प्रहरतां वरः ।
मया तत प्रतीपानि कुर्वन्पूर्वं विमानितः ॥२३॥

मैंने तो इसके बचपन में ही व्यास के मुख से सुन रखा है, कि यह पाण्डु-पुत्र, भीम रूप और पराक्रम में अद्वितीय है। क्रोध में भरा हुआ, रुद्राकारधारी, क्रूर-पराक्रमी, आवेश में भरा हुआ, नित्य उद्धत स्वभावधारी, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, भीमसेन अपनी लोह की गदा से युद्ध में रथ, हाथी, सैनिक और

अश्वों को मार बिछावेगा। हे तात ! यह जब बचपन में उलटी उलटी बातें करता था, मैंने उस समय से ही इसका अपमान कर रखा है ॥२१-२३॥

निष्कर्णामायसीं स्थूलां सुपार्श्वां काञ्चनीं गदाम्।
शतघ्नीं शतनिर्ह्रादां कथं शक्ष्यन्ति मे सुताः ॥२४॥

कान से आगे निकली हुई, शोभन पार्श्ववाली, सुवर्ण जटित, मोटी, सैकड़ों को मार देनेवाली बिजली की सी कड़क करनेवाली, भीमसेन की गदा के आघात को मेरे पुत्र कैसे सह सकते हैं ॥२४॥

अपारमप्लवागाधं समुद्रं शरवेधनम्।
भीमसेनमयं दुर्गं तात मन्दास्तितीर्षवः ॥२५॥

हे तात ! अपार, अगाध, नौकादि साधनों से हीन, बाण रूपी भयङ्कर जीव जन्तुओं से युक्त, दुर्गम, भीमसेन रूपी समुद्र को मेरे मूर्ख पुत्र, हाथों से तर जाना चाहते हैं ॥२५॥

क्रोशतो मे न शृण्वन्ति बालाः पण्डितमानिनः।
विषमं नहि मन्यन्ते प्रपातं मधुदर्शिनः ॥२६॥

ये मेरे पुत्र मूर्ख होकर अपने को पण्डित समझते हैं, इसी से मैं चिल्लाता हूं, परन्तु मेरी कोई एक भी नहीं सुनता है। ये मूर्ख, मधु को ओर देखते हुए उसमें होने वाले विषम पतन की ओर दृष्टि नहीं देते हैं ॥२६॥

संयुगं ये गमिष्यन्ति नररूपेण मृत्युना ।
नियतं चोदिता धात्रा सिंहेनेव महामृगाः॥२७॥

जब मेरे पुत्र, नर रूप धारी मृत्यु भीम के साथ भिड़ेंगे—तो यही निश्चय समझो, कि सिंह से महामृगों की तरह विधाता ने इनको उससे भिड़ाया है ॥२७॥

शैक्यां तात चतुष्किष्कुं षडस्रिममितौजसम् ।
प्रहितां दुःखसंस्पर्शां कथं शक्ष्यन्ति मे सुताः ॥२८॥

हे तात ! छींके पर रखी रहने वाली, चार हाथ लम्बी चौड़ी, छः कोनी, अत्यन्त प्रहार करने वाली, फैंकी हुई दुःखदायिनी गदा को मेरे पुत्र कैसे सहन करेंगे ॥२८॥

गदां भ्रामयतस्तस्य भिन्दतो हस्तिमस्तकान् ;
सृक्किणी लेलिहानस्य बाष्पमुत्सृजतो मुहुः ॥२९॥
उद्दिश्य नागान्पततः कुर्वतो भैरवान्रवान् ।
प्रतीपं पततो मत्तान्कुंजरान्प्रतिगर्जतः ॥३०॥
विगाह्य रथमार्गेषु वीरानुद्दिश्य निघ्नतः ।
अग्नेः प्रज्वलितस्येव अपि मुच्येत मे प्रजाः ॥३१॥

गदा को घुमाते, हाथियों के मस्तक छेदते, दांत पीसते, बार २ आंखों से क्रोध के जल को छोड़ते, हाथियों पर झपटते, कुञ्जरों के प्रति गर्जना करते, रथ मार्ग में पहुंच कर वीरों को लक्ष्य करके मारते हुए भीम से मेरे पुत्र नहीं बच सकते हैं, चाहे जलती आग से मेरे पुत्र किसी तरह बच सकते हैं ।

वीथीं कुर्वन्महाबाहुर्द्रावयन्मम वाहिनीम् ।
नृत्यन्निव गदापाणिर्युगांतं दर्शयिष्यति ॥३२॥

यह महाबाहु, गदापाणि, भीम, मेरी सेना को भगाता हुआ, उसमें मार्ग बना देगा । यह जिस समय रण में नाच सा करेगा—उस समय प्रलय का दृश्य खड़ा कर देगा ॥३२॥

प्रभिन्न इव मातंगः प्रभञ्जन्पुष्पितान्द्रुमान् ।
प्रवेक्ष्यति रणे सेनां पुत्राणां मे वृकोदरः ॥३३॥

पुष्पों से लदे हुए वृक्षों को मदोन्मत्त हाथी की तरह तोड़ता हुआ भीम, युद्ध में मेरे पुत्रों की सेना में प्रवेश करेगा ॥३३॥

कुर्वन्रथान्विपुरुषान्विसारथिहयध्वजान् ।
आरुजन्पुरुषव्याघ्रो रथिनः सादिनस्तथा ॥३४॥

रथों को रथियों, सारथि, अश्व और ध्वजा से हीन तथा महारथी और अश्व सवारों को पीड़ित करता हुआ भीम, अवश्य रण में प्रवेश करेगा ॥३४॥

गंगावेग इवाऽनूपांस्तीरजान्विविधान्द्रुमान् ।
प्रभंक्ष्यति रणे सेनां पुत्राणां मम सञ्जय ॥३५॥

हे सञ्जय ! जल प्रदेश में तट पर खड़े हुए अनेक वृक्षों को गंगा के वेग की तरह मेरे पुत्रों की सेना को भीम रण में नष्ट भ्रष्ट कर देगा ॥३५॥

दिशो नूनं गमिष्यन्ति भीमसेनभयार्दिताः ।
मम पुत्राश्च भृत्याश्च राजानश्चैव सञ्जय ॥३६॥

हे सञ्जय ! भीमसेन के भय से पीड़ित मेरे पुत्र, सेवक और राजा, निश्चय इधर उधर भाग निकलेंगे ॥३६॥

येन राजा महावीर्यः प्रविश्याऽन्तः पुरं पुरा ।
वासुदेवसहायेन जरासन्धो निपातितः ॥३७॥

जो भीमसेन श्रीकृष्ण को साथ लेकर जरासन्ध के रनिवास में घुस गया । इस भीमसेन से ही राजा युधिष्ठिर ने राजसूय के विघ्न-भूत राजा जरासन्ध का नाश करा दिया ॥३७॥

कृत्स्नेयं पृथिवी देवी जरासन्धेन धीमता ।
मागधेन्द्रेण बलिना वशे कृत्वा प्रतापिता ॥३८॥

मगधेश्वर, बुद्धिमान, महाबली जरासन्ध ने इस सारी पृथिवी को वश में करके बड़ी पीड़ित कर डाली थी ॥३८॥

भीष्मप्रतापात्कुरवो नयेनाऽन्धकवृष्णयः ।
यन्न तस्य वशे जग्मुः केवलं दैवमेव तत् ॥३९॥

भीष्म के प्रताप से कौरव और नीति से अन्धक और वृष्णि वंश के वीर ही उसके वश में नहीं हुए—यह केवल ईश्वर का अनुग्रह ही था ॥३९॥

स गत्वा पांडुपुत्रेण तरसा बाहुशालिना ।
अनायुधेन वीरेण निहतः किं ततोऽधिकम् ॥४०॥

उस जरासन्ध को भी बाहुबल-शाली, तरस्वी, शस्त्र - रहित पाण्डु-पुत्र वीर भीम ने मार गिराया—इससे अधिक और क्या हो सकता है ॥४०॥

दीर्घकालसमासक्तं विषमाशीविषो यथा ।
स मोक्ष्यति रणे तेजः पुत्रेषु मम सञ्जय ॥४१॥

हे सञ्जय ! दीर्घकाल से सञ्चित विष को आशीविष सर्प की भांति रण में मेरे पुत्रों पर भीम अवश्य अपने तेज को छोड़ेगा।

महेन्द्र इव वज्रेण दानवान्देवसत्तमः ।
भीमसेनो गदापाणिः सूदयिष्यति मे सुतान् ॥४२॥

देवराज इन्द्र, दैत्यों को जिस तरह वज्र से मार गिराता है, ऐसे ही गदा हाथ में लिए हुए भीमसेन, मेरे पुत्रों को रण में मार गिरावेगा ॥४२॥

अविषह्यमनावार्यं तीव्रवेगपराक्रमम् ।
पश्यामीवाऽतिताम्राक्षमापतन्तं वृकोदरम् ॥४३॥

असह्य, नहीं रुकने वाले, तीव्र वेग के साथ पराक्रम कारी, लाल २ आंखों वाले, भीमसेन को मैं युद्ध में दौड़ता हुआ सा देख रहा हूं ॥४३॥

अगदस्याऽप्यधनुषो विरथस्य विवर्मणः ।
बाहुभ्यां युद्ध्यमानस्य कस्तिष्ठेदग्रतः पुमान्॥४४॥

गदा, धनुष, रथ और कवच को छोड़कर भी केवल बाहुबल का आश्रय लेकर भीमसेन युद्ध करेगा—तो भी कोई मनुष्य उसके आगे नहीं आ सकेगा ॥४४॥

भीष्मो द्रोणश्च विप्रोऽयं कृपः शारद्वतस्तथा ।
जानन्त्येते यथैवाऽहं वीर्यज्ञस्तस्य धीमतः ॥४५॥

भीष्म, द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य, शरद्वान् पुत्र, कृपाचार्य—ये सब जानते हैं, कि मैं उस बुद्धिमान् भीम के पराक्रम को अच्छी तरह जानता हूं ।।४५।।

आर्यव्रतं तु जानन्तः सङ्गरान्तं विधित्सवः ।
सेनामुखेषु स्थास्यन्ति मामकानां नरर्षभाः ।।४६।।

मेरे वीर,आर्य व्रत को जानते हैं, इससे युद्ध का अन्त करने की इच्छा से सेना के मुख पर अवश्य खड़े होवेंगे ।।४६।।

बलीयः सर्वतो दिष्टं पुरुषस्य विशेषतः ।
पश्यन्नपि जयं तेषां न नियच्छामि यत्सुतान् ।।४७।।

पुरुष का दैव सबसे बलवान् है । मुझे पाण्डवों की जय सामने खड़ी दिखाई देती है—तो भी मैं अपने पुत्रों को रोक नहीं सकता हूं ।।४७।।

ते पुराणं महेष्वासा मार्गमैन्द्रं समास्थिता ।
त्यक्ष्यन्ति तुमुले प्राणान्रक्षन्तः पार्थिवं यशः।।४८।।

ये महाधनुर्धर, भीष्म आदि, इन्द्र के द्वारा प्रदर्शित किये हुए युद्ध मार्ग को स्वीकार करके अपने यश की पृथिवी पर रक्षा करते हुए,घोर संग्राम में अपने प्राणों की अवश्य आहुति देंगे ।।४८

यथैषं मामकास्तात तथैषां पांडवा अपि ।
पौत्रा भीष्मस्य शिष्याश्च द्रोणस्य च कृपस्य च ।।४९।।

हे तात! जैसे मेरे पुत्र भीष्म के पौत्र हैं । उसी तरह पाण्डव भी भीष्म के ही पौत्र हैं । जिस तरह मेरे पुत्र द्रोण

तथा कृपाचार्य के शिष्य हैं, उसी तरह पाण्डव भी उनके शिष्य हैं ॥४६॥

ये त्वस्मदाश्रयं किंचिद्वृत्तमिष्टं च सञ्जय।
तस्याऽपचितिमार्यत्वात्कर्तारः स्थविरास्त्रयः ॥५०॥

हे सञ्जय ! ये तीनों वृद्ध वीर हमारे आश्रित हैं और हमारी वृत्ति को भोग रहे हैं। ये बड़े आर्य पुरुष हैं, इसमें उस वृत्ति के ध्यान से अवश्य उसका ऋण चुकावेंगे ॥५०॥

आददानस्य शस्त्रं हि क्षत्रधर्मं परीप्सतः।
निधनं क्षत्रियस्याऽऽजौ वरमेवाऽऽहुरुत्तमम् ॥५१॥

क्षत्रिय धर्म में आरूढ़, शस्त्र धारण करके, क्षत्रिय का रण में मर जाना भी सर्व श्रेष्ठ माना गया है ॥५१।

स वै शोचामि सर्वान्वै ये युयुत्सन्ति पांडवैः।
विक्रुष्टं विदुरेणाऽऽदौ तदेतद्भयमागतम् ॥५२॥

मैं उन सबकी निन्दा करना चाहता हूं, जो पाण्डवों से लड़ने को उद्यत हैं। जो विदुर ने प्रारम्भ में जिस भय का दिग्दर्शन किया था, वह भय अब आ खड़ा हुआ है ॥५२॥

न तु मन्ये विघाताय ज्ञानं दुःखस्य सञ्जय।
भवत्यतिबले ह्येतज्ज्ञानस्याऽप्युपघातकम् ॥५३॥

हे सञ्जय ! मैं दुःख का विघातक ज्ञान को भी नहीं देख रहा हूं, प्रत्युत यह शोक बड़ा बलवान् और ज्ञान का भी विघातक है।

ऋषयो ह्यपि निर्मुक्ताः पश्यन्तो लोकसंग्रहान् ।
सुखैर्भवति सुखिनस्तथा दुःखेन दुःखिताः ॥५४॥

संसार के बन्धनों से मुक्त ऋषि मुनि भी लोक संग्राह में फंसे हुए सुखों से सुखी और दुःखों से दुःखी होते रहे हैं ॥५४॥

किं पुनर्मोहमासक्तस्तत्र तत्र सहस्रधा ।
पुत्रेषु राज्यदारेषु पौत्रेष्वपि च बन्धुषु ॥५५॥

इन मनुष्यों का तो कहना ही क्या है ? जो सहस्रों प्रकार के पुत्र, राज्य, स्त्री, पौत्र और बन्धुओं के मोह में फंसे हुए हैं ॥५५॥

संशये तु महत्यस्मिन्कि नु मे क्षममुत्तरम् ।
विनाशं ह्येव पश्यामि कुरूणामनुचिन्तयन् ॥५६॥

इस सन्देह में फंस जाने पर इसका उचित उत्तर क्या है, तो विचार करने पर यही प्रतीत होता है, कि कौरवों का विनाश ही आकर उपस्थित हो गया है ॥५६॥

द्यूतप्रमुखमाभाति कुरूणां व्यसनं महत् ।
मन्देनैश्वर्यकामेन लोभात्पापमिदं कृतम् ॥५७॥

कौरवों को जो यह विपत्ति आई है, इसका प्रधान कारण द्यूत ही है । इस लोभी, लालची, मूर्ख दुर्योधन ने यह सारा पाप खड़ा कर लिया ॥५७॥

मन्ये पर्यायधर्मोऽयं कालस्याऽत्यन्तगामिनः ।
चक्रे प्रधिरिवाऽऽसक्तो नाऽस्य शक्यं पलायितुम् ५८

अत्यन्त तीव्र-गति से चलने वाले काल का यह चक्र अदलने बदलने का स्वभाव ही है मैं इसमें की चक्रान्तभागकी तरह फंस रहा हूं और इससे निकल कर भाग नहीं सकता हूं ॥५८॥

किं नु कुर्या कथं कुर्यां क्व नु गच्छामि सञ्जय।
एते नश्यन्ति कुरवो मन्दाः कालवशं गताः ॥५९॥

हे सञ्जय ! क्या करूं, कैसे करूं और कहां जाऊं ? अब तो ये मूर्ख कौरव काल के वश में पड़े हुए अवश्य नष्ट होंगे ॥५९॥

अवशोऽहं तदा तात पुत्राणां निहते शते।
श्रोष्यामि निनदं स्त्रीणां कथं मां मरणं स्पृशेत्॥६०॥

हे तात ! इन मेरे सौ पुत्रों के नष्ट हो जाने पर मैं परतन्त्र हो जाऊंगा उस समय मैं अपनी स्त्रियों का शोकार्त शब्द सुनूंगा और यही चाहूंगा, कि किसी तरह मुझे मृत्यु आ जावे।

यथा निदाघे ज्वलनः समिद्धो दहेत्कक्षं वायुना चोद्यमानः।
गदाहस्तः पांडवो वै तथैव हन्ता मदीयान्सहितोऽर्जुनेन॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि
धृतराष्ट्रवाक्ये एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

जैसे-ग्रीष्म ऋतु में प्रज्वलित आग, वायु से देदीप्यमान होकर तृण की ढेरी को जला डालती है, उसी तरह अर्जुन के साथ गदाधारी भीमसेन मेरे पुत्रों का नाश करेगा ॥६१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसंधिपर्व में धृतराष्ट्र के वाक्य का इक्यावनवां अध्याय समाप्त हुआ।

बावनवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

यस्य वै नाऽनृता वाचः कदाचिदनुशुश्रुम।
त्रैलोक्यमपि तस्य स्याद्योद्धा यस्य धनञ्जयः॥१॥

धृतराष्ट्र—हे सञ्जय! जिसकी कभी बात मिथ्या होती नहीं देखी और जिसका योद्धा अर्जुन जैसा वीर है, वह त्रिलोकी को भी जीत सकता है॥१॥

तस्यैव च न पश्यामि युधि गाण्डीवधन्वनः।
अनिशं चिन्तयानोऽपि यः प्रतियाद्रथेन तम्॥२॥

मैं बहुत बार सोचने पर भी उस गाण्डीव धनुषधारी, अर्जुन के सम्मुख युद्ध में जाता हुआ किसी को नहीं देख पाता हूं॥२॥

अस्यतः कर्णिनालीकान्मार्गणान्हृदयच्छिदः।
प्रत्येता न समः कश्चिद्युधि गाण्डीवधन्वनः॥३॥

कर्णि, नालीक आदि हृदय भेदी बाणों को छोड़ते हुए गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन का युद्ध में कोई प्रतिभट नहीं प्रतीत होता है॥३॥

द्रोणकर्णौ प्रतीयातां यदि वीरौ नरर्षभौ।
कृतास्त्रौ बलिनां श्रेष्ठौ समरेष्वपराजितौ॥४॥
महान्स्यात्संशयो लोके न त्वस्ति विजयो मम।
घृणी कर्णः प्रमादी च आचार्यः स्थविरो गुरुः॥५॥

समर्थो बलवान्पार्थो दृढधन्वा जितक्रमः।
भवेत्सुतुमुलं युद्धं सर्वशोऽप्यपराजयः ॥६॥

यद्यपि नर-श्रेष्ठ द्रोण और कर्ण, अस्त्र विद्या में कुशल, बलवानों में श्रेष्ठ, युद्ध में पराजित नहीं होने वाले वीर हैं, परन्तु इस समय भी मुझे विजय में महान ही संशय है, क्योंकि कर्ण, सब वीरों से घृणा करने वाला प्रमादी वीर है और गुरु द्रोणाचार्य वृद्ध हो चुके हैं। दृढ़ धनुषधारी, किसी तरह क्लेश नहीं मानने वाला, अर्जुन, सब तरह से समर्थ है। उसका महाघोर युद्ध होगा और वह कभी पराजित नहीं हो सकेगा ॥४-६॥

सर्वे ह्यस्त्रविदः शूराः सर्वे प्राप्ता महायशः।
अपि सर्वामरैश्वर्यं त्यजेयुर्न पुनर्जयम् ॥७॥

पाण्डवों के साथ सारे शूरवीर, अस्त्र विद्या के ज्ञाता और युद्ध में यश पाये हुए हैं। ये इन्द्र के ऐश्वर्य की भी परवाह न करके विजय को कभी हाथ से नहीं जाने देंगे ॥७॥

वधे नूनं भवेच्छांतिस्तयोर्वा फाल्गुनस्य च।
न तु हन्ताऽर्जुनस्याऽस्ति जेता चाऽस्य न विद्यते॥८॥
मन्युस्तस्य कथं शाम्येन्मंदान्प्रति य उत्थितः।

इस तरह प्रारम्भ हुए युद्ध की समाप्ति तो तभी होगी, जब द्रोण या कर्ण मर लेगा या अर्जुन समाप्त हो लेगा, परन्तु अर्जुन का मारने वाला या विजेता कोई संसार में उत्पन्न ही नहीं हुआ है। अब इन वेसमझ मेरे पुत्रों पर चढ़े हुए, अर्जुन के क्रोध की शान्ति का कोई उपाय ही नहीं दिखाई देता है ॥८॥

अन्येऽप्यस्त्राणि जानन्ति जीयन्ते च जयन्ति च ॥९॥
एकान्तविजयस्त्वेव श्रूयते फाल्गुनस्य ह ।

अन्य वीर भी अस्त्र चलाना जानते हैं, वे कभी जीतते और कभी हार जाते हैं, परन्तु अर्जुन तो सदा जीतता ही रहता है ॥९॥

त्रयस्त्रिंशत्समाऽऽहूय खांडवेऽग्निमतर्पयत् ॥१०॥
जिगाय च सुरान्सर्वान्नाऽस्य विद्मः पराजयम् ।

तेतीस वर्ष हो चुके होंगे, कि इसने खाण्डव वन में अग्नि का आह्वान करके उसको तृप्त किया। उस समय इसने सारे देवों को जीत लिया है। हमको तो ऐसा कोई युद्ध याद नहीं है, जिसमें कभी अर्जुन का पराजय हुआ हो ॥१०॥

यस्य यन्ता हृषीकेशः शीलवृत्तसमो युधि ॥११॥
ध्रुवस्तस्य जयस्तात यथेन्द्रस्य जयस्तथा ।

हे तात! अर्जुन के समान ही पराक्रम और युद्ध में बली, श्रीकृष्ण, इसके सारथि बने हैं। जिस तरह इन्द्र का जय अवश्य होता है, उसी तरह अर्जुन का विजय भी अवश्यम्भावी है ॥११॥

कृष्णावेकरथे यत्तावधिज्यं गांडिवं धनुः ॥१२॥
युगपत्त्रीणि तेजांसि समेतान्यनुशुश्रुम ।

अर्जुन और श्रीकृष्ण एक रथ में ही बड़ी सावधानी से लड़ने को उद्यत हैं और डोरी पर चढ़ा हुआ गाण्डीव धनुष तय्यार है।

ये तीनों तेज एक जगह इकट्ठे हो चुके हैं—मैं यह सुन रहा हूं ॥१२॥

नैवाऽस्ति नो धनुस्तादृङ् न योद्धा न च सारथिः ॥
तच्च मन्दा न जानन्ति दुर्योधनवशानुगाः ।

न तो हमारे पास वैसा धनुष है और न अर्जुन जैसा योद्धा और न श्रीकृष्ण के समान सारथि है, परन्तु अज्ञानी, कौरव, दुर्योधन के उभारे हुए—यह सब कुछ नहीं जानते हैं ॥१३॥

शेषयेदशनिर्दीप्तो निपतन्मूर्ध्नि सञ्जय ॥१४॥
न तु शेषं शरास्तात कुर्युरस्ताः किरीटिना ।

हे सञ्जय! यदि प्रदीप्त वज्र, शिर पर गिर पड़े, तो कुछ बच भी सकता है, परन्तु किरीटधारी अर्जुन के छोड़े हुए बाणों से कोई नहीं बच सकता है ॥१४॥

अपि चाऽस्यनिवाऽऽभाति निघ्नन्निव धनञ्जयः ॥१५
उद्धरन्निव कायेभ्यः शिरांसि शरवृष्टिभिः ।

मुझको अर्जुन बाण फेंकता, योद्धाओं को मारता, और शर वृष्टि से योद्धाओं के शरीरों से शिर को पृथक् करता सा दिखाई दे रहा है ॥१५॥

अपि बाणमयं तेजः प्रदीप्तमिव सर्वतः ॥१६॥
गांडीवोत्थं दहेताऽऽजौ पुत्राणां मम वाहिनीम् ।

अर्जुन के बाणों का तेज, सब ओर फैलता हुआ सा जा रहा है। यह गाण्डीव धनुष से निकला हुआ बाण मय तेज, युद्ध में मेरे पुत्रों की सेना को भस्म कर देगा ॥१६॥

अपि सा रथघोषेण भयार्ता सव्यसाचिनः ॥१७॥
वित्रस्ता बहुधा सेना भारती प्रतिभाति मे ।

मुझे तो यही मालूम पड़ता है, कि सव्यसाची अर्जुन के रथके घोष से भयातुर हुई, भारतवासियों की सेना घबरा जावेगी ॥१७

यथा कक्षं महानग्निः प्रदहेत्सर्वतश्चरन् ।
महार्चिरनिलोद्धूतस्तद्वद्धक्ष्यति मामकान् ॥१८॥

बड़ी लपटों से लपलपाता हुआ, सब ओर फैलता हुआ, महान् अग्नि जैसे—घास की ढेरी को भस्म कर देता है, वैसे ही यह अर्जुन मेरे पुत्रों को जला डालेगा ॥१८॥

यदोद्वमन्निशितान्बाणसङ्घांस्तानाततायी समरे किरीटी ।
सृष्टोऽन्तकः सर्वहरो विधात्रा यथा भवेत्तद्वदपारणीयः १६

यह मार काट मचाने वाला अर्जुन, युद्ध में जब तीक्ष्ण बाण समूहों को छोड़ेगा—तो ऐसा प्रतीत होगा—जैसा विधाता ने वश में नहीं आने वाला रचकर काल भेजा हो ॥१६॥

यदाह्यभीक्ष्णंसुबहून्प्रकाराञ्श्रोताऽस्मितानावसथेकुरूणाम्
तेषां समन्ताच्च तथा रणाग्रे क्षयः किलाऽयं भरतानुपैति ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

जब मैं कौरव सेना के कटने मरने आदि के वृत्तान्त घर में बैठा हुआ लगातार सुनूंगा—उस समय रण में भरत वंश का सब ओर से विनाश उपस्थित हो गया—यही कहना होगा ॥२०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यान सन्धि पर्व में धृतराष्ट्र वाक्य का बावनवां अध्याय समाप्त हो गया।

तेरपनवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच —

यथैव पांडवाः सर्वे पराक्रान्ता जिगीषवः ।
तथैवाऽभिसरास्तेषां त्यक्तात्मानो जये धृताः ॥१॥

धृतराष्ट्र कहने लगा—हे सञ्जय ! जैसे विजय के अभिलाषी पाण्डव पराक्रमी हैं, वैसे ही सेना के आगे चलने वाले उनके सेनापति हैं। वे भी अपने प्राणों की अपेक्षा न करके विजय के अभिलाषी हैं ॥१॥

त्वमेव हि पराक्रान्तानाचक्षीथाः परान्मम ।
पञ्चालान्केकयान्मत्स्यान्मागधान्वत्सभूमिपान् ॥२॥

हे सूतपुत्र ! तुमने ही तो प्रतिपक्षी पञ्चाल, केकय, मत्स्य, मागध, वत्सभूमि के पराक्रमी राजाओं का समाचार सुनाया है ।

यश्च सेन्द्रानिमांल्लोकानिच्छन्कुर्याद्वशे बली ।
स स्रष्टा जगतः कृष्णः पाण्डवानां जये धृतः ॥३॥

यदि इच्छा करें, तो इन्द्र सहित सारे लोकों को महाबली, जगत्स्रष्टा श्रीकृष्ण, वश में कर सकते हैं। वे ही श्रीकृष्ण, पाण्डवों के विजय के लिए प्रयत्नशील हैं ॥३॥

समस्तामर्जुनाद्विद्यां सात्यकिः क्षिप्रमाप्तवान् ।
शैनेयः समरे स्थाता बीजवत्प्रवपञ्शरान् ॥४॥

सात्यकि ने भी अर्जुन से सारी युद्ध विद्या सीखी है। शिनि पौत्र सात्यकि युद्ध में बीज की तरह बाणों को बोता हुआ, समर में उपस्थित होता है ॥४॥

धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः क्रूरकर्मा महारथः ।
मामकेषु रणं कर्ता बलेषु परमास्त्रवित् ॥५॥

पाञ्चाल राजपुत्र धृष्टद्युम्न, बड़ा क्रूर कर्मा महारथी है। अस्त्र प्रयोग में कुशल इसी धृष्टद्युम्न का मेरी सेना के साथ युद्ध होगा ॥५॥

युधिष्ठिरस्य च क्रोधादर्जुनस्य च विक्रमात् ।
यमाभ्यां भीमसेनाच्च भयं मे तात जायते ॥६॥

हे तात ! राजा युधिष्ठिर के क्रोध, अर्जुन के विक्रम तथा नकुल और सहदेव से मुझे भय खड़ा हो रहा है ॥६॥

अमानुषं मनुष्येन्द्रैर्जालं विततमन्तरा ।
न मे सैन्यास्तरिष्यन्ति ततः क्रोशामि सञ्जय ॥७॥

हे सञ्जय ! इन पुरुष वीरों ने मनुष्य की शक्ति से बाहर बीच में ही ऐसा जाल बिछा रखा है, कि मेरी सेना उसको तर नहीं सकेगी, इससे मैं चिल्ला रहा हूं ॥७॥

दर्शनीयो मनस्वी च लक्ष्मीवान्ब्रह्मवर्चसी ।
मेधावी सुकृतप्रज्ञो धर्मात्मा पाण्डुनन्दनः ॥८॥

मित्रामात्यैः सुसम्पन्नः सम्पन्नो युद्धयोजकैः ।
भ्रातृभिः श्वशुरैर्वीरैरुपपन्नो महारथैः ॥९॥

धृत्या च पुरुषव्याघ्रो नैभृत्येन च पाण्डवः ।
अनृशंसो वदान्यश्च ह्रीमान्सत्यपराक्रमः ॥१०॥

बहुश्रुतः कृतात्मा च वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ।

पाण्डुपुत्र, राजा युधिष्ठिर, बड़ा सुन्दर, मनस्वी, लक्ष्मीवान्, ब्रह्मवर्चस्वी, बुद्धिमान्, अनुभवी, धर्मात्मा, मित्र और मंत्रियों से युक्त, युद्ध योजक सेनापतियों से सुसम्पन्न, महारथी भाई और श्वसुर, श्वसुर पुत्रादि से समन्वित, धैर्य और मंत्र की रक्षा से सुशोभित, उदार, दानी लज्जाशील, सत्य पराक्रमी, विद्वान्, शुद्ध आत्मा, वृद्धों का सेवी, जितेन्द्रिय और पुरुष रत्न है ॥८-१०॥

तं सर्वगुणसम्पन्नं समिद्धमिव पावकम् ॥११॥
तपन्तमभि को मन्दः पतिष्यति पतङ्गवत् ।
पांडवाग्निमनावार्यं मुमूर्षुर्नष्टचेतनः ॥१२॥

सर्व गुण सम्पन्न, प्रज्ज्वलित अग्नि के तुल्य, नहीं रोके जाने वाले पाण्डव रूपी प्रज्वलित अग्नि में मरणाभिलाषी, अचेत कौन पतङ्ग होगा—जो उसमें जाकर पड़ेगा ॥११-१२॥

तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया ।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनाऽन्तं करिष्यति ॥१३॥

शरीर में छुपायी हुई आग की तरह मैंने राजा युधिष्ठिर के साथ बड़ा छल किया है। अब वो मेरे मन्द बुद्धि पुत्रों का युद्ध में अवश्य नाश करेगा ॥१३॥

तैरयुद्धं साधु मन्ये कुरवस्तन्निबोधत ।
युद्धे विनाशः कृत्स्नस्य कुलस्य भविता ध्रुवम् ॥

हे कौरवो! उनसे तो नहीं लड़ना ही अच्छा है यह तुम समझ लो। युद्ध होने पर तो सारे कुल का विनाश अवश्य होकर रहेगा ॥१४॥

एषा मे परमा बुद्धिर्यया शाम्यति मे मनः ।
यदि त्वयुद्धमिष्टं वो वयं शान्त्यै यतामहे ॥१५॥

मेरी यह दृढ़ धारणा हो चुकी है, इसी से मेरा मन सन्धि का अभिलाषी होता जा रहा है। यदि तुम लोग भी युद्ध नहीं करना ही ठीक मानो, तो मैं शान्ति के लिए प्रयत्न कर सकता हूं।

न तु नः क्लिश्यमानानामुपेक्षेत युधिष्ठिरः ।
जुगुप्सति ह्यधर्मेण मामेवोद्दिश्य कारणम् ॥१६॥

इति श्रीमहाभारते वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि यानसंधि-
पर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

राजा युधिष्ठिर हमारे क्लेश की कभी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। वे तो सन्धि नहीं करने रूप अधर्म रूप अधर्म से युक्त मुझे ही बता कर इस झगड़े का कारण भी मुझे ही बता रहे हैं।१६

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तगत यानसन्धि पर्व में धृत-राष्ट्र वाक्य का तरेपनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

चौवनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

एवमेतन्महाराज यथा वदसि भारत।
युद्धे विनाशः क्षत्रस्य गांडीवेन प्रदृश्यते ॥१॥

सञ्जय बोला—हे भरतवंश श्रेष्ठ! महाराज! आप जैसा कह रहे हैं, वैसा ही है। गाण्डीव धनुष द्वारा क्षत्रियों का विनाश उपस्थित हो गया प्रतीत होता है ॥१॥

इदं तु नाऽभिजानामि तव धीरस्य नित्यशः।
यत्पुत्रवशमागच्छेस्तत्त्वज्ञः सव्यसाचिनः ॥२॥

आप तो बड़े धीर स्वभाव वाले और अर्जुन की शक्ति के जानने वाले हैं, परन्तु फिर भी पता नहीं चलता, कि आप कैसे अपने पुत्र के वश में हो रहे हैं ॥२॥

नैष कालो महाराज तव शश्वत्कृतागसः ।
त्वया ह्येवाऽऽदितः पार्था निकृता भरतर्षभ ॥३॥

हे भरतवंश-श्रेष्ठ, महाराज ! सदा भूल करने वाले, आपका अब चुप रहने का काम नहीं है। तुमने ही प्रारम्भ से अर्जुन के छल छल किया है ॥३॥

पिता श्रेष्ठः सुहृच्चश्च सम्यक्प्रणिहितात्मवान् ।
आस्थेयं हिहितं तेन न द्रोग्धा गुरुरुच्यते ॥४॥

आप पिता से भी बड़े, हितकारी, अच्छी तरह सावधान, और जितेन्द्रिय है। आपको उन सबका हित करना चाहिए। जो द्रोह करने वाला होता है, वह कभी पूज्य नहीं रह सकता है ॥४॥

इदं जितमिदं लब्धमिति श्रुत्वा पराजितान् ।
द्यूतकाले महाराज स्मयसे स्म कुमारवत् ॥५॥

हे महाराज ! द्यूत के समय में यह जीत लिया--यह पालिया- इस प्रकार पाण्डवों को पराजित हुआ सुनकर आप भी बालकों की तरह मुस्कुरा रहे थे ॥५॥

परुषाण्युच्यमानांश्च पुरा पार्थानुपेक्षसे ।
कृत्स्नं राज्यं जयन्तीनि प्रपातं नाऽनुपश्यसि ॥६॥

जब कर्णादिकों ने पाण्डवों से कठोर वचन कहे, तब भी तुमने उपेक्षा की, परन्तु इस पतन की ओर दृष्टि नहीं डाली, कि पाण्डव सारे राज्य को थोड़े दिन में ही, जीत लेंगे ॥६॥

पित्र्यं राज्यं महाराज कुरवस्ते सजांगलाः ।
अथ वीरर्जितामुर्वीमखिलां प्रत्यपद्यथाः ॥६॥

हे महाराज ! आपका तो जांगल प्रदेश के साथ कुरुदेश का राज्य ही पैतृक राज्य था, परन्तु पाण्डव वीरों ने जीतकर ही तुमको सारी पृथिवी प्रदान की ॥७॥

बाहुवीर्यार्जिता भूमिस्तव पार्थैर्निवेदिता ।
मयेदं कृतमित्येव मन्यसे राजसत्तम ॥८॥

हे राजसत्तम ! अपने बाहुओं के बल से पाण्डवों ने जीतकर तुमको भूमि प्रदान की और तुमने उसको अपनी २ उपार्जित सम्पत्ति समझ लिया ॥८॥

ग्रस्तान्गन्धर्वराजेन मज्जतो ह्यप्लवेऽम्भसि ।
आनिनाय पुनः पार्थः पुत्रांस्ते राजसत्तम ॥९॥

हे राज-सत्तम ! गन्धर्व राज से पकड़े हुए, और बिना नौका जल में डूबते हुए तेरे पुत्रों को फिर अर्जुन छुड़ा लाया था ॥९॥

कुमारवच्च स्मयसे द्यूते विनिकृतेषु यत् ।
पांडवेषु वने राजन्प्रव्रजत्सु पुनः पुनः ॥१०॥

जब पाण्डवों का द्यूत में पराजय हुआ, तो तुम बालक की तरह हंस रहे थे और पाण्डवों के वन में जाने के समय भी तुमको बार २ हंसी आ रही थी ॥१०॥

प्रवर्षतः शरव्रातानर्जुनस्याऽशितान्बहून् ।
अप्यर्णवा विशुष्येयुः किं पुनर्मांसयोनयः ॥११॥

अर्जुन के तीक्ष्ण, बहुत से शरसमूहों के बरसने के समय समुद्र भी सूख सकते हैं, फिर इन मांसयोनि मनुष्यों की तो चर्चा ही क्या ॥११॥

अस्यतां फाल्गुनः श्रेष्ठो गांडीवं धनुषां वरम् ।
केशवः सर्वभूतानामायुधानां सुदर्शनम् ॥१२॥
वानरो रोचमानश्च केतुः केतुमतां वरः ।

अब तो सब धनुषों में श्रेष्ठ गाण्डीव धनुष को अर्जुन और सारे आयुधों में श्रेष्ठ सुदर्शन चक्र को श्रीकृष्ण युद्ध में फेंकेंगे—यह समय उपस्थित हो गया है। सारे ध्वजा धारियों में श्रेष्ठ चमकता हुआ वानरराज, अर्जुन की ध्वजा को रण में उड़ावेगा।

एवमेतानि सरथो वहञ्श्वेतहयो रणे ॥१३॥
क्षपयिष्यति नो राजन्कालचक्रमिवोद्यतम् ।

हे राजन्! यह होगा—सो होगा ही, परन्तु श्वेत अश्वधारी, रथ में बैठा हुआ, अर्जुन, काल चक्र की भांति उद्यत हुआ हम सब का नाश करके रहेगा ॥

तस्याऽद्य वसुधा राजन्निखिला भरतर्षभ ॥१४॥
यस्य भीमार्जुनौ योधौ स राजा राजसत्तम ।

हे भरतवंश श्रेष्ठ, राजन्, यह तो सारी पृथिवी उसी की होगी, जिसके भीम अर्जुन के समान योद्धा हैं। हे राज सत्तम! जिसके ये योद्धा हैं, वही अब राजा होगा ॥१४॥

तथा भीमहतप्रायां मज्जन्तीं तव वाहिनीम् ॥१५॥
दुर्योधनमुखा दृष्ट्वा क्षयं यास्यन्ति कौरवाः ।

भीम से मारी हुई विपत्ति सागर में डूबती हुई तेरी सेना को दुर्योधनादि कौरव, देखकर अवश्य नष्ट हो जावेंगे ॥१५॥

न भीमार्जुनयोर्भीता लप्स्यन्ते विजयं विभो॥१६॥
तव पुत्रा महाराज राजनश्चाऽनुसारिणः ।

हे शक्तिशालिन ! महाराज ! भीम और अर्जुन से भयभीत हुए तुम्हारे पुत्र और उनके अनुसारी राजा, विजय प्राप्त नहीं कर सकते हैं ॥१६॥

मत्स्यास्त्वामद्य नाऽर्चन्ति पञ्चालाश्च सकेकयाः १७
शाल्वेयाः शूरसेनाश्च सर्वे त्वामवजानते ।

आज, मत्स्य, पंचाल और केकय तुम्हारा कोई आदर नहीं करते हैं तथा शाल्वेय, शूरसेन, आदि क्षत्रिय, तुम्हारी निन्दा करते हैं ॥१७॥

पार्थं ह्येते गताः सर्वे वीर्यज्ञास्तस्य धीमतः ॥१८॥
भक्त्या ह्यस्य विरुद्धयन्ते तव पुत्रैः सदैव ते ।

ये सब युधिष्ठिर अर्जुन से जा मिले हैं, क्योंकि ये उसका पराक्रम जानते हैं । ये तो राजा युधिष्ठिर की भक्ति से ही सदा तेरे पुत्रों के विरुद्ध रहते हैं ॥१८॥

अनर्हानेव तु वधे धर्मयुक्तान्विकर्मणा ॥१९॥
योऽक्लेशयत्पांडुपुत्रान्यो विद्वेष्ट्यधुनाऽपि वै ।
सर्वोपायैर्नियन्तव्यः सानुगः पापपूरुषः ॥२०॥

पीड़ा देने के अयोग्य धर्मात्मा पाण्डवों को अपने दुष्ट कर्म से जिसने क्लेश दिया, तथा जो अब भी द्वेष करता है, उस पापी पुरुष को उसके साथियों के साथ रोक देना चाहिए ॥१९-२०॥

तव पुत्रो महाराज नाऽनुशोचितुमर्हसि ।
द्यूतकाले मया चोक्तं विदुरेण च धीमता ॥२१॥

हे महाराज ! तुम्हारे पुत्र की अब क्या चिन्ता करें, उसको तो द्यूत के समय ही मैंने और बुद्धिमान् विदुर ने खूब समझा दिया था, परन्तु वह माना ही नहीं ॥२१॥

यदिदं ते विलपितं पांडवान्प्रति भारत ।
अनीशेनेव राजेन्द्र सर्वमेतन्निरर्थकम् ॥२२॥
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि ।
सञ्जयवाक्ये चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

हे भारत ! हे राजेन्द्र ! इस प्रकार पाण्डवों के पक्ष में तुम्हारा प्रलाप निरर्थक है, क्योंकि तुम कुछ भी करने को समर्थ नहीं हो ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यान सन्धि पर्व में सञ्जय वाक्य का चौवनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

पचपनवाँ अध्याय

दुर्योधन उवाच—

न भेतव्यं महाराज नशोच्या भवता वयम् ।
समर्थाः स्म पराञ्जेतुं बलिनः समरे विभो ॥१॥

दुर्योधन बोला—हे महाराज ! आप डरें नहीं और न हमारी कुछ चिन्ता करें । हम तो युद्ध में विरोधियों के जीतने को सब तरह से समर्थ और बली हैं ॥१॥

वने प्रव्राजितान्पार्थान्यदाऽऽयान्मधुसूदनः ।
महता बल चक्रेण परराष्ट्रावमर्दिनो ॥२॥
केकया धृष्टकेतुश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
राजानश्चोऽन्वयुः पार्थान्बहवोऽन्येऽनुयायिनः ॥३॥

जब पाण्डव वन में चले गये थे, तो उस समय उनके पास शत्रु राष्ट्र के मर्दन कर देने वाले बड़े भारी सेना समूह के साथ श्रीकृष्ण आये थे । इसके पीछे केकय, धृष्टकेतु, पर्वतवंशी धृष्टद्युम्न तथा अन्य भी उनके अनुयायी राजा वहां आए थे ॥२-३॥

इन्द्रप्रस्थस्य चाऽदूरात्समाजग्मुर्महारथाः ।
व्यगर्हयंश्च सङ्गम्य भवन्तं कुरुभिः सह ॥४॥

ये महारथ, इन्द्रप्रस्थ के थोड़ी ही दूरी पर आए थे। उस समय इन्होंने इकट्ठे होकर तुम्हारी और कौरवों की कड़ी समालोचना की थी ॥४॥

ते युधिष्ठिरमासीनमजिनैः प्रतिवासितम् ।
कृष्णप्रधानाः संहत्य पर्युपासन्त भारत ॥५॥

हे भारत! मृग चर्म धारी, बैठे हुए राजा युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण को प्रधान करके सारे राजा इकट्ठे हो सेवा करने को तत्पर थे ॥५॥

प्रत्यादानं च राज्यस्य कार्यमूचुर्नराधिपाः ।
भवतः सानुबन्धस्य समुच्छेदं चिकीर्षवः ॥६॥

उस समय सारे राजाओं ने हम लोगों से राज्य छीन लेने की सम्मति, प्रदान की और परिवार के साथ आपके उच्छेद करने की योजना बनाई ॥६॥

श्रुत्वा चैवं मयोक्तास्तु भीष्मद्रोणकृपास्तदा ।
ज्ञातिक्षयभयाद्राजन्भीतेन भरतर्षभ ॥७॥
ततः स्थास्यन्ति समये पांडवा इति मे मतिः ।

हे भरत-वंश श्रेष्ठ, राजन्! अपनी जाति के क्षय होने से भयभीत हुए मैंने भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य को यह वृतान्त सुनाया, और कहा, कि पाण्डव, अपनी प्रतिज्ञा में स्थित रहेंगे, ऐसा मेरा ख्याल है ॥७॥

समुच्छेदं हि नः कृत्स्नं वासुदेवश्चिकीर्षति ॥८॥
ऋते च विदुरात्सर्वे यूयं वध्या मता मम ।
धृतराष्ट्रस्तु धर्मज्ञो न वध्यः कुरुसत्तमः ॥९॥

वसुदेव पुत्र, श्रीकृष्ण हमारा समुच्छेद चाहता है। मैं तो यह जानता हूं, कि वे विदुर को छोड़कर हम सब को मार देना चाहते हैं। सम्भव है कि, धर्म के ज्ञाता कुरुवंश-श्रेष्ठ धृतराष्ट्र को भी वे नहीं मारेंगे ॥८-९॥

समुच्छेदं च कृत्स्नं नः कृत्वा तात जनार्दनः।
एकराज्यं कुरूणां स्म चिकीर्षति युधिष्ठिरे ॥१०॥

हे तात! हमारा बिल्कुल समुच्छेद करके श्रीकृष्ण, कौरवों का एकच्छत्र राज्य युधिष्ठिर को सौंप देना चाहता है ॥१०॥

तत्र किं प्राप्तकालं नः प्रणिपातः पलायनम्।
प्राणान्वा संपरित्यज्य प्रतियुद्ध्यामहे परान् ॥११॥

इस समय हमको पाण्डवों के लिए प्रणाम करना उचित है या भाग जाना चाहिए, अथवा प्राणोंका मोह छोड़कर प्रतिपक्षियों से युद्ध करना कर्तव्य है ॥११॥

प्रतियुद्धे तु नियतः स्यादस्माकं पराजयः।
युधिष्ठिरस्य सर्वे हि पार्थिवा वशवर्तिनः ॥१२॥

यदि युद्ध किया तो हमारा पराजय निश्चित है, क्योंकि युधिष्ठिर के वश में तो सारे राजा हैं ॥१२॥

विरक्तराष्ट्राश्च वयं मित्राणि कुपितानि नः।
धिक्कृताः पार्थिवैः सर्वैः स्वजनेन च सर्वशः ॥१३॥

हमारा सारा राष्ट्र विरक्त हो रहा है, मित्र कुपित हो चुके हमको सारे राजा और स्वजन धिक्कार दे रहे हैं ॥१३॥

प्रणिपाते न दोषोऽस्ति सन्धिर्नः शाश्वतिः समाः।
पितरं त्वेव शोचामि प्रज्ञानेत्रं जनाधिपम् ॥१४॥

मुझे इस समय नीचे झुक जाने में कुछ दोष दिखाई नहीं देता है, क्योंकि हमारी सदा को सन्धि हो जावेगी, मुझे तो चक्षु-हीन राजा की प्रसन्नता के लिए सब कुछ कर लेना है ॥१४॥

मत्कृते दुःखमापन्नं क्लेशं प्राप्तमनन्तकम्।
कृतं हि तव पुत्रैश्च परेषामवरोधनम्
मत्प्रियार्थं पुरैवैतद्विदितं ते नरोत्तम ॥१५॥

इन्होंने मेरे कारण से सब कुछ दुःख उठाया है और अनन्त क्लेश को भोगा है। आपके सारे अन्य पुत्रों ने भी मेरे कारण से ही प्रति-पक्षियों का अवरोध किया था। हे नरोत्तम! यह सब कुछ मेरे लिए ही हुआ है यह आप जानते हैं ॥१५॥

ते राज्ञो धृतराष्ट्रस्य सामात्यस्य महारथाः।
वैरं प्रति करिष्यन्ति कुलोच्छेदेन पांडवाः ॥१६॥

वे पाण्डव, महारथी तो अब मन्त्रियों सहित राजा धृतराष्ट्र का कुलच्छेद करके वैर का बदला अवश्य लेंगे ॥१६॥

ततो द्रोणोऽब्रवीद्भीष्मः कृपो द्रौणिश्च भारत।
मत्वा मां महती चिन्तामास्थितं व्यथितेन्द्रियम् ॥१७॥
अभिद्रुग्धाः परे चेन्नो न भेतव्यं परन्तप।
असमर्थाः परे जेतुमस्मान्युधि समास्थितान् ॥१८॥

हे भारत! उस समय मुझे बड़ी भारी चिन्ता में फंसे हुए और व्याकुल चित्तको देखकर द्रोण, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा भीष्म,

और कृप ने कहा था, कि हे परन्तप ! यदि प्रतिपक्षी हम से द्रोह करेंगे तो इसका तुम भय न करो । युद्ध में वे लोग हमको जीतने में असमर्थ हैं ॥१८॥

एकैकश समर्थाः स्मो विजेतुं सर्वपार्थिवान् ।
आगच्छन्तु विनेष्यामो दर्पमेषां शितैः शरैः ॥१९॥

हम में प्रत्येक ऐसा वीर है, जो अकेला ही सारे पाण्डवों को जीत सकता है । उनको दिल खोलकर आने दो, हम अपने तीक्ष्ण शरों से उनका हर्ष चकनाचूर कर देंगे ॥१९॥

पुरैकेन हि भीष्मेण विजिताः सर्वपार्थिवाः ।
मृते पितर्यति क्रुद्धो रथेनैकेन भारत ॥२०॥

पूर्वकाल में अकेले भीष्म ने एक रथ लेकर सारे राजाओं को जीत लिया था, क्यों कि यह पिता के मरने पर इन राजाओं पर कुपित हो उठा था ॥२०॥

जघान सुबहूंस्तेषां संरब्धः कुरुसत्तमः ।
ततस्ते शरणं जग्मुर्देवव्रतमिमं भयात् ॥२१॥

कोप में भरे हुए भीष्म ने अनेक राजाओं को मार डाला । उस समय भयभीत होकर इन्हीं भीष्म की सारे राजा शरण में प्राप्त हुए थे ॥२१॥

स भीष्मः सुसमर्थोऽयमस्माभिः सहितो रणे ।
परान्विजेतुं तस्मात्ते व्येतु भीर्भरतर्षभ ॥२२॥

हे भरतर्षभ! यही भीष्म, हमको साथ लेकर तो युद्ध में शत्रुओं के जीतने को और भी समर्थ हो जावेगा, इसलिए तुमको कुछ भय नहीं करना चाहिए ॥२२॥

इत्येषां निश्चयो ह्यासीत्तत्कालेऽमिततेजसाम् ।
पुरा परेषां पृथिवी वर्तते भरतर्षभ ॥२३॥
अस्मान्पुनरमी नाऽद्य समर्था जेतुमाहवे ।
छिन्नपक्षाः परे ह्यद्य वीर्यहीनाश्च पांडवा ॥२४॥

आज वे पाण्डव, युद्ध में हमको जीतने में कभी समर्थ नहीं हो सकते है, क्यों कि इस समय उनके पक्ष कटे परे हैं और वे सब तरह से वीर्य हीन हैं ॥२. ॥

अस्मत्संस्था च पृथिवी वर्तते भरतर्षभ ।
एकार्थाः सुखदुःखेषु समानीताश्च पार्थिवाः ॥२५॥

हे भरतर्षभ! आज सारी पृथिवी हमारे आधीन है। सारे राजाओं के दुःख सुख हमारे साथ नत्थी हो गए हैं ॥२५॥

अप्यग्निं प्रविशेयुस्ते समुद्रं व परन्तप ।
मदर्थे पार्थिवाः सर्वे तद्विद्धि कुरुसत्तम ॥२६॥

हे परन्तप! कुरु-सत्तम हमारे लिए अब राजा लोग, अग्नि में प्रविष्ट हो सकते हैं और समुद्र में गिर सकते हैं। यह तुमको मालूम रहना चाहिये ॥२६॥

उन्मत्तमिव चापि त्वां प्रहसन्तीह दुःखितम् ।
विलपन्तं बहुविधं भीतं परविकत्थने ॥२७॥

प्रतिपक्षी की प्रशंसा करते, अनेक प्रकार की विलापपूर्ण वाणी बोलते हुए भयभीत और दुःखी तुमको विरोधी उन्मत्त, (पागल) हुआ सा समझेंगे ॥२७॥

एषां ह्येकैकशो राज्ञां समर्थः पाण्डवान्प्रति ।
आत्मानं मन्यते सर्वो व्येतु ते भय ागतम्॥२८॥

इन सब राजाओं में प्रत्येक राजा पाण्डवों के जीतने में अपने को समर्थ मानता है, इससे तुम्हारी मानसिक व्यथा नष्ट हो जानी चाहिए ॥२८॥

जेतुं समग्रां सेनां मे वासवोऽपि न शक्नुयात् ।
हन्तुमक्षय्यरूपेयं ब्रह्मणोऽपि स्वयम्भुवः ॥२९॥

हे पिता ! हमारी सारी सेना को जीतने में इन्द्र भी समर्थ नहीं है और स्वयम्भू ब्रह्मा भी इसका नाश नहीं कर सकता है-यह इतनी अक्षय है ॥२९॥

युधिष्ठिरः पुरं हित्वा पञ्च ग्रामान्स याचति ।
भीतो हि मामकात्सैन्यात्प्रभावाच्चैव मे विभो ॥३०॥

हे राजन् ! युधिष्ठिर, अपनी राजधानी को छोड़कर, केवल पांच गांव हमारी सेना से भयभीत होकर या उसका प्रभाव मान कर ही मांग रहा है ॥३०॥

समर्थं मन्यसे यच्च कुन्तीपुत्रं वृकोदरम् ।
तन्मिथ्या नहि मे कृत्स्नं प्रभावं वेत्सि भारत ॥२१॥

हे भारत ! जो तुम कुन्ती-पुत्र भीमसेन को समर्थ मानते हो- यह मिथ्या है और इसका कारण यही है, कि तुम मेरे सारे प्रभाव को नहीं जानते हो ॥२१॥

मत्समो हि गदा युद्धे पृथिव्यां नाऽस्ति कश्चन ।
नासीत्कश्चिदतिक्रान्तो भविता न च कश्चन ॥२२॥

मेरे समान गदा-युद्ध में पृथिवी पर कोई नहीं है। मुझे गदा-युद्ध में जीतने वाला कोई हुआ न आगे होगा ॥२२॥

युक्तो दुःखोषितश्चाऽहं विद्यापारगतस्तथा ।
तस्मान्न भीमान्नाऽन्येभ्यो भयं मे विद्यते क्वचित्॥२३॥

बड़ी सावधानी से उद्योग करके दुःख के साथ गुरुकुल में मैंने युद्ध विद्या सीखी है, इसलिए भीम से या अन्य से मुझे कुछ भी भय नहीं है ॥२३॥

दुर्योधनसमो नाऽस्ति गदायामिति निश्चयः ।
सङ्कर्षणस्य भद्रं ते यत्तदैनमुपावसम् ॥२४॥

जब मैंने बलराम के पास गदा सीखने को निवास किया था, तब उनको निश्चित हो गया था, कि गदा युद्ध में दुर्योधन के समान कोई नहीं है ॥२४॥

युद्धे सङ्कर्षणसमो बलेनाऽभ्यधिको भुवि ।
गदाप्रहारं भीमो मे न जातु विषहेद् युधि ॥२५॥

मैं गदा-युद्ध में बलराम के समान और बल में पृथिवी पर सबसे अधिक हूं। मेरे गदा के प्रहार को युद्ध में भीम, कभी नहीं सह सकेगा ॥३५॥

एकं प्रहारं यं दद्यां भीमाय रुषितो नृप।
स एवैनं नयेद्घोरः क्षिप्रं वैवस्वतक्षयम् ॥३६॥

हे नृप! यदि क्रोध में भर कर भीम पर मैं एक भी प्रहार कर दूंगा—तो वही घोर प्रहार उसको शीघ्र ही यमराज के घर ले जावेगा ॥३६॥

इच्छेयं च गदाहस्तं राजन्द्रष्टुं वृकोदरम्।
सुचिरं प्रार्थितो ह्येष मम नित्यं मनोरथः ॥३७॥

हे राजन! मैं तो चाहता ही यह हूं, कि गदा धारण करके भीम मेरे सामने युद्ध के लिए आवे। मैं इस बात की बहुत दिन से प्रतीक्षा कर रहा हूं और यह मेरी सदा की अभिलाषा है।

गदया निहतो ह्याजौ मया पार्थो वृकोदरः।
विशीर्णगात्रः पृथिवीं परासुः प्रपतिष्यति ॥३८॥

जब पृथा-पुत्र भीमसेन पर मैं युद्ध में गदा प्रहार करूंगा, तो उसका शरीर छिन्नभिन्न हो जावेगा और वह प्राणहीन होकर भूमि में गिर जावेगा ॥३८॥

गदाप्रहाराभिहतो हिमवानपि पर्वतः।
सकृन्मया विदीर्येत गिरिः शत सहस्रधा ॥३९॥

भीमसेन ही क्योंकि यदि मैं हिमालय पर भी गदा प्रहार करूं, तो एक बार में ही हिमालय भी सैकड़ों हजारों टुकड़े होकर छिन्न भिन्न हो जावेगा ॥३६॥

स चाऽप्येतद्विजानाति वासुदेवार्जुनौ तथा ।
दुर्योधनसमो नास्ति गदायामिति निश्चयः ॥४०॥

दुर्योधन के समान गदायुद्ध में कोई नहीं है—यह बात भीम भी जानता है और वसुदेव-पुत्र कृष्ण तथा अर्जुन भी इसको खूब समझते हैं ॥४०॥

तत्ते वृकोदरमयं भयं व्येतु महाहवे ।
व्यपनेष्याम्यहं ह्येनं मा राजन्विमना भव ॥४१॥

हे राजन्! आप महायुद्ध में भीमसेन से उत्पन्न होने वाले, अनिष्ट का भय छोड़ दीजिए। मैं भीम को नष्ट कर दूंगा, आप उदास न होवें ॥४१॥

तस्मिन्मया हते क्षिप्रमर्जुनं बहवो रथाः ।
तुल्यरूपा विशिष्टाश्च क्षेप्स्यंति भरतर्षभ ॥४२॥

हे भरतर्षभ! जब मैं भीम को मार लूंगा—तो इसके अनन्तर अर्जुन के तुल्य या उससे भी अधिक अनेक महारथी अर्जुन को घेर लेंगे ॥४२॥

भीष्मो द्रोणः कृपो द्रौणिः कर्णो भूरिश्रवास्तथा ।
प्राग्ज्योतिषाधिपः शल्यः सिन्धुराजो जयद्रथः ॥४३॥

एकैक एषां शक्तस्तु हन्तुं भारत पाण्डवान् ।
समेतास्तु क्षणेनैतान्नेष्यन्ति यमसादनम् ।

हे भारत ! भीम, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, प्राग् ज्योतिषपुर का अधिपति शल्य, सिन्धुराज जयद्रथ—इनमें प्रत्येक महारथी ऐसा है, जो अकेला ही सारे पाण्डवों को मार सकता है । यदि ये महारथी इकट्ठे हुए युद्ध करें तो क्षणभर में पाण्डवों को यमराज के घर का अतिथि बना सकते हैं ।।४३।।

समग्रा पार्थिवी सेना पार्थमेकं धनञ्जयम् ।।४४।।
कस्मादशक्ता निर्जेतुमिति हेतुर्न विद्यते ।

यह मेरी सारी राजाओं की सेना, अकेले अर्जुन को नहीं जीत सकेगी—इसमें कोई कारण तो दिखाई देता नहीं है ।।४४।।

शरव्रातैस्तु भीष्मेण शतशो निचितोऽवशः ।।४५।।
द्रोणद्रौणिकृपैश्चैव गन्ता पार्थो यमक्षयम् ।

भीष्म के शर समूह से तथा द्रोण, अश्वत्थामा और कृप के बाणों से सैकड़ों स्थानों से छिन्न भिन्न, परवश अर्जुन, यमराज के घर का अतिथि बन जावेगा ।।४५।।

पितामहोऽपि गांगेयः शान्तनोरधि भारत ।।४६।।
ब्रह्मर्षिसदृशो जज्ञे देवैरपि सुदुःसहः ।

हे भारत ! गाङ्गेय भीष्म पितामह, राजा शान्तनु से भी अधिक पराक्रमी हैं । ये ब्रह्मर्षियों के सदृश होकर भी युद्ध में देवों से भी दुर्जय हैं ।।४६।।

न हन्ता विद्यते चापि राजन्भीष्मस्य कश्चन ॥४७॥
पित्रा ह्युक्तः प्रसन्नेन नाऽकामस्त्वं मरिष्यसि ।

हे राजन! भीष्म का तो कोई मारने वाला ही उत्पन्न नहीं हुआ है। इनको तो इन पर प्रसन्न हुए पिता ने वरदान दे रखा है, कि तू जब तक इच्छा नहीं करेगा—तब तक मृत्यु को प्राप्त नहीं होगा ॥४७॥

ब्रह्मर्षेश्च भरद्वाजाद् द्रोणो द्रोण्यामजायत ॥४८॥
द्रोणाज्जज्ञे महाराज द्रौणिश्च परमास्त्रवित् ।

हे महाराज! भरद्वाज महर्षि से द्रोणी में द्रोण उत्पन्न हुआ और द्रोण से अस्त्र विद्या में कुशल, अश्वत्थामा उत्पन्न हुआ है।

कृपश्चाऽऽचार्यमुख्योऽयं महर्षेर्गौतमादपि ॥४९॥
शरस्तम्बोद्भवः श्रीमानवध्य इति मे मतिः ।

आचार्य मुख्य कृप, गौतम वंशज, हैं—ये भी शरस्तम्भ में उत्पन्न हुए हैं। मुझे निश्चय है, कि यह अवध्य है ॥४९॥

अयोनिजास्त्रयो ह्येते पिता माता च मातुलः ॥५०॥
अश्वत्थाम्नो महाराज स च शूरः स्थितो मम ।

हे महाराज! अश्वत्थामा के माता पिता और मामा तीनों अयोनिज हैं। इनसे उत्पन्न वीर अश्वत्थामा भी मेरी ही ओर है।

सर्व एते महाराज देवकल्पा महारथाः ॥५१॥
शक्रस्याऽपि व्यथां कुर्युः संयुगे भरतर्षभ ।

हे महाराज ! ये सारे महारथी, देवों के समान बली हैं। हे भरतर्षभ ! यदि युद्ध में इन्द्र भी आ जावे, तो ये उनको भी पीड़ित कर सकते हैं ॥५१॥

नैतेषामर्जुनः शक्त एकैकं प्रतिवीक्षितुम् ॥५२॥
सहितास्तु नरव्याघ्रा हनिष्यन्ति धनञ्जयम् ।

हे नरव्याघ्र ! राजन् ! इनमें किसी एक वीर को भी अर्जुन, आंख उठाकर नहीं देख सकता है। ये सारे महारथी एक ओर इकट्ठे हो रहे हैं, ये अर्जुन को मारे विना नहीं छोड़ेंगे ॥५२

भीष्मद्रोणकृपाणां च तुल्यः कर्णो मतो मम ॥५३॥
अनुज्ञातश्च रामेण मत्समोऽसीति भारत ।

हे राजन् ! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य के समान ही मैं कर्ण को बली मानता हूं। परशुराम ने तो कर्ण के विषय में स्वयं कहा है, कि अब तू मेरे समान हो गया है ॥५३॥

कुंडले रुचिरे चाऽऽस्तां कर्णस्य सहजे शुभे ॥५४॥
ते शच्यर्थं महेन्द्रेण याचितः स परन्तपः ।
अमोघया महाराज शक्त्या परमभीमया ॥५५॥

हे महाराज ! कर्ण के जन्म के साथ बड़े सुन्दर, कुण्डल उत्पन्न हुए थे। इन्द्र ने उनको इन्द्राणी के लिए परन्तप कर्ण से परमभीषण, निरर्थक नहीं जाने वाली शक्ति के बदले में मांग लिए ॥५४-५५॥

तस्य शक्त्योपगूढस्य कस्माज्जीवेद्धनञ्जयः ।
विजयो मे ध्रुवं राजन्फलं पाणाविवाऽऽहितम्॥५६॥

उस शक्ति से प्रौढ़ कर्ण से, अर्जुन कैसे जीवित बच सकता है। हे राजन! हाथ में रखे हुए फल की तरह विजय मेरे हाथ में सुनिश्चित है ॥५६॥

अभिव्यक्तः परेषां च कृत्स्नो भुवि पराजयः ।
अह्ना ह्येकेन भीष्मोऽयं प्रयुतं हन्ति भारत ॥५७॥

हे भारत! ये भीष्म पितामह, एक दिन में दश हजार सैनिकों को मार सकते हैं, इससे भी भूमि पर विरोधियों का पराजय साफ २ दृष्टि गोचर हो रहा है ॥५७॥

तत्समाश्च महेष्वासा द्रोणद्रौणिकृपा अपि ।
संशप्तानां वृन्दानि क्षत्रियाणां परन्तप ॥५८॥

भीष्म के समान ही महाधनुर्धर, द्रोण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य हैं। हे परन्तप! ऐसा ही बली संशप्तकों का वृन्द है।

अर्जुनं वयमस्मान्वा निहन्यात्कपिकेतनः ।
तं चाऽलमिति मन्यन्ते सव्यसाचीवधे धृताः ॥५९॥
पार्थिवाः स भवांस्तेभ्यो ह्यकस्माद् व्यथते कथम् ।

हम अर्जुन को या अर्जुन हमको मार लेगा—इसमें एक ही बात होनी है। अनेक राजा अपने को अर्जुन के मारने को पर्याप्त समझते हैं और वे सव्यसाची अर्जुन के मारने को उत्सुक भी हो रहे हैं, फिर तुम उससे इतना व्यथा क्यों मानते हो ॥५९॥

भीमसेने च निहते कोऽन्यो युध्येत भारत ॥६०॥
परेषां तन्ममाचऽऽक्ष्व यदि वेत्थ परन्तप ।

हे परन्तप ! भारत ! भीमसेन के मार लेने पर प्रतिपक्षियों में अन्य कौन है, जो हमसे युद्ध कर सकेगा, यदि आप किसी को जानते हो तो बताओ ॥६०॥

पञ्च ते भ्रातरः सर्वे धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः ॥६१॥
परेषां सप्त ये राजन्योधाः सारं बलं मतम् ।
अस्माकं तु विशिष्टा ये भीष्मद्रोणकृपादयः ॥६२॥
द्रौणिर्विकर्तनः कर्णः सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः ।
प्राग्ज्योतिषाधिपः शल्य आवन्त्यौ च जयद्रथः ॥६३॥
दुःशासनो दुर्मुखश्च दुःसहश्च विशाम्पते ।
श्रतायुश्चित्रसेनश्च पुरुमित्रो विविंशतिः ॥६४॥
शलो भूरिश्रवाश्चैव विकर्णश्च तवाऽऽत्मजः ।
अक्षौहिण्यो हि मे राजन्दशैका च समाहृताः ॥६५॥
न्यूनाः परेषां सप्तैव कस्मान्मे स्यात्पराजयः ।

हे राजन ! पांच तो पाण्डव और धृष्टद्युम्न तथा सात्यकि, ये सात योद्धा प्रति-पक्षी पक्ष में हैं और यही उनका परम बल है, परन्तु हमारे पास तो भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा विकर्तन (सूर्य) पुत्र कर्ण, सोमदत्त, बाह्लिक, प्राग्ज्योतिषपुर का अधिपति शल्य अवन्ती देश के राजकुमार (विन्दानुविन्द)- जयद्रथ, दुःशासन, दुर्मुख, दुःसह, श्रतायु, चित्रसेन, पुरुमित्र विविंशति, शल,

भूरिश्रवा, तेरा पुत्र विकर्ण आदि महावीर हैं। हे राजन्! हमारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हो गयी है। विरोधियों की तो सातअक्षौहिणी ही सेना है, फिर भी मेरा पराजय कैसे हो जावेगा ॥६१-६५॥

बलं त्रिगुणतो हीनं योध्यं प्राह बृहस्पतिः।
परेभ्यस्त्रिगुणा चेयं मम राजन्ननीकिनी ॥६६॥

हे राजन! बृहस्पति ने कहा है, कि सेना के तीन भाग करने पर शत्रु की सेना का एक भाग कम हो तो युद्ध कर लेना चाहिए। हे राजन! शत्रुओं की सेना के त्रिगुण होने पर मेरी सेना का एक भाग बड़ा होता है अर्थात् शत्रुओं के पास दो भाग सेना तो मेरे पास त्रिगुण सेना है ॥६६॥

गुणहीनं परेषां च बहु पश्यामि भारत।
गुणोदयं बहुगुणमात्मनश्च विशाम्पते ॥५७॥

हे भारत! विशाम्पते! मैं शत्रुओं की सेना को अनेक गुणों से हीन और अपनी सेना को अनेक गुणों से समन्वित समझता हूं ॥६७॥

एतत्सर्वं समाज्ञाय बलाग्र्यं मम भारत।
न्यूनतां पांडवानां च न मोहं गन्तुमर्हसि ॥६८॥

हे भारत! इस प्रकार मेरी सेना को श्रेष्ठ और पाण्डवों की सेना को कम देखकर तुमको किसी प्रकार का मोह नहीं करना चाहिए ॥६८॥

इत्युक्त्वा सञ्जयं भूयः पर्यपृच्छत भारत।
विवित्सुः प्राप्तकालानि ज्ञात्वा परपुरञ्जयः ॥६९॥
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि
दुर्योधनवाक्ये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

हे भारत! शत्रुपुरों का विजयी दुर्योधन, सारे वृत्तान्त को सुनकर इस समय कर्तव्य कर्म के करने को सञ्जय से फिर पूछने लगा ॥६९॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सन्धियानपर्व में दुर्योधन, वाक्य का पचपनवां अध्याय समाप्त हुआ।

छप्पनवां अध्याय

दुर्योधन उवाच—

अक्षौहिणीः सप्त लब्ध्वा राजभिः सह सञ्जय।
किंस्विदिच्छति कौन्तेयो युद्धप्रेप्सुर्युधिष्ठिरः ॥१॥

दुर्योधन बोला—हे सञ्जय! कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर को जो सात अक्षौहिणी सेना जैसे तैसे मिल गई हैं, उसके बल पर वह अपने साथी राजाओं के साथ क्या युद्ध की इच्छा कर रहा है ॥१॥

सञ्जय उवाच—

अतीव मुदितो राजन्युद्धप्रेप्सुर्युधिष्ठिरः ।
भीमसेनार्जुनौ चोभौ यमावपि न बिभ्यतः ॥२॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! राजा युधिष्ठिर, सचमुच, युद्ध के लिए बड़ा उत्सुक है और भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को भी किसी प्रकार का भय नहीं है ॥२॥

रथं तु दिव्यं कौन्तेयः सर्वा विभ्राजयन्दिशः ।
मन्त्रं जिज्ञासमानः संबीभत्सुः समयोजयत् ॥३॥

कुन्तीपुत्र अर्जुन ने अपने युद्ध के उद्योग को प्रदर्शित करने की इच्छा से अपने दिव्य रथ को जुड़वाया, जिस रथसे अर्जुनने सारी दिशा प्रदीप्त कर दी ॥३॥

तमपश्याम सन्नद्धं मेघं विद्युद्युतं यथा ।
समन्तात्समभिध्याय हृष्यमाणोऽभ्यभाषत ॥४॥

इस समय अर्जुन, मुझे बिजली से युक्त उमड़ते हुए मेघ के समान प्रतीत हुआ। इसने चारों ओर सावधानी से रथ को घुमा कर बड़ी प्रसन्नता के साथ मुझसे कहा ॥४॥

पूर्वरूपमिदं पश्य वयं जेष्याम सञ्जय ।
बीभत्सुर्मां यथोवाच तथाऽहैक्यहमप्युत ॥५॥

हे सञ्जय! यह हमारा पूर्व रूप देख लो। कहो—अब तो हम ही जीतेंगे। अर्जुन ने जो मुझसे कहा—मुझे तो उसके ही सत्य होने के लक्षण दिखाई देते हैं ॥५॥

दुर्योधन उवाच—

प्रशंसस्यभिनन्दंस्तान्पार्थानचपराजितान् ।
अर्जुनस्य रथे ब्रूहि कथमश्वाः कथं ध्वजाः ॥६॥

दुर्योधन ने कहा—हे सञ्जय! द्यूत पराजित पाण्डवों को आनन्दित करने को तुम उनकी प्रशंसा करते हो। अब ज़रा यह तो बताओ—अर्जुन के रथ में कैसे अश्व और कैसी ध्वजा थी।

सञ्जय उवाच—

भौमनः सह शक्रेण बहुचित्रं विशाम्पते।
रूपाणि कल्पयामास त्वष्टा धाता सदा विभो ॥७॥
ध्वजे हि तस्मिन्रूपाणि चक्रुस्ते देवमायया।
महाधनानि दिव्यानि महान्ति च लघूनि च ॥८॥

सञ्जय ने कहा—हे विशांपते! विभो! इन्द्र के साथ चित्र-कुशल विश्वकर्मा और प्रजापति ने अर्जुन के रथ में अनेक चित्र बनाए हैं। अर्जुन की ध्वजा में इन तीनों देवों ने बड़े व्यय से दिव्य, बड़े छोटे, चित्र बना दिए हैं ॥७-८॥

भीमसेनानुरोधाय हनूमान्मारुतात्मजः।
आत्मप्रतिकृतिं तस्मिन्ध्वज आरोपयिष्यति ॥९॥

भीमसेन के अनुरोध से वायुपुत्र हनुमान ने अपनी मूर्ति को उस ध्वजा पर स्थापित किया है ॥९॥

सर्वा दिशो योजनमात्रमन्तरं स तिर्यगूर्ध्वं च रुरोध वै ध्वजः
नसंसज्जत्यसौतरुभिःसस्तृतोऽपितथाहिसायाविहितोभौमनेन

विश्वकर्मा ने इस रथ में ऐसी माया (कारीगरी) से ध्वजा लगाई है, कि वह ऊपर की ओर तिरछे ढंग से एक योजन मध्य के भाग को घेर लेती है। उस ध्वजा के रथ पर फड़फड़ाने पर भी वह अन्य वृक्षों से नहीं टकराती है ॥१०॥

यथाऽऽकाशे शक्रधनुःप्रकाशते नचैकवर्णंनचविद्मकिंनुतत्।
तथा ध्वजो विहितो भौमनेन बह्वाकारं दृश्यते रूपमस्य ११

आकाश में इन्द्र धनुष प्रकाशित होता है, जैसे—उसका पता नहीं लगता है, कि वह एक वर्ण धारी है या उसके अनेक वर्ण हैं। इसी तरह विश्वकर्मा ने अर्जुन के रथ में ध्वजा लगाई है, जिससे उसके अनेक आकार दिखाई देते ॥११॥

यथाग्निधूमो दिवमेति रुद्ध्वा वर्णान्बिभ्रत्तैजसांश्चित्ररूपान्।
तथा ध्वजो विहितो भौमनेन न चेद्भारो भविता नोत रोधः

जिस तरह अग्नि का धूम आकाश को व्याप्त करके अनेक भांति के चमकने वाले, रूप धारण करता है, ऐसी ही ध्वजा विश्वकर्मा ने बना दी है, जिससे रथ में न तो भार ही है और न उसमें कोई रुकावट ही है ॥१२॥

श्वेतास्तस्मिन्वातवेगाः सदश्वा दिव्या युक्ताश्चित्ररथेन दत्ताः
भुव्यन्तरिक्षे दिवि वा नरेन्द्र येषा गतीर्हीयते नाऽत्र सर्वा
शतं यत्तत्पूर्यते नित्यकालं हतं हतं दत्तवरं पुरस्तात् ॥१३॥

हे नरेन्द्र! उस रथ में चित्ररथ गन्धर्व द्वारा प्रदान किए हुए वायु के वेग वाले उत्तम दिव्य अश्व जुड़े हुए हैं। इन अश्वों की

गति, भूमि अन्तरिक्ष और द्युलोक में कहीं भी नहीं रुकती है। इस रथ के लिए पहिले से ही यह वर मिला हुआ है, कि यदि इसके अश्व मार दिए जावें, तो भी सैकड़ों अश्व फौरन प्राप्त हो जावेंगे ॥१३॥

तथा राज्ञो दन्तवर्णा बृहन्तो रथे युक्ता भांति तद्वीर्यतुल्याः
ऋक्षप्रख्या भीमसेनस्य बाहा रथं वायोस्तुल्यवेगा बभूवुः।

राजा युधिष्ठिर के रथ में भी अर्जुन के अश्वों के समान ही वीर्य-शाली हाथी के दांतों के तुल्य, श्वेत वर्णवाले, अश्व जुते हैं, भीमसेन के रथ में रीछ के समान कृष्ण वर्ण के अश्व हैं, जिनका वायु के समान वेग है ॥१४॥

कल्माषांगास्तित्तिरिचित्रपृष्ठा भ्रात्रा दत्ताः प्रीयता फाल्गुनेन
भ्रातुर्वीरस्य स्वैस्तुरंगैर्विशिष्टा मुदा युक्ता सहदेवं वहन्ति

रङ्ग विरंगे काले तीतर के वर्णधारी, प्रसन्न हुए अपने भाई अर्जुन के द्वारा दिए हुए वीर भ्राता अर्जुन के घोड़ों से भी विशेष गुण रखने वाले प्रसन्न चित्त, अश्व, सहदेव के रथ में जुड़े हुए थे ॥१५॥

माद्रीपुत्रं नकुलं त्वाजमीढ महेन्द्रदत्ता हरयो वाजिमुख्याः।
समा वायोर्बलवन्तस्तरस्विनो वहन्ति वीरं वृत्रशत्रुं यथेन्द्रम्॥

हे अजमीढ़ वंशोत्पन्न! दुर्योधन! इन्द्र के प्रदान किए हुए वायु के समान वेगशील, बलवान अश्व, वृत्र-शत्रु इन्द्र के समान नकुल को धारण करते हैं ॥१६॥

तुल्यांश्चैभिर्वयसा विक्रमेण महाजवाश्चित्ररूपाः सदश्वाः।
सौभद्रादीन्द्रौपदेयान्कुमारान्वहन्त्यश्वा देवदत्ता बृहन्तः॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामु-
द्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि सञ्जयवाक्ये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इसी तरह देवों के प्रदान किए हुए बड़े २ अनेक अश्व हैं, जो आयु, पराक्रम में इन्हीं अश्वों के तुल्य, बड़े वेगशील, चित्र-रूप धारी और अभिमन्यु तथा द्रौपदी के अन्य कुमारों के रथों में जोड़े जाते थे ॥१७॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में सञ्जय वाक्य का छप्पनवां अध्याय समाप्त हुआ।

सत्तावनवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

कांस्तत्र सञ्जयाऽपश्यः प्रीत्यर्थेन समागतान्।
ये योत्स्यन्ते पांडवार्थे पुत्रस्य मम वाहिनीम् ॥१॥

धृतराष्ट्र बोला—हे सञ्जय! तुमने प्रीति के कारण उपस्थित हुए, मेरे पुत्र दुर्योधन की सेना से पाण्डवों के निमित्त युद्ध करने वाले कौन २ राजा आए हुए देखे हैं ॥१॥

सञ्जय उवाच—

मुख्यमन्धकवृष्णीनामपश्यं कृष्णमागतम्।
चेकितानं च तत्रैव युयुधानं च सात्यकिम् ॥२॥

पृथगक्षौहिणीभ्यां तु पांडवानभिसंश्रितौ ।
महारथौ समाख्यातावुभौ पुरुषमानिनौ ॥३॥

सञ्जय ने कहा—अन्धक वृष्णियों में सबसे अधिक मुख्य तो वहां श्रीकृष्ण विद्यमान हैं। वहां चेकितान भी पहुंच चुका तथा एक २ पृथक् २ अक्षौहिणी युक्त, युयुधान और सात्यकि आ गए हैं, जो हर तरह से पाण्डवों की सेवा करने को तय्यार हैं। ये दोनों महापुरुष, बड़े वीर महारथी हैं ॥२-३॥

अक्षौहिण्याऽथ पाञ्चाल्यो दशभिस्तनयैर्वृतः ।
सत्यजित्प्रमुखैर्वीरैर्धृष्टद्युम्नपुरोगमैः ॥४॥
द्रुपदो वर्धयन्मानं शिखण्डिपरिपालितः ।
उपायात्सर्वसैन्यानां प्रतिच्छाद्य तदा वपुः ॥५॥

पाञ्चाल देश का अधिपति द्रुपद राज भी एक अक्षौहिणी सेना और अपने दश पुत्रों के साथ युद्ध भूमि में पहुंच गया है। सत्यजित आदि वीर और धृष्टद्युम्न आदि सनाग्रगामी, वीरों से अपने गौरव को बढ़ाता हुआ, शिखण्डी से सुरक्षित होकर द्रुपद-राज, सब सेनाओं के आकार का आच्छादन करके वहां आ गया है ॥४-५॥

विराटः सह पुत्राभ्यां शंखेनैवोत्तरेण च ।
सूर्यदत्तादिभिर्वीरैर्मदिराक्षपुरोगमैः ॥६॥
सहितः पृथिवीपालो भ्रातृभिस्तनयैस्तथा ।
अक्षौहिण्यैव सैन्यानां वृतः पार्थं समाश्रितः ॥७॥

विराटराज भी, अपने दोनों पुत्र, शंख, और उत्तर तथा सूर्य दत्त और मदिराक्ष आदि वीरों एवं अपने भाई बेटों के साथ अक्षौहिणी सेना से आवृत होकर राजा युधिष्ठिर की सहायता को उपस्थित हैं ॥६-७॥

जारासंधिर्मागधश्च धृष्टकेतुश्च चेदिराट् ।

पृथक्पृथगनुप्राप्तौ पृथगक्षौहिणीवृतौ ॥८॥

मगधेश्वर जरासन्ध का पुत्र सहदेव, चेदिराज धृष्टकेतु, पृथक् २ एक २ अक्षौहिणी लेकर आ गए हैं ॥८॥

केकया भ्रातरः पंच सर्वे लोहितकध्वजाः ।

अक्षौहिणीपरिवृताः पांडवानभिसंश्रिताः ॥९॥

केकय देश के पांचों भाई आए हैं, जिनकी लाल ध्वजा है। ये भी अक्षौहिणी सेना के साथ पाण्डवों की सेवा में उपस्थित हैं ॥९॥

एतानेतावतस्तत्र तानपश्यं समागतान् ।

ये पांडवार्थे योत्स्यन्ति धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ॥१०॥

मैंने तो इतने ही आये हुए राजाओं को देखा है, जो धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन की सेना से पाण्डवों के निमित्त युद्ध करेंगे ॥१०॥

यो वेद मानुषं व्यूहं दैवं गांधर्वमासुरम् ।

स तत्र सेनाप्रमुखे धृष्टद्युम्नो महारथः ॥११॥

जो मानुष, दैव, गान्धर्व, आसुर—व्यूह रचना को जानता है, वही सेना के अग्र भाग में चलने वाला, महारथी धृष्टद्युम्न है ॥११॥

भीष्मः शांतनवो राजन्भागः क्लृप्तः शिखंडिनः ।
तं विराटोऽनुसंयाता सार्धं मत्स्यैः प्रहारिभिः ॥१२॥

हे राजन ! शान्तनु पुत्र भीष्म,शिखण्डीके हिस्से में आया है, उस शिखण्डी की युद्ध में प्रहार करने वाले मत्स्य निवासी वीरों के साथ विराट पीछे से सहायता करेगा ॥१२॥

ज्येष्ठस्य पांडुपुत्रस्य भागो मद्राधिपो बली ।
तौ तु तत्राऽब्रु्वन्केचिद्विषमौ नो मताविति ॥१३॥

ज्येष्ठ पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर के भाग में मद्रदेश का अधिपति शल्य आया है। उनमें कुछ वीर कह रहे हैं, कि ये उनकी जोट के ठीक नहीं हैं ॥१३॥

दुर्योधनः सहसुतः सार्धं भ्रातृशतेन च ।
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च भीमसेनस्य भारत ॥१४॥

हे भारत ! अपने पुत्र और सौ भाइयों के साथ दुर्योधन, तथा पूर्व और दक्षिण के राजा भीम के भाग में आये हैं ॥१४॥

अर्जुनस्य तु भागेन कर्णो वैकर्तनो गतः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सैंधवश्च जयद्रथः ॥१५॥

अर्जुन के भाग में सूर्यपुत्र कर्ण, अश्वत्थामा, विकर्ण और सिन्धुराज जयद्रथ आये हैं ॥१५॥

अशक्याश्चैव ये केचित्पृथिव्यां शूरमानिनः ।
सर्वांस्तानर्जुनः पार्थः कल्पयामास भागतः ॥१६॥

जो पृथिवी पर किसी के वश में न आने वाले, बड़े शूरवीर हैं, वे सब अर्जुन के हिस्से में कर दिए गए हैं ॥१६॥

महेष्वासा राजपुत्रा भ्रातरः पञ्च केकयाः ।
केकयानेव भागेन कृत्वा योत्स्यन्ति संयुगे ॥१७॥

महाधनुर्धर, केकय देश के पांच राजपुत्र भाई हैं, ये युद्ध में अपने केकय देश के वीरों को लेकर युद्ध करेंगे ॥१७॥

तेषामेव कृतो भागो मालवाः शाल्वकास्तथा ।
त्रिगर्तानां चैव मुख्यौ यौ तौ संशप्तकाविति ॥१८॥

इन केकय राजकुमारों के भाग में ही मालव, शाल्वक तथा त्रिगर्तों में मुख्य संशप्तक आये हुए हैं ॥१८॥

दुर्योधनसुताः सर्वे तथा दुःशासनस्य च ।
सौभद्रेण कृतो भागो राजा चैव बृहद्बलः ॥१९॥

दुर्योधन तथा दुःशासन के पुत्रों को सुभद्रापुत्र अभिमन्यु के वध के निमित्त निश्चित किया गया है और राजा बृहद्बलभी अभिमन्यु के हिस्से में ही आया है ॥१९॥

द्रौपदेया महेष्वासा सुवर्णविकृतध्वजाः ।
धृष्टद्युम्नमुखा द्रोणमभियास्यन्ति भारत ॥२०॥

हे भारत! महाधनुर्धर द्रौपदीपुत्र, सुवर्ण की ध्वजा वाले धृष्टद्युम्न आदि, द्रोण पर आक्रमण करेंगे ॥२०॥

चेकितानः सोमदत्तं द्वैरथे योद्धुमिच्छति ।
भोजं तु कृतवर्माणं युयुधानो युयुत्सति ॥२१॥

चेकितान सोमदत्त से घोर युद्ध में लड़ना चाहता है और भोजराज कृतवर्मा से युयुधान लड़ना चाहता है ॥२१॥

सहदेवस्तु माद्रेयः शूरः संक्रन्दनो युधि ।
स्वमंशं कल्पयामास श्यालं ते सुबलात्मजम् ॥२२॥

माद्रीपुत्र युद्धदुर्मद, शूर सहदेव ने अपने हिस्से में वध करने को सुबलपुत्र शकुनि को चुन लिया है ॥२२॥

उलूकं चैव कैतव्यं ये च सारस्वता गणाः ।
नकुलः कल्पयामास भागं माद्रवतीसुतः ॥२३॥

कितव के पुत्र, उलूक तथा सारस्वतों के गणों को माद्रीपुत्र, नकुल ने अपने अंश में ले लिया है ॥२३॥

ये चाऽन्ये पार्थिवा राजन्प्रत्युद्यास्यन्ति सङ्गरे ।
समाह्वानेन तांश्चापि पाण्डुपुत्रा अकल्पयन् ॥२४॥

हे राजन् ! इसी तरह अन्य, जो २ राजा युद्ध के लिए तय्यार हो रहे हैं, उनको भी निश्चित करके पाण्डवों ने अपना २ भाग बना लिया है ॥२४॥

एवमेषामनीकानि प्रविभक्तानि भागशः ।
यत्ते कार्यं सपुत्रस्य क्रियतां तदकालिकम् ॥२५॥

हे राजन ! इस तरह विभाग करके उन्होंने अपनी सेना को बांट लिया है । अब अपने पुत्र के साथ तुमको जो कर्तव्य है, वह करो—इसमें देर करना अच्छा नहीं है ॥२५॥

धृतराष्ट्र उवाच—

न सन्ति सर्वे पुत्रा मे मूढा दुर्द्यूतदेविनः ।
येषां युद्धं बलवता भीमेन रणमूर्धनि ॥२६॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! द्यूत खेलने में कौशल मानने वाले मेरे मूर्ख पुत्र, अब जीवित नहीं रह सकते हैं, जब कि उनका रण में बलवान् भीम के साथ युद्ध ठनने वाला है ॥२६॥

राजानः पार्थिवाः सर्वे प्रोक्षिताः कालधर्मणा ।
गांडीवाग्निं प्रवेक्ष्यन्ति पतङ्गा इव पावकम् ॥२७॥

कालधर्म ने सारे राजाओं को भी बलि के निमित्त निश्चित कर दिया है। ये भी गाण्डीव धनुष रूपी अग्नि में इस तरह प्रविष्ट हो जायेंगे—जैसे अग्नि में पतङ्ग घुस जाती है ॥२७॥

विद्रुतां वाहिनीं मन्ये कृतवैरैर्महात्मभिः ।
तां रणे केऽनुयास्यन्ति प्रभग्नां पांडवैर्युधि ॥२८॥

महावीर पाण्डवों से वैर होने पर युद्ध में उनके सामने से मेरी सेना अवश्य भाग निकलेगी। जब युद्ध में सेना भाग खड़ी होगी—तो उस रण में कौन उसके पीछे जाकर फिर लौटा लाने की सामर्थ्य रखता है ॥२८॥

सर्वे ह्यतिरथाः शूराःकीर्तिमन्तः प्रतापिनः ।
सूर्यपावकयोस्तुल्यास्तेजसा समितिंजयाः ॥२९॥

पाण्डवों के पक्ष में सारे महाप्रतापी, कीतिशाली युद्ध-विजयी तेज में सूर्य और अग्नि के तुल्य, शूरवीर योद्धा हैं ॥२९॥

येषां युधिष्ठिरो नेता गोप्ता च मधुसूदनः ।
योधौ च पांडवौ वीरौ सव्यसाचिवृकोदरौ ॥३०॥
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
सात्यकिर्द्रुपदश्चैव धृष्टकेतुश्च सानुजः ॥३१॥
उत्तमौजाश्च पांचाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः ।
शिखण्डी क्षत्रदेवश्च तथा वैराटिरुत्तरः ॥३२॥
काशयश्चेदयश्चैव मत्स्याः सर्वे च सृञ्जयाः ।
विराटपुत्रो बभ्रुश्च पाञ्चालाश्च प्रभद्रकाः ॥३३॥

इन सारे वीरों का नेता युधिष्ठिर है, जिसके पास सव्यसाची अर्जुन और भीमसेन जैसे वीर पाण्डु-पुत्र योद्धा हैं। इसी तरह नकुल सहदेव, पर्षतवंशी धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रुपद, अपने छोटे भाई के साथ धृष्टकेतु, उत्तमौजा, द्रौपदी पुत्र, दुर्जय युधामन्यु, शिखण्डी, क्षत्रदेव, विराट पुत्र उत्तर, काशी चेदी मत्स्य देश निवासी तथा सृञ्जय, विराट पुत्र, बभ्रु, पाञ्चाल और प्रभद्रक आदि वीर, राजा युधिष्ठिर के पक्ष में हैं ॥३०-३३॥

येषामिन्द्रोऽप्यकामानां न हरेत्पृथिवीमिमाम् ।
वीराणां रणधीराणां ये भिंद्युः पर्वतानपि ॥३४॥

इन रणधीर वीरों के विरुद्ध होने पर इन्द्र भी इनकी पृथिवी का अपहरण नहीं कर सकता है, जो युद्ध में पर्वतों के भी टुकड़े २ उड़ा सकते हैं ॥३४॥

तान्सर्वगुणसम्पन्नानमनुष्यप्रतापिनः ।
क्रोशतो मम दुष्पुत्रो योद्धुमिच्छति सञ्जय ॥३५॥

हे सञ्जय ! उन सर्व-गुण-सम्पन्न, देव, राक्षसों को भी सन्तप्त कर देने वाले, पाण्डवों से मेरे चीखने चिल्लाने पर भी मेरा अज्ञानी पुत्र, दुर्योधन युद्ध करना चाहता है ॥३५॥

दुर्योधन उवाच—

उभौ स्व एकजातीयौ तथोभौ भूमिगोचरौ ।
अथ कस्मात्पांडवानामेकतो मन्यसे जयम् ॥३६॥

दुर्योधन बोला—हम दोनों एक ही वंश में उत्पन्न हुए हैं, यह सारी पृथिवी को दिखाई देता है। अब तुम यह निश्चित कैसे कह रहे हो, कि इसमें पाण्डवों का ही विजय होगा ॥३६॥

पितामहं च द्रोणं च कृपं कर्णं च दुर्जयम् ।
जयद्रथं सोमदत्तमश्वत्थामानमेव च ॥३७॥
सुतेजसो महेष्वासानिन्द्रोऽपि सहितोऽमरैः ।
अशक्तः समरे जेतुं किं पुनस्तात पांडवाः ॥३८॥

हे पिता ! भीष्म पितामह, द्रोण, कृप, दुर्जेय कर्ण, जयद्रथ, सोमदत्त, अश्वत्थामा आदि मेरे वीर धनुर्धर, इतने तेजस्वी हैं, कि देवों के साथ इन्द्र भी उनसे लड़ने आवे, तो पराजित हो जावेगा, फिर पाण्डवों की तो गिनती ही क्या है ॥३७-३८॥

सर्वे च पृथिवीपाला मदर्थे तात पांडवान् ।
आर्याः शस्त्रभृतः शूराः समर्थाः प्रतिबाधितुम् ॥३९॥

हे तात ! ये सारे शूरवीर, आर्य, शस्त्रधारी, राजा मेरे पक्ष में हैं। ये मेरे लिए पाण्डवों को मार देने को सब तरह से समर्थ और सुसज्जित हैं ॥३६॥

न मामकान्पांडवास्ते समर्थाः प्रतिवीक्षितुम् ।
पराक्रान्तो ह्यहं पांडून्सपुत्रान्योद्धुमाहवे॥४०॥

मेरे वीरों को पाण्डव आंख उठाकर देख भी नहीं सकेंगे, क्योंकि मैं स्वयं उनके पुत्रों सहित पाण्डवों से उस रण में युद्ध करने को विद्यमान रहूंगा ॥४०॥

मत्प्रियं पार्थिवाः सर्वे ये चिकीर्षंति भारत ।
ते तानावारयिष्यन्ति ऐणेयानिव तन्तुना ॥४१॥

हे भारत ! जो राजा मेरे प्रिय कार्य को सम्पादन करने के लिए तैयार हो रहे हैं, वे पाण्डवों को ऐसे घेर लेंगे, जैसे जाल के तन्तु हिरन को पकड़ लेते हैं ॥४ ॥

महता रथवंशेन शरजालैश्च मामकैः ।
अभिद्रुता भविष्यन्ति पाञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥४२॥

बड़े भारी रथ समूह और मेरे बाणों के समूह से व्याकुल पाण्डवों के साथ पाञ्चाल भाग निकलेंगे ॥४२॥

धृतराष्ट्र उवाच—

उन्मत्त इव मे पुत्रो विलपत्येष सञ्जय ।
न हि शक्तो रणे जेतुं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥४३॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! यह मेरा पुत्र दुर्योधन, उन्मत्त की तरह प्रलाप कर रहा है। यह युद्ध में धर्मराज युधिष्ठिर को नहीं जीत सकता है ॥४३॥

जानाति हि यथा भीष्मः पाण्डवानां यशस्विनाम् ।
बलवत्तां स पुत्राणां धर्मज्ञानां महात्मनाम् ॥४४॥
यतो नाऽरोचयदयं विग्रहं तैर्महात्मभिः ।
किन्तु सञ्जय मे ब्रूहि पुनस्तेषां विचेष्टितम् ॥४५॥

यशस्वी धर्मात्मा महाबली पुत्रों सहित पाण्डवों की शक्ति को भीष्म जानते हैं, इसी से वे उन महात्माओं के साथ युद्ध करने का अनुमोदन नहीं करते हैं अस्तु ? हे सञ्जय ! अब तुम फिर मुझे उनकी चेष्टाओं का और दिग्दर्शन कराओ ॥४४-४५॥

कस्तांस्तरस्विनो भूयः संदीपयति पांडवान् ।
अर्चिष्मतो महेष्वासान्हविषा पावकानिव ॥४६॥

उन अत्यन्त तेजस्वी और प्रतापी, महा धनुर्धर, पाण्डवों को हवि से अग्नि तरह कौन प्रेरणा करके बार २ प्रज्वलित कर रहा है ॥४६॥

सञ्जय उवाच—

धृष्टद्युम्नः सदैवैतान्संदीपयति भारत ।
युद्धयध्वमिति मा भैष्ट युद्धाद्भरतसत्तमाः ॥४७॥

सञ्जय ने कहा—हे भारत इन पाण्डवों को सदा धृष्टद्युम्न प्रेरित करता रहता है। वह कहता है—हे भरतवंश श्रेष्ठ ! युद्ध करो, युद्ध से किसी तरह का भय नहीं मानो ॥४७॥

ये केचित्पार्थिवास्तत्र धार्तराष्ट्रेण संवृताः ।
युद्धे समागमिष्यन्ति तुमुले शस्त्रसंकुले ।।४८।।
तान्सर्वानाहवे क्रुद्धान्सानुबन्धान्समागतान् ।
अहमेकः समादास्ये तिमिर्मत्स्यानिवोदकात् ।।४९।।

जो राजा, धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन के निमन्त्रण पर इस घोर युद्ध में आवेंगे, उन क्रोध में भरे हुए अभ्यागत राजाओं को उनकी सेना के साथ में अकेला ही युद्ध में ऐसे खींच लूंगा जैसे पानी से व्याध मछलियों को खैंच लेता है ।।४८-४९।।

भीष्मं द्रोणं कृपं कर्णं द्रौणिं शल्यं सुयोधनम् ।
एतांश्चापि निरोत्स्यामि वेलेव मकरालयम् ।।५०।।

भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, सुयोधन आदि सारे वीरों को ऐसे रोक लूंगा, जैसे-वेला समुद्र को रोके रखती है ।।५०

तथा ब्रुवन्तं धर्मात्मा प्राह राजा युधिष्ठिरः ।
तव धैर्यं च वीर्यं च पाञ्चालाः पांडवैः सह ।।५१।।
सर्वे समधिरूढाः स्म संग्रामान्नः समुद्धर ।
जानामित्वां महाबाहो क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ।।५२।।
समर्थमेकं पर्याप्तं कौरवाणां विनिग्रहे ।

जब वह इतना कहता है, तो धर्मात्मा युधिष्ठिर कहता है, कि तेरे धैर्य और पराक्रम के कारण ही पाण्डवों के साथ पाञ्चाल, युद्ध के लिए सन्नद्ध हुए हैं । अब तुम हमारा इस युद्ध से उद्धार

करो। हे महाबाहो! मैं जानता हूं, कि तुम महाबली और क्षात्र धर्म में तत्पर हो। तुम कौरवों के पराजित करने में अकेले ही समर्थ हो ॥५१-५२॥

पुरस्तादुपयोतानां कौरवाणां युयुत्सताम् ॥५३॥
भवता यद्विधातव्यं तन्नः श्रेयः परन्तप।
संग्रामादपयातानां भग्नानां शरणैषिणाम् ॥५४॥

हे परन्तप! युद्ध की इच्छा से सन्मुख उपस्थित कौरवों के साथ जो युद्ध का ढङ्ग आप स्वीकार करोगे—वही हमारे कल्याण का कारण होगा तथा संग्राम से भागकर जाते हुए शरण के अभिलाषी, कौरवों के साथ जो तुम व्यवहार करोगे—वही हमें उत्तम होगा ॥५३-५४॥

पौरुषं दर्शयञ्शूरो यस्तिष्ठेदग्रतः पुमान्।
क्रीणीयात्तं सहस्रेण इति नीतिमतां मतम् ॥५५॥

जो युद्ध में पुरुषार्थ दिखाता हुआ रण के आगे चलता है, ऐसे वीर पुरुष को सहस्रों रुपये खर्च करके भी मोल ले लेना ही चाहिए—यही नीति जानने वालों का मत है ॥५५॥

स त्वं शूरश्च वीरश्च विक्रांतश्च नरर्षभ।
भयार्तानां परित्रोता संयुगेषु न संशयः ॥५६॥

हे नरर्षभ! धृष्टद्युम्न! तुम शूरवीर, पराक्रमी हो एवं भयातुर शत्रु के युद्ध में उद्धार कर देने वाले महा पुरुष हो—इसमें सन्देह नहीं है ॥५६॥

एवं ब्रुवति कौन्तेये धर्मात्मनि युधिष्ठिरे ।
धृष्टद्युम्न उवाचेदं मां वचो गतसाध्वसम् ॥५७॥

जब धर्मात्मा युधिष्ठिर ने इतना कहा—तो शान्ति से बैठे हुए मुझसे धृष्टद्युम्न बोला ॥५७॥

सर्वाञ्जनपदान्सूत योधा दुर्योधनस्य ये ।
सबाह्लिकान्कुरून्ब्रूयाः प्रातिपेयाञ्शारद्वतः ।
सूतपुत्रं तथा द्रोणं सहपुत्रं जयद्रथम् ॥५८॥
दुःशासनं विकर्णं च तथा दुर्योधनं नृपम् ।
भीष्मं च ब्रूहि गत्वा त्वमाशु गच्छ च मा चिरम् ।५९

हे सूत ! तुम शीघ्र जाओ देर न लगाओ । दुर्योधन की सहायता को आये हुए, सारे राष्ट्रपति, बाल्हिक, कुरु प्रतीपवंशज शरद्वान पुत्र कृप, सूत पुत्र कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा, जयद्रथ, दुःशासन, विकर्ण राजा दुर्योधन और भीष्म से शीघ्र जाकर यह कह देना ॥५८-५९॥

युधिष्ठिर उवाच—

युधिष्ठिरः साधुनैवाऽभ्युपेयो मा वोऽवधीदर्जुनो देवगुप्तः ।
राज्यंददध्वंधर्मराजस्यतूर्णं याचध्वं वै पांडवं लोकवीरम् ॥

हे महानुभावो ! तुम लोग, राजा युधिष्ठिर के साथ सद्-व्यवहार करो । कहीं देवों से सुरक्षित अर्जुन, तुम्हारा वध न कर डाले। अब तुम शीघ्र धर्मराज का राज्य

उनको सौंप दो और इस जगत प्रसिद्ध वीर पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर से अपने अपराधों की क्षमा याचना करो ॥६०॥

नैतादृशो हि योधोऽस्ति पृथिव्यामिह कश्चन ।
यथाविधः सव्यसाची पांडवः सत्यविक्रमः ॥६१॥

इस पृथिवी पर कोई ऐसा वीर योद्धा नहीं है, जैसा—पाण्डु-पुत्र, सत्य पराक्रमी, सव्यसाची वीर अर्जुन है ॥६१॥

देवैर्हि संभृतो दिव्यो रथो गांडीवधन्वनः ।
न स जेयो मनुष्येण मा स्म कृद्‌ध्वं मनो युधि ॥६२॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि
सञ्जयवाक्ये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

गाण्डीवधारी अर्जुन का रथ देवों से सुरक्षित है । इन्हीं कारणों से अर्जुन, मनुष्यों से नहीं जीता जा सकता है। तुम लोग अब युद्ध से मन को हटा लो ॥६२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में सञ्जयवाक्य का सत्तावनवां अध्याय समाप्त हुआ ।



अट्ठावनवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

क्षत्रतेजा ब्रह्मचारी कौमारादपि पांडवः ।

तेन संयुगमेष्यन्ति मन्दा विलपतो मम ॥१॥

धृतराष्ट्र बोला—हे सञ्जय ! क्षात्रधर्म परायण, कुमार अवस्था से ब्रह्मचारी, पाण्डु पुत्र अर्जुन से मेरे चीखने चिल्लाने पर भी मेरे अज्ञानी पुत्र, युद्ध करना चाहते हैं-यह कितनी अज्ञानता है

दुर्योधन निवर्त्तस्व युद्धाद्भरतसत्तम ।

नहि युद्धं प्रशंसन्ति सर्वावस्थमरिन्दम ॥२॥

हे भरत-सत्तम ! अरिन्दम ! दुर्योधन ! तुम युद्ध से निवृत्त हो जाओ । नीतिमान सारी अवस्थाओं में युद्ध करना उचित नहीं मानते हैं ॥२॥

अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम् ।

प्रयच्छ पाडुपुत्राणां यथोचितमरिन्दम ॥३॥

हे अरिन्दम ! तुम्हें आधा राज्य, अपने मन्त्रियों सहित, जीवन यात्रा के लिये पर्याप्त है- इससे जो पाण्डुपुत्रों का स्वत्व (हक़) है, उसको तुम उनको प्रदान कर दो ॥३॥

एतद्धि कुरवः सर्वे मन्यन्ते धर्मसंहितम् ।

यत्त्वं प्रशांतिं मन्येथाः पांडुपुत्रैर्महात्मभिः ॥४॥

यदि तुम महात्मा पाण्डुपुत्रों के साथ, सन्धि करलो—तो इसको ये सारे कौरव, धर्मयुक्त मानते हैं ॥४॥

अवेक्षस्व समवेक्षस्व पुत्र स्वामेव वाहिनीम् ।
जात एष तवाऽभावस्त्वं तु मोहान्न बुद्ध्यसे ॥५॥

हे पुत्र ! तुम अपनी सेना की ओर तो देखो । यह तो तुम्हारे नाश का कारण होती जा रही है—तुम, अपने अज्ञान और इसके घमण्ड से ही अपने नाश को नही देख रहे हो ॥५॥

न त्वहं युद्धमिच्छामि नैतदिच्छति बाह्लिकः ।
न च भीष्मो न च द्रोणो नाऽश्वत्थामा न सञ्जयः॥६॥
न सोमदत्तो न शलो न कृपो युद्धमिच्छति ।
सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवास्तथा ॥७॥

मैं, बाल्हिक, भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, सञ्जय, सोमदत्त, शल, कृप, सत्यव्रत, पुरुमित्र, भूरिश्रवा आदि वीरों में कोई भी इस युद्ध की इच्छा नहीं करते हैं ॥६-७॥

येषु सम्प्रतितिष्ठेयुः कुरवः पीडिताः परैः ।
ते युद्धं नाऽभिनन्दन्ति तत्तुभ्यं तात रोचताम् ॥८॥

शत्रु के आक्रमण करने पर जिनके बल पर कौरव शत्रुओं को परास्त करते थे—वे युद्ध का अनुमोदन नहीं करते है । हे तात ! तुमको भी उनकी सम्मति उत्तम ही प्रतीत होनी चाहिए ।

न त्वं करोषि कामेन कर्णः कारयिता तव ।
दुःशासनश्च पापात्मा शकुनिश्चापि सौबलः ॥९॥

मुझे यह भी मालूम है, कि तू कुछ नहीं कर रहा है, तुझसे तो जो कर्ण, दुःशासन और दुरात्मा सुबल पुत्र जो कराते हैं, तू वही करता है ॥९॥

दुर्योधन उवाच—

नाऽहं भवति न द्रोणे नाऽश्वत्थाम्नि न सञ्जये।
न भीष्मे न च कांबोजे न कृपे न च बाह्लिके ॥१०॥
सत्यव्रते पुरुमित्रे भूरिश्रवसि वा पुनः।
अन्येषु वा तावकेषु भारं कृत्वा समाह्वयम् ॥११॥

दुर्योधन ने कहा—हे तात! मैं, तुम, द्रोण, अश्वत्थामा, सञ्जय, भीष्म, काम्बोज पति, कृप, बाल्हिक, सत्यव्रत, पुरुमित्र, भूरिश्रवा या अन्य किसी का आश्रय लेकर युद्ध में प्रवृत्त नहीं हुआ हूं ॥१०-११॥

अहं च तात कर्णश्च रणयज्ञं वितत्य वै।
युधिष्ठिरं पशुं कृत्वा दीक्षितौ भरतर्षभ ॥१२॥

हे तात! भरतर्षभ! मैं और कर्ण, इस रणयज्ञ का विस्तार करके हम दोनों ही यज्ञ दीक्षा में दीक्षित हुए राजा युधिष्ठिर को पशु बना कर वलि दे देंगे ॥१२॥

रथो वेदी स्रुवः खड्गो गदा स्रुक् कवचं सदः।
चातुर्होत्रं च धुर्या मे शरा दर्भा हविर्यशः ॥१३॥

हमारा रथ वेदी, खड्ग स्रुवा, गदा स्रुक्, कवच सदस्य, अश्व चातुर्होत्र (होतादिकर्म) यज्ञ, शर दर्भ और हमारा यश ही हविः होगा ॥१३॥

आत्मयज्ञेन नृपते इष्ट्वा वैवस्वतं रणे।
विजित्य च समेष्यावो हतामित्रौ श्रियावृतौ ॥१४॥

हे नृपते ! इस आत्मिक यज्ञ से यमराज का यजन करके अपने शत्रु को मार कर राज्य-लक्ष्मी से युक्त हुए, विजयी हुए लौट आवेंगे ॥१४॥

अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे।
एते वयं हनिष्यावः पाण्डवान्समरे त्रयः ॥१५॥

हे तात ! मैं कर्ण और दुःशासन हम तीन ही युद्ध में सारे पाण्डवों को मार डालेंगे, इसमें संशय नहीं है ॥१५॥

अहं हि पांडवान्हत्वा प्रशास्ता पृथिवीमिमाम्।
मां वा हत्वा पांडुपुत्रा भोक्तारः पृथिवीमिमाम् ॥१६

या तो हम पाण्डवों को मार कर इस पृथिवी का राज्य भोगेंगे या हमको मारकर पाण्डव इस पृथिवी का शासन करेंगे।

त्यक्तं मे जीवितं राज्यं धनं सर्वं च पार्थिव।
न जातु पांडवैः सार्धं वसेयमहमच्युत ॥१७॥

हे राजन् ! हे अच्युत ! मैं धन, राज्य, जीवन सब कुछ छोड़ सकता हूँ, परन्तु मैं पाण्डवों के साथ मेल करके कभी नहीं रह सकता हूं ॥१७॥

यावद्धि सूच्यास्तीक्ष्णाया विध्येदग्रेण मारिष ।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पांडवान्प्रति ॥१८॥

हे राजन् ! तीक्ष्ण (पैनी) सूची (सूई) के अग्रभाग के टिकाने से जितनी भूमि होती है, मैं उतनी भी भूमि, पाण्डवों के लिए नहीं दे सकता हूं ॥१८॥

धृतराष्ट्र उवाच—

सर्वान्वस्तात शोचामि त्यक्तो दुर्योधनो मया ।
ये मन्दमनुयास्यध्वं यान्तं वैवस्वतक्षयम् ॥१९॥

धृतराष्ट्र कहने लगा—हे महीपालो ! मैंने दुर्योधन का तो सोच छोड़ दिया, क्योंकि यह मानता ही नहीं है । अब तो मुझे तुम्हारी ही चिन्ता है, जो तुम लोग, इस अज्ञानी के पीछे चल कर यमपुरी के अतिथि बनना चाहते हो ॥१९॥

रुरूणामिव यूथेषु व्याघ्राः प्रहरतां वराः ।
वरान्वरान्हनिष्यन्ति समेता युधि पांडवाः ॥२०॥

मृगों के झुण्ड में से व्याध,(शिकारी) जैसे छांट २ कर उत्तम मृगों को मारता है, वैसे ही प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ वीर, इकट्ठे पाण्डव, हमारी सेना के वीरों को छांट २ कर मारेंगे ॥२०॥

प्रतीपमिव मे भाति युयुधानेन भारती ।
व्यस्ता सीमन्तिनी ग्रस्ता प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ॥२१॥

इस भारती (हमारी) सेना को विरुद्ध आचरण करने वाली स्त्री के समान दीर्घ-बाहु युयुधान पकड़कर छिन्न भिन्न (अपमानित) कर देगा ॥२१॥

सम्पूर्णं पूरयन्भूया धनं पार्थस्य माधवः ।
शैनेयः समरे स्थाता बीजवत्प्रवपञ्शरान् ॥२२॥

मधुवंशज, शिनि-पौत्र, सात्यकि, युद्ध में स्थित होकर बीज की तरह बाणों को बोता हुआ, राजा युधिष्ठिर के अभीष्ट धन को प्रदान करेगा ॥२२॥

सेनामुखे प्रयुद्धानां भीमसेनो भविष्यति ।
तं सर्वे संश्रयिष्यन्ति प्राकारमकुतोभयम् ॥२३॥

युद्ध करने वालों की सेना के अग्र भाग में भीमसेन होगा-इसी निर्भीक भीम का दुर्ग की भीत की भांति सारे योद्धा आश्रय ग्रहण करते रहेंगे ॥२३॥

यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुंजरान्विनिपातितान् ।
विशीर्णदन्तान्गिर्याभान्भिन्नकुंभान्सशोणितान् ॥२४॥
तानभिप्रेक्ष्य संग्रामे विशीर्णानिव पर्वतान् ।
भीतो भीमस्य संस्पर्शात्स्मर्ताऽसि वचनस्य मे॥२५॥

हे दुर्योधन ! जब तुम, दांत तोड़कर पर्वत के आकार धारी, भिन्न हुए मस्तक वाले, रक्त में लथपथ, भीम से गिराये हुए, छिन्न भिन्न पर्वतों की तरह संग्राम में पड़े हुए देखोगे—तब भीम के आघात से भयभीत होकर मेरे वचनों को याद करोगे॥२४-२५

निर्दग्धं भीमसेनेन सैन्यं रथहयद्विपम् ।
गतिमग्नेरिव प्रेक्ष्य स्मर्ताऽसि वचनस्य मे ॥२६॥

भीमसेन से रथ, हाथी, घोड़ों और सेना के जला देने पर तथा अग्नि के समान भीम को प्रचण्ड होते देखकर मेरे वचनों को तू याद करेगा ॥२६॥

महद्वो भयमागामि न चेच्छाम्यथ पाण्डवैः ।
गदया भीमसेनेन हताः शममुपेष्यथ ॥२७॥

यदि तुम पाण्डवों के साथ सन्धि नहीं करोगे—तो तुमको बड़ा भय आने वाला है। तुम लोग, भीमसेन की गदासे आघात पाकर नष्ट भ्रष्ट हो जाओगे ॥२७॥

महावनमिवच्छिन्नं यदा द्रक्ष्यसि पातिताम् ।
बलं कुरूणां भीमेन तदा स्मर्ताऽसि मे वचः ॥२८॥

हे तात ! जब तू कटे हुए महावन के समान भीम द्वारा कौरवों की सेना को छिन्न-भिन्न देखेगा—तब मेरे वचनों का स्मरण करेगा ॥२८॥

वैशम्पायन उवाच—

एतावदुक्त्वा राजा तु सर्वास्तान्पृथिवीपतीन् ।
अनुभाष्य महाराज पुनः पप्रच्छ सञ्जयम् ॥२९॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि
धृतराष्ट्रवाक्येऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

वैशम्पायन बोले—हे महाराज ! राजा धृतराष्ट्र उन सारे राजाओं से इतना कहकर और इसके पीछे भी कुछ और भाषण करके सञ्जय से पूछने लगे ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में धृतराष्ट्र वाक्य का अट्ठावनवां अध्याय समाप्त हुआ ।

उनसठवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

यदब्रूतां महात्मानौ वासुदेव धनञ्जयौ।
तन्मे ब्रूहि महाप्राज्ञ शुश्रूषे वचनं तव ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे महाप्राज्ञ! अब तुम मुझे यह और सुनाओ, कि महात्मा अर्जुन और श्रीकृष्ण ने क्या २ कहा। मुझे तुम्हारे वचन सुनने की बड़ी इच्छा हो रही है ॥१॥

सञ्जय उवाच—

शृणु राजन्यथादृष्टौ मया कृष्णधनञ्जयौ।
ऊचतुश्चापि यद्वीरौ तत्ते वक्ष्यामि भारत ॥२॥
पादांगुलिरभिप्रेक्षन्प्रयतोऽहं कृताञ्जलिः।
शुद्धान्तं प्राविशं राजन्नाख्यातुं नरदेवयोः ॥३॥

सञ्जय बोला-हे राजन्! मैंने जिस तरह श्रीकृष्ण और अर्जुन को देखा और उन वीरों ने जो कहा—वही मैं तुमसे कहता हूं। हे राजन्! मैं अपने पैरों की अंगुलियों की ओर देखता हुआ, हाथ जोड़े हुए बड़ी सावधानता से उन दोनों नर-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन से बातचीत करने को उनके अन्तःपुर में पहुंचा ॥३॥

नैवाऽभिमन्युर्न यमौ तं देशमभियान्ति वै।
यत्र कृष्णौ च कृष्णा च सत्यभामा च भामिनी ॥४॥

उस स्थान पर अभिमन्यु और नकुल सहदेव तक नहीं जा सकते हैं, जहां श्रीकृष्ण अर्जुन, द्रौपदी और सत्यभामा श्रीकृष्ण की पत्नी निवास करती हैं ॥४॥

उभौ मध्वासवक्षीबावुभौ चन्दनरूषितौ ।
स्रग्विणौ वरवस्त्रौ तौ दिव्याभरणभूषितौ ॥५॥

उस महल में श्रीकृष्ण और अर्जुन, दोनों ही मध्वासव से पुष्ट हुए चन्दन से चर्चित, मालाधारी, उत्तम वस्त्र धारण किए हुए, दिव्य भूषणों से सुसज्जित बैठे थे ॥५॥

नैकरत्नविचित्रं तु कांचनं महदासनम् ।
विविधास्तरणाकीर्णं यत्राऽऽसातामरिंदमौ ॥६॥

उस जगह अनेक रत्नों से विचित्र, स्वर्ण का सिंहासन था, जिस पर उत्तम विस्तर बिछे हुए थे, उसी पर दोनों अरि-विजयी श्रीकृष्णार्जुन बैठे थे ॥६॥

अर्जुनोत्संगगौ पादौ केशवस्योपलक्षये ।
अर्जुनस्य च कृष्णायां सत्यायां च महात्मनः ॥७॥

वहां अर्जुन की गोद में श्रीकृष्ण के पैर थे और महात्मा अर्जुन के चरण द्रौपदी और सत्यभामा जिधर बैठी थी उधर थे ॥७॥

काञ्चनं पादपीठं तु पार्थो मे प्रादिशत्तदा ।
तदहं पाणिना स्पृष्ट्वा ततो भूमावुपाविशम् ॥८॥

अर्जुन ने मुझे सुवर्ण का सिंहासन बैठने को प्रदान किया। मैं भी उस सुवर्णासन को छू कर भूमि में ही बैठ गया ॥८॥

ऊर्ध्वरेखातलौ पादौ पार्थस्य शुभलक्षणौ ।
पादपीठादपहृतौ तत्राऽपश्यमहं शुभौ ॥९॥

उस समय मैंने सिंहासन से निकले हुए ऊर्ध्व रेखा से अङ्कित, शुभ लक्षणों से युक्त, अर्जुन के सुन्दर चरण देखे ॥९॥

श्यामौ बृहन्तौ तरुणौ शालस्कन्धाविवोद्गतौ ।
एकासनगतौ दृष्ट्वा भयं मां महदाविशत् ॥१०॥

दोनों मेघ के समान श्याम वर्ण, विशाल, युवा, शाल के स्कन्ध के तुल्य उन्नत, एक आसन पर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन को देखकर मुझे बड़ा भय हुआ ॥१०॥

इन्द्रविष्णू समावेतौ मन्दात्मानावबुध्यते ।
संश्रयाद् द्रोणभीष्माभ्यां कर्णस्य च विकत्थनात्॥११

उस समय मैंने समझा, कि अर्जुन और श्रीकृष्ण, इन्द्र और विष्णु के तुल्य हैं, इस बात को द्रोण और भीष्म के बल तथा कर्ण के झूंठी प्रशंसा करने के कारण मूर्ख दुर्योधन नहीं समझ पाता है ॥११॥

निदेशस्थाविमौ यस्य मानसस्तस्य सेत्स्यते ।
सङ्कल्पो धर्मराजस्य निश्चयो मे तदाऽभवत् ॥१२॥

मुझे उनको देखते ही यही ख्याल हुआ कि जिस धर्मराज की ये आज्ञा में रहते हैं, उनका मानसिक सङ्कल्प सिद्ध होगा, इसमें संशय नहीं है ॥१२॥

सत्कृतश्चाऽन्नपानाभ्यामासीनो लब्धसत्क्रियः ।
अञ्जलिं मूर्ध्नि सन्धाय तौ सन्देशमचोदयम् ॥१३॥

उन्होंने अन्न पान से मेरा सत्कार किया, मैं भी सत्कार प्राप्त करके बैठ गया। उस समय हाथ जोड़कर मैंने उन दोनों से आपका सन्देश सुनाया ॥१३॥

धनुर्गुणकिणाङ्केन पाणिना शुभलक्षणम् ।
पादमानमयन्पार्थः केशवं समचोदयत् ॥१४॥

धनुष की डोरी के चिन्ह से युक्त हाथ से, श्रीकृष्ण के शुभ लक्षणों से समन्वित चरण को छू कर अर्जुन ने श्रीकृष्ण को उत्तर देने को प्रेरित किया ॥१४॥

इन्द्रकेतुरिवोत्थाय सर्वाभरणभूषितः ।
इन्द्रवीर्योपमः कृष्णः संविष्टो माऽभ्यभाषत ॥१५॥
वाचं स वदतां श्रेष्ठो ह्लादिनीं वचनक्षमाम् ।
त्रासिनीं धार्तराष्ट्राणां मृदुपूर्वां सुदारुणाम् ॥१६॥

समस्त आभूषणों से युक्त, इन्द्र के समान पराक्रमी श्रीकृष्ण इन्द्र की केतु (ध्वजा) की तरह सीधे सिंहासन पर बैठ गए और बोलने वालों में कुशल श्रीकृष्ण, आह्लादकारिणी, अभिप्राय प्रकट करने में समर्थ दुर्योधनादि को भयजननी, पूर्व में मृदु और परिणाम में कठोर वाणी मुझसे कहने लगे ॥१५-१६॥

वाचं तां वचनार्हस्य शिक्षाक्षरसमन्विताम् ।
अश्रौषमहमिष्टार्थां पश्चाद्धृदयहारिणीम् ॥१७॥

वचन बोलने में प्रसिद्ध, श्रीकृष्ण की शिक्षा के अक्षरों से युक्त, इष्ट अर्थ वाली, हृदयाकर्षक उस वाणी को मैंने सुना, जो इस प्रकार थी ॥१७॥

वासुदेव उवाच—

सञ्जयेदं वचो ब्रूया धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।
कुरुमुख्यस्य भीष्मस्य द्रोणस्यापि च शृण्वतः ॥१८॥

श्रीकृष्ण बोले—हे सञ्जय ! तुम मेरे इन वचनों को बुद्धिमान धृतराष्ट्र से कह देना। उस समय कुरु-वंश-श्रेष्ठ, भीष्म और द्रोण भी इस बात को सुनते रहने चाहिए॥१८॥

आवयोर्वचनात्सूत ज्येष्ठानप्यभिवादयन् ।
यवीयसश्च कुशलं पश्चात्पृष्ट्वैवमुत्तरम् ॥१९॥

हे सूत ! हमारा नाम लेकर तुम जो हमसे ज्येष्ठ हों—उनको प्रणाम कहना तथा युवा पुरुषों से कुशल पूछ लेने पर हमारा यह उत्तर सुना देना ॥१९॥

यजध्वं विविधैर्यज्ञैर्विप्रेभ्यो दत्तदक्षिणाः ।
पुत्रैर्दारैश्च मोदध्वं महद्वो भयमागतम् ॥२०॥

हे कौरवो ! तुम लोग, ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर, अनेक यज्ञों से यजन कर लो और अपने पुत्र स्त्रियों के साथ जो आनन्द उठाना है, उठा लो—नहीं तो तुमको बड़ा भय खड़ा हो गया है ॥

अर्थांस्त्यजत पात्रेभ्यः सुतान्प्राप्नुत कामजान् ।
प्रियं प्रियेभ्यश्चरत राजा हि त्वरते जये ॥२१॥

अब तुम, विद्वान ब्राह्मणों को दान दे लो तथा अपने कामोपभोग से उत्पन्न, पुत्रों से मिल लो। जिस किसी का हित करना है—कर लो, क्योंकि राजा युधिष्ठिर विजय के लिए शीघ्रता कर रहा है ॥२१॥

ऋणमेतत्प्रवृद्धं मे हृदयान्नाऽपसर्पति ।
यद्गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम् ॥२२॥

यह मेरे ऊपर बढ़ा हुआ ऋण है, जो हृदय से हटता ही नहीं है, कि मुझे दूर होने पर भी द्रौपदी मुझे ही बार २ उस समय सभा में पुकारती रही ॥२२॥

तेजोमयं दुराधर्षं गांडीवं यस्य कार्मुकम् ।
मद्द्वितीयेन तेनेह वैरं वः सव्यसाचिना ॥२३॥

तेज से युक्त, दुराधर्ष, जिसका गाण्डीव धनुष है, उस मेरे द्वितीय रूप अर्जुन से तेरा वैर ठन गया है ॥२३॥

मद्द्वितीयं पुनः पार्थं कः प्रार्थयितुमिच्छति ।
यो न कालपरीतो वाऽप्यपि साक्षात्पुरन्दरः ॥२४॥

मेरे द्वितीय रूप अर्जुन से कौन युद्ध की अभिलाषा कर सकता है, साक्षात् इन्द्र भी काल की प्रेरणा के बिना अर्जुन से युद्ध करना नहीं चाहेगा ॥२४॥

बाहुभ्यामुद्वहेद्भूमिं दहेत्क्रुद्ध इमाः प्रजाः ।
पातयेत्त्रिदिवाद्देवान्योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥२५॥

जो युद्ध में अर्जुन को जीत सकता है, वह भुजाओं से भूमि को उठा सकता है, क्रुद्ध हुआ इस प्रजा को दग्ध कर सकता है। और स्वर्ग से देवों को भी गिरा सकता है ॥२५॥

देवासुरमनुष्येषु यक्षगन्धर्वभोगिषु ।
न तं पश्याम्यहं युद्धे पांडवं योऽभ्याद्रणे ॥२६॥

मैं देव, असुर, मनुष्य, यक्ष, गन्धव और सर्पों में किसी ऐसे व्यक्तियों को नहीं देखता हूं, जो युद्ध में अर्जुन से लड़ सकता हो ॥२६॥

यत्तद्विराटनगरे श्रूयते महदद्भुतम् ।
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥२७॥

विराट नगर में बड़ी ही अद्भुत घटना हुई थी, कि अकेला अर्जुन ही अनेक महारथियों के लिए पर्याप्त हो गया ॥२७॥

एकेन पांडुपुत्रेण विराटनगरे यदा ।
भग्नाः पलायत दिशः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥२८॥

नगर में अकेले पाण्डु-पुत्र अर्जुन से छिन्न भिन्न किये हुए कौरव वीर, इधर उधर भाग यह उदाहरण समझने के लिए पर्याप्त है ॥२८॥

बलं वीर्यं च तेजश्च शीघ्रता लघुहस्तता ।
अविषादश्च धैर्यं च पार्थान्नाऽन्यत्र विद्यते ॥२९॥

बल, पराक्रम, तेज, शीघ्रता (फुर्ती) वेग, क्लेशाभाव, धैर्य, अर्जुन को छोड़कर अन्य किसी में मुझे तो दिखाई ही नहीं देता है ॥२९॥

इत्यब्रवीद्धृषीकेशः पार्थमुद्धर्षयन्गिरा ।
गर्जन्समयवर्षीव गगने पाकशासनः ॥३०॥

अर्जुन को हर्षित करते हुए श्रीकृष्ण ने आकाश में गर्जते हुए वर्षा ऋतु के मेघ के समान वाणी से इस प्रकार मुझे कहा ॥३०॥

केशवस्य वचः श्रुत्वा किरीटी श्वेतवाहनः ।
अर्जुनस्तन्महद्वाक्यमब्रवीद्रोमहर्षणम् ॥३१॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयेन श्रीकृष्णवाक्यकथने एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

श्वेत-अश्वाहन वाले, किरीटधारी अर्जुन ने केशव के वचन सुनकर रोमाञ्चों के खड़े कर देने वाला यह महावाक्य कहा ॥३१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में सञ्जय द्वारा श्रीकृष्ण के वचन के कथन करने का उनसठवां अध्याय समाप्त हुआ ।



साठवाँ अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

सञ्जयस्य वचः श्रुत्वा प्रज्ञाचक्षुर्जनेश्वरः ।
ततः संख्यातुमारेभे तद्वचो गुणदोषतः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! चक्षुहीन राजा धृतराष्ट्र, सञ्जय के वचन सुनकर श्रीकृष्ण के वचनों में गुण दोषों की पृथक् २ गणना करने लगा ॥१॥

प्रसंख्याय च सौक्ष्म्येण गुणदोषान्विचक्षणः ।
यथावन्मतितत्त्वेन जयकामः सुतान्प्रति ॥२॥

अपनी मति के अनुसार अपने पुत्रों के जय का अभिलाषी, बुद्धिमान् धृतराष्ट्र, सूक्ष्मता से उनके वचनों में गुण दोषों की विवेचना करने लगा ॥२॥

बलाबलं विनिश्चित्य याथातथ्येन बुद्धिमान् ।
शक्तिं संख्यातुमारेभे तदा वै मनुजाधिपः ॥३॥

बुद्धिमान मनुजेश्वर धृतराष्ट्र, उन वचनों का ठीक २ बलाबल का निश्चय करके उनकी शक्ति का पता लगाने लगा ॥३॥

देवमानुषयोः शक्त्या तेजसा चैव पांडवान् ।
कुरूञ्शक्त्याऽल्पतरया दुर्योधनमथाऽब्रवीत् ॥४॥

पाण्डवों को उसने देव और मनुष्य शक्ति से युक्त समझा तथा कौरवों को बहुत ही अल्प शक्तियुक्त देखा। अब यह दुर्योधन से कहने लगा ॥४॥

दुर्योधनेयं चिन्ता मे शश्वन्न व्युपशाम्यति।
सत्यं ह्येतदहं मन्ये प्रत्यक्षं नाऽनुमानतः ॥५॥

हे दुर्योधन! मेरी यह चिन्ता बिल्कुल शान्त नहीं होती है। मैं इसको प्रत्यक्ष सी देख रहा हूं, इसमें कोई अनुमान की आवश्यकता नहीं है ॥५॥

आत्मजेषु परं स्नेहं सर्वभूतानि कुर्वते।
प्रियाणि चैषां कुर्वन्ति यथा शक्ति हितानि च ॥६॥

सारे प्राणी अपने पुत्रादि में अत्यन्त स्नेह करते हैं तथा यथाशक्ति उनका प्रिय और हित करते हैं ॥६॥

एवमेवोपकर्तॄणां प्रायशो लक्षयामहे।
इच्छन्ति बहुलं सन्तः प्रतिकर्तुं महत्प्रियम् ॥७॥

इसी प्रकार सञ्जय, प्रायः अपने ऊपर उपकार करने वालों के साथ सज्जन, महान् प्रत्युपकार करना चाहते हैं, ऐसा देखा जाता है

अग्निः साचिव्यकर्ता स्यात्खाण्डवे तत्कृतं स्मरन्।
अर्जुनस्यापि भीमेऽस्मिन्कुरुपाण्डुसमागमे ॥८॥

खाण्डव वन में अग्नि का सहायक, अर्जुन ही गया था. इस भयङ्कर कारण पाण्डवों के युद्ध में भी अर्जुन का वह भीषण कर्म मुझे याद आता है ॥८॥

जातिगृद्ध्याभिपन्नाश्च पांडवानामनेकशः ।
धर्मादयः समेष्यन्ति समाहूता दिवौकसः ॥९॥

पाण्डवों के जन्म से सम्बन्ध रखने के कारण, उनकी सहायता करने वाले, अनेक धर्म आदि देवता आवेंगे, जिनका ये बड़े आदर से आह्वान करेंगे ॥९॥

भीष्मद्रोणकृपादीनां भयादशनिसन्निभम् ।
रिरक्षिषन्तः संरम्भं गमिष्यन्तीति मे मतिः ॥१०॥

भीष्म, द्रोण, कृप आदि के वज्रोपम क्रोध को रोकते हुए और उनकी भय से रक्षा करते हुए देवता, उनको प्राप्त होंगे—ऐसा मेरा खयाल है ॥१०॥

ते देवैः सहिताः पार्था न शक्याः प्रतिवीक्षितुम् ।
मानुषेण नरव्याघ्रा वीर्यवन्तोऽस्त्रपारगाः ॥११॥

इन देवों के साथ, अस्त्रविद्या में कुशल नरव्याघ्र, महापराक्रमी वीर पाण्डवों को शत्रु देख भी नहीं सकेंगे ॥११॥

दुरासदं यस्य दिव्यं गांडीवं धनुरुत्तमम् ।
दारुणौ चाऽक्षयौ दिव्यौ शरपूर्णौ महेषुधी ॥१२॥

इस अर्जुन का दिव्य, गाण्डीव दुरासद, उत्तम धनुष है और इसके पास दारुण, बाणों से क्षीण नहीं होनेवाले बाणों से भरे हुए दिव्य तूणीर हैं ॥१२॥

वानरश्च ध्वजे दिव्यो निःसङ्गो धूमवद्गतिः ।
रथश्च चतुरन्तायां यस्य नास्ति समः क्षितौ ॥१३॥

अर्जुन की ध्वजामें दिव्य वानर, बैठा है, जो निर्भीक और धूम के समान गतिवाला है तथा चारों समुद्र से घिरी हुई भूमि पर इसके रथ के समान कोई रथ नहीं है ॥१३॥

महामेघनिभश्चापि निर्घोषः श्रूयते जनैः ।
महाशनिसमः शब्दः शात्रवाणां भयङ्करः ॥१४॥

इस रथ का निर्घोष, महामेघ की गर्जना के तुल्य तथा महावज्र के समान शत्रुओं का भयंकर शब्द सुना जाता है।

यं चातिमानुषं वीर्ये कृत्स्नो लोको व्यवस्यति।
देवानामपि जेतारं यं विदुः पार्थिवा रणे ॥१५॥

जिसको सारा संसार मनुष्यों से अधिक पराक्रमी तथा जिस को राजा लोग, देवों का विजयी मानते हैं ॥१५॥

शतानि पञ्च चैवेषून्यो गृह्णन्नैव दृश्यते ।
निमेषान्तरमात्रेण मुंचन्दूरं च पातयन् ॥१६॥

जो पांच सौ बाणों को एक धनुष पर चढ़ाता हुआ दिखाई भी नहीं देता है तथा निमेष मात्र में छोड़ देता है और दूर फेंक देता है ॥१६॥

यमाह भीष्मो द्रोणश्च कृपो द्रौणिस्तथैव च ।
मद्रराजस्तथा शल्यो मध्यस्था ये च मानवाः ॥१७
युद्धायाऽवस्थितं पार्थं पार्थिवैरतिमानुषैः ।
अशक्यं नरशार्दूलं पराजेतुमरिन्दमम् ॥१८॥

भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य, तथा जो मध्यस्थ मनुष्य है, वे इस महारथी श्रेष्ठ अरि-विजयी युद्ध के लिए उपस्थित अर्जुन को देखकर मनुष्यों के पराक्रम से अधिक पराक्रमी राजाओं से भी इसको दुर्जय जानते हैं ॥१७-१८॥

क्षिपत्येकेन वेगेन पञ्च बाणशतानि यः ।
सदृशं बाहुवीर्येण कार्तवीर्यस्य पांडवम् ॥१६॥

एक बार में ही वेगसे पांच सौ बाण छोड़ने वाले, बाहु के बल में कार्त-वीर्य अर्जुन के समान बली, पाण्डुपुत्र अर्जुन को कौन विजयी जीत सकता है ॥१६॥

तमर्जुनं महेष्वासं महेन्द्रोपेन्द्रविक्रमम् ।
निघ्नन्तमिव पश्यामि विमर्देऽस्मिन्महाहवे ॥२०॥

महा-धनुर्धर, महेन्द्र और उपेन्द्र (विष्णु) के समान पराक्रमी अर्जुन को इस महा-युद्ध में मारकाट मचाता हुआ देख सा रहा हूं ॥२०॥

इत्येवं चिन्तयन्कृत्स्नमहोरात्राणि भारत ।
अनिद्रो निःसुखश्चाऽस्मि कुरूणां शमचिन्तया ॥२१॥

मैं भरत वंशोत्पन्न धृतराष्ट्र, रात दिन इस तरह चिन्ता करता हुआ, निद्रा और सुख से हीन हुआ, कौरवों की सन्धि के विषय में ही सोचता रहता हूं ॥२१॥

क्षयोदयोऽयं सुमहान्कुरूणां प्रत्युपस्थितः ।
अस्य चेत्कलहस्यांऽतः शमादन्यो न विद्यते ॥२२॥

कौरवों का यह महान् विनाश उपस्थित हो गया है। इस कलह की शान्ति तो बिना सन्धि के नहीं हो सकती है ॥२२॥

शमो मे रोचते नित्यं पार्थैस्तात न विग्रहः।
कुरुभ्यो हि सदा मन्ये पांडवाञ्शक्तिमत्तरान् ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि
धृतराष्ट्रविवेचने षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

हे तात! पाण्डवों के साथ मुझे तो सन्धि करना ही रुचि कर प्रतीत होता है। मैं तो कौरवों से शक्तिमान् पाण्डवों को ही मानता हूं ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यान-सन्धि-पर्व में धृतराष्ट्र विवेचन का साठवां अध्याय समाप्त हुआ।

इकसठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

पितुरेतद्वचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः।
आधाय विपुलं क्रोधं पुनरेवेदमब्रवीत् ॥१॥

वैशम्पायन बोले-हे राजन्! पिता के ये वचन सुन कर असहन शील, दुर्योधन, अपने क्रोध में भर कर फिर यह वचन बोला ॥१॥

अशक्या देवसचिवाः पार्थाः स्युरिति यद्भवान् ।
मन्यते तद्भयं व्येतु भवतो राजसत्तम ॥२॥

हे राज-सत्तम ! देवों के साथी होने से यदि आप पाण्डवों को पराजित करने में अशक्य समझते हो, तो यह आपका भयपूर्ण भ्रम, नष्ट होजाना चाहिए॥२॥

अकामद्वेषसंयोगाल्लोभाद् द्रोहाच्च भारत ।
उपेक्षयो च भावानां देवा देवत्वमाप्नुवन् ॥३॥

हे भारत! देवता, राग-द्वेष, लोभ, द्रोह से रहित होते हैं और वे किसी व्यक्ति-विशेष का पक्षपात नहीं करते, इसी से तो देवता देव-पदवी को पाये हुए हैं ॥३॥

इति द्वैपायनो व्यासो नारदश्च महातपाः ।
जामदग्न्यश्च रामो नः कथामकथयत्पुरा ॥४॥

इस प्रकार द्वैपायन व्यास और महातपस्वी नारद एवं जमदग्नि पुत्र परशुराम ने, हम से यह कथा कही थी ॥४॥

नैव मानुषवद्देवाः प्रवर्तन्ते कदाचन ।
कामात्क्रोधात्तथा लोभाद् द्वेषाच्च भरतर्षभ ॥५॥

हे भरतर्षभ ! देवता, काम, क्रोध, लोभ और द्वेष से कभी मनुष्यों की तरह प्रवृत्त नहीं होते हैं ॥५॥

यदा ह्यग्निश्च वायुश्च धर्म इन्द्रोऽश्विनावपि ।
कामयोगात्प्रवर्त्तेरन्न पार्था दुःखमवाप्नुयुः ॥६॥

यदि अग्नि, वायु, धर्म, इन्द्र और आश्विन, रागद्वेष से प्रवृत्त होते तो अब तक कभी पाण्डव, दुःख नहीं उठाते ॥६॥

तस्मान्न भवता चिन्ता कार्यैषा स्यात्कथञ्चन ।
दैवेष्वपेक्षका ह्येते शश्वद्भावेषु भारत ॥७॥

हे भारत ! इन सब बातों को ध्यान में रखकर तुम को चिन्ता नहीं करनी चाहिए। ये देवता तो सदा दिव्य भाव शम दमादि में प्रवृत्त होते हैं, ये मानुषभाव-काम क्रोध आदि में प्रवृत्त नहीं होते ॥७॥

अथ चेत्कामसंयोगाद् द्वेषो लोभश्च लक्ष्यते ।
देवेषु दैवप्रामाण्यान्नैषां तद्विक्रमिष्यति ॥८॥

यद्यपि देवों की कथाओं के देखने से कामादि के संयोग से देवों में कही २ द्वेष, लोभ भी दिखाई दे देता है, परन्तु वे इन पाण्डवों के लिए कोई पराक्रम नहीं करेंगे-यह निश्चय है ॥८॥

मयाभिमन्त्रितः शश्वज्जातवेदाः प्रशाम्यति ।
दिधक्षुः सकलांल्लोकान्परीक्ष्प्य समन्ततः ॥९॥

जो अग्नि, सारे लोकों के जलाने में समर्थ है, वह भी मुझसे अभिमन्त्रित हुआ सब ओर से सिकुड़ कर शान्त हो जावेगा।

यद्वा परमकं तेजो येन युक्ता दिवौकसः ।
ममाप्यनुपमं भूयो देवेभ्यो विद्धि भारत ॥१०॥

हे भारत ! जो किसी परम तेज से देवता युक्त हैं, तो मुझे भी अनुपम तेज, देवों से ही प्राप्त हुआ है-यह समझ लो ॥१०॥

विदीर्यमाणां वसुधां गिरीणां शिखराणि च ।
लोकस्य पश्यतो राजन्स्थापयाम्यभिमन्त्रणात् ॥११॥

हे राजन्! फटती हुई पृथिवी और गिरते हुए पर्वतों के शिखरों को संसार के देखते २ मैं अपने अभिमन्त्रणा से फिर ज्यों का त्यों बना सकता हूं ॥११॥

चेतनाचेतनस्याऽस्य जङ्गमस्थावरस्य च ।
विनाशाय समुत्पन्नमहं घोरं महास्वनम् ॥१२॥

इस जड़, चेतन, चराचर जगत् के विनाश के लिए मैं ही महाध्वनि वाला घोर व्यक्ति उत्पन्न हुआ हूं ॥१२॥

अश्मवर्षं च वायुश्च शमयामीह नित्यशः ।
जगतः पश्यतोऽभीक्ष्णं भूतानामनुकम्पया ॥१३॥

पत्थरों की वर्षा करते हुए वायु को जगत् के देखते २ प्राणियों पर दया करके मैं नित्य शान्त करता रहता हूँ ॥१३॥

स्तम्भितास्वप्सु गच्छन्ति मया रथपदातयः ।
देवासुराणां भावानामहमेकः प्रवर्तिता ॥१४॥

रुके हुए पानी के मध्य में मेरे रथ और पैदल जा सकते हैं। देव और असुरों के मनोरथों का मैं ही अकेला सम्पादन करने वाला हूँ ॥१४॥

अक्षौहिणीभिर्यान्देशान्यामि कार्येण केनचित् ।
तत्राऽश्वा मे प्रवर्तन्ते यत्र यत्राऽभिकामये ॥१५॥

मैं यदि किसी कार्य से कई अक्षौहिणी सेना लेकर किसी देश को जाऊँ-तो मैं जहाँ २ की इच्छा करूँगा—मेरे अश्व, वहां ही पहुँच जावेंगे ॥१५॥

भयानकानि विषये व्यालादीनि न सन्ति मे ।
मन्त्रगुप्तानि भूतानि न हिंसन्ति भयङ्कराः ॥१६॥

क्या मेरे देश में भयङ्कर व्याल आदि जन्तु नहीं हैं, परन्तु मैंने प्राणियों को मन्त्रों से अभिरक्षित कर रखा है-इससे इनको यह भयङ्कर जन्तु नहीं काटते हैं ॥१६॥

निकामवर्षी पर्जन्यो राजन्विषयवासिनाम् ।
धर्मिष्ठाश्च प्रजाः सर्वा ईतयश्च न सन्ति मे ॥१७॥

हे राजन ! मेरे देश में रहने वालों के लिए नित्य मेघ बरसता है । सारी प्रजा धर्मात्मा है, और अति-वृष्टि अनावृष्टि आदि ईतियां कुछ भी नहीं हैं॥१७॥

अश्विनावथ वायग्नी मरुद्भिः सह वृत्रहा ।
धर्मश्चैव मया द्विष्टान्नोत्सहन्तेऽभिरक्षितुम् ॥१८॥

अश्विन, वायु, अग्नि, देवों के साथ इन्द्र तथा धर्म भी, मेरे-द्वेष करने वाले की रक्षा करने में समर्थ नहीं होगा ॥१८॥

यदि ह्येते समर्थाः स्युर्मद्द्विषस्त्रातुमञ्जसा ।
न स्म त्रयोदश समाः पार्था दुःखमवाप्नुयुः ॥१९॥

यदि ये देव, मेरे द्वेषी पाण्डवों की रक्षा करने में समर्थ हैं, तो तेरह वर्ष तक पाण्डव क्लेश पाते नहीं डोलते ॥१९॥

नैव देवा न गन्धर्वा नाऽसुरा न च राक्षसाः ।
शक्तास्त्रातुं मया द्विष्टं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥२०॥

देव, गन्धर्व, असुर, राक्षस भी, मेरे द्वेषी का उद्धार करने में समर्थ नहीं हैं—यह मैं तुमसे सत्य कहता हूं ॥२०॥

यदभिध्याम्यहं शश्वच्छुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
नैतद्विपन्नपूर्वं मे मित्रेष्वरिषु चोभयोः ॥२१॥

जिस अच्छी या बुरी बात को मैं सोचता हूं, वह बात मित्र या शत्रुओं को फूटकर मालूम नहीं होती है ॥२१॥

भविष्यतीदमिति वा यद्ब्रवीमि परन्तप ।
नाऽन्यथा भूतपूर्वं च सत्यवागिति मां विदुः ॥२२॥

हे परन्तप ! मैं जो कहता हूं—वह अवश्य होगा क्योंकि मैंने कभी उलटी पुलटी बातें नहीं बनाई हैं, इसीलिए लोग मुझे सत्यवादी समझते हैं ॥२२॥

लोकसाक्षिकमेतन्मे माहात्म्यं दिक्षु विश्रुतम् ।
आश्वासनार्थं भवतः प्रोक्तं न श्लाघया नृप ॥२३॥

दिशाओं में प्रसिद्ध मेरे महत्व को सारा जगत् जानता है। हे नृप ! मैंने यह सब कुछ आपकी घबराहट के मेटने को कहा है—यह कोई अपनी मिथ्या प्रशंसा नहीं है ॥२३॥

न ह्यहं श्लाघनो राजन्भूतपूर्वः कदाचन ।
असदाचरितं ह्येतद्यदात्मानं प्रशंसति ॥२४॥

हे राजन ! मैंने कभी पूर्वकाल में अपनी डींग नहीं मारी। जो अपनी प्रशंसा आप करता है, बस ? यही असज्जनों का व्यवहार माना गया है ॥२४॥

पांडवांश्चैव मत्स्यांश्च पाञ्चालान्केकयैः सह।
सात्यकिं वासुदेवं च श्रोताऽसि विजितान्मया॥२५॥

पाण्डव, मत्स्य, केकयों के साथ, पाञ्चाल, सात्यकि, श्रीकृष्ण को तुम मुझसे पराजित हुए थोड़े ही दिन में स्वयं सुन लोगे ॥२५॥

सरितः सागरं प्राप्य यथा नश्यन्ति सर्वशः।
तथैव ते विनंक्ष्यन्ति मामासाद्य सहान्वयाः ॥२६॥

जो नदी या समुद्र में गिर जाता है, वह जैसे नष्ट होता है, इसी तरह वे मेरे साथ २ लड़ कर अपने वंशजों के साथ नष्ट होकर रहेंगे ॥२६॥

परा बुद्धिः परं तेजो वीर्यं च परमं मम।
परा विद्या परो योगो मम तेभ्यो विशिष्यते ॥२७॥

मेरी बुद्धि, तेज, पराक्रम, बहुत ही आगे बढ़ा हुआ है तथा मेरी उत्कृष्ट विद्या और उत्कृष्ट योग, उनसे कहीं अधिक है ॥२७॥

पितामहश्च द्रोणश्च कृपः शल्यः शलस्तथा।
अस्त्रेषु यत्प्रजानंति सर्वं तन्मयि विद्यते ॥२८॥

भीष्म पितामह, द्रोण, कृप, शल्य, शल एवं अन्य कोई जरा भी अस्त्र चलाना जानता है, वे सब मुझ में ही अन्तर्भूत हैं अर्थात वे सब मेरे ही सहायक हैं ॥२८॥

इत्युक्त्वा संजयं भूयः पर्यपृच्छत भारत ।
ज्ञात्वा युयुत्सोः कार्याणि प्राप्तकालमरिन्दमः ॥२६॥
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि
दुर्योधनवाक्य एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

हे भारत ! इतना कहकर श्रत्रुजयी धृतराष्ट्र ने फिर सञ्जय से पूछा—कि तुम समय पर होने वाले मेरे पुत्र युयुत्सु के कार्यों को भी देख आए हो—मुझे जरा उनको सुनाओ ॥२६॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में दुर्योधन वाक्य का इकसठवां अध्याय समाप्त हुआ।



बासठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तथा तु पृच्छन्तमतीव पार्थं वैचित्रवीर्यं तमचिन्तयित्वा ।
उवाच कर्णो धृतराष्ट्रपुत्रं प्रहर्षयन्संसदि कौरवाणाम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इस प्रकार अर्जुन के विषय में पूछते हुए विचित्र वीर्य के पुत्र, राजा धृतराष्ट्र की परवा न करके राज-सभा में कौरवों को हर्षित करता हुआ, कर्ण, राजा दुर्योधन से कहने लगा ॥१॥

मिथ्या प्रतिज्ञाय मया यदस्त्रं रामात्कृतं ब्रह्ममयं पुरस्तात्
विज्ञायते नाऽस्मि तदैवमुक्तस्तेनांऽतकाले प्रतिभाऽस्यतीति

मैंने "मैं ब्राह्मण हूं" ऐसा मिथ्या कह कर परशुराम से पूर्व काल में ब्रह्मास्त्र का प्रयोग सीख लिया था। उस समय उन्होंने अप्रसन्न होकर कहा, कि यदि तुम्हारा अन्तकाल उपस्थित होगा, तो उस समय तुम्हें इस प्रयोग का स्मरण न हो सकेगा ॥२॥

महापराधे ह्यपि यन्न तेन महर्षिणाऽहं गुरुणा च शप्तः।
शक्तः प्रदग्धुं ह्यपि तिग्मतेजाः ससागरामप्यवनिं महर्षिः॥

इतना बड़ा अपराध करने पर भी उस पूज्य महर्षि ने मुझे शाप नहीं दिया। यह अत्यन्त तेजस्वी महर्षि परशुराम, समुद्र पर्यन्त पृथिवी तक के भस्म करने में समर्थ था ॥३॥

प्रसादितं ह्यस्य मया मनोऽभूच्छुश्रूषया स्वेन च पौरुषेण।
तदस्ति चाऽस्त्रं मम सावशेषं तस्मात्समर्थोऽस्मि ममैष भारः

मैंने अपनी सेवा और पुरुषार्थ से महर्षि को प्रसन्न कर रखा था। वह ब्रह्मास्त्र प्रयोग मेरे पास शेष है, इसलिए मैं अर्जुन के मारने में समर्थ हूं और उसके मारने का भार मेरे ऊपर ही है।

निमेषमात्रात्तमृषेः प्रसादमवाप्य पाञ्चालकरूषमत्स्यान्।
निहत्य पार्थान्सह पुत्रपौत्रैर्लोकानहं शस्त्रजितान्प्रपत्स्ये॥५॥

थोड़े ही काल में महर्षि परशुराम का अनुग्रह प्राप्त करके मैं आ गया था। अब मैं पाञ्चाल, करूष, मत्स्य, देश के वीरों तथा पांचों पुत्र सहित पाण्डवों को मार कर शस्त्रधारी वीरों के लोकों को प्राप्त करूंगा ॥५॥

पितामहस्तिष्ठतु ते समीपे द्रोणश्च सर्वे च नरेन्द्रमुख्याः।
यथा प्रधानेन बलेन गत्वा पार्थान्हनिष्यामि ममैष भारः।

भीष्म पितामह द्रोणाचार्य या अन्य मुख्य २ राजा तुम्हारे पास ही बैठे रहें, मैं अपने प्रधान बल का अवलम्ब लेकर पांडवों को मार दूंगा--तुम इस बात का मेरे ऊपर भार समझो ॥६॥

एवं ब्रुवन्तं तमुवाच भीष्मः किं कत्थसे कालपरीतबुद्धे।
न कर्ण जानासि यथा प्रधाने हते हताः स्युर्धृतराष्ट्रपुत्राः

हे काल से विपरीत बुद्धि वाले! कर्ण! तुम क्या अपनी डींग मार रहे हो। क्या तुम यह नहीं जानते हो? कि तुम जैसे प्रधान वीरों के मार लेने पर ही धृतराष्ट्र के पुत्रों की मृत्यु होगी अर्थात् तुम सर्व प्रथम मारे जावोगे ॥७॥

यत्खांडवं दाहयता कृतं हि कृष्णद्वितीयेन धनञ्जयेन।
श्रुत्वैव तत्कर्म नियन्तुमात्मा युक्तस्त्वया वै सह बान्धवेन

क्या तुमको यह याद नहीं है, कि खाण्डव वन में श्रीकृष्ण के साथ अकेले अर्जुन ने क्या कर दिखाया था। तुम उस कर्म को सुनकर अपने बान्धवों के साथ अपने आपको रोके रखो ॥८॥

यां चापि शक्तिं त्रिदशाधिपस्ते ददौ महात्मा भगवान्महेंद्रः
भस्मीकृतां तां समरे विशीर्णां चक्राहतां द्रक्ष्यसि केशवेन

महात्मा भगवान् देवराज इन्द्र ने जो तुमको शक्ति (शस्त्र) प्रदान की है, उसको श्रीकृष्ण द्वारा अपने चक्र से नष्ट भ्रष्ट और भस्मीभूत हुई तुम युद्ध में देख लोगे ॥९॥

यस्ते शरः सर्पमुखो विभाति सदाऽग्र्यमाल्यैर्महितः प्रयत्नात्
स पांडुपुत्राभिहतः शरोघैः सह त्वया यास्यति कर्ण नाशम्

हे कर्ण ! जो तेरे पास सर्पमुख वाले बाण हैं और जिनकी तुम, उत्तम २ पुष्पमालाओं से पूजा करते हो, वह अर्जुन के बाणों से टुकड़े २ होकर नष्ट हो जावेंगे ॥१०॥

बाणस्य भौमस्य च कर्ण हन्ता किरीटिनं रक्षति वासुदेवः
यस्त्वादृशानां च वरीयसां च हन्ता रिपूणां तुमुले प्रगाढे

हे कर्ण ! बाणासुर और नरकासुर जैसे दैत्य के मार गिराने वाले, श्रीकृष्ण, कीरीटधारी अर्जुन की रक्षा करते रहते हैं। यह श्रीकृष्ण, महाभयङ्कर युद्ध में तुम जैसे या तुम से भी अधिक बलवानों के नाशक हैं ॥११॥

कर्ण उवाच—

असंशयं वृष्णिपतिर्यथोक्तस्तथा च भूयांश्च ततो महात्मा
अहं यदुक्तः परुषं तु किंचित्पितामहस्तस्य फलं शृणोतु ॥१२

कर्ण ने कहा—हे भीष्म ! तुमने जो कहा है वह बिलकुल ठीक है। यही क्या वृष्णिवंश का स्वामी कृष्ण, इससे भी अधिक महावीर है, परन्तु मुझ से जो भीष्म पितामह ने कटु वचन कहे हैं—उनका परिणाम सुन लो ॥१२॥

न्यस्यामि शस्त्राणि न जातु संख्ये पितामहो द्रक्ष्यति मां सभायाम्
त्वयि प्रशांते तु मम प्रभावं द्रक्ष्यन्ति सर्वे भुवि भूमिपालाः

आज मैं शस्त्र रख देता हूं, अब भीष्म पितामह, मुझे युद्ध

या राज सभा में नहीं देखेंगे। जब तुम्हारा देहान्त हो जावेगा, तभी सारे राजा मेरा प्रभाव देख पावेंगे ॥१३॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्येवमुक्त्वा स महाधनुष्मान्हित्वा सभां स्वं भवनं जगाम
भीष्मस्तु दुर्योधनमेव राजन्मध्ये कुरूणां प्रहसन्नुवाच॥१४॥

वैशम्पायन बोले-हे राजन्! इतना कह कर महा-धनुर्धर कर्ण, सभा को छोड़ कर अपने घर को चला गया। यह देखकर हंसता हुआ भीष्म, कौरव वीरों के मध्यमें राजा दुर्योधन से बोला।

सत्यप्रतिज्ञः किलसूतपुत्रस्तथा स भारं विषहेत कस्मात्।
व्यूहं प्रतिव्यूह्य शिरांसि भित्वा लोकक्षयं पश्यत भीमसेनात्॥

सूतपुत्र कर्ण, सत्य प्रतिज्ञाधारी बनता था। अब वह किस तरह इस झमेले को सहता रहेगा, जब कि हमारे व्यूह के प्रति पक्ष में व्यूह रचना करके भीमसेन, सैनिकों के शिरों को तोड़ेगा. क्या तुम सब लोग, इस लोक क्षय को देखते रहोगे ॥१५॥

आवन्त्यकालिङ्गजयद्रथेषु चेदिध्वजे तिष्ठति वाह्लिके च।
अहं हनिष्यामि सदा परेषां सहस्रशश्चाऽयुतशश्च योधान्॥

अवन्ती, कलिंग देश के राजा और जयद्रथ, चेदि देश के ध्वजाभूत वाल्हिक के बैठे रहने पर ही मैं शत्रुओं के सहस्त्रों की संख्या में वीरों को मार बिछाऊंगा॥१६॥

यदैव रामे भगवत्यनिन्द्ये ब्रह्मब्रुवाणः कृतवांस्तदस्त्रम्।
तदैव धर्मश्च तपश्च नष्टं वैकर्तनस्याऽधमपूरुषस्य॥१७॥

जब माननीय महापुरुष भगवान् परशुराम के सम्मुख अपने को ब्राह्मण बता कर इसने उनसे अस्त्र ग्रहण किये तो सूर्यपुत्र इस अधर्म कर्ण का धर्म और तप तो उसी समय नष्ट हो गया॥१७॥

वैशम्पायन उवाच—

तथोक्तवाक्ये नृपतीन्द्र भीष्मे निक्षिप्य शस्त्राणि गते च कर्णे
वैचित्रवीर्यस्य सुतोल्पबुद्धिर्दुर्योधनः शान्तनवं बभाषे१८

इति श्रीमहाभारते संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि
कर्णभीष्मवाक्ये द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥

वैशम्पायन बोले—हे नृपेन्द्र! भीष्म के इतना कहने और शस्त्र डाल कर कर्ण के चले जाने पर धृतराष्ट्र के पुत्र अल्पबुद्धि दुर्योधन ने शान्तनु पुत्र भीष्म से कहा॥१८॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में कर्ण भीष्म के वाक्य का बासठवां अध्याय समाप्त हुआ।

तेरसठवां अध्याय

दुर्योधन उवाच—

सदृशानां मनुष्येषु सर्वेषां तुल्यजन्मनाम्।
कथमेकान्ततस्तेषां पार्थानां मन्यसे जयम्॥१॥

दुर्योधन बोले—हे पितामह! तुम मनुष्यों के सदृश आकार वाले और समान जन्मधारी, पाण्डवों का ही विजय अवश्यम्भावी कैसे मान रहे हो॥१॥

वयं च तेऽपि तुल्या वै वीर्येण च पराक्रमैः ।
समेन वयसा चैव प्रातिभेन श्रुतेन च ॥२॥
अस्त्रेण योधयुग्या च शीघ्रत्वे कौशले तथा ।
सर्वे स्म समजातीयाः सर्वे मानुषयोनयः ॥३॥
पितामह विजानीषे पार्थेषु विजयं कथम् ।

हम और वे, शक्ति, शस्त्र, शूरवीरों के संग्रह, शीघ्रता (फुर्ती) कुशलता आदि में समान ही हैं । हम एक जाति के मनुष्य हैं, अब तुम यह बताओ, कि आप को उनका ही विजय कैसे दिखाई दे रहा है ॥२-३॥

नाऽहं भवति न द्रोणे न कृपे न च बाह्लिके ॥४॥
अन्येषु च नरेन्द्रेषु पराक्रम्य समारभे ।

हे महाभाग ! आप, द्रोण, कृप, बाल्हिक तथा अन्य राजाओं के पराक्रम का अवलम्ब लेकर मैंने यह युद्ध नहीं छेड़ा है ॥४॥

अहं वैकर्तनः कर्णो भ्राता दुःशासनश्च मे ॥५॥
पाण्डवान्समरे पञ्च हनिष्यामः शितैः शरैः ।

मैं, वैकर्तन कर्ण तथा भ्राता दुःशासन, इस प्रकार हम तीन ही अपने तीक्ष्ण शरों से युद्ध में पांचों पाण्डवों को मार लेंगे ॥५॥

ततो राजन्महायज्ञैर्विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥६॥
ब्राह्मणांस्तर्पयिष्यामि गोभिरश्वैर्धनेन च ।

हे राजन् ! इसके अनन्तर बड़ी २ दक्षिणा के अनेक यज्ञ करके गौ, अश्व और धन से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करूंगा ॥६॥

यदा परिकरिष्यन्ति ऐणेयानिव तन्तुना।
अतरित्रानिव जले बाहुभिर्मामका रणे ॥७॥
पश्यन्तस्ते परांस्तत्र रथनागसमाकुलान्।
तदा दर्पं विमोक्ष्यन्ति पांडवाः स च केशवः ॥८॥

जब जाल में फंसे हुए हिरन या जल में फंसे हुए नौका-हीनों की तरह मेरे सैनिक, रण में शत्रुओं को फांस लेंगे और इस तरह रथ, हाथी आदि साधनों से रहित शत्रुओं को देखेंगे तो उस समय पाण्डव अपने सारे घमण्ड का आवेश भूल जावेंगे और श्रीकृष्ण भी व्याकुल हो जायेंगे ॥७-८॥

विदुर उवाच—

इह निःश्रेयसं प्राहुर्वृद्धा निश्चितदर्शिनः।
ब्राह्मणस्य विशेषेण दमो धर्मः सनातनः ॥९॥

विदुर बोले-हे महानुभाव! इस जगत् में ज्ञानी वृद्ध मनुष्य दम को ही कल्याण कारी, मानते हैं। ब्राह्मण को तो विशेष कर दम को ही सनातन धर्म मानना चाहिए ॥९॥

तस्य दानं क्षमा सिद्धिर्यथावदुपपद्यते।
दमो दानं तपो ज्ञानमधीतं चाऽनुवर्तते ॥१०॥

जो दम को सनातन-धर्म मानता है, उसको ही दान-धर्म क्षमा और सिद्धि प्राप्त होती है। दम ही दान, तप, ज्ञान, और अध्ययन को बढ़ाता है ॥१०॥

दमस्तेजो वर्धयति पवित्रं दमं उत्तमम् ।
विपाप्मा वृद्धतेजास्तु पुरुषो विन्दते महत् ॥११॥

दम (जितेन्द्रियता) तेज को बढ़ाता है और यह बड़ा ही पवित्र है। जो मनुष्य, पापहीन, और तेजस्वी हो जाता है, तो फिर उसको परमात्मा की प्राप्ति होती है ॥११॥

क्रव्याद्भ्य इव भूतानामदान्तेभ्यः सदा भयम् ।
येषां च प्रतिषेधार्थं क्षत्रं सृष्टं स्वयम्भुवा ॥१२॥

जो अनुदार हैं, उनसे वनैले मांस भक्षी पशुओं की तरह सदा भय लगा रहता है। इन दुष्टों के प्रतिकार के लिए ही ब्रह्मा ने क्षत्रियों को रचा है ॥१२॥

आश्रमेषु चातुर्ष्वाहुर्दममेवोत्तमं व्रतम् ।
तस्य लिंगं प्रवक्ष्यामि येषां समुदयो दमः ॥१३॥

चारों आश्रमों में दम की बड़ी महिमा है। दम ही सर्वोत्तम व्रत है। अब मैं उनके लक्षण कहता हूं जिनको दम की प्राप्ति हो सकती है ॥१३॥

क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम् ।
इन्द्रियाभिजयो धैर्यं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥१४॥
अकार्पण्यमसंरम्भः सन्तोषः श्रद्दधानता ।
एतानि यस्य राजेन्द्र स दान्तः पुरुषःस्मृत ॥१५॥

हे राजेन्द्र! क्षमा सहन-शीलता, अहिंसा, शत्रु मित्र में समानता, सत्य, सरलता, इन्द्रियों का विजय, धैर्य, मृदुता, लज्जा, अचञ्च-

लता, दैन्याभाव, क्रोध का त्याग, सन्तोष, श्रद्धा-ये गुण जिसमें विद्यमान होते हैं। वह पुरुष, उदार कहलाता है ॥१४-१५॥

कामो लोभश्च दर्पश्च मन्युर्निद्रा विकत्थनम् ।
मान ईर्ष्या च शोकश्च नैतद्दान्तो निषेवते ।
आर्जवमशठं शुद्धमेतद्दान्तस्य लक्षणम् ॥१६॥

काम, लोभ, दर्प, क्रोध, निद्रा, आत्मप्रशंसा, मान, ईर्ष्या, शोक-ये उदार मनुष्य में नहीं होते हैं। कुटिलता और शठता का परित्यागी पुरुष ही उदार होता है ॥१६॥

अलोलुप्तस्तथाऽल्पेप्सुः कामानामविचिन्तिता ।
समुद्रकल्पः पुरुषः स दान्तः परिकीर्तितः ॥१७॥

लालचहीन, अल्प-संग्रही, कामनाओं के पीछे नहीं दौड़ने वाला, समुद्र के समान गम्भीर पुरुष ही, उदार पुरुष कहाता है।

सुवृत्तः शीलसम्पन्नः प्रसन्नात्माऽऽत्मविद् बुधः ।
प्राप्येह लोके संमानं सुगतिं प्रेत्य गच्छति ॥१८॥

जो सदाचारी, शुद्ध स्वभाव से युक्त, प्रसन्न चित्त वाला, आत्मज्ञानी, बुद्धिमान् पुरुष है, वही इस लोक में मान बड़ाई पाकर अन्त में मर कर सुगति पाता है ॥१८॥

अभयं यस्य भूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः ।
स वै परिणतप्रज्ञः प्रख्यातो मनुजोत्तमः ॥१९॥

जिसने सारे प्राणियों को अभय दे रखा है, वह भी सब से निर्भय है। इस तरह निडर रहने वाला पुरुषोत्तम ही परिपक्वबुद्धि का मनुष्य कहाता है ॥१९॥

सर्वभूतहितो मैत्रस्तस्मान्नोद्विजते जनः।

समुद्र इव गम्भीरः प्रज्ञातृप्तः प्रशाम्यति ॥२०॥

जो समस्त प्राणियों का हितकर्ता मित्र है, उससे किसी का मन नहीं घबराता है। समुद्र के समान गम्भीर पुरुष ही ज्ञान द्वारा तृप्त होकर शान्त हो जाता है ॥२०॥

कर्मणाऽऽचरितं पूर्वं सद्भिराचरितं च यत्।

तदेवाऽऽस्थाय मोदन्ते दान्ताः शमपरायणाः॥२१॥

शोभन कर्म से आचरित, तथा सज्जनों से व्यवहार में लाये हुए कर्म को स्वीकार कर के शान्ति, परायण, अत्यन्त उदार, मनुष्य, आनन्द से विचरते हैं ॥२१॥

नैष्कर्म्यं वो समास्थाय ज्ञानतृप्तो जितेन्द्रियः।

कालाकांक्षी चरंल्लोके ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२२॥

जो ज्ञान में तृप्त, जितेन्द्रिय मनुष्य, निष्काम भाव का आश्रय लेकर समय की प्रतीक्षा करता हुआ संसार में व्यवहार करता है, वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है ॥२२॥

शकुनिनामिवाऽऽकाशे पदं नैवोपलभ्यते।

एवं प्रज्ञानतृप्तस्य मुनेर्वर्त्म न दृश्यते ॥२३॥

जैसे आकाश में पक्षियों के चरणों के चिन्ह दिखाई नहीं देते हैं, वैसे ही प्रज्ञान से तृप्त मुनि के मार्ग का कुछ पता नहीं लगता है ॥२३॥

उत्सृज्यैव गृहान्यस्तु मोक्षमेवाऽभिमन्यते ।
लोकास्तेजोमयास्तस्य कल्पन्ते शाश्वता दिवि ॥२४॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि विदुरवाक्ये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

जो घरों को छोड़कर मोक्ष का ही प्रयत्न करते हैं, उनको द्युलोक में तेजोमय लोकों की प्राप्ति होती है ॥२४॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में विदुर वाक्य का तरेसठवां अध्याय समाप्त हुआ ।

चौसठवां अध्याय

विदुर उवाच—

शकुनीनामिहाऽर्थाय पाशं भूमावयोजयत् ।
कश्चिच्छाकुनिकस्तात पूर्वेषामिति शुश्रुम ॥१॥

विदुर बोले—हे तात ! एकबार किसी व्याध ने पक्षी पकड़ने के लिए भूमि पर जाल बिछाया—यह एक कहानी सुनी जाती है ॥१॥

तस्मिंस्तौ शकुनौ बद्धौ युगपत्सहचारिणौ ।
तावुपादाय तं पाशं जग्मतुः खचरावुभौ ॥२॥

उसने उसपाश में साथ २ रहने वाले दो पक्षियों को एक साथ पकड़ लिया, परन्तु वे दोनों पक्षी उस जाल को लेकर उड़ गए ॥२॥

तौ विहायसमाक्रान्तौ दृष्ट्वा शाकुनिकस्तदा ।
अन्वधावदनिर्विण्णो येन येन स्म गच्छतः ॥३॥

जब चिड़ीमार ने देखा, कि वे पत्ती आकाश में उड़ गए, तो वह भी बिना किसी ग्लानि के जिधर वे जाते थे, उधर ही उनके पीछे २ भगा देता था ॥३॥

तथा तमनुधावन्तं मृगयुं शकुनार्थिनम् ।
आश्रमस्था मुनिः कश्चिद्ददर्शाऽथ कृताह्निकः ॥४॥

पत्तियों के पकड़ने के लिए उनके पीछे २ दौड़ते हुए उस व्याध को प्रातः क्रिया से निवृत्त हुए किसी आश्रमवासी, मुनि ने देखा ॥४॥

तावन्तरित्तगौ शीघ्रमनुयान्तं महीचरम् ।
श्लोकेनाऽनेन कौरव्य पप्रच्छ स मुनिस्तदा ॥५॥

हे कौरव ! उन आकाश में उड़ने वाले, पत्तियों के पीछे भूमि पर जाते हुए व्याध से मुनि ने एक श्लोक द्वारा पूछा ॥५॥

विचित्रमिदमाश्चर्यं मृगहन्प्रतिभाति मे ।
प्लवमानौ हि खचरौ पदातिरनुधावसि ॥६॥

हे मृगव्याध ! मुझे यह बड़ा विचित्र और आश्चर्य-जनक प्रतीत होता है,जो तू आकाश में उड़ने वाले पत्तियोंके पीछे भागा जा रहा है ॥६॥

शाकुनिक उवाच—

पाशमेकमुभावेतौ सहितौ हरतो मम।
यत्र वै विवदिष्येते तत्र मे वशमेष्यतः ॥७॥

व्याध ने कहा—ये दो पक्षी एक मत होकर मेरे जाल को लेकर उड़े जा रहे हैं, जब इनमें खेंचातान मचेगी—तब ये अवश्य मेरे वश में आवेंगे ॥७॥

विदुर उवाच—

तौ विवादनुप्राप्तौ शकुनौ मृत्युसन्धितौ।
विगृह्य च सुदुर्बुद्धी पृथिव्यां सन्निपेततुः ॥८॥

विदुर ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार कुछ देर में उन दोनों पक्षियों के मृत्यु की प्रेरणा से विवाद खड़ा हो गया और वे लड़ कर भूमि में गिर पड़े ॥८॥

तौ युद्ध्यमानौ संरब्धौ मृत्युपाशवशानुगौ।
उपसृत्याऽपरिज्ञातौ जग्राह मृगहा तदा ॥९॥

मृत्यु की पाश में बंधे हुए, क्रोध में विवश युद्ध करते हुए, उन पक्षियों को चुपचाप जाकर व्याध ने पकड़ लिया ॥९॥

एवं ये ज्ञातयोऽर्थेषु मिथो गच्छन्ति विग्रहम्।
तेऽमित्रवशमायान्ति शकुनाविव विग्रहम् ॥१०॥

इसी तरह जो जातियाँ अपना एक स्वार्थ होने पर भी कलह कर बैठती हैं, वे झगड़ा कर बैठने के कारण शत्रु के वश में पड़ जाती हैं ॥१०॥

सम्भोजनं संकथनं संप्रश्नोऽथ समागमः ।
एतानि ज्ञातिकार्याणि न विरोधः कदाचन ॥११॥

साथ २ भोजन, बातचीत, पूछताछ, मिलना-जुलना, आदि जाति के कार्य,जो करते हैं, उनमें कभी विरोध नहीं होता है ॥११॥

ये स्म काले सुमनसः सर्वे वृद्धानुपासते ।
सिंहगुप्तमिवाऽरण्यमप्रधृष्या भवन्ति ते ॥१२॥

जो जाति, प्रसन्न चित्त होकर अपने वृद्धों की सेवा करती रहती है, वे सिंह से सुरक्षित वन की तरह किसी से पराजित नहीं हो सकती हैं ॥१२॥

येऽर्थं सन्ततमासाद्य दीना इव समासते ।
श्रियं ते सम्प्रयच्छन्ति द्विषद्भ्यो भरतर्षभ ॥१३॥

हे भरतर्षभ ! जो धन पाकर भी दीन की तरह अपनी रहन सहन रखता हैं । वे राजा अपनी लक्ष्मी को एक दिन अपने द्वेषियों के समर्पण करते हैं ॥१३॥

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च ।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥१४॥

हे भरतर्षभ ! धृतराष्ट्र ! इकट्ठी लकड़ियों के रहने पर आग जलती है और उन लकड़ियों के पृथक् २ कर देने पर वे बुझ जाती है, इसी तरह जातियां भी जलती और बुझ जाती हैं ।१४।

इदमन्यत्प्रवक्ष्यामि यथा दृष्टं गिरौ मया ।
श्रुत्वा तदपि कौरव्य यथा श्रेयस्तथा कुरु ॥१५॥

हे कौरव्य! यह मैं एक और बात कहता हूं, जो मैंने किसी पर्वत पर देखी है। उसको सुन कर जैसा तुम ठीक समझो, वैसा करो ॥१५॥

वयं किरातैः सहिता गच्छामो गिरिमुत्तरम्।
ब्राह्मणैर्देवकल्पैश्च विद्याजंभकवार्तिकैः ॥१६॥

हे राजन! हम एक बार किरातों के साथ, उत्तरगिरि को चल दिए। उस समय मन्त्र, जंत्र, और औषधों के साधनोंके जानने वाले देवों के तुल्य, ब्राह्मण भी हमारे साथ थे ॥१६॥

कुंजभूतं गिरिं सर्वमभितो गन्धमादनम्।
दीप्यमानौषधिगणं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥१७॥

गन्धमादन पर्वत के पास लताओं के घरों से कुञ्जें बन गई थी। यह पर्वत, औषधि के समूह से युक्त और सिद्ध तथा गन्धर्वों से सुसेवित था ॥१७॥

तत्राऽपश्याम वै सर्वे मधु पीतकमाक्षिकम्।
मरुप्रपाते विषमे निविष्टं कुम्भसाम्मितम् ॥१८॥

वहां हम सब ने मधु का सुनहरी छत्ता देखा। जो जल-प्रपात के शुष्क और विषम स्थान में कुम्भ के आकार में स्थित था ॥१८॥

आशीविषै रक्ष्यमाणं कुबेरदयितं भृशम्।
यत्प्राप्य पुरुषो मर्त्योऽप्यमरत्वं नियच्छति ॥१९॥

इस कुबेर के प्रिय स्थान की सर्प रक्षा कर रहे थे, जिस स्थान को पाकर पुरुष देव-पद को प्राप्त कर लेता है ॥१९॥

अचक्षुर्लभते चक्षुर्वृद्धो भवति वै युवा ।
इति ते कथयन्ति स्म ब्राह्मणा जम्भसाधकाः ॥२०॥

वहां अन्धा, आंख पलित और वृद्ध युवा बन जाता है-यह बात औषधियों के साधक ब्राह्मण कहते रहते थे ॥२०॥

ततः किरातास्तद् दृष्ट्वा प्रार्थयन्तो महीपते ।
विनेशुर्विषमे तस्मिन्ससर्पे गिरिगह्वरे ॥२१॥

हे महीपते ! इसके अनन्तर किरातों ने उस स्थान को देखा, वे उस सर्प सहित पर्वत की विषम गुफा में प्रविष्ट होकर नष्ट हो गए ॥२१॥

तथैव तव पुत्रोऽयं पृथिवीमेक इच्छति ।
मधु पश्यति सम्मोहात्प्रपातं नानुपश्यति ॥२२॥

इसी तरह तेरा यह पुत्र भी, अकेला ही पृथिवी को जीतना चाहता है । यह मधु को तो देखता है और वहां से पतन होने के कारणों को नहीं देखता है ॥२२॥

दुर्योधनो योद्धुमनाः समरे सव्यसाचिना ।
न च पश्यामि तेजोऽस्य विक्रमं वा तथाविधम् ॥२३॥

यह दुर्योधन, सव्यसाची अर्जुन के साथ युद्ध में लड़ने की उत्कण्ठा दिखा रहा है, परन्तु मैं तो इसमें उनसे लड़ने योग्य पराक्रम और तेज नहीं देखता हूं ॥२३॥

एकेन रथमास्थाय पृथिवी येन निर्जिता ।
भीष्मद्रोणप्रभृतयः संत्रस्ताः साधुयायिनः ॥२४॥

जिस अकेले अर्जुन ने रथ में बैठकर सारी पृथिवी को जीत लिया, तथा धर्म-युद्ध करने वाले भीष्म, द्रोण आदि को भी जिसने एक साथ भयभीत कर दिया है ॥२४॥

विराटनगरे भग्नाः किं तत्र तव दृश्यताम् ।
प्रतीक्षमाणो यो वीरः क्षमते वीक्षितं तव ॥२५॥

विराट नगर में सारे अर्जुन के सामने से भाग गए—तुम यह तो देखो। जिस वीर कर्ण की तुम प्रतीक्षा करते हो, जरा उसकी ओर भी देखो ॥२५॥

द्रुपदो मत्स्यराजश्च संक्रुद्धश्च धनंजयः ।
न शेषयेयुः समरे वायुयुक्ता इवाऽग्नयः ॥२६॥

द्रुपद, मत्स्यराज और अर्जुन, कुपित हो चुके हैं। ये वायु से युक्त अग्नि की तरह, युद्ध में किसी को शेष नहीं रहने देंगे ॥२६॥

अंके कुरुष्व राजानं धृतराष्ट्र युधिष्ठिरम् ।
युध्यतोर्हि द्वयोर्युद्धे नैकान्तेन भवेज्जयः ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि
विदुरवाक्ये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

हे धृतराष्ट्र! तुम अपने पुत्र युधिष्ठिर को भी अपनी गोद में बैठाओ। दो मनुष्यों के युद्ध में किसी एक का विजय निश्चित नहीं है ॥२७॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में विदुर वाक्य का चौसठवां अध्याय समाप्त हुआ!

पैसठवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

दुर्योधन विजानीहि यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक।
उत्पथं मन्यसे मार्गमनभिज्ञ इवाऽध्वगः ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे पुत्र ! दुर्योधन ! मैं जो तुम से कहता हूं, तुम उसको ध्यान से सुनो। तुम तो अज्ञान पथिक की तरह उलटे मार्ग को मार्ग समझ रहे हो ॥१॥

पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां यत्तेजः प्रजिहीर्षसि।
पञ्चानामिव भूतानां महतां लोकधारिणाम् ॥२॥

जो तुम पांच पाण्डवों के तेज का अपहरण करना चाहते हो, वह लोक के धारण करने वाले पञ्च महा भूतों की शक्ति के अपहरण के तुल्य है ॥२॥

युधिष्ठिरं हि कौन्तेयं परं धर्ममिहाऽऽस्थितम्।
परां गतिमसम्प्रेत्य न त्वं जेतुमिहाऽर्हसि ॥३॥

कुन्तीपुत्र, राजा युधिष्ठिर, सर्वोत्तम धर्म में स्थित है। तुम उनके साथ युद्ध में मरने के सिवा विजय नहीं पा सकते हो ॥३॥

भीमसेनं च कौन्तेयं यस्य नास्ति समो बले।
रणान्तकं तर्जयसि महावातमिव द्रुमः ॥४॥

जिस भीमसेन के समान बल में कोई नहीं है, रण में काल के समान उसी बली भीम को तू महावायु को वृक्ष की तरह आह्वान कर रहा है ॥४॥

सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं मेरुं शिखरिणामिव ।
युधि गांडीवधन्वानं को नु युद्ध्येत बुद्धिमान् ॥५॥

सब धनुष धारियों में श्रेष्ठ, पर्वतों में मेरु के तुल्य गाण्डीव-धारी अर्जुन से कौन बुद्धिमान् लड़ सकता है ॥५॥

धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः कमिवाऽद्य न शातयेत् ।
शत्रुमध्ये शरान्मुंचन्देवराडशनीमिव ॥६॥

पाञ्चालराज का पुत्र, धृष्टद्युम्न. वज्र को छोड़ते हुए देवराज इन्द्र को तरह शत्रुओं के मध्य में बाणों को छोड़ता हुआ, किस को नहीं काट डालेगा ॥६॥

सात्यकिश्चापि दुर्धर्षः संमतोऽन्धकवृष्णिषु ।
ध्वंसयिष्यति ते सेनां पाण्डवेयहिते रतः ॥७॥

अन्धकार और वृष्णि वंशजों में माननीय, सात्यकि भी बड़ा दुर्धर्ष है। यह पाण्डव धर्मराज के हित में तत्पर हुआ, तेरी सेना का विध्वंस उड़ा देगा ॥७॥

यः पुनः प्रतिमानेन त्रींल्लोकानतिरिच्यते ।
तं कृष्णं पुण्डरीकाक्षं को नु युद्ध्येत बुद्धिमान् ॥८॥

जो अपनी तुलना में तीनों लोकों को भी उलांघ जाता है, उन कमल-लोचन श्रीकृष्ण से कौन बुद्धिमान युद्ध कर सकता है ॥८॥

एकतो ह्यस्य दाराश्च ज्ञातयश्च सबान्धवाः ।
आत्मा च पृथिवी चेयमेकतश्च धनञ्जयः ॥९॥

श्रीकृष्ण के एक ओर तो अपना स्त्रीवर्ग, जाति, बांधव, पुत्र और पृथिवी है और एक ओर प्रिय अर्जुन है अर्थात इन सब की बराबर अकेले अर्जुन को कृष्ण प्रिय मानते हैं ॥९॥

वासुदेवोऽपि दुर्धर्षो यतात्मा यत्र पाण्डवः ।
अविषह्यं पृथिव्याऽपि तद्बलं यत्र केशवः ॥१०॥

एक ओर आत्मा के वश में करने वाला अर्जुन और दुर्धर्ष श्रीकृष्ण हैं, तो जिस सेना में श्रीकृष्ण होंगे-वह सेना ही पृथिवी भर में असह्य होगी ॥१०॥

तिष्ठ तात सतां वाक्ये सुहृदामर्थवादिनाम् ।
वृद्धं शांतनवं भीष्मं तितिक्षस्व पितामहम् ॥११॥

हे तात ! अपने हित के कहने वाले सज्जन सुहृदों के वाक्य मानने ही चाहिए। तुमें वृद्ध शान्तनु पुत्र, भीष्म पितामह की आज्ञा के अनुसार चलना उचित है ॥११॥

मां च ब्रुवाणं शुश्रूष कुरूणामर्थदर्शिनम् ।
द्रोणं कृपं विकर्णं च महाराजं च वाह्लिकम् ॥१२॥
एते ह्यपि यथैवाऽहं मन्तुमर्हसि तांस्तथा ।
सर्वे मर्मविदो ह्येते तुल्यस्नेहाश्च भारत ॥१३॥

मैं कौरवों के स्वार्थ की बात कर रहा हूं, इस से तुम को मेरी बात का आदर करना उचित है। द्रोण, कृप, विकर्ण, महा-

राज बाल्हिक ये भी मेरे आदर करने के तुल्य ही आदर के योग्य हैं। हे भारत! ये सारे मर्म के ज्ञाता और कौरव पाण्डवों पर समान स्नेह रखने वाले हैं ॥१२-१३॥

यत्तद्विराटनगरे सहभ्रातृभिरग्रतः।
उत्सृज्य गाः सुसंत्रस्तं बलं ते समशीर्यत ॥१४॥

विराट नगर में सब भाइयों के साथ, तुम्हारे सामने ही गायों को छोड़ कर तुम्हारी सारी सेना बिखर गई थी ॥१४॥

यच्च व नगरे तस्मिञ्श्रूयते महदद्भुतम्।
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१५॥

उस नगर में ही यह बड़ा अद्भुत वृत्तान्त हुआ कि अनेक महारथियों को अकेला अर्जुन ही पर्याप्त हो गया, तुम्हारे समझने को यह घटना पर्याप्त थी ॥१५॥

अर्जुनस्तत्तथाऽकार्षीत्किं पुनः सर्व एव ते।
स भ्रातृनभिजानीहि वृत्त्या तं प्रतिपादय ॥१६॥

इति श्रीमहाभरते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः।

उस समय तो यह सब कुछ अकेले अर्जुन ने किया था। अब ये सारे पाण्डव इकट्ठे हुए युद्ध को तय्यार हैं। अब तुम उनके साथ भाई का सा व्यवहार करो और उन का राज्य उनको लौटा दो ॥१६॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में धृतराष्ट्र वाक्य का पैंसठवां अध्याय पूरा हुआ।

छियासठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा महाप्रज्ञो धृतराष्ट्रः सुयोधनम् ।
पुनरेव महाभाग सञ्जयं पर्यपृच्छत ॥१॥

वैशम्पायन बोले- हे महाभाग ! महाबुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र दुर्योधन से इतना कह कर फिर सञ्जय से पूछने लगा ॥१॥

ब्रूहि सञ्जय यच्छेषं वासुदेवादनन्तरम् ।
यदर्जुन उवाच त्वां परं कौतूहलं हि मे ॥२॥

हे सञ्जय ! श्रीकृष्ण के अनन्तर जो कुछ वृत्तान्त शेष हो और जो कुछ अर्जुन ने कहा हो, वह मुझे फिर सुनाओ इसके सुनने की मुझे बड़ी ही उत्कण्ठा है ॥२॥

सञ्जय उवाच—

वासुदेववचः श्रुत्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
उवाच काले दुर्धर्षो वासुदेवस्य शृण्वतः ॥३॥

सञ्जय बोला-श्रीकृष्ण के वचन सुन कर दुर्धर्ष कुन्तीपुत्र अर्जुन, वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण के सुनते २ समयानुसारी यह वचन बोला ॥३॥

पितामहं शांतनवं धृतराष्ट्रं च सञ्जय ।
द्रोणं कृपं च कर्णं च महाराजं च बाह्लिकम् ॥४॥

द्रौणिं च सोमदत्तं च शकुनिं चापि सौबलम् ।
दुःशासनं शलं चैव पुरुमित्रं विविंशतिम् ॥५॥
विकर्णं चित्रसेनं च जयत्सेनं च पार्थिवम् ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्मुखं चापि कौरवम् ॥६॥
सैन्धवं दुःसहं चैव भूरिश्रवसमेव च ।
भगदत्तं च राजानं जलसन्धं च पार्थिवम् ॥७॥
येचाप्यन्येपार्थिवास्तत्र योद्धुं समागताःकौरवाणांप्रियार्थम्
मुमूर्षवः पांडवाग्नौ प्रदीप्ते समानीता धार्त्तराष्ट्रेण होतुम्

सञ्जय ! शान्तनुपुत्र भीष्म पितामह, राजा धृतराष्ट्र, द्रोण, कृप, कर्ण, महाराज बाल्हिक द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, सोमदत्त, सुबलपुत्र शकुनि, दुःशासन, शल, पुरुमित्र, विविंशति, विकर्ण, चित्रसेन, राजा जयत्सेन, अवन्ति राजकुमार विन्दानुविन्द, कौरव दुर्मुख, जयद्रथ, दुःसह, भूरिश्रवा, राजा भगदत्त, राजा जरासन्धन्ये तथा अन्य राजा, जो कौरवों का हित करने को आये हुए हैं, वे प्रदीप्त पाण्डव रूपी अग्नि में दुर्योधन ने हवन करने को बुलाये हैं ॥२-३॥

यथान्यायं कौशलं वन्दनं च समागता मद्वचनेन वाच्याः
इदं ब्रूयाः सञ्जय राजमध्ये सुयोधनं पापकृतां निधानम्
अमर्षणं दुर्मतिं राजपुत्रं पापात्मानं धार्त्तराष्ट्रं सुलुब्धम् ।
सर्वं ममैतद्वचनं समग्रं सहामात्यं सञ्जय श्रावयेथाः ॥१०

हे सञ्जय ! आये हुए सब राजाओं से यथायोग्य कुशल प्रश्न एवं वन्दना कह कर उन के और पापियों में मुख्य क्रोधी, दुर्मति पाप धारी, लालची राजपुत्र, दुर्योधन से मन्त्रियों के साथ यह मेरा वचन सुना देना ॥९-१०॥

एवं प्रतिष्ठाप्य धनञ्जयो मां ततोऽर्थवद्धर्मवच्चापि वाक्यम् ।
प्रोवाचेदं वासुदेवं समीक्ष्य पार्थो धीमांल्लोहितांतायताक्षः ॥

इस प्रकार मुझे आप लोगों से यह वचन कहने को दृढ़ करके लाल विशाल नेत्रधारी बुद्धिमान् अर्जुन ने, सार्थक और धर्मानुसारी वचन श्रीकृष्ण की ओर देखते हुए कहा ॥११॥

यथाश्रुतं ते वदतो महात्मनो मधुप्रवीरस्य वचः समाहितम्
तथैव वाच्यं भवता हि मद्वचः समागतेषु क्षितिपेषु सर्वशः

हे सञ्जय ! यदुवंश-प्रवीर महात्मा श्रीकृष्ण के शास्त्रानुसारी युक्ति-युक्त वचनों तथा मेरे वचनों को तुम राजाओं के आजाने पर राज-सभा में खुल्लमखुल्ला सुना देना ॥१२॥

शराग्निधूमे रथनेमिनादिते धनुःस्रुवेणाऽस्त्रबलप्रसारिणा
यथा न होमः क्रियते महामृधे समेत्य सर्वे प्रयतध्वमादृताः

रथनेमि रूपी वायु से प्रेरित, बाण रूप अग्नि में अस्त्र बल-धारी मुझ से धनु रूपी स्रुवे द्वारा जिस तरह हवन न किया जा सके, तुम सब मिलकर ऐसा ही प्रयत्न करना ॥१३॥

नचेत्प्रयच्छध्वममित्रघातिनो युधिष्ठिरस्यांऽशमभीप्सितं स्वकम्
नयामि वः साश्वपदातिकुंजरान्दिशं पितॄणामशिवां शितैः शरैः

हे शत्रु नाशक ! राजाओं ! राजा युधिष्ठिर के अभीष्ट भाग को जो तुम लोग प्रदान नहीं करोगे, तो अश्व, सैनिक और हाथी आदि के साथ, तुम लोगों को तीक्ष्ण बाणों से अशिव पितृपुरी को भेज दूंगा ॥१४॥

ततोऽहमामन्त्र्य तदा धनञ्जयं चतुर्भुजं चैव नमस्य सत्वरः
जवेन सम्प्राप्त इहाऽमरद्युता तवांऽतिकं प्रापयितुं वचो महत्
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
उद्योगपर्वणियानसन्धिपर्वणिसंजयवाक्येषट्षष्टितमोऽध्यायः

हे देवों के तुल्य ! कान्तिमन् ! राजन ! मैं उसी क्षण अर्जुन से विदा लेकर और शीघ्र ही चतुर्भुज श्रीकृष्ण को नमस्कार करके तुमको यह महत्वशाली वचन सुनाने को बड़ी शीघ्रता से आया हूं । १५॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में सञ्जय वाक्य का छियासठवां अध्याय समाप्त हुआ।



सड़सठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

दुर्योधने धार्त्तराष्ट्रे तद्वचो नाऽभिनन्दति।
तूष्णींभूतेषु सर्वेषु समुत्तस्थुर्नरर्षभाः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन ने सञ्जय के उन वचनों का स्वागत नहीं किया। जब सारे ही सभासद् चुप बैठे रहे तो, राजा लोग खड़े हो गए ॥१॥

उत्थितेषु महाराज पृथिव्यां सर्वराजसु।
रहिते सञ्जयं राजा परिप्रष्टुं प्रचक्रमे ॥२॥

हे राजन! पृथिवी के सारे राजाओं उठ खड़े होने पर एकान्त में सञ्जय से राजा धृतराष्ट्र फिर पूछने लगा ॥२॥

आशंसमानो विजयं तेषां पुत्रवशानुगः।
आत्मनश्च परेषां च पांडवानां च निश्चयम् ॥३॥

यह धृतराष्ट्र, पुत्र के मोह में फंसा हुआ, अब भी अपने पुत्रों की ही विजय की चेष्टा कर रहा था। इसने अपना तथा पाण्डवों के निश्चय का पता लगाना चाहा ॥३॥

धृतराष्ट्र उवाच—

गावल्गणेब्रूहिनःसारफल्गुस्वसेनायांयावदिहाऽस्तिकिंचित्
त्वंपांडवानांनिपुणंवेत्थसर्वंकिमेषांज्यायःकिमुतेषां कनीयः

हे गवल्गण के पुत्र सञ्जय ! प्रथम तुम मेरी सेना में जो सार या असार या जो कुछ कमीहो, वह कहो, तुम पाण्डवोंका अच्छी तरह पता लगा चुके हो। अब तुम यह बताओ, कि हमारे पुत्रों के पास क्या बड़ी वस्तु है और पाण्डवों में क्या कमी है ॥४॥

त्वमेतयोः सारवित्सर्वदर्शी धर्माधर्मयोर्निपुणो निश्चयज्ञः ।
स मे पृष्टः सञ्जय ब्रूहि सर्वं युध्यमानाः कतरेऽस्मिन्न संति

तू दोनों का ही तत्व जानता है, क्योंकि धर्म और नीति के तत्वों का ज्ञाता और दूसरे के निश्चय विचार का समझ जाने वाला है। हे सञ्जय ! मैं तुमसे पूछ रहा हूं-तुम सब कुछ बता दो, कि इस युद्ध में कौन नष्ट होगा ॥५॥

सञ्जय उवाच—

न त्वां ब्रूयां रहितो जातु किञ्चिदसूया हि त्वां प्रविशेत राजन्
आनयस्व पितरं महाव्रतं गांधारीं च महिषीमाजमीढ ॥६॥
तौ तेऽसूयां विनयेतां नरेन्द्र धर्मज्ञौ तौ निपुणौ निश्चयज्ञौ
तयोस्तु त्वां सन्निधौ तद्वदेयं कृत्स्नं मतं केशवपार्थयोर्यत्

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! मैं तुम से एकान्त में कुछ नहीं कह सकता हूं, क्योंकि इससे आप किसी की निन्दा समझेंगे। हे अजमीढ़ वंशोत्पन्न ! तुम महाव्रतधारी पिता (पालयिता) व्यास जी और राज-महिषी गान्धारी को बुला लो। हे नरेन्द्र ! वे तेरे द्वेष या मन के मालिन्य को दूर करते रहेंगे। वे दोनों बड़े धर्मात्मा, निपुण और कर्तव्य के निश्चय को जानने वाले हैं,

मैं उस समय उनके पास ही में श्रीकृष्ण और अर्जुन का जो मत है वह सब सुना दूंगा ॥६७॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्युक्तेन च गान्धारी व्यासश्चाऽत्राऽऽजगाम ह।
आनीतौ विदुरेणेह सभां शीघ्रं प्रवेशितौ ॥८॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इतना कहते ही गान्धारी और व्यासजी वहां आ गए, इनको साथ लेकर विदुर आये, उन्होंने इनको शीघ्र राजसभा में प्रविष्ट किया ॥८॥

ततस्तन्मतमाज्ञाय सञ्जयस्याऽऽत्मजस्य च।
अभ्युपेत्य महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥९॥

इसके अनन्तर सञ्जय और आत्मज धृतराष्ट्र के मत को जानकर और उनके समीप पहुंचकर महाबुद्धि कृष्णद्वैपायन यह बचन बोले ॥९॥

व्यास उवाच—

सम्पृच्छते धृतराष्ट्रायसञ्जय आचक्ष्वसर्वंयावदेशोऽनुयुङ्क्ते
सर्वं यावद्वेत्थ तस्मिन्यथावद्याथातथ्यं वासुदेवेऽर्जुनस्य

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि
व्यासगान्धार्यागमने सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

व्यास ने कहा—हे सञ्जय! सब कुछ पूछते हुए धृतराष्ट्र को वह सब कुछ सुना दो, जो २ यह पूछता चला जावे। तुम श्रीकृष्ण और अर्जुन के विषय में जो जानते हो, उसको भी ठीक २ समझा दो ॥१०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में व्यास गान्धारी के आगमन का सड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ।

अड़सठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अर्जुनो वासुदेवश्च धन्विनौ परमार्चितौ ।
कामादन्यत्र सम्भूतौ सर्वभावाय सम्मितौ ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! अर्जुन और श्रीकृष्ण, बड़े आदरणीय, धनुष धारी हैं। ये कामना के परित्याग के साथ उत्पन्न और सब के हित के लिए परम प्रसिद्ध हैं ॥१॥

व्यामान्तरं समास्थाय यथामुक्तं मनस्विनः ।
चक्रं तद्वासुदेवस्य मायया वर्तते विभो ॥२॥

हे विभो! पांच हाथ के घेरे में फैला हुआ, जितने प्रमाण में फेंकना चाहे, उतना फैलने वाला, मनस्वी श्रीकृष्ण का चक्र है, जिसका रूप बड़ा ही दुर्लक्ष्य है ॥२॥

सापह्नवं कौरवेषु पाण्डवानां सुसम्मतम् ।
सारासारबलं ज्ञातुं तेजः पुञ्जावभासितम् ॥३॥

यह चक्र, कौरवों का संहारक और पाण्डवों का प्रिय है। यह सबका सार, असार और बल के जानने में समर्थ तथा तेज पुञ्ज से देदीप्यमान है ॥३॥

नरकं शम्बरं चैव कंसं चैद्यं च माधवः ।
जितवान्घोरसङ्काशान्क्रीडन्निव महाबलः ॥४॥

महाबली श्रीकृष्ण ने खेल करते हुए के तुल्य ही नरक, शम्बर कंस और शिशुपाल को मार लिया था, जो बड़े ही घोर और भयानक रूपधार थे ॥४॥

पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च द्यां चैव पुरुषोत्तमः ।
मनसैव विशिष्टात्मा नयत्यात्मवशं वशी ॥५॥

यह पुरुषोत्तम, पृथिवी, आकाश, द्युलोक को संकल्प मात्र से अपने वश में कर लेता है। यह बड़ा ही श्रेष्ठ रूप और ऐश्वर्यवान् है ॥५॥

भूयो भूयो हि यद्राजन्पृच्छसे पाण्डवान्प्रति ।
सारासारबलं ज्ञातुं तत्समासेन मे शृणु ॥६॥

हे राजन्! तुम बार २ पाण्डवों के बलाबल की परीक्षा के लिए पूछ-ताछ कर रहे हो—अब तुम उनका सार और असार संक्षेप में सुन लो ॥६॥

एकतो वा जगत्कृत्स्नमेकतो वा जनार्दनः ।
सारतो जगतः कृत्स्नादतिरिक्तो जनार्दनः ॥७॥

एक ओर सारा जगत् और दूसरी ओर श्रीकृष्ण हों—तो सारे जगत् से श्रीकृष्ण ही अधिक बलवान् हैं ॥७॥

भस्म कुर्याज्जगदिदं मनसैव जनार्दनः ।
न तु कृत्स्नं जगच्छक्तं भस्म कर्तुं जनार्दनम् ॥८॥

यदि श्रीकृष्ण चाहे, तो इस सारे जगत को संकल्प मात्र से ही भस्म कर सकते हैं परन्तु सारा जगत, अपनी शक्ति लगाले, तो भी श्रीकृष्ण को भस्म नहीं कर सकता है ॥८॥

यतः सत्यं यतो धर्मो यतो ह्रीरार्जवं यतः।
ततो भवति गोविन्दो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥९॥

जिधर सत्य, धर्म, लज्जा, सरलता है, उधर श्रीकृष्ण हैं और जिधर श्रीकृष्ण उधर हैं, ही विजय है ॥९॥

पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च दिवञ्च पुरुषोत्तमः।
विचेष्टयति भूतात्मा क्रीडन्निव जनार्दनः ॥१०॥

पृथिवी, आकाश, द्युलोक इन सबको सब भूतों में व्यापक श्रीकृष्ण, खेल करता हुआ सा चेष्टा दे रहा है ॥१०॥

स कृत्वा पाण्डवान्सत्रं लोकं सम्मोहयन्निव।
अधर्मनिरतान्मूढान्दग्धुमिच्छति ते सुतान् ॥११॥

श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को तो लोक के मोहित करने को बहाना बनाया है। असल में अधर्म में संलीन तुम्हारे मूढ़ पुत्रों को वे भस्म करना चाहते हैं ॥११॥

कालचक्रं जगच्चक्रं युगचक्रं च केशवः।
आत्मयोगेन भगवान्परिवर्तयतेऽनिशम् ॥१२॥

भगवान् श्रीकृष्ण, अपने योग से सदा कालचक्र, जगच्चक्र और युग (कर्म) चक्र को बदलते रहते हैं ॥१२॥

कालस्य च हि मृत्योश्च जङ्गमस्थावरस्य च।
ईशते भगवानेकः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥१३॥

काल, मृत्यु और चराचर जगत् के केवल भगवान श्रीकृष्ण स्वामी हैं—यह मैं सत्य कहता हूं ॥१३॥

ईशश्चापि महायोगी सर्वस्य जगतो हरिः ।
कर्माण्यारभते कर्तुं कीनाश इव वर्धनः ॥१४॥

यह महायोगी श्रीकृष्ण, सब जगत् का स्वामी होकर कर्म करता हुआ यमराज की तरह काटता छांटता रहता है ॥१४॥

तेन वञ्चयते लोकान्मायायोगेन केशवः ।
ये तमेव प्रपद्यन्ते न ते मुह्यन्ति मानवाः ॥१५॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयवाक्येऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

श्रीकृष्ण, माया (कर्मचक्र) से लोकों को भूलभुलैय्यां में डालते रहते हैं। जो मनुष्य, उनका आश्रय लेते हैं, वे मनुष्य, कभी मोह को प्राप्त नहीं होते हैं ॥१५॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में सञ्जयवाक्य का अड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ।



उनहत्तरवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

कथं त्वं माधवं वेत्थ सर्वलोकम हेश्वरम् ।

कथमेनं न वेदाऽहं तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! तुमने यह कैसे जाना, कि श्रीकृष्ण, सब लोक के महेश्वर हैं । हम लोग इनको क्यों नही जान पाते हैं—यह मैं तुमसे पूछता हूं, तुम मुझे स्पष्ट बताओ ॥१॥

सञ्जय उवाच—

शृणु राजन्न ते विद्या मम विद्या न हीयते ।

विद्याहीनस्तपोध्वस्तो नाऽभिजानाति केशवम् ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! तुमको वह विद्या नहीं है, जो विद्या मुझे आती है । जो विद्या (सद्ज्ञान) से हीन और तप से भ्रष्ट हैं, श्रीकृष्ण को नहीं पहिचान पाते हैं ।

विद्यया तात जानामि त्रियुगं मधुसूदनम् ।

कर्तारमकृतं देवं भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥ ३ ॥

हे तात ! संसार के रचयिता, स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर या तीनों युगों के अधिष्ठान, मधु सूदन, कर्म से अप्राप्य पञ्च महाभूतों के उत्पादक और सँहारक श्रीकृष्ण को मैं तमोनाशक विद्या से जानता हूँ ॥३॥

धृतराष्ट्र उवाच—

गावल्गणेऽत्र का भक्तिर्या ते नित्या जनार्दने ।

यया त्वमभिजानासि त्रियुगं मधुसूदनम् ॥४॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे गवल्गण के पुत्र! सञ्जय ! जो तुम्हारी भगवान् श्रीकृष्ण में नित्य भक्ति है, इस का क्या प्रकार है और किस तरह तुम तीनों युगों के अधिष्ठान भूत मधुसूदन श्रीकृष्ण को जान पाय हो ॥४॥

सञ्जय उवाच—

मायां न सेवे भद्रं ते न वृथा धर्ममाचरे ।

शुद्धभावं गतो भक्त्या शास्त्राद्वेद्मि जनार्दनम् ॥५॥

सञ्जय ने कहा हे राजन् ! मैं पुत्र धन आदि माया में लिप्त नहीं हूं और न वृथा धर्म का आचरण करता हूं भक्ति के कारण शुद्ध भाव को प्राप्त हो गया, जिस से मैं शास्त्र ज्ञान से जनार्दन श्रीकृष्ण को पहचान गया हू ॥५॥

धृतराष्ट्र उवाच—

दुर्योधन हृषीकेशं प्रपद्यस्व जनार्दनम् ।

आप्तो नः सञ्जयस्तात शरणं गच्छ केशवम् ॥६॥

धृतराष्ट्र ने कहा-हे दुर्योधन ! तुम हृषीकेश जनार्दन भगवान् श्रीकृष्ण की शरण को प्राप्त करो। यह सञ्जय हमारे लिये आप्त है इस से सत्य ही कहता है ॥६॥

दुर्योधन उवाच—

भगवान्देवकीपुत्रो लोकांश्चेन्निहनिष्यति ।
प्रवदन्नर्जुने सख्यं नाऽहं गच्छेऽद्य केशवम् ॥७॥

दुर्योधन बोला—यदि देवकी पुत्र श्रीकृष्ण, भगवान् ही हैं और वे अर्जुन को अपना सखा बताकर लोकों का संहार करेंगे, तो मैं ऐसे भगवान् को भी प्राप्त करना नहीं चाहता ॥७॥

धृतराष्ट्र उवाच—

अवाग्गान्धारि पुत्रस्ते गच्छत्येष सुदुर्मतिः ।
ईर्षुर्दुरात्मा मानी च श्रेयसां वचनातिगः ॥८॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे गान्धारी ! तेरा दुर्मति पुत्र, नीच गति की ओर जा रहा है यह बड़ा ईर्ष्या करने वाला दुरात्मा है। हे नीच ! दुर्योधन ! तू कल्याण चाहने वाले मित्रों के वचनों का अतिक्रम करता है ॥८॥

गांधार्युवाच--

ऐश्वर्यकाम दुष्टात्मन्वृद्धानां शासनातिग ।
ऐश्वर्यजीविते हित्वापितरं मां च बालिश ॥९॥
वर्धयन्दुर्हृदां प्रीतिं मां च शोकेन वर्धयन् ।
निहतो भीमसेनेन स्मर्ताऽसि वचनं पितुः ॥१०॥

गान्धारी बोली—हे ऐश्वर्य—लोलुप ! दुष्टात्मन ! वृद्धों के शासन को नहीं मानने वाले ! मूर्ख ! ऐश्वर्य, जीवन, माता पिता, आदि सबको छोड़कर विरोधियों के आनन्द और हमारे शोक

को बढ़ाता हुआ, जब भीमसेन से मारा जायगा, तब अपने पिता कि वचन याद करेगा ॥९-१०॥

व्यास उवाच—

प्रियोऽसि राजन्कृष्णस्य धृतराष्ट्र निबोध मे ।
यस्य ते सञ्जयो दूतो यस्त्वां श्रेयसि योक्ष्यते ॥११॥

व्यास जी बोले—हे राजन! धृतराष्ट्र! तुमको मुझसे यह मालूम होना चाहिए, कि तुम श्रीकृष्ण के प्रिय हो और जो तेरा यह सञ्जय दूत है, इससे भी तुम कृतार्थ हो, क्यों कि यह तुमको कल्याण मार्गमें प्रवृत्त करता है ॥११॥

जानात्येष हृषीकेशं पुराणं यच्च वै परम् ।
शुश्रूषमाणमेकाग्र्यं मोक्ष्यते महतो भयात् ॥१२॥

यह सनातन सर्वोत्कृष्ट हृषीकेश श्रीकृष्ण को जानते हैं। यदि एकान्त चित्त से इनसे कुछ सुनते रहोगे, तो यह तुमको महाभय से छुड़ा देगा ॥१२॥

वैचित्रवीर्य पुरुषाः क्रोधहर्षसमावृताः ।
सिता बहुविधैः पाशैर्ये न तुष्टाः स्वकैर्धनैः ॥१३॥

हे धृतराष्ट्र! वे लोग, क्रोध और हर्ष में फंसे हुए अनेक प्रकार की पाशों से बधे हैं, जो अपने धन से सन्तुष्ट नहीं हैं और अन्य के धन के अपहरण की चेष्टा करते हैं ॥१३॥

यमस्य वशमायान्ति काममूढा पुनः पुनः ।
अन्धनेत्रा यथैवान्धा नीयमानाः स्वकर्मभिः ॥१४॥

कामनाओं के वश में हुए प्राणी, अन्धे से ले जाए हुए अन्धे की तरह अपने कर्मों से बार २ यम के वश में होते रहते हैं ॥१४॥

एष एकायनः पन्था येन यान्ति मनीषिणः ।
तं दृष्ट्वा मृत्युमत्येति महांस्तत्र न सज्जति ॥१५॥

जिस मार्ग से ज्ञानी मनुष्य जाते हैं, यही एक मात्र ब्रह्म-प्राप्ति का सुगम मार्ग माना गया है। बुद्धिमान पुरुष, उसी सरल मार्ग को जानकर मृत्यु को पार कर लेते हैं। महा-पुरुष, इस संसार में आसक्त नहीं होता ॥१५॥

धृतराष्ट्र उवाच—

अङ्ग सञ्जय मे शंस पन्थानमकुतोभयम् ।
येन गत्वा हृषीकेशं प्राप्नुयां सिद्धिमुत्तमाम् ॥१६॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! तुम मुझे निर्भय मार्ग का उपदेश करो, जिससे हृषीकेश श्रीकृष्ण को प्राप्त करके उत्तम सिद्धि को प्राप्त करलूं ॥१६॥

सञ्जय उवाच—

नाऽकृतात्मा कृतात्मानं जातु विद्याज्जनार्दनम् ।
आत्मनस्तु क्रियोपायो नाऽन्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ॥१७॥

सञ्जय ने कहा-हे राजन! कोई भी अज्ञानी पुरुष कृतात्मा श्रीकृष्ण को नहीं पहचान सकता है। आत्मसिद्धि की क्रिया का उपाय भी बिना इन्द्रिय-निग्रह के नहीं हो सकता है ॥१७॥

इन्द्रियाणामुदीर्णानां कामत्यागोऽप्रमादतः ।
अप्रमादोऽविहिंसा च ज्ञानयोनिरसंशयम् ॥१८॥

मर्यादा से बाहर हुई, इन्द्रियों की वासना को बड़ी सावधानी से छोड़ा जा सकता है। सावधानी और हिंसा का त्याग, निश्चय ही ज्ञान का उत्पन्न करने वाला है। ॥१८॥

इन्द्रियाणां यमे यत्तो भव राजन्नतन्द्रितः।
बुद्धिश्च ते मा च्यवतु नियच्छैनां यतस्ततः ॥१९॥

हे राजन! इन्द्रियों के विजय में तुम सावधान होजाओ और इस में आलस्य न करो। तेरी बुद्धि लक्ष्य से च्युत न होवे। तुम इस को इधर उधर जाने से रोको ॥१९॥

एतज्ज्ञानं विदुर्विप्रा ध्रुवमिन्द्रियधारणम्।
एतज्ज्ञानं च पन्थाश्च येन यान्ति मनीषिणः ॥२०॥

जो ज्ञानी होते हैं, वेही इन्द्रिय विजय का प्रकार जानते हैं। यही ज्ञान है और यही मार्ग है, जिससे मनीषी लोग ब्रह्म को प्राप्त करते हैं ॥२०॥

अप्राप्यः केशवो राजन्निन्द्रियैरजितैर्नृभिः।
आगमाधिगमाद्योगाद्वशी तत्त्वे प्रसीदति ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि
सञ्जयवाक्ये ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

हे राजन! इन्द्रियों के बिना जीते कोई भी मनुष्य, श्रीकृष्ण को नहीं पा सकता है। जो जितेन्द्रिय है, वही शास्त्र के अभ्यास और कर्म योग से तत्वभूत ब्रह्म को पाकर प्रसन्न होते हैं ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में सञ्जय वाक्य का उनहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ।

सत्तरहवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

भूयो मे पुण्डरीकाक्षं सञ्जयाऽऽचक्ष्व पृच्छतः ।
नामकर्मार्थवित्तात प्राप्नुयां पुरुषोत्तमम् ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा-हे सञ्जय ! अब मैं फिर तुम से पूछता हूं, तुम मुझ को स्पष्ट बताओ। हे तात ! यदि मैं उन के नाम और कर्मों का ज्ञान प्राप्त करलूं, तो पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को क्या प्राप्त कर सकता हूं ?॥१॥

सञ्जय उवाच—

श्रुतं मे वासुदेवस्य नामनिर्वचनं शुभम् ।
यावत्तत्राऽभिजानेऽहमप्रमेयो हि केशवः ॥२

सञ्जय बोले--धृतराष्ट्र ! मैंने श्रीकृष्ण के नाम, निरुक्ति और कर्म सुन रखे हैं। उनके अनन्त नाम और कर्म हैं, जिनको मैं जानता हूं, वे सुनाता हूं, क्योंकि श्रीकृष्ण तो विचार में भी नहीं आने वाले हैं ॥२॥

वसनात्सर्वभूतानां वसुत्वाद्देवयोनितः ।
वासुदेवस्ततो वेद्यो बृहत्वाद्विष्णुरुच्यते ॥३॥

सब प्राणियों के भीतर निवास करने तथा देवयोनि का भी निवास होने से इनको वासुदेव जानना चाहिए और बृहत होने से इनको विष्णु कहते हैं ॥३॥

मौनाद्ध्यानाच्च योगाच्च विद्धि भारत माधवम् ।
सर्वतत्त्वमयत्वाच्च मधुहा मधुसूदनः ॥४॥

हे भारत ! मौन और ध्यान के कारण तथा सब तत्वों के रूप होने से इनको माधव कहते हैं। और मधु नाशक होने से मधुसूदन हैं ॥४॥

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः ।
विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति सात्वतः ॥५॥

कृष शब्द भू का वाचक है और णकार निवृत्ति के अर्थ का कहने वाला है। इन दोनों भावों का योग प्राप्त करके विष्णु ही यदुवंशोत्पन्न कृष्ण हो जाते हैं अर्थात् पृथिवी पर सुख या निवृत्ति प्रदान करने वाले को कृष्ण कहते हैं ॥५॥

पुण्डरीकं परं धाम नित्यमक्षयमव्ययम् ।
तद्भावात्पुण्डरीकाक्षो दस्युत्रासाज्जनार्दनः ॥६॥

परम धाम का नाम पुण्डरीक है, जो नित्य अक्षय और अव्यय है। इसी भाव को लेकर श्रीकृष्ण, पुण्डरीकाक्ष और दुष्टों के दण्ड देने से जनार्दन कहाते हैं ॥६॥

यतः सत्वान्न च्यवते यच्च सत्वान्न हीयते ।
सत्वतः सात्वतस्तस्मादार्षभाद्वृषभेक्षणः ॥७॥

जो सत्वगुण से पृथक् नहीं होते और जिन से कभी सत्वगुण पृथक् नहीं होता, इस प्रकार ये सत्व से उत्पन्न होने से सात्वत कहाते हैं एवं औपनिषद पुरुष होने से ऋषभेक्षण कहाते हैं ॥७॥

न जायते जनित्रेऽयमजस्तस्मादनीकजित् ।
देवानां स्वप्रकाशत्वाद्दमाद्दामोदरो विभुः ॥८॥

यह कभी उत्पन्न नहीं होते, परन्तु सबके उत्पादक हैं। ये अज हैं और सब कामादि सेना के विजयी हैं। इन्द्रियों का प्रकाशक उदर और दमन कारक दाम होता है इसी से श्रीकृष्ण दामोदर है ॥८॥

हर्षात्सुखात्सुखैश्वर्याद्धृषीकेशत्वमश्नुते ।
बाहुभ्यां रोदसी बिभ्रन्महाबाहुरिति स्मृतः ॥९॥

हर्ष, सुख, सुखैश्वर्य के कारण भगवान श्रीकृष्ण हृषीकेश नामधारी हैं। इन्होंने अपनी भुजाओं से द्यौ और आकाश को घेरा है, इससे ये महाबाहु कहाते हैं ॥९॥

अधो न क्षीयते जातु यस्मात्तस्मादधोक्षजः ।
नराणामयनाच्चापि ततो नारायणः स्मृतः ॥१०॥

ये कभी अवनत और क्षीण नहीं होते—इससे ये अधोक्षज हैं। ये सारे नरों के आधार भूत होने से नारायण कहाते हैं ॥१०

पूरणात्सदनाच्चापि ततोऽसौ पुरुषोत्तमः ।
असतश्च सतश्चैव सर्वस्य प्रभवाप्ययात् ॥११॥
सर्वस्य च सदा ज्ञानात्सर्वमेतं प्रचक्षते ।

पूर्ण करने और समाप्ति करने वाले होने से ये पुरुषोत्तम हैं। असत् और सत् सबके उत्पादक विनाशक एवं सब बात का सदा ज्ञान होने से इन को सर्व भी कहते हैं ॥११॥

सत्ये प्रतिष्ठितः कृष्णः सत्यमत्र प्रतिष्ठितम् ॥१२॥
सत्यात्सत्यं तु गोविन्दस्तस्मात्सत्योऽपि नामतः ।

सत्य में श्रीकृष्ण और श्रीकृष्ण में सत्य है। सत्य का भी सत्य श्रीकृष्ण हैं, इससे इनका नाम सत्य भी है ॥१२॥

विष्णुर्विक्रमणाद्देवो जयनाज्जिष्णुरुच्यते ॥१३॥
शाश्वतत्वादनंतश्च गोविन्दो वेदनाद्गवाम् ।
अतत्त्वं कुरुते तत्त्वं तेन मोहयते प्रजाः ॥१४॥

विक्रमण करने से दिव्य गुण धारी विष्णु और विजय शील होने से विष्णु भी इनका नाम है। इनके सदा एक रस रहने से अनन्त और गारवाक एवं इन्द्रिय भागों का निःसारता के जानने से इन्हें गोविन्द भी कहते हैं। इन्हीं के सत्य तत्त्व होने के कारण ही माया सत्य नहीं होने पर भी सत्य ही दीखती है और इससे प्रजा मोहित होती रहती है ॥१३-१४॥

एवं विधो धर्मनित्यो भगवान्मधुसूदनः ।
आगन्ता हि महाबाहुरानृशंस्यार्थमच्युतः ॥१५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि संजयवाक्ये सप्ततितमोऽध्यायः

इस प्रकार भगवान मधु सूदन सदा धर्म परायण रहते हैं। वे धर्म से नहीं हटने वाले महाबाहु श्रीकृष्ण सब पर दया करने को यहाँ आने वाले हैं ॥१५॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्व में सञ्जय वाक्य का सत्तरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

इकहत्तरवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

चक्षुष्मतां वै स्पृहयामि सञ्जय द्रक्ष्यन्ति ये वासुदेवं समीपे
विभ्राजमानं वपुषा परेण प्रकाशयन्तं प्रदिशो दिशश्च॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा-हे सञ्जय ! आज मुझे नेत्र वाले मनुष्यों की स्पर्धा हो गई, जो पास में ही श्रीकृष्ण को देखकर अपने को कृतार्थ करते हैं। ये श्रीकृष्ण अपने उत्कृष्ट शरीर से दिशा और विदिशाओं को प्रकाशित कर के सुशोभित है ॥१॥

ईरयन्तं भारतीं भारतानामभ्यर्चनीयां शङ्करीं सृञ्जयानाम्
बुभूषद्भिर्ग्रहणीयामनिन्द्यां परासूनामग्रहणीयरूपाम् ॥२॥
समुद्यन्तं सात्वतमेकवीरं प्रणेतारमृषभं यादवानाम्।
निहन्तारं क्षोभणं शात्रवाणां मुञ्चन्तं च द्विषतां वै यशांसि
द्रष्टारो हि कुरवस्तं समेता महात्मानं शत्रुहणं वरेण्यम्।
ब्रुवन्तं वाचमनृशंसरूपां वृष्णिश्रेष्ठं मोहयन्तं मदीयान् ॥

उन्नति परायण जनों से ग्रहण करने योग्य, निन्दा के अयोग्य मृतप्राय जनों से ग्रहण नहीं की जाने वाली, पूजनीय, भरत वंशोद्भव पाण्डव और सृञ्जयों के कल्याण के करने वाली वाणी को कहते हुए, सर्वोत्कर्ष के साथ बढ़ते हुए, सात्वत वंशोद्भव, सर्वोत्तम वीर, यादवों के सर्व श्रेष्ठ नेता, राक्षसों के नाशक, शत्रुओं के क्षोभ के करने वाले, दुष्टों के यशों के विघातक, शत्रु विजयी, उदार वाणी बोलते हुए, मेरे पुत्रों को किंकर्तव्य विमूढ़ बनाने वाले पूजनीय, महात्मा श्रीकृष्ण को सारे कौरव दर्शन करेंगे ॥२-४

ऋषिं सनातनतमं विपश्चितं वाचः समुद्रं कलशं यतीनाम्
अरिष्टनेमिं गरुडं सुपर्णं हरिं प्रजानां भुवनस्य धाम ॥५॥
सहस्रशीर्षं पुरुषं पुराणमनादिमध्यान्तमनन्तकीर्तिम् ।
शुक्रस्य धातारमजं च नित्यं परं परेषां शरणं प्रपद्ये

सनातन, ऋषि-मुख्य, विज्ञानवान, वाणीके समुद्र, जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ, मर्यादा युक्त, वेगशील गरुड़ पर चढ़ने वाले, प्रजा और भुवन के पति, पापहर्ता, सहस्रशीर्षा, पुरातन पुरुष, आदि, मध्य और अन्त से रहित, अनन्तकीर्ति, सत्व-गुण-धारक, अज, नित्य ऐश्वर्य-शालियों में भी श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण की मैं शरण प्राप्त होता हूं ॥५—६॥

त्रैलोक्यनिर्माणकरं जनित्रं देवासुराणामथ नागरक्षसाम् ।
नराधिपानां विदुषां प्रधानमिन्द्रानुजं तं शरणं प्रपद्ये ॥७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥ समाप्तश्च यानसन्धिपर्व ।

त्रिलोकी की रचना करने वाले, देव, असुर, नाग और राक्षसों के उत्पन्न कर्त्ता, राजा और विद्वानों में प्रधान, इन्द्र के अनुज श्रीकृष्ण की मैं शरण होता हूं ॥७॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत यानसन्धिपर्वमें धृतराष्ट्र वाक्य का इकहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ और यहीं पर यानसन्धि पर्व भी समाप्त हो गया।

सातवां भाग समाप्त हुआ